श्री
गुर प्रताप
सूरज ग्रंथ

भाषा विभाग, पंजाब

श्री गुर प्रताप सूरज
ग्रंथ

भाई संतोखसिंह

कृत

श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ

प्रथम खण्ड

(राशि १, २)

हिन्दी रूपान्तर
डॉ० जयभगवान गोयल
एम० ए०, पी एच० डी०

भाषा विभाग, पंजाब

Shri Gur Pratap Suraj

by

Bhai Santokh Singh

Transliterated and Annotated *by*

Dr. Jai Bhagwan Goyal

Revised by

Rajinder Singh

Prem Bhushan Goyal

प्रथम संस्करण :—1973

मूल्य : 8 रुपये 10 पैसे

प्रकाशक :—
प्रो० रजनीश कुमार,
निदेशक, भाषा विभाग, पंजाब,
पटियाला।

मुद्रक :—
स्वैन प्रिंटिंग प्रैस,
अड्डा टाँडा, जालन्धर—1

द्वारा कण्ट्रोलर, प्रिंटिंग और स्टेशनरी विभाग,
पंजाब, चण्डीगढ़।

प्राक्कथन

पंजाब को भारत की खड्ग भुजा कहा जाता है। यह ठीक भी है। किन्तु पंजाब को मात्र शक्ति एवं सम्पन्न प्रदेश कहना या समझना भ्रामक है। भारतीय साहित्य व संस्कृति के कोष को भी पंजाब ने जगमगाते रत्नों से भरा पूरा है। इस भ्रान्ति का कारण काफी हद तक तालमेल की कमी तथा हमारी परतन्त्रता थी। इन्हीं कारणों से भारतीय अपने साहित्य और संस्कृति से कट गए और पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन और अनुसंधान को ही अपने जीवन की इति श्री मान बैठे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी भाषाओं और साहित्य ने भी करवट ली और इस दशा में नवजागरण हुआ। इसका प्रभाव यह हुआ कि हम अपने प्रति जागरूक होकर अपने साहित्य और संस्कृति की ओर मुड़े। फलतः जहाँ देशीय भाषाओं में नव साहित्य सृजन प्रारम्भ हुआ वहाँ हमारी दृष्टि उस भूले-बिसरे साहित्य की ओर भी गई जो किन्हीं कारणों से जनता के सम्मुख नहीं आ पाया था।

भाषा विभाग, पंजाब ने ऐसे साहित्य को प्रकाश में लाने का बीड़ा उठाया है और अब तक कई दुर्लभ ग्रंथ यथा गुरु नानक प्रकाश, कथा हीर राझणि की, पंचनद, ज्ञान त्रिवेणी इत्यादि हिन्दी जगत को भेंट कर चुका है।

प्रस्तुत ग्रंथ 'श्री गुर प्रताप सूरज' एक महान रचना है। कवि चूड़ामणि भाई संतोख सिंह जी ने इस अपूर्व काव्य ग्रंथ का सृजन बीस वर्ष की निरन्तर साहित्य साधना के पश्चात् किया। कवि का जन्म गाँव नूरदी, तहसील तरनतारन, जिला अमृतसर में भाई देवा सिंह जी के घर 1785 ई० में हुआ। भाई देवा सिंह जी, जिन्हें अपने काम धंधे के लिए प्रायः अमृतसर आना पड़ता था, ने अपने सुपुत्र संतोख सिंह की शिक्षा-दीक्षा का भार ज्ञानी संत सिंह जी के हाथों सौंप दिया। इनके यहाँ रह कर भाई संतोख सिंह ने गुरुमत विद्या, संस्कृत और ब्रजभाषा का गहन अध्ययन किया। लगभग दस वर्ष तक 'बूड़िए' गाँव में रहने के पश्चात् वे कुछ समय के लिए पटियाला दरबार में आ गए। मगर महाराज राम सिंह के यहाँ वे बहुत दिन टिक न सके। इसके पश्चात् वे श्री उदे सिंह, कैथल नरेश, के राज्य आश्रय में आ गए जहाँ उनको सादर रखा गया :—

उदे सिंह बड भूप बहादुर।
कवि बुलाए राखिउ ढिग सादर।

(गरब गंजनी)

और फिर 1829 से जीवन पर्यन्त अर्थात् अक्तूबर, 1845 तक वहीं दरबारी कवि रहे और इस काल में उन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की। इससे पूर्व वे नामकोश, गुरु

नानक प्रकाश, गरब गजनी, बाल्मीकि रामायण का काव्यानुवाद, आत्म पुराण आदि रचनाएं लिख चुके थे ।

वस्तुतः गुरु नानक प्रकाश भी "गुरु प्रताप सूरज" ग्रंथ का एक अंग ही है। गुरु नानक प्रकाश, जिसे पिछले वर्ष हम पाठकों के सम्मुख भेंट कर चुके हैं, में श्री गुरु नानक देव जी का जीवन वृत्त काव्य में लिखा गया है । भाई संतोख सिंह जी इसी प्रकार अन्य गुरुओं के जीवन काव्य लिखना चाहते थे। इसी आशा को फलीभूत करने के लिए उन्होंने गुरु प्रताप सूरज की रचना की। उन्होंने स्वयं लिखा है :—

श्री गुरु को इतिहास जगत महि, रलमिल रह्यो एक थल सम नाहि
जिम सकता महिं कंचन मिले, बीन डाव्ला ले तिह भले,
तथा जगत ते मैं चुनि लेऊँ कथा समसत सु लिख कर देऊँ।
बानी सफल बरन के कारण, करिहौ सत गुरु सु जस उचारन।
जिम दधि बिखै घ्रित मिल रहै, करहि कथन नीके शुभ लहै,
तिम जग महि बाद बिवादु, गुरु जस संची दे अहिलादु ।
(गु० प्र० सु० अंशु, 5)

भाई संतोख सिंह जी ने गुरु काव्य लिखने का बीड़ा उठाया। मगर यह कार्य कोई सरल नहीं था। गुरुओं के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए उन्हें कोई भी प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध न हुई। फिर भी उन्होंने गुरु ग्रंथ साहिब, दशम ग्रंथ, वारां भाई गुरदास, बाले वाली जन्म साखी, पंज सौ साखी, भक्त माल, ज्ञान रत्नावली, महिमा प्रकाश आदि ग्रंथों का गहन अध्ययन तथा अनुशीलन किया। ऐतिहासिक तथ्यों को अपनी कल्पना एवम् प्रतिभा का रंग चढ़ा कर इन्होंने अपने अद्भुत काव्य-भवन का निर्माण कर डाला।

इस बृहद् काव्य रचना का नाम उन्होंने गुरु प्रताप सूरज रखा था, इसलिए संपूर्ण कथानक को सूर्य की गति के आधार पर 12 राशियों 6 ऋतुओं और 2 अयनों अर्थात् कुल बीस बड़े भागों में विभक्त किया है। पुनः सूर्य की किरणों के आधार पर अध्यायों को अंशुओं की संज्ञा प्रदान की गई है। इसलिए रचना के नामकरण तथा इसके रचना विधान में एक सुन्दर रूपक की कल्पना की गई है। सूर्य की भाँति गुरुओं का जीवन भी अंधकार को दूर करता है।

बारह राशियों में गुरु नानकोत्तर गुरुओं की जीवन गाथा है, छः ऋतुओं और अयनों में संत सिपाही श्री दशमेश जी का जीवन वृत दिया गया है। इस संपूर्ण रचना के कुल 1150 अध्याय हैं। जिनका विवरण निम्न अनुसार है :—

सूरज गुरु प्रताप ते, बरनी द्वादश रासि,
[illegible] के, बरनों बर गुण रास। (15)

दछणाइने अतराइणे, अयन बनैगे दोइ,
बरनत रितु जो खषट शुभ, तिम पर बरनन होइ। (16)
प्रथम कही कविता रुचिर, श्री नानक प्रकाश,
पूरबारध उतरारध इम, बर बरने गुण लास। (17)
अब कलगीधर की कथा, खषट रुतन पर होइ,
गुरु प्रताप सूरज भयो, या ते सभ गति जोइ। (18)

(गु० प्र० रु० 1, अंशु 1)

केवल परिमाण और आकार की दृष्टि से देखें तो पंजाब के इस हिन्दी कवि की इस अद्वितीय रचना की तुलना में विश्व भर के किसी अन्य कवि की रचना नहीं ठहर पाती। पंजाब के प्रत्येक गुरुद्वारे में सायंकाल इस ग्रंथ की विधिवत् एवं नियमित कथा की जाती है।

भाई साहिब ब्रजभाषा के विद्वान् कवि होने के साथ साथ, संस्कृत, पंजाबी तथा अन्य कई भाषाओं के महान् पण्डित थे। बाल्मीकि रामायण तथा आत्म पुराण जैसे संस्कृत ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद इसका ज्वलन्त उदाहरण कहे जा सकते हैं। यह तो गुरु प्रताप सूरज के प्रारम्भ में दिए गए, 'मंगलाचरण' से भी भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं पर कितना अधिकार प्राप्त था।

कवि की काव्य प्रतिभा को परखने के लिए हमारे पास उनके दो ग्रंथ हैं, गुरु नानक प्रकाश और गुरु प्रताप सूरज। इनमें ऐसा काव्य सौष्ठव है कि हर पंक्ति पर कवि की काव्य प्रतिभा को देखकर चकाचौंध हो जाना पड़ता है। भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से ही ये अनुपम काव्यत्व के स्वामी ठहरते हैं।

सोहलवीं-सत्तारहवीं शती में हिन्दी साहित्य में भक्ति-भाव की काव्य रचना का बाहुल्य था। इस धारा के शिरोमणि कवि गोस्वामी तुलसीदास (1532-1625) और सूरदास (1473-1563) थे। गोस्वामी तुलसीदास जी और सूरदास के काव्य मृदुलता और मधुरता के लिए अद्वितीय हैं और लोक कल्याण की भावना से भी इनका काव्य ओत-प्रोत हैं। कुछ ऐसी ही बात कवि चूडामणि भाई संतोख सिंह जी के समूचे काव्य-जगत के बारे भी कही जा सकती है। चाहे इनकी रचना भक्ति भावना प्रधान है फिर भी यह भक्ति काल के अन्तर्गत नहीं आती।

इस ग्रंथ के हिन्दी में प्रकाशित होने से आलोचक इसका तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे और अन्य हिन्दी कवियों के परिपेक्ष्य में पंजाब के इस मेधावी हिन्दी-सेवी का यथोचित स्थान निर्धारित कर पायेंगे। कवि ने इसमें पौराणिक शैली को अपनाया है। इस रचना को इसी दृष्टि से देखना उपयुक्त होगा। भाई संतोख सिंह का काव्य गुणों का गुलदस्ता है जिसकी महक के बारे किसी समकालीन कवि ने लिखा है :—

कविता अपार है कि गुन को पहार है,
कि माधुरी आगार है, कि भाव कवि कोश है।

भूखन है कवि के कि दूखन हा कवि के,
बिदूखन के बीच भी प्रसिद्ध हरि दोष है।

बानी ही उतंग है सु अंक हीऊ रंग है,
अनग अंग भंग के विसूत्रन निसेस है।

नानक अरथ जोऊ कीनो कली कल सोऊ,
नाम तो संतोख सिंह धीयवर कोश है।

प्रस्तुत ग्रंथ को आठ जिल्दों में प्रकाशित किया जा रहा है। इस जिल्द में गुरु अंगद देव जी, गुरु अमर दास जी, गुरु रामदास जी तथा गुरु अरजन देव जी को गुरु गद्दी मिलने तक का उल्लेख है। इस खण्ड का लिप्यन्तरण डा० जय भगवान गोयल ने तैयार किया है। संज्ञा कोश तथा टीका भी पाठकों की सुविधा के लिए इसके साथ ही दे दिए गए हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी जगत् पंजाब के इस महा कवि की महान् रचना का भव्य स्वागत करेगा।

रजनीश कुमार
निदेशक,
भाषा विभाग, पंजाब

पटियाला
अगस्त, 1973

विषय सूची

अंशु — पृष्ठ

पृष्ठ

अंशु

द्वितीय राशि

भूमिका

मध्ययुग भारत के इतिहास के राजनैतिक संघर्षों एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग था। दसवीं शताब्दी से भारतवर्ष पर यवनों के आक्रमण जोर पकड़ने लगे थे। १४वीं शती से १८वीं शती तक दास, खिलजी, तुगलक, सय्यद लोदी, पठान एवं मुगल आदि वंश भारत की राजलक्ष्मी के स्वामी बने रहे। गजनवी, गौरी, चंगेज खां, तैमूर और नादिरशाह जैसे बर्बर एवं क्रूर आक्रमणकारियों के आंतक और अत्याचारों से भारतीय जनता अत्यधिक पीड़ित थी। अधिकतर भवन-शासक असहिष्णु, विलासी एवं आततायी थे। हिन्दुओं को ये लोग घृणा और विद्वेष की दृष्टि से देखते थे और उन पर मनमाने अत्याचार करते थे।

जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया, तो उसके सैनिकों ने निरीह हिन्दू जनता पर जो अत्याचार किये उनका गुरु नानक ने बड़ा ही लोमहर्षक वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि "जिन स्त्रियों के सिर में सुन्दर पट्टियाँ शोभित होती थीं, जिनकी माँग में सिन्दूर भरा रहता था, अत्याचारियों ने उनके केश काट डाले और उनको धूलि में इस तरह घसीटा कि उनके गले तक धूल भर गई। जो महलों में निवास करती थीं, अब उन्हें बाहर बैठने की भी जगह नहीं मिलती। विवाहित स्त्रियाँ जो अपने पतियों के साथ सुशोभित थीं, जो पालकियों में बैठकर आई थीं,.........जिन पर लाखों रुपयों की वर्षा होती थी.........उनके गले की मोतियों की माला टूट गई हैं और अत्याचारियों ने उनके स्थान पर रस्सियाँ डाल दी हैं। धन और यौवन ने उनको अपने रंग में रंग रखा था, अब ये दोनों उनके वैरी हो गये हैं। सिपाहियों को आज्ञा मिली और वे उनकी इज्जत लूट कर चलते बने[1]।

---

1. जिन सिरि सोहनि पट्टीआं मांगी पाइ संधूर।
से सिर काती मुनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि।
महला अंदरि होंदीआ हुणि बहणि न मिलह हदूरि॥ १॥
जदहु सीआ बीआहीआं लाडे सोहनि पासि।
हीडोली चढ़ि आईआ दंद खंड कीते रासि।
उपरहु पाणी वारीऐ झले झमकनि पासि॥ २॥
इकु लखु लहन्हि बहिठीआ लखु लहन्हि खड़ीआ।
गरी छुहारे खांदीआ माणन्हि सेजड़ीआं।
तिन्ह गलि सिलका पाइआ तुटन्हि मोतसरीआ॥ ३॥
धनु जोबनु दुइ बैरी होए जिन्हीं रखे रंगु लाइ।
दूता नो फरमाइआ लै चलै पति गवाइ। (राग आसा)

अपने युग की राजनैतिक अवस्था का चित्रण गुरु नानक ने इस प्रकार किया है—

राजे सींह मुकद्दम कुत्ते ।
जाइ जगाइन बैठे सुत्ते ।
चाकर नहंदा पाइन्हि घाउ ।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु ।
जिथ जीआं होसी सार ।
नकी वडो लाइत बार । (राग मलार)

अर्थात् राजे सिंह के समान हिंसक बन गये हैं । उनके सामन्त कुत्तों के स्वभाव वाले लोभी और निरीह जनता को अकारण पीडित करते हैं । उनके सेवक अपने नाखूनों से लोगों को जख्मी करते हैं और उनका रक्त कुत्तों की भाँति चाट लेते हैं ।

इस करुणापूर्ण स्थिति से द्रवित होकर ईश्वर के प्रति अपना रोष प्रकट करते हुए गुरु नानक ने कहा था, "हे प्रभु ! बाबर ने खुरासान पर आक्रमण किया, तुमने उसकी रक्षा कर ली और हिन्दुस्तान को उसके आक्रमण से आतंकित कर दिया ।...तुमने मुगलों को यमदूत बनाकर इस देश पर आक्रमण करवा दिया । चारों ओर इतनी मार पड़ी कि लोग त्राहि-त्राहि कर उठे ।......यदि एक शक्तिशाली दूसरे शक्तिशाली को मारे तो मन में रोष उत्पन्न नहीं होता, किन्तु यदि शक्तिशाली सिंह निरपराध पशुओं के समूह पर आक्रमण करे, तो उनके स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ करना चाहिए ।"[1] ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार जब बाबर ऐमनाबाद पहुँचा तो वहाँ उसने हिन्दू व्यापारियों एवं ज़मींदारों के कत्लेआम का हुक्म दिया । सभी युवा स्त्रियों को दासी बना लिया गया । दूसरी स्त्रियों को बलात् सैनिकों के लिए अन्न पीसना पड़ा और भोजन बनाना पड़ा ।

बाबर के पश्चात् हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां एवं औरंगज़ेब शासक बने । धार्मिक दृष्टि से अकबर कुछ उदार एवं नीतिवान् था, अन्यथा ये सभी मुगल शासक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी थे । इस दृष्टि से औरंगज़ेब सब से अधिक कट्टर एवं धर्मान्ध शासक था ।

---

(1) खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तानु डराइआ ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगल चढाइआ ।
ऐती मार पई कुरलाणे तैं की दरदु न आइआ ।......
जे सकता सकते कउ मारे तां मनि रोस न होई । १ ।
सकता सीहुं मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई । (राग आसा)

पराजित-गुलाम हिन्दू जनता को अपमान और दीनता का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था। राज्य चाहे किसी भी वंश का हो, उन्हें तो गुलाम ही रहना था। तभी तो तुलसीदास की मंथरा को यह कहने पर विवश होना पड़ा था कि—

"कोउ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरी छाडि अब होव कि रानी"॥ ३॥ (अयोध्या कांड)

यह मंथरा ही नहीं, सामान्य भारतीय समाज की विक्षुब्ध प्रतिक्रिया थी।

अकबर के समय से मुगल-शक्ति बराबर सुदृढ़ होती जा रही थी और एक के बाद एक हिन्दू राजा उनके आधिपत्य को स्वीकार करते जा रहे थे; स्वाभिमानी एवं वीर राजपूतों ने भी मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। राणा सांगा, राणा प्रताप, शिवाजी तथा गुरु गोविन्दसिंह जैसे कुछ ही वीर पुरुष ऐसे थे, जो उनके समक्ष नतमस्तक नहीं हुए थे।

जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारत आते थे, वे प्राय: पंजाब से होकर ही आगे बढ़ते थे। इसलिए यहाँ के लोगों को ही इनके अधिक प्रहार सहने पड़ते थे।

इस्लामी सत्ता का चर्मोत्कर्ष मुगलों के शासनकाल में हुआ। बाबर तथा गुरु नानक समकालीन थे। इधर बाबर के उत्तराधिकारियों हुमायूं, अकबर, जहांगीर एवं शाहजहां आदि के शासनकाल में मुगल शासन शक्तिशाली एवं वैभवपूर्ण होता जा रहा था; उधर गुरु नानक द्वारा प्रवर्त्तित सिक्ख-मत भी निरन्तर बल पकड़ता जा रहा था। गुरु नानक ने बाबर के आतंक और अत्याचारों के प्रति जो रोष एवं क्षोभ प्रकट किया था, वह गुरु हरिगोविन्द तथा गुरु गोविन्दसिंह में विरोध एवं विद्रोह के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

मुगल शासन के अन्तिम दिनों में, सारे देश की राजनैतिक स्थिति अस्थिर एवं अशान्त थी। औरंगज़ेब की धर्मान्धता एवं निरंकुशता के फलस्वरूप उसका विरोध भी बढ़ता जा रहा था। दक्षिण में शिवाजी तथा पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह उसके सब से प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। राजस्थान में भी अशान्ति थी। परिणामस्वरूप मुगल सत्ता का ह्रास हो रहा था और उसके शासन की जड़ें हिलने लगी थीं। लेकिन जब तक औरंगज़ेब जीवित रहा, हिन्दुओं पर अत्याचार होते ही रहे। पंजाब में सिक्खों को विशेष रूप से उसका कोप भाजन बनना पड़ा था।

गुरु तेगबहादुर की जिस तरह दिल्ली में अमानुषिक हत्या की गई थी, (जहाँ अब गुरुद्वारा शीशगंज है), कुछ तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप, दूसरे हिन्दुओं पर जो अन्याय और अत्याचार हो रहे थे, उससे क्षुब्ध होकर, हिन्दू धर्म की रक्षा को लक्ष्य बनाकर गुरु गोविन्दसिंह को 'असिधारी खालसा पंथ' की रचना करनी पड़ी और वे आजीवन मुगलों एवं पठानों आदि से संघर्ष करते रहे। 'खालसा पंथ' की रचना पंजाब

के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। गुरु गोविन्दसिंह ने पंजाब के जन-जीवन को एक नई दिशा दी। सामान्य धर्म-भीरु लोगों में अन्याय और अधर्म के विरुद्ध लड़ने का, तथा अपनी स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान की रक्षा करने का अदम्य साहस एवं उत्साह उत्पन्न किया। सेवा और त्याग का जीवन व्यतीत करने वाले 'सिक्खों को अद्भुत वीर, निडर एवं साहसी 'सिंह' बना दिया।

गुरु गोविन्दसिंह के परलोक गमन के पश्चात् भी सिक्खों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष रत रहना पड़ा। उन्हें बड़े कष्ट सहने पड़े। कठोर जीवन व्यतीत करना पड़ा, किन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने उनमें जो जीवन शक्ति उत्पन्न कर दी थी; अन्याय और अत्याचार से लड़ने का जो उत्साह भर दिया था, उसके बल पर वे निरन्तर अपने पथ पर आगे बढ़ते रहे।

सन् १७०० से १७७० ई० तक क्रमशः बहादुरशाह, फरखसियर, खान बहादुर आदि ने उनपर अमानुषिक अत्याचार किए। उनके कत्लेआम का हुकम दिया गया, उनके केशों और सिर के लिए भारी पुरस्कार रखे गए। मुसलमानों की सेना सदा उनका पीछा करती रहती थी किन्तु इन अत्याचारों से उनका मनोबल और भी अधिक दृढ़ हुआ। वे और अधिक मज़बूती से उनके मुकाबले में जुटे रहे। दमन से भला कब कौन दबा है !

इस युग की राजनैतिक दशा तथा सिक्खों के देश-प्रेम, स्वातन्त्र्य-भावना, सांस्कृतिक चेतना, वीरता एवं साहस आदि की 'दशमग्रंथ', 'गुरु शोभा', 'गुरु बिलास', 'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' आदि रचनाओं में भव्य अभिव्यंजना हुई है।

सांस्कृतिक-चेतना

भारतीय संस्कृति एक विशाल वट-वृक्ष के समान है, जिस में समय-समय पर अनेक धर्मों, मतों, पंथों, सम्प्रदायों आदि का शाखाओं-प्रशाखाओं आदि के रूप में प्रस्फुटन हुग्रा। अनेक चिंतनधाराओं एवं साधना-पद्धतियों का विकास हुआ। उनमें पारस्परिक संघर्ष भी हुआ और उनके समन्वय का भी प्रयत्न किया जाता रहा। बौद्धों एव वेदान्तियों का अथवा शैवों एवं वैष्णवों का काफी समय तक संघर्ष चलता रहा। वैष्णवों में ही अनेक ऐसे मत-मतान्तरों का उदय हुआ, जिनका पारस्परिक पर्याप्त मतभेद रहा। किन्तु भारतीय धर्म एवं संस्कृति में एक ऐसी जीवन शक्ति थी कि अनेक बाह्य प्रहारों एवं आन्तरिक विघटनों के बावजूद वह निरन्तर वर्द्धमान होती रही। मध्य युग में यवन आक्रमणकारियों एवं शासकों के साथ ही इस्लाम धर्म एवं संस्कृति का भी एक प्रबल प्रवाह उमड़ पड़ा था, किन्तु भारतीय संस्कृति ने अपनी जीवन्तता का परिचय दिया। इस समय एक सशक्त सांस्कृतिक आन्दोलन का अभ्युदय हुआ, जिस से उसने अपनी स्वायत्ता बनाये रखी। युग-परिवेश के अनुरूप प्राचीन धर्म-भावना को नई अर्थवत्ता प्रदान कर उसे समर्थ, सक्रिय, सजीव एवं सहज बनाया गया। धर्म के क्षेत्र में मिथ्याचारों से जो विकृतियाँ उत्पन्न हो रही थीं, उनका

निराकरण कर धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करने का भी सफल प्रयास किया गया। उदाहरण के लिये बौद्धमत के महायान, हीनयान, वज्रयान, अथवा मंत्रयान सम्प्रदायों द्वारा, जिन कुत्सित साधनाओं का प्रसार हो रहा था, ज्ञान मार्गियों में जो मिथ्याभिमान था या कर्मकाण्ड ; साधकों में जो बाह्याचार बढ़ रहे थे, संतों ने उनका निषेध कर ऐसी सहज साधना का प्रवर्त्तन किया, जिसमें हरि-स्मरण के साथ सदाचार, संयम, संतोष, अहंकार-त्याग आदि का विशेष महत्त्व था। गोस्वामी तुलसी दास, कबीर एवं नानक आदि भक्तों एवं संतों ने अपने-अपने स्तर पर भारतीय संस्कृति का उन्नयन किया। इन साधकों ने अपनी अमृत-वाणी से निराश एवं हताश हिन्दू जनता में एक नये उत्साह, आशा एवं उल्लास का संचार किया।

पंजाब एवं हरियाणा की सांस्कृतिक अवस्था भी इस समय लगभग कुछ ऐसी ही थी। प्राचीन काल में यहाँ वेदों, स्मृतियों एवं श्रुतियों का काफी प्रचार रहा। बौद्धमत तथा उसकी परवर्ती शाखाओं का भी प्रचलन रहा। सिद्धों एवं नाथों का यहां काफी प्रभाव था। शिव, विष्णु, देवी तथा अन्य देवताओं की उपासना भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में होती थी। हिन्दुओं में अनेक प्रकार की साधना-पद्धतियाँ प्रचलित थीं। बाह्याचारों, मिथ्याडम्बरों एवं अन्धविश्वासों की भी कमी नहीं थी। उधर इस्लाम धर्म एवं सूफी-मत का भी काफी प्रभाव पड़ रहा था। सामान्य जनता धर्म के वास्तविक रूप को न पहचान कर, व्यर्थ के चमत्कारों अथवा कर्मकाण्डों आदि में उलझी हुई थी। 'गुरु-ग्रंथ साहब' में इस युग में प्रचलित प्राय: सभी धर्मों-मतों के स्वरूप का निरूपण हुआ है। इस प्रकार की अनिश्चित एवं भ्रमपूर्ण धार्मिक-अवस्था में गुरु नानक ने एक सहज भक्ति-मार्ग का प्रवर्त्तन किया, जिसका 'सिक्खमत' के रूप में विकास हुआ। गुरु नानक ने अपने युग के सभी धर्मों एवं मतों के बाह्याचारों, पाखंडों एवं मिथ्या-डम्बरों का निषेध करके उन्हें उनके धर्म के वास्तविक रूप को समझाया और अहंकार (हउमै) को त्याग कर हरि-स्मरण करने का उपदेश दिया। साथ ही सत्य, संयम, संतोष, सेवा, आदि का महत्त्व बताया।

उन्होंने धर्म को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू किया। उसे मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार एवं आचरण के साथ सम्बद्ध किया। गुरु नानक ने जिस साधना मार्ग का प्रवर्तन किया, परवर्ती सिक्ख गुरुओं ने उसे और दृढ़ किया और 'सिक्खमत' एक विशिष्ट व्यक्तित्व के साथ स्थापित हो गया। गुरु गोविंदसिंह ने भक्ति-भावना के साथ वीर-भावना का सामञ्जस्य कर उसे एक नई दिशा दी। सिक्ख गुरुओं ने मानवीय समानता एवं एकता की भावना पर आधारित सामाजिक चेतना का समर्थन किया और जाति-पांति, वर्ण एवं वर्ग भेद का घोर-विरोध किया।

पंजाब में उदासी, सेवापंथी, सहजधारी, निरंकारी, निर्मले आदि और भी अनेक

सम्प्रदायों का प्रचलन हुआ, किन्तु यहाँ सर्वाधिक प्रभाव गुरु गोविंदसिंह द्वारा प्रवर्त्तित 'खालसा पंथ' का ही रहा। सिक्खमत ने यहाँ के जन-जीवन में जो आलोक, स्फूर्ति एवं उत्साह उत्पन्न किया था, उसने इस युग की सांस्कृतिक चेतना को एक राष्ट्रीय-आन्दोलन का रूप दे दिया। गुरु गोविंदसिंह ने आनन्दपुर में इस राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक, सैनिक सभी स्तरों पर किया। उन्होंने जिस चेतना को जागृत किया था, वह उत्तरोत्तर तीव्र होती गई। गुरु-भक्त सिक्ख साहित्यकारों ने भी इस सांस्कृतिक जागरण के स्वर को बड़े उत्साह तथा निष्ठा के साथ मुखरित किया। 'दशम् ग्रंथ', 'गुरु शोभा', 'गुरु विलास', 'महिमा प्रकाश', 'गुरु नानक विजय', 'गुरु नानक प्रकाश', एवं **'गुरु प्रताप सूरज'**, में इस चेतना को ज्वलंत रूप में देखा जा सकता है।

साहित्य धारा

इस युग में ललित कलाओं का अधिक विकास मुगल साम्राज्य के सरंक्षण में हुआ। जहांगीर एवं शाहजहां के समय में मुगल साम्राज्य वैभव एवं ऐश्वर्य की दृष्टि से अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था। बर्नियर, टेवर्निचर, मेनूची, जैसे विदेशी यात्रियों ने भी उनके चित्रमय दरबार के वैभव एवं शोभा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। ये दोनों बड़े ही सौन्दर्य एवं कला-प्रेमी शासक थे और उन्होंने ललित कलाओं के विकास में पूरा सहयोग दिया। ताजमहल, रंगमहल, दीवानेखास, जामा मसजिद जैसी कला-कृतियाँ इसी युग की देन हैं।

इस युग में स्थापत्य, चित्र, संगीत, मूर्तिकला तथा काव्य रचना सभी कलाओं में प्रशंसनीय विकास हुआ, किन्तु इन सभी कलाओं में कलात्मक सौन्दर्य, चमत्कार एवं अलंकरण का प्राचुर्य है, जोकि वैभव एवं विलासपूर्ण मुगल-संस्कृति की देन भी कहा जा सकता है। हिन्दू राजाओं के आश्रय में पल्लवित होने वाली रचनाओं में भी श्रृंगारिकता एवं अलंकरण की ही प्रधानता है।

पंजाब में गुरु नानक ने काव्य-रचना को एक नया आयाम प्रदान किया। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति को सामाजिकता की गंध से अनुरंजित कर उसको सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्त किया। उन्होंने जिस नवीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना को जागृत किया था और जिसे उनके उत्तराधिकारी गुरुओं ने और भी अधिक तीव्र किया था, यहाँ की सभी ललित कलायें और विशेष रूप से काव्य-रचनायें उसी भावानुभूति से अनुप्राणित हैं। इन रचनाओं में भक्ति एवं वीरता का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है और उनकी शैली भी स्वाभाविक एवं सहज है। रीतिकालीन अलंकरण-प्रवृत्ति का प्रभाव उसमें कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होता है।

भाई संतोखसिंह इन सभी दृष्टियों से इस युग के एक प्रतिनिधि कवि हैं और 'गुरु प्रताप सूरज' इस युग की सर्व श्रेष्ठ रचना है।

भाई संतोख सिंह का जीवन-वृत्त

भाई संतोख सिंह के पिता का नाम देवासिंह[1] था और माता का रजादी अथवा राजदेवी। वे जाति के छिप्पे थे और उनका गोत्र था करीर। उनका परिवार नूरदी जिला अमृतसर (तरनतारन के निकट) का रहने वाला था। भाई वीरसिंह के अनुसार इनका जन्म भी नूरदी में ही हुआ था। अनुमानतः इनका जन्म संवत् १८४४ वि० की ७ आश्विन को हुआ था।

भाई संतोखसिंह के पिता विद्वान् व्यक्ति थे और गुरु-वाणी में उनकी दृढ आस्था थी। निर्मले साधुओं से उनका काफी सम्पर्क था। भाई संतोख सिंह की शिक्षा का प्रबन्ध उन्होंने अमृतसर निवासी भाई संतसिंह के पास किया, जो बड़े ही विद्वान, सदाचारी एवं गुरु-भक्त (सिक्ख गुरुओं के भक्त) थे। यहाँ उन्होंने, सिक्ख गुरुओं के इतिहास, उनकी वाणी, संस्कृत, पंजाबी, हिन्दी आदि भाषाओं, काव्य, काव्य शास्त्र, वेदान्त, पुराण, आदि का १५ वर्षों तक गहन अध्ययन किया। संवत् १८७० में वे बूडिया जिला अम्बाला (जगाधरी के निकट, यमुना के किनारे) में आ बसे[2] और गुरु-कथा आदि से अपना निर्वाह करते थे। इस समय वे अच्छी काव्य-रचना करने लगे थे। संवत् १८७० से १८८० तक वे वहीं रहे और यहीं इन्होंने 'नाम कोश' तथा 'गुरु नानक प्रकाश' की रचना की। संवत् १८८० से १८८४ तक उन्होंने करतारपुर, ख्याला, बारने, हडयाया, बणी, बदरपुर, मुकंदपुर, रानी का रामपुर, चिहका, एवं पटियाला आदि स्थानों की यात्रा की, जहाँ उन्होंने गुरुओं के चरित्र से सम्बन्धित सामग्री एकत्रित की। १८८४ वि० में उनकी प्रसिद्धि सुनकर कैथल नरेश भाई उदय सिंह ने उन्हें अपने पास बुला लिया। यहीं कार्तिक बदी एकादशी संवत् १९०० में इनका देहावसान हुआ। यहीं इन्होंने भाई उदय सिंह के आश्रम में 'वाल्मीकि रामायण भाषा, 'गरब गंजनी तथा 'गुर प्रताप सूरज' की रचना की। बूडिया में रहते समय ही जगाधरी की एक रूहीले गोत्र की लड़की राम कौर से उनका विवाह हुआ था। अजै सिंह, विजै सिंह, बलदेव सिंह, अनुरुद्ध सिंह, मकसूद सिंह नाम के पाँच पुत्र थे और खेम कौर, मेमन कौर और मान कौर तीन पुत्रियाँ थीं। इनके वंशज अभी भी पटियाला तथा कैथल आदि स्थानों पर रहते हैं।

भाई संतोख सिंह एक विद्वान कवि थे। वे अध्यवसायी परिश्रमी, विनम्र, उदार, न्यायप्रिय, समदर्शी, सहनशील, विवेकशील, त्यागी एवं परोपकारी व्यक्ति थे। दर्शन,

---

1. देवासिंह पिता मम नामू। जिनके पद अरविंद प्रणामू।

(गु० प्र० सू० रि० १। १। ३४)

2. तिह तीर बूरीआ नगर, इक कवि निकेत लखीए तहाँ।

(ना० प्र० उत्तरार्ध ५७। १०३)

ज्योतिष, राजनीति, शस्त्र विद्या, युद्ध-विद्या, घुड़-विद्या, वैद्यक, संगीत, छन्द शास्त्र आदि विषयों का उनको विशद ज्ञान था और इन विषयों पर अपनी लेखनी का चमत्कार उन्होंने दिखाया है। महाभारत, रामायण, विविध पुराणों, आदि का भी उन्होंने परायण किया था, जिनसे अनेक उद्धरण उनकी रचनाओं में आये हैं। वेदान्त का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था, तभी वे मति, कर्म, योग, ज्ञान, आदि का विस्तृत विवेचन कर सके। 'गुरु ग्रंथ साहब', 'दशम ग्रंथ', गुरु गोबिन्द सिंह के अनेक दरबारी कवियों की रचनाओं, 'महिमा प्रकाश', 'गुर बिलास,' 'जन्म साखियों' तथा सूर, तुलसीदास, केशव, बिहारी आदि अनेक कवियों की रचनाओं का भी उन्होंने अध्ययन किया था, जिनका प्रभाव उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र देखा जा सकता है। सिख इतिहास के साथ साथ मुगल इतिहास का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान था। अपने युग की सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रति वे अत्यन्त जागरूक थे। वस्तुत: भाई संतोख सिंह एक युग द्रष्टा एवं युग प्रवर्तक साहित्यकार थे'।[1]

रचनाएँ

भाई सन्तोखसिंह की निम्न रचनाएँ उपलब्ध हैं :—

१. नामकोश
२. गुरु नानक प्रकाश
३. गरब गंजनी
४. वाल्मीकि रामायण-भाषा
५. गुरु प्रताप सूरज

१. 'नामकोश' संस्कृत के 'अमरकोश' का अनुवाद है। आरम्भ में आलंकारिक शैली में रचित सिक्ख-गुरुओं की वन्दना सम्बन्धी कुछ छन्द भी हैं। यह इनकी प्रथम रचना है। इसकी रचना बूड़िया में संवत् १८७८ में हुई।

२. 'गुरु नानक प्रकाश' इनकी प्रथम मौलिक काव्य-रचना है। इसकी रचना भी बूडिया में १८८० वि० में हुई। यह ९७०० छन्दों का एक महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध-काव्य है। इसके पूर्वार्ध में ७३ तथा उत्तरार्ध में ५३ अध्याय हैं। गुरु नानक के जीवन पर आधारित यह कथा प्रधान काव्य है, जो धर्म-भावना से युक्त है। इस रचना को लिखने में कवि के चार उद्देश्य थे। (१) गुरु नानक के चरित्र को निष्ठापूर्वक दिव्य रूप में प्रस्तुत करना, (२) गुरु नानक की विचारधारा को, विशेष रूप से उनके धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण का. विशदता से निरूपण और उनके युग परिवेश के सन्दर्भ में

1. उनके जीवन वृत्त पर विस्तार के लिये 'देखिये लेखक का शोध-प्रबन्ध—'गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन' (प्रकाशक-कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय) एवं 'गुरु नानक प्रकाश' की भूमिका (प्रकाशक, भाषा विभाग, पंजाब)।

उनकी महत्ता की स्थापना करना। (३) कवि के युग के सन्दर्भ में गुरु नानक की विचारधारा एवं उसके अपने निजी समन्वयवादी दृष्टिकोण की अभिव्यञ्जना, (४) और अन्तत: मानवीय मनोवृत्तियों एवं उनके वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का उन्नयन एवं उदात्तीकरण। इसका भाव-बोध, रचना-पद्धति एवं शैली माहकाव्य की गरिमा लिए हुए है।[1]

३. **गरब गंजनी**—यह 'जपुजी' की विद्वत्तापूर्ण टीका है, जिसकी रचना भाई उदयसिंह के अनुरोध पर की गई थी। इसमें गुरु नानक की वाणी की व्याख्या वेदान्त के परिप्रेक्ष्य में की गई है। साथ ही 'जपुजी' के अलंकारों का भी विवेचन किया गया है और उन अलंकारों के लक्षण भी दिए गए हैं जिससे यह एक 'रीति-ग्रंथ' की कोटि में भी आ जाती है। मेरी धारणा है कि यह हिन्दी की प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक है।[2]

४. **वाल्मीकि रामायण-भाषा**—भाई उदयसिंह के अनुरोध पर उन्होंने १८८१ वि० में 'वाल्मीकि रामायण' का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद किया। पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथा का स्वरूप, भावों की व्यञ्जना आदि दृष्टि से यह 'वाल्मीकि रामायण' के ही अनुरूप है। अनुवाद बड़ा ही सरस तथा प्रवाहपूर्ण है।[3]

५. **गुरु प्रताप सूरज**—'गुरु प्रताप सूरज' भाई सन्तोखसिंह की अन्तिम एवं सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस ग्रंथ का आरम्भ कैथल में संवत् १८९३ में हुआ और वहीं संवत् १९०० में यह पूर्ण हुआ। इस प्रकार यह उनके ८, ९ वर्षों की सतत् साधना का फल है।

रूप-गठन

यह एक बृहद्-आकार की रचना है। इसमें २० अध्याय ११५१ अंशु तथा ५१८२९ छन्द हैं। सम्पूर्ण कथानक सूर्य की गति के आधार पर १२ राशियों, ६ ऋतुओं एवं २ अयनों में विभक्त है। वे पुन: सूर्य की किरणों के आधार पर 'अंशुओं' में विभाजित किए गए हैं। रचना के नामकरण तथा उसके रचना-विधान में एक सुन्दर रूपक की कल्पना की गई है। कवि के अनुसार सिक्ख गुरुओं के प्रताप एवं ज्ञान रूपी सूर्य की किरणें साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों, धार्मिक-संकीर्णता, भ्रम, पाखंड, अज्ञान,

---

1. 'गुरु नानक प्रकाश' के विशद विवेचन के लिए देखिए लेखक की भूमिका—'गुरु नानक प्रकाश'। —(प्रकाशक, भाषा विभाग, पंजाब)

2. 'गरब गंजनी' के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य।'

3. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य।'

असत्य, अन्याय एवं अत्याचार आदि के अन्धकार को विदीर्ण करने वाली हैं, उनसे सज्जन रूपी कमल-वृन्द विकसित हो उठते हैं और जिज्ञासी भौंरे मंडराते हैं। गुरुओं को अविद्या. भ्रम आदि के अन्धकार को विनष्ट करने वाले सूर्य के समान कहने की प्रेरणा उन्हें भाई गुरुदास से मिली प्रतीत होती है। भाई गुरुदास ने गुरु-महिमा का वर्णन इस प्रकार किया था—

सूरज प्रकाश, नास उडगन अगणित ज्यों,
आन देव सेव गुरु देव के ध्यान कै।
हाट बाट घाट ठाट घटै घटै निसि दिन,
तैसे लोक वेद भेद सतगुरु ज्ञान कै।
चोर जार औ जुआर मोह द्रोह अन्धकार,
प्रातः समय शोभा नाम दान इसनान कै।
आन सर मेडक शिवाल घोघा, मानसर,
पूर्ण ब्रह्म गुरु सर्व निधान कै॥ ४६॥

(कवित्त सवैये)

अथवा

"सतगुर नानक प्रगटिया मिटि धुंध जग चानन होइया।"

भाई सन्तोखसिंह ने 'गुरु प्रताप-सूरज' के रूपक की योजना इस प्रकार की है—

इहठां द्वादश पूरनि रासि। जिम रवि बरतहि बारहि मास॥ २२॥
तिम सतिगुर को महिद प्रकाश। बरन्यो बर विच द्वादश राशि।
एक रासि जिम सूरज चले। बहुर दूसरी गमनति मिले॥ २३॥
तिम गुरता रथ पर असवार। उदे जगत, विनस्यो अंधकार।
गिरा संमूह रिशम जिन केरी। सिक्खी आतप दिपहि वडेरी॥ २४॥
ब्रह्म ग्यान जिन तेज बिलंद। भगति सु गति के बसी मुकंद।
हिन्दू तुरकनि पंथ अनेक। कहैं कहां लगि उडनि बिबेक॥ २५॥
गन को चमतकार छपि गयो। गुर प्रताप सभि ऊपर भयो।
प्रेमी संत महंत अनंत। इह पंकज जित कित विकसंति॥ २६॥
तोम तेज तुरकेश तमीपति। फीको पर्यो प्रकाश भयो हति।
शरहा कुचलनी निशा बिनाशी। हिन्दू कोक पाई सुखरासी॥ २७॥
सहित मुलाने नौरंग चोर। छीनति धरम दरब करि जोर।
सो लज्जति दबक्यो दुख भर्यो। दिल्ली पुरि ते काढनि कर्यो॥ २८॥
पीर चकोर भए अनमने। कुमुद तरक मुरझावति घने।
बांग पुकारू जंबुक मोटे। दुरनि लगे जित कित चित खोटे॥ २९॥

काज़ी पेचक भै मति अंध। तूशनि हुइ बैठ जनु बंधे।
तमचर जाति अनिक जे अहैं। सो उमराव आदि दुख लहैं॥ ३०॥
इम सूरज श्री सतिगुर उदे। तम अग्यान समीप न कदे।
करामाति जुति अनिक अनंदे। नाना बरन खिरे अरबिंदे॥ ३१॥
गन जग्यासी भौंर लुभाए। महिद प्रेम मकरंदहि पाए।
सिक्खी बहु सुगंधता भई। सगरे जगत पसर करि गई॥ ३२॥
सतिनाम सिमरन शुभ सार। जहिं कहिं भयो प्रकाश उदार।
जिसको पाइ सुखी जग भयो। सभि महिं सुजसु गुरनि को थियो॥ ३३॥

(गु० प्र० सू० रा० १२/६८)

यहाँ कवि ने तुरकेश, नौरंग (औरंगज़ेब) उमरावों, मुलानों एवं शरहा आदि के श्रीहत होने तथा हिन्दुओं के सुख प्राह करने का विशेष रूप से उल्लेख किया है। जो उसकी युग की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितिथों के प्रति जागरूकता तथा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को प्रकट करता है।

संस्कृत में महाकाव्यों को 'सर्गों' में तथा प्राकृत एवं अपभ्रंश में 'आश्वास', 'कडवक', परिच्छेद आदि में विभक्त करने की परम्परा थी। हिन्दी में 'समय' (पृथ्वीराज रासो), कांड (रामचरित मानस) तथा 'खण्ड' (पद्मावत) आदि का भी प्रयोग किया गया है। भाई सन्तोखसिंह ने इनके स्थान पर 'राशि', 'ऋतु' एवं 'ऐन' का प्रयोग किया है। जिस प्रकार संस्कृत काव्यों में 'सन्धियों' का प्रयोग होता था, उसी प्रकार इन्होंने 'अंशु' का प्रयोग किया है। तथापि यहाँ इतना द्रष्टव्य है कि इनके नामकरण एवं अध्यायों के विभाजन में जिस प्रकार के सुन्दर रूपक की योजना की गई है, वह संस्कृत के सर्ग-बद्ध काव्यों अथवा अपभ्रंश के कडवक-बद्ध काव्यों में दिखाई नहीं पड़ती। संस्कृत में कुछ ऐसे कथा-काव्य अवश्य हैं, जिनके नामकरण के साथ उनके अध्यायों के नाम में कुछ सीमा तक रूपक का निर्वाह हुआ है। 'कथा सरित सागर' (सोमदेव) में अनेक कथाएँ हैं, जिन्हें 'लम्बकों' में तथा फिर उन्हें 'तरंगों में विभक्त किया गया है। इसमें 'तरंगों' की संगति को 'सरिता' अथवा 'सागर' के साथ ठीक बैठ जाती है, किन्तु 'लम्बक' का इसमें कोई औचित्य नहीं है। 'राजतरंगिनी' (कल्हण) में अध्यायों को 'तरंगों' में ही विभाजित किया गया है। यहाँ भी 'तरंगिनी' और 'तरंग' में संगति है। हर्ष चरित' (बाण भट्ट) में अध्यायों को 'उच्छ्वास' कहा गया है, जो 'चरित' (जीवन) के अंग ही हैं। जहाँ तक कथा के रूपक का सम्बन्ध है, स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' में रामकथा का 'सरिता' के (१/२) तथा गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में 'सरोवर' (बाल कांड ३७) के रूप में वर्णन किया है। इससे स्पष्ट है कि 'गुरु प्रताप सूरज' के नामकरण, अध्यायों आदि के विभाजन, तथा कथानक की रूपक-योजना करते समय उपर्युक्त सभी ग्रंथ भाई सन्तोखसिंह के सामने रहे होंगे,

किन्तु उनकी रूपक योजना उन सभी से अधिक सर्वांगीण, रमणीय, तथा सार्थक है। युग-परिवेश के साथ उसका सम्बन्ध उसकी एक अन्यतम विशिष्टता है। कवि ने गुरु-कथा को गंगा जे समान पवित्र बताते हुए भी एक सुन्दर रूपक की योजना की है।[1]

'गुरु प्रताप सूरज' धार्मिक भावना से अनुप्राणित एक कथा प्रधान चरितकाव्य है। अपभ्रंश में जैन कवियों ने अनेक ऐसे काव्यों की रचना की थी, जिनमें किसी महापुरुष के चरित्र को अंकित किया था और उसके माध्यम से जैनमत के धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण भी किया गया था। इनके अतिरिक्त 'रासो', 'रासक', 'रूपक', 'प्रकाश' एवं 'विलास' आदि नामों से और भी अनेक 'चरित काव्य' लिखे गये, हिन्दी में 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'रामचरितमानस' ने इसी परम्परा को आगे बढ़ाया है। इनमें से कुछ रचनायें ऐसी हैं, जिनका उद्देश्य किसी विशिष्ट धार्मिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करना नहीं है, वरन् केवल किसी राजा या सामन्त के चरित्र का निरूपण करना उनका लक्ष्य होता है। दूसरे प्रकार की रचनाओं में लक्ष्य दोनों हैं, चरित्र-गान भी और धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण भी। 'गुरु प्रताप सूरज' इसी तरह की रचना है। इसमें गुरु नानक तथा अन्य नौ सिक्ख गुरुओं का जीवन चरित्र अत्यन्त विस्तार से वर्णित है। अन्त में बंदा बैरागी के जीवन-चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। (गुरु नानक का चरित्र यहाँ संक्षेप में है, 'गुरु नानक प्रकाश' में विस्तार से)। साथ ही गुरुओं के धार्मिक एवं सामाजिक विचारों का प्रतिपादन भी इसमें विशदता से किया गया है।

कथा-प्रधान काव्य धर्म प्रचार का अत्यन्त सशक्त, सरल एवं सरस साधन है। जातक कथाओं एवं पौराणिक आख्यानों के माध्यम से धर्म प्रचार को जो सफलता प्राप्त हुई, वह इसका ज्वलंत प्रमाण है। जैन कवियों ने भी अपने धार्मिक एवं नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन का मुख्य साधन कथा-काव्यों को ही बनाया था। रामभक्ति को प्रचार का भी अधिक श्रेय 'रामचरितमानस' को ही है। पंजाब के कवियों ने भी सिक्खमत के प्रचार और प्रसार के लिये कथा-काव्यों का आश्रय लिया। 'गुरु शोभा' (सेनापति), 'महिमा प्रकाश' (सरूपदास भल्ला), 'गुरु विलास' (सुक्खा सिंह), 'गुरु विलास' (कुइर सिंह), 'गुरु नानक विजय' (संतरेण), 'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' (संतोख सिंह) ऐसे ही काव्य-ग्रंथ हैं। इन सभी में सिक्ख-गुरुओं के जीवन की कथा का निरूपण हुआ है और उनके माध्यम से 'गुरुमत' का प्रचार करने का सफल प्रयास किया गया है। कुछ ग्रंथों में तो 'गुरु-वाणी' भी आई है, जिसकी समुचित कथा-प्रसंगों में व्याख्या की गई है। 'गुरु प्रताप सूरज' इस परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। एक तो इसमें सभी गुरुओं का चरित्र चित्रित है, कथा का विस्तार

1. गुरु प्रताप सूरज ऐन २/३६/२२-४५।

भी अन्य सभी से अधिक है और गुरुमत का प्रतिपादन भी अधिक विद्वत्ता एवं विशदता से किया गया है। इसमें भी अनेक स्थानों पर गुरु-वाणी आई है, जिसकी व्याख्या अनेक 'साखियों' के माध्यम से की गई है। भाई संतोख सिंह एक लोकनायक एवं समन्वयवादी कवि थे, यही कारण है कि अपने परिवेश के अनुरूप इस काव्य-ग्रंथ में कुछ ऐसे धार्मिक-तत्व भी आ गये हैं जो गुरुमत से पूरी तरह मेल नहीं खाते और भाई संतोख सिंह की वृहत्तर सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के परिचायक हैं।

मंगलाचरण

'गुरु प्रताप सूरज' शास्त्रीय पद्धति पर रचित महाकाव्य है। महाकाव्य के लक्षण देते हुए संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने जहाँ उसकी सर्गवद्धता का उल्लेख किया है, वहाँ उसके आरम्भ में मंगलाचरण का भी विधान किया है। यह मंगलाचरण आशीर्वाद, नमस्कार एवं कथा-वस्तु के निर्देश से सम्बन्धित हो सकते हैं।[1] संस्कृत के महाकाव्यों का आरम्भ मंगलाचरण से ही होता है। हिन्दी में तुलसीदास जैसे महाकवियों ने भी अपने महाकाव्य का आरम्भ मंगलाचरण से ही किया है। 'रामचरितमानस' के आरम्भ में लगभग एक सौ छन्दों में गुरु, ब्राह्मण, संत-असंत, वाल्मीकि, वेद, ब्रह्मा, देवता, शिव, पार्वती, श्रीरामधाम, नाम-महिमा, राम के गुणों एवं चरित्र की महिमा आदि से सम्बन्धित मंगलाचरण आये हैं। कुछ मंगलाचरण संस्कृत में भी हैं। 'गुरु प्रताप सूरज' के भी आरम्भिक ४४ छन्दों में क्रमशः अकाल पुरुष, कवि संकेत मर्यादा, गुरु नानक, अंगद, अमरदेव, रामदास, अर्जुनदेव, हरिगोविंद, हरिराई, हरिकृष्ण, तेगबहादुर, गोबिंदसिंह, गणपति, ब्रह्मा, सुरगुरु, वाल्मीकि, वशिष्ट, इन्द्र, अगस्त्य, व्यास युधिष्ठिर, अर्जुन, रामचन्द्र, नरसिंह, घनश्याम, वामन, दशरथ, जनक, गोरख, कबीर, बाबा बुड्ढा, सूर्य, चन्द्र, नारद, शारदा, शेष, हनुमान, खालसा, गुरु कथा महिमा आदि से सम्बन्धित मंगलाचरण हैं। इनमें आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक एवं कथा-निर्देशात्मक सभी प्रकार के मंगलाचरण हैं। प्रत्येक कवि अपनी धार्मिक-भावना के अनुरूप ही अपने इष्टदेव की वंदना सम्बन्धी मंगलाचरण देता है। तुलसीदास ने जहाँ श्रीराम चरित्र तथा राम कथा की महिमा सम्बन्धी मंगलाचरण दिये हैं, वहाँ भाई संतोखसिंह ने अकाल पुरुष, सिक्ख-गुरुओं तथा उनकी चरित्र-कथा की महिमा के मंगलाचरण को प्राथमिकता दी है। किन्तु अन्य देवताओं, ऋषियों, मुनियों, संतों, भक्तों आदि का वंदना सम्बन्धी मंगलाचरण से उनकी उदार धार्मिक दृष्टि का ही बोध होता है। मंगलाचरण सम्बन्धी इन छन्दों से उनकी भक्ति-भावना, दार्शनिक विचार, अवतारवादी-भावना में विश्वास, सिक्ख गुरुओं तथा खालसा के प्रति निष्ठा के साथ ही पौराणिक पुरुषों के प्रति श्रद्धा एवं उनपर वैष्णव प्रभाव

1. साहित्य दर्पण छः 320 ; काव्यादर्श 1 : 14।

का भी परिचय मिल जाता है। इन मंगलाचरणों के सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है कि इनमें कई छन्द अलंकृत शैली में लिखे गये हैं। इनमें कवि ने श्लेष, यमक एवं अन्त्यानुप्रासों के अनेक रूपों का प्रयोग किया है। इनसे कवि को भाषा पर अधिकार, चमत्कार-प्रदर्शन पांडित्य तथा विविध छन्दों के ज्ञान आदि का अच्छा परिचय मिलता है। गुरुओं के चरित्र के अनुरूप भाषा-शैली का प्रयोग करके भी कवि ने अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है। इनमें से दो चमत्कारपूर्ण छन्द यहाँ प्रस्तुत हैं—

(क) तरनी बिघना सलितापति की, पति की रक्ख्यक श्री बरनी।
बरनी सुखदा शरनागति की, गति की समता गज की करनी।
कर नीरज ओट सुधारति की रति की प्रभुता सगरी हरनी।
हरनी सम आंख सु श्रीमति की, मति की करता, तनवें तरनी ॥ ७ ॥

(ख) सुर सुरानि के हानि करे छित आनति भे बनि के तन सूर।
सूरत सुंदर जो सिमरै उर मैं तन ग्यान लहै मति सूर।
सूर गहै कर मैं रण के प्रिय निंदक जे दुख पाइ बिसूर।
सूर बिसाल क्रिपाल गुरु हरि गोबिंद जी तम शत्रुन सूर ॥ १३ ॥

यहाँ चमक का विविध रूपात्मक प्रयोग, विशेष रूप से सिंहावलोकन की गति रीतिकालीन अलंकरण-प्रवृत्ति के प्रभाव की सूचक है। किन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह कवि की प्रिय शैली नहीं है। रीतिकाल के कला-प्रेमी अलंकृतियों के लिये, कवि ने अपनी काव्य-प्रतिभा एवं शास्त्र-ज्ञान का परिचय देने भर के लिये ही इस प्रकार के कुछ चमत्कारपूर्ण छन्दों की रचना की है, अन्यथा यह सम्पूर्ण ग्रंथ अत्यन्त सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक शैली में लिखा गया है, जो सर्वथा धर्म प्रधान कथा-काव्यों के अनुकूल है।

प्रेरणा एवं स्रोत

'गुरु प्रताप सूरज' से पूर्व कोई भी एक ऐसा काव्य-ग्रंथ नहीं है, जिसमें सभी सिक्ख गुरुओं की कथा विस्तार से वर्णित हो। 'दशमग्रंथ', 'गुरु शोभा', 'गुर विलास', 'महिमा प्रकाश' तथा 'जन्म साखियों' में कुछ इतिवृत्त अवश्य आया है। भाई संतोख सिंह ने अपने ग्रंथ के लिये इन सभी पूर्ववर्ती रचनाओं से सामग्री प्राप्त की है। उन्होंने आरम्भ में भाई रामकुइर द्वारा सिक्खों को गुरुओं का इतिवृत्त सुनाने का उल्लेख किया है, जिसे 'साहब सिंह' नाम के किसी सिक्ख ने लिपिबद्ध किया था, किन्तु उनका संकेत किस रचना से है, यह स्पष्ट नहीं है। ऐसी कोई रचना अब उपलब्ध भी नहीं है। हो सकता है, उनके पास इस तरह की सामग्री रही हो। तथापि उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट निर्देश किया है कि उन्होंने अनेक स्थानों पर जाकर गुरुओं के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में सामग्री एकत्र की है। जन-श्रुतियों का भी उपयोग किया गया

है। इस सम्पूर्ण सामग्री को क्रमबद्ध, संगठित, एवं सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने एक ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया है। परवर्ती इतिहासकारों ने उस से पर्याप्त लाभ उठाया है। हमारा अनुमान है कि 'गुरु नानक प्रकाश' तथा 'गुर प्रताप सूरज' की रचना करने की प्रेरणा भाई संतोख सिंह को 'रामकथा' से मिली है और 'राम चरितमानस' उनके सम्मुख एक आदर्श रहा है. यद्यपि पंजाब में गुरुओं के चरित्र पर इस तरह के काव्य लिखने की परम्परा विद्यमान थी।

कथा सौन्दर्य

'गुरु प्रताप सूरज' एक कथा-विस्तार वाला प्रबन्धकाव्य है। इसमें भाई राम-कुइर एवं गुरु नानक-अवतार की संक्षिप्त कथा के पश्चात् अन्य नौ सिक्ख गुरुओं तथा बंदा बहादुर की जीवन-यात्रा का वर्णन विस्तार से किया गया है। गुरु नानक की कथा यहाँ संक्षेप में इसलिये आई है कि इससे पूर्व वे गुरु 'नानक प्रकाश' में उनके चरित्र पर स्वतन्त्र काव्य की रचना कर चुके थे। यहाँ सम्बन्ध-सूत्रों को बनाये रखने के लिये कतिपय अपेक्षित तथ्यों का ही उल्लेख किया गया है। इस ग्रंथ की कथा वस्तुतः गुरु अंगद के गुरु-गद्दी पर विराजमान होने से शुरू होती है और गुरु गोविंद सिंह के दक्षिण की ओर प्रस्थान और वहीं उनके परलोक गमन। उनके दत्तक पुत्र अजीतसिंह की मुगलों द्वारा हत्या, तथा माता सुन्दरी जी की आनन्दपुर में मृत्यु के विवरण के साथ इस ग्रन्थ की समाप्ति होती है। अन्त की ओर बंदा बहादुर का वृत्त भी विस्तार से दिया गया है।

यद्यपि कवि ने सभी गुरुओं का पूर्ण जीवन-वृत्त दिया है, तथापि गुरु हरिगोविन्द तथा गुरु गोविन्दसिंह की चरित्र-गाथा को सर्वाधिक विस्तार दिया गया है, जो स्वाभाविक भी है और उचित भी क्योंकि इन दोनों गुरुओं ने सिक्खमत को नई दिशाएँ दी हैं और उन्हें नई सम्भावनाओं की ओर अभिमुख किया है। कवि ने उनके पठानों एवं मुगलों आदि के साथ युद्धों का विशद वर्णन किया है। गुरु गोविन्दसिंह के पहाड़ी राजाओं से संघर्षों एवं आखेटों आदि का भी वर्णन किया गया है। इन दोनों गुरुओं द्वारा वीर-वेष धारण करने की सार्थकता तथा उपयोगिता सिद्ध करने के हेतु कवि ने मुगल शासकों के ऐतिहासिक इतिवृत्त भी स्थान-स्थान पर दिए हैं। हिन्दुओं के प्रति उनसे कटु-व्यवहार का भी निरूपण किया गया है और इस पृष्ठभूमि में गुरुओं के साथ उनके सम्बन्धों को प्रस्तुत किया गया है।

'गुरु प्रताप सूरज' एक सफल प्रबन्ध काव्य है। कथानक में सम्बद्धता, सन्तुलन, प्रवाह एवं रोचकता बनाए रखने के लिए कवि ने कुशलता से काम लिया है। मुख्य कथा गुरुओं के चरित्र से ही सम्बन्धित है, जिसे उनके चरित्र एवं महत्त्व के अनुपात से ही विस्तार दिया गया है। मुख्य कथानक के बीच में अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी आई हैं। इनमें मुख्यतः तीन तरह के प्रसंग हैं :—

(१) **ऐतिहासिक प्रसंग**—पहाड़ी राजाओं, राजपूतों एवं शाहजहां, औरंगज़ेब तथा बहादुरशाह मुगल-शासकों इत्यादि से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रसंग। इस प्रकार की सभी कथाओं का गुरुओं से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य है, और उनसे गुरुओं के कार्यों का औचित्य सिद्ध होता है अथवा उनके चरित्र की महत्ता की स्थापना की गई है। इन्हें अनावश्यक विस्तार नहीं दिया गया।

(२) **पौराणिक प्रसंग**—इस ग्रन्थ में रामायण, महाभारत तथा पुराणों के अनेक प्रसंग अन्तर्कथाओं के रूप में आए थे। मधूकैटभ वध, सृष्टि रचना, यमुना एवं मार्तण्ड की कथा, हिरण्यकश्यप-प्रह्लाद, कौरव-पांडव, रावण-विभीषण, बाली-सुग्रीव, हरिश्चन्द्र, भृगु द्वारा विष्णु को पद प्रहार करने आदि से सम्बन्धित अनेक पौराणिक प्रसंग इस ग्रन्थ में आए हैं। ये सभी प्रसंग मुख्य कथानक के साथ अनुस्यूत हैं। इनसे गुरुओं के महत्त्व की स्थापना होती है किसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण होता है और कवि की समन्वय-भावना का भी परिचय मिलता है। इनसे कथानक में गरिमा आ गई है और वे एक विशिष्ट प्रकार का सांस्कृतिक वातावरण उत्पन्न करते हैं।

(३) तीसरे प्रकार की ऐसी कथाएँ हैं, जिन्हें अर्ध-ऐतिहासिक प्रसंग कहा जा सकता है। भाई बुड्ढा, भाई वहोडा, बहिलो, भगतू, गुरुदास आदि सिक्खों के प्रसंग इसी कोटि के हैं। इस प्रकार के अनेक प्रसंग इससे पहले 'महिमा', 'सिक्ख भक्तमाल' एवं 'सौ साखियों' आदि में आए हैं। गुरुओं के पास और भी अनेक स्थानों से व्यक्ति आते हैं, जिन्हें गुरु जी नैतिक, धार्मिक, सामाजिक अथवा आचरण-सम्बन्धी उपदेश देते हैं। शैव, सिद्ध, शाक्त, नाथ, सूफ़ी, वैष्णव तथा अनेक मतों के अनुयायी पात्रों का भी गुरुओं से सम्पर्क होता है, उनके जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख भी कभी-कभी होता है। उनसे आध्यात्मिक या सामाजिक विषयों पर गुरुओं की चर्चा होती है और कवि 'गुरुमत' की महत्ता की स्थापना करता है। अतः इस प्रकार के सभी प्रसंग कवि की लक्ष्य सिद्धि के हेतु आए हैं और कथानक के माध्यम से 'गुरुमत' निरूपण का जो उद्देश्य है, उसे सफल बनाने में सहायक होते हैं। इस प्रयोजन के लिए अनेक काल्पनिक प्रसंगों का भी समावेश किया गया है, इस प्रकार के उद्देश्य को लेकर काव्य लिखने वाले सभी कवि ऐसा करते हैं, देखना यही होता है, कि ऐसे प्रसंगों की योजना कथा-शिल्प एवं काव्य-सौष्ठव में किस कुशलता से की गई है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस वृहद् आकार की रचना में ऐसे बहुसंख्यक प्रसंग आए हैं और उनकी योजना में कवि ने अपने काव्य-कौशल का पूरा परिचय दिया है।

कथानक में विविधता भी है और सम्बद्धता एवं प्रवाह भी। यद्यपि कथा में इतिवृत्तात्मकता काफी है। पुनरावृत्ति भी देखने को मिलती है, तथापि भावपूर्ण, ओजस्वी एवं मार्मिक प्रसंगों की भी कमी नहीं है।

कुल मिलाकर इस प्रबन्ध का कथानक एक महाकाव्य की गरिमा से युक्त है। उसमें उदात्तता एवं प्रौढ़ता है।

ऐतिहासिक बनाम पौराणिकता

प्राचीन भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने इस बात पर बड़ा बल दिया है कि महाकाव्य का कथात्मक इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिये, यद्यपि चरित्र-नायक के गौरव की रक्षा के लिये अथवा कथानक में रमणीयता लाने के लिये ऐतिहासिक-वृत्त में कुछ परिवर्तन कर लेने का विधान भी कर दिया गया है। संस्कृत के अधिकतर महाकाव्य ऐतिहासिक या पौराणिक कथानक पर ही आधारित हैं। हिन्दी में 'पृथ्वीराज रासो' का कथानक ऐतिहासिक है और 'रामचरितमानस' का पौराणिक। 'गुरु प्रताप सूरज' भी ऐतिहासिक कथा को लेकर लिखा गया है। इसमें सिक्ख-गुरुओं के जन्म, विवाह, गुरुता, गृहस्थ एवं पारिवारिक जीवन, साधना, धार्मिक, एवं सामाजिक उपदेश तथा उनकी मृत्यु आदि का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यह गुरुओं के जीवन से सम्बन्धित इतिहास-ग्रंथ के समान ही महत्वपूर्ण है। कवि ने स्वयं इसे इतिहास की संज्ञा दी है।[1]

इतिहासकार तटस्थता से विविध ऐतिहासिक प्रसंगों का वर्णन करता है किन्तु भाई संतोखसिंह ने गुरुओं के प्रति धार्मिक-अनुराग से प्रेरित होकर ही इस ग्रंथ की रचना की है। इसलिये इसमें **गुरुओं को अवतारी** अथवा दिव्य रूप में चित्रित किया गया है। उनकी महिमा का गुण-गान किया गया है और युग की राजनैतिक अवस्था की अपेक्षा सांस्कृतिक एवं धार्मिक अवस्था का चित्रण अधिक विशदता से किया गया है। "पृथ्वीराजरासो' और 'गुरु प्रताप सूरज' की रचना में भी यह दृष्टिभेद स्पष्ट है। 'रासो' में एक राजा का चरित्र उसके आश्रित दरबारी कवि द्वारा वर्णित है, जो उसके वैभव, ऐश्वर्य, विलास, आखेट एवं युद्धों आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करता है; किन्तु 'गुर प्रताप सूरज' का रचयिता न गुरुओं का समकालीन है और न ही उनके आश्रित कवि है। वह उनका भक्त है और पूर्ण निष्ठा से उनका चरित्रांकन करता है। वह उनके 'दीवान' को भी गुरु-दरबार कहता अवश्य है, किन्तु जहाँ न राजदरबार का वैभव है न विलास। वहाँ राजा और रंक का कोई भेद नहीं। लंगर चलता है, जहाँ ऊंच, नीच सब भोजन करते हैं, गुरु जी भी साथ बैठ कर वहाँ भोजन करते हैं। वहाँ रबाबी राग गाते हैं और हरि कीर्तन होता है। जितना अन्न आता है, सारा उसी दिन पका दिया जाता है। अगले दिन के लिये कुछ शेष नहीं संग्रह का कोई भाव नहीं है। कवि गुरुओं को 'भव-भार उतारन' तथा 'तुरकान को तेज निवारन' के हेतु अवतरित परमेश्वर का रूप मानता है। यहाँ भगवान् स्वयं इक्ष्वाकु को यह वरदान देते बताये गये हैं कि पाँच हज़ार वर्ष के पश्चात् वे नानक के रूप में अवतार लेंगे।

कवि ने यहाँ इतिहास को पौराणिक रूप देने की चेष्टा की है। गुरुओं की अन्य

1. पठहि सुनहि **इतिहास** को आशा पूर्ण होइ। (रा० १।२८।५४)

अवतारों के साथ अभेदता और एकरूपता भी चित्रित की गई है। बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे पौराणिक महत्त्व निर्दिष्ट किया गया है। गुरुओं के चरित्र के साथ अनेक अतिमानवीय एवं अलौकिक घटनाओं का समावेश भी किया गया है। और अनेक पौराणिक कथायें बीच बीच में आई हैं। इन पौराणिक कथाओं को भी कवि ने 'पुरातन इतिहास' ही कहा है।[1] एक ओर वह इतिहास को पुराण के सांचे में ढालता है और दूसरी ओर पुराण को इतिहास वेश में प्रस्तुत करता है।

गुरुओं के इतिहास के साथ-साथ कवि ने उस युग के मुगल-शासकों तथा कुछ पहाड़ी एवं अन्य राजाओं के इतिहास का भी वर्णन किया है, लेकिन उसमें उतना विस्तार नहीं है। गुरुओं के जीवन सम्बन्धित तो गौण घटनाओं को भी विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। जैसे उनके जन्म और मृत्यु के दिन, तिथि, पक्ष, याम आदि तक का उल्लेख किया गया है। उनके जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, गुरु-गद्दी प्राप्ति, गुरुता की अवधि एवं मृत्यु-संस्कार, दिनचर्या, आचरण, वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन आदि का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है। गुरु रामदास और अमरदास की सेवाओं और सरोवरों की खुदवाई आदि का भी विस्तृत विवरण दिया गया है। यही नहीं दातू के गुरु अमरदास से तथा पृथिये के गुरु अर्जुन से द्वेष का भी निरूपण विस्तार से किया गया है। कवि ने गुरुओं की धर्म-यात्राओं, उनकी चिंतनधारा एवं धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक उपदेशों आदि का वर्णन विशेष मनोयोग से किया है। गुरु गोविंद सिंह तथा हरिगोविंद के युद्धों का वर्णन भी विस्तार से किया गया है।

गुरुओं के महत्त्व की स्थापना के लिये कहीं-कहीं ऐतिहासिकता की उपेक्षा भी की गई है। जैसे अकबर और जैमल-फत्ते के युद्ध की कल्पना जैमल की कन्या को आधार बना कर की गई है और अकबर की विजय 'गुरु-वाक' से मानी गई है। इसी प्रकार हुमायूं भी जब गुरु जी की शरण में पहुँचता है, तो उस पर भी गुरु जी की अलौकिक शक्ति का चमत्कार दिखाया गया है। वह तिरस्कृत अनुभव कर उन पर खड्ग से प्रहार करना चाहता है किन्तु खड्ग उठती ही नहीं। गुरु अंगद अपने सिक्खों की श्रद्धा को दृढ करने के लिये मृत्यु समय सशरीर अपने आसन से अलोप हो जाते हैं। वस्तुतः, कवि का उद्देश्य यहाँ गुरुओं का इतिहास लिखना जरूर है, लेकिन ऐसा उसने धर्म-भावना से प्रेरित होकर किया है और ऐसे तथ्यों, घटनाओं एवं प्रसंगों आदि का ही नियोजन किया है, जिनसे उनके महत्त्व एवं गौरव की प्रतिष्ठा हो सके। फिर उनकी चिंतनधारा का प्रतिपादन करना भी तो उसका एक लक्ष्य था। उसने ऐतिहासिक घटनाओं में आवश्यकतानुसार परिवर्तन या सशोधन भी किया है और अनेक नई घटनाओं, प्रसंगों, पात्रों आदि की उद्भावना भी कर ली है।

---

1. कहनि लगे इतिहास पुरातनि।

भाई संतोख सिंह के सामने गुरुओं का कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं था। उन्हें जो भी सामग्री प्राप्त हुई, उसमें से अपनी रुचि और उद्देश्य के अनुरूप 'बीन बीन' कर उन्होंने यहाँ प्रस्तुत की। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह एक ऐतिहासिक काव्य है, इतिहास ग्रंथ नहीं। अत: कवि को अपनी प्रेरणा, अनुभूति एवं उद्देश्य के अनुरूप इतिहास कथा को प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता रही है। कवि का उद्देश्य गुरुओं के इतिहास से परिचित कराना मात्र नहीं है, यह उसका एक प्रमुख उद्देश्य अवश्य है, किन्तु उसका उद्देश्य इससे कहीं अधिक महनीय है और उसका यही उद्देश्य उसे एक सामान्य इतिहासकार से अलग और ऊपर खड़ा करता है।

सिक्ख-गुरुओं ने यवन-शासकों के अत्याचारों से दलित एवं प्रताड़ित भारतीय जनता में एक नवीन सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना जाग्रत की थी। अधर्म, अन्याय, अनीति और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की भावना और साहस पैदा किया था। 'गुरु प्रताप सूरज' में इस नवचेतना को विशेष रूप से मुखरित किया गया है। इसमें युग का ही यथार्थ चित्रण नहीं किया गया; जनता की निराशा, अभिलाषाओं एवं उनकी उभरती हुई चेतना को भी स्वर दिया गया है।

भाई संतोखसिंह एक युग प्रवर्त्तक कवि थे। इसलिए इस ऐतिहासिक सन्दर्भ का उपयोग उन्होंने अपने युगपरिवेश के प्रसंग में भी सफलता पूर्वक किया और अपनी युग-परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए गुरुओं के इतिहास के माध्यम से जन-जीवन में एक नई सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। अपने युग-बोध को अभिव्यञ्जित किया। उनकी रचना में जो यवन-विरोध स्वर है, यह उसी की देन है।[1] 'गुरु प्रताप सूरज' के रूपक में तुरक शासकों, उनके अत्याचार, उमरावों मल्लाओं, शरहा आदि के लिये अन्धकार, निशा, उल्लू, चमगादड़, जंबुक आदि प्रतीकों का प्रयोग भी उनकी राष्ट्रीय-भावना का परिचायक है। कवि ने तो अंग्रेज़ों द्वारा कैंथल की लूट के प्रति भी अपनी तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की है, जो उनकी देश-प्रेम की भावना को प्रकट करती है। निःसन्देह, कवि इस ऐतिहासिक कथानक के माध्यम से नई राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना जागृत करने में, सद्धर्म और न्याय की रक्षा तथा अन्याय और अधर्म का साहसपूर्वक विरोध करने की भावना को उद्दीप्त करने में पूरी तरह सफल हुआ है। उसमें गुरुओं की चिंतन धारा के आलोक में अपने युग के जन समूह की मनोवृत्तियों का परिष्कार एवं उत्पन्न करने का भी मंगलमय कार्य किया गया है। किसी भी 'इतिहास ग्रंथ' में ऐसा उद्देश्य निहित नहीं होता।

---

1. तुर्क तेज द्रिढ तरु उरवारा।
   हिंदु धरम को राख्यो प्रतिपारा।

युग चित्र एवं युग-बोध

भाई संतोखसिंह ने अपने इतिहास-बोध के साथ अपने भाव-बोध का भी सुन्दर सामञ्जस्य स्थापित किया है। 'गुर प्रताप सूरज' का युगचित्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें उस युग के पंजाब का सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास सजीव हो उठा है। इसमें लगभग ३०० वर्षों की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक अवस्था का यथार्थ एवं विशद वर्णन हुआ है।

युग की धार्मिक अवस्था का चित्रण करते हुए कवि ने हिन्दुओं और मुसलमानों के अनेक मतों, पंथों, सम्प्रदायों आदि का वर्णन किया है। सिद्ध, नाथ, योगी, तपस्वी, यती, ब्रह्मचारी, अवधूत, संन्यासी, वैरागी, साधु, ज्ञानी, भक्त, संत, महंत, दिगम्बर, वैष्णव, देवी. भक्त. सूफी, काज़ी, मुल्लां, पीर, फकीर आदि अनेक प्रकार के साधकों की चर्चा इस ग्रंथ में मिलती है।

'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार इस युग में सामान्य जन आस्तिक एवं धर्म-भीरु थे। जप, तप, योग, यज्ञ, व्रत, दान, तीर्थ-स्थान, सालिग्राम-पूजा, अवतारवाद. पुनर्जन्म एवं कर्म-फल आदि में उनकी आस्था थी। लोग योगियों, तपस्वियों, फकीरों, देव, देहुरा आदि को भी पूजते थे। तप के प्रभाव में भी उनकी निष्ठा थी। कुछ हिन्दू कब्रों तक को पूजते थे। धर्म के क्षेत्र में जो पाखण्ड और आडम्बर था, कवि ने उसका भी वर्णन किया है और गुरुओं ने जिस प्रकार ऐसे मिथ्याचारों का निषेध किया, उस पर भी प्रकाश डाला है। यह श्रद्धा और विश्वास का युग था। भाई सन्तोखसिंह का भी कथन है कि "श्रद्धा त्यागने से अनेक दोष आ जाते हैं[1]। हरि-भक्ति को वह सर्वश्रेष्ठ कर्म मानते हैं और उनकी मान्यता है कि श्रद्धा के बिना न भक्ति प्राप्त होती है. न ईश्वर-प्राप्ति।[2] कवि ने तो यहाँ तक कहा है कि शंका भी श्रद्धा से होनी चाहिए। इस मध्ययुगीन बोध का निरूपण 'गुरु प्रताप सूरज' में व्यापक रूप से हुआ है।

भाई सन्तोख ने यवन-शासकों की धर्म-असहिष्णुता एवं धर्मान्धता पर भी प्रकाश डाला है और इस ओर भी संकेत किया है कि धार्मिक स्थानों पर ज़जिया भी लिया जाता था।

(१ : ४५-१२)

राजनैतिक अवस्था पर प्रकाश डालते हुए कवि ने शासन-व्यवस्था के विभिन्न घटकों—राजा, सचिव, मन्त्री सूबेदार, बादशाह, उमराव, सेनापति, सैनिक, सिपाही आदि का उल्लेख किया है। उनके कार्य एवं व्यवहार आदि का भी यथेष्ट परिचय दिया है। यवन-शासकों एवं पहाड़ी राजाओं की अनीति एवं अत्याचारों का भी वर्णन किया

1. श्रद्धा त्यागे दोष बिसालै।
2. बिन श्रद्धा सो हाथ न आवै।

है। राजा को 'नरराई' भी कहा गया है, जो राज: के प्रति लोक-भावना को प्रकट करता है। शासन व्यवस्था में ग्रामाधीस, पंच, पंचायती, ग्राम-चौधरी आदि का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। कुछ राजाओं पर प्रजा का बड़ा स्नेह था। प्रजा राजा के दु:ख से दु:खी होती थी (रा० २।११।३०)। राजा का धर्म ही प्राय: उनका धर्म होता था। कई बार धर्म-पालन के लिए राजाज्ञा भी दी जाती थी। राजा का प्रजा पर पूर्ण अधिकार था। अकबर के सेना नायक के आगमन पर ग्रामवासियों को एक-एक रुपया देकर और सिर नीचा करके उपस्थित होना पड़ता है। (रा० २।३०।२१)

सामाजिक अवस्था का निरूपण कवि ने बड़ी विशदता से किया है। 'गुरु प्रताप सूरज' में चारों वर्णों तथा अनेक जातियों एवं उपजातियों आदि का उल्लेख है। लोग इस प्रकार की समाज-व्यवस्था का पालन करते थे। किन्तु गुरुओं ने अपने उपदेशों से ही नहीं, अपितु अपने आचरण से भी इस प्रकार की वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया था, जिसका निरूपण कवि ने दृढ़ता से किया है। उनका मत था 'जाति कुजाति न परखहिं काई' (१।४०।१२)। गुरुओं ने लंगर-प्रथा का प्रवर्त्तन इस वर्ण एवं वर्ग-व्यवस्था को समाप्त करने के लिए भी किया था। गुरु अमरदास का नियम था कि कोई भी व्यक्ति गुरु-घर की देग से भोजन करके ही उनके दर्शन कर सकता था। चाहे वह ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या रंक। सामाजिक समानता का यह एक अच्छा उदाहरण था। 'गुरु प्रताप सूरज' में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है।

समाज में दो वर्ग विशेष रूप से विद्यमान थे। अकबर के दरबार में उन्हें 'आम खास दर्जा' प्राप्त था, जिसका उल्लेख भाई सन्तोखसिंह ने भी किया है। साधारणत: इन दो वर्गों को राव और रंक कहा जाता था। इन दोनों वर्गों की खाई काफी गहरी थी। एक ओर शासक वर्ग से सम्बन्धित राजा, रानी, मन्त्री, सचिव, उमराव आदि थे तथा कुछेक बड़े व्यापारी या साहूकार थे जो धनी और सम्पन्न थे तो दूसरी ओर साधारण शिल्पी, कृषिकार, व्यापारी तथा कर्मकार आदि लोग थे जिनकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त सामान्य थी। यह वर्ग-भेद उनके वस्त्रों, आभूषणों, भोजन तथा रहन-सहन आदि से स्पष्ट प्रकट होता था। धनी लोग जहाँ हीरे मोतियों से जड़े सोने के आभूषण पहनते थे, बहुमूल्य रेशमी वस्त्र धारण करते थे, तथा उत्तम भोजन करते थे वहाँ निर्धन लोगों को डेढ गज़ का वस्त्र पहन कर तथा बाजरे और चने की रोटी खाकर ही गुज़ारा करना पड़ता था। उनके वस्त्राभूषण सामाजिक स्तर के सूचक होते थे।

सामान्य जनता का लौकिक वैदिक रीति, श्रुति-स्मृति आदि में भी दृढ विश्वास था। आम लोगों में अनेक अन्धविश्वास एवं वहम थे। पर्वतों में डाकनियां रहती हैं जो मनुष्य को खा जाती हैं; यात्रा का भय; जंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, जिन्न, टोने, शकुन-अपशकुन आदि में भी सामान्य जनता का विश्वास था। अधिकतर अशिक्षित लोग थे और उनमें 'भेड़ चाल' थी। (रा० २। ४६। ३२-३३)॥

भाई संतोख सिंह ने इन लोगों के जन्म एवं विवाह आदि उत्सवों; मुंडन, नाम करण, यज्ञोपवीत, एवं मृत्यु आदि संस्कारों; एवं होली जन्माष्टमी आदि पर्वों का भी निरूपण किया है। ज्योतिष में भी लोगों का विश्वास था। वे जन्म-पत्रियां तथा हस्त-रेखायें भी दिखाते थे। 'बड़े-बडेरों' की परम्पराओं का पालन करते थे। पगड़ी बाँधने दस्तार, तिलक आदि की प्रथा भी प्रचलित थी। कवि ने विविध संस्कारों एवं अनुष्ठानों की सामग्री एवं विधि आदि का भी वर्णन किया है। लोग एक-दूसरे का कैसे अभिवादन और सत्कार करते थे, इसका भी उल्लेख मिलता है। अपने से बड़ों को 'पैरी पवणा' कहते थे, दूसरों को 'राम-राम' भी कहते थे। बड़े लोगों का सत्कार पांवडे बिछा कर भी किया जाता था।

परिवार में माता-पिता, पुत्र-पुत्री, प्रपौत्र, अनुज, भगिनी, पति-पत्नी, सास-बहु, ननद, सौत, ताया, चाचा, भतीजा एवम् अन्य कुटम्बियों की क्या भूमिका होती थी, सुपुत्र किसे कहते थे और कुपुत्र किसे, घर-जवाई की क्या स्थिति थी, विवाह के लिये कैसे न्यौते दिए जाते थे, कुटुम्बियों की परिवार के सुख-दुख में कैसी सद्भावना होती थी, वे उनके उत्सवों में कैसे सम्मिलित होते थे, इसका भी वर्णन किया गया है। परिवार के गठन एवम् उनकी रीति-नीति के अतिरिक्त इन सम्बन्धों की पवित्रता और कर्त्तव्य-भावना का भी निरूपण यथास्थान किया गया है।

समाज में नारी का क्या स्थान था तथा पुरुष-स्त्री के सम्बन्ध कैसे थे, इसका भी परिचय मिलता है। नारी के माता, पत्नी, पुत्री, बहन, ननद भावज, प्रेमिका, सौत, सखी, वेश्या, सेविका आदि अनेक रूपों के दर्शन होते हैं। समाज में बहु-विवाह की प्रथा भी थी। गुरु हरगोबिंद तथा गुरु गोबिंद सिंह के कई विवाह हुए थे। हरिपुर के राजा की अनेक रानियां थीं। प्राय: लड़की को पूछे बिना ही पिता पुत्री का विवाह निश्चित कर देते थे। कई बार कन्या की माता से भी नहीं पूछा जाता था। शाह उप्पल गुरु जी की इच्छापूर्ति हेतु ही अपनी पुत्री का विवाह गुरु कृपा से रोगयुक्त एक कुष्ठी से कर देता है। यद्यपि उसकी पत्नी इस पर आपत्ति भी करती है। कन्या प्राप्ति के लिए राजा-लोग युद्ध भी करते थे। स्त्रियों का पुनर्विवाह भी हो जाता था। हरिपुर की जो रानी गुरु वाक् से पगली हो गई थी, गुरु जी उसका विवाह अपने एक सेवक से करवा देते हैं। राजा तो उसे उस दशा में छोड़ कर चला ही गया था जो नारी की उपेक्षित दशा की ओर संकेत करता है।

सुखी और सम्पन्न दाम्पत्य जीवन स्त्री-पुरुष के विश्वासपूर्ण मधुर एवं संयत सम्बन्धों पर निर्भर था। गुरुओं का पारिवारिक जीवन उसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। पतिव्रता का महुत्त्व एवं आदर्श सर्वमान्य था। उसमें बड़ी शक्ति मानी जाती थी। एक स्त्री तो अपने कुष्ठी पति को सिर पर उठाकर घूमती दिखाई गई थी।

स्त्रियों में पर्दा-प्रथा भी प्रचलित थी, किन्तु गुरु पर्दा-प्रथा के विरोधी थे। हरिपुर की उन्हीं रानियों को दर्शनों की आज्ञा मिली थी जो बिना पर्दा किए आईं थीं। प्राय: कन्या का विवाह अपनी जाति एवं स्तर के परिवार में ही किया जाता था। किन्तु गुरु अमरदास जी केवल सुपात्र युवक को देखकर ही अपनी कन्या का विवाह निर्धन रामदास से कर देते हैं। लड़की वाले का स्थान वर-पक्ष से नीचा ही समझा जाता था। राजपूत अपनी कन्या का विवाह यवनों से करने में अपमान समझता था। जैमल अकबर के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने की अपेक्षा उससे युद्ध करना श्रेयस्कर समझता है। कंवारी युवा कन्या का घर में बैठे रहना बड़ा कष्टप्रद था। कन्या-दान एक पुण्य कर्म समझा जाता था। एक जगह सती-प्रथा एवं स्त्री को गिरवी रखने का संकेत भी मिलता हैं।

समाज का नैतिक आदर्श था :—

> धरम विरत करि संतन सेवै।
> परत्रिय परधन कबहूं न लैवै ॥

भाई सन्तोखसिंह ने उस युग की आर्थिक अवस्था पर भी प्रकाश डाला है। व्यापार, शिल्प, कृषि, श्रम तथा विविध व्यवसायों का पर्याप्त विवरण 'गुरु प्रताप सूरज' में मिलता है। कृषि के लिए सिंचाई के कोई साधन उपलब्ध नहीं थे। खेती वर्षा पर पर ही निर्भर थी। यदि वर्षा समय पर नहीं होती थी तो अन्न का संकट उपस्थित हो जाता था। ऐसी अवस्था में धर्म-भीरु लोग वर्षा-प्राप्ति के लिए किसी सिद्ध या तपी की पूजा भी करते थे।

व्यापार के प्रसंग में पटना, तलवण्डी, अमृतसर, आनन्दपुर आदि नगरों की हाट, बाज़ार, दुकान, कोठी एवं आढ़त का वर्णन मिलता है। वस्त्रों, आभूषणों एवं अन्न आदि के व्यापार का विशेष उल्लेख मिलता है। एक स्थान से ले जाकर दूसरे स्थान पर अन्न बेचने का भी प्रसंग है। ज़हाज़ से दूसरे देश में माल ले जाने का वर्णन भी हुआ है। उस युग में प्रचलित सिक्के थे—पैसे, टके, आने, रुपए—रजतपण, मोहर-मुद्रिका एवं दीनार आदि ; तोल सेर और मन आदि से और माप गजों से होता था। हुंडिया भी चलती थीं। दूरी का संकेत 'कोस' से होता था। वाहन के रूप में सांढनी गज, अश्व, सकट, स्यंदन, पालकी, वहल, रथ आदि का उपयोग होता था। संचार-व्यवस्था के लिए सांढनी आदि पर हरकारे लेकर जाते थे। बेड़ों से सरिताओं में लकड़ी भी लाई जाती थी। अधिक सम्पन्न व्यापारी तो कम ही थे। अधिकतर लोग सामान्य व्यवसाय ही करते थे। प्रशासन से सम्बन्धित मन्त्री, सचिव, सेनापति, सैनिक, काज़ी, चौधरी आदि के कुल अधिकार पूर्ण व्यवसायों को छोड़कर अधिक छोटे-छोटे शिल्पी कर्म-कार आदि थे। 'गुरु प्रताप सूरज' में रसोइये, सूपकार, लंगरी, छिप्पे, गडरिये, भिक्षुक, सुअर, कुक्कुट, खरपालक, धोबी, नाई, जुलाहे, पथरीए, झीवर, लुहार, कुम्हार,

ईंटें बनाने वाले, राज, बढ़ई, दिहाड़ी करने वाले मज़दूर, डोम, नट, रबाबी, भाट, कलावटी, तैराक, कृषिकार, घास बेचने वाले, ग्वाले, सौदागर, कुलाल, मुंशी, माली, हलवाई, पाधे, पुरोहित, वेश्या, चंडाल एवं तस्कर आदि अनेक ऐसे व्यवसायों का उल्लेख मिलता है। सेवा का बड़ा महत्त्व था, किन्तु बड़े कुल के व्यक्ति के लिए मज़दूरी करना या टोकरी ढोना अपमानजनक समझा जाता था। मज़दूरी सस्ती थी। दो आने और दिन का भोजन यही 'दिहाड़ी' मिलती थी।

इसके अतिरिक्त कवि ने लोगों के भोजन, वस्त्रों, आभूषणों, पात्रों, अंगारे, प्रसाधन, वाद्य-यन्त्रों, तथा नित्य व्यवहार में आने वाली अन्य वस्तुओं का भी यथा-स्थान उल्लेख किया है। भोजन में खीर, चावल, चूरी, दधि, खिचड़ी, पूडी, दलिया, खांड घी, फुलके आदि का तथा वस्त्रों में जामा, सूथन, दुकूल, पाग, धोती, चीरा, कुलही, जिगा, कलगी आदि का प्रयोग होता था। मांस एवं मदिरा का भी कुछ लोग सेवन करते थे। भोजन करने के लिए लोग जल छिड़क कर, वस्त्र बिछा कर उस पर चौकी रखकर वैठते थे।

कवि ने कड़े, बेसर, अगेद, कंगन, माला, नूपुर, किंकिनी, हीरे, मोती, जवाहर जड़े अन्य अनेक आभूषणों तथा उबटन, दधि, अंजन, मंहदी आदि प्रसाधनों का भी उल्लेख किया है। वस्त्राभूषण एवं भोजन उनकी आर्थिक स्थिति एवं अवसर आदि के अनुरूप ही होते थे।

इसी प्रकार बंब, ढोलक, रणसिंहे, घंटे, छैणे, दुंदभि, मृदंग, रबाब, डफ, बांसुरी, सितार, तुरही, तूती, धौंसा, पटह, नौबत आदि अनेक वाद्य-यंत्रों एवं लोटा, कलश, थाली, लोशट आदि पात्रों का भी 'गुरु प्रताप सूरज' में उल्लेख मिलता है, जो उस युग में साधारण जन प्रयोग में लाते थे।

आवास में चौबारा, दरीची, कोठड़ी एवं आंगन आदि होते थे। आवास के अतिरिक्त कवि ने नगर-रचना, दुर्ग-रचना, सरोवर-निर्माण, मंदिर (हरिमंदिर) एवं उपवनों आदि की रचना शिल्प का भी विवरण दिया है। युद्ध के प्रसंग में सैनिकों की वेश-भूषा, आयुधों, रण-वाद्यों, युद्ध नीति, युद्ध-रीति आदि का भी विशद वर्णन किया गया है। वृक्षों, पशु-पक्षियों, पुष्पों, फलों, ऋतुओं आदि का वर्णन भी किया गया है। जो युग-चित्र को पूर्णता प्रदान करने में सहायक होते हैं।

हिन्दी में कितने काव्य-ग्रंथ ऐसे हैं, जिनका इतिहास बोध इतना जीवंत है और जिनका युग-चित्र इतना विशद व्यापक एवं यथार्थ है, तथा जिनमें युग की चेतना की इतनी ज्वलंत अभिव्यञ्जना हुई है। 'गुरु प्रताप सूरज' इस दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व की रचना है।

विचार-सौन्दर्य

(आध्यात्मिक-विचार)

जैसा कि पहले कहा गया है, 'गुरु प्रताप सूरज' एक धर्म प्रधान काव्य है। इसमें कवि का मुख्य उद्देश्य गुरुओं की चरित-गाथा के माध्यम से उनके आध्यात्मिक-विचारों का प्रतिपादन करना है। भाई संतोख सिंह एक विद्वान् कवि थे। भारतीय-दर्शन का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था और गुरुमत(सिक्खमत) में उनकी दृढ़ आस्था थी। 'गरब गंजनी' में वे 'जपुजी' का 'षट्दर्शन' के आलोक में विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिख चुके थे। 'गुरु प्रताप सूरज' में उनके आध्यात्मिक विचार स्थान-स्थान पर सिक्ख गुरुओं के माध्यम से व्यक्त हुए हैं।

भाई संतोख सिंह सिक्ख-गुरुओं के परम-भक्त थे। उनके इष्टदेव 'अकाल-पुरुष' (परब्रह्म) तथा दसों सिक्ख-गुरु हैं। गुरु नानक को वे अकाल पुरुष का अवतार मानते थे और दसों गुरुओं को एक ही ज्योति के रूप में स्वीकार करते थे। भव-सागर को पार करने के लिये 'सिक्खी' को सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे और 'खालसा' को सर्व शिरोमणि 'पंथ'। उनके धार्मिक-विचारों पर वैष्णव-मत का कुछ ऐसा प्रभाव अवश्य है, जो सर्वथा गुरु-मत के अनुकूल नहीं है और इनकी समन्वयवादी-भावना का परिचायक है, फिर भी ब्रह्म, जीव, माया, जगत आदि के सम्बन्ध में उनके विचार बहुत कुछ गुरुमत के ही अनुरूप हैं।

ब्रह्म—ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करने वाला गुरुमत का बीज मंत्र इस प्रकार है—

"१ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैर
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।"

गुरुओं ने ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है।[1] भाई सन्तोखसिंह के अनुसार भी ब्रह्म निरंकार, निर्गुण, स्वयंभू, कर्त्ता-पुरुष, अनंत सत्यरूप, अविनाशी, निर्भय, जगतेश्वर सर्वव्यापक, अच्युत है। वह समस्त जगत् में प्रकाशवान् है, उसका कोई रूप रंग नहीं, तथापि वह दीन-बंधु, परम कृपालु, सुखदाता, स्वामी, गुणवान् दाता है। वह निराकार होते हुए भी सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञ है। निर्गुण होते हुए

1. (i) निरगुण सरगुणु आपे सोई। (माझ, महला ३।१।३१-३२)
(ii) निरगुनु आपि सरगुन भी ओही। (गउडी, सुखमनी महला ५।८।२८)

भी सर्वगुण सम्पन्न कर्त्ता पुरुष है।[1] वह नाना रूपों में प्रकट होता है। वही जगत् का कर्त्ता और कारण है।[2] पृथ्वी, सूर्य, आकाश, अग्नि, पवन आदि सभी उसके भय से अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं।[3]

सृष्टि

गुरुमत के अनुसार ब्रह्म सृष्टि का कर्त्ता और कारण है और इसकी उत्पत्ति ब्रह्म के 'हुकम' से मानी गई है। भाई संतोखसिंह भी ब्रह्म को ही सृष्टि का कर्त्ता और कारण मानते हैं। उनका कथन है कि 'ब्रह्म के हुकम से माया की उत्पत्ति होती है, जो सम्पूर्ण जगत् को भ्रम में डाले हुए है। उस ब्रह्म में ही यह जगत् रस्सी में 'सर्पवत्' प्रतीत हो रहा है। बाजीगर जैसे स्वांगों द्वारा अपने नाना रूप दिखाता है, उसी प्रकार ब्रह्म अपने को नाना रूपों में प्रकट करता है। जो भी नानात्व प्रतीत होता है, वह बाजीगर के तमाशे के समान माया के ही कारण दिखाई देता है। इन्द्रिय-दमन, तथा 'नाम-स्मरण' से यह भ्रम मिट जाता हो और फिर जगत् का रूप भी मिट जाता है और सर्वत्र ब्रह्म ही दिखाई देने लगता है अथवा वह ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है।

भाई सन्तोखसिंह के अनुसार जगत् अनादि काल से इसी प्रकार चला आ रहा है, परन्तु यह दृश्यमान् जगत् स्वप्न-समान, जड़, अनित्य एवं नाशवान् है। यह परिवर्तन-शील एवं अवास्तविक है। यह एक रस अथवा स्थिर नहीं है। यहाँ के सम्बन्ध भी

---

1. पार ब्रह्म पूरन करतारा। परमेश्वर जगतेश उदारा।
दीन बंधु प्रिय सिक्खन केरा। प्रभु हरि व्यापक जहिं कहिं हेरा ॥ ३२ ॥
अच्युत महापुरुष गुण खानी। परम क्रिपाला, परम सुख दानी।
निरभउ, निरंकार, निरकाला। निरगुन सरगुन रूप बिसाला ॥ ३३ ॥
प्रभु संभू निरभउ, सभि स्वामी। मधुसूदन नरपति जगदाता।
दुशटन गंजन, जन मन रंजन। करता पुरख. अनंत अनंजन ॥ ३४ ॥
सत्तिरूप जोतिन की जोति। जिह सत्ता ते जगत उदोति।
परमातम नरहरि अविनाशी। रूप न रंग न घटि घटि वासी ॥ ३५ ॥
(गु० प्र० सू० ४।५१)

2. कारण करण आपु तुम सारे। (वही रा० ३।४१।३६)
तू ही एक रूप तू ही रूप नाना। (वही. रा० ४।३०।५०)

3. छौनि सूरज, अगनि, जम, वायु त्रास जिमि पाइ।
निज सुभाव महिं थिति रहति, अस ब्रह्म रिद विदताइ।
(वही, रा० १।१।२)

'नौका के मेल' तथा 'जल-प्रवाह' के समान क्षणिक और अस्थिर है।[1]

माया

माया को भी वे ब्रह्म द्वारा उत्पन्न और उसके अधीन मानते हैं। वह ब्रह्म के 'हुकम' से ही जगत् को चलाती है। माया नटनी है, जिसने छल-बल से सारे संसार को भ्रम में डाला हुआ है। भाई सन्तोखसिंह के अनुसार वह अनिर्वचनीय, शक्तिमान् एवं अनन्त है वह त्रिगुणात्मक है। उसके दो रूप हैं। एक ब्रह्म के स्वरूप को आच्छादित करने वाला और दूसरा वह जिससे यह सारा नानत्व प्रतीत होता है। उनका कथन है कि विरति, ज्ञान एवं भक्ति द्वारा माया पर विजय प्राप्त की जा सकती है। ज्ञान, विराग आदि तो फिर भी पुरुष-रूप है, वे उस पर मोहित भी हो सकते हैं, किन्तु भक्ति तो स्त्री-रूप है, वह उससे मोह ग्रस्त नहीं हो सकती। सत्संगति 'गुरु-कृपा' तथा 'गुरु-वाणी' से भी इसके मोहमयी से बचा जा सकता है।

---

1. कारन करन आप तुम सारे। (वही, रा० ४।३०।५०)

× × ×

भान होति जग जास ते रजु भुजंग समान। (वही, रा० १।१।४)

× × × ×

माया करि ब्रह्म ते जग भासा। जिम बाजीगर केर तमाशा।
होइ विनाश जबै अग्यान। नहिं पुन रहै ब्रह्म बिनु आन ॥
(रा० २।३६।१०)

× × × × × × ×

जगत अनादि काल को ऐसे। चल्यो आइ जिह पार न कैसे।
(रा० १।२८।९)

× × × × × × ×

आतम अहै काल को काला। जग को लखि कै सुपन समानै।
(रा० १।१२।७)

चेतन ब्रह्म, जगत जड़ अहै। (रा० ५।४१।३०)

जगत अनित्त, आतमा साचौ। (रा० ४।३०।४८)

× × ×

जो उपजहि सो विनसनिहारो। लखि तांको मिथ्या निरवारो।
इस मंहि संकट अनिक प्रकार। नाशवंत द्रिशमान संसारो।
(रा० १।२५।१९)

× × × × × × ×

सदा प्रणामवंति जग अहै। नहीं एक रस थिरता गहै।
(रा० ७।२३।८)

जिस पर गुर किरपा करी। भए निहाल अवधि हरी।
(गु० प्र० सू० रा० १।३४।७)

गुरु वाणी महद अविद्या हरनी। (वही, रा० ९।६।३९)

आत्मा को भाई सन्तोखसिंह 'श्रीमद्भगवत् गीता' के अनुरूप सत्, चित्, आनन्द स्वरूप मानते हैं। वह अमर है, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल डुबा नहीं सकता, पवन उड़ा नहीं सकती और शस्त्र काट नहीं सकते। जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्र को उतार कर नवीन धारण कर लेता है, उसी प्रकार आत्मा जीर्ण शरीर को त्याग कर नवीन को धारण कर लेता है। वह शरीर के साथ नष्ट नहीं होता। वह परम हंस रूप है :—

सत्ति आतमा निरबै करहि। पूरब हुतो, देवहु धरहि।
अबि प्रतक्ख अरु रहै भविक्ख। यां ते सत्ति लखहि गुरु सिक्ख॥ ५१॥
बहुर आतमा चेतन जानहिं। जिह सबंध तन चेतन ठानहिं।
फरकावन चख आदिन रिखीके। जिस बिन होति नहीं लखि नीके॥ ५२॥
पुन आतम को रूप अनंद। परखति भले सदा बिन दुंद।
पावक दाह करति नहीं तिसै। जल न डुबाइ सकहि निज बिसै॥ ५३॥
(रा० १।११)

× × × × × × ×

शसत्रनि ते नहिं छेछो जाइ। जिसि को पौन न सकइ उडाइ।
(रा० १।१।२६)

× × × × × × ×

परम हंस सो कही अहि रूप। सति चेतन आनंद रूप।
तन ते न्यारो जानहिं ऐसे। मंदिर बिखे बसहि करे जैसे॥ ५४॥
(रा० १।११)

भाई सन्तोखसिंह ने आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों का विवेचन अद्वैतवादियों की भाँति 'कंचन-कुंडल'; 'बूंद-समुद्र'; 'अग्निपुंज-स्फुलिंग'; 'जल-तरंग' आदि के दृष्टान्तों से ही किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि जीव जल में पड़े हुए उस जलयुक्त घट के समान है, जिसके टूटने पर जल रूपी आत्मा ब्रह्म रूपी जल समूह में लीन होकर एक रूप हो ज़ाता है। (रा० १।२६।३९-४०) उनका कथन है कि देह नाशवान् है, जड़ और असत्य है। जिस प्रकार जल में अनेक बुदबुदे उठकर विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार जन्म-मरण को समझना चाहिए। विषय-आसक्त रहने के कारण जीव अल्पज्ञ है। अहंकार को नष्ट करके जब जीव ब्रह्म ज्ञान के अभ्यास से हरि-भक्ति द्वारा ब्रह्ममय हो जाता है, तो वह आवागमन से छूट जाता है। तब ज्ञाता, ज्ञेय और

ज्ञान का भेद मिट जाता है। वह सर्वत्र अपना ही रूप देखने लगता है।[1]

भाई संतोखसिंह का आवागमन तथा कर्मफल के सिद्धान्त में भी विस्वास है।

साधना-मार्ग

सिक्ख-गुरुओं ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए ज्ञान, कर्म, योग आदि की सार्थकता तो स्वीकार की है किन्तु अपनी साधना-पद्धति में उन्होंने सर्वाधिक महत्त्व 'भक्ति' को ही दिया है और नाम में उनकी पूर्ण-निष्ठा है।

भाई संतोखसिंह ने ज्ञान, विराग, योग, कर्म एवं भक्ति के स्वरूप एवं महत्त्व आदि की विस्तार से विवेचना की है। इसका स्वरूप स्पष्ट करते हुए उन्होंने प्राचीन भारतीय दर्शन एवं भक्ति शास्त्रों का भी आधार लिया है। सिक्ख-गुरुओं की भान्ति वे भी भगवान् की प्राप्ति के लिये ज्ञान, वैराग्य, योग तथा भक्ति आदि सभी मार्गों की सार्थकता स्वीकार करते हैं, परन्तु उनमें सब से श्रेष्ठ भक्ति को ही माना है। उनके अनुसार ये चारों मार्ग हरिमंदिर के चारों द्वारों के समान है। उनके द्वारा मन्दिर के भीतर प्रवेश करके परमात्मा की प्राप्ति तो हरि-स्मरण से ही सम्भव है। अतः वे स्थान स्थान पर हरि-भक्ति हरि-स्मरण नाम-स्मरण आदि का महत्त्व बताते हैं। भक्ति की महिमा, भक्ति के रूप, भक्ति के भेद, ज्ञान और भक्ति तथा भक्ति एवं कर्म के सम्बन्ध एव नाम महिमा आदि पर उन्होंने विस्तार से प्रकाश डाला है।

ज्ञान, कर्म एव योग की साधना को वे भक्ति की सरस धारा से सिंचित करना ही श्रेयस्कर समझते हैं। ब्रह्म ज्ञान को वे भक्ति के लिये आवश्यक मानते हैं। व्यवहारिक जीवन में भी वस्तु-स्थिति के वास्तविक ज्ञान के बिना कोई भी कर्म सफल नहीं हो पाता, इसी प्रकार धार्मिक कर्म, या भक्ति के लिये भी 'ज्ञान' का प्रकाश चाहिये। शुष्क ज्ञान की उन्होंने अवहेलना की है और भक्ति युक्त ब्रह्म ज्ञान को ही कल्याणकारी माना है। उनका कथन है कि भक्ति के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे केवल घी पीने मात्र से मनुष्य की छाती भारी हो जाती है, शरीर ढीला पड़ जाता है, खाना-पीना छूट जाता है, खांसी हो जाती है, मनुष्य के शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसी प्रकार केवल कोरे ज्ञान से व्यवहार बिगड़ जाता है, मनुष्य अहंकारी हो जाता है, अपने को बड़ा समझने लगता है, सत्संगति भी नहीं करता और नरक में गिरता है। लेकिन अगर घी को मिश्री में मिला कर खाया जाये तो वह शरीर के लिये बड़ा लाभदायक होता है, उसी प्रकार ज्ञान को भक्ति के साथ मिलाने से वह सभी के लिये कल्याणकारी सिद्ध होता है।

---

1. गु० प्र० सू० रा० २।३५।२२-२६ ; रा० १।२५।२६ ; रा० १।१७,२८ ; रा० १।२९।६ ; रा० १।२६।३९-४० ; रा० १।१९।१-८ ; रा० १।११।५२ : रा० १।१२।९ ; ११।५६ ; १।३९।१९ ; रा० ५।४५।२२.

श्री मुख ते शुभ पंथ बतावैं '
बिना भगति नहिं ग्यान सुहावैं ॥ २४ ॥......
यांते भगति संग ब्रह्म ग्यान ।
सभिहिनि की कातो कल्यान ॥ रा० ५ । ४५ । ४१ ॥

ज्ञान के द्वारा ही ब्रह्म, जीव, जगत आदि के वास्तविक स्वरूप को जाना जा सकता है, इसलिये आध्यात्मिक साधना में इसका बहुत महत्त्व है। भाई संतोखसिंह ने ज्ञान के साधन-रूप विरक्ति, श्रद्धा, श्रवण, मनन, अहंकार-त्याग, एवं गुरु-कृपा आदि का भी विशदता से विवेचन किया है।

भाई संतोखसिंह का कर्मफल में विश्वास है, इसलिए वे शुभ-निष्काम कर्म का महत्त्व स्वीकारते हैं। इस सम्बन्ध में उनका निश्चित मत है कि "कर्म वही श्रेष्ठ है, जिसमें नाम-स्मरण किया जाये उसके अभाव में सभी कर्म शून्य समान हैं।" उनके अनुसार सकाम श्रेष्ठ कर्मों से मनुष्य को गंधर्व लोक की प्राप्ति होती है और निष्काम कर्मों से ब्रह्म के साथ एकरूपता हो जाती है। उनकी मान्यता है कि कर्म मति के संस्पर्श से ही सत्कर्म होते हैं। सभी प्रकार के बाह्याचारों आडम्बरयुक्त अथवा पाखंडपूर्ण कर्मों का उन्होंने दृढ़ता से निषेध किया है। इसलिए उन्होंने मूर्तिपूजा आदि का भी खंडन किया है। उनके अनुसार परमात्मा का गुणगान ही 'गुरमुखों' का सर्वश्रेष्ठ कर्म है। संत-सेवा को भी वे महाफलदायक कर्म मानते हैं। यह सभी प्रकार की रिद्धि सिद्धि एवं मुक्ति को देने वाली है। सेवा के बिना भक्ति भी प्राप्त नहीं होती। सेवा के अतिरिक्त—उन्होंने स्नान, दान परोपकार, सदाचार एवं शुद्धाचरण आदि के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। कर्म के सम्बन्ध में उनका मूलमंत्र यही है—

करो कार को हरि हरि जाप ।
(रा० ११. ३३. २७)

'नाम-स्मरण' एक अंक के समान है, और कर्म शून्य के समान। इस नाम के अंक के अभाव में कर्म-रूपी शून्य का कोई मूल्य नहीं, किन्तु शून्य की बाईं ओर एक का अंक लगा देने से जैसे शून्य का मूल्य बढ़ जाता है, वैसे ही 'नाम' से सभी कर्म सार्थक हो जाते हैं—

सतिनाम एकांग पछान । अपर करम सभी शून्य समान ।
(रा० ५ । ४६ । ७)

सिक्ख-गुरुओं की भांति भाई संतोखसिंह ने गृह-त्याग कर विरक्ति के जीवन को कोई महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने गृहस्थ में ही कमलवत् निर्लिप्त भाव से रहते हुए भक्ति करते रहने को 'गुरमुख' का मुख्य धर्म माना है और इस तरह "विराग ग्यान गुण सानी" भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया है। उनकी त्रिगुणमूलक मनुविवाद में आस्था थी।

उनका आदर्श था—

जोग भोग दोनहु को पाई। रहै अलेप कमल जल भाई।

(रा० १।३१।११।

अस्तु, संसार में रहते हुए भी उसके आकर्षणों, मौहमाया में लिप्त होकर तथा विषय-वासनाओं से विरक्त होकर मनुष्य-परमात्मा की मति करता रहे. उस रूप में वे विरक्ति के महत्त्व को भी स्वीकार करते हैं।

योग की भी भाई सतोखसिंह ने विशदता से मीमांसा की है। हठयोग की शुष्क साधना में उनकी निष्ठा नहीं है। वे उसी योग को श्रेष्ठ मानते हैं जिसमें मन की वासनाओं को रोक लिया जाता है; "हउमैं" का नाश हो जाता है; जीव और ब्रह्म की एकता को समझ लिया जाता है और साधक सतिनाम का स्मरण करता है। वे योग की उस अचल समाधि को श्रेष्ठ मानते हैं, जिसमें सर्वत्र ब्रह्म ही दिखाई दे, ब्रह्म ही सुनाई पड़े, सोते-जागते चलते-फिरते, उठते-बैठते सर्वत्र ब्रह्म के ही दर्शन हों।

उनके अनुसार "भक्ति के अभाव में योग पाखंड पूर्ण अहंकार युक्त और नीरस है।" "नाम-जाप योग आदि का सर्वोपरि साधन है।" परमात्मा के 'हुक्म' को समझ कर उसके अनुसार काम करने वाला ही सच्चा योगी है।"

इस प्रकार भाई संतोखसिंह से आध्यात्मिक-साधना के क्षेत्र में ज्ञान, कर्म, विरक्ति एवं योग के महत्त्व को भी स्वीकार किया है। किन्तु भक्ति को सर्वश्रेष्ठ साधन माना है और भक्ति, ज्ञान एवं विराग आदि के समन्वय पर बल दिया है।

'नाम-स्मरण' को उन्होंने साधना का सर्वप्रमुख तत्व माना है। उनका कथन है कि नाम के बिना जीव का छुटकारा नहीं हो सकता। नाम ही ऐसा महामंत्र है, जिसके जाप से जीव रोग, ताप, कष्ट आदि से छुटकारा पाता है और भव-बन्धन से मुक्त हो सकता है—

बिना नाम के नहिं छुटकारा।

(रा० ५।४६।९।

कल महिं नाम जहाज महाना।

(रा० ३।५५।५८)

साधना-मार्ग में सफलता के लिये भाई संतोखसिंह ने हउमै (अहंक़ार) के त्याग सत्संगति एवं सेवा के महत्त्व का भी प्रतिपादन किया है। उन्होंने गुरुओं के अनुरूप ही तन, परिवार, जाति, धन, सुख आदि 'हउमै' के विविध रूपों, उसके परिणाम तथा उसके निराकरण के उपायों का विशद विवेचन किया है। उनका कथन है 'हउमै' के कारण मनुष्य को अनेक क्लेश सहने पड़ते हैं, वह जन्म मरण के कष्ट को भोगता है। ऐसा व्यक्ति न सत्संगति करता है, न उसे ज्ञान प्राप्त होता है; और इसका नाश हो जाने

से मनुष्य कर्मफल से मुक्त हो जाता है; वह आवागमन के चक्र में नहीं फंसता, वह अर्न्तवृति होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। उनके अनुसार 'हउमै' का नाश गुरु-उपदेश, गुरु की कृपा सत्संगति तथा नाम-स्मरण आदि से होती है।

सत्संगति एवं संत सेवा के महत्त्व का निरूपण करते हुए भाई संतोखसिंह ने कहा है कि सत्संगति के बिना योग, यज्ञ, जप, दान आदि विफल हो जाते हैं, संत-सेवा महाफलदायक है। वह भव-सागर से पार करती है। संतों की सेवा एवं संगति से ही हरि-स्मरण में मन लगता है और मुक्ति प्राप्त होती है।

भाई संतोखसिंह ने सभी सिक्ख-गुरुओं की भांति 'गुरु' को भी अत्यधिक महत्त्व दिया है। गुरु की सेवा तथा गुरु-कृपा की शक्ति में उनका पूरा विश्वास है। उनके अनुसार गुरु-कृपा से अविद्या नष्ट हो जाती है, उसकी सेवा तथा उपदेश से 'हउमै' का नाश होता है। उसकी कृपा से भक्ति प्राप्त होती है और तप, योग आदि सफल होते हैं। तप, जप, भोग, यज्ञ व्रत, दान आदि कुछ भी गुरु-सेवा के समान नहीं है।

पारब्रह्म गुरु रूप पछाना।

(रा० २।२।४५)

दसों सिक्ख गुरुओं को भी वे एकरूप मानते हैं, जो ब्रह्मरूप है और उनके प्रति उसकी पूर्ण निष्ठा है—

एको रूप सु दशगुर पारब्रह्म आनंदु।

(रा० १।९।२)

कवि ने 'हुक्म' गुरमुख एवं 'मनमुख' आदि के स्वरूप का निरूपण किया है और 'गुरु-वाणी गुरु-ग्रन्थसाहब', तथा 'खालसा पंथ आदि के प्रति अपनी श्रद्धा एवं निष्ठा प्रकट की है।

इस प्रकार भाई संतोखसिंह ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया तथा साधना-मार्ग के विविध तत्वों का विशदता एवं गम्भीरता से निरूपण किया है। उसके ये आध्यात्मिक विचार प्राय: गुरुमत (सिक्खमत) के ही अनुरूप हैं। वास्तविकता तो यह है कि सिक्ख-गुरु स्वयं ही यहाँ अपने मत को विविध प्रसंगों में व्यक्त करते हैं। कवि ने उनके माध्यम से अनेक परिसंवादों के अन्तर्गत भारतीय धर्म एवं दर्शन के अन्य मतों का भी निरूपण किया है, और विरोध मतों का खण्डन करने का प्रतिपादन किया है और इस तरह उनके युग के संदर्भ में गुरुओं के आध्यात्मिक विचारों, धार्मिक-आचरण तथा उपदेशों आदि की सार्थकता एवं महत्त्व का निरूपण किया गया है जो इस ग्रंथ का एक प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। किन्तु इसके अतिरिक्त गुरु-नानक प्रकाश की भाँति इस ग्रंथ का एक लक्ष्य और भी है। कोई भी महाकवि पूर्वकालिक पात्र, वस्तु, विषय या चिंतनधारा का चित्रण उस काल के संदर्भ में ही नहीं करता वरन् वह उनकी आधार

बनाकर अपने युग के परिवेश और संदर्भ में नई अर्थवत्ता भी प्रदान करता है। महाभारत एवं रामायण से न जाने कितने पात्र, आख्यान एवं प्रसंग इस तरह अनेक कालों में अनेक कवियों की कल्पना का विषय बनकर नई नई अर्थ योजना से आलोकित हो उठे हैं। ठीक इसी तरह भाई संतोखसिंह ने भी गुरुओं की आध्यात्मिक चिन्तनधारा को उसी रूप में ग्रहण करके तथा उसके महत्त्व का निरूपण करते हुए भी उसे अपने परिवेश तथा अपने युग के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उसमें कुछ ऐसे तत्त्वों का समावेश भी हो गया है, जो पूरी तरह गुरुमत के अनुकूल नहीं है। अवतारवादी-भावना तथा वैष्णवों, शैवों एवं शाक्तों आदि के साथ समन्वय का जैसा प्रयास कवि ने गुरु नानक प्रकाश में किया है, वह यहाँ भी दृष्टिगोचर होता है।

जैसा कि पहले कहा गया है भाई संतोखसिंह ने इस ग्रंथ की रचना कैथल में की थी, जोकि हिन्दुओं का एक प्राचीन तीर्थ स्थान है। कुरुक्षेत्र तथा पेहवा जैसे प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान भी इसी क्षेत्र में हैं। इन स्थानों पर वैष्णवों का अत्यधिक प्रभाव रहा है, और इन तीर्थ-स्थानों की पौराणिक कथायें लोक प्रसिद्ध हैं। इसी तरह हरियाणा में शिव की उपासना भी अत्यन्त लोकप्रिय रही है। अत: कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि इस परिवेश में भाई संतोखसिंह को सिक्खमत के साथ-साथ उनके सम्बन्ध के लिये प्रेरित किया हो। बहरहाल एक समन्वयवादी कवि ही युग-द्रष्टा एवं लोक नायक कवि हो सकता है।

भाई संतोखसिंह का अवतारवादी भावना में विश्वास है। सिक्ख गुरुओं को उन्होंने भवभार उतारने तथा 'तुरकान का तेज निवारने' के हेतु जगत में अलौकिक शक्ति सम्पन्न दिव्य-पुरुषों के रूप में चित्रित किया है। उनके चरित्र को दिव्य राम में प्रस्तुत करने के लिये उनकी अलौकिक एवं अतिमानवीय शक्ति का परिचय भी दिया गया है। दूसरे वे, गुरुओं के चरित्र की पौराणिक घटनाओं अथवा अवतारों आदि से समानता भी दिखाते हैं। यहीं नहीं कवि ने गुरुओं की राम, कृष्ण आदि विष्णु के पूर्व अवतारों से अभिन्नता का भी निरूपण किया है।

वस्तुत:, जिस प्रकार तुलसीदास ने काशी में रहकर वैष्णवों और शैवों का समन्वय किया था, उसी प्रकार भाई संतोखसिंह ने कैथल में रहकर सिक्खों तथा रूप एवं कृष्ण भक्त वैष्णवों के समन्वय का प्रयत्न किया। उन्होंने एक ओर वाल्मीकि की राम कथा' का अनुवाद किया, दूसरी ओर गुरु नानक के 'जपुजी' का भाष्य लिखा। यही समन्वयवादी प्रवृत्ति 'गुरु प्रताप सूरज' में देखी जा सकती है। उन्होंने कई स्थानों पर वैष्णवों की पूजा-विधि एवं संस्कारों में पुजारी-भावना का भी वर्णन किया है। देवी की उपासना उसके प्रकट होने तथा उसके स्तवन आदि का वर्णन भी निष्ठापूर्वक किया गया है। पुराणों का प्रभाव तो इस तरह छलछला रहा है कि किसी भी प्रसंग,

किसी भी परिसंवाद में उसे देखा जा सकता है। यदि इस ग्रंथ में आये हुए पौराणिक प्रसंगों एवं पात्रों आदि का पूरा विवरण प्रस्तुत किया जाये तो एक स्वतन्त्र ग्रंथ की रचना हो सकती है। 'अंगद, अंबरी, अगस्त्य, अग्नि, अदिति, अश्विनिकुमार, ईक्ष्वाकु, इन्द्र, कश्यप, कालिंदी, कल्पतरु, किन्नर, गंधर्व, यक्ष, कृष्ण, राम, गरुड, गणपति, गंगा, चंद्र, सूर्य, वृहस्पति, जनक, यमुना, कुरुक्षेत्र, दनु, दशरथ, दानव, दिति, द्रोपदी, धनद, द्वारावती, नारायण, नारद, पन्नग, परशुराम, प्रह्लाद, विश्वकर्मा, ब्रह्मा, ब्रह्माणी, भवानी, भागीरथी, भीषम, भृगु, मंकभक-मधु-कैटभ, मनु, युधिष्ठिर, अर्जुन, रुद्र, लव, लक्ष्मण, वशिष्ठ, विश्वामित्र, लक्ष्मीपति, लक्ष्मी, वामन, हनुमान, विधाधर, विश्वदेवे, विष्णु, व्यास, शिव, शनि, शारदा, सुवर्चला, आदि अनंत पौराणिक नाम इस ग्रंथ को एक विशिष्ट सांस्कृतिक आभा से मंडित करते हैं।

हिन्दुओं और सिक्खों की भावात्मक एकता एवं समन्वय का यह प्रयास इस ग्रंथ की एक अनुपम उपलब्धि है।

सांस्कृतिक-चेतना का जो आलोक इस काव्य में है, तथा सत्य, न्याय, सदाचार, आत्मशुद्धि, भक्ति, संयम, संतोष, सेवा, त्याग, दया, परोपकार आदि के द्वारा मानवीय मनोवृतियों का उन्नयन करके लोकमंगल की जिस भावना को इसमें प्रश्रय दिया गया है, वैभव एवं विलासपूर्ण रीतिकालीन साहित्य में उसका प्राय: अभाव है। इस दृष्टि से यह एक अद्वितीय रचना है।

वस्तुत: भाई संतोखसिंह ने प्राचीन भारतीय अध्यात्म चिंतन के आलोक में सिक्खमत का निरूपण करते हुए, उसमें अपने युग की परिस्थितियों एवं परिवेश के अनुरूप राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का समावेश करके एक महनीय कार्य किया है।

भाव-सौन्दर्य

किसी भी रचना की सफलता मानवीय मनोवेगों-संवेदनाओं की सफल अभि-व्यञ्जना पर निर्भर होती है। 'गुरु प्रताप सूरज' यद्यपि धार्मिक-भावना से ओत-प्रोत एक कथा-प्रधान काव्य है, और उसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त एवं उपदेशात्मक वृत्तान्तों की बहुलता है, तथापि भावों एवं मनोवेगों की भी कवि ने भव्य व्यञ्जना की है। कवि का भाव क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसने सभी स्थायी-भावों की विशद अभि-व्यञ्जना की है। इस रचना में काव्य-शास्त्र में निरूपित सभी रसों की निष्पत्ति हुई है। धर्म-प्रधान रचना होने के कारण मुख्य रस शान्त है। उसके पश्चात् वीर रस का स्थान है। अद्भुत, करुण, बोभत्स, शृंगार, भयानक, रौद्र, वात्सल्य आदि का भी पूर्ण परिपाक हुआ है।

भक्ति-भावना सम्बन्धी स्थल इस रचना में बड़ी संख्या में मिलते हैं। उनमें परमात्मा के महात्मय-ज्ञान एवं भक्तों की दीनता, विनय, अनुपात, ग्यानि, पश्चाताप, निष्ठा, श्रद्धा, अनुराग, आत्म-समर्पण, आकुलता, अधीरता, उत्सुकता, स्मरण, उन्माद,

विश्वास, हर्ष एवं उल्लास आदि के साथ अश्रु, स्वरभंग, स्तम्भ, रोमांच आदि सात्त्विकों की भी भव्य व्यन्जना हुई है। भक्ति-भावना सम्बन्धी कुछ संक्षिप्त उदाहरण देखिये—

तोसो नहीं दाता कोउ, मोसों न भिखारी दीन,
तो सो न दिआल, दुखी मोसो न अलाइए ॥

× × ×

तुम सो वड़ो है कौन, मों सो कौन छोटो।
तुम सो खरो है कौन, मों सो खोटो कौन ॥

× × ×

दीनबंधु निज बिरद संभारहु। हम से अधम जीव को तारहु ॥

संसार की असारता, शरीर की क्षण-भंगुरता, सांसारिक सम्बन्धों की अस्थिरता एवं सुख-दु ख के प्रति निरपेक्षता आदि का चित्रण करके 'निर्वेद' की अभिव्यन्जना भी अनेक स्थानों पर की गई है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

देखहु जग सनेहु की चाली। इक दिन भरे, एक दिन खाली।
कवहूं हरे. शुशक कत्रि जावहिं। कवहूं जनम, कवहूं विनसावहिं ॥ ७ ॥
कवहूं मेला, कवि बिरहि दुहेला। कवि संकट, कवि होति सुहेला।
सदा प्रणामवंति जग अहैं। नहीं एक रस थिरता गहै ॥ ८ ॥
मिलिवे ते हरखहि नहिं ग्यानी। बिछुरे शोक न दुख को जानी।
लखहि कूर नहिं करहि सनेहा। विनस जाई जवि क्यों दुःख लेहा ॥ ९ ॥
जो वसतू नित इक रस रहै। करि अनुराग तिसहि उर लहै।
सदा शांति चित संत उदारा। तिन को वंदन अहै हमारा ॥ १० ॥

(रा० ७/२३)

वीररस— से सम्बन्धित लगभग ८-१० हज़ार छंद इस ग्रंथ में उपलब्ध हैं। कवि ने गुरु हरिगोविंद तथा गुरु गोविंद सिंह के सभी युद्धों का अत्यन्त विशद चित्रण किया है। प्रत्येक युद्ध की पृष्ठभूमि देकर युद्ध-कथा का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन युद्ध वर्णनों में पूर्णता. सजीवता, विशदता एवं ओजस्विता है और वीर रस की भव्य-व्यन्जना हुई है। लोहगढ़, भंगाणी, आनन्दपुर तथा चमकौर के युद्धों का चित्रण इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सभी युद्धों में कवि ने युद्ध की तैयारी सेना की साज-सज्जा; सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र एवं वेषभूषा; सेना-प्रस्थान; रण वाद्यों की ध्वनि; धौंसों की धुंकार; खड्गों, भालों तथा अन्य शस्त्रों की चमक-दमक; अश्वों की हुंकार; हाथियों की चिंघाड़; योद्धाओं की भिड़न्त; प्रहार-प्रतिप्रहार; अस्त्र-शस्त्रों की कटाकट; तोपों व बन्दूकों की दनादन-तड़ातड़; वीरों के उत्साह; उनकी गर्व-पूर्ण उक्तियाँ, ललकार प्रतिललकार, उनके पौरुष, शौर्य, साहस, धैर्य एवं

निर्भीकता ; उनकी युद्ध-कुशलता एवं ओजपूर्ण अनुभावों ; टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्रों, क्षत-विक्षत योद्धाओं एवं अश्वों आदि से रक्त-रंजित तथा उन पर मुंडराते गिद्धों-श्रृगालों से वीभत्स दृश्य प्रस्तुत करने वाली युद्ध-भूमि आदि का अत्यन्त यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है।

'गुरु प्रताप सूरज के युद्ध-वर्णन पर 'रासो ग्रथों' एव 'दशम ग्रंथ' के युद्ध-वर्णन का पर्याप्त प्रभाव है। योद्धाओं के भीषण प्रहार-प्रतिप्रहार, प्रचंड 'द्वन्द्व' युद्ध, एवं उनके साहस शौर्य तथा उत्साह का चित्रण करने में कवि को विशेष सफलता मिली है। युद्ध-विद्या, युद्ध-नीति, एवं युद्ध-कौशल का भी परिचय दिया है। वे प्राय: दोनों पक्षों के वीरों के शौर्य को प्रकट करते हैं। गुरु पक्ष के वीरों में उदात्तता है और उनके आदर्श की सर्वत्र रक्षा की गई है। कवि ने विजय पर हर्षोल्लास एवं भागती हुई सेना की दुर्दशा का भी चित्रण किया है तथा सैनिकों के मनोविज्ञान पर भी प्रकाश डाला है।

वीर रस से सम्बन्धित कुछ उदाहरण देखिये—

(ख) यौं कहि पीस के दांत परे गुरु ऊपर एक ही बारि घने।
होति भए थिर थंभ मनो गन छोरति बान को कोप सने।
अग्र जु आवति तां उथलावति, ज्यों बड गाज मुनारे हने।
कान प्रमान लौ तानि चलावति मारे अनेक ही कौन गिने।
(रा० ६/११/२८)

× × ×

(ग) तुफंग छोरि छोरि कै। खतंग चांप जोरि कै।
प्रहारि शत्रु गेरते। परे बिहाल टेरते ॥ २९ ॥
तुरंग अंग अंग ह्वै। गिरंति सूर संग ह्वै।
तजंति फेर धाइ हैं। परंति एक आइ हैं ॥ ६० ॥

× × ×

तुफंगै। उतंगैं। उठाई। चलाई।
कमानैं। सुतानैं। प्रहारैं। संहारैं।
जुझारैं। प्रचारैं। उभारैं। दुधारैं।
प्रचंडे। उमंडे। घमंडे। सुखंडे।

'गुरु प्रताप सूरज' में वर्णित युद्धों को धर्मयुद्ध का नाम दिया गया है क्योंकि वे अत्यचार, अन्याय, असत्य एवं अधर्म के विरुद्ध लड़े गए हैं। पंजाब में 'दशम ग्रंथ' से लेकर ऐसे अनेक वीरकाव्यों की रचना हुई है, जिनमें वीरता के उदात्त रूप की अभिव्यञ्जना हुई है। 'गुरु प्रताप सूरज उसी परम्परा की रचना है। यह काव्य सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना से युक्त वीर रस का एक आदर्श रूप प्रस्तुत करता है, जिसका रीतिकालीन 'वीरकाव्यों' में एक विशिष्ट स्थान है।

गुरु प्रताप सूरज में शृंगार-रस का निरूपण अत्यन्त सीमित एवं मर्यादित है। भाई संतोखसिंह 'रीतिकाल' की काल-सीमाओं में आते हैं, किन्तु उस युग की शृंगारिक भावना, विलासिता, कामुकता एवं रसिकता की प्रवृत्तियों से वे सर्वथा मुक्त हैं। उन्होंने कहीं भी नायक-नायिकाओं की रसिक मनोवृत्ति, कामोत्तेजक चेष्टाओं भाव-भंगिमाओं एवं हावों-अनुभावों आदि का चित्रण नहीं किया। जहाँ कहीं भी प्रणय भाव का चित्रण किया गया है, उसमें पवित्रता, शुद्धता एवं उच्चता है। विरह के अन्तर्गत भी लालसा, व्रीडा, चिंता, आशंका, आकुलता, अधीरता, औत्सुक्य, दर्शनाभिलाशी आदि मनोवेगों एवं अश्रु, वैवर्ण, स्वरभंग, क्षीणता, स्तम्भ आदि सात्त्विकों की अत्यन्त स्वाभाविक संयत एवं मार्मिक व्यञ्जना की गई है।

एक उदाहरण देखिये—

गुरु शरीर को चितवन करती। निसिदिन ध्यान रिदे पति धरती।
दुरबल तन जिसको हुई गयो। शोक पराइन चित्त मित थयो।
पीत वदन आँसू द्रिग गेरति। नहीं समीप कंत को हेरति।
शसत्र दरस कै भोजन खावै। अलप अहार कछू नहिं भावें।
इम अपनी बय सकल बिताई। प्रिय पति महिं चितव्रिति लगाई।
(एन २। १५। ३८-४१)

भाई संतोखसिंह के शृंगार-वर्णन में ऐसी उदातत्ता है जो उच्च मानवीय-वृत्तियों को प्रश्रय देती है कुत्सित एवं अनैतिक वृत्तियों को उत्तेजित नहीं करती। नारी-सौन्दर्य के चित्रण में कहीं-कहीं परम्परागत उपमानों से काम अवश्य लिया गया है। यथा—

सुंदर सरवंगन बिखै तरुनी गन हेरी।
आंख कमल की पांखरी चलचाल धनेरी।
बिधु वदनी सुक्रिशोदरी, सुठ श्याम सुकेसी।
गज गमनी सुर कोकला कट केहरी जैसी। २१।
कंठ कपोती सुंदरी, सम ओठ प्रवाला।
जोगिन के धीरज हरैं ऐसी गन वाला।
आन देश अवनी बिरवें तिस देश समाना।
अबला कितहूं होति नहिं अस रुचिन महाना। २२।
(रा० १। ३१)

गुरु हरिगोविंद तथा गुरु गोविंदसिंह के जन्मोत्सवों, शैशव तथा बाल्यावस्था के रूप सौन्दर्य, वेशभूषा, शिशु-कौतुक, एवं मनमोहक बाल क्रीडाओं में **वात्सल्य-रस** को बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है। साथ ही उनके माता-पिता की अभिलाषा, स्नेह, हर्ष, उत्सुकता, चिंता, आशंका, आकुलता, हित-भावना, उल्लास, उत्कंठा एवं अधीरता

आदि मनोवेगों की भी भव्य व्यन्जना हुई है। इस प्रकार के वर्णनों में सूर का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। कुछ बाल-लीलायें कृष्ण की बाल-लीलाओं के समकक्ष हैं। ऐसे स्थलों पर अवतारवादी भावना के भी दर्शन होते हैं। कवि ने कुछ सर्वथा नवीन प्रसंगों की भी उद्भावना की है, जो देशकाल के अनुरूप हैं और अत्यन्त मनमोहक हैं। उनमें बालकों का चंचल एवं उद्दण्ड क्रीडाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। **वात्सल्य वर्णन** में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। उसमें सजीवता, स्वाभाविकता रमणीयता एवं मार्मिकता है शायद ही किसी प्रबन्ध काव्य में वात्सल्य का इतना विशद एवं मार्मिक चित्रण हुआ होगा, जितना इस काव्य में हुआ है।

एक उदाहारण देखिये—

अंग शनान कराइ विधान सों सूंघति भाल ज्यो आनंद बारी।
अंबर को पहिराइ विभूपन लौन सु गई लं ऊपर बारी ॥ १४ ॥
दधि ओदन को अचवाई भले अनमोदन नंदन मात करे।
बहु चंचलता जुति अवति जाति इते उत होवति आनि थिरे ॥ १५ ॥
किलकंति हसंति हसावति औरनि भावति ही मुख दोख हरे।
शुभ शोभ धरे परयंक चरें, कब्रि फेर फिरें निज खेल ढरे ॥ १६ ॥
हाथ गडीरन पै धरि कै पद मंद ही मंद उठावनि लागे।
सुन्दर श्री मुख ते बिकसावति शोभति दंत अमी जनु पागे ॥ १७ ॥

(रा० १२ । १७)

ऐसे **करुणापूर्ण** प्रसंग भी इस रचना में अनेक आये हैं जहाँ शोक-संतप्त व्यक्तियों की व्यथा, व्याकुलता, विह्वलता, उद्वेग, अनुताप, प्रलय, अश्रु, वैवर्ण्द, दुख, विषाद, जडता, स्तम्भ, वैपुथ, उन्माद, मूर्च्छा, प्रलाप, रोमांच, अधीरता, भूमिपतन, विश्वास, केश-उखाडना, अपस्मार, व्याधि आदि की मार्मिक-अभिव्यञ्जना की गई है। विशेष रूप से हरिपुर राजकुमार, पृथिए, गुरु अर्जुनदेव, तथा गुरु गोविंदसिंह के साहबजादों की मृत्यु के प्रसंगों में ऐसे ही शोकपूर्ण-मनोवेगों की व्यंगजना हुई है। एक उदाहरण प्रस्तुत है। जुझारसिंह की हत्या का समाचार सुनकर उनकी दादी गुजरी जी की शोकाकुल अवस्था का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है—

सुन्यो बाक श्वर बान समान। लग्यो कान बिंध रिदा निशान।
ऊपर तर के जुटि गए रदनं। भयो दरद ने ज़रद सु बदनं ॥ २९ ॥
खुशक होइ मुखि लाग सुलाटी। जनु कदली तरु की जड़ काटी।
तरफराति मूरछा को पाई। गिरी विसुध ह्वै सुधि नहिं काई ॥ ३० ॥

× × × × ×

पुत्र जुझारसिंह लिहु नाले। मुझ ते पूरब तुम कित चाले।
कहा इकाकी मैं रहि करिहौं। इस प्रकार मैं तूरन मरिहौं ॥ ३३ ॥

× × × × ×

इम कहि ते दुख लखि करि भारा। बुरज साथ बल ते सिर मारा ॥ ३४ ॥

(रि० ६। ५२)

अद्भुत रस से सम्बन्धित अनेक विस्मयजनक, एवं चमत्कारपूर्ण घटनायें इस काव्य-ग्रंथ में आई हैं जिनमें विस्मय विमुग्ध लोगों के अनुभावों आदि का भी सजीव चित्रण हुआ है।

इसी प्रकार भयानक, वीभत्स, हास्य, एवं रौद्र आदि रसों का भी इसमें पूर्ण परिपाक हुआ है और उनसे सम्बन्धित विविध सात्विकों, संचारी भावों एव अनुभावों आदि की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। इन प्रमुख भावों के अतिरिक्त असूया, पश्चाताप, ग्लानि, ईर्ष्या, द्वेष, अनुताप आदि मनोवेगों की भी कवि ने भाव अभिव्यञ्जना की है।

वस्तुत:, भाई संतोखसिंह मानवीय भावों के सच्चे पारखी और उनके कुशल चितेरे थे। वे एक अनुभूति शील कवि थे, यही कारण है कि मानवीय मनोवेगों की व्यञ्जना में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। उनकी भाव-व्यञ्जना में अनुभूति की तीव्रता, गहराई, एवं मनोवैज्ञानिकता है। एक लोकनायक कवि की भाँति भाई संतोखसिंह ने मानवीय सद्वृत्तियों को उभारने तथा उनके मनोवेगों के परिष्कार एवं उन्नयन का स्तुत्य कार्य किया। उनकी भावाभिव्यंजना में, चाहे वह प्रेम से सम्बन्धित हो, या घृणा से चाहे साहस और उत्साह से प्रेरित हो या क्रोध से सर्वत्र उदात्तता है।

वस्तु सौन्दर्य

कथावस्तु में रोचकता एव सरसता लाने के लिये कवि प्राय: उसमें वस्तु-सौन्दर्य का भी समावेश करते हैं। संस्कृत महाकाव्यों में तो बर्बस ऐसे वर्णनों की योजना की जाती थी, जिनमें कवि की अपनी कल्पना-शक्ति एवं चित्रात्मक-प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिल सके। रीतिकालीन काव्यों में भी इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं किन्तु उनमें कोई विशेष ताज़गी या नवीनता नहीं है। वही परम्परित वर्णन-पद्धति दृष्टिगोचर होती है।

'गुरु प्रताप सूरज' में कवि ने प्रकृति-सौन्दर्य तथा नगरों, वनों, उपवनों, ग्रामों, घोड़ों, पशु-पक्षियों, तम्बुओं, स्त्री-पुरुषों के सौन्दर्य, वेशभूषा, आभूषणों, सभा मंडपों, विवाह, युद्ध, आखेट एवं होली आदि पर्वों के अत्यन्त विशद, सजीव, स्वाभाविक एवं मनोहर चित्र उपस्थित किये हैं। ये सभी वर्णन प्रसंग एवं देश-काल के अनुरूप हैं, तथा उन्हें कथा की आवश्यकता के अनुपात से ही अपेक्षित विस्तार दिया गया है। वे कथानक की गति एवं प्रवाह में बाधा उपस्थित नहीं करते, वरन् उसे सरस, रोचक एवं काव्यमय बनाते हैं।

युद्धों एवं विवाहों आदि का कवि ने विशेष रूप से विशदता से वर्णन किया है। इन वर्णनों के आरम्भ से अन्त तक के सारे विवरण देकर पूर्ण बनाया गया है। युद्ध-वर्णन पर वीररस की स्थापना के अन्तर्गत प्रकाश डाला जा चुका है। जहाँ तक विवाहों के वर्णन का प्रश्न है देखिये गुरु हरिगोविंद के विवाह का वर्णन कवि ने कितनी तन्मयता एवं विशदता से किया है—

"गुरु अर्जुनदेव श्वेत वस्त्र धारण किये हुए सभा में विराजमान हैं, मानो उडगन में चन्द्रमा शोभित हो रहा हो। अनेक सुन्दर शस्त्राभूषण पहने पुरवधुएँ कोकिल के समान मधुर स्वर में गीत गा रही हैं। उन सभी के नेत्र प्रसन्नता से प्रफुल्लित हैं। निकट बैठी स्त्री ढोलक बजा रही है, एक मंगल गा रही है एक नृत्य कर रही है; एक विहंसति हुई ताली बजा रही है। आभूषणों की रुनझुन झंकार हो रही है। इस प्रकार घर के बाहर भी यह उत्सव उल्लास पूर्वक मनाया जा रहा है। नौबति, नफीरी, तंबूरा एवं मृदंग बाजे बज रहे हैं। कलावती गीत गा रही है, सोम मंगल गा रहे हैं, भाट यशोगान कर रहे हैं। मां आनन्द में भर कर अपने हाथों से पुत्र का शृंगार कर रही है, और अनेक सुन्दर आभूषण पहना रही है।" (रा० ४ । ५ । ७-८)

विवाहोत्सव के ऐसे उल्लास एवं आनन्दमय अनेक चित्र इस ग्रंथ में मिलेंगे।

कवि ने सगाई तथा विवाह की तैयारी तथा उसके पश्चात् बरात की चढ़ाई आदि का विस्तृत वर्णन किया है। उस समय धौंसा, डफ़, पणव, पटह, तुरही, नफीरी, छैणे ढोल, बांसुरी आदि विवध वाद्यों की ध्वनि से एक अनोखा उल्लासपूर्ण वातावरण प्रस्तुत हो जाता है। फिर सभी बराती बहलों, घोड़ों आदि पर सजधज कर उछलते कूदते आनन्द में भरे वधू के नगर की ओर प्रस्थान करते हैं। वहाँ उनका कैसे स्वागत होता है। दोनों पक्षों में किस प्रकार हर्ष और उल्लास छा जाता है, बाजों की ध्वनि सुनकर कैसे नगर वधुयें दुल्हा को देखने दौड़ती हैं, उसके पश्चात् बरात की छवि, आतिशबाज़ी, विवाह-संस्कार, बरात का भोजन और उसके विभिन्न स्वादिष्ट व्यञ्जन वधुपक्ष की स्त्रियों के मंगलगान, दहेज दिखाने और बारात की विदाई आदि का पूरे ब्योरे के साथ स्वाभाविक एवं यथार्थ वर्णन किया गया है। विदाई के समय वधू के पिता की विनय तथा उसकी माता आदि के स्नेह पूर्ण रुदन आदि का वर्णन करना भी वे नहीं भूले। विवाह के यह वर्णन यहीं समाप्त नहीं हो जाते। वरन् लौटती हुई बारात के उल्लास का तथा वापिसी पर वर पक्ष के आनन्दोत्सव एवं वधू को देखकर वर की माता तथा अन्य स्त्रियों को प्रसन्न होने आदि का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार कवि ने विवाह के विस्तृत, सजीव मनोहर वर्णन किये हैं।

इसी प्रकार नगर, सभा, मंडप आदि के वर्णन भी चित्रात्मक एवं सजीव हैं। 'आखेट' का एक चित्र देखिए—गुरु हरिगोविंद बड़ा से सिंह का शिकार कर रहे हैं—

सिर उपरि जबि आवनि लागा। आड़ सिपर को रोकसि आगा।
रह्यो ओज करि अग्र न आवा। ढाल झंझोरनि बदन चलावा। ३०।
तिंह छिन गुरु शमशेर निकासी। तीखन भीखन चलि चपला सी।
रुप्यो पाई दिढ खंभ समाना। नहीं थान ते चलै सु जाना। ३१।
कोप गुरु के नूख पर छायो। भ्रिकुटी नचति लाल हुई आयो।
फरकति अधर अरुन दिगमय। सिपर धकेला पूरब दए। ३२।
जुग पग मुख ढाले पर तीनि। हरि पीछे तन ऊंचो कीनि।
दाहन कर करे बल करि सारा। खडग तुलादी गुरु प्रहारा। ३३।
कर ते करि करि दो धर पर्यो। कराचोल धरनि महिं बर्यो।
गेरि शेर शमशेर निकारी। रिस ते बहु बल संग प्रहारी। ३४।
(रा० ६। २३)

शेर के शिकार का ऐसा ओजस्वी साहसपूर्ण, सजीव एवं यथार्थ चित्र हिन्दी साहित्य में अन्यत्र शायद ही मिल सके। यहाँ कवि ने गुरु हरिगोविंद की कृपाशीलता, कार्य-कुशलता, पौरुष, साहस एवं उनके अनुभवों का सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है। यहीं नहीं इससे पूर्व वन की सघनता एवं विकटता पशुओं की भीषणता, आखेटक की कठिनाइयों आदि का भी विशद वर्णन किया गया है, जो शिकार के दृश्य को पूर्णता प्रदान कर देता है। शिकार करने वाले वीरों की वेष भूषा, उनके आयुधों तथा उनके अश्वों आदि की साज सज्जा आदि का वर्णन करना भी वे नहीं भूले।

इसी प्रकार होली का वर्णन भी एक विशिष्टता लिये हुए है। उनसे होली का मादक, स्वच्छन्द एवं आह्लादपूर्ण वातावरण ही प्रस्तुत नहीं होता वरन् युग-परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समता तथा वीरता और साहस से युक्त राष्ट्रीय भावना एवं सांस्कृतिक चेतना की भी अभिव्यञ्जना होती है।

गुरु गोविंद सिंह के होली खेलने का एक मधुर एवं सुरुचिपूर्ण चित्र देखिए—

बादर गुलाल के करति जात चले गुरु,
संगति मैं धूम पई फाग बडे खेलते।
घेरि घेरि वदन पै गेरि गेरि फेर फेर,
हेरि हेरि हरखति नर हुइ मेल ते।
उठै महिकार गंध पाइ पौन मंद मंद,
सीतल बहित सिख अंगन में झेलते।
निकसे आनंदपुर मानति आनंद ब्रिंद,
तीर सतद्रुव के गए हैं रेल पेलते॥ १०॥
कीने सिख संगति दुपास खरे आपस में,
डारि डारि मूठ पिचकारी सों भिरति हैं।

बदन शमश अरु केसरी पैं गयो जम,
रंग की फुहार फेर ऊपर ढरति है ।
बिसद बरन के बसन सो अरन्न भए,
मानों जंग जीत के विलसनि करति है ।

(रि० ३/२७)

गुलाल और अबंर से रंजित इन समूह चित्रों को कुछ हास्य विनोदपूर्ण प्रसंगों के समावेश से और भी मनोहर बना दिया गया है। इन संत-योद्धा सिंहों की होली का जैसा भव्य चित्रण इस ग्रंथ में हुआ है क्या रीतिकालीन कवि वैसा कहीं भी कर पाये ? विलासिता अथवा रसिकता तो इन प्रसंगों को छू तक नहीं सकी। सांस्कृतिक दृष्टि से इनका अत्यधिक महत्त्व है।

इसी प्रकार अन्य वर्णनों में भी सजीवता, यथार्थता भव्यता एवं चित्रात्मकता है और कवि ने उनमें अपनी चित्र-विधायिनी कल्पना शक्ति तथा काव्य-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है।

प्रकृति सौन्दर्य

भाई संतोख सिंह ने प्रकृति-सौन्दर्य का भी बड़ा भव्य चित्रण किया है। उन्होंने वन, उपवन, पर्वत, नदी, निर्झर, सरोवर, प्रभात तथा विभिन्न ऋतुओं का अत्यन्त स्वाभाविक, सजीव, चित्रात्मक एवं मनोहारी वर्णन किया है। इससे पूर्व हिन्दी में प्रकृति का चित्रण प्राय: उद्दीपन रूप में अथवा अलंकरण के रूप में ही हुआ है। भाई संतोख सिंह ने प्रकृति का स्वतन्त्र, एवं संश्लिष्ट चित्रण किया है, जिसका इस युग के साहित्य में सर्वथा अभाव है।

वनों एवं पर्वतों की मनोहर छटा का वर्णन कवि ने विशदता से किया है। पऊंटे में यमुना, वन तथा वन के पार्श्ववर्ती पर्वत का वर्णन उनके प्रकृति-प्रेम तथा चित्रात्मक काव्य-प्रतिभा को प्रकट करता है। वन की सघनता को प्रकट करने के लिए कवि ने बीहड़, पीपल, आम, कटहर, जामुन आदि लगभग ३० वृक्षों के साथ वहाँ विहार करने वाले मोर, कबूतर, तीतर, बटेर, कोकिल, कीर, पिक आदि पक्षियों तथा मृग, नील, गाय, केहरी, भालू, सूअर आदि पशुओं की गणना भी की है, किन्तु बीच-बीच में वृक्षों, झाड़ियों, लताओं आदि के विस्तार, उनके स्वरूप एवं शोभा आदि का वर्णन करके परम्परा से चली आती वस्तुओं के 'नाम-परिगणन' की परिपाटी को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसे वर्णनों में कवि वहाँ के यथार्थ बिम्ब प्रस्तुत करने में पूरी तरह सफल रहा है। इसी प्रकार हेमकूट पर्वत का वर्णन करते हुए कवि ने वहाँ की पर्वत श्रेणी, नदियों, झरनों, वृक्षों, घास, फल-फूलों, पशु-पक्षियों, लताओं एवं वहाँ के तपस्वियों तक का सर्वांगीण चित्र सजीवता से प्रस्तुत किया है।

वस्तुत:, कवि का प्रकृति-प्रेम उन्हें बार-बार ऐसे रम्य स्थलों की ओर ले जाता है, जहाँ वे नदी, झरनों, सरोवर, उपवन, वनों आदि का मनोहर वर्णन कर सकें। गोस्वामी तुलसीदास के प्रकृति-चित्रण से इनके प्रकृति-चित्रण की तुलना करने से इनका वैशिष्ट्य स्वयं सामने आ जाता है। गोस्वामी जी तो अवसर मिलने पर भी प्रकृति-सौन्दर्य की उपेक्षा कर जाते हैं, जबकि भाई संतोखसिंह ऐसे अवसर की टोह में रहते हैं, जब वे अपने प्रकृति प्रेम एवं अपनी वर्णन-क्षमता का परिचय दे सकें।

झरनों का एक छोटा सा चित्र देखिए—

हेमकूट परबत बिसतारा। झरने झरहिं अनेक प्रकारा ।। २ ।।
निस बासर जिन महिं धुनि भारी। सुन्दर बिमल प्रवाहति बारी।
कहूं वेग सों चलहि सजोर। कहूं भ्रमरका परहि बिलोर ।। ३ ।।
फटक समान स्वच्छ जल सुन्दर। नारे बहैं मीन गन अंदर।
कहूं फैन उज्जल निधि रूरं। कित सुनयति धुनि दूरहदूरं ।। ४ ।।
(रा० ११।४९)

नदियों का वर्णन करते हुए ऋतुओं के अनुसार उनकी गम्भीरता, स्वच्छता, मलिनता, मंदता, तीव्रता आदि का भी वर्णन किया गया है। उपवनों के वर्णन में उसके पुष्पों, वृक्षों, फलों लताओं, पक्षियों एवं सरोवर आदि की शोभा का चित्रांकन किया गया है। सभी ऋतुओं का भी कवि ने स्वाभाविक एवं मनोहारी वर्णन किया है। ऋतुओं के वर्णन में विरहणियों पर पड़ने वाले उनके प्रभाव ने कवि को आकर्षित नहीं किया, वरन् उसका ध्यान तो उनके प्राकृतिक सौन्दर्य पर रहा है। उनके स्वाभाविक, सहज वातावरण को प्रस्तुत करके सामान्य-जन पर पड़ने वाले उनके प्रभाव को अवश्य चित्रित किया गया है। वर्षा ऋतु का यह मनोहर दृश्य देखिए—

बिदते जलधर गगन मझारी। ज्यों तन धरहिं संत उपकारी।
कल्लर खेत सकल थल बरखैं। देखि देखि करि जनगन हरखैं ।। ५ ।।
घुमडी घटा घरीक महिं घनी। घोर घोर घन चपला सनी।
बडी बडी बूंदै बहु परी। बरसन लग्यो अधिक भी झरी।
जित कित नीर प्रवाह चलंता। ऊचे थल से नंम्रि ढरंता।
धाइ धाइ नर धामन वरे। बारी बहै विलोकन करे।
दल मनिंद घन घने दिसावहिं। इक आवति बरखति इक जावहि।
× × × × × × ×
सरिता को प्रवाह बहु बाढा। जुग कंठनि ते जल कहु काढा।
बडे वेग ते बगहि प्रवाहू। काशट बहे जाइगन माहूं।
नीर नवीन मलीन सुपीन तरु जुति तट को ढाहनि कीनि।

× × × × × × ×

काशट संचय बहु बहैं। जलजंतु उछलति सुख लहैं।
बिना धूल ते सैल बिसाले। खरे तरोवर फलति रसाले।
हरिआवल होइ सभि रवनी। इंदुवधू जुति देखति अवनि ॥

इसी प्रकार भाई संतोखसिंह ने वसन्त, शीत, ग्रीष्म, आदि ऋतुओं के भी संश्लिष्ट एवं सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं और उनका वास्तविक वातावरण चित्रित करने में उन्हें अद्‌भुत सफलता मिली है।

भाई संतोखसिंह के वस्तु-वर्णन, प्रकृति-चित्रण एवं भाव-व्यञ्जना को देखने से पता चलता है कि वे एक इतिहास-वेत्ता, दार्शनिक तथा युग चेता समन्वयवादी लोक-नायक ही नहीं थे वरन् मानवीय संवेदनाओं तथा विविध वस्तुओं का रमणीक चित्रण करने वाले एक सक्षम एवं समर्थ कवि भी थे।

अंलकार-सौन्दर्य

भारतीय काव्य-शास्त्र में इस विषय पर बड़ा विवाद रहा है कि काव्य में अलंकारों का क्या स्थान है। वे काव्य के स्थिर अथवा अनिवार्य तत्त्व हैं अथवा अस्थिर। भले ही हम अलंकारवादियों के इस मत से सहमत न हों कि अलंकार काव्य की आत्मा है अथवा उसके शोभाकारक स्थिर धर्म हैं, किन्तु इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि काव्य में भाव, वस्तु एवं विचार आदि के उत्कर्ष में अलंकार अत्यधिक साधक होते हैं।

हिन्दी में रीतिकालीन कवियों ने तो अलंकारों का अत्यधिक चमत्कारपूर्ण प्रयोग किया है। जो कहीं-कहीं मात्र पांडित्य-प्रदर्शन के लिए आए हैं और उनमें काफी कृत्रिमता आ गई है।

भाई संतोखसिंह अलंकार को रस अथवा ध्वनि का उत्कर्ष करने वाले तत्त्व मानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अलंकारों का प्रयोग इसी रूप में किया है। यद्यपि मंगलाचरण में कुछ ऐसे छन्द भी हैं जिनमें चमक, एवं श्लेष आदि शब्दालंकारों का चमत्कारपूर्ण प्रयोग हुआ है। 'मंगलाचरण' का विवेचन करते समय ऐसे दो उदाहरण पीछे दिये गये हैं, किन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा कवि ने रीतिकालीन काव्य-पद्धति का निर्वाह करने के लिये अथवा कवि-समाज को अपने अलंकार-ज्ञान का परिचय देने मात्र के लिये किया है, अन्यथा अन्यत्र सम्पूर्ण ग्रंथ में उन्होंने अलकारों का बड़ा ही सुरुचिपूर्ण एवं सार्थक प्रयोग किया है। निःसन्देह, अलंकार-शास्त्र का उन्हें विशद ज्ञान और 'गरब गंजनी' में वे इसका यथेष्ट परिचय दे चुके थे। 'गुरु प्रताप सूरज' में अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्ति-प्रकाश, वीप्सा आदि शब्दालंकारों; तथा उपमा, अनन्वय, रूपक, प्रतीप, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तुपमा, अप्रस्तुत प्रशंसा,

अर्थान्तर न्यास, दृष्टान्त, उदाहरण, दीपक, निदर्शना, परिकर, व्यतिरेक, विनोक्ति, विभावना, परिसंख्या, विरोधाभास, विषम, व्याजस्तुति, संदेह, भ्रम, अपह्नुति, संकर आदि विविध अर्थालंकारों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्य मूलक अलंकारों की तो मालायें जड़ी हुई हैं। दृष्टान्त तथा उदाहरण भी बड़ी संख्या में आये हैं। बड़े-बड़े रूपक बांधने में भी कवि ने कुशलता दिखाई है किन्तु इन सब अलंकारों का प्रयोग, विषय अथवा भाव आदि का उत्कर्ष करने के लिये ही किया है। गुरु जी के चरित्र की महत्ता स्थापित करने के लिये, गुण एवं स्वभाव चित्रण के लिये, घटनाओं के वर्णन में सजीवता लाने के लिये, कार्य-व्यापार में तीव्रता लाने के लिये, दार्शनिक अथवा नैतिक सिद्धान्तों की स्पष्टता के लिये अथवा भावों की तीव्र अभिव्यञ्जना आदि के लिये ही उनका अत्यन्त स्वभाविक एवं सुरुचिपूर्ण प्रयोग किया गया है। उनमें कहीं भी कृत्रिमता अथवा अस्वाभाविकता नहीं है और न ही कवि ने ज़बरदस्ती अलंकारों के भरने की चेष्टा की है। जहाँ कहीं आवश्यकता हुई वहीं काव्य के उत्कर्ष हेतु उनका प्रयोग किया गया है। यही कारण है कि उनके अलंकारों में एक अनूठा सौन्दर्य है, सौष्ठव है। कवि ने इस ग्रंथ के नामकरण में जिस प्रकार के भव्य रूपक की योजना की है, वह हमारे कथन को पुष्ट करता है। यहाँ कुछ और भी उदाहरण प्रस्तुत हैं।

'उपमा' एवं 'रूपक' की सहायता से कवि ने गुरु जी की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है—

बीच विराजहिं सतिगुरु वैसे। सभि ग्रह मैं सूरज जैसे।
निसा अविद्या निकट न आवै। निंदक तसकर देखि पलावै॥ ३॥
पेचक वेमुख अंधे रहे। नहीं प्रकाश महातम लहै।
संत कमल विकसे हरखाए। अलि जग्यासी जहिं मंडराए॥ ४॥
मति बहु रीति उडग जगमांही। परम प्रकाश सु पावति नाहीं।
कैरव कानन गन दुरचारी। सभि मुरझाइ रहे तिस बारी॥ ५॥
सदगुन जुति नर जागत भए। विषइ जीव तमचर सुपताए॥ ६॥
(१ रा० १/२७)

यहाँ गुरु जी को सूर्य सदृश बताकर अविद्या रूपी रात्रि, निंदक जन रूपी चोर, विमुख जन रूपी पेचक (उल्लू), संत रूपी कमल, जिज्ञासी व्यक्ति रूपी भ्रमर, विविध मत-मतान्तर रूपी उडगन, दुराचारी रूपी कुमुद तथा विषयी-जन रूपी चमगादड़ आदि पर पड़ने वाले उनके अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव की व्यञ्जना बड़ी कुशलता से की गई है। इसी प्रकार 'निदर्शना' अलंकार के माध्यम से दुष्टों के कुटिल 'स्वभाव' को इस प्रकार प्रकट किया गया है—

सिकता महिं ते जतन करि तेल जु निकसावै।
कमठ पीठ पर भांति किस बहु बार जमावै।
सिर पर राशभ ससे की उगवाई बिखाना।
तौ दुशरमि के रिदे महिं गुण करहिं महाना।
जो सरपन मन म्रिदुलता क्यों हूँ हुइ जाई।
तउ दुशटनि के सरलता उर महिं उपजाई।

(रा० ३/२५/३२/३३)

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, अधिक आदि अलंकारों की सहायता से भावों एवं मनोवेगों की अत्यन्त मार्मिक एवं तीव्र व्यञ्जना की गई है। गुरु गोबिंदसिंह के 'उत्साह' की व्यञ्जना 'वाक्यार्थोतपमा के रूप में इस प्रकार की गई है—

(१) गिरपति को तोरौं हंकारा, जथा मसत गज तरु बड डारा।

बाबा बुड्ढे के शाप से आशंकित गंगा जी की मनोदशा 'वाक्यार्थोपमा के रूप में—

(२) सुने कंपमान भइ, पौन लगे केला जिम सूक्यो।

जहांगीर के मन की घबराहट की व्यञ्जना इसी अलंकार में—

(३) हौल रह्यो दिल टिकहि न कैसे। दीप सिखा बहि वायु जैसे।

स्त्रियों के 'हर्षोल्लास' की व्यञ्जना 'वस्तूत्प्रेक्षा' के रूप में—

मुख हसति चलति जे हसति चालि।
जनु अनंद उदधि महि मीन जाल।

सिक्खों के 'उल्लास' एवं 'आनंद' का चित्रण अधिक अलंकार की सहायता से—

गुर पुरी घोट उत्सव विसाल।
जनु विच न भेय वहिर उछाल।

विवाह के अवसर पर दोनों पक्षों के उल्लासपूर्ण मिलन का चित्रण 'उत्प्रेक्षा' के रूप में—

दूंहि दिशिनि मेल इस रीति कीनि।
जनु घोखि घोखि घन मिलति पीन।

इसी प्रकार, प्रेम, घृणा, क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष, लज्जा, संकोच, विवशता, लोभ, व्याकुलता, अधीरता आदि विविध मनोवेगों की मार्मिक-व्यञ्जना के लिये कवि ने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु बड़े ही स्वाभाविक एवं सहज रूप में—

गुरु हरिगोविंद की शैशव अवस्था में उनके मस्तक पर लगे हुए श्याम बिंदु की कल्पना अमृत के पंक में धंसे हुए 'अलिबालक' से की गई है और उसे 'उत्प्रेक्षा' के रूप में इस प्रकार चित्रित किया गया है—

श्याम बिंदु सुन्दर बिच मोंहनी श्याम केस ऐसे छबि पाइ।
अल को बालक अलगन तजि करि धंस्यो पंक अम्रित के आइ।

यहां कवि ने वस्तु-वर्णन के उत्कर्ष हेतु जो कल्पना की है, उससे प्रसाद जी ने 'कामायनी' में श्रद्धा के सौन्दर्य वर्णन में जैसी भव्य कल्पना की है, उसका स्मरण हो आता है; जहाँ वे कामायनी के घुंघराले बालों को 'घनशावक' की तरह विधु के चारों ओर अमृतपान करने के लिए एकत्र हुए देखते हैं। इसी प्रकार विष्णु के मुकुट की दीप्ति एवं प्रकाश की कल्पना भी 'वस्तूप्रेक्षा' के रूप में 'करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के समान की गई हो—

सिर मुकट विराजति दिपति जोति, जनु कोटि दिवाकर चमक होति।

भवनों के चाँदी के कलशों की समानता शरद ऋतु के घनों से 'उत्प्रेक्षा' के रूप में इस प्रकार की गई है—

चामीकर के कलश बड़े। मनहु सरद रितु के घन सो हैं।

बाबा गुरुदित्ता के द्वारा शरीर त्यागने की क्रिया का वर्णन 'वाक्यार्थोपमा' के सहारे देखिए किस ख़ूबी से किया गया है—

तातकाल तन छोरि सिधारे। जिम पंनग केंचुरी निज डारे॥

इसी प्रकार गुरु जी द्वारा खड्ग को प्रहार करने और उसके प्रभाव की व्यञ्जना इसी अलंकार के द्वारा इस प्रकार की गई है—

करहि मार खडगनि की ऐसे। तरु कानन को खाती जैसे।

घटनाओं के चित्रण में सौष्ठव लाने के लिये कहीं कहीं अलंकारों के लिये पौराणिक प्रसंगों से भी काम लिया गया है। दातू द्वारा अमरदास जी को पद-प्रहार करने की घटना का वर्णन 'वाक्यार्थोपमा' की सहायता से भृगु द्वारा भगवान् विष्णु को पद-प्रहार के प्रसंग की योजना करके इस प्रकार किया गया है—

रिस करि उर महिं लात प्रहारी। जिमि लछमी पति भ्रिगु मारी।

दार्शनिक एवं नैतिक तथ्यों के निरूपण हेतु भी अलंकारों की सहायता ली गई है, जिससे वह अधिक सहज स्पष्ट एवं सुबोध हो सकें और उनका प्रभाव भी अधिक पड़ सके।

सुख-दुख रात और दिन की तरह आते जाते रहते हैं, इस तथ्य का निरूपण 'उदाहरण' अलंकार के रूप में इस प्रकार किया गया है—

पुरूपन के करमण अनुसार, सुख दुख उपजति बारंबार।

कबहूं सुखी कबहिं दुख पावैं, जिमि निस दिन आवति पुन जावै।

'सिकरी, के बिना भव-सागर को पार करना असम्भव है, इस तथ्य का प्रतिपादन 'विनोक्ति' अर्थान्तरन्यास, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, तुल्यभोगिता एवं रूपक आदि अलंकारों के द्वारा देखिये कितनी सुन्दरता से किया गया है। साथ ही अन्य अनेक तथ्यों का भी निरूपण कर दिया गया है।

गुण विहीन पूजा कहाँ, विद्या बिन मान,
जीत कहां बिन सूरता, मन थित बिन ध्यान।
बिन संतोख उर सुख कहां, तप बिनान राजू,
ग्यान कहां बिन सतिगुर, शोभ बिन लाजू।
बिन जहाज तरिबो कहां सागर अस पाहू,
भगति कहां बिन प्रेम के पग पंकज वाहू।
कविता बिन कीरति कहां, जसु बिना न दाना,
मुकति कहां बिना प्रभु के सुर बिना न गाना।
सद्‌गुण विना न श्रेय है, शरधा बिन सेवा,
मंत्र सिद्धि बिन जपु कहां, वर विना न देवा।
बिन सिकवी तरिबो कहां, जग सागर भारा,
दयोस कहां सूरज बिना मैं एव विचारा। १० (रा ३/ ३८।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु प्रताप सूरज में अलंकारों की सुन्दर छटा देखी जा सकती है। किन्तु उनका प्रयोग यहाँ पांडित्य-प्रदर्शन के लिये अथवा चमत्कार उत्पन्न करने के लिये नहीं हुआ, वरन् भाव, गुण, क्रिया, वस्तु आदि के सजीव चित्रण उनका सहज प्रतीति, एवं प्रेष्णीयता आदि में उत्कर्ष लाने के लिये बड़ी ही सुरुचि एवं सहजता से हुआ है। वे कवि की अभिव्यञ्जना शक्ति में चार चांद लगाते हैं, यही उनका सब से बड़ा सौन्दर्य है।

इन अलंकारों में अप्रस्तुत-विधान भी भाव, वस्तु, रूप, क्रिया एवं गुण आदि के अनुरूप है। कवि ने परम्परित उपमानों का ही अधिक प्रयोग किया है, जो उनके काव्य को अधिक भाव-प्रवण, प्रभावशाली एवं सहज ग्राह्य बनाते हैं। प्रकृति के अतिरिक्त, पौराणिक, कथाओं, ऐतिहासिक घटनाओं तथा ग्राम्य जीवन से भी अनेक उपमान लिये गये हैं। उपमान-योजना में भाई संतोखसिंह ने सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखा है। उनके उपमान भाव-व्ञ्जना का उत्कर्ष करते हैं और काव्य की प्रेषणीयता को बढ़ाते हैं। वे अपनी सजीव, कल्पना शक्ति एवं काव्य-निपुणता के परिचायक हैं।

छन्द-विधान

'गुरु प्रताप सूरज' की रचना मुख्यत: दोहा-चौपई पद्धति में हुई है, यद्यपि कहीं-कहीं दोहा-हाकल, दोहा-ललितपदा दोहा-रसावल, दोहा-सवैया, दोहा-पद्धरि आदि कुछ अन्य पद्धतियों को भी अपनाया गया है। यह छन्द-वैविध्य से युक्त रचना है, जिसमें चौपई, हाकल, पद्धरि, अडिल, निसानी, ललितपद, त्रिभंगी, दोहरा, सोरठा, अमृतधुनि, छप्पय आदि ११ मात्रिक छन्दों का तथा चाचरी, रसावल, मधुवार, रुणझुण, हरिवालेमना, नवनामक, हंसक, साबास, प्रमाणिका, तोमर, चम्पकमाला,

भुजंग प्रयात, तोटक, निशिपालक, चंचला, नराज, सवैया, अनुष्टुप, कवित्त, अनंगशेखर आदि २० वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त सिरखंडी नाम के पंजाबी छन्द का तथा 'बहरे मुतकारिब मुसामन मकमूर मह्यूफ' नाम के फारसी छन्द का प्रयोग भी हुआ है।

छन्द-पद्धति एवं छन्द-वैविध्य की दृष्टि से भाई संतोख सिंह पर 'दशमग्रंथ' तथा 'महिमा प्रकाश' एवं 'गुरु विलास' आदि का पर्याप्त प्रभाव है।

भाई संतोख सिंह को छन्द-शास्त्र का भी यथेष्ट ज्ञान था, यही कारण है कि उनके छन्द-प्रयोग में अस्थिरता अथवा शिथिलता नहीं है।

इस क्षेत्र में उनकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने भाव, विषय, एवं भाषा आदि के अनुरूप ही उचित छन्द का प्रयोग किया है। जैसे श्रृंगार रस के लिए चौपई, निसानी, सवैया, कवित्त का; वात्सल्य के लिये चौपई, हाकल, सवैये, कवित्त का; वीभत्स के लिये तोटक का; करुण के लिये सवैये, चौपई निसानी का; रौद्र के लिये चौपई का तथा युद्ध वर्णन के लिये चौपई, पद्धरि, निसानी, ललितपद, त्रिभंगी, अपूतधनि, चाचरी, साबास, हंसक रसावल, प्रमाणिका, तोमर, चम्पकमाला, मधुमार, रुणझुण, नवनामक, नराज भजंगप्रयात, तोटक, निशिपालक, चंचला, कवित्त, सवैया, सिरखंडी, दोहा, सोरठा आदि लगभग २५ छन्दों का प्रयोग किया है। इस ग्रंथ में युद्ध-वर्णन बडे विस्तार से आये हैं और छन्द वैविध्य भी अधिक उन्हीं में है। इससे युद्ध-वर्णन में एकरसता एवं नीरसता नहीं रहने पाती, वरन छन्द-परिवर्तन के साथ-साथ नई स्फूर्ति एवं गति आने लगती है। कवि ने यहां छन्द-परिवर्तन करते समय बड़ी कुशलता से काम लिया है। जब युद्ध का वातावरण हलका होता है, तो वह चौपई, पद्धरि, निसानी, ललितपद, त्रिभंगी, सवैया आदि अपेक्षाकृत बडे एवं मंदगति छन्दों का प्रयोग करता है, ज्यों-ज्यों युद्ध की गति तीव्र होती जाती है, वह नराज, चंचला आदि लघु गुरु के आरोह अवरोह से युक्त छन्दों का प्रयोग करने लगता है और जब युद्ध का वातावरण भीषण हो जाता है, तो उसके लिये वह मधुमार, रसावल, चाचरी हंसक, साबास, प्रमाणिक, रुणझुन जैसे अत्यन्त लघु एवं क्षिप्र-गति छन्दों का प्रयोग करता है और ऐसे अवसर पर छन्द-परिवर्तन भी तेजी से होता है।

छन्दों का चयन करते समय उन्होंने भाषा की प्रकृति को भी ध्यान में रखा है। संस्कृत पदावली के लिये संस्कृत के प्रसिद्ध छन्द अनुष्टुप का, फारसी युक्त रचना के लिये फारसी की बहर 'बहरे मुतकारिब मुसम्मन मकसूर महजूफ' का तथा पंजाबी पदावली के लिये पंजाबी छन्द सिरखंडी का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार उन्होंने अनेक भाषाओं से और छोटे से छोटे तथा अनेक बड़े छन्दों का प्रयोग करके अपने छन्द ज्ञान का परिचय भी दिया और उन्हें भाव एवं विषय के अनुरूप प्रयुक्त करके अपनी काव्य-प्रतिभा को भी प्रदर्शित किया है। भावानुरूप लयों की योजना से निस्सन्देह काव्य

के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है और उसका प्रभाव भी बढ़ा है। संगीतात्मक की अभिवृद्धि के लिये उन्होंने अन्त्यानुप्रास, यत्यानुप्रास, अन्तरानुप्रास आदि से भी काम लिया है।[1]

भाषा एवं शैली सौन्दर्य—

पंजाब में ब्रज भाषा काव्य भी एक समृद्ध परम्परा मिलती है। विशेष रूप से गुरु गोविंद सिंह ने ब्रज-भाषा काव्य को बहुत उत्कर्ष किया। उन्होंने स्वयं ब्रज-भाषा में श्रेष्ठ रचना की और अपने आश्रित ब्रज-भाषा के कवियों को बहुत प्रोत्साहन दिया। वस्तुतः इस युग में सारे उत्तर भारत में काव्य रचना का माध्यम मुख्यतः ब्रज-भाषा ही थी। 'दशमग्रंथ' ब्रज-भाषा की एक उत्कृष्ट रचना है। उसके पश्चात् 'महिमा-प्रकाश' 'गुरु विलास', 'गुरु नानक विजय' आदि की रचना भी ब्रज भाषा में ही हुई, यद्यपि उनमें ब्रज-भाषा का उतना परिष्कृत, प्रौढ़, प्रांजल एवं विदग्धता पूर्ण रूप नहीं मिलता जिसके दर्शन रीतिकाल के दरबारी कवियों में होते हैं।

'गुरु प्रताप सूरज' की भाषा भी मूलता ब्रज ही है, यद्यपि उसमें भाषा के अन्य रूपों का सम्मिश्रण भी हुआ है। मंगलाचरण में जहाँ कवि ने छन्द एवं अलंकारों के प्रयोग में पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है, वहाँ उनकी भाषा भी प्रौढ़ एवं प्राजंल है। उसमें रीति-काल के अलंकृतियों की सी विदग्धता है। लेकिन भाषा की ऐसी प्रांजलता सर्वत्र नहीं मिलतीं। हमारा अनुमान है कि क्योंकि इस ग्रंथ की रचना जन-साधारण के गुरुओं की चरित्र-गाथा सुनाने के लिये की गई थी, इसलिये कवि ने इसकी भाषा को अधिक से अधिक जन-साधारण के निकट लाने का प्रयत्न किया है। यही कारण कि उसमें स्थानीय प्रभावों के अतिरिक्त पंजाबी, फारसी, मुलतानी, अवधी आदि भाषाओं के प्रचलित रूपों का भी प्रयोग हुआ है। इस युग के समस्त साहित्य में फारसी की शब्दावली का समावेश होने लगा था: 'गुरु प्रताप सूरज' भी उससे अछूता नहीं है। वरन् कहीं-कहीं तो फारसी की अच्छी खासी कठिन शब्दावली आ गई है। इसी तरह संस्कृत के तत्सम शब्दों की भी कमी नहीं है। भाई संतोख सिंह का जन्म नूरदी (अमृतसर) तथा विद्याध्ययन भी अमृतसर में हुआ था, इसलिए पंजाबी के अनेक शब्द तथा कारक उनके काव्य में आते रहे हैं। उनके जीवन का अधिकतर समय बूड़िया, कैथल आदि में व्यतीत हुआ, जो खडी बोली और हरियाणवी के क्षेत्र हैं। उन्होंने अपनी सारी काव्य रचना भी यहीं की और उनकी कथा के श्रोता भी यहीं के निवासी थे। इसलिये इन स्थानों की बोली का अपनी रचना में समावेश करना स्वाभाविक ही था। वस्तुतः कवि ने यहां प्रचलित शब्दावली, उन क्षेत्रों में प्रयुक्त कारकों तथा मुहावरों का समुचित प्रयोग करके अपनी भाषा को अधिक से अधिक व्यावहारिक, एवं, प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया है। भाषा के दो रूपों का दर्शन उसमें स्पष्ट रूप से किया जा सकता है। एक ओर संस्कृत, फारसी, ब्रज, तथा पंजाबी भाषाओं के पंडितों के लिये इन भाषाओं का समर्थ एवं प्रांजल प्रयोग, जिससे कवि का भाषा-ज्ञान एवं उसके काव्य-प्रयोग की क्षमता का परिचय मिल सकता है; दूसरी ओर व्यावहारिक एवं सुबोध भाषा, जिससे वह जन-

1. 'गुरुप्रताप सूरज' के छन्द एवं अलंकार-सौष्ठव के विशद विवेचन के लिए देखिये 'गुरुप्रताप सूरज के काव्य-पक्ष का अध्ययन'

साधारण के निकट पहुंच सकता है, और अपने प्रतिपाद्य को उनके लिये सहज-संवेद्य, बोधगम्य, एवं ग्राह्य बना सकता है। विषय, वस्न, पात्र एवं भाव आदि के अनुरूप भाषा का नहीं, समुचित एवं सशक्त प्रयोग करने में कवि पूरी तरह समर्थ है और उसने इस औचित्य का सर्वत्र ध्यान रखा है कि कोई प्रसंग, किस प्रकार की भाषा की अपेक्षा रखता है। वात्सल्य, शृंगार, भक्ति एवं करुण प्रसंगों में भाषा यदि मधुर एवं कोमल है तो युद्ध के प्रसंगों में ओजपूर्ण एवं ध्वन्यात्मक ऐसे स्थलों पर कवि ने घोष वर्णों संयुक्त व्यञ्जनों एवं अनुनासिकों आदि का बहुलता से प्रयोग किया है। दार्शनिक तथ्यों के निरूपण में यदि गम्भीर, स्थिर एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग किया गया है, तो कथात्मक प्रसंगों के निरूपण में भाषा का रूप चलता और व्यावहारिक है। ईश्वर की वंदना सम्बन्धी प्रसंगों में अथवा विद्वान एवं अभिजात वर्ग आदि के साथ संवादों में भाषा तत्सम प्रधान है तो जन-साधारण के साथ परिसंवाद करते समय तद्भव प्रधान पंडितों-ब्राह्मणों के साथ चर्चा करते समय संस्कृत के तत्सम रूप अधिक आते हैं, तो सूफियों-मुल्लाओं अथवा अन्य यवन-पात्रों के प्रसंग में अरबी फारसी के तत्सम या तद्भव शब्दों का प्रयोग होता है। योगियों एवं सिद्धों आदि से वार्तालाप करते समय प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। वस्तुतः उनकी भाषा समर्थ एवं शक्ति सम्पन्न है और उनमें विषय का सम्यक् प्रतिपादन करने के लिए उसके अनरूप सम्यक् एवं सशक्त भाषा का प्रयोग करने की योग्यता सुरुचि एवं क्षमता है।

भाषा की व्यावहारिकता एवं अभिव्यञ्जना शक्ति को बढाने के लिये 'आंख तरे नहिं आनत काहू', 'झख मारति', आंखनि महिं रज् पंज को डारी, लूण हरामी, नटकरि जाइ, मृग-तृष्णा, दांत पीसति, सिर माटी पाई, नीर-लकीरा, पाहन रेखा, रज महिं सर्प, पांव कुहारी मारन, हिम्मत को हिमायत रहा है, सीना जोरी, इत्यादि मुहावरों एवं 'घर के रहे न घाट के, ग्राम दिहो वास न देहो, नित निरबल के बल गुर अहै, भूषन किसके बांदी किस की, परमेशुर जिनकेर सहाइ बंक रोम को करि न सकाई, चिक्कम बासन बूंद जिम हुइ न, हिम्मत का हिमायती हरि है, बीती गई सु जानि दिह सुधिका अगुवाई, स्वान पुछ कबि होइ न सुधी, इक म्यान जुगम शमशेर, आदि लोकोक्तियों एवं अनेक सूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है।

शब्द-कोश तथा व्याकरण की दृष्टि से 'गुरु प्रताप सूरज' की भाषा का अध्ययन बडा ही रोचक एवं उपयोगी है। इसमें ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली के अतिरिक्त संस्कृत फारसी, अरबी, पंजाबी, लहंदा आदि के भी अनेक शब्द आए हैं। संस्कृत एवं फारसी-अरबी के तत्सम तद्भव दोनों प्रकार के शब्द हैं। स्थानीय शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। कुछ शब्द-प्रयोग देखिए—

संस्कृत—सूर्य, दिनमणि, मारतंड, रवि, भान, भास्कर, पंकज, सरोज, अरविंद, पद्म, कमल, मम, नम्र, विलोचन, निज, नित, आनन, प्रणाम, अखंड, प्रताप। विश्वेशं विश्वमित्युक्तं, संपुटे विश्व भूषणं। विश्वबोधं स्वयं ब्रह्म, श्रणवादी नमामिहं। विहीनाय प्रवर्त्तकः महीधीशं।

फारसी—बेतमा, विलंद, दरीची, हमले, गुफ्तो, बजरक, दिदार, मादर, पिदर, पिकवंर, आमद, गरद, अमल, गुल, दलेर, फिरादी, हदेशु, जेव, ब्ररजश, खशवोह, जहान, चरखा, वदतर, दीदश, खावंद, फरजंद, दानशवंद,

खुशहाल।

अरबी—सिफती, मज़ब. करद, सुहबत, नदर, मायना, हादर. मुजाहम, मखसद (मक़सद), मरज़न. अरज़, कारर, खफनी, ज़रदाई, फते. आरफ, कामल, वली, यलाइत. हकीकत, अरूज. अदालत, रिशवती, गरज़ी मरजी, अरज़ी, फनाह, भिसत (बहिश्त), तमास, खिलत (खिलअत) गनी, अदल।

पंजाबी—वंड खावना. नेर, सदेंदा, बुझेंदा, विखैं, नाल, तीक, चऊना. लड़लाई, चंगा, लखंदा, काहली, लश्कायो, अगाड़ीं, तुरे. आंवदे, तुसी, विसंदा।

लहंदा अथवा मुलतानी—जुल, हैंसु, भिराई, घिनहु, वत, कैंदा।

स्थानीय शब्द—उरे, नार, फेर, बासन, थारी, राहक, गारा, फुरनी, होर, नाते, गेला, झारी, लूण, बेर (बेड), खेचल।

व्याकरण की दृष्टि से 'गुर प्रताप सूरज' में कारक-विभक्तियों, सर्वनामों, क्रिया-पदों, अव्ययों तथा ध्वनियों आदि के व्रजभाषा के रूपों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। कुछ खड़ी बोली के रूप भी मिलते हैं। संस्कृत, पंजाबी एवं स्थानीय प्रयोगों के भी कहीं-कही दर्शन होते हैं। 'गुरु नानक प्रकाश' की भूमिका में हमने उसकी भाषा का व्याकरण की दृष्टि से सम्यक् विवेचन किया है। 'गुरु प्रताप सूरज' की भाषा उससे भिन्न नहीं है। अत: स्थानाभाव के कारण यहां उस पर विचार नहीं किया जा रहा है।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाई संतोखसिंह एक लोकनायक एवं युग-प्रवर्त्तक कवि थे और 'गुरु प्रताप सूरज' एक ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। यह पौराणिक-भावना से अणुप्राणित एक ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें सिक्ख-गुरुओं की चरित्र-गाथा एवं उनकी चिंतन-धारा का भव्य रूप में निरूपण हुआ है। युग-परिवेश का विशद एवं यथार्थ चित्रण करते हुए कवि नवीन सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत करता है। वह हिन्दुओं और सिक्खों की सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करता है और मानव मंगलकारी भावनाओं को प्रश्रय देता है। सामाजिक समता एवं मानवीय एकता का प्रवर्त्तन करता है और सत्य और न्याय की रक्षा हेतु असत्य, अधर्म, अनीति, अन्याय और अत्याचार का साहसपूर्वक विरोध करने का उत्साह उत्पन्न करता है। यद्यपि इसमें इतिवृत्तात्मकता अधिक है, तथापि मनोवेगों की मार्मिक अभिव्यञ्जना, वस्तु-वर्णन की रमणीयता, तथा अलंकार-सौन्दर्य आदि की दृष्टि से भी 'गुर प्रताप सूरज' एक श्रेष्ठ काव्य-रचना है।

जग्गन्नाथ गोयल

१ ओंकार सतिगुर प्रसाद

अथ "श्री गुर प्रताप सूरज" ग्रन्थ

प्रथम रासि लिख्यते

अंशु १

मंगलाचरण

दोहरा

तीनो काल सु अचल रहि अलंब[1] सकल जगजालि।
जाल काल[2] लखि मुचति[3] जिसि करता पुरुष अकाल ॥ १ ॥
छोनी[4], सूरज, अगनि, जम, वायु त्रास जिसि पाइ।
निज सुभाव महिं थिति रहति, अस ब्रह्म रिद बिदताइ ॥ २ ॥
मरम न जान्यो जाइ जिसि, भरम मिटे मिलि जाइ।
करम धरम अरु भगति फल, अस अभेद को पाइ ॥ ३ ॥
भान होति जग जास ते रजू भुजंग समान।
मान हानि करि जानि तिह तम अनादि कहु भानु ॥ ४ ॥
सति चेतन आनंद युत नाम रूप जग पंच।
संत दुहनि उर परहरै तिन तीनहु को संच ॥ ५ ॥

चौपई

बंदन बिंदु बदन बर चंदन। चंदन सम अरबिंद मनिंद न[5]।
निंद न जिह सुर करि अभिनंदन। नंदन जग बानी पद बंदन ॥ ६ ॥

सवैया

तरनि[6] बिघना सलितापति की[7], पति[8] की रक्ख्यक श्री बरनी[9]।
बरनी सुखदा शरनागति की, गति की समता गज की करनी।
कर नीरज ओट सुधारति की, रति की प्रभुता सगरी हरनी[10]।
हरनी सम आंख सु श्रीमति की, मति की करता, तनवे[11] तरनी ॥ ७ ॥

---

1. आलम्बन (आश्रय)। 2. काल की फांसी। 3. छूट जाती है। 4. पृथ्वी। 5. मानिंद (समान), कमल भी जिस के समान नहीं है। 6. नौका, बेड़ी। 7. हे वाणी! तू विघ्नरूपी समुद्र को पार करने के लिए तरी समान है। 8. इज्जत, लाज। 9. सरस्वती। 10. सौन्दर्य में रति से भी बढ़कर है। 11. कोमल, तन्वंगी।

सवैया

करितारनि[1] से शुभ बाक बिलास बिहंग बिकारन को करि तारनि[2] ।
करतार नही मन जानति जे तिनके हित को सिफती[3] करि तारन ।
करि तारिनि पाप उतारन को गन दम छपै[4] सविता करितारन[5] ।
करतार निहार गुरु बर नानक दास उधारन जिउ करि तारनि[6] ॥ ८ ॥

बंद न होति सुने उपदेश, रिदे बसि जांहि करे अभिनंदन ।
नंदन फेरू[7] सुछंद[8] बिलंद बिलोचन सुंदरता अरबिंदन ।
बिंदु न मंद बिकार रहै तम ब्रिंद दिनिंद मनिंद निकंदन[9] ।
कंद[10] अनंद मुकंद भजो गुर अंगद चंद सदा करि बंदन ॥ ९ ॥

छप्पय

अमर[11] अलंब करि जांहि, समर जै पावहिं अरि हरि[12] ।
हरि नित लावहि ध्यान, ज्ञान पावहिं मुनि उर धरि ।
धरन भजन बिदताइ सभिनि महिं व्याप्यौ समसर[13] ।
शरन दास गति लहति दहति पुरू दोखिन को दरि[14] ॥
दर[15] देति बताइ सु मुकति को होहिं प्रसीदति[16] चित सिमर ।
मर जनमन[17] को संकट कटति, जै जै जै श्री गुरु अमर ॥ १० ॥

हरता बिघनान महां अघ[18] को उर आतम ज्ञान प्रकाशति ज्यौं हरि ।
हरि देति बसाइ सु दासन को कमलासन[19] ध्यावति जांहि भजे हरि ।

---

1. कलियुग से तारने वाले । 2. विकार रूपी पक्षियों को ताड़ने (डांटने—नष्ट करने) वाले । 3. फारसी शब्द सिफत—यश । 4. पाखंडों के समूह छिप जाते हैं । 5. सूर्य के उदित होने से तारों के समान । 6. जिस प्रकार जहाज यात्रियों को पार करता है । 7. फेरू के पुत्र—अंगद देव जी । 8. स्वतन्त्र । 9. दूर करने वाले, जिस ओर वे नेत्र करते हैं, वहाँ जरा भी विकार—अज्ञान नहीं रहता, वह उसी तरह दूर हो जाता है जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार । 10. फल, मेघ, बादल । 11. देवता । 12. देवता भी जिसका (गुरु अमरदेव का) सहारा लेकर युद्ध में शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त करते हैं । 13. समान रूप से । 14. दुःखों के डर को जला देता है, दोषों का नाश करता । 15. द्वार । 16. प्रसन्न होना । 17. जन्म-मरण का । 18. पाप । 19. ब्रह्मा ।

हरिबस बिखे अवतार भए हति रावण को लिय संग चमूं[1] हरि।
हरिदास तनै रमदास गुरु म्रिगमोह[2] संहारति ज्यौं बड़ केहरि ॥ ११ ॥

कवित्त

अरजनि[3] सुनति सु दासन को दान देति,
मोह को बिदारिबै[4] को बाक सर अरजन[5]।
अरजुन जपु बिसतीरन[6] संतोखसिंह,
जहां कहां जानीअति मानो तरू अरजन[7]।
अरिजन[8] भए गन मोख पद लए तिन,
श्यामघन तन होइ तोरे जमलारजन[9]।
अरज[10] न जान्यो जाइ केतो है बिथार तेरो,
ऐसो रूप धारि आइ राजै गुर अरजन ॥ १२ ॥

चित्रपदा

सूर, सुरानि के हानि करे छित आनति भे बनि के तन सूर[11]।
सूरत सुंदर जो सिमरै उर मैं तत ज्ञान लहै मति सूर[12]।
सूर[13] गहै कर मैं रण के प्रिय निंदक जे दुख[14] पाइ बिसूर[15]।
सूर बिसाल क्रिपाल गुरु हरि गोबिंद जी तम शत्रुन सूर[16] ॥ १३ ॥

सवैया

तारा[17] बिलोचन सोचन मोचन, देखि विशेष बिसै बिस तारा[18]।
तारा भवोदधि[19] ते जन को गन कीरति सेतु करी बिसतारा[20]।

---

1. सेना। 2. मोहरूपी मृग को सिंह की भाँति मार देते हैं। 3 अरज़, प्रार्थना। 4. मार देने को (नष्ट करना)। 5. अर्जुन के तीर समान। 6. उज्ज्वल यश का विस्तार करने वाला। 7. भाव—कल्पवृक्ष से है। 8. जो शत्रु भी आप के दास बने। 9. कुबेर के दो पुत्र मणिग्रीव और नलकुबेर नारद के शाप से वृक्ष बन गए थे और यशोदा के आँगन में खड़े थे। एक बार यशोदा ने कृष्ण को इनसे बाँध दिया तो कृष्ण ने उन्हें खींच कर तोड़ दिया और उनका उद्धार किया। 10. अरज़, चौड़ापन, विस्तार। 11. हिन्दू देवताओं को हानि पहुँचाने वाले मुग़ल रूपी दैत्यों से रक्षा के लिए आप विष्णु अथवा वराह अथवा सिंह होकर आये। 12. पंडित। 13. शूल, बरछा। 14. मुग़ल रूपी निंदक। 15. दुःखी हुए। 16. शत्रु रूपी अन्धकार के लिए सूर्य। 17. पुतली। 18. जिसकी ओर विशेष (कृपा) से देखते हैं, उसे विषय-वासना रूपी विष से मुक्त कर देते हैं। 19. भवसागर से पार किया। 20. कीर्ति रूपी सेतु (पुल) को फैला कर।

तारा मलेछन के मत को उदिते दिननाथ जथा निस तारा।
तारा रिदै उपदेश दै खोलति, श्री हरिराइ करे निसतारा ॥ १४ ॥

चौपई

श्री सतिगुरु पूरन हरि क्रिशन। क्रिशन बरतमां[1] बन अघ क्रिशन।
क्रिशन सरूपदास जिस क्रिशन। क्रिशन भगति को मेघद जिसन ॥ १५ ॥

सवैया

हादर[2] होति जहां सिमरे सुख सागर जांहि पिखे सुर सादर।
साद रचे इक आतम ज्ञान बड़ी बिशियातप[3] को बड बादर[4]।
बाद रहै[5] सिक्ख ह्वै नर सो जिनि जान्यो नहीं जु इहो जग कादर[6]।
का दर है[7] जम को तिन जीवनि अंत भजैं गुर तेग बहादर ॥ १६ ॥

चित्रपदा

त्राण करैं निज दासन की भव बंधन तोर ददू[8] निरबाण[9]।
बाण कुदंड प्रचंड धरे गज सुंड मनो भुजदंड प्रमाण।
माण निमाणनि[10] हाणि अरी गण बाण सदा निज आयुध पाण[11]।
पाणिप[12] हिंदुन गोबिंदसिंह गुरु वर बीर धरैं अति त्राण ॥ १७ ॥

कवित्त

भीर परे[13] धीर दे सथंभ जैसे महां वीर,
रच्छक जनों के मिले दुखद समाज के[14]।
एक संग विघन तरंग चै उतंग[1] उठैं,
तहां गुरु आनि बनैं केवट[2] जहाज के।
सागर गंभीर पर प्रेम ते अछोभ नहिं[3],
भनति संतोखसिंह गुण महांराज के।

---

1. अग्नि। 2. हाज़िर (उपस्थित)। 3. विषय रूपी आतप। 4. बादल। 5. व्यर्थ। 6. कुदरत वाला (अरबी शब्द)। 7. डर अथवा द्वार। 8. देते हैं। 9. मुक्ति। 10. मान रहित को मान देने वाला। 11. (हाथ में) शस्त्र धारण कर। 12. लाज, इज़्ज़त। 13. विपत्ति पड़ने पर। 14. दुःखों के समूह के आ घिरने पर। 15. ऊँचे-ऊँचे। 16. नाविक, मल्लाह। 17. आप समुद्र की भाँति गम्भीर हैं, परन्तु जैसे समुद्र पर-पीड़ा पर दुःखी नहीं होता, वैसे आप नहीं हैं (आप दूसरों की पीड़ा को देखकर पसीजने वाले हैं)।

द्वैया[1] राज ताज के ब्रिधैया[2] सुख साज़ के,
रखैया दास लाज के करैया कवि काज़ के ॥ १८ ॥

सवैया

इक जोति उदोतक रूप दशों[3] शुभ होति अंधेर गुबार उदारा[4] ।
जग मैं सु प्रकाश चह्यो करिवे उपदेश दियो सिक्ख भे नर दारा ।
परलोक सहाइ अशोक[5] करे इस लोक मैं रांक[6] करे सिरदारा ।
गुर व्रिंदन के पग सुंदर को अरबिंद मनो अभिबंद[7] हमारा ॥ १९ ॥

चौपई

गणपति आदि बिघन के हरता । ब्रह्मादिक मंगल के करता ।
सुर गुर आदि सुमति के दानी । बालमीक आदि कवि बानी ॥ २० ॥
श्री वसिशट आदिक जे ज्ञानी । इंद्र आदि दायक रजधानी ।
आदि अगसत तपीसुर सारे । व्यास आदि वेदनि के पारे ॥ २१ ॥
आदि युधिशटर धरमग भारे । अरजन आदि क्रिशन के प्यारे ।
रामचंद आदिक मिरजादिक[8] । जनप्रिय[9] श्री नर सिंह जि आदिक ॥ २२ ॥
श्री घनश्याम आदि रस ज्ञाता[10] । श्री बामन आदिक छल जाता ।
दसरथ आदिक पूर प्रत्तग्या[11] । जोग भोग सम जनक तत्तग्या[12] ॥ २३ ॥
गोरख आदि सिद्ध समुदाइ । आदि कबीर भगत समुदाइ ।
बूड्ढे आदि गुर के सिक्ख्य । भए जु भूत भवान भविक्ख्य ॥ २४ ॥
सभि को मैं अभिबंदन करिहूं । क्रिपा करहु गुर सुजस उचारहूं ।
सूरज आदि जि करहिं प्रकाशहिं । चंद आदि जे सीतल रासहिं ॥ २५ ॥
नारद आदिक प्रेमी जेई । सारद आदिक बकता तेई ।
चतुरशेश आदि बड कहियति । हनुमत आदि दास जे लहियति ॥ २६ ॥
सभि के प्रथमैं नाम सिमरिऊं । धर पर धरि सिर नमो उचरिऊं ।
सभि बिधि होहिं सहाइक मेरे । बिघन बिनाशहु रहि मम नेरे ॥ २७ ॥

---

1. दाता । 2. वृद्धि करने वाले । 3. दसों गुरु एक ही ज्योति के प्रकाशक हैं । 4. (अत्याचारों का) बड़ा अंधकार और (अज्ञान का) बड़ा गुबार देखकर आपने उसे मिटाने के लिए (ज्ञान) का प्रकाश किया । 5. शोक-रहित । 6. पाठान्तर—रंक । 7. नमस्कार । 8. मर्यादापूर्ण । 9. भक्त-वत्सल । 10. रसज्ञ, रसिक । 11. प्रण का पालन करने वाले । 12. तत्त्वज्ञ (तत्त्व को जानने वाले) ।

सवैया

श्री गुर को जसु सागर रूप उजागर है सभि लोकन माहूं।
मैं तुलहा त्रिण ज्यों करिकै निज बुद्धि ते पार पर्यो अबि चाहूं।
होइ हंसी जग मैं अधिकाइ तऊ चित मैं अतिशै उतसाहूं।
ऊच तरू फल ज्यों लगि सुंदर वामन हाथ पसारति ताहूं।। २८ ।।

चौपई

श्री गुर सुजस रुचिर मणिमाणिक। सिक्खी उचता गिरवर थानिक।
साधन रूप चरन नहिं मेरे। अहों पिंग किम चढ़िव उतेरे ।। २९ ।।
निज मति को शिंगार बनावन। चाहति हौं परोइ पहिरावन।
प्रेम रूप गुन करों बंधावन। लोक प्रलोक सुहावन पावन ।। ३० ।।
गुर करुणा असुवारी पाइ। उचता सिक्खी पर चढि जाइ।
होहि मनोरथ पूरन मेरा। गुर पद सेवउं सांझ सवेरा ।। ३१ ।।
यांते अहै भरोसा मोही। ग्रंथ संपूरन सगरो होही।
तुरकन राज तेज बन दावा। एक बार करि छार मिटावा ।। ३२ ।।
श्री नानक नर तारन हेतु। सिक्खी बेल बोइ जग खेतु।
अपर गुरू उपदेश जु बारी। दे दे भली भांति प्रतिपारी ।। ३३ ।।
सिमरन सत्तिनाम सु सुमनसा। ब्रह्म-ज्ञान फल चहि जिसु मनसा[1]।
कलगीधर रण करि बहु बारि। अनिक जतनु ते सो प्रतिपारि ।। ३४ ।।
पंथ खालसा सुरतरु बोवा। सतिगुर तप दिढ मूल खरोवा।
सिख संगति छाया जिस पाइ। दुहि लोकन सुख को उपजाइ ।। ३५ ।।
कलप लता सिक्खी गुन भोवा[2]। तिसको आश्रै दिढ इह होवा।
सभिहिनि को अभिवंदन कै कै। करों ग्रिंथ चिता उर ख्वै कै[3] ।। ३६ ।।

दोहरा

पुनहु पुनहु करि करि नमो पद पंकज गुर केर।
कलगीधर परहरि अरिनि रंच[4] करे जिन मेरु[5] ।। ३७ ।।

कवित्त

देन प्रह्लाद[6] प्रह्लाद[7] को लख्यो सु दैत[8],
दैत के बिदारिबे को रूर नर सिंह को।

---

1. मनवांछित। 2. भरपूर। 3. नष्ट करके। 4. तुच्छ (व्यक्तियों को)। 5. अर्थात् बलवान् कर देते हैं। 6. प्रसन्नता। 4. प्रह्लाद भक्त। 5. दुःख।

हार दे बलीन[1] को जुहार ले बलीन[2] को,
हतन लंकपति रन राम नरसिंह को।
कुपित[3] कुपत पुरि[4] करे हैं कुपति[5] कूट,
हेरि हरि हरि रे जिउं[6] हेरि म्रिग सिंह को।
तैसे तेजतर[7] ते तुरक तरु तोरन को,
जग मैं जनम भयो श्री गुबिंद सिंह को ॥ ३८ ॥

सवैया

रस बीर भरे, जन धीर करे, बहु पीर हरे, भव फंधन के।
सुख मूल भले, अनकूल ढले, रिपु सूल मिले, अघकंदन के।
सिख पाठ हिले, दुख दोख दले, करि काज चले सु अनंदन के।
अति मित्र पवित्र बिचित्र चरित्रति तेग बहादर नंदन के ॥ ३९ ॥
थितिदा[8] चित की, नित दा बित की[9], हितदा कित की सुनिहंत जरी[10]।
शरधा गुर की सुधिदा उरकी, हरिता जरकी सुख पुंज जरी।
सभि सार मथा घ्रित लीन जथा, इह चारु कथा अजरान जरी।
गुन ब्रिन्द गुबिंद म्रिगिंद मुकंद अनंदक चारु जराउ जरी ॥ ४० ॥

कवित्त

श्री गुरु जगत पति जगत सदन मांझ,
हिंदवान अजर बिराजबे की लालसा।
सूरतण बीज ते अंकूर भयो महां जुद्ध,
अम्रित को देनि तुचा बुद्धति निरालसा।
सदगुन दल ते सदल भए भूप डाल,
भजन कुसम फल ज्ञान ततकालसा[11]।
पर मत काल सा[12] दरिद्र खल दालसा[13],
प्रताप रिपु घालसा कलपतरु खालसा। ४१ ॥
पाढे[14] से पठान होति ससे सूबे ऊकसे ना[15],
काबली कुरंग आगै ठहिर सकै नहीं।

---

1. बाली। 2. बलवानों को। 3. क्रोधित हुए। 4. कुरुपति, कौरव। 5. क्रूर राजा कंस आदि। 6. डरना। 7. उनके तेज से भी अधिक। 8. स्थिरता देने वाली। 9. नित्य धन देने वाली। 10. अहंकार का नाश करने वाली। 11. शीघ्र होने वाला। 12. मृत्यु के समान। 13. दलने वाला। 14. सफेद चित्तों वाला हिरण। 15. उभरते नहीं।

रोड[1] रजपूत है झंखाड से मलेछ बहु,
बिचरे बहार ज्यों बलोच क्यो जकै नहीं[2] ।
मुगल मतंग[3] मार गाजति संतोखसिंह,
सय्यद सयाल ह्वै समुख सो तकै नहीं ।
तुरकन तेज तामा[4] तौ लग तरो ईतरै[5],
खालसा सरूप सिंह जौ लग छकै नहीं[6] ॥ ४२ ॥

दोहरा

सरब शिरोमणि खालसा रच्यो पंथ सुखदाइ ।
इक बिन गंदे धूम ते जग मैं अधिक सुहाइ ॥ ४३ ॥

सोरठा

श्री सतिगुर को रूप जगहि जोति जाहर जगत ।
पुंज सु पंथ अनूप करि बंदन रचिबे लगति ॥ ४४ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **मंगलाचरण** वर्ननं नाम प्रथमो अंशु ॥ १ ॥

———

1. नील गाय । 2. हठ कर सकना । 3. हाथी । 4. मांस । 5. सुरक्षित है। 6. खाता नहीं ।

अंशु २

इतिहास कथन

दोहरा

श्री गुर नानक सों मिल्यो बालिक रूप सुजान ।
क्रिपा पाइ ततकाल ही प्रापति भा ब्रह्म ज्ञान ।। १ ।।

चौपई

जिस की बातें सुनि बुधिवारी । श्री जग गुर इमि गिरा उचारी ।
'बालिक तेरी बैस दिसावति । बुड्ढे सम मुख वाक अलावति ।। २ ।।
इतने महिं तिसके पित माता । आइ गए खोजति निज ताता ।
कहति भए 'हमरो सुत आवा । तिस देखिनि को मन ललचावा' ।। ३ ।।
सिक्खन कह्यो 'सु अंतर बैसा[1]' । जाइ निहार्यो अति ब्रिध जैसा ।
बिसम रह्यो कुछ कह्यो न जाई । चहिति लिजायो, संगि न जाई ।। ४ ।।
पुनि दंपति ने एव बिचारा । जग ग्रस्यो तन जिह सुकुमारा ।
अबि क्या कारज आइ हमारे । सरब रीति ते सिथल्यो भारे ।। ५ ।।
कहि बहु रहे न चाले संगि । रहिन देहु इह भा ब्रिध अंगि ।
ऐसे कहि करि गमने धाम । तबि कहि बुड्ढा प्रगट्यो नाम ।। ६ ।।
गुर घर महिं अज़मति[3] युति भारा । बोहिथ[4] सम जग तारणिहारा ।
अजर जरन महिं धीर महाना । अपर न जांके भयो समाना ।। ७ ।।
श्री नानक ते रह्यो पिछारी । श्री अंगद के चरन मझारी ।
पुन श्री अमरदास की सेवा । संगी रामदास गुरदेवा ।। ८ ।।
पुन श्री अरजन के ढिग रह्यो । 'भाई' पद को तबि ते लह्यो ।
जिनको बचन अटल जग भयो । श्री गुर हरि गोबिंद जनमयो ।। ९ ।।
पातिशाहि खशटनि[5] लौ देहि । जीवति रह्यो ज्ञान कहु गेहु ।
अनिक नरनि कउ कीन उधारा । सत्तिनाम उपदेश उदारा ।। १० ।।

---

1. बैठा । 2. शिथिल हो गया है, कमज़ोर होना । 3. शक्ति । 4. जहाज़ ।
5. गुरु हरिगोबिंद ।

श्री गुर नानक सभि ते आदी। पाछे जो टिक्के गुर गादी।
सभिहिनि कहु बुड्ढा निज हाथ। देतो रह्यो तिलक शुभ माथ ॥ ११ ॥
पीछे संतति तिस ही रीति। सतिगुर साथ रहति भे नीति[1]।
तीन काल के ज्ञातावानु। प्रगट होति भे सगल जहानु ॥ १२ ॥
सतिगुर को श्री मति[2] बर सागर। इन कुल उपज्यो रतन उजागर।
दरस परस पारस सम पय्यति। मूढि लोह बुधि हेम बनय्यति ॥ १३ ॥
जिन को अदब[3] राखि गुर आपू। तिन कहु समता किस की जापू।
ज्ञान अनंद सागर के मीनि। आठहुं जाम रहति सम लीनि ॥ १४ ॥
गुरघर की नित सेवा ठानति। अपर मनोरथ मन नहिं आनति।
त्रिण छित की बहु रहि रखवारी। हरखति गुरू हुकम अनुसारी ॥ १५ ॥
अस भाई बुड्ढा गुरदास। महिमा कहि न सके कवि तास।
सत्य बाक वर श्राप जु दीनसि। अंगीकार सतिगुरु कीनसि ॥ १६ ॥
इह सभि क़था अगारी बरनों। जिस प्रकार इनको आचरनो।
सरब भांति की शकति बिसाला। जिम चाहसि तिम करणे वाला ॥ १७ ॥
अनिक भाँति के बिघनहु पाइ। नहिं जिन कीनस कबहुँ लखाइ।
धरनी सम जिह धीरज धारी। पौनपीर ते टरे न टारी ॥ १८ ॥
तिस कउ बंस सु ताल मनिंद[4]। उपज्यो राम कुइर अरबिंद।
दसमे पातिशाहि बर बीर। तिनहु पाद पंकज के तीर ॥ १९ ॥
मधुप मनिंद अनद मकरंद। तज्यो न पासि मुकंद बिलंद।
श्री गुरु तेग बहादर पाछे। दीनसि तिलक दसम गुर आछे ॥ २० ॥
कलगी जिगा जराउन जरी। इन ते ले सतिगुर सिर धरी।
आयुध दए आदि शमशेर[5]। ले करि धारे गुर समशेर[6] ॥ २१ ॥
दस पातिशाहिन[7] के निति संगी। सतिगुर क्रिति को चित चहि चंगी।
जग महिं बहु सिक्खी बिसतारी। अनिक नरन कहु कीन उधारी ॥ २२ ॥
जथा चक्रवै अधिपति[8] आगे। मंत्री रहैं सुमति महिं लागे।
तिम सतिगुर घर के इह भए। अति शोभा सिक्खी कहु दए ॥ २३ ॥
सदगुन के इह कोश बिसाले। भे प्रापति जो इन मग चाले।
श्री सतिगुर दसमे पतिशाहू। गमन कीन जबि सचखंड मांहू ॥ २४ ॥
पंथ खालसा उतपति करि कै। राज तेज को छत्र सु धरि कै।
तुरक तेज द्रिढ तरू उखारा। हिंदु धरम राख्यो प्रतिपारा ॥ २५ ॥

1. नित्य। 2. मत, सम्प्रदाय। 3. आदर। 4. समान। 5. खड्ग। 6. सिंह समान। 7. गुरु गोबिंद सिंह। 8. चक्रवर्ती राजा।

भाई रामकुइर तब रहे। रामदास के ग्राम जु लहे।
तहां बिराजति दिवस बिताए। केतिक सिंह तिनहुं ढिग आए॥ २६॥
साहिब सिंह आदिक बुधिवान। जिनके सतिगुर पद को ध्यान।
कथा गुरुन की सुनिबे चाहति। सुनि सुनि गुन को रिदा उमाहति॥ २७॥
श्री गुरबखशसिंह के पास। सभि सिंहन कीनसि अरदास।
महिद[1] प्रसंग गुरन के जेते। करुना करहू उचारहु तेते॥ २८॥
सभि सिख संगति सुनिबे चाहति। सतिगुरु गुन को मड़ां उमाहति।
चंद्र बदन ते सुधा समाना। प्रगट करहु पीवहिं पुट काना॥ २९॥
कमल बदन मकरंद बचन हैं। मधुप सिंह अभिलाखति मन हैं।
भाई रामकुइर सुनि श्रौनि। कह्यो चहति गुर गुन सुख भौनि॥ ३०॥
इह प्रसंग सुनि श्रोता सारे। मिलि संतोखसिंह निकटि उचारे।
'रामकुइर' की पूरब कथा। हमहिं सुनावहु होई जथा॥ ३१॥
किम गुर निकटि रहे सुख पाइ। भे गुरबखशसिंह किम भाइ।
कहहु चरित्र प्रिथम इन केरा। पुन उचरहु इतिहास बडेरा॥ ३२॥
कवि इम सुनि श्रोतनि ते बानी। 'रामकुइर' की कथा बखानी।
कुछक चरित कहौं तिन केरा। पठति सुनति सुख देति घनेरा॥ ३३॥
मन वांछति फल प्रापति होवै। संचति पाप सभिनि को खोवै।
बिमल मति हुइ लहि सुखधामं। लिव लागे सिमरन सतिनाम॥ ३४॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'इतिहास कथन' प्रसंग वर्ननं नाम द्वितीयो अंशु॥ २॥

———

1. बड़े।

अंशु ३

भाई राम कुइर प्रसंग

दोहरा

हसतामलक[1] समान उर जिन के दिढि ब्रह्म ज्ञान ।
श्री बुड्ढा साहिब भए नमो बंदि करि पान ।। १ ।।

चौपई

गुर सिक्खी की अवधि अपारा । जिम सभि जल की सिंधु अपारा ।
मारतंड जिम तेज प्रचंडहि । जथा अखंडल[2] भूतल खंडहि ।। २ ।।
जथा छिमा की छौणी अहै । बायू महिद बेग की लहै ।
सरन शील सौंदरज सूरता । प्रभू बिशन है समै पूरता[3] ।। ३ ।।
सु प्रकाश की अवधि मयंका । जथा दुरग की दीरघ लंका ।
नागनि शेश, बाशकी सरपनि । तन हंत जिनि होंति सभि अरपनि ।। ४ ।।
लिखनि बिखै जिमि अवधि गजानन । जोगी सभिहिंनि की पंचानन ।
सैनापति की अवधि खडानन । रचना रचनन महिं की चतुरानन ।। ५ ।।
तिमि बुड्ढा साहिब ब्रह्म ज्ञानी । सिक्खी के अधार गुन खानी ।
तिन को सुजसु कहां लौ कहीए । जीवन मुकति अवसथा लहीए ।। ६ ।।
तिन को पुत्र नाम कहिं भाणा । जिन जान्यो मीठे गुर भाणा ।
पिता समान ज्ञान महिं पूरा । कामादिक रिपु हते बिसूरा[1] ।। ७ ।।
तिस को पुत्र नाम कहिं स्रवण । श्रवण सुन्यो जसु जिह सम श्रवण ।
सतिगुर सिक्खी कहु बड भारा । सरब सहार्यो भा जग भारा ।। ८ ।।
तिन के उपज्यो पुत्र जलाल । गुर पग प्रेम रंग चढि लाल ।
बहु सिख्यन कहु गुरमति दीनसि । भिले पहुंच नर मुकती कीनसि ।। ९ ।।
तिस को पुत्र नाम कहिं झंडा । जिस को जस जाहर जिमि झंडा ।
ब्रह्मांकार व्रित्ति इक रस मैं । जिस के नहीं अनिकता द्रिश[5] मैं ।। १० ।।
इन ते सुत गुरदित्ता होवा । गुर सिक्खी जिनि मारग जोवा ।
अंत समै पद पदम पहूंचा । ब्रह्मज्ञान महिं जिस मन रूचा[6] ।। ११ ।।

---

1. हाथ पर रखे आँवले की तरह । 2. इन्द्र । 3. पूर्णता । 4. दु:खी । 5. दृष्टि में । 6. लगा हुआ ।

'रामकुइर' उपज्यो तिह नद। जीवन मुकति सु जुगति अनंद।
नेति नेति जिस वेद बतावै। निति अखंड तिस पद लिव लावै॥ १२॥
तुरी अवस्था चित्त अरूढा। बिन सतिगुर जो सभिकहु गूढा।
बालक समता बेद जु कहै। तिस महिं सदा बरततो रहै॥ १३॥
कुछक चरित्र कहौं तिस केरा। जथा सरूप सुभाउ भलेरा।
हुती थूलता तन सभि थानन। लंबोदर लिहु परख गजानन॥ १४॥
सहिज सुभाइक बोलन बनै। बुरा कि भला फुरै ततछिनै।
इक दिन इक राहक घर मांही। बहु नर को भोजन किय ब्याही॥ १५॥
'रामकुइर' के ढिग ले गए। पाइस सिता घ्रित इक मए।
जाइ अगारी थाल टिकायव। रुचि सों स्वादल करि करि खायव॥ १६॥
पुनहि पान करि सीतल पानी। राहक सों तबि बोल्यो बानी।
नीको भोजन करिकै ल्याइव। कारन कवन सु देहु सुनाइव॥ १७॥
हाथ जोरि तिन कह्यो बुझाई। हुतो ब्याह भोजन समुदाई।
अग्र आप के पूरब ल्यायो। पाइस सिता घ्रित जो खायो॥ १८॥
अधिक प्रसन्न होइ बच कह्यो। तिस महिं स्वाद हमहिं बहु लह्यो।
यांते ब्याह ग्राम मैं नीत। होवहि, दे अहार शुभ हीत॥ १९॥
बाक बदन ते एव बखाना। सहिज सुभाइक व्रित्ति समाना।
तिस दिन ते मितु नर हुइ एक। गमने जम पुरि जबहि अनेक॥ २०॥
पर्यो ग्राम महिं रौरा तबि हूं। 'कहां भयो मिलि भाखैं सभि हूं।
कौन ग्राम ने दोष कमायो। जिस ते दुखद समां अस आयो॥ २१॥
सभि महिं तिस राहक ने कह्यो। सुनहु हेतु मैं इक अस लह्यो।
ब्याह भयो जिस द्योस हमारे। करिकै पाइस सिता अहारे॥ २२॥
नीके थाल बिसाल पुरायो। 'रामकुइर' भाई कहु ख्वायो।
सहिज सुभाइक मुख ते प्राही। होवहु ग्राम बिखै नित ब्याही॥ २३॥
तिन को बाक हेतु म्रितु केरि। करि उपचार लेहु बर फेरि।
सुनि सभि लोकन ज़ानी जबिहूं। भोजन भलो बनायहु तबिहूं॥ २४॥
भाउ अधिक ते लै करि गए। जिस असथान बिराजति भए।
बिनै ठानि अचवाइ अहारा। नाना रस मैं स्वाद उदारा॥ २५॥
हाथ जोरि ठांढे ढिग रहे। अचि[1] भोजन भाई बच कहे।
किस कारन ते रुचिर अहारा। करि अचवाइव स्वाद उदारा॥ २६॥

---

1. खाकर।

राहक सुनति गिरा मुख प्राही। शादी हुती ग्राम के मांही।
यांते रुचिर अहार अचावा। तुम ते चाहति सुख उपजावा॥ २७॥
बिहस कह्यो उत्तम बर तिनै। भोजन अच्यो स्वाद के सनै।
यांते ग्राम बिखै नित शादी। हुइ ग्रागै नित करहु अबादी॥ २८॥
सुनि कै सभिनि नमो किय ऐन। म्रितकनि मनहु अमी पिय श्रौन।
हरखति भए म्रितू डरु बीता। होनि लगी शादी मुद चीता॥ २९॥
इस प्रकार श्री मुख ते जैसे। निकसहि फुरहि सु तत्छिन तैसे।
टहिल करन महिं रामा दासू। निति प्रति सेवति रहे सु पासू॥ ३०॥
संगति बडी भेट कहु ल्यावैं। दरशन परसहि चरन मनावैं।
बांछत पाइ करहिं ग्ररदास। द्योस परब के पहुँचहिं पास॥ ३१॥

दोहरा

जो बुढे रमदास के ग्राम बिदति बहु देशु।
तहां करति बिसराम कहु तिन कहु बंस अशेशु[1]॥ ३२॥

चौपई

संगति ब्रिंद जपति गुर नाम। पूजति पावन पूजति काम।
दरब हज़ारन ही अरपावैं। लेहिं दास सभि कार चलावैं॥ ३३॥
काज कदाचित को इक पूछे। सहिज सुभाइ कहैं उर सूछे।
ब्रिती जगत दिश कबहूं कि आवै। नतु अद्वैत बिखै लिव लावैं॥ ३४॥
ब्रिती अखंड राति दिन एक। अचल ज्ञान महिं जलधि बिबेक।
जबि भोजन करिबे कहु लागैं। जावद थाल धर्यो रहि आगै॥ ३५॥
तावद ग्रच्यो जाहिं पुनि कहैं। भो रामा! तूं किस थल अहैं।
ग्रावहु पास परख करि कहो। अचहिं अहार जु नित तूं लहो॥ ३६॥

दोहरा

त्रिपति भए रमदास के पिखहु कि त्रिपते नाहि।
सुनि रामा सेवक तबै हेरहि हुई करि पाहि॥ ३७॥

चौपई

ऊपर उदर हाथ कहु फेरहि। नित सम ऊचो होवति हेरहि।
कहै बंदि कर: त्रिपते अबै। निति सम भोजन कीनसि सबै॥ ३८॥
पुन जल पान करहिं कर धोइ। परमहंस इस बिधि रहि सोइ।
कबि तन सुधि कबहू नहि होइ। बोलहिं कबहि बुलाए कोइ॥ ३९॥

1. सारी संतान।

कबहूं बसत्र सँभारति दास। ऊपर को पतिराइ सु पास।
अंतरमुखी ब्रिति नित राखैं। बोलति जबि बिनती बहु भाखैं॥ ४० ॥
दीरघ केस भौंह दुह केरे। दीरघ पलकहिं कबहि उघेरे[1]।
नांहि ते मुद्रित रहति बिलोचन। करहिं दास की सोच बिमोचन । ४१ ॥
दास लखहिं निति को बिवहारा। सदा करावहिं तिसी प्रकारा।
आमद[2] खरच सँभारनि करें। देनि लेनि निज इच्छा बिचरें॥ ४२ ॥

"इति गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथमरासे 'भाई रामकुइर' प्रसंग वर्ननं नाम तृतीयो अंशु ॥ ३ ॥

————

1. खोले। 2. आय।

अंशु ४

राम कुइर प्रसंग

दोहरा

इक रस ब्रिती अखंड रहि ब्रह्म ज्ञान के मांहि।
आइ कदाचित् जगत दिश रहति दास बहु पाहि ॥ १ ॥

चौपई

एक समै तुरकन की सैना। आइ परी लूटन कहु ऐना[1]।
बस्त्र बिभूखन बासन भारे। तुरंग, धेनु, महिखी गन सारे ॥ २ ॥
देग कराहे, बड बरटोहे। अन्न बहुत सभि लीनसि खोहे।
दास उपाइ करति बहु रहे। क्यों जबरी[2] तुम ठानति अहे ॥ ३ ॥
कहि बहु रहे न मानी काहू। छीन लीनि सभि वथु[3] घर मांहू।
बैठे रामकुइर जहिं भाई। जाइ निकटि सुधि देति सुनाई ॥ ४ ॥
सुनि करि मन महिं कछू न आनै। नहिं दासन सों बाक बखानै।
कई हज़ारन को धन गयो। घर महिं नहीं पदारथ रह्यो ॥ ५ ॥
ले करि सकल तुरक की सैना। जाइ पहूंची अपने ऐना।
लवपुरि को सूबा इक हुतो। सो जानति सभि बिधि इन मतो ॥ ६ ॥
महिमा महां पछानहि सोइ। सुख दुख मैं इक रस निति होइ।
हरख शोक नहिं जिनके लेश। इन कउ लखहि महां दरवेश ॥ ७ ॥
इह सुधि पहुंची तिस के पासि। लिये लूटि रमदास अवास।
ततछिन असु अरूढ करि आवा। लवपुरि ते तूरन ही धावा ॥ ८ ॥
कुछक सैन आई जिह साथ। बहुत बिसूरति सुनि करि गाथ।
रामदास के पहुंच्यो ग्राम। नगन पैर हुइ प्रविश्यो धाम ॥ ९ ॥
बैठे रामकुइर ढिग गयो। हाथ जोडि नंम्री बहु भयो।
चरन सपरशन करि कर संग। बंदन कीनि त्रसति मन भंग ॥ १० ॥
मुख ते स्राप देहि कछु नांही। खर्यो रह्यो डर धरि उर मांही।
सहजि सुभाइ रहे सो वैसे। तिसको बाक न भाख्यो कसे ॥ ११ ॥

1. घर। 2. ज़बरदस्ती। 3. वस्तु।

जबहि खान जानी मन मांहि। बिनां बुलाए बोलहिं नाहिं।
बहुत दीनता साथ बखानी। मोहि बिखबरी ते क्रित ठानी॥ १२॥
भई अवज्ञा अधिक तुमारी। तुरक अजान न कीनि चिनारी[1]।
मिलि मूरख इकठे हुई आए। जिनहुं अखाज खाज लखि पाए॥ १३॥
लूटे ग्राम रु धाम तुमारे। सभि सजाइ के उचित बिचारे।
आप क्रिपा करिकै फरमावउ[2]। गई वसतु जो सगल बतावउ॥ १४॥
करि करि कैद सभिनि को लेवौं। जो कुछ गई कहहु सो देवौं।
अपनी शरनि पर्यो मुझ जानि। छिमा करहु अपराध महानि॥ १५॥
सुने खान के बाक सु कानि। दीन मना[3] ज्यों करति बखानि।
ऊचो मुख करि नैन उघारे। पिखे तुरक गन खरे अगारे॥ १६॥
ब्रिंद तुरंग मतंगनि बाहर। उठति शबद सुनियति गन जाहर।
खान दिशा अवलोकन कीन। बोल्यो रामकुइर परबीन॥ १७॥
'हमरो कछू न कित ते गयो। तुम कैसे बूझति क्या थयो।
ज्ञान अरूढ ब्रिति को जानि। पुनि बोल्यो लवपुरिपति खानि॥ १८॥
तुरक सैन जबि चढि करि आई। वसतु तुमार लुटी समुदाई।
सो सगरी मुझ देहु बताइ। तिन ते लै देवों पहुंचाइ॥ १९॥
रावरि महिमा ते अनजानि। करी अवज्ञा मूढ महानि।
भनति खान के इस बिधि बैन। बाजन की दिस थे तब नैन॥ २०॥
तिन कहु देखति बाक बखाना। हमरे बाज हुते इस थाना।
ले गमनति निति ब्रित अखेरी। इन की रेशम डोर लमेरी॥ २१॥
आडे इन बैननि के जोइ। सो लूटि गए न दिखियति कोइ।
आडे डोरां देहु मंगाइ। जे तुमरे कहिबे महिं आइ॥ २२॥
सुनति खान बिगस्यो बिसमायो। देखहु कस[4] मन कुछ नहिं ल्यायो।
लाखहुं का धन घर ते गयो। रिदे बिकार न तिस ते भयो॥ २३॥
द्रिशटि अगारी जो नहिं पाई। सो लूटि गई रिदे इमि आई।
अपर वसतु की सुधि नहिं जानी। ब्रिति समानि[5] महिद ब्रह्म ज्ञानी॥ २४॥
महिमा महा जानि करि खान। बंदि पान जुग करति बखान।
क्रिपा ठानि मुझ साथ चलीजै। लवपुरि केतिक दिवस बसीजै॥ २५॥
जबि इच्छा पुनि हुई हटि आवहु। कदम आपने मुझ घर पावहु।
इत्यादिक बहु बिनै उचारि। ले संग चल्यो होइ असवारि॥ २६॥

---

1. पहचान। 2. कहना। 3. दैन्य के साथ। 4. किसी तरह भी। 5. एक समान वृत्ति।

दोहरा

बिन लगाम असु बली पर रामकुइर आरूढ़ ।
इक दिश करि दोनहु चरन बैठ्यो जिस मति गूढ़ ।। २७ ।।

देखि तुरक गन बिसमै भए। इक दिश चरन अडुल गति लए।
रामादास साथ तबि खान। बूझन लाग्यो मन हैरान ।। २८ ।।
किम अरूढ़ इह भए तुरंग। गिर न परहिं हुइ भंग न अंग।
नहिं लगाम मुख दीनसि याहू। दिखियति बली महां इह बाहू ।। २९ ।।
तबि रामे ने सकल बताई। इह निति ऐसे करति चढाई।
बिना लगाम भजावहिं घोरा। करहिं अखेर ब्रिति चहूं ओरा ।। ३० ।।
दुइ दिश जांघ कबहिं लटकंते। नाहिं ते इक दिश चरन करंते।
बिसमहि खान बात सुनि करिके। उर महिं संसै रह्यो बिचरिकै ।। ३१ ।।
तिमही चढे आइ लवपुरि मैं। डेरा दीनसि सुंदर घर मैं।
सरब भांति की सेव कराई। लुटी वसतु जो सभि फिरवाई ।। ३२ ।।
जहिं जहिं गई सही करि सारी। लई मंगाइ खान बलि भारी।
ग्राम बिखै सो दई पुचाइ। अपराधनि को दई सजाइ ।। ३३ ।।
हित परखन के पुनि बिधि ठानी। खान महां मति मान बिनानी[1]।
इक बडवा तिह खरी तवेले। जिस पर चढ़तो अधिक दुहेले ।। ३४ ।।
अति अरीअल नहिं चलहि अगारे। हते कसा बहु पुशत निकारे।
चरखी फिरि गेरहि असवार। फाँधति बक्र न देहि सँभार ।। ३५ ।।
भाज चलहि तब अटकहि नांही। मुहिताणी[2] बहु ऐबन मांही।
खान तुरंगनि सो मँगवाई। अरपी रामकुइर कै ताईं ।। ३६ ।।
हाथ जोरि करि बिनती ठानी। 'लेहु उपाइन बडवा आनी।
इस पर आप अरूढन होवहु। फिरहु अखेर चलहु मग जोवहु ।। ३७ ।।
ऐसी रीति भावना मेरी। इस थल ते चढि करि इक बेरी।
प्रथम करहु लवपुरि की सैल। पुन निज ग्राम गमहु सभि गैल[3] ।। ३८ ।।
मारग चले जाहु दिन सारे। उतरो संध्या सदन मझारे।
इम कहि अरप उपाइन[4] दीनि। कितिक दरब अरु बसत्र नवीनि ।। ३९ ।।
अधिक भाउ ते रुखसद[5] करे। हेरि हेरि अचरज उर धरे।
तिस बडवा कउ तबिही लयो। सुंदर ज़ीन जिसी पर पयो ।। ४० ।।

---

1. मान के बिना। 2. मुंह ज़ोर। 3. मार्ग। 4. भेंट करना, उपहार अर्पित करना। 5. विदा करना।

गहि लगाम ततकाल उतांग। भे श्री रामकुइर असवार।
सहिज सुभाइक सो गमनाई। चली बीथका मनहुं पठाई॥ ४१ ॥
अनिक जतन ते जो नहिं चालति। मन अनुसार पाइ सो डालति।
इक दिश दोनहु चरन करे हैं। हेरति पुरि नर हरख भरे हैं॥ ४२ ॥
गरी बजार बिलोकति आए। जहां खान के सदन सुहाए।
महां सम्रिद्ध नगर महिं पूरी। अनिक प्रकारनि रचना रूरी॥ ४३ ॥
जहिं कहिं नरनि भीर समुदाए। भूखन वसत्र पहिर हरिखाए।
पुनहि खान निज बैठक मांहि। ले प्रविश्यो उतंग बड जांहि॥ ४४ ॥
ऊचहि खरे होइ दिखरायो। निज घरु अरु सभि नगर सुहायो।
सभिनि बिलोकति बोले बानी। भाई रामकुइर ब्रह्म ज्ञानी॥ ४५ ॥

दोहरा

'सुनहु खान! रामदास के ग्राम उजार्यो लूट।
वसतु खसोटी सभिनि ते गन मनुजन कहु कूट॥ ४६ ॥

चौपई

सो संगरी तुम ने फिरवाई। हमरो ग्राम बसहि पुनि आई।
तुमरो नगर जु बसहि बिलंद। अर ऊँचे घर सैल मनिंद॥ ४७ ॥
इह जबि लूटे जाहिं उजारे। कौन फिरावहि वसतू सारे।
करहि कौन इन की रखवारी। कहां बसहि इहु नगरी सारी॥ ४८ ॥
सुनति खान कहि 'इह क्या आप। देति मोहि अर पुरि को स्राप।
हम तो सहिज सुभाइक बूझे। तुम को स्राप कुतो इह सूझे॥ ४९ ॥
महां नगर इह उजरै सारा। कहां बसहि, हम एव उचारा।
हमरी वसतु तुमहिं फिरवाई। तुमरी लूटे कहां कर आई॥ ५० ॥
सुनति खान पुनि तूशनि रहिओ। त्रास धरे उर कुछ नहिं कहिओ।
निकसे बहिर अरूढन भए। पहुंचन हित निज ग्राम सिधए॥ ५१ ॥
सने सने मारग चलि परे। सकल वसतु ले सेवक तुरे।
कह्यो खान ते रहीअहि संग। वडवा तेज कुचलनि कुढंग॥ ५२ ॥
तिन पीछैं अपने जनु कोई। पठिबो करे कह्यो संग तेई।
'दूर दूर तुम देखति जाओ। गिरहिं कि नहीं खबर सभि ल्याओ॥ ५३ ॥
जब लगाम बिन चढि कर चाले। अचरज मान्यो खान बिसाले।
नमसकार करि घर को गयो। शरधा दिढि ठानति सुख लयो॥ ५४ ॥
लवपुरि ते निकसे मग परे। चलहि तुरंगनि हुइ अनुसरे।
जथा चलावनि मन महिं ठाने। सुखदा गमनहि तथा महाने॥ ५५ ॥

पठे खान जन देखन जेई। चित पहिचानति भे बिधि तेई।
सभिनि देखिते तबहि भजाई। पौन गौन को करि पिछवाई ॥ ५६ ॥
जाति गरद अवलोकन करिई। नहिं बडवा को अंग निहरिई।
अधिक शीघ्रता धरि इम दौरी। हेरि हेरि नर मति भई बौरी ॥ ५७ ॥
पहुँचे केती दूर टिकाई। पुन नर गन कहु सो द्रिशटाई।
इक दिश चरन किए असवारी। हेरि हेरि सभि बंदन धारी ॥ ५८ ॥
सहिज सुभाइक मारग सारे। उलंघि पहुँचि निज ग्राम मझारे।
उतर परे अपने घर रहे। देश अनिक मानति जिस अहे ॥ ५९ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री रामकुइर प्रसंग' वर्ननं नाम चतुर्थो अंशु। ४ ॥

———

अंशु ५
कथा होण प्रसंग

दोहरा

रामकुइर इस भांति भा ढिग दसमे पातिशाह ।
बहुत बारता तबि करी आगै सुनीए तांहि ॥ १ ॥

चौपई

इसकी कही कितिक गुर कथा। सरब सुनावौं मम मति जथा।
मंनी सिंह भए बुधिवान। तिनहु ब्रितंत जु कीनि बखान ॥ २ ॥
इस शुभ ग्रंथ बिखै मैं कहौं। श्री गुर सुजसु जहां ते लहौं।
तहिं ते करों बटोरन सारे। कितिक सुनी सिक्खनमुख द्वारे ॥ ३ ॥
सो सभि इस मै लिखों बनाई। छंद बंद करि सुंदरताई।
कित कित अपर थान गुर कथा। सो मैं रचों देखि हौं जथा ॥ ४ ॥
श्री गुर को इतिहास जगत महिं। रल मिलि रह्यो एक थल सभिनहिं।
जिम सिकता महिं कंचन मिलै। बीन डांवला[1] ले तिह भलै ॥ ५ ॥
तथा जगत ते मैं चुनि लेऊं। कथा समसत सु लिख करि देऊं।
बानी सफल करन के कारन। करि हौं सतिगुर सुजस उचारन ॥ ६ ॥
जिम दधि बिखै घ्रित[2] मिल रहै। करहि मथन नीके सुभ लहै।
तिम जग महिं कर बाद बिवादू। गुर जसु संचौं दे अहिलादू ॥ ७ ॥
जथा उदधि मथि रतन निकासे। वहिर भए जग महिद प्रकाशे।
तिमि सतिगुर को सुजसु निकाशौं। सभि ते सुनि इक थान प्रकाशौं ॥ ८ ॥
पूरब मैं श्री नानक कथा। छंदन बिखै रची मति जथा।
रह्यो चाहि तो गुरनि ब्रितांत। नहिं पायो तिस ते पशचात ॥ ९ ॥
परालबध करि किति किति रहे। चित महिं गुर जसु रचिबो चहे।
करम काल ते कैंथल आए। थित हुइ जपुजी अरथ बनाए ॥ १० ॥
पुनि संजोग होइ अस गयो। राम चरित को मन हुलसयो।
वालमीक क्रित कथा सुनी जबि। छंदनि बिखे रची तब हम सबि ॥ ११ ॥

---

1. अलग करना। 2. दही में घी की तरह।

रामकथा पावन बिसतारी। सुनि सभि नीकी रीति उतारी।
सुंदर बन्यो रमाइन महां। ततछिन लिखि लीनसि जहिं कहां ॥ १२ ॥
पुन बिदांत को ग्रंथ महान। उपनिशदंनि को जहिं बख्यान।
आतम को पुरान जिस नामू। सकल बनायो सो अभिरामू ॥ १३ ॥
बहुत बरख बीते जब लहे। गुर जसु रचते चाहते रहे।
उर अभिलाखा निति की मेरी। सतिगुर क्रिपा द्रिषटि करि हेरी ॥ १४ ॥
भयो अचानक संचै आई। सरब गुरनि को जसु समुदाई।
चाहति भए आप गुर जबहूं। भा संचै दस गुर जस सभिहूं ॥ १५ ॥
हेरि उमंग मोहि मन आई। करन लग्यो इह ग्रंथ सुहाई।
रामकुइर के मुख ते कथा। बरनो सभि मैं होई जथा ॥ १६ ॥
श्री गुरु गोबिंद सिंह क्रिपाला। गए देश तजि इह जिस काला।
मिल्यो तबहिं बिछुरन नहिं चह्यो। 'निति दरशन करिहौं' बच कह्यो ॥ १७ ॥
इसके मन की सतिगुर जान। क्रिपा धारि इम कीनि बखान।
चढ़हु अखेर दरस तहिं पैहो। अपनी इच्छा पूर करैहो ॥ १८ ॥
सुनि घर गयो अनंद महिं मगन। कलगीधर की लागी लगन।
श्री सतिगुर पहि बिछुर्यो जब ते। पढहि अखेर नेम करि तबि ते ॥ १९ ॥
गमनहि वहिर जाइ उदिआन। दरसहि सतिगुर क्रिपा निधान।
जावद[1] नहिं सरीर कहु त्यागयो। तावद इसी नेम महिं लाग्यो ॥ २० ॥
बहिर अखेर व्रित्ति को जावै। कलगीधर को दरशन पावै।
अवचल नगर गए गुर जबै। सच्चखंड प्रापति भे तबै ॥ २१ ॥
मद्र देश[2] महिं तिन ते पाछे। रहे जु सिंह रहित मंहि आछे[3]।
सो इन के दरशन कहु गए। हाथ जोरि करि बंदति भए ॥ २२ ॥
रहे निकटि गुर सुजसु उचारति। उर महिं परम प्रेम कहु धारति।
'देखहु कहां चलित करि गए। रण महान घमसानन कए ॥ २३ ॥
लाखहुं शत्रुन कउ संहरिकै। पंथ खालसा उतपति करिकै।
हति भे चारिहुं साहिबजादे। तउ जुद्ध महिं बहु अहिलादे ॥ २४ ॥
लेश मात्र जिनि मोह न होयो। महां बीर शत्रुन घर खोयो।
ज्यों चित चहति करति ततकाला। तउ चले जिम नर गन चाला ॥ २५ ॥
जिन महिं अति उतसाह थियों हे। आगे अस किनहुं न कर्यो है।
अधिपति अधिक तुरंगा भयो। सभि देशनि कहु राजा थयो ॥ २६ ॥

---

1. जब तक। 2. पंजाब। 3. अच्छे आचरण वाले।

द्वै बिंसत लछ सैना संग। दस हज़ार तोपैं गढ भंग।
अरु पंचास हज़ार जमूरे। अर्यो न को कीनसि सभि चूरे।। २७।।
अपर सैन जो राजन केरी। गनै कौन संग चलहिं घनेरी।
जिसको तेज सहै नहिं कोऊ। सकल मिलैं बंदै कर दोऊ।। २८।।
तिह सों अरिकै करन लड़ाई। सिंह अल्प ले संग सहाई।
गुर बिन समरथ अपर न लहीए। तिस कलग़ीधर के गुन कहीए।। २९।।
अस तुरकन की जरां उखारी। कीन राज बहु पुशतनि[1] भारी।
दीरघ दुरग मवास[2] बडेरे। होइ छार सो परहिं न हेरे।। ३०।।
भाई रामकुइर तुम लहो। सरब रीति सों समरथ अहो।
करहु लिखावनि गुर की कथा। पेखी सुणी सुणावहू तथा।। ३१।।
प्रथमै अष्ट गुरन की कथा। करहु सुनावनि भे जग जथा।
जिमि चरित्र बर अनिक प्रकारे। करि नर सिख्य समूह उधारे।। ३२।।
पाछे संगति सिक्ख समाजू। पंथ खालसा सिंहन राजू।
पठिवे ते गुर को जसु जानैं। सुमतिवंत बहु भांति बखानैं।। ३३।।
हुइ गुर सिक्खन की कल्यान। अपर धरहिं शरधा सुनि कान।
सभिहिनि पर तुमरो उपकार। सुनि सुनि लें गुरमति को धार।। ३४।।
सभि सिंहन की बिनती सुनि कै। भाई रामकुइर शुभ गुनि कै।
साहिब सिंह लिखारी लाइव। सभि सतिगुर की कथा लिखाइव।। ३५।।
अपर सिंह सुणि बे गन लागे। श्री गुर के गुण सो अनुरागे।
जुग लोकन महिं दे कल्यान। महां महातम सुणिवे कान।। ३६।।
सुत बित आदिक की सुखदाता। कष्ट काटिबे दे ब्रह्म ज्ञाता।
उर शरधा धरि सुनै सुनावै। गुर सहाइ ते मुक्ती पावै।। ३७।।

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'कथा होण प्रसंग वर्ननं' नाम पंचमो अंशु। ५।।

———

1. पीढ़ियों तक 2. रक्षा के स्थान।

अंशु ६
श्री नानक पुत्रन प्रसंग

दोहरा

सुनिकै सिंहनि सभिनि ते पर उपकार बिसाल।
नौं सतिगुरु इतिहास जस उर बिचार तिस काल। १॥

चौपई

भाई रामकुइर सवधान। कहिनि लगे गुर कथा महान।
जिसके पठति सुनति मन पावन। चार पदारथ दै मन भावन॥ २॥
अपर महातम कहां सु कहीए। उत्तम सिक्खी कहु पद लहीए।
श्रोता होति भए सवधान। श्रवन करन लागे रुचि ठानि॥ ३॥

भाई रामकुइरोवाच

चौपई

प्रथम चरन कलि काल बिसाला। जहिं तहिं लागे करनि कुचाला।
मत बिसतरे अनेक कुढाले। नहिं सिमरहिं सतिनाम सुखाले॥ ४॥
केतिक मत गिनीए जग भए। तनक सिद्धि लहि पंथ चलए।
परमेशुर को नहिं पहिचानै। अपर बिधिनि उपदेश बखानै॥ ५॥
पूरब जुगन बिखै तप यज्ञ। करि करि साधन भए स्वज्ञ।
कलि महिं शकति हीन नर रहे। किस प्रकार मुकति कहु लहे॥ ६॥
करता पुरख बिचारन कीन। जाने कलि महिं जीव जि दीन[1]।
सत्तिनाम सिमरहिं सुख होइ। इस बिन आन उपाइ न कोइ॥ ७॥
आप जाइ कर सुमति बतावौं। परे कुमग ते सुमग चलावौं।
मो बिन सरै कार इहु नांही। यांते नर तन धरि जग मांही॥ ८॥
घर कालू के जनमे आई। जननी त्रिपता पिखि हरखाई।
अलप वैस महिं सुंदर बेस। जहिं कहिं देति भए उपदेश॥ ९॥
सत्तिनाम को सिमरन करनो। सनै सनै तन अहं[2] बिसरनो।
भाणा परमेशुर कहु जैसे। हुइ प्रसन्न अनुसारी तैसे॥ १०॥

1. दु:खी। 2. अहंकार।

इस प्रकार को दे उपदेश। अनिक नरनि के कटे कलेश।
मूले की तनुजा बडभागनि। श्री गुर महिला[1] महां सुहागनि ॥ ११ ॥
तिस ते पुत्र भए जुग धीर। ब्रह्म ज्ञान महिं अचल गंभीर।
जेठो भा श्री चंद उदारा। नहिं ग्रिहसत मग अंगीकारा ॥ १२ ॥
रहै ब्रिती नित जोग अरूडा। इक रस मैं आशै जिस गूढा।
जिनके छुयो बिकार न कोई। जती पुरुष भीशम सम सोई ॥ १३ ॥
लखमीदासु अनुज तिन भयो। मग ग्रिहसत जिन धारनि कयो।
ज्ञान बिखै जुग भ्रात समान। श्री नानक के पुत्र सुजान ॥ १४ ॥
धरम चंद पोत्रा पुन भयो। जिसते बंश बेदीयन थयो।
इक दिन करि अखेर कहु आए। शशि[2] हति असु दुह दिशि लरकाए ॥ १५ ॥
सिरीचंद ने अनुज निहारा। क्रिपा जुगत हुइ बाक उचारा।
'दिन प्रति अनिक जीव कहु धावैं। इह लेखा देनो बनि आवैं ॥ १६ ॥
कह्यो भ्रात को नहीं सहारा। गयो सदन मैं कीनसि त्यारा।
अपन भारजा ले सुत संग। धारि शीघ्रता चढ्यो तुरंग ॥ १७ ॥
आइ भ्रात सों भन्यो जनाए। लेखा देनि अबहि हम जाए।
सुनति सिरीचंद रिदै बिचारा। धरमचंद को पकरि उतारा ॥ १८ ॥
हम तो नहिं ग्रिहसत को करिहीं। रहैं बंस इस ते जग थिरिहीं।
सहत भारजा गयो, न आयो। अवलोकति नर गन बिसमायो ॥ १९ ॥
धरमचंद ते चाल्यो बंस। सभि बेदी ऊजल जिम हंस।
सिरीचंद बय भई बिसाला। जग महिं देहि धरी चिरकाला ॥ २० ॥
सदा जोग रस भोगनि करते। जगत बासना नहिं मन बरते।
जहांगीर जब भा तुरकेश। सुनिकै इनि को सुजसु बिशेष ॥ २१ ॥
कई बार निज मनुज पठाए। बिनै ठानि कै निकट बुलाए।
करामात को चाहति देखा। कौतक जिसके रिदै बिशेखा ॥ २२ ॥
गोदडीआ सेवक रहि नाले[3]। तिसके कंध चढहिं जब चालें।
नांहि त टिके रहैं निज थान। सदा लगाए राखहि ध्यान ॥ २३ ॥
तिस पर चढि लवपुरी सिधारे। सनै सनै तहिं पहुँच सुखारे।
इक दिन डेरा तहां टिकाए। पुन तुरकेशुर निकटि बुलाए ॥ २४ ॥
जन गोदडीए पर आरूढि। पहुँचे तहिं आशै जिन गूढि।
पहुंच तीर जबि सनमुख दीखा। तहिं उतरे तन शभु सरीखा ॥ २५ ॥

---

1. स्त्री। 2. खरगोश। 3. साथ।

तन पर की खिंथा सु उतारी। धरी तहां जहिं परहि निहारी।
बिरध अवसथा[1] तबि चलि गए। सादर बोल बिठावति भए॥ २६॥
कर्यो परसपर बाक बिलास। उत्तर उचित दिये तिस पास।
पुन तुरकेश बिलोकन करी। खिंथा बहु कंपति जहिं धरी॥ २७॥
इत उत चलहि, उठहि गिर धरनी। कभि इकठी कभि होइ पसरनी।
कभि ऊँचे हुइ ले अंगराई। कभहि जंभाई की समताई॥ २८॥
कंपति खिंथा पिखि बिसमायो। हित बूझन तुरकेश अलायो।
तरै गोदरी क्या तजि आए। इत उत होति बिकुल अकुलाए॥ २९॥
सुनति कह्यो श्री नानक नंद। दरवेशन के ख्याल बिलंद।
इन को अंत लैन भल नांही। नीकी जितक सेव बन जाही॥ ३०॥
कोई किमि बरतै किमि होइ। नित खुदाइ के सनमुख होइ।
जहांगीर ने पुनह बखाना। मोहि दिखावहु क्रिपा निधाना॥ ३१॥
अचरज बरतति है मन मेरे। खिंथा कंपति परिही हेरे।
अपर नहीं कछु जान्यो जाइ। क्या इस विखै रह्यो दुख पाइ॥ ३२॥
सिरीचंद जी तबहि बुलायो। आवहु खिंथा महिं जु टिकायो।
तुरकेशुर को अपने आप। करहु दिखावन सहत प्रताप॥ ३३॥
हुतो गोदरी महिं जुर[2] भारा। श्री गुर सुत ने जबहि हकारा।
जहांगीर कहु आनि चढ्यो है। शुशक भयो मुख, कंप बढ्यो है॥ ३४॥
तन रुमंचु लोचन भे लाल। तपत्यो पीर बढी बिसाल।
हाड फोरनी सिर मैं बिरथा[3]। भयो बिहाल म्रितक हुइ जथा॥ ३५॥
हाथ जोरि करि 'मुहि न दिखावो। महां दुखद कौ शीघ्र हटावो।
नांहि त प्रान हान हुइं मेरे। तुम समरथ सभि रीति बडेरे॥ ३६॥
बिनै सुनति गुर पुत्र उचारा। हट प्रविशहु तिस खिंथ मझारा।
तिसते उतर गयो ततकाला। लगी हलन गोदरी बिसाला॥ ३७॥
जहांगीर सो पुनहिं सुनाइव। इह जुर हमरे तन हित आइव।
चढे ताप के हम चलि आए। तुम सों बोलन हित तजि थाएं॥ ३८॥
चढे ताप के सुनिबो कहिबो। होति न नीके, तन को दहिबो।
हम अब जाति सु लेहिं संभारे। तुरकेशुर सुनि अचरज धारे॥ ३९॥
हित रुखसद बहु भेंट मंगाई। गुर सुत लई न तजि तिस थाईं।
ले खिंथा सेवक पर चढे। तुरकेशुर के संसे कढे॥ ४०॥

---

1. वृद्ध अवस्था। 2. ताप। 3. पीड़ा।

जाइ आपने थांन बिराजे। सिरीचंद रस जोग जु पागे।
खट पतशाही लगि जग रहे। अधिक आरबल तनकी लहे ॥ ४१ ॥
श्री गुरु हरि गुबिंद के नंद। श्री बाबा गुरदित्ता चंद।
तिनहुं जाइ करिसीस निवावा। बिनै ठानि बहू भाव बधावा ॥ ४२ ॥
कुलहि[1] उतार तबहि निज सिर ते। तिन के सीस धरी निज कर ते।
अपन सथान थाप करि आप। करति भए दीरघ परताप ॥ ४३ ॥
श्री बाबा गुरदित्ता फेर। सरब रीति ते भए बडेर।
इन के सिख भे चार अगारी। जिनहु बैंठि कीनसि तप भारी ॥ ४४ ॥

दोहरा

बालू हसना, फूल पुनि गोंदा अरु अलमसत।
मुक्ख उदासी इह भए बहुरो साध समसत ॥ ४५ ॥

चौपई

तिन ते बिदत्यो पंथ उदासी। लाखहुं भए करहिं तप रासी।
श्री नानक के अस जुग नंदन। कवि संतोख सिंह ठानति बंदन ॥ ४६ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री नानक पुत्रन प्रसंग वर्ननं' नाम षष्ठमो अंशु ॥ ६ ॥

---

1. लम्बी टोपी।

अंशु ७

श्री गुरु प्रणाली प्रसंग

दोहरा

पंद्रहि सत खट बीस सैं जनम गुरू महाराज।
सत्रह संमति छिति रहे अनिक गरीब निवाज॥ १॥

चौपई

घोर घाम भव जीव दुखारे। शशि सम उद्‌यति करे सुखारे।
कोइ न जिनके अर्यो अगारी। भए नंम्रि अज़मति धरि भारी॥ २॥
जितक शकति जुति भे सभि तारे। रवि सम उदै छपे तबि सारे।
पंद्रह सत छिआनवें माहूं। मास असौज सरद रुति ताहूं॥ ३॥
क्रिशणा दसमी पितरन दिन की। प्रभु बैकुंठ गए सहि तन की[1]।
ऐरावती कूल अभिराम। तहिं करतार पुरा किय ग्राम॥ ४॥
गुरू बसत्र को ले ससकारा। नाम देहुरा बिदति उदारा।
तिस गादी गुर अंगद बैसे। पोशश अपर पहिर न्रिज़प जैसे॥ ५॥
तेहण कुल महिं फेरू नाम। पुण्यातम सुशील सुचधाम।
साध्वी दयाकौर बर दारा। जिनके सुक्रित को नहिं पारा॥ ६॥
ग्राम हरी के धाम बसंते। निसि बासुर हरि हरि सिमरंते।
श्री गुर अंगद जनमे जिनके। कहि लौं कहौं महातम तिनके॥ ७॥
जनम हरी के ग्राम भयो है। आन थान पुन बसन कियो है।
पंद्रहि सत सताहठा संमत। फेरू सुत जनम्यो गुरु संमत[2]॥ ८॥
पहुँचे श्री नानक की शरनी। सेवा बिखे नीक करि करनी।
जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ॥ ९॥
इम कहिवो जिनि सफल कियो है। अति रिझाइ श्री गुरू लियो है।
जिनहुं न अज़मत कहूँ जनाई। अजर जरन ध्रित छिति समताई॥ १०॥
जिनके गुन कहू बरनै कौन। बानी शेश देख नहिं मौन।
खीवी[3] सती भारजा होई। भए आतमज जिस ते दोई॥ ११॥

---

1. तन सहित। 2. तुल्य। 3. गुरु अंगद की पत्नी का नाम।

नाम दासु अरु दाता दूवा। जिन के रिदै ज्ञान द्रिढ़ हूवा।
द्वादश बरख टिके गुर गादी। षष्ठ मास नौ दिन अहिलादी ॥ १२ ॥
सोलहि सत नौ संमत और। चौथ चेत सुदि नर सिरमौर।
तन कउ तजि बैकुंठ सिधारे। श्री गुर अमर तखत बैठारे ॥ १३ ॥

दोहरा

ग्राम खडूर कुविंद[1] घर तहिं सिसकारी देहि।
अब लौ खर्यो करीर तरु किलक लग्यो पग जेह[2] ॥ १४ ॥

चौपई

बासर के इक ग्राम सु नामू। तेजो मल्ल बसहि करि धामू।
रूपकौर दारा तिस केरी। तपसा कीनसि जिनहुं बडेरी ॥ १५ ॥
जिसको फल बिदत्यो अस आइ। जनम्यो सुत शुभ गुन समुदाइ।
श्री गुर अमरदास बर नामू। ब्रह्म ज्ञान निश्चल के धामू ॥ १६ ॥
गुर अंगद सेवे इस रीति। सुन रुमंच हुइ बिसमति चीति[3]।
जबहि बहत्र बरख बय भई। तबहि आइ गुर सेवा लई ॥ १७ ॥
द्वादश संमत करि सस्रूखा[4]। मुर्यो न मन कबि रह्यो अदूखा[5]।
बैस चुरासी संमत जबै। तखत जगत गुरता टिक तबै ॥ १८ ॥
रह्यो प्रकाशन अपनो आपि। कही पैज अपनी कहु थापि।
जब लगि जग हमरो तन रहै। सुत म्रितु मात पिता नहिं लहैं ॥ १९ ॥
द्वै बिंसत दिल्ली उमराव। तिते सिक्ख मंजी सु बिठाव।
कौन कौन गुन तिन के भनीअहि। जल तरंग रज कन सम गनीअहि ॥ २० ॥
रामो नाम भारजा अहै। जिस उर पतिब्रति बामा अहै।
द्वै सुत जिस ते जनमति भए। मोहन नाम मोहरी थए ॥ २१ ॥
उपजी सुता नाम जिस भानी। अपर न पिखीअहि जाहिं समानी।
अप्रमान बर भाग महाना। जिस को पिता गुरू जग माना ॥ २२ ॥
पुनि भरता ने गुरता पाई। जिनहु उधारे नर समुदाई।
पुनह जगत को गुर सुत भयो। सुजसु प्रकाश दसहूं दिश कयो ॥ २३ ॥
यांते बहु बड भागा भानी। जहिं कहिं प्रगट नाम जग जानीं।
श्री गुर अमर पुत्र बड मोहन। देव बधू जिसु करहिं न मोहन[6] ॥ २४ ॥

---

1. जुलाहे का। 2. जो। 3. चित्त। 4. सेवा। 5. दुःख-रहित। 6. मोहित करना।

सिर ते नगन रहै उनमत्य[1]। रिदे ज्ञान द्रिढ़ चेतन सत्य।
कबि जुग हाथन करहि अहारे। रहै इकांत एक चौबारे॥ २५॥
नंम्रि भयो नहिं किसहि अगारी। अहं ब्रह्म उर महिं द्रिढ़ भारी।
अनुज मोहरी सुमति महाने। पिता बाक सादर जिन माने॥ २६॥

दोहरा

जग सागर को तारबे सगरी संगति पार।
भयो मोहिरी मोहरी ठानि महां उपकार॥ २७॥

चौपई

द्वै बिंसत संमत ह्वै इकरस। पंच मास अरु दिवस इकादश।
गुरता गादी कीनि अबादी। गन उर दई ज्ञान की शादी॥ २८॥
सोलहि सत इक तीसा फेर। भादों सुदि पूरनमा हेर।
तन को तजि बैकुंठ सिधारे। हम से जिन बहु पतित उधारे॥ २९॥
इक सौ षष्ठ बरख बय लही। संमत षष्ठ और थी रही।
गुरता सहित दई हरखाए। श्री गुर रामदास बैठाए॥ ३०॥
लवपुरि महिं छत्री हरिदास। महां सुशील सुक्रितन रास।
खेम कुइर जिस के घर दारा। हित करि निति पतिब्रति प्रतिपारा॥ ३१॥
तिन ते उतपति भए सु नंद। श्री गुर रामदास कुल चंद।
भए जु कुल भल्यन के भूखन। भानी तिन की सुता अदूखन॥ ३२॥
सोढी बंस चंद कहु ब्याही। रही जु बहु पित के ढिग चाही।
गोइंदवाल पुरी बख्याती। तहां बसति बीते दिन राती॥ ३३॥
तीन पुत्र उपजे तिन केरे। श्री अरजन प्रिथीआ सु बडेरे।
त्रितीय महांदेव जिह नाम। महां गंभीर धीर अभिराम॥ ३४॥
श्री गुर रामदास जग भायो। गुन अनेक जुति तखत सुहायो।
संमत षष्ठ इकादश मास। दिवस अष्ट दस श्री सुख रास॥ ३५॥
गुरता गादी परथिति रहे। जिनते अनिक दास गति लहे।
सोलह सत अठतीसा साल। भादों सुदी तीज गुर दयाल॥ ३६॥
तजि सरीर बैकुंठ पधारे। श्री अरजन जी तखत बिठारे।
पुन सोढिनि कुल महिं गुरिआई। होति भई गुर दसमे ताईं॥ ३७॥
पंचम पातिशाह जबि भए। ताल सुधासर तबि निरमए।
बीड ग्रंथ साहिब की होई। जिस पठिकै गति लहि सभि कोई॥ ३८॥

---

1. उन्मत्त।

गंगा नाम भारजा ब्यांही। साध्वी के गुन सभि जिस मांही।
नंदन उपज्यो इक कुल चंद। बड धनुधरि श्री हरिगोबिंद ॥ ३९ ॥
धीर धरम ध्वज श्री गुर अरजन। बिसतीरति जित कित जसु अरजुन[1]।
जग करतव्य करे शुभ भारे। भगति बिथारि[2] अनिक जन तारे ॥ ४० ॥
बिसत चतुर बरख नव मास। इक दिन ऊपर श्री सुखरास।
गुरता लहि सरीर कउ धारा। पुनहि चह्यो सचखंडसिधारा ॥ ४१ ॥

दोहरा

षोडस सत त्रेसठ अधिक ज्येषठ मास महान।
सुदी चौथ दिन महिं गुरू कीन बैकुंठ पयान[3] ॥ ४२ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री गुरु प्रणाली प्रसंग वर्ननं' नाम सप्तमो अंशु ॥ ७ ॥

---

1. उज्ज्वल। 2. विस्तार किया। 3. प्रस्थान।

अंशु ८

गुर परनाली प्रसंग

चौपई

पुन श्री हरि गोबिंद गुरु होए। प्रभु पीरी अरु मीरी दोए।
जनम लीन जहिं ग्राम बडाली। बली महिद तन डील बिसाली ॥ १ ॥
दारा तीन सुशीला ब्याही। इक दमोदरी दुति मरवाही।
नाम नानकी त्रितीया केरा। मन सिमरति जिन अनंद घनेरा ॥ २ ॥
पंच पुत्र इन ते उतपत्ता। जेठो श्री बाबा गुरदित्ता।
सूरजमल अरु नमी राइ भनि। अटलराइ ब्रह्म ग्यान सभिनि मनि ॥ ३ ॥
पंचम भे श्री तेगबहादर। निकट बिठावहिं जिन पित सादर।
स्री गुर हरिगुबिंद सम शेर। हते तुरकगन गहि शमशेर ॥ ४ ॥
गन दासन के कार सुधारे। जग महिं कीरति बहु बिसतारे।
इक त्रिशत संमत दस मास। खट दिन गुरता थिति सुखरास ॥ ५ ॥
सोलहि सत पचानवे साल। चेत पंचमी शुदी क्रिपाल।
सच्च खंड को तबहि पधारे। श्री हरिराइ तखत बैठारे ॥ ६ ॥
श्री बाबा गुरदित्ता रूप। ब्याही नेती नाम अनूप।
द्वै सुत इन ते उतपति होए। श्री हरि राइ धीर मल दोए ॥ ७ ॥
टिक्यो पितामे ते गुर पोता। दीन दुनी थंभि भार खलोता[1]।
कीरतपुरि महिं जनमु भयो है। श्री हरिराइ गुरु सु थियो है ॥ ८ ॥
बहु दासन को करि बखशीश। हुते रंग जे भए महीश[2]।
ब्याही महिला अशट महानी। किशन कुइर, कोटि कल्यानी ॥ ९ ॥
तोखी अपर अनोखी नीकी। रामकुइर, अरु नाम लडीकी।
सपतमि है श्री प्रेम कुमारी। अशटम चंदकुइर सुखकारी ॥ १० ॥
द्वै सुत श्री हरिराइ उपाए। रामराइ हरि क्रिशण सुहाए।
जुग जनमे कीरतिपुरि मांही। ब्रिधे सरीर सुखद थल तांही ॥ ११ ॥

---

1. खड़ा है। 2. राजे।

संमत त्रै बिंसत खट मास। दिवस चतुर दस लै सुखरास।
गुरता गादी पर थिति रहे। श्री हरिराइ दास दुख दहे ॥ १२ ॥
संमत सत्रह सत अशटादश। कातक वदि नवमी महिं सुख बसि।
श्री हरि क्रिशन तखत गुरिआई। बैठे सिसु अति बैस सुहाई ॥ १३ ॥
दिल्ली महिं गमने किसि हेत। तहिं तन त्याग्यो क्रिपा निकेत।
जुग संमत अरु पंच महीने। दिन उनीस गुरता पद कीने ॥ १४ ॥

दोहरा

संमत सत्रा सै बिते ऊपर बीस रु एक।
चेत सुदी चौदस दिवस श्री गुर जलधि बिबेक ॥ १५ ॥

चौपई

एक जाम खट घटी बिताए। निसा बिखे श्री गुरू समाए।
बाबा 'कह्यो' बकाले मांहि। सतिगुर तेगबहादुर ताहिं ॥ १६ ॥
अरपति भए तिनहि गुरिआई। तखत बिराजे सिख सुखदाई।
श्री गुर हरिगोबिंद के नंद। सोढी वंश गगन के चंद ॥ १७ ॥
मात नानकी जिन की जानि। जनम सुधासर पुरि के थानि।
श्री गुजरी महिला शुभ ब्याही। तप को तेज पुंज जिन मांही ॥ १८ ॥
तिन के पुत्र भए बड सूरे। देग तेग दुहूंअन के पूरे।
जिन धरि कलगी शत्रु बिदारे। तुरक पहारी अरे सु भारे ॥ १९ ॥
इम श्री तेग बहादर भए। दास अनेक उधारन कए।
संमत दस अर सपत महीना। दिन इकीस गुरता पद लीना ॥ २० ॥
तन त्यागन को समो सु पाइ। तुरकेशुर सिर दोष चढाइ।
हिंदवाने की राखन कान[1]। दियो सीस जनु करिकै दान ॥ २१ ॥
संमत सत्रा सहस बतीस। मंगसिर सुदी पंचमी थीस।
सुरगुर दिवस जाम जुग आवा। ऊपर घटिका एक बितावा ॥ २२ ॥
सतिगुर तेग बहादर राइ। दिल्ली पुर महिं मिस दिखराइ।
तन को त्याग बैकुंठ सिधारे। देवन जै जै शबद उचारे ॥ २३ ॥
अंध धुंध जग खरभर[2] पर्यो। तुरकन बिखै त्रास बहु कर्यो।
'हाइ हाइ' सभि करि नर नारी। तुरकेशुर को दें सभि गारी ॥ २४ ॥
तिस दिन ते उत्तम नर जाना। हति भा राज तेज तुरकाना।
दिल्ली पुरि को त्यागि तुरंगा। बाहर निकसि रह्यो डर संगा ॥ २५ ॥

1. लाज। 2. घबराहट।

प्रविश्यो पुरि न आइ कै सोयो। बड पापी निज सभि किछ खोयो।
सतिगुरु को करिकैं अपराधू। होयो श्रीहति दुशट असाधू ॥ २६ ॥
जिम रावन दीरघ मद मानी। छल बल ते सीता हरि आनी।
करि रघुबर को दोष मलीना। सकल समाज नाश करि लीना ॥ २७ ॥
पतिशाहति बहु पुशतन केरी। सभि जग दोही फिरहि घनेरी।
सुरपति सम ऐश्वरज प्रकाशा। गुरू द्रोह ते कीनसि नाशा ॥ २८ ॥
श्री गुर तेगबहादर पाछे। श्री गोबिंदसिंह भे गुर आछे।
श्री गुजरी ते जन्म लियो है। पुरि पटणे महिं खेल कियो है ॥ २९ ॥
ब्रध्यो सरीर बहुर चलि आए। मदरदेश निरखे हरखाए।
तीन भारजा जिन घर होई। नाम अजीतो दीरघ सोई ॥ ३० ॥
पुत्र तीन उपजे बल भारी। मनहुं अगनि तीनहु तन धारी।
अपर सुंदरी नाम पछानो। शुभ मति पतिव्रत धरम निधानो ॥ ३१ ॥
तिसके सुत अजीत सिंह होवा। बहु रिपु हति जो रन महिं सोवा।
तीसर साहिब देवी दारा। तांहि खालसा पुत्र अपारा ॥ ३२ ॥
इम साहिब दसमे पतिशाहू। तुरकन सों रण करि उतसाहू।
अनिक प्रकारन कीन अखारे। करि पुरशारथ को रिपु मारे ॥ ३३ ॥
पंथ खालसा उतपति करिकै। तुरक तेज की जड़ां उखरिकै।
बरख बतीस इकादश मास। जग महिं कीनसि धरम प्रकाश ॥ ३४ ॥
सिख्यन अनेकनि को गति दीनी। दुख ते बचे शरन जिन लीनी।
सत्रह सहस पैसठा ऊपर। कातिक शुदि पंचै दिन सुरगुर ॥ ३५ ॥
रही जामनी जाम सवा जबि। सच्चिखंड पहुंचे श्री गुर तबि।
अविचल नगर नाम शुभ थान। भयो देहुरा जोति महान ॥ ३६ ॥
श्री हरिराइ पाइ गुरि आई। तबहु नुरंगे दिल्ली पाई।
पतिशाहित कहु मालक भयो। राज तेज जिन बड बिरधयो ॥ ३७ ॥
बहुतनि कै करिकै अपराधू। महां कुकरमि कशट दै साधू।
गुर घर सों बहु द्रोह कमावा। कर्यो अकरम दुशट दु:ख पावा ॥ ३८ ॥
सुनि सभि सिंह प्रसन्न महाना। हाथ जोरि कै बाक बखाना।
नौ गुर की सभि कथा बखानो। तुम सरवग्य सरब ही जानो ॥ ३९ ॥
इह सभि प्रथमे कथा सुनय्यै। गुरु चरित्र कीनो समझय्यै।
ज्यों ज्यों भए कहो सभि कथा। गुरू प्रसंग सुनावहु जथा ॥ ४० ॥

सुनी खालसे की इमि बानी। श्री गुरबखशसिंह मन मानी।
कथा सुनावनि लाग्यो सोई। नौ सतिगुर की जिमि जिमि होई ॥ ४१ ॥

दोहरा

सुनति भयो तबि खालसा श्री गुरु जसु को श्रौन।
पठहि सुनहि मन महिं गुनहि पुरहि कामना तौन[1] ॥ ४२ ॥

इति श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'गुर परनाली' प्रसंग बरनंनं नाम अष्टमो अंशु ॥ ८ ॥

-----

1. उसकी मनोकामना पूर्ण होती है।

अंशु ६

श्री अंगद प्रगट होण प्रसंग

दोहरा

एको रूप सु दसम गुरु पारब्रह्म आनंद।
पद अरबिंद मुकंद बर बंदौं द्वै कर बंद ॥ १ ॥

सवैया

श्री गुर नानक पूरन ते गुरता गुर अंगद ने जबि पाई।
ध्यान रिदै गुर मूरति को ठहिराइ लियो जब दीन बिदाई।
बेबस ह्वै बिछर्यो गुर ते अशटांग करी मुख कौ रज लाई।
नीर बिलोचन भूर बिमोचति सोचति प्रेम महां उमगाई ॥ २ ॥
जीव शरीर मनो बिछर्यो बिरहाकुल ते उर ब्याकुल भारे।
बोलब नांहि बनै गुर अग्रज संकट तूशनि ठानि सहारे।
आइसु मानिबो धरम धर्यो, तजि नांहि सकैं नहिं बाक उचारे।
होइ बिदा ततकाल चले निज ग्रामं खडूर के पंथ पधारे ॥ ३ ॥
आवति हैं चित मैं चितवंतति श्री गुर रूप सुभाउ क्रिपाला।
दीन पै दयाल, पछानति घाल को सेवक को बसि प्रेम बिशाला।
चाहति हैं प्रसथान बिकुंठ को मोहि बड़ाई दै कीनि निराला।
संकट ब्योग कु मोहि बध्यो, बस नांहि चलै तिन के बचनाला ॥ ४ ॥
श्री गुर अंगद बीच खडूर के आइ प्रवेश भए निज थाईं।
मौन धरे नहिं कौन मिलें, बिच भौन बरे पिख माई भिराई।
बूझति श्री गुर नानक की सुध 'कौन से थान तजे सुखदाई।
क्यों तुम कोठरी आनि थिरे मन भंग अहै मुख ना बिकसाई ॥ ५ ॥
तूशनि ठानि भन्यो कुछ नांहिन, आनन दीरघ स्वास भर्यो।
लोचन नीर बिमोचति, सोचति, लोचति हैं चित मेल कर्यो।
ऐस दशा पिखि जानी रिदे तिन—श्री गुर ना इस लोक थिर्यो।
आपने धाम बिकुंठ गए इन ब्योग भयो दुख दीह धर्यो ॥ ६ ॥
फेर भिराई ने बूझन कीनसि 'श्री गुर को परलोक भयो'।
यौ सुनिकै गुर अंगद ने तबि तांही के संग बखान कयो।

मोहि कछू नहिं भावति है, दिखिबे सुनिबे चित खेद थियो।
अंतरि होइ इकंत निरंतर बैठ्यो चहौं इहु मेरो हियो ॥ ७ ॥
ज्यों बिसफोट पक्यो दुख देति है चोट लगे पुन ह्वै अधिकाई।
तिउं बिवहार, विलोकनि बोलनि, श्रौन सुनै मुझ ह्वै बिकुलाई।
कोठड़ी को दर सो चिन देहु। कहो किस पास न कैसे बताई।
मो पर यौं उपकार करो बिच बैठि रहौं जिमि ह्वै न लखाई ॥ ८ ॥
बूझनि कीन भिराई ने फेर 'इकंत रहो थित ह्वै इस थाईं।
क्यों दर को चिनवावति हो, इह बात बने नहिं, संकट पाई।'
श्रौन सुने तिस ते किय तूशनि फेर नहीं कुछ बानी अलाई।
बैठि रहे जुग लोचन मूंद, मनो शिवमूरति ध्यान लगाई ॥ ९ ॥
श्री गुर को रुख जानि तबै दर को चिनि कीनो है बंद भिराई।
फेर कह्यो इक सार भले बहु पंक लगाइ कै कीन लिपाई।
कोइ न जानि सकै दरु को इस भांति जिमि कियो श्री गुर भाई।
बीति गए इसि रीत छिमास अलोप भए, नहिं काहूं लखाई ॥ १० ॥
बुड्ढे आदिक जे गुर के सिख होति भए इकठे समुदाए।
श्री गुरु मूरति डीठ न आवति सो भटकंति रिदे मुरझाए।
कीन बिचार भलो सभि हूं मिलि 'आप गुरू बहु बार बताए।
मेरो सरूप पिखो तन अंगद, भेद नहीं इक मेक बनाए ॥ ११ ॥
मोकहु सेवनि चाहति जो गुर अंगद सेवहु प्रेम करे।'
बुड्ढे कह्यो निज थान स्थाप्यो है तांहि सरीर मैं आप बरे।
खोजहु कौन सथान अहैं, सुनि कै सिख केतिक ग्राम फिरे।
प्रेम ते चौंप बधी हित हेरेनि प्रेरन कीन प्रमोद धरे ॥ १२ ॥

दोहरा

मिलि करि सभिनि बिचारिओ ग्राम खडूर मझार।
निकटि भिराई होहिंगे, अपर न सुनीए सार ॥ १३ ॥

सवैया

बूढे ते आदिक जे समुदाइ गए सभि सिक्ख खडूर मझारी।
माई भिराई के पास मिले सगरे कर जोरि नमो पग धारी।
बूझन कीनि: 'कहां गुर अंगद, हेरन के हित चाहि हमारी।
ह्वै सफलो सभि को इति आवनि पावन, पावन लेहिं निहारी ॥ १४ ॥
श्रौन सुने सभि के बचना, नहिं बाक कह्यो तिन संग भिराई।

मौन करे मुख बैठि रही, बिच भौन थिरे सिख जे समुदाई।
जानि गए मन मांहि तबै, गुर अंगद जी कित हैं इस थाईं।
फेर करी बिनती कर जोरि कै। माई जी श्री गुर देहु बताई॥ १५॥
बैन कह्यो नहिं भै करिकै, सभिहूं मिलि बात बिचारनि ठांनी।
श्री गुर अंगद की बरजी मरजी बिन क्यों सु बताइ निशानी।
बुढे निहारन कीन इतै उत कोठड़ी देखि चहूं दिशि जानी।
बंद इही दरं जान्यो परै गुरु होइं तु होइं थिरे इस थानी॥ १६॥
फेर मिले सभि सों निरने करि 'हैं निशचे इस कोठरी मांही।
बंदन ठानि भनि बिनती मम नाम बुढा लखि आयो इहां ही।
श्री गुर नानक दीन मुझै बर—मैं जहिं होवौं पछानें तहां ही।
संगति मेरी सदीव करो जेई रूप धरों गुपतै तुव नांही॥ १७॥
आप अलोप भए जबि ते तबते बहु व्याकुल देखे बिना।
आनि भए तुम गोप इहां, कित संगति जाइ अधीर मना।
खोजि फिरे बहु चिंत करे, नहिं देखति भे किस थान जना।
आवहु बाहिर रूप दिखावहु सेवहिं सिक्ख अनंद घना॥ १८॥
यौं कहि बुढे ने आपनै हाथ उखारि, चिन्यो दर खोलनि कीना।
बैठि समाधि अगाधि करे कवलास के उपर शंभु असीना[1]।
शांति ब्रिती समुदाइ रिखीक अचंचल हैं, इक रूप विलीना।
हेरि सभै कर जोरि खरे अभिबंदन ठानहिं होइ प्रसीना[2]॥ १९॥
नांहि समाधि अगाधि छुटी, पुनि माई भिराई के साथ कहैं।
आप कहो जिमि बाहर आवहिं, दीन-दिआल की बानि अहै।
कीन सभै बिनती कर जोरि 'करौ करुना गन सिख्य चहैं।
बैठि सिंहासन ज्यों कमलासन, देहु दिदार कलूख दहैं[3]॥ २०॥
दास उधारन को इस कारन आप गुरू ने दई गुर गादी।
सो अब कारज क्यों न करो परमारथ के हित सिख्य अबादी।
दासनि को उपदेश बतावहु नाम जपावहु जे परमादी।
संगति ब्रिंद की पंगति मैं थिति होइ करीजहि मंगल शादी॥ २१॥
दासन की बिनती सुनि कै गिनती तजि आन सु बाहर आए।
पीत है रंग सु दूबरे अंग उमंग महां गुर ज्यों दरसाए।
देखति भे तिनि दासन को गुर नानक पास जु थे समुदाए।
प्रेम प्रवाहि बध्यो उर मैं उचर्यो तबि एव शलोक बनाए॥ २२॥

1. बैठा है। 2. प्रसन्न होना। 3. पाप का नाश करना।

श्री मुखवाक ॥ म० २ ॥

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलीए ।
ध्रिगु जीवणु संसारि ताकै पाछै जीवणा ॥ २ ॥

सवैया

श्रीमुख ते इम बोलि प्रभू सभि बीच गुरू तबि बैठि गए ।
जो सिक्ख हैं समुदाइ तहां तिन दे दरशन परसन्न कए ।
धीरज दीन भयो सतिनामु, रहे तिस धामु, अहार खए ।
दास लगे पग सेवन को अहमेव बिना[1] गुरदेव थिए ॥ २३ ॥
जो सिख सेवक श्री गुरु नानक सो सुनि कै सभि आवति हैं ।
'गादी लई गुरता गुर अंगद सो बिदते सुनि पावति हैं ।
देखति जोति महां मुख जागति ज्यों नट सांग बनावति हैं ।
एक ही बेख अनेक धरे सभि लोकन को बिरमावति हैं ॥ २४ ॥
गुरता रथ पै गुर सूरज दूसर मास बिते तन राजति हैं ।
मोहि[2] अंधेर को दूर करैं अथ चोर शिताब[3] ही भाजति हैं ।
ब्रिंद खिरे अरबिंद महां सिख, पेचक[4] निंदक लाजति हैं ।
होति प्रकाश चहूं दिश मैं तिन ग्यान रिदे उपराजति हैं ॥ २५ ॥
सरबोत्तम[5] महां महिपालक पोशिश[6] पूरब[7] की तजि कैं ।
सुंदर और नवीन धरै तन, आइ सभा थिति ह्वै सजि कैं ।
श्री गुर त्यों धरि दूसरु रूप बिराजति सिक्ख सुखी जजि कै[8] ।
सेवक ही जानति हैं गन निंदक नीच रहैं लजि कै ॥ २६ ॥
जोति ते जोति प्रकाश रही जिम लागे मसाल ते दूजी मसाला ।
घाट न बाढ बनै कबहूं जुग होइ समान प्रकाश बिसाला ।
आनि सुनैं उपदेश किते नर जागि उठे जिन भाग सु भाला ।
श्री गुरु नानक के नित ही चितवंति रहैं बड रूप क्रिपाला ॥ २७ ॥

चौपई

बुड्ढे सों गोशट निति ठांनै । श्री सतिगुर को चलित महानै ।
जनम आदि अब लगि जो जानै । सो सभि रीती भले बखानै ॥ २८ ॥
तबि बुड्ढा बोल्यो सुख पाइ । ऐसो एक पुरख लखि जाइ ।
बाला जाट वसहि तलवंडी । तिनि बिलास देख्यो नवखंडी ॥ २९ ॥

---

1. अहंकार रहित होकर । 2. मोह । 3. शीघ्र । 4. उल्लू । 5. सर्वोत्तम । 6. पोशाक । 7. पहले की । 8. पूज कर ।

रह्यो संगि सतिगुर के सदा। सो तुम दरस आइ है जदा।
तिसि ते सुनहु सकल बिरतंता। जथा चरित्र कीन भगवंता ॥ ३० ॥
एव बिचारति बाला आयो। गुर प्रसंग तिन सकल सुनायो।
सो हम पूरबि ही कहि आए। छंद चौपई बंद बनाए ॥ ३१ ॥
श्री बाबा नानक जी जैसे। करे प्रसंग सुने सभि तैसे।
निस दिन प्रेम लग्यो तिन केरा। सिमरहिं सतिगुर संझ सवेरा ॥ ३२ ॥
सुनी जनम साखी गुर सारी। कुछ बिराग ते धीरज धारी।
जिन सिक्खन के भाग बिसाला। सेवहिं बानी सुनहिं रसाला ॥ ३३ ॥
तऊ गुरू अंगद इस रीता। बोलहिं अलप न ठानहिं प्रीता।
बालिक दशा बिखै निति रहैं। हरख शोक जिन लेश न अहै ॥ ३४ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अंगद प्रगट होण' प्रसंग वरननं नाम नवमो अंशु ॥ ९ ॥

————

अंशु १०

श्री अंगद हुमाउं प्रसंग

दोहरा

निताप्रति श्री सतिगुरू इह बिधि करति उचार।
सुनति उचारति सिक्ख को भउजल करि हैं पार॥ १॥

चौपई

जाम जामनी जाग्रन होइ। सिहजा तजहिं सैन की[1] जोइ।
करहिं सौच, पुन धोवहिं पावन। पावन होन करहिं रद धावन[2]॥ २॥
बहुर बदन अरबिंद पखारैं। सीतल नीर शनान सुधारैं।
निज अनंद मैं निशचल होइ। लगि समाधि निर विकलप जोइ॥ ३॥
भई प्राति सूरज जबि निकसहि। कमल बिलोचन सुंदर बिकसहिं।
प्रथम द्रिशटि जिस पर तबि परै। रोगी रोग दुखी दुख हरै॥ ४॥
आधि ब्याधि बाधा जो पावै। जानि समो आगे चलि आवै।
ब्याकुल होहि पीर ते जोई। द्रिशटि परे सुख पावै तेई॥ ५॥
भई जगत मैं बिदत सु बाती। आइ अनेक खरे हुइं प्राती।
संकट नशटहि सदन सिधारहिं। जहिं कहिं श्री गुर सुजस बिथारहिं॥ ६॥
बहुर रबाबी किरतन गावैं। सुनहिं बीच संगति हरखावैं।
बैठे रहैं सिंहासन फेरि। सिख संगति सभि दरशन हेरि॥ ७॥

दोहरा

श्री गुर नानक की सदा चरचा करति उदार।
जथा चरित्र पवित्र बहु जग बचित्र बिसतार॥ ८॥

चौपई

अपर न चरचा कोई होइ। जग कारज की जेतिक जोइ।
सूपकार करि त्यार अहारू। सभि रस पाकहि, स्वाद उदारू॥ ९॥

---

1. सोने की सेज। 2. दांत साफ करना।

जबि सुधि देहि आन करि सोई। श्री गुर जी भईपाक रसोई।
उठि क्रिपाल तिहि संग सिधारैं। सखा सिक्ख सेवक ले सारैं॥ १० ॥
चतुरबरन तहि समसर बैसहिं। जैसे रंक, राव भी तैसहिं।
माटी के बासन हुइं सारे। पत्रन महिं अच लेहिं अहारे॥ ११ ॥
जो चौंके महिं अचहि रसोई। गुरू समीप जाइ नहिं सोई।
पंकति बीच बैठि गुर खाहिं। एक समान असन अचवाहिं॥ १२ ॥
पाइसु होवहि बीच रसोई। सति प्रशादि खाहि सभि कोई।
पुन जल पान चुरी करि लेहिं। उठहिं गुरू पुन एव करेहिं॥ १३ ॥
ग्राम बालके लेहिं बुलाइ। हरख शोक जिन होइ न काइ।
तिन सों मिलिकरि खेलहिं खेल। होहिं प्रसन्न मिलहिं सिस मेल॥ १४ ॥
पहिर तीसरो एव बितावहिं। पहिलवान तबि गुरू बुलावहिं।
मिलहिं आइ बहु परहि अखारा। भिरहिं आप महिं बल धरि भारा॥ १५ ॥
कहि कहि तिनहु भिरावन ठानहिं। कुशती करति जीति किह हानैं।
जाम दिवस के रहे बहोरी। श्री गुरदेव तजहिं तिस ठौरी॥ १६ ॥
सभा बिखै शुभ आसन बैसें। मुनिगनि सहत शंभु हुइ जैसे।
चहुं दिश परवारति सिख आइ। रुचिर रबाबी रागनि गाइं॥ १७ ॥
सकल प्रेम करि सुनहिं सु दास। जिन ते ब्रिंद बिकार बिनाश।
संध्या समैं सु होइ इकंत। निज सरूप महिं लै भगवंत॥ १८ ॥
बैठहिं एकांकी इक जाम। पुन प्रयंक पर करहिं अराम।
इस प्रकार निस दिवस बितावहिं। सिख्यन ते सतिनामु जपावहिं॥ १९ ॥
आपन ढिग माया विवहार। जिकर न होन देहिं किसि वार।
हरख सोग जेतिक बिधि नाना। इनको सिख्य न करहिं बखाना॥ २० ॥
इक रस ब्रिति समान जिन केरी। राग न द्वैश मित्र नहिं बैरी।
सदा अनंद प्रेम रस पागे। श्री नानक जस सों निति लागे॥ २१ ॥
गोरख आदि सिध्य बड पूरे। इक दिन करि बिचार सभि रूरे।
श्री नानक गादी पर जौन। कैसो अहै बिलोकहिं तौन॥ २२ ॥
आप सु हुते महिद महियान। करि दिगबिजै पूजे सभि थान।
पीर न मीर अर्यो नहिं आगे। हार सरब चरनी तिन लागे॥ २३ ॥
इमि बिचारि सभि ही चलि आए। सतिगुरु को निज दरस दिखाए।
गोरख, भरथरी, चरपट साथि। गोपीचंद, सु ईशुर नाथ॥ २४ ॥
आए सतिगुरु लेनि प्रतिग्या। पाइ प्रतीत भरम उर भग्या।
श्री अंगद सिंहासन बैसे। आइ कही 'आदेश अदेशे'॥ २५ ॥

तिनि के मन की सभि गुर जानी। सादर मधुर भाखि करि बानी।
बैठारे आसन शुभ दए। गोरख आदि प्रसन्न मन भए॥ २६॥
कहिं अशटांगहि जोग महातम। बिना जोग नहिं निरमल आतम।
प्रिथम सकल जे भए महाना। करि करि जोग सु पायो ग्याना॥ २७॥
तुम कलिजुग महिं भे अवितार। गुरता गादी बैठि उदार।
जोग जुगति नहिं पंथ तुमारे। किस प्रकार सिख करहु उधारे॥ २८॥
बिना जोग सिधि हाथ न आवति। बिना जोग बिग्यान न पावति।
ग्यानी संत अनिक जग भए। जोग साध सु परमपद लए॥ २९॥
सुनि स्री अंगद आशै तांही। कहनि लगे 'अबि समां सु नाहीं।
भगति जोग है मतो हमारा। सिद्धां सरब रहैं दरबारा॥ ३०॥
आतम ज्ञान भगति ही देति। भगति करति सभि ही सुख लेति।
नाम आसरै जोग तुमारा। सो सतिनाम हमहूं को प्यारा॥ ३१॥
साधन हित जोग कमावहु। पुन मन जीतहु नीठ टिकावहु।
सिद्धि आइ तबि ठांढी होइ। तिन सों परचो तुमरो जोइ॥ ३२॥
बैस बधावन आदिक राचे। जग दिखराइ मान को जाचे।
यांते रहो अनातम मांही। ब्रह्मातम को जानहु नांही॥ ३३॥
जोग जुगति ते छूछे रहे। आतम को रस नांहिन लहे।
जिम श्री नानक जोग बखाना। सो हम करहिं सुनहु तुम काना॥ ३४॥

श्री मुखवाक—सूही महला १ घरु ७

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि॥

"जोगु न खिंथा जोगु न डंडे जोगु न भसम चडाईए।
जोग न मुंदी मूंडि मुंडाइए जोगु न सिङी वाईए।
अंजन माहि निरंजनि रहीए जोगु जुगति इव पांईए॥ १॥
गली जोगु न होई।
एक द्रिशटि करि समसरि जाणै जोगी कहीए सोई॥ २॥ रहाउ॥
जोग न बाहरि मडी मसाणी जोगु न ताडी लाईए।
जोगु न देसि दिसंतरि भविए जोगु न तीरथि नाईए।
अंजन माहि निरंजनि रहीए जोग जुगति इव पाईए॥ २॥
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईए।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईए।
अंजन माहि निरंजन रहीए जोग जुगति इव पाईए॥ ३॥

नानक जीवतिआ मरि रहीए ऐसा जोगु कमाईए।
बाजे बाजहु सिङी बाजै तउ निरभउ पदु पाईऐ।
अंजन माहि निरंजन रहीए जोगु जुगति तउ पाईऐ।४।१।८॥

चौपई

सुनरे नाथ हमरा इह जोग। पाइ प्रमातम जाइ वियोग।
सहज जोग संतनि मति ऐसे। संसै भरम न कीजै कैसे॥ ३५॥

श्री मुखवाक

दीखिआ आखि बुझाइआ सिफती सचि समेऊ।
तिन कउ किआ उपदेसीए जिन गुर नानक देऊ॥ २॥

चौपई

इमि सुनि सिद्ध भए सु प्रसन्न। श्री नानक तुम रूप सु धन्न।
उचित जानि तुम को दई गादी। सिक्ख उधारहु करि अहिलादी॥ ३६॥
करि आदेशु अदेश चलै हैं। उत्तर ले करि कहति भलै हैं।
श्री नानक कलिजुग महिं भारे। धरि अवतार अधिक नर तारे॥ ३७॥
मारग सकल सराहति गए। उचित लखे निज थल थिति किए।
इमि श्री अंगद उत्तर दीने। सिख चहुं दिश बिच आप असीने॥ ३८॥
इस प्रकार कुछ दिवस बिताए। दिन प्रति विदतहिं जग अधिकाए।
दिल्ली का हुमाउ भा शाहू। भयो राज बड सभिं जग मांहू॥ ३९॥
द्वै भ्राता पठान बड सूरे। बड उमराव सु कीन हदूरे।
बिगर परे दिल्ली पति संग। गरब ठानि चाहति भे जंग॥ ४०॥
एक सलेम शाहि तिस नाम। शेरशाह दूसर बलधाम।
भ्राकी दुरग प्रयाग करि लीना। सकल समाज जुद्ध को कीना॥ ४१॥
सुनि हुमाउ ने कीनि चढाई। मो पै सैना बहु समुदाई।
तिन के निकटि अलप ही अहे। हतों कि बांधों चढि इमि चहे॥ ४२॥
पहुंचि प्रयाग जंग को ठाना। दुहि दिशि बाजे बजे महांना।
निकसे तबि पठान द्वै भाई। लशकर मिलते मची लराई॥ ४३॥
तबहि पठानि गहि किरपानैं। भए समुख गन सुभटनि हानैं।
कहों कहां लग जुद्ध अखारा। लोथैं बिथरी धरा मझारा॥ ४४॥
जबहि ब्रिंद तरवारैं चाली। रंग भूमिका पसरी लाली।
पातिशाहि को लशकर भागा। नहीं पठाननि को लिय आगा॥ ४५॥

तछामुच्छ[1] तरवारनि करिकै। काइर भजे न हेरति फिरिकै।
तब हुमाउं रजधानी त्यागे। लशकर मर्यो चल्यो तब भागे॥ ४६ ॥
दिल्ली आइ पठाननि छीनी। अपनी दोही फेरनि कीनी।
व्याकुल ह्वै हुमाउं तब कह्यो। सेवक निज नजीक जो लह्यो॥ ४७ ॥
श्री नानक को सेवक पूरा। है कि नहीं गादी पर रूरा।
तिह सों करहिं मेल हम जाई। मम पित बाबर तहिं ते पाई॥ ४८ ॥
कही पुशत लौ फुर्यो न बैना। बूझहिं तिह सों जिह उर भै ना।
तब वज़ीर ने कहा सुनाई। गुर अंगद बैठ्यो तिन थाईं॥ ४९ ॥
आरफ़[2] कामल[3] वली[4] विलाइत[5]। मिल मकसूद चलहु इह साइत[6]।
भलो विचार आपि ने कीनो। बूझहु तिन इह पद जिन दीनो॥ ५० ॥
सुनति खडूर हुमाउं आयो। श्री अंगद जी जहां सुहायो।
संग बालकनि खेलति बैसे। हरख शोक जिन महिं नहिं कैसे॥ ५१ ॥
बंदन ठानि हुमाउं खर्यो। तिस दिशि रुख गुर नैक न कर्यो।
परचति रहे बालकनि साथि। सभि घट की जानति जग नाथ॥ ५२ ॥
तब हुमाउं मन कोप विशेखा। नहिं इस ने मेरी दिश देखा।
द्वै घटिका मैं ठांढो रह्यो। कछू प्रभाव न मन महिं लह्यो॥ ५३ ॥
गयो राज़ मैं होयो दीन। पास खरो इनि कीनि न चीन[7]।
उचित मारिबे-रिदे बिचारि। धर्यो हाथ कबज़े तलबार॥ ५४ ॥
हतौं खैंच करि उर महिं ठानहि। तबि मोकहु इहु शाहु पछानहि।
उदै भयो ऐंचन को जबै। मुशट संग करि चिमट्यो तबै॥ ५५ ॥
इत उत होति न रह्यो हिलाइ। सारो बल हार्यो सु लगाइ।
पुन अंगदि करि उत नैन। दीन भयो पिखि उचरे बैन॥ ५६ ॥
शेरशाह सों कछु न बसायो। खडग हतन हम पर चलि आयो॥ ५७ ॥
काइर भया भाज करि आवा। हमहि सूरता चहैं दिखावा।
तबि हुमाउं बहु बिनती ठानी। छिमहु गुरू मैं बड़ अनजानी॥ ५८ ॥
श्री नानक थे जाति खुदाइ। तिन की बखशिश होति बिलाइ।
इह क्या कारन ? बूझन आवा। तुम सों उन कौ भेद न पावा॥ ५९ ॥

---

1. टुकड़े-टुकड़े करके। 2. ईश्वर को पहचानने वाला। ब्रह्मज्ञानी। 3. पूर्ण। 4. ईश्वर का मित्र। 5. दूर देशों (में प्रसिद्ध है)। 6. मिल जाएगी, ऐसे अवसर पर चलो (ऐसी घड़ी में चलो)। 7. पहचानना।

श्री अंगद सुनि कै कहि बानी। कछू बिअदली कीनि महानी।
यांते भयो तोहि त्रिसकारा। अबि जे धरति न कर तरवारा ॥ ६० ॥
तौ पतिशाहिति अबिही पावति। दरशन कौ फल अनंद बधावति।
जाइ बिलाइत अबि फिर आवो। छत्र तख़त दिल्ली पुन पावो ॥ ६१ ॥
सुनि इमि गयो विलाइत थान। तहिं ते लशकर लीनि महान।
हिंदुस्तान करी सर[1] आइ। खान नाम सभिहिनि मरिवाइ ॥ ६२ ॥

दोहरा

सतिगुर बेपरवाहु नित राग द्वैष चित नांहि।
करहिं भावना पाइं तिमि जे नर चलि ढिग जांहि ॥ ६३ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अंगद हुमाउं' प्रसंग बरननं नाम दसमो अंशु ॥ १० ॥

---

1. विजय प्राप्त करना।

अंशु ११

श्री अंगद जी सिखां प्रति उपदेश

दोहरा

अबि श्री गुर अंगद निकटि सिक्ख भए जो आइ।
कहों कथा निरधार करि सुनहु संत चित लाइ ॥ १ ॥

चौपई

सेवक रहै पास इक जीवा। सेवहि शरदा धरे सदीवा।
दधि से खिचरी करि कै त्यारि। ल्याइ अचावति अपर अहारि ॥ २ ॥
इक दिन घटी चार दिन रह्यो। गुर सों हाथ जोर बच कह्यो।
'आज चलति है वायु अंधेरी। हटहि नहीं निरनै करि हेरी ॥ ३ ॥
बड़ी निसा बीते हटि जाइ। अब तौ बहित महां रज धाइ।
बाक आप को होवै जबै। मिटहि अंधेरी रज सों सबै ॥ ४ ॥
करि लेवों मैं तुरत अहारा। तुमहिं अचावौं बिबिधि प्रकारा।
बहुरो चलहि जथा अबि अहै। श्री अंगद सुनि तिस ते कहैं ॥ ५ ॥
ऐसो नहीं मनोरथ करीअहि। जिस ते महां दोश सिर धरीअहि।
परमेसुर जो बायु बहाई। इस ते बहु कारज निबहाई ॥ ६ ॥
सरितापति[1] महिं अनिक जहाज। नरनि हजारहुं लादि समाज।
बहु बिवहार करहिं हित रोज़ी। दीपनि गमनहिं, लाहा खोजी ॥ ७ ॥
बहुत दिवस के टिकि सो रहे। अबि चलाइ बायु इहु लहे।
हित अहार के करहिं कमाई। तिस मिस देति तिनहुं जगराई ॥ ८ ॥
धरति जहां तांब्र की अहै। लाखहुं बिसीअरि[2] तिस थल रहैं।
तिन हित धूल जाइ तिस देश। निज कुंडल महिं लेत अशेष ॥ ९ ॥
तिस को खाइ निबाहैं काल। आपो अपनी लेति सँभाल।
लाखहुँ अहैं छुधातुर सेई। प्रभु पहुँचाई पालि है तेई ॥ १० ॥
इसते आदिक काज बिसाल। करहि प्रमेसुर बायू नाल।
अबि जे कहि करि पौन मिटावैं। बिगरहि काज छुधिति रहि जावैं ॥ ११ ॥

1. समुद्र। 2. सर्प।

प्रभु सरबज्ञ सफल क्रित धरै। क्या अलपग्य तरकना करै।
लाखहुं जीवनि को संताप। मेटहि पौन [दोष लें आप ॥ १२ ॥
इह मन मुख की रीति पछानै। हुवति मिटाइ कि तरक बखानै।
जथा करहि प्रभु पिख हरखंते। नहिं तरकहिं कहि कै न मिटंते ॥ १३ ॥
सो गुरुमुख सुख प्रापति होइ। संकटि सहै न लोकहुं दोइ।
तूं करिबे चित चहति अहारे। घटी चार करि लेहु पिछारे ॥ १४ ॥
हटहि न जे, प्रभाति करि लीजै। धरहु न चिंता, आनंद कीजै।
सतिगुरु अर प्रभु जथा रजाइ। तिस पर राजी रहि न सदाइ ॥ १५ ॥
मुख्य धरम सिक्खी को एही। जो धारहि सिख गुरू सनेही।
जिम पतिब्रता इसत्री लच्छन। पति आग्या महिं सुखी बिचच्छन ॥ १६ ॥
प्रभु आग्या महिं तथा सदीवा। रहु राजी बनि गुरमुख जीवा।
जप तप बरत दान फल सारे। इस ते प्रापति होइं सुखारे ॥ १७ ॥
सिमरहु सत्तिनाम करि प्रीति। त्यागहु तनहंता इमु नीति।
ब्रह्मग्यान तबि पाइ सुखेन। जनम मरन पुन बनहि कदे न ॥ १८ ॥
सुनि जीवे तब बंदन करी। सतिगुर सीख भली उर धरी।
कोइक दिन महिं ग्यानी होवा। एकहु रूप सरब महिं जोवा ॥ १९ ॥
जीवति रह्यो करी गुर सेवा। तन तजि लै हुई ब्रह्म अभेवा।
गुज्जर नाम सु जाति लुहार। चलि आयहु गुरु के दरबार ॥ २० ॥
बंदन करि बैठ्यो गुर पास। दरशन देखि करी अरदास।
सुनहु गुरू जी हेत अहार। दिन सगरे हम ठानहिं कार ॥ २१ ॥
फसे ग्रिहसति न पाइ बिरामा[1]। सेवा करहिं रहहिं तुम धामा।
हमरो भी किम हुए कल्यान। जनम मरन दा[2] बंधनि हान ॥ २२ ॥
सुनि सतिगुर कीनसि उपदेश। इक चित जपुजी पठहु हमेश।
जेतिक वार पठ्यो नित जाइ। पठति रहहु दीरघ फल पाइ ॥ २३ ॥
पिखहु गरीब काज करि दीजै। नहिं तिस निकट मजुरी लीजै।
जपुजी अरथ बिचारन करो। स्वासु स्वासु अंतर निति धरो ॥ २४ ॥
गुरू नमित्त करहु जुति प्रीति। दया करहु दीननि पर नीति।
जो अपनी कछु करहु कमाई। गुर हित दिहु दसवंध बनाई ॥ २५ ॥
साधिक सिक्ख अइ जो डेरे। करहु सेव धरि प्रेम घनेरे।
सुनि उपदेश रिदे तिन धारा। जिम गुरु कह्यो करहि तिम कारा ॥ २६ ॥

---

1. अवकाश। 2. देने वाले।

गृहसती भगत हुते तिस ग्राम। तुहमत दे करि तिनके नाम।
गहि कर पाइन पाइ सु वेरी। काराग्रहि महिं दीनसि गेरी ॥ २७ ॥
कितिक दिवस हुई प्रभू सहाइ। किस बिधि ते दीने निकसाइ।
अरधि राति महिं सो चलि आए। श्रिंखल तिन के पाइन पाए ॥ २८ ॥
गुज्जर नाम लुहार अवास। आइ कह्यो तिन इस के पास।
प्रभु नमित्त दिहु बंधन काटि। तुझ को होइ न जम की बाट ॥ २९ ॥
सुनि करि सुकच्यो रिदे बिसाला। जे मुझ जान लेहि महिपाला।
गहि लैहै सगरो परवारा। ज़ालम बडो करावहि मारा ॥ ३० ॥
त्रास पाइ करि बहुर बिचारा। गुरु मुझ प्रति उपदेश उचारा।
प्रभु नमित्त कारज करि दीजै। नही बिलंब किसी बिधि कीजै ॥ ३१ ॥
सो नहिं छोडौं, होइ सु होइ। संत कहे लोकन सुख दोइ।
इम बिचारि करि बिलम न कीन। उठि ततकाल काट करि दीन ॥ ३२ ॥
आशिष देति गए निज देश। उपज्यो इसके ग्यान विशेष।
इक नाई धिङ्ग चलि आयो। श्री अंगद पग सीस निवायो ॥ ३३ ॥
बैठि गयो ढिग सिख गन हेरे। करहिं परसपर सेव घनेरे।
तिन महिं मिलि सेवा कहु लाग्यो। भली जानि करि उर अनुराग्यो ॥ ३४ ॥
तपत नीर करिवाइ शनान। वसत्र पखारहि मल करि हान[1]।
चरन चांप, हांकति है बायु[2]। बासन धोवै मांझ[3] बनायु ॥ ३५ ॥
कबि कबि गुर की सेवा पाइ। महां प्रेम ते करहि बनाइ।
इक दिन श्री अंगद के पास। हाथ जोरि कीनी अरदास ॥ ३६ ॥
श्री सतिगुर मुझ दिहु उपदेशु। जिसते मिटहिं कलेश अशेशु।
सुनि श्री मुख ते तबि फ़ुरमायो। गुरु ए गोर[4] महिं सो चलि आयो ॥ ३७ ॥
हुइ मुरीद[5] मुरदे मानिंद। अंग न को हालति बिन जिंद[6]।
तिम मुरीद आदिक हंकारा। त्याग देति ए सकल बिकारा ॥ ३८ ॥
गुरू गोर महिं जाइ समाई। हुइ मुरीद मुरदा जिसि भाइ।
देखि जात अपनी भा सैन[7]। करी सेव संतन की रैन ॥ ३९ ॥
प्रेम परख करि श्री भगवान। बने सैन के रूप सुजान।
राणे को इस रीति रिझायो। बखशी तबि कवाइ हुलसायो ॥ ४० ॥

---

1. मैल। 2. हवा करना। 3. मांज कर। 4. कब्र । 5. शिष्य। 6. जीवित के बिना। 7. नाम—एक संत।

तिस के सम संतन की सेवा। करहु सदा रीझहिं गुरदेवा।
सुनि उपदेश कमावनि कीनि। धर्यो प्रेम सिक्खी पद लीनि॥ ४१॥
सभि कुटंब को भयो उधार। जिम काशट से लोहो पार।
पारो जुलका नाम सु आयो। सुनि जस को मिलिबे ललचायो॥ ४२॥
नमसकार करि बैठ्यो पासि। हाथ जोरि कीनसि अरदासि।
गुर परमहंस हुइ कौन। लच्छन मोहि सुनावहु तौन॥ ४३॥
सुने नाम अर रूप निहारे। नहिं विशेश ते हम निरधारे।
तुम ते सुनहिं जथारथ जानैं। को गुन ते तिन अधिक बखानैं॥ ४४॥
श्री अंगद सुभ मति जुति हेरा। हित उपदेश कह्यो तिस वेरा।
परम हंस के सुनीअहि लच्छन। सुनि जे धरहि सु मनुज बिचच्छन॥ ४५॥
हंस जि मान सरोवर रहैं। मुकता करहिं अहार जि लहैं।
मिलि इक रूप हेत पय पानी। तिन के आगे धरियजि आनी॥ ४६॥
पय ते जल को करहिं निराला। सार असार पिखहिं ततकाला।
तजहिं अखिल जल पय को खांहि। उडहिं बिदेशनि देसन जांहि॥ ४७॥
परमहंस तिन ते अधिकाइ। मुकता मुकती चहति सदाइ।
मानस गुरू सबद के मांही। लेति अहार अपार रहांहीं॥ ४८॥
देहि आतमा मिलि इक भए। बिन बिचारि किन नहिं लखि लए।
तिनकौ प्रिथमैं होति बिचार। दिन प्रति देहि न रहि इक सार॥ ४९॥
प्रथम न हुती भविख्य न रहै। मधुकुतो साची तिसु कहै।
पुन जड़ है कुछ नाहिन छानी। नित दुख रूप लेहि मन जानी॥ ५०॥
सत्ति आतमा निरनै करहि। पूरब हुतो, देहि बहु धरहि।
अबि प्रतक्ख अरु रहै भविक्ख। यां ते सत्ति लखहि गुरु सिक्ख॥ ५१॥
बहुर आतमा चेतन जानहिं। जिह सबंध तन चेतन ठानहिं।
फरकावन चख आदि रिखीके। जिस बिन होति नही लखि नीके॥ ५२॥
पुन आतम को रूप अनंद। परखति भले सदा बिन दुंद।
बिशियन बिखै अनंद कलपंता। इहु मम रूप न अग्य लखंता॥ ५३॥
परमहंस सो कहीअहि रूप। सति चेतन आनंद अनूप।
तन न्यारो जानहि ऐसे। मंदिर बिखै बसहि को कैसे॥ ५४॥
तिस को अपनो रूप पछानहि। तन हंता निरनै करि हानहि।
सम मंदिर के जानहि न्यारो। जीरण[1] होए त्याग पधारो॥ ५५॥

1. पुराना।

तन आतम समसर पय पानी। करहि जु नर हुइ हंस समानी।
तिन को परमहंस है नामू। पावहिं ब्रह्म ग्यान अभिरामू ॥ ५६ ॥
तन ते न्यारो जबि मति धरैं। रसु बिषियन हित पाप न करैं।
जल ते कमल रहै निरलेपू। लिपहि न किमि हुइं ब्रिंद विखेपू ॥ ५७ ॥
सूरज की दिश है तिनि ध्यान। छुवै न जल रंचक भरी आनि।
परमहंस तिमि जग महिं रहै। आतम ध्यान सदा उर लहै ॥ ५८ ॥
तन के सुख दुख जबि परि जाइं। तिन ते हरख न सोग कदाइ।
बरतै ज्ञानी सम अग्यानी। जानहिं जग को सुपन समानी ॥ ५९ ॥
बंधनि होत नहीं पुन ताहूं। रहै समाइ ब्रह्म के माहूं।
सुनी सीख पारो हरखायो। लगा बिचारनि मन सुख पायो ॥ ६० ॥
कितिक काल गुर अंगद सेव। पुन भे अमरदास गुरदेव।
तिन ढिग बन्यो सु ब्रह्म गिआनी। आगे करिहै कथा बखानी ॥ ६१ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अंगद जी सिखां प्रति उपदेश' प्रसंग बरननं नाम एकादशमो अंशु ॥ ११ ॥

———

अंशु १२
सिख्यनि प्रसंग

दोहरा

मल्लू शाही आइ करि श्री अंगद के पास।
करि बंदन बैठ्यो निकटि बिनती कीनि प्रकाश ॥ १ ॥

चौपई

श्री गुर ! में कारन कल्यान। आयो सुनि तुम सुजसु महान।
कीजहि अबि अपनो उपदेश। जिसते बिनसहिं सकल कलेश ॥ २ ॥
करति चाकरी मुगलनि केरी। करौं जीवका तहां घनेरी।
हलति पलति मुख ऊजल रहै। असु करनी को ममु चित चहै ॥ ३ ॥
सुनि करि शरधा पिख करि भारे। श्री अंगदु गुरु वाक उचारे।
'भाई मल्लू रिदे बिचारहु। देह अनित्त सदा निरधारहु ॥ ४ ॥
सो तौ म्रितक जानि ही लीजै। इस हित चित नहिं संसा कीजै।
आतम सदा साच ही जानो। किस को मार्यो मरहि न मानो ॥ ५ ॥
पावक दाह करति नही तिसै। जल न डुबाई सकहि निज बिसै।
शसत्रीन ते नहिं छेद्यो जाइ। जिसि को पौन न सकहि डुलाइ ॥ ६ ॥
काल बिनाशक सभिनि बिसाला। आतम अहै काल को काला।
जग को लखि कै सुपन समानै। वरण आश्रमनि क्रिया सु ठानै ॥ ७ ॥
ब्रह्मग्यान को निति अभ्यासहि। तन हंता लखि झूठि विनासहि।
इमि ही क्रिशन कीन उपदेश। अरजन धार्यो रिदे बिशेष ॥ ८ ॥
वरण धरम रण करह महाने। आतम साच कूड तन जाने।
दीजहि दान सुकरम करीजहि। तन बिनसत नहिं संसा कीजहि ॥ ९ ॥
देश, काल, वसतू मिल तीन। तब हुइ कायां प्रान बिहीन।
पूरन बय को समां सु आवहि। जिस थल देहि गिरहि सो पावहि ॥ १० ॥
त्रितीए जिस ते होवनि घात। ब्याधि कि आयुधादि मिलि जाति।
इन तीनहु बिन इकठे होइ। प्रान हान किमि नहिं किस जोइ ॥ ११ ॥

बिन भै मिले काल रखवारो। मरति नहीं नीके निरधारो।
जे करि जुद्ध आनि कित परै। अलप कि बहुते नहीं बिचरै ॥ १२ ॥
पीठ न देहि समुखि रिपु रहै। निरभै शसत्र बहै जस लहै।
जग महिं प्रापति ब्रिंद पदारथ। ले सतिसंगति लाइ सकारथ ॥ १३ ॥
जे रण महिं सनमुख म्रितु पावै। स्वरग निसंसै सूर सिधावै।
इम द्वै लोकनि उज्जल आननि। करि कल्यान एव निज प्राननि ॥ १४ ॥
मल्लू शाही सुनि उपदेशु। बरतण लाग्यो तथा हमेशु।
वंड खाइ निज धरम विचारै। आतम तन सत्तासत धारै ॥ १५ ॥
इक सिख आयो नाम किदारी। सतिगुर आगै बिनै उचारी।
काम क्रोध महिं जलतो जगत। मोहि उबारहु करि निज भगत ॥ १६ ॥
त्रास पाइ मैं शरनि तिहारी। आनि पर्यो दिहु आसन भारी।
सुनिकै श्री अंगद तिस कह्यो। सकल बिकारन ते जग दह्यो ॥ १७ ॥
जिम दौ[1] लग्यो महां सभि बन को। फांध जाति म्रिग करि बल तन को।
महां तपति ते सलिता मांही। जाइ प्रवेशहि सुख बहु पाही ॥ १८ ॥
तिमि जग जलति देखि करि त्यागे। मिलि सतिसंगति सेवा लागे।
सकल बिकारनि तपत बिनाशे। सीतलता गुर शबद प्रकाशे ॥ १९ ॥
गुरबाणी को करति बिचारनि। ज्ञान सीत लहि मोह निवारन।
सुनि करि गुर उपदेश किदारी। द्रिढ़ कीनसि उर बहु निरधारी ॥ २० ॥
दीपा अपर नराइण दास। बूले सहित अाइ गुर पास।
बंदन करि भाखी अरदासु। जनम मरण दुख देहु बिनाशु ॥ २१ ॥
श्री अंगद उपदेश बतायो। 'करहु भगति जे इमि उर भायो'।
कहिन लगे 'हम भगति न जानहिं। किम सरूप कैसे करि ठानहिं ॥ २२ ॥
श्री गुर बरनन कीन सिखाई। ब्रह्म सबल माया जग जाई।
हुकम प्रमेशुर को तिन पायो। अपने महिं सभि जग भरमायो ॥ २३ ॥
बहुर प्रभू ने चतर उपाए। जिन ते मिलहि मोहि कहु अाए।
इक बैराग जोग अरु ग्यान। चउथी उपजी भगति महांन ॥ २४ ॥
ज्ञान, विराग, जोग शुभ तीन। पुरख रूप इनको मन चीन।
माया ले इन को भरमाइ। बडे जतन ते उबर्यो जाइ ॥ २५ ॥
भगति अहै पतिब्रता नारी। इस पर नहिं माया बलु भारी।
इसत्री को इसत्री न भरमावै। धरहि भगति तिस प्रभू मिलावै ॥ २६ ॥

1. दावानल।

माया नटनी चातुर छल ते। सभिनि भ्रमाइ लेत निज बल ते।
सुनि सिक्खन बूझे गुर फेर। इन चतरनि को रूप बडेर॥ २७॥
करि बरननि सभि दिहु समुझाइ। जिस ते हम प्रापत हुइ जाइं।
जनम मरन को बहुरि न पाइं। अनद रूप मंहिं रहैं समाइं॥ २८॥
तबि श्री अंगद बहुर उचारा। इक बिराग है उभै प्रकारा।
इक मन को इक तन को होति। बडि भागनि के रिदे उदोति॥ २९॥
सकल पदारथ त्यागन करै। धन बनिता, सुत सभि परहरै।
हठि करि बाहरि को तजि देति। रहै वासना रिदे निकेति॥ ३०॥
दूसर ब्रह्म लोक लौ सारे। वाइस बिशटा सम निरधारै।
रिदे वाशना क्यों हुं न धरै। सुपनि समान जानि परहरै॥ ३१॥
पाइ पदारथ परालबध ते। भोगति हैं पर मन नहिं बंधते।
निज सरूप दिशि ब्रिती लगावैं। बिषय बाशना ते उलटावैं॥ ३२॥
तथा जोग भी दोइ प्रकार। इक तौ कशट जोग उर धार।
यम नेमादि अशट हैं अंग। सकल कहे बहु वधे प्रसंग॥ ३३॥
दूसर रूप सुनहु तिस भेत। रोक बाशना ते मन लेति।
सतिगुर शबद सदीव विचारै। जीव ब्रह्म इकता निरधारै॥ ३४॥
सति आतम बिखैं जुटि ब्रित रहै। श्रेशट परम जोग इह कहै।
वासतव निज सरूप को जानै। इस को ग्यानी ग्यान बखानैं॥ ३५॥
चउथी भगति रूप सुनि लेहु। कली काल इह मुक्ख लखेहु।
वाहिगुरू कीजहि निज स्वामी। सकल शकति युति अंतरजामी॥ ३६॥
आप बनहि दारा प्रभु केरी। पतीब्रता की रीति बडेरी।
तन मन धन सभि अरपहि पति कौ। प्यारो परम प्रेम करि चित कौ॥ ३७॥
पति रजाइ मंहिं राज़ी रहै। बिछुरे निति मिलिबे कहु चहै।
जावत मिलहि न रचहि उपाई। अहै सुखद पति बिन दुखदाई॥ ३८॥
दीरघ स्वास परी मुख पीरी। अश्रू बहहिं धरहि नहिं धीरी।
जो तिस पति की बात सुनावै। सेवा करहि प्रेम को लावै॥ ३९॥
पति परमेशुर प्रेम पछानै। मिलहि प्रिया सों रलीआ ठानै।
तिन के बसि हुइ फिरहि पिछारी। इमि हरि भगति लेहु उर धारी॥ ४०॥
सुनि सतिगुर के बाक सुहाए। तीनहु भगति भए सुख पाए।
सति संगति की सेवा लागे। प्रेम प्रमेसुर को मनु जागे॥ ४१॥
मल्लू शाही आदिक सारे। श्री अंगद के रहे दुआरे।
श्री गुरु अमरदास ढिग रहैं। करि सिक्खी को शुभ गति लहैं॥ ४२॥
इन सो मिले अपर सिक्ख होए। सतिगुरु जस को रिदे परोए।
बडे भाग जिन के जग जागे। गुर मिलि प्रभू प्रेम मंहिं पागे॥ ४३॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'सिख्यनि' प्रसंग बरननं नाम द्वादशो अंशु॥ १२॥

———

अंशु १३

सिक्ख तसकर प्रसंग

दोहरा

एक वेर श्री गुर गए ग्राम हरी के थानि।
प्रिथम बास तहिं कुछ कियो पहुंचे मेली जानि ॥ १ ॥

चौपई

डेरा कर्यो ग्राम तिस जाइ। जिन के संग सिक्ख समुदाइ।
सुनि सुनि महिमा नर बिसमाए। श्री नानक गादी इन पाए ॥ २ ॥
मेली हुते मिले सभि आइ। करि बंदन बैठे समुदाइ।
हुते हरी के तहिं सरदारा। तिन भी सुनि करि सुजस उदारा ॥ ३ ॥
करमाति साहिब गुर भए। पूरब बसति हुते जो गए।
मिलनि हेतु सो भी चलि आयो। सुधि हित मानव प्रथम पठायो ॥ ४ ॥
श्री अंगद तिन की गति जानी। अधिक पदारथ ते बड मानी।
यांते 'एक पंघूरा ल्यावो। तिस बैठनि के हेत डसावो' ॥ ५ ॥
दास आनि ततकाल बिछावा। इतने समें चलि करि सो आवा।
केतिक संग लोक तहिं आए। सभिनि देखि कै सीस निवाए ॥ ६ ॥
तिन महिं मानी जो सरदारा। नहीं पंघूरे दिशि पग धारा।
श्री गुर तरे प्रयंक निहारा। तरे न बैठौं—इम जिय धारा ॥ ७ ॥
जाइ सिर्हानि की दिश बैठा। सरदारी के मान अमैठा[1]।
मूरख नहिं जानी बडिआई। मैं सरदार लखहि गरबाई ॥ ८ ॥
श्री गुर पिखि तूशन ही ठानी। मेली जानि न कछू बखानी।
बैठि घरी घर गमन्यो मूढ। महिमा लखि न गुन गन गूढ ॥ ९ ॥
पीछे सिख्यन गुरु संगि कह्यो। इहु तो अति मूरख ही लह्यो।
उचित अवनि पर बैठनि इहां। पुन न पंघूरे की दिश लहा ॥ १० ॥
बरजति बरजति जाइ सिराने। बैठ्यो कुछ न अदाइब जाने।
सुनि श्री अंगद सहिज सुभाइ। बाक बखान्यो सभिनि सुनाइ ॥ ११ ॥

---

1. अकड़ा हुआ।

पलंघ पंघूरा कछू न रह्यो। अबि ते इन को सभि किछु दह्यो।
करनि बिग्रदबी बडिअनि केरी। नाश देति करि बडिहुं बडेरी ॥ १२ ॥
बडिअनि कौ ठानहिं सनमाना। सो जानहु इहु होइ महाना।
तबि ते घटति घटति घटि गए। नहिं उकसे सु बिनाशी भए ॥ १३ ॥
इस प्रकार गुर फेरा पाइ। बहुर खडूर बिराजे आइ।
श्री अंगद नित बेपरवाह। नीर कमल सम लेप न काहि ॥ १४ ॥
बुरी भली कुछ सुनहिं न कहैं। अपने परचे महिं नित रहैं।
आश्रम बरन रीति जो धरिहीं। सो गुरु संगति को नहिं करिहीं ॥ १५ ॥
इक समान आश्रम अरु धरम। श्री गुर के इनि ते निहभरम।
माटी के बासन को देखि। मिलहिं न करम जु करति विशेषि ॥ १६ ॥
प्रेम भगति परमेशुर केरी। उपदेशहिं इह मुख्य बडेरी।
लोक बेद कुल करम प्रचारा। करहिं नहीं अर भै नहिं धारा ॥ १७ ॥
यांते लोक समीप न आवें। देखि दूर ते सीस निवावें।
संगति करहिं न बैठहिं पास। सुनहिं न बचन भाग घट[1] जास ॥ १८ ॥
श्री नानक की संगति जोई। दूर दूर ते आवति तेई।
दरशन परसहिं बांछति पावैं। बहुर आपने सदन सिधावैं ॥ १९ ॥
हुतो चउधरी तिसी गिराउं। भाउ भगति को लखहि न नाउं।
निताप्रति बहुतो मदपानी। सभि को बकहि खोटि बडि बानी ॥ २० ॥
मिरगी रोग हुतो तिस भारी। व्याकुल करहि उठहि जिस बारी।
एक दिवस तिस के मन आई। सुनि पिखि श्री अंगद बडिआई ॥ २१ ॥
तबि समीप गुर के चलि आयो। अपनो सरब ब्रितांत सुनायो।
आप तपा जी परम क्रिपालु। सभि भाखहिं तुम सुजसु बिसालु ॥ २२ ॥
रोग अधिक मेरे तंन मांही। करहु क्रिपा जिम इहु मिट जाही।
तबि प्रतीक उर मोकहु आवै। जिमि इहु कीरति ब्रिद सुनावैं ॥ २३ ॥
सुनि क्रिपालु इहु बाक बखाना। जेकरि त्याग देहिं मदपाना।
मिरगी बहुर न उठहि कदाई। तन अरोग तेरो हुइ जाई ॥ २४ ॥
जे आइसु उलंघहिं कित काला। करहिं पान मद होइ न टाला।
तबि मिरगी होवहि तन आनि। जिस ते बिनस जाहिं तव प्रान ॥ २५ ॥
सुनि बंदन करि सदन सिधारा। त्याग दीन मद पान कुढारा।
रोग म्रिगी को भयो बिनासा। सदा अरोगी होइ हुलासा ॥ २६ ॥

---

1. मंद भाग्य।

चिरकाल सुख भोग्यो पीना। मन कठोर नहिं कीन पतीना।
भूल गयो जड़ गुर के बैना। पता निहारि लीन भी नैना[1] ॥ २७ ॥
इक दिन श्याम घटा घुमडाई। भई ठंढ बूंदै बरखाई।
चलहि वायु सुख देवन हारी। मधुर मधुर गरजति घट कारी ॥ २८ ॥
तब ही मदरा लीन मंगाई। उमग्यो रिदा रह्यो नहिं जाई।
कर्यो पान मुख नुकल[2] मंगाइ। खावति चढ्यो अमल[3] उर छाइ ॥ २९ ॥
जाइ अरूढ्यो बहुर अटारी। पिखिन बहार बरखतो बारी।
गुर दिश ऊचे कह्यो पुकारा। करि मदपान भयो मतवारा ॥ ३० ॥
तपा हटायो हुकम तुमारा। बूंदै बरखति, बड़ी बहारा।
रह्यो न जाहि मोहि ते कैसे। पावति अति प्रमोद मैं ऐसे ॥ ३१ ॥
श्री अंगद सुनि बिकसे तबै। कह्यो सुचेत होहु तूं अबै।
छुटि मिरगी आई दिश तोहि। हुकम हटावनि कीनसि मोहि ॥ ३२ ॥
बांधी हुती हुकम की ऐही। हुकम न रह्यो टिकहि कवि केही।
ततछिन उठी चौधरी जाइ। गिर्यो अटारी ते उथलाइ ॥ ३३ ॥
सीस धरा पर लाग्यो जबै। फूट्यो निकटि मीझ तिह तबै।
तत्छिन मर्यो मुगध दुख पाइ। लियो सबंधनि दियो जलाइ ॥ ३४ ॥

सोरठा

सतिगुर सों उपहास करे गरब धरि मूढ मति।
ततछिन होहि बिनाश परहि नरक मरि कै अगति ॥ ३५ ॥

चौपई

इक सेवक संगति के मांहि। कह्यो न मानहिं सेवहि नांहि।
किसु के कहे टहिल नहिं करे। चिरंकाल तिन अस बुधि धरे ॥ ३६ ॥
जो गुर कहहिं काज सो करिहौं। आन बाक को कान न धरिहौं।
चिरंकाल बीत्यो तहिं रहे। इक दिन श्री बुड्ढे बच कहे ॥ ३७ ॥
गुर संगति महिं भलो रहावनि। भजन टहिल कहि काल बितावनि।
बैठे देहि काज किस आइ। छुहै न कोई म्रितु जब पाइ ॥ ३८ ॥
कहनि लग्यो 'गुर बाक कहैं जिमि। टहल करौं निस काल भले तिम।
कह्यो अपर को मानौं नांही। यहि निशचै मेरे मन मांही ॥ ३९ ॥
बहुर तिसे बीता चिरकाल। इक दिन बोल्यो श्री गुरु नालि[4]।
बहुत दिवस को मैं अभिलाखी। निज मुख ते कछु सेव न भाखी ॥ ४० ॥

---

1. आंखों से देख भी लिया है। 2. शराब के बाद खाने की कोई वस्तु। 3. नशा। 4. गुरु जी के साथ।

कह्यो बाक तब बेपरवाहि। अगनि जनहु इहु सेवा आहि।
सुनि तबि गमन्यो बन के मांही। लकरी करी बटोरनि तांही॥ ४१॥
अगनि प्रजुलत हेरि करि डर्यो। गुर बच परि नहिं टिकबो कर्यो।
इक तसकर चोरी को माल। लीये जात आयो तिस काल॥ ४२॥
पिखि अचरज को पूछन कर्यो। इह क्या करति इहां तै खर्यो।
गुर को बच मो कहु तिन कह्यो। जरो अगनि—अब जाइ न दह्यो॥ ४३॥
तिस को गरब बिनाशनि हेत। बोल्यो तसकर होइ सुचेत।
मैं कलमल कीने समुदाइ। इहां जरे ते सभि मिट जाइं॥ ४४॥
मो ते दरब सरब अब लेवो। श्री गुर बाक मोल मुझ देवो।
सुनि कै धन लीनसि ललचाइ। तब तसकर तन दीन जलाइ॥ ४५॥
सुर पुरि ते बिबान चलि आवा। सादर कहि कै तुरत चढावा।
सुख अनंत महिं जाइ रह्यो है। गुर बच ते अघ देहि दह्यो है॥ ४६॥
लोभ धारि सिख गमन्यो घर को। गह्यो नरन तिस लखि तसकर को।
कोटवार के कर्यो अगारी। तिय देखति ही गिरा उचारी॥ ४७॥
छीन लेहु तिस को सभि माल। फांसी देहु जाइ ततकाल।
हुकम मानि फांसी तिस दीना। मूरख मर्यो धरम ते हीना॥ ४८॥
गुरू वचन पर जिह परतीति। तिसहि मिलहि ऊचो पद नीति।
तजहि बाक धरि लोभ बिसाला। पावहि नरक तुरक हुए काला॥ ४९॥

दोहरा

गुरू संत ते लाभ तिह गुरमुख द्रिड यति जोई।
मनमुख चंचल सिक्ख को सिक्खी उलटी होइ॥ ५०॥
महिम सतिगुर बचन की देखहु पुंन प्रमान।
बिमुख भयौ सिख फांस तिस तसकर स्वरग महान॥ ५१॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथमरासे 'सिक्ख तसकर' प्रसंग वर्ननं नाम त्रयोदशो अंशु॥ १३॥

———

अंशु १४

श्री अमर प्रसंग

निसानी छंद

संग बालिकनि खेलहिं निति गुरू क्रिपाला ।
हरख शोक नहिं जिनहुं के इकरस सभि काला ।
दीन बंधु तारन तरन सिक्खी बिदताए ।
जगे भाग जिन नरनि के चरनी लपटाए ॥ १ ॥
करों निरूपन अबि कथा भल्ल्यन कुल टीका ।
आइ मिले जिस रीति सों सेवन किय नीका ।
इक बासुर के ग्राम है तहिं बसहि निकेतं ।
तेजो छत्री भाग बड निस दिन प्रभु चेतं ॥ २ ॥
भले करम महिं प्रीति उर भल्ल्यन कुल मांही ।
धीरज धरम बिशाल जिह अवगुन चित नांही ।
तिनके सुत उतपति भए श्री अमर बडेरे ।
अपर भए पुन तीन सुत हरखति भा हेरे ॥ ३ ॥
खेती क्रिति को सुत करहिं तेजो सुख पावै ।
बैठि रहहि सिमरहि प्रभू भगती चित लावै ।
ब्याह करे सभि सूतनि के पिखि सहित सुनूखा[1] ।
उर महिं अधिक प्रमोद ही बड़ भाग अदूखा ॥ ४ ॥
आपो अपने काज महिं चारहुं सुत लागे ।
बीत गयो चिरकाल ही पौत्रे पिखि आगे ।
अमरदास निज बास महिं चिरकाल बितावा ।
इक दिन रिदै बिचारिओ—हुइ बैस बिहावा ॥ ५ ॥

दोहरा

करति बनज फेरो फिरहिं धरम सहित क्रिति ठान ।
हुइ अदोष जिमि जीविका निरबाहति गुजरान ॥ ६ ॥

---

1. वधू ।

निसानी छंद

करहिं अबहिं शुभ करम को सुख हुइ परलोकं।
नांहित राग रु द्वैश महिं लहिं हरख रु शोकं।
देय दमामा आनि जम कछु ह्वै न उपाई।
पछुतावहिं निज सिर धुनहिं बय बाद बिताई ॥ ७ ॥
तीरथ को तपसा करहिं अब समो हमारा।
तरुन अवसथा इह बनहिं ब्रिधतन बल हारा।
इत्यादिक तरकति रिदै पुन निशचै कीना।
सेवनि गंगा को करहिं कलि महिं अघ छीना ॥ ८ ॥
षशट मास को प्रन कर्यो बाहन बिनु चाले।
सुरसरि नीर सनानही धरि हरख बिसाले।
रिदे कामना हीन हुइ पूजहिं थित तीरा।
चंदन चरचति कुसम गन अरपहिं उर धीरा ॥ ९ ॥
देवहिं धूप सु नंम्रि हुइ जल डालि पतासे।
बरत करहिं तिस कूल पर रहि कर उपवासे।
अधिक भाउ धरि जाति हैं जैकार उचारे।
इसी रीति निशकाम ही बहु बार पधारे ॥ १० ॥

चौपई

अति पवित्र जात्रा को करैं। सरब बिकार रिदै परिहरैं।
काम न क्रोध न लोभ न धारैं। सुच संजम के साथ सिधारैं ॥ ११ ॥
खशट मास बीते जबि जावैं। ग्रिह भी वैठे सुरसरि ध्यावैं।
ऊन बिंसती बार गए जबि। देह जरजरी भूत भई तबि ॥ १२ ॥
चलहिं चरन सिमरन को करिते। ऊँचे जय जयकार उचरिते।
बहुर बीसवीं बारि पधारे। भिहडा ग्रामिक पंथ मझारे ॥ १३ ॥
बसहि बिप्प्र इक तहिं अविदाति। हुतो सारसुत भंबी जाति।
दुरगा नाम भनहिं तिस केरा। करहिं जातरी तहां बसेरा ॥ १४ ॥
आवति जाति पाइं बिसरामा। सादर करहि उतारन धामा।
तहां गए श्री अमर सुजाना। पंथ तपत भानुज मध्याना ॥ १५ ॥
थिरे दुपहिरा हेत बितावनि। पौढि रहे जिन कीरति पावन।
विद्या पठ्यो सु बिप्प्र बिशेखा। सामुंद्रिक[1] भी तिसने देखा ॥ १६ ॥
सुंदर पद अरबिंद निहारा। जिनके हुतो सु पदम अक्कारा।
पिख्यो दूर ते पुन ढिग आयो। नीकी रीति बहुर दरसायो ॥ १७ ॥

1. हस्तरेखा ज्ञान।

रिदे बिचारहि तरक अनेका। इह उत्तम लच्छन पग एका।
स्रीपति बिशनु भए अवतारा। किधौं चक्रवरती न्रिप भारा॥ १८॥

इन दोइन बिन अपर न कोऊं। पदम रेख इमि धारहि दोऊ।
पौढे सुपत रहे तहिं जावदि। रह्यो बिचारति दिजवर तावदि॥ १९॥

निसानी छंद

जागि उठे श्री अमर जी चलिबे करि त्यारी।
विप्र निकट बैठति भयो देखति हित धारी।
लगे देनि तब दच्छना दिज जू इह लीजै।
साध साध तुझ को अहै इमि ही निति कीजै॥ २०॥

उतरहिं संगी गंग के पावैं बिसरामा।
पावन को पावन करहिं पावन हुइ धामा।
विप्र दीन बनि बिनै भनि 'मैं अबि नहीं लेऊं।
जबि समरत्थ होवहु महां तबि लेनि करेऊं॥ २१॥

अबि मुझ सों कहि दीजहि बांछत हम दै हैं।
तबि चेतहु इस समैं को हम आनि मिलै हैं।
सुनि श्री अमर बखानिओ कैसे तुव जानी।
कैसे ऐश्वरज होइ है करि सकल बखानी॥ २२॥

दिज भाख्यो तुम पद पदम पदमापति जैसे।
अति उत्तम लच्छन इही फल भयो न कैसे।
तऊ अगारी होहिगो प्रभु जोति मिलै है।
चक्रवरती राजा किधौं किस काल. बनै है॥ २३॥

निरसंसै मम बारता निशचै करि लीजै।
ऐश्वरज होइ त जाचिहौं तबहूं तुम दीजै।
सुनि प्रसन्न चित अति भए होवहु बच साचा।
मिलहु हमैं तबि आनिकै लिहु जो करि जाचा॥ २४॥

कहि दिज सों मारग चले आवनि को धामा।
इक ब्रह्मचारी बेस महिं जिह मति अभिरामा।
मिल्यो संग श्री अमर के किय बचन बिलासा।
चलति पंथ शुभ कथा प्रभु बहु भाँति प्रकाशा॥ २५॥

सरब दिबस संगी रहे उतरे इक थाना।
गमने बहुर प्रभाति को हित दुहूअनि ठाना।

जावदि आए सदन निज तावदि रहि संगा।
खान पान इकठो करहिं सिमरति उर गंगा ॥ २६ ॥

घर अपने श्री अमर जू आन्यो ब्रहमचारी।
सादर खान रु पान को दीनसि हित धारी।
भई निसा हित सैन के ऊपर आरूढे।
करहिं परसपर बारता अंतरगति गूढे ॥ २७ ॥

किस प्रसंग पर बारता बोल्यो ब्रहमचारी।
गुरू तुमारो कवन है किम दीख्या[1] धारी।
सुनि श्री अमर बखानिओ गुरु मोहि न पायो।
खोज रह्यो अभिलाख सों को द्रिशटि न आयो ॥ २८ ॥

नहिं दीख्या किस की लई मैं करी न सेवा ।
अबि लग बांछत हौं रिदै करिहौं गुर देवा ।
सुनति दुख्यो अति चित बिखै बोल्यो ब्रहमचारी ।
तप तीरथ ब्रति घाल वड भी बिफल हमारी ॥ २९ ॥

यहां श्रमति हुई मैं करे सभि बादि गवाए ।
भयो अचानक साथ तुम इमि कहि पछुताए ।
निगरे को संगी भयो किय खान रु पाना ।
पुंन अकारथ सभि भए मुझ चित महांना ॥ ३० ॥

विघ होति लौ इम रहे नहिं गुरू बनायो ।
महां करम खोटा कियो मनमति बिरमायो ।
चित महिं अति रिस करति ही उठि मारग लीना ।
अमरदास पशचाति तिसु पछुतावनि कीना ॥ ३१ ॥

अपर सरब ही सुध गई इक ही लिवलागी।
गुरू मिलहिं करि लेइ हौं इच्छा बहु जागी।
प्रभु आगै बिनती करी पूरहु मम आसा।
दीन बंधु हरि दयानिधि लखि दासन दासा ॥ ३२ ॥

रावर के पद पदम ते निकसी शुभ गंगा।
सेवी मैं वहु काल लग निशकाम उमंगा।
अबि सतिगुर मुझ को मिलै सभि हूं फल पाऊं।
अंतरजामी सरब के, कहि किसहि सुनाऊं ॥ ३३ ॥

1. दीक्षा

चिंता चित ते दीन हुइ बिनती बहु भाखे।
दिवस न बीते दुखद बहु उर गुरु अभिलाखे।
गंगा रिदे अराधतो 'हे भीशम माता'।
उत्तम तीरथ सभिनि महिं बांछत की दाता।। ३४ ।।

ब्रहमलोक ते जतनकरि भागीरथ आनी।
साठ हज़ार उधार करि इह कथा महांनी।
सुर मानी, हानी अघनि[1], जानी त्रिहु लोका।
सुखदानी, रानि जगति तुव वेग अरोका[2] ।। ३५ ।।

करहु सफल मम कामना गुरु देहु मिलांई।
इस प्रकार बिनती भनहि बहु बिधि बडिआई।
निसा बिती दिन आगले दुख साथ बितावा।
खान पान कुछ नहिं रुची बैराग उपावा।। ३६ ।।

बहुरु भई जबि जामनी सोचति चित जागा।
लिव लागहि नहिं नींद हुई जिन मन अनुरागा।
श्री परमेशुर सुरसुरी परसंसति दोऊ।
बिनै भनति मन दीन बनि गुन गन गिनि सोऊ।। ३७ ।।

नाउं थाउं बिन रूप के सतिगुर को ध्यावै।
पूरहु मेरी आस को ऐसे उर भावै।
सरब थान सभि काल महिं सतिगुर है ब्यापे।
बिनती सुनिकै श्रोन मैं दिहु दरशन आपे।। ३८ ।।

मैं परखन जानहु नहीं गुर पूरन केहू।
अपनो बिरद पछानि कै निज दरशन देहू।
इमि इक लिव लागी रिदै तजि कारज आना।
खान पान निंद्रा नहीं द्रिग नीर चलाना।। ३९ ।।

दीरघ स्वास उसारितो इक तौ ब्रिध देही।
गंगा आवति जात मग बल बिना अछेहीं[3]।
प्रेम अधिक चिंता बहुत उर महिद बिसूरा।
कै मरिहों कै मिलहि अबि श्री सतिगुर पूरा।। ४० ।।

धिक जीवनि सतिगुरु बिना कुछ सरै न काजू।
गुर बिन छिति को राज क्या, धिक सुरपुरि राजू।

---

1. पापों का नाश करने वाली। 2. तेरा प्रवाह रोका नहीं जा सकता। 3. निरंतर।

तप, तीरथ बरत रु धरम बिन गुर निफलावैं ।
गुर बिन लोक प्रलोक के सुख सकल नसावैं ।। ४१ ।।

सतिगुर पूरा जे मिलहि दे निज उपदेशू ।
सफल तपादिक होति हैं मिट जाति कलेशू ।
करम हीन इम मैं रह्यो अबि सतिगुर पाऊं ।
नातुर तजि कै अंन जल निज तन बिनसाऊं ।। ४२ ।।

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अमर' प्रसंग बरननं नाम चौदशमो अंशु ।। १४ ।।

अंशु १५

श्री अमर मिलन प्रसंग

दोहरा

श्री गुर अंगद की सुता बीबी अमरो नाम।
भगति धार बपु आपनों उपजी सतिगुर धाम ॥ १ ॥

निसानी छंद

अनुज हुतो स्री अमर को तेजो के ताता।
तिस के नंदन संग इहु ब्याही बडि ग्याता।
बिदा होइ पित पास ते ससुरार बसंती।
बहुत बरख तिन घर रही अमरो मतिवंती ॥ २ ॥
महिमा लखी न किनहु तिह नितप्रति इम ठानैं।
ग्रहि धंधा सभि दिन करहि तिन आइसु मानैं।
जागहि पाछल गति कौ करि शौच शनाना।
श्री नानक बानी पठहि करि प्रेम महाना ॥ ३ ॥
तिस निस उठि सतिगुर सिमर मज्जन कौ ठाना।
पठहि गुरु के शबद शुभ फल जिनहु महाना।
दधी बिलोकति सहजि सों मुख बोलति बानी।
हुइ प्रसन्न करि प्रेम सों बिज ब्रिती टिकानी ॥ ४ ॥
निज घर पर श्री अमर जी चिंता गलताने।
जागे सगली जामनी पुन पुन पछुताने।
सतिगुर दरशन चितवते बिनती बहु भाखे।
जाम निसा ते धुनि परी सुनि मन अभिलाखे ॥ ५ ॥
सुननि लगे मन रोकि कै सुंदर गुरबानी।
चुभति चीत दरवति रिदा. रुचि जगी महानी।
तहिं ते उठि हुइ निकट तिह ओटा इक लीना।
देखि न सुकचहि मोहि को शुभमती प्रबीना ॥ ६ ॥

छपे सुनति गुर सबद को थित केतिक काला।
पढति रही अमरो तबहि पुन भयो उजाला।
जबि प्रभाति होई पिखी तबि निकट सिधारा।
बूझन लाग्यो शबद इह किस भाँति उचारा॥ ७॥

हे पुत्री! अबि फेर पढि मुझ देहु सुनाई।
मर्यो हुतो मैं सुधा की बूंदैं मुख पाई।
कर्यो जिवावन सुख दियो, इह बड उपकारा।
सुनि अमरो सुकचति कुछक गुर शबद उचारा॥ ८॥

श्री मुखवाक। मारू महला १ घरु १॥

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीए तउ गुण नाही अंतु हरे॥ १॥

चित चेतसि की नही बावरिआ।
हरि बिसिरत तेरे गुण गलिआ॥ १॥ रहाउ।
जाली रैनि जालु दिनु हूआ जेती घडी फाही तेती।
रसि रसि चोग चुगहि नित फासहि छूटसि मूडे कवन गुणी॥ २॥

काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही।
कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ संनी चिंतु भई॥ ३॥

भइआ मनूरु कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिलै तिनेहा।
एकु नामु अंम्रितु ओह देवै तउ नानक त्रिसटसि देहा॥ ४॥ ३॥

निसानी छंद

सुनि के सतिगुर सबद को मन भयो हुलासा।
मोहि दशा अस अबि अहै जिम शबद प्रकाशा।
तरुन अवसथा बित गई बिरधापन पावा।
लोहा हुतो मनूर भा कित काज न आवा॥ ९॥

लोहे को पारस छुवै कंचन हुई जाई।
मम मनूर को गुर मिलहि सुध करहि बनाई।
मनहु सबद मुझ पर कियो उस दशा सरीरा।
इम बिचारि बूझति भए आशै गंभीरा॥ १०॥

शबद कर्यो किस को अहै कित ते तुम पावा।
करनहारि अबि है कि नहि जिन शुभ पद गावा।

सुनति राम हरखन भयो मन प्रेम बधायो।
मेरे हेत उधारिबे इह रुचिर बनायो॥ ११॥

सुनि बीबी अमरो कह्यो श्री नानक पूरे।
तिनहु बनायो शबद को जिस महिं फल रूरे।
अपर बहुत बानी बनी तिन के मुख द्वारा।
जिस के पठिबे प्रेम ते भउजल निसतारा॥ १२॥

सुनहि पठहिं मेरो पिता मन प्रेम बिसाला।
गाइं रबाबी तिनहु ढिग थित दोनहु काला।
श्री सतिगुरु नानक अबै बैकुंठ पधारे।
निज सथान निज जोति दे मम पिता बिठारे॥ १३॥

तिनहु निकट ते कंठ करि बहु सुनति रहंती।
सतिगुर गिरा प्रचार तहिं गन किलविख हंती।
सेवति सिक्ख अनेक हैं जिनके वड भागा।
सरब बिकारनि त्यागि कै मन सिमरन जागा॥ १४॥

सुनति अमर बोले बहुर दुहिता सुनि लीजै।
मेरे पर उपकार इहु करुना करि दीजै।
लेहु संग तहिं को चलहु दिहु मोहि मिलाई।
दरशन की प्यासा लगी अब रह्यो न जाई॥ १५॥

ब्रिध अनाथ अजान मैं समरथ तें हीना।
मरति मोहि जीवाइहैं हे सुता प्रबीना।
सुनि अमरो न पुन भन्यो 'तुम ब्रिध हमारे।
क्यों नहिं मानौं बैन को मैं बिना बिचारे॥ १६॥

मोकहु ससुर सथान हो, सम पिता बिचारौं।
इक परंतु मैं डरति हौं बिन कहे पधारौं।
पित सतिगुरु को अदब सों दरसों दरसन्ना।
तिन रजाइ मैं निती रहौं, बहु करौं प्रसन्ना॥ १७॥
जावौं निकट न बिन कहे, बिन बिदा न आवौं।
रिसि करि कुछ नहिं कबि कहैं जांते डर पावौं।
सुनि बोले श्री अमर जी 'तूं मति करि चिंता।
अंतरजामी घटन के हुइं जे भगवंता॥ १८॥
तौ न करहिं मन भंग को, हेरहिं मन प्रेमा।
दास जानि ढिग राखि हैं दे हैं मग छेमा।

ब्रिध बिनै सुनि दीन की अमरो करि त्यारी।
झीवर लीए हकारि[1] कै चढि करि असवारी ॥ १९ ॥

चले पंथ शुभ शगुन ते शुभ बही समीरा।
परखति हरखति चित्त महिं हुइ काज गहीरा।
सने सने मारग चले पिखि ग्राम खडूरा।
बीबी अमरो तबि कह्यो पित सतिगुर पूरा ॥ २० ॥

निकटि तुम बैठीए मैं जाउं अगारी।
पिखि सुभाव सतिगुरू को पुन लेहुं हकारी।
आग्या करहिं प्रसन्न हुइ पूछौं जबि जाई।
मिलहु बहुर ढिग रहहु तिन लखि चलहु रजाई ॥ २१ ॥

इमि धीरज देकरि भले चलि गई अगारे।
पिता साथ हित करि मिली बड शरधा धारे।
घर अंतर बैठी निकट गुरु अंतरजामी।
कह्यो 'बुलायो तुझ नहीं आई किस कामी ॥ २२ ॥

बनहि न आवनि बिन भने क्यों चलि करि आए।
जिनहुं संग आन्यो हुतो तिस क्यों नहिं ल्याए।
कह्यो जोरि कर जाइ मैं आनहुं अबि पासा।
आइसु बिनु नहिं मिलि सकहिं बहु धरे हुलासा ॥ २३ ॥

गई आप ही उठि बहुर तिस जाइ हकारा।
रिंदे अनंद बिलंद धरि पहुंच्यो दरबारा।
दरशन कीनसि जाइ कै मुख कमल बिकासा।
राग द्वैष सुख दुख बिखै ब्रिति जिनहु उदासा ॥ २४ ॥

लखि संसार संबंध को हुइ सतिगुर ठांढ़े।
गल मिलिबे कहु त्यार भे पट कर काढ़े।
चरन गहे श्री अमर तबि बंदन को ठानी।
उचित नहीं गर मिलन के लिहु दास पछानी ॥ २५ ॥

कुशलं छेम सभि पूछ कै निज निकट बिठायो।
अपर बात कुछ जगत की बूझति हरखायो।
कितिक समो बीत्यो जबहि बैठे गुर पासू।
आइ रसोईआ थिति भयो कीनसि अरदासू ॥ २६ ॥

1. बुला लिए।

प्रभु जी सिद्ध[1] अहार हहि[2] सुनि उठे क्रिपाला।
बुड्ढे आदिक सिक्ख सभि आए तिस काला।
पंकति बैठी मिलि तबहि गुर बीच सुहाए।
मिलि संगति महिं अमर जी बैठे तिस थाएं॥ २७॥

पहित भात बरत्यो प्रथम, पुन आमिख आवा।
इक दिश पंकति महिं दयो तब इन दरसावा।
बहु गिलान ठानी रिदै इमि करति बिचारा।
मैं आमिष खायो न कबि करि अन्न अहारा॥ २८॥

पंकति मैं अबि बैठगा किमि होहि बचाउं।
नहिं लेवों अपमानगी—क्यों बैठ्यो आउ।
आयो सतिगुर करन को बिगरहि इमि बाती।
सिख्य न करिहैं मोहि को, मन हटि इस भांति॥ २९॥

अपर जतन अबि को नहीं जे अंतरजामी।
सूपकार को बरज हैं आपहि गुरु स्वामी।
इक तो मेरो धरम रहि पुन हुइ परतीता।
जग ते करहिं उधार मम सरबग्य पुनीता॥ ३०॥

इमि कीनो संकलप को श्री गुरु नै जाना।
सूपकार को बरजिओ मुख बाक बखाना।
पंकत महिं जे नवो नर तिसु देहु अहारा।
आमिख नांहि परोसीए तिन धरम बिचारा॥ ३१॥

नहीं दयो तबि मास को सभि संगति खायो।
त्रिपत भए पंकति उठी जल पान करायो।
मम मन की गति गुर लखी हरख्यो उर भारी।
भए पुंन मेरे उदे बहु करति बिचारी॥ ३२॥

अब इन ते आछो गुरू कतहूं न दरसावों।
धंन भाग इहु जे मिलैं सम और न पावौं।
श्री प्रभु श्री गंगा सुनि मैं बिनै जु कीनी।
इहु पूरन अवतार हैं—शरधा धरि लीनी॥ ३३॥

करि भोजन बैठ्यो वहिर एकाकी होवा।
चितवति चित महिमा गुरू संसै सभि खोवा।

---

1. तैयार। 2. भोजन तैयार है।

निसा बिताई पुन दिवस भोजन भा त्यारी ।
मिलि पंकति बैठ्यो तहां मन मैं इम धारी ॥ ३४ ॥
श्री गुर सदा सरबग्य हैं संसै किछु नांही ।
तउ मोहि मन भावनी लखि निज उर मांही ।
सीत प्रसाद सरबोत्तमं बिन जाचे मोही ।
क्रिपा धारि सो देहिं अबि उर मम सुध होही ॥ ३५ ॥
इमि चितवति भोजन कर्यो श्री गुर नै जानी ।
आप अच्यो त्रिपताइ कै पुन पीवति पानी ।
पीछै उचर्यो दास को 'जो बच्यो अहारा' ।
देहु पुरखु तिस जाइ करि चहि रिदै उदारा ॥ ३६ ॥
सुनति अनंद बिलंद भा ले करि तब खायो ।
निशचल निशचै चित भयो सम मेरु थिरायो ।
भई शांति, दुविधा नसी, मन तहां टिकावा ।
पानि कर्यो जल, धोई कर बाहर पुन आवा ॥ ३७ ॥
रह्यो इकंत सु बैठि करि सभि दिवस बितायो ।
भोजन को जबि समो हुइ तबि अंतर आयो ।
पंकति महिं बैठहि तहां जो देहिं सु खावै ।
पुनहि इकाकी होइ करि प्रभु गुन मन लावै ॥ ३८ ॥

चौपाई

इस प्रकार दिन कितिक बिताए । रहहि वहिर ले भोजन खाए ।
श्री अंगद पुन नहीं बुलायो । कबहूं न बच श्री मुख फुरमायो ॥ ३९ ॥
नहिं संगति महिं मिलहि लजावहि । मिल करि तहिं अहार को खावहि ।
श्री परमेशुर नाम बखानै । अबि न जाउं कित द्रिढ़ नितु ठानै ॥ ४० ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रियम रासे '**श्री अमर मिलन**' प्रसंग वरननं नाम पंचदशमो अंशु ॥ १५ ॥

अंशु १६
श्री अमर सेवा प्रसंग

दोहरा

कितिक द्योस बीते जबै चित महिं चितवन कीन।
सेवा चहीये गुरू की जिस ते होइं प्रसीन ॥ १ ॥

सवैया

बेपरवाह गुरू है जद्यपि चित्त मैं जिन के चाह न कोइ।
तदपि दास निज धरम बिचारहि सेवा करहि भाउ मन भोइ।
प्रिथम जुगन महिं तप को तापहिं छुधा पिपासा सहि करि सोइ।
पंचागनि तापहिं, जल पैठहिं बरखा सहहिं नगन तन होइ ॥ २ ॥
एक चरन पर ठांढे होवति ऊरधि बाहू किते रहंति।
कै लटकति हैं ऊपर पद करि चहैं प्रसन्न होहि भगवंति।
सो तप फल अब कलीकाल महिं सति संगति सेवन करियंति।
जल ढोवनि अर लकरी ल्यावनि, करन बीजनो प्रभु सिमरंति ॥ ३ ॥
चरन पखारनि अंनि पकावनि इत्यादि जेतिक हैं आनि।
मिलि सतिसंग करन जो सेवा अधिक तपन फल होहि महान।
इमि बिचारि श्री अमर कर्यो उर आनौं नीर आपने पान।
निति सति संगति देवनि ठानौं अरु सतिगुरु तन करहिं शनान ॥ ४ ॥
मिलि सिख्यन महिं भन्यों सभिनि को जल की सेवा दिहु मुझ दान।
आइसु ले करि कलस उचायहु सिर धरि ल्यावति है तिस थान।
देति रसोई महिं चहि जेतिक सिख्यन को करवावहिं पान।
मन नीवौं करि सादर बोलहिं नहिं डोलैं बुधि को द्रिड ठानि ॥ ५ ॥
श्री अंगद जब जाम जामनी जागहिं मज्जहिं थित तिसु काल।
तबि ते आगे ही उठि करि कै जल आनहि भरि कलस बिलास।
अधिक प्रीतकरि सेवा ठानहिं नहिं अकुलावहिं बलहि संभाल।
प्रथम शनानहिं बसत्र पखालहिं, पुनहि शुशक करिबै हित डालि ॥ ६ ॥
पुन इकंत हुइ सभि ते बैठहिं कहहिं न सुनहि बचन किसि नालि।
सतिगुर मूरति रिदे समालहिं अपर मनोरथ सभि को टालि।

निज कुल को निज ग्रिह को तजि करि नहीं जाइ पुन कीनि संभाल।
नर उपहास करनि सभि लागे ब्रिध होइ किआ कीनी ढालि ॥ ७ ॥

संमत गयो बीत जबि इस बिधि, जीरण बसत्र धरे तन मांहि।
श्री अंगद सेवा के ततपर अपर मनोरथ होहि न काहि।
खान पान निरबाह देहि हित छुधा पिपासा बहु बिरधाहि।
तबि कुछ करहिं, पहिरबे पट की सुधि बुधि कौन करहि हुइ नाहिं ॥ ८ ॥

एक बरख बीत्यो पिखि सतिगुर गज डेढिक तब दीन रुमाल।
सो लेकरि निज सीस चढायो द्रिड करि बांध्यो रसरी नाल।
बहुर उतारनि को नहिं कीनसि लखि करि गुरू प्रसादि बिसाल।
सेवा करहिं तिसी बिधि निसदिन, जल आनहिं चहीअहि जिस काल ॥ ९ ॥

बरख बहत्तर भई आरबल तबि आए सतिगुर के पासि।
निबल सरीर जरजरी भूत सु तऊ सेव को धरहिं हुलासि।
आलस त्याग करति उद्योगहि कलस उठाइ ल्याइं जल रासि।
निज तन की अर घर कुटंब की सुधि भूली करि गुरु को निरजासि ॥ १० ॥

तन करि करहिं कार सभि सेवा मन करि गुरु को सदा सम्हालि।
केतिक नर जवि मिलहिं आनि करि बूझहिं सदन आपने चालि।
निज बंधप[1] को सुध लिहु नीके, कुटंब मिलहु तुझ चहति बिसाल।
क्यों इत बैठि रह्यो क्या लेवहिं सभि बिधि संकट सहैं कराल ॥ ११ ॥

तिन सों कहैं न हमरा कोई हम किसहूं के नहिं किस काल।
जिमि प्रवाह मैं त्रिण मिलि जावहिं तथा मेलि सभि को सभि नाल।
उतरनि पार तरी पर मेला, पुन बिछुरहि, नहिं करहि सँभाल।
आइ पाहुनो निस बिसरामहिं, होति प्राति मारग को चालि ॥ १२ ॥

अबि मेरे सतिगुर हैं सभि किछु सदन कुटंब पिता अरु मात।
इही सहाइक होहिं अंत को, रहि एकल जहिं कोइ न जाति।
जीवति प्रान अधार इही हैं, बिन पग देखे कछु न सुहाति।
इमि सुनि लोक पयानहिं घर को, जानहिं भयो निलाइक गात ॥ १३ ॥

करति सेव निस दिन श्री गुर की अहमेव तजि कै सभि रीति।
दिन प्रति अधिक ही सेवहि करति चौंप अति उपजति चीत।
सुनहि न भनहिं न आन बैन मन गिनहिं न गिनती कुछ विपरीति।
तनु मनु अरप्यो चरन गुरू के इसी ख्याल महिं परम अतीत ॥ १४ ॥

1. सम्बन्धी।

पुन संमत दूसर भा पूरनि श्री गुर दूजो दीन रुमालि।
बखशिश जानी स्वामी कर की सिर पर बांधि लीनि ततकालि।
द्रिड करि दास जि उतरहि नाहिन, सिथल होहि पुन लेहिं संभालि।
कबहूं नहीं उतार निहारी भीजहि कई बार जल नालि॥ १५॥
बैस घटति नित, प्रेम बधति चित, त्यों त्यों सेवा करहिं क्रिपाल।
नर उपहास जि ठानहिं मूरख, नहिं मानहिं करि मौनि बिसालि।
भाउ भगति महिं जागहिं नितप्रति सोयो जे जग के जंजालि।
बसत्र फटति तन दुरबल होयहु गुर अनुराग धरे रंग लाल॥ १६॥
त्रिती बरख महिं श्री गुरु अंगद त्रिती डेढ गज दीनहु चीर।
नहिं बोलहि तिह संगु कबहि कछु बैठहिं दूर कि होवहिं तीर।
हाथ चरन जुग भए बिबरने फटे मास लागे जल सीर।
तऊ न मन महिं फुरै और बिधि इक सेवा के ततपर धीर॥ १७॥
जाम जामनी जागहिं, आनहिं जल को कलस, कराइं शनान।
चरन पखारहिं, बसत्र पखारहिं, पुन परमेशुर सिमरन ठानि।
बहुत वेग हित नीर घटा भरि चहीअहि जितिक तितक दें आनि।
समधा आनहिं, जारनि ठानहिं, पुन पकंति जुत करिहीं खान॥ १८॥
पात्र सुधारहिं सतिगुर के सभि, गरमी बिखै सु हांकहिं पौन।
जबि जल पान करहिं ले आवहिं, सेज सुधारहिं हित गुर सौन।
चरन अंगूठे महि व्रिण पाके, निज आनन महिं राखहिं तौन।
मुख के गरम स्वास ते दुख नहिं यांते धरहिं बैठ रहिं भौन॥ १९॥
जब मुख रुधर रांधि किछु आवहि तिस को थूक देहिं धर डारि।
सुख सों सैन करहिं गुर पूरे नहिं दुख हुइ इम रिदे बिचारि।
इत्यादिक जबि सेव उठाई संमत बीत गए तब चार।
चौथे दियो रुमाल बहुर तबि सो भी लीनहुं सिर पर धारि॥ २०॥
पंच परख महिं पंच दिये गुर, खशट बरख महिं खशटो दीन।
संमत सपतम महिं गुर सेवति पग अंगुसट धरहिं मुख लीन।
भयो कछुक परकाश रिदै महिं जिम अरणोदै होति नवीन।
करामात की शकति भई तबि सिद्धां फुरन लगी मन चीन॥ २१॥
इक दिन श्री अगंद जी सोए चरन अंगूठे लीन मुख धारि।
रांध रुधिर जो होइ इकत्रै मुख ते थूक देति छिति डार।
पुन आनन महिं धारहिं सुख हित पाइं न संकट गुरू उदारि।
बैठे बीत्यो एक जामि जबि हिरदै महिं तबि कीन बिचारि॥ २२॥

मो महिं शकति काम किस आवहि गुर शरीर ते जे दुख पाइं ।
करों अरोग जु ब्रिण इह सूकहि सरब प्रकार तबहि सुख आइ ।
इमि बिचारि करि अपन शकति ते सगरो रोग दीन बिनसाइ ।
भए अरोग अंग सभि सुधरे देखति बिसमति हुइ हरखाइ ।। २३ ।।

श्री अगंद जी जाग पिख्यो तन चरण अंगूठे महिं ब्रिण नांहिं ।
अपर सरीर अरोग भयो सभि बहुर बिलोक्यो बैठ्यो पाहि ।
रिदे बिचार्यो क्या इहु होयहु सुपत जाम इक रोग बिलाहि ।
पुन जान्यो, श्री अमर कीन इमि कुछक शकति होई इन मांहिं ।। २४ ।।

सुनि पुरखा तें क्या इहु कीनसि जरा शकति भी जरी न जाइ ।
तीन लोक पति श्री गुर नानक इस तन को तिन सीस निवाइ ।
उचित केशट के है इह सदही क्यों इहु दीनो रोग गवाइ ।
अबि ते बहुर न करहु दिखावनि किस असथान किछू हुई जाइ ।। २५ ।।

अजर जरन हुइ संतनि को उर महां गंभीर सुधीर बिसाल ।
सिर लग देति देर नहिं लावहिं, अज़मत नहिं दिखाइं किसि काल ।
ऐसे करहिं बधति नित जावहि, किसू जनावहिं रहहि न पालि ।
सीख धरहु द्रिड नहिन बिसारहु सदा समारहु प्रभू क्रिपाल ।। २६ ।।

सुनि श्री अमर जोरि कर ठांढे 'छिमहु गुरू मैं मनमति कीनि ।'
नहीं रजाइ आप की बरती अबि मैं करों सीख जिम दीन ।
बिरद बडो बखशिंद आप को सागर जिम गंभीर प्रबीन ।
धीर धरा सी धरति सदा तुम, हम क्या जानहिं जीव मलीन ।। २७ ।।

बिनती सुनति प्रसन्न होइ प्रभु बखशे करहु न ऐसे फेरि ।
निज सरीर पुन तथा बनायहु चरण अंगूठे ब्रिण जु बडेर ।
रांध रुधर चोवति रहि थोरो गुर की कथा अकथ ही हेरि ।
किस महिं समरथ जान सकहि को सुर नरबिसमति सुमति बडेर ।। २८ ।।

बरख इकादश सेवा कीनसि दिए रुमाल इकादश पानि ।
सो सगरे सिर पर करि बांधनि रसरी संग सुद्रिडता ठानि ।
बडो मुकट तिन तब होयहु दिन प्रति भीगहि नीर महान ।
बहु पपीलका बासा कीनस अपर जीव उपजे तिस थान ।। २९ ।।

जबि के दए सीस पर बांधे बहुर न तरे उतारनि कीनि ।
करति रहति दिन प्रति द्रिड तिन को रैन दिवस मन प्रेम प्रबीनि ।

अपर बासना रही न कोऊ चरन कमल सिमरति हुइ लीन ।
कहनि सुनन किह सों न करहिं कबि इक सेवा के ततपर भीनि[1] ।। ३० ।।

बरख द्वादशो सेवति आयहु जीरण[2] सरीर सु छादि[3] ।
पग महिं भई बिवाई फट करि खान पान को चहै न सादि ।
जल सों भीज हाथ तिस बिधि ते भे कबि बैठहिं सुनि शबद सु नादि ।
घालि घाल अधिक जबि ऐसे देखति सिख्य होंहिं बिसमादि[4] ।। ३१ ।।

मधरो डील सरीर अलप इन बहुरो ब्रिध बल नहिं जिन मांहि ।
स्वेत केस तन चरम सिथल बहु सेवा सभि ते अधिक कराहिं ।
चरन अंगूठा निस मुख राखति, नहिं सोवति कबहूं चित चाहि ।
जाम जामनी ते जल आनहिं गुरू सनानहिं प्रेम उमाहि ।। ३२ ।।

सीत उसन बरखा बड होवति सेवहिं इक सम जानहिं नांहि ।
तप बिसाल कर घाल सु घालहिं धंन जनम करि लीनि उपाहि ।
तदपि रुख नहिं गुर कछु करि हैं उदासीन सी ब्रिती रखाहिं ।
निकट बिठाइ न बोलहिं बूझहिं अगम गुरू गति लखी न जाहि ।। ३३ ।।

सिख इम भनति अपर जे नर हैं बहु बिधि के ठानहिं उपहास ।
घर ते मनहु निकास्यो किसि ने दरब नहीं कुछ इसके पास ।
गुर निरासरे को सु आसरा इम लखि आयहु इनहु अवास ।
टकरे खान रह्यो परि कै इह, सभि ने त्याग्यो भयो निरास ।। ३४ ।।

फिरहि निथावां थांव न पावहि, अहै निमाना मान न काइ ।
रैनि दिवस इत उत को बिचरति सभि के आगै सेव कमाइ ।
इक अहार को अचवन करिही अवर वसतु किछु हाथ न आइ ।
सभि को कह्यो करै उर डरपति—नहीं निकास देहिं इस थाइं ।। ३५ ।।

इमि निंदक उपहास जुकति बहु निंदहिं, बिंदहिं नहीं गवार ।
दीन दुनी का पातशाह हुइ जिस के सम को ह्वै न उदार ।
सिख्यन अरु निंदक ते सुनि करि हरख न शोक करहिं किस बारि ।
इक सेव के ततपर ह्वै करि गुरू अराधहिं सरब प्रकार ।। ३६ ।।

।। इति श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अमर सेवा' प्रसंग वरननं नाम खोडसमो अंशु । १६ ।।

---

1. भीगे हुए । 2. जीर्ण, फटा हुआ । 3. ढक कर । 4. चकित ।

अंशु १७

श्री अमर, श्री अंगद प्रसंग

दोहरा

इस प्रकार सेवा करहिं हरख शोक उरि त्याग।
कह्यो किसू को किसी बिधि धरहिं न मन बडभाग ॥ १ ॥

निसानी छंद

घटा श्याम इक निसा महिं पसर्यों अंधकारा।
को को बरखैं बूंद धरि करदमु करि डारा।
सरद काल पाला परे तन सुकचहिं सारे।
तूल तुलाई कै अगनि सीतहि निरवारे ॥ २ ॥
रही जाम जब जामनी भा मज्जन काला।
चले कलस ले हाथ महिं आलस को टाला।
भर्यो जाइ सिर पर धर्यो, हटि आवन लागे।
सने सने श्री अमर जी पग राखहिं आगे ॥ ३ ॥
फिसलहि पग कलसा गिरहि जल पहुंचहि नांही।
टरहि सभो इशनान को—इस चिंता मांही।
धरमसाल के पंथ महिं घर हुतो जुलाहे।
गिर्यो नीर तिन ते तहां करदम बहु तांहे ॥ ४ ॥
मंद मंद बूंदन गिरैं पुन पंक सु यांते।
अधिक अंधेरो हुइ रह्यो मग लख्यो न यांते।
इक करीर को किलक तहिं छिति गड्यो जुलाहे।
चीर बुनहिं तिस बांधि करि कुंभल[1] पुन मांहे ॥ ५ ॥
आए जबि श्री अमर तहिं पग कीले लागा।
निकट गिरे कुंभल बिखै नहिं संभलि आगा।
कलस बचावनि कारने बल कीन बडेरा।
नीर न गिरने दीन तिसु थंभ्यो तिस बेरा ॥ ६ ॥

---

1. खड्डी।

नीठ नीठ कलसा तबहि सिर ऊपर राख्यो।
मज्जन को नहिं बिलमु हुइ गुर दिश अभिलाख्यो।
परी जुलाही सदन महिं अरु हुतो जुलाहा।
भयो खडक सुनि कै शबद 'बाहर को आहा॥ ७॥
गिर्यो कौन इस थल बिखै तसकर है कोऊ।
किधौं अपर मानव अहै ? उत्तर दिहु सोऊ।'
सुन्यो जुलाहे को भन्यो श्री अमर बतायो।
मैं सतिगुर को दास हौं लैबे जल आयो॥ ८॥
कौन दास इस काल महिं पाला अंधकारा।
बूंदा बरखति घन घटा अवनी पर गारा।
सुनति जुलाही ने भन्यो और न अस कोऊ।
निरथावां अमरू फिरहि इस छिन ह्वै सोऊ॥ ९॥
निस दिन इस को चैन नहिं इत उत नित डोलै।
खाइ पेट नित भरति है किह सों नहिं बोलै।
कुल ग्रहि तजि उपहास सहि रहि तपे नजीका।
जग की लाज न कुछ करहि कहि बुरा कि नीका॥ १०॥
सुनि बोले श्री अमर जी मैं नहीं निथावां।
सेव्यो सतिगुर सभि बडो शुभ शुभति सुभावा।
तूं कमली हुइ कहति हैं बुधि रिदै न कोई।
नहीं महातम को लख्यो दाता जग जोई॥ ११॥
इमि कहि सिर पर कलस ले आए निज थाना।
आगे श्री अंगद गुरू चहिं कह्यो शनाना।
चौकी पर तब खरे थे सुनि श्रौन ब्रितंता।
अति ध्रित जानी दास महिं चाहति परखंता॥ १२॥
आयो निकट, बताइ नहिं, लगि सेव सुजाना।
चरन पखारे सौच जुति करवाइ शनाना।
भई जुलाही बावरी तिनके बच भाखे।
दांतन काटति मुख बकहि उर जिमु अभिलाखे॥ १३॥
भई प्रभाती निस बिती सतिगुर सभि जान्यो।
अमरदास निज पास तबि बुलिवावन ठान्यो।
आनि करी पद बंदना कर जोरि सु ठांढे।
अवलोकति हैं दरस को अनुराग सु बाढे॥ १४॥

कहु ब्रितांत सभि राति को कैसे करि होई ? ।
ल्यावति जल को कलस जब बोल्यो किम कोई ? ।
हाथ बंदि बिनती भनी 'तुम अंतरजामी ।
बिना कहे जानो सकल दाता जग स्वामी ॥ १५ ॥
कुछ दुराउ नहिं आप ते जे सभि किछु जाने ।
मैं डरपौं को अपर बिधि नहिं जाइ बखाने ।'
सुनि कै श्री अंगद तबै बुलवाइ जुलाहा ।
जुकति जुलाही आइ सो थित भा गुर पाहा ॥ १६ ॥
दरशन कीने सुधि भई सम प्रथम जुलाही ।
श्री अंगद बूझ्यो तबै 'सच कहु हम पाही ।
निस ब्रितांत किस बिधि भयो सभि देहु सुनाई ।
दीन दुनी दुख पांइ है जे राखि दुराई ॥' १७ ॥
सुनति जुलाहे भै धर्यो इन के बचु साचे ।
कहौ न मैं दुख पाइ हौं, इम लखि सचु राचे ।
बूझ्यो मैं, क्या खडक भा बाहर इस काला ।
मम दारा जागति हुती तिन कीन संभाला ॥ १८ ॥
बोली सुनि मन परखि कै इह अमरु निथावां ।
दास तुमारे बावरी तबि बाक अलावा ।
दरशन देखे सुधि भई अब रावरि पासी ।
बचन फुरहि सभि कहैं जिम सुनि हम मति त्रासी ॥ १९ ॥
पुन गुर बूझ्यो श्री अमर 'ऐसे बिधि होई ।'
करन लगे बिनती तबहि करि जोरति दोई ।
मोहि निथावां इन कह्यो सो साच बखानी ।
जब लौ आतम रूप को मन लेय न जानी ॥ २० ॥
थाउं पाइ करि थिरहि नहिं तब लगौं निथावां ।
भटकति म्रिग त्रिशना बिखै कित शांति न पावा ।
जब तुमरी सेवा रुचिर किय तरक जुलाही ।
सही गई नहिं मोहि ते बौरी तब प्राही ॥ २१ ॥
प्रेम लपेट्यो बाक सुन मन द्रव्यो क्रिपाला ।
भए महां अनकूल तबि लखि छाल बिसाला ।
बखशन को बखशश महां उमग्यो उर भारी ।
करन क्रितारथ दास को गुर गिरा उचारी ॥ २२ ॥

तोमर छंद

तुम हो निथावन थान। करि हो निमानहिं मान।
बिन ओट की तुम ओट। निधरेन[1] की धिर कोट॥ २३॥
बिन जोर को तुम जोर। सभ को न है तुम होर।
बिन धीर को बर धीर। सभि पीर के वड पीर॥ २४॥
तुम हो सु गई बहोड। नर बंध को तिह छोड।
घड भंनिबे समरत्थ। जग जीवका तुम हत्थ॥ २५॥
बर दीन द्वादश हेर। सु प्रसंन होइ बडेर।
गर संग लावन कीनि। पुलकाइ प्रेम प्रबीन॥ २६॥
मम रूप भे मिलि अंग। सलिता मिले जिमि गंग।
जिमि बूंद सिंधू मझार। तिम एक रूप हमार॥ २७॥

दोहरा

कनका पावक दौ बिखै मिलि सरूप इक होइ।
तिम हम तुम एकै भए भेद न जानिय कोइ॥ २८॥

चौपई

तुव तन महिं हुइ करि परवेशु। करने हैं जग काज विशेशु।
इमि प्रसंन इक रूप बनायो। सतिगुर सेव सकल सफलायो॥ २९॥
गुर ढिग घाल निफल नहिं होइ। बांछत पाइ करति भा जोइ।
कहि श्री गुरु सिर मुकट उतारा। बरख इकादश को जो धारा॥ ३०॥
जिस महिं जीव कीटीयन आदि। धर्यो उतारि सुनति गुर नाद।
सुंदर जल इसनान कराया। बसत्र नवीन सरब पहिराया॥ ३१॥
मैं अपने असथान बिठावौ। गुरता गादी दै हरखावौं।
सभि संगति कौ दयो सुनाइ। इहु मेरो अब रूप सुहाइ॥ ३२॥
इस महिं मो महिं भेद न कोई। एक की देहु जु दोई।
बिदति भए गुर संगति मांहि। गुर श्री अमर अपर हुइं नांहि॥ ३३॥
पुन बोले मुख चंदु सुधा से। आनंद कंद बिलंद निवासे।
सुनि पुरखा ग्रहि संतति क्या है। दुहिता पुत्र भए सु कहां हैं॥ ३४॥
हाथ जोरि करि बिनै बखानी। सभि रावरि को ग्यात महानी।
तदपि जु पूछो सम अनजाने। कहौं सुनो गुन खानि महाने॥ ३५॥
दोइ पुत्र हैं मोहिन मुहरी। द्वै तनिया सभि किरपा तोरी।
सुनि बोले 'सुनि पुरखा अबै। हित लाइक तुहि भाखों सबै॥ ३६॥

---

1. निराश्रय।

अबि खडूर को बसिबो छोरि। अपर सथान बास को टोरि।
श्री नानक मुहि दीन गुराई। क्रिपा धारि पुन गिरा अलाई ॥ ३७ ॥
हम नहिं बसैं थान दिहु त्याग। अपर सथल करि थित बडभाग।
तबि के हम खडूर महिं आए। बसते संमत कितिक बिताए ॥ ३८ ॥
सिरीचंद अरु लखमीदास। पित सथान तिन कर्यो निवास।
तैसे तुम थल अपर बनाई। बसहु तहां सभि बिधि सुख पाइ ॥ ३९ ॥
दासू दातू सदन रहैंगे। पिखहिं न तुम इरखा न लहैंगे।
नाहिं तं देखि प्रताप तिहारो। जरहिं रिदे नहिं, परहि बिगारो ॥ ४० ॥

दोहरा

इस प्रकार कहि म्रिदुल बच धीरज दई बिसाल।
दिन सो निसा बिताइकै बैठे परम क्रिपाल ॥ ४१ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे श्री अमर, श्री अंगद प्रसंग वरननं नाम सत्पदशमो अंश ॥ १७ ॥

अंशु १८

श्री अमर प्रसंग

दोहरा

अगले दिन श्री सतिगुरू बैठे संगति बीच।
करति क्रितारथ सेवकनि दरसति ऊच रु नीच ।। १ ।।

चौपई

इक गोंदा खत्री तहिं आयो। दरशन देखति सीस निवायो।
हाथ जोरि करि बिनै बखानी। श्री गुर तुमरी सिफत महानी ।। २ ।।
सुनति रह्यो बहु लोक भनंते। करहिं सराहनि जे मतिवंते।
गुपत प्रगट जग जीव बिसालें। सभि सतिगुर की आइसु चालें ।। ३ ।।
मेरो ग्राम उजार पर्यो है। सरब भूतने बास कर्यो है।
देव जिन बहु प्रेतनि जाती। तहां कीन बासो उतपाती ।। ४ ।।
केते लाख प्रेत को डेरे। फिरहिं जहां कहिं देश घनेरे।
करहिं सथिती ग्राम मम आइ। नर कोऊ तहिं बसन न पाइ ।। ५ ।।

दोहरा

करिते कंध उसारिकै दिन महिं मानव ब्रिंद।
निसा परै ढाहति सकल भीम कुरूप बिलंद ।। ६ ।।

चौपई

कई बार मैं आनि बसाए। त्रास देति मारति उजराए।
तहां आपने चरन फिरावो। क्रिपा करहु सो ग्राम बसावो ।। ७ ।।
आप लेहु छिति बांछति जेती। को न मुजाहम[1] होवहि तेती।
इह मम जाचा पूरु क्रिपाला। करहु बसावनि ग्राम बिसाला ।। ८ ।।
श्री अंगद सुनि बिनती ऐसे। बूझ्यो 'भयो ब्रितांत सुकैसे।
कबि को डेरा प्रेतनि पायो। किस प्रकार पुरि को उजरायो ।। ९ ।।
बैठे सकल प्रसंग सुनावहु। मन बांछति पुन गुर ते पावहु।
सुनि सतिगुर ते गोंदा बैसु[2]। कहिन लग्यो बिरतांत जु हैसु ।। १० ।।
श्री सतिगुर इमि भयो प्रसंग। झगरा हुतो शरीकनि संग।
आपस महिं बहु बाद उठावा। बहु मिलि भी नहिं झगर चुकावा ।। ११ ।।

1. रोकने वाला। 2. बैठ कर।

दोनहु दिश झगरति चलि गए। दिल्ली जाइ प्रवेशति भए।
तहां न्याउं को इमि ठहिरायो। धरम करहु निज पद लिहु पायो ॥ १२ ॥
तबि मैं सुनि करि होयहु त्यारि। कूरा धरम कीनि तिस बारि।
जीति लीन मैं झगरा सारो। अवनी लीन हरख करि भारो ॥ १३ ॥
जब मैं आइ बसावन कीना। भयो अधरम-प्रेत सभि चीना।
चलि आए लखि पाप महाना। देश देश ते भे इक थाना ॥ १४ ॥
सने सने नर दिये उजारो। आप आइ करि बसे हजारों।
इसी रीति डेरा पर गयो। लाखहुं प्रेत बास को कयो ॥ १५ ॥
तिनि डर ते अबि लोक न जाइं। महां पाप करि सो फल पाइं।
नहीं जतन को बिना तुमारे। पावन थान बनै पग धारे ॥ १६ ॥
श्री अंगद तबि रिदे विचारी। हमरे पुत्र गरब उर भारी।
कह्यो बाक सो मानहिं नांही। चाहति गुरता हुइ हम पाही ॥ १७ ॥
इहु सेवक की वसतू अहै। रहि अनुसार सेव करि लहै।
सिरी अमर सों इरखा ठानें। अपने महिं कछु दोष न जानें ॥ १८ ॥
अपर सिक्ख भी चाहति केई। दासू के पक्खी हहिं जेई।
यांते अबि सभिहनि के मांहीं। परख दिखावहिं उचित सु नांही ॥ १९ ॥
इम विचारि श्री अंगद ठाना। बडो पुत्र सों बाक बखाना।
दासू! इस के संग सु जावहु। प्रेत बिडारी सु ग्राम बसावहु ॥ २० ॥
सुनि कै कहति भयो 'नहिं जाऊं'। भूत प्रेत महिं कुतो[1] बसाऊं।
हमरो ग्राम खडूर रहनि को। इस को त्यागति जांउं तिह न को ॥ २१ ॥
ऐसे थान पठावन लागे। जहिं को बसहि न, सभिहूं त्यागे।
मो ते तहां न जायो जाइ। थान सथत सो बसहि न काइ ॥ २२ ॥
महां बली तहिं देव सुने हैं। किस हूं पास न जाहिं गिने हैं।
घर की कंध उसारति जौन। भई रैन ढाहति हैं तौन ॥ २३ ॥
करहिं बाद, नहिं बसने देति। कैसे होवै करे निकेत।
तहिं बसि कै हम लेनो क्या है। सकल पदारथ दिए इहां है[1] ॥ २४ ॥
लघु सुत दातू की दिशि हेर। फेरु आन फरमायो फेर।
बड़ो भ्रात नहिं जाइ तिहारो। मान बाक अब तुहीं पधारो ॥ २५ ॥
खत्री बिनती करति उचारी। उठि अबि जाहु बनहु उपकारी।
सभि भूतन को त्रास दिखाइ। निर उपाधि करि ग्राम बसाइ ॥ २६ ॥

1. कहां, किस प्रकार !

सुनहु पिता जी बसहिं खडूर। तहां जानि की कौन जरूर।
बैसे सदन गुबिंद गुन गावैं। निज कारज हित बहु चलि आवैं ॥ २७ ॥
किस किस संग आप चलि जावौ। क्या हम को उजरो कि बसावो।
सुनि सुत दोइन ते इमि बैन। अमरदास की दिश करि नैन ॥ २८ ॥
कह्यो जाहु पुरखा तुम तहां। बासा भूत प्रेत को जहां।
करहु बसावनि सुंदर पुरी। जनु गुर कीरति की हुइ पुरी ॥ २९ ॥
मुख ते अख्यर निकसे आपे। सुनि तिआर होयहु कट बांधे[1]।
हाथ जोरि बूझी 'बिधि कैसे। जस आइसु हुइ रचि पुरि तैसे ॥ ३० ॥
कह्यो गुरू 'पूरब दिश जोई। करहु खनावनि[2] नीके सोई।
इक सम करि कै थान तहां सु। बसिबे कारन रचहु अवासु ॥ ३१ ॥
सुंदर छरी सु चंचल करिते। अमरदास को दीनसि करते।
इहु ले जाहु समुख तिन होइ। करहु दिखावनि रहहि न कोइ ॥ ३२ ॥
जहिं जहिं चरन तुहारो फिरिही। होइ अशुभ तिसको शुभ करिही।
निज निवास हित रचहु अवासु। नर पिखि आवहिं करहिं सु वासु ॥ ३३ ॥
इह गोंदा खत्री धनवान। करहि चिनावन महिल महान।
नाम इसी के परि[3] पुरि नामू। रचहु रुचिर बसिबे हित धामू ॥ ३४ ॥
करति फरेब सु दासू दातू। सुनि प्रेतनि को इह डर पातू।
नहिं न जानते गुरू प्रतापू। करनहार को जानहिं आपू ॥ ३५ ॥
यांते इनि को त्रासु महानो। करन करावन गुरु तुम जानो।
इमि समझाइ संग तिसु कीनो। तबि श्री अमर चले रस भीनो ॥ ३६ ॥
प्रेम तरोवर उर के मांही। शरधा आल बाल है जांही।
गुर आइसु के निति अनुसारी। यही संचिबे को बर बारी ॥ ३७ ॥
निस दिन चितवन बलकल[4] अहै। द्रिड जड़ सदा भगति महिं रहै।
सति संतोख आदि गुन सारे। चहूं दिशन बिसतरति सु डारे ॥ ३८ ॥
आतम ग्यान महां फल लागे। रस अनंद प्रापति बड भागे।
अस तरु प्रेम बरधबो भाउ। उर श्री अमर अचल बर थाउं ॥ ३९ ॥
चलिबे समें नीर भरि आवा। नमो करति पद पदम भिगावा।
मिल्यो रह्यो बीत्यो चिरकाल। बिछुरन ते दुख लह्यो बिसाल ॥ ४० ॥
पुन धीरज दे अधिक गुसाईं। कर्यो पठावन को तिस थाईं।
गुर सनमुख मुख राखि प्रियाना। पाछल दिशा धरत पग जाना ॥ ४१ ॥
इस प्रकार सुत परखन करे। भरम सरब सिक्खन के हरे।
जानति भए करी बहु सेवा। लिये रिझाइ अधिक गुर देवा ॥ ४२ ॥

1. कमर कस कर। 2. खुदवाना। 3. इसी के नाम पर। 4. छाल।

गुर परमेशुर सेव बसी है। जिन की हंता रिदे नसी है।
क्यों न होहि तिन के अनकूली। सिमरहिं जे उर सभि किछु भूली ॥ ४३ ॥
हमरो पिता पुत्र हंकारैं। सेव भाव को रिदै न धारैं।
जिमि श्री नानक दीनसि दासु। सिरीचंद तजि लखमी दासु ॥ ४४ ॥
तैसे इनहुं कीनि सभि जानी। लह्यो परम पद सेवा ठानी।
इत्यादिक सिक्ख आपस मांहि। श्री गुर करहिं अनुचिती नांहि ॥ ४५ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अमर प्रसंग' वरननं नाम अशट दसमो अंशु ॥ १८ ॥

अंशु १६

गोइंदवाल प्रसंग

दोहरा

पिछलि पाइ श्री अमर जी गोंदे के संग जाइं।
सने सने मग चलति हैं जपु जी पाठ कराइं ॥ १ ॥

चौपई

ब्रिध सरीर निबल कद छोटा। परम बिसाल सभिनि के ओटा।
तीन कोस पर जबि ही गए। हाथ जोरि तहिं ठांढे भए ॥ २ ॥
जपुजी पाठ भोग को पायो। उर श्री अंगद रूप बसायो।
परे करी अशटांग प्रणामु। श्री गुरदेव क्रिपा गुन धामु ॥ ३ ॥
पुन करि मुख दिश गोइंदवाल। गमने पंथ निरभै तिसकाल।
छरी गुरू कर की कर धारी। सादर ऊचे करी उठारी ॥ ४ ॥
करि कै अपनो हाथ अगारी। भूत प्रेत को जाइ दिखारी।
परी तपत दीरघ तिन मांही। छिन भर थिर्यो जाइ तहिं नांही ॥ ५ ॥
जरे जात तिन केर सरीरा। भए अधीर संभारि न चीरा[1]।
पिता पुत्र को नहिन संभारै। भ्रांत भ्रात को छोरि पधारै ॥ ६ ॥
इसत्री त्याग चले पति प्रेत। किते परे धर होइ अचेत।
हला चली ऐसे तिनि परी। गए थान तजि थिरे न घरी ॥ ७ ॥
हाहाकार करति भजि चले। सकल दिशनि हुइ सकहिं न खले।
ज्यों ज्यों छरी हिलावन करिहीं। त्यों त्यों तपत तिनहूं पर परिही ॥ ८ ॥
केतिक हाथ जोरि कहि बिनै। तजहु हमैं नहिं नाहक हनै।
कितिक काल को उतर्यो डेरा। हमहि संभारनि दिहु इसु बेरा ॥ ९ ॥
छरी न चंचल करहु अगारी। चले जाहिं हम तूरन[2] धारी।
इस प्रकार माच्यो जबि रौरा। सगरे गए छोरि तबि ठौरा ॥ १० ॥
हुती देवणी इक तिन मांही। केतिक काल गरभ धरि तांही।
हुतो समीप प्रसूत समैं तिह। पर्यो शोर औचक ही द्रिग लहि ॥ ११ ॥

---

1. वस्त्र। 2. शीघ्रता से।

भए त्रास उर, भाज पधारी। नहिं ढिग देख्यो पति रखवारी।
बिहबल दौरति त्रासति होई। गिर्यो गरभ तबि सिस भे दोई ॥ १२ ॥
हुतो ज्वार को तहां किदारा[1]। ऊपर कटी हुई तिस बारा।
इक के द्रिग सों लग्यो फिरंडा। चुभ्यो बीच सो कीनसि खंडा ॥ १३ ॥
काणा देव बिदत जग अहै। दुरग बठिंडे बिच जो रहै।
श्री कलगीधर जाइ निकास्यो। जिस ते सभि महिं नाम प्रकाश्यो ॥ १४ ॥
गिर्यो दूसरो भुज के भार। सो टूटी पर खेत मझार[2]।
दोनहुं को तिन लियो उचाइ[3]। बसत्र लपेट्यो रखे बचाइ ॥ १५ ॥
केतिक संमत महिं भे ज्वान। बसे सु दोनहुं करि निज थान।
इक मसूर पुर बासा पायो। बीच बठिंडे दुतिय बसायो ॥ १६ ॥
इस प्रकार देवनि गति होई। भूत प्रेत तहिं रह्यो न कोई।
खरे भए श्री अमर सथान। कीन बिलोकन चारु महान ॥ १७ ॥
निकट बिपासा वहे प्रबाहू। जुकत तरंग बिमल जल मांहू।
चक्रवाक ते आदि बिहंगा। बहु शबदाइ, मानु जिम गंगा ॥ १८ ॥
सुंदर पुलनि सथान जिसी के। सिकता म्रिदु जुग तीर तिसी के।
लवपुरि आदि गमन तहिं राहू। इत दिल्ली पहुंचति से जाहू ॥ १९ ॥
घाट उरार पार उतरैबे। आवति जात लोक ठहिरैबे।
तीर बिपासा सुंदर थानू। ऊचो शोभति, देखि महानू ॥ २० ॥
जिम श्री अंगद आग्या दीनसि। सत्तिनाम कहि जल कर लीनसि।
छिरकन कर्यो सथान चुफेरे। फेर न आवहिं प्रेतनि डेरे ॥ २१ ॥
छरी धरी कर श्री गुर कर की। करी लकीर जिती धर पुरि की।
बहुर मंगायहु बहु मिशटाना। हरख्यो गोंदा धनी महाना ॥ २२ ॥
खरे होइ श्री अमर सुजाने। हाथ जोरि अरदास बखाने।
श्री नानक श्री अंगद नामू। सिमरि सिमरि आनन अभिरामू ॥ २३ ॥
अरपन कर्यो सकल मिशटानू। पुनहु सभिनि को बांटन ठानू।
पूरब दिशा धरा पटवाई। एक सार सुंदर बनवाई ॥ २४ ॥
श्री नानक के चरन मनाए। नगर नीव धरि चिनबे लाए।
तबि ते बहुर न भूत न प्रेत। नहिं देखे जो ढांहि निकेत ॥ २५ ॥
पूरब सदन बनावहि कोऊ। प्रेत बिदारति ढाहति सोऊ।
चिन्यो जितो सो बन्यो रह्यो है। गोंदे देखि अनंद लह्यो है ॥ २६ ॥

1. खेत। 2. खेत में गिर कर। 3. उठा लिया।

बहु धन खरच मजूर लगाए। करते कारीगर समुदाए।
तबि श्री अमर बिचार कर्यो है। तिस गोंदे पर नाम धर्यो है ॥ २७ ॥
गोइंदवाल उचारि सुनायो। भयो नाम पुरि को बिदतायो।
केतिक सदन त्यार करिवाए। स्री अंगद के दरशन आए ॥ २८ ॥
बंदन ठानी होइ अधीना। भनति बिनै बनि आगै दीना।
रावरि की आग्या जिमि होई। सुधर्यो काज भयो पुरि सोई ॥ २९ ॥
लगे मजूर करति हैं कारे। केतिक करे निकेत सु त्यारे।
श्री अंगद सुनि भए प्रसंन। पुरखा अबि ऐसे बच मंनि ॥ ३० ॥
निज परवार हकारहु सारा। बसहु तहां सुख लहहु उदारा।
अपर जि आवहिं बसिबे कारन। तिनहिं बसावहु सदन उसारन ॥ ३१ ॥
बास तुमार समीप हमारे। मिलहु चहहु रहि सदन मझारे।
अबि बासर के ग्राम सिधारहु। मिलहु सभिनि सों करि हिकारहु ॥ ३२ ॥
चिरंकाल बीता तुझ आए। नहिं कुटंब सों मिल्यो सिधाए।
ले आवहु, जावहु ततकाल। करहु बास अबि गोंइदवाल ॥ ३३ ॥
आइसु पाइ गुरू की गए। सभि लोकन संगि मिलते भए।
'गुर प्रसन्न भे' कथा सुनाई। दई मोहि सभि भांति बड़ाई ॥ ३४ ॥
अबि गुर हुकम भयो इस ढाल। बसहु जाइ करि गोंइदवाल।
देरि न करहु चलहु मम संग। पुरि सुंदर घर होंहि उतंग ॥ ३५ ॥
जेतिक माने बाक भने जबि। उठि श्री अमर संगि भे सो सभि।
पहुंचे गोइंदवाल सु जाइ। बसे ठानि रुच सभि सुख पाइ ॥ ३६ ॥
श्री अंगद के दरशन कारन। जाइ खडूर सु करहिं निहारन।
पाछल पांइ चलहिं जबि आवें। तीन कोस लग एव सिधावें ॥ ३७ ॥
तहां खरे हुइ बंदन ठानहिं। पुन घर दिश मुख करहिं पयानहिं।
केतिक सिख्यन ते सुनि और। जल गागर आनति इस ठौर ॥ ३८ ॥
नदी बिपासा ते भरि ल्यावहिं। श्री गुर को इशनान करावहिं।
लेनि जाहिं चलि पाछल ओर। आनन राखहिं तबि गुर ओर ॥ ३९ ॥
इस थल आवहिं सीस निवावहिं। पुन सलिता दिश मुख करि जावहिं।
निति प्रति करहिं इसी बिधि कार। इमि सेवहिं श्री गुर दरबार ॥ ४० ॥
परसराम तप तपे विसाला। बरख हजारहुं बन सभि काला।
प्रापति कला बिशनु की चारु। भयो न तऊ बडो अवतारु ॥ ४१ ॥
इनहुं इकादश संमत मांही। सेवा करी रिझाए तांही।
रन भए प्रभू अवतारे। जग महिं दास उधार

यांते सतिगुर अरु सतिसंग। इनकी सेवा अधिक उतंग।
बरख हज़ारहुँ तप जे घाले। तिन ते सेवा अहै बिसाले ॥ ४३ ॥
जबि कबि अबि अरु आगे केई। सेव बिखै मन लावहिं जेई।
तिन को बहुर न करिबो रह्यो। भोग मोख दोनहुं तिह लह्यो ॥ ४४ ॥
श्री गुर अमरदास के भ्राता। आयो रामा तहां जमाता।
जितिक भतीजे सो सभि आए। गोइंदवाल बसे घर पाए ॥ ४५ ॥
इत्यादिक सनबंधी सारे। आइ बसे गुर निकट सुखारे।
प्रापति सरबोतम बडि आई। मानहिं मानव बहु सुख पाई ॥ ४६ ॥
सभि लायक सनबंधी जान। आइ समीप बसे पुरि थान।
सतिगुर दे करि धीरज सबै। निकटि बसावन कीने तबै ॥ ४७ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज' ग्रंथे प्रथम रासे 'गोइंदवाल' प्रसंग वरननं नाम ऊनिबिंसती अंशु ॥ १९ ॥

अंशु २०

श्री अंगद गुण बरननं

दोहरा

इक दिन श्री अंगद गुरु देखनि गोइंदवाल।
भए त्यार चलिवे तहां रिदा बिसाल क्रिपाल ॥ १ ॥

चौपई

सने सने पग सों मग चले। प्रेम डोर महिं फसि करि भले।
निस दिन सतिगुर अमर अराधे। आइं इहां पिखि अगम अगाधे ॥ २ ॥
बैठे ध्यान लाइ करि ऐसे। रह्यो गयो नहिं गुर ते कैसे।
खिचे प्रेम ते मारग चले। बंदहिं चरन जु बाहर मिले ॥ ३ ॥
कितहुं कीनि सुधि 'श्री गुर आए। सुनि श्री अमरदास हरखाए।
लेनि हेत उठि चले अगारी। दरशन मिलहिं छुट्यो द्रिग बारी ॥ ४ ॥
केतिक दूर आगमन आए। दरशन देखे तन पुलकाए।
बोल्यो जाइ न गदगद बानी। हाथ जोरि करि तूशनि ठानी ॥ ५ ॥
दास दशा को देखि क्रिपाला। कर सों कर गहि करि तिस काला।
भर्यो अंक निज गरे लगायो। बहु प्रकार को सुजस अलायो ॥ ६ ॥
धंन जनम तेरो जग भयो। प्रेम बिसाल मोहि बसि कयो।
जहां अराधहिं करिकै प्रेम। तहिं मैं पहुचों इह मम नेम ॥ ७ ॥
आज बैठि करि तोहि अराध्यो। आयो तुरत प्रेम ते बाध्यो।
मो ते रह्यो जात तबि नांही। प्रेम समेत ध्याइ मन मांही ॥ ८ ॥
तुव हित करि आयो इत ओर। चलहु दिखावहु अपनी ठौर।
हाथ गहे आगे तबि चले। करे दिखावन कीन जु भले ॥ ९ ॥
भली प्रकार हेरि करि सारे। बहुर बिपासा तीर सिधारे।
अमरदास अपने संग लीने। जाइ कूल पर गुरू असीने ॥ १० ॥
अपर दास नहिं पास तिथाईं। इक श्री अमर कि आप गुसाईं।
सलिता कूल सथित को जानि। जलपति प्रापति भा तिस थान ॥ ११ ॥
रुचिर जात की सफरी एका[1]। आगे धर करि मसतक टेका।
श्री प्रभु कीन पुनीत सथाना। पद पंकज परसे जबि आना ॥ १२ ॥

---

1. अच्छी प्रकार की एक मछली।

सलिता कूल बसायो पुरि को। कर्यो अनुग्रहु अपने उर को।
सतिसंगत सिमरहिं सतिनामू। करहिं शनान सु जल अभिरामू ।। १३ ।।
सलिता सफल होइ पग परसे। मैं भी रावरि के पग दरसे।
सुनि सतिगुर बोले मुशकाई। करि श्री अमर बरुन सफलाई ।। १४ ।।
संगति महि प्रसादि बरतैं हैं। सभि ते आगे जल महिं दैं हैं।
नाम बरन को करहिं उचारि। इम सिक्खन महिं रीती डारि ।। १५ ।।
हाथ जोरि श्री अमर उचारी। तिम हुइ जथा रजाइ तुमारी।
बहुर बिदा हुइ बरुण पधारा। श्री अंगद तबि बाक उचारा ।। १६ ।।
इह सफरी करि त्यार मंगावो। तूरन करि के इहां लिआवो।
हुतो दूर इक सिक्ख बुलायो। तिस को दे करि नगर पठायो ।। १७ ।।
ल्यायों तुरत त्यार करि सोई। डालि मसाले तलि कै भोई।
ले श्री अमर अगारी धरी। सो ले करि गुर खावन करी ।। १८ ।।
'महां स्वाद इस आमिष भयो। आगे कबहुं न ऐसे खयो।
कहि श्री अमर 'जाति झख[1] कोई। ल्यायो बरन आप हित सोई ।। १९ ।।
अपर अहार कुछक तहिं खाइ। बहुर उठे तहिं ते सुखदाइ।
अमरदास को ले करि साथ। आए दिश खडूर जगनाथ ।। २० ।।
केतिक दिन समीप ही राखे। जानि रिदे की तिन अभिलाखे।
सभि समीप की सेवा करे। अशट पहिर सिमरन उर धरे ।। २१ ।।
दीनसि आइसु बहुर क्रिपाल। चलि आए तबि गोइंदवाल।
पाछल दिश को गमनें राहू। मुख राखैं सतिगुर दिश जाहू ।। २२ ।।
तीन कोश पर माथो टेकि। पुन पुरि दिश मुख कोस सु एक।
सो अबि लौ उह थान सुहावति। बिदति अहै जग मैं सिख गावति ।। २३ ।।
गोइंदवाल कोस तिस थल ते। जहिं ते सूधे हुइ करि चलते।
निस महिं सदन रहहिं गुर आइसु। दिन महिं दरसहिं तहां सिधाइसु ।। २४ ।।
इसी प्रकार कितिक दिन विते। परम प्रसन्न गुरू करि लिते।
प्रेम सहत मन नंम्रि विसाला। सेवहिं चरन कमल सभि काला ।। २५ ।।
श्री अंगद सभि गुन के धाम। सदा सुशील परम निहकाम।
भगति रूप धरि जगत दिखायो। हरख न शोक न कबि उर आयो ।। २६ ।।
मान अमान समान महाने। राग न द्वेष किसी सों ठाने।
अहं ब्रहम निशचल ब्रिति अंतर। निज सरूप सों लगे निरंतर ।। २७ ।।

1. मछली।

जिस को छुवै बिकार न कोई। पहुंचहि मन वाणी नहिं दोई।
जाननीय बुधि करिकै जोऊ। पदम पत्र सम लिपहि न सोऊ ॥ २८ ॥
शसत्रन सों न बिनास्यो जाइ। अगनि न जरहि न पउन उडाइ।
जल नहिं डूबहि, नभ न बिलाइ। जिस को काल सकहि नहिं खाइ ॥ २९ ॥
जिम रज्जु अहि की आधार। तिम प्रपंच इहु तिसहि मझार।
सूरज आदि जोति की जोति। जिस अलंब करि सकल उदोति ॥ ३० ॥
सूखम ते सूखम निति रहै। इंद्रै जुति मन जिस नहिं लहै।
सदा महिद ते जो महीआन। पार न पावहिं शकतीवान ॥ ३१ ॥
प्रगट बिसाल जानीअति ऐसे। जिस बिन फुरहि निमेख न कैसे।
दुर्यो महान, न जान्यो जाइ। रूप रंग कुछ ह्वै न लखाइ ॥ ३२ ॥
अचरज रूप जु ऐसो अहै। तिस को नाम 'वाहि' करि कहैं'।
तम जड अग्यान अनित्त। करि प्रकाश चेतन रू नित्त ॥ ३३ ॥
ऐसो नाम वाहिगुरू जोई। श्री अंगद बपु धरि करि सोई।
जगत बिखै बनि भगति दिखावें। नहिं सरूप अपनो बिदतावें ॥ ३४ ॥
करनो सिमरन श्री सतिनाम। उपदेशति जग को बसि धाम।
सति संगति सेवन सिखरावें। भाउ भगति की रीति चलावें ॥ ३५ ॥
श्री परमेशुर के हम दास। निरहंकार अलोभ निरासु।
परमेशुर भाणा शुभ भावन। कायां ते हंता सु उठावन ॥ ३६ ॥
नित संतनि की सेवा करनी। सति संगति महिं चित ब्रिति धरनी।
आपा नहीं जनावन करनो। दासन दास दास निज बरनो ॥ ३७॥
परम प्रेम परमेशुर मांही। बिनती करन, सु मैं कुछ नांही।
करन करावन को इक दाता। पूरन सरब ठौर सो जाता ॥ ३८ ॥
शबद गुरू के गावन करने। किधौं शबद धुनि श्रोननि धरने।
निस दिन सिमरहु श्री सतिनाम। दुहि लोकनि के पूरति कामु ॥ ३९ ॥
इस बिधि अपनो आप छपाइ। नहिं कैसे जग महिं बिदताइ।
जो नर अति प्रेम प्रेमी सिख आहि। कहिन सुनन श्री मुख करि तांहि ॥ ४० ॥
लच्छमी निति सेवति दरबार। सिद्धां पद अरबिंद जहार[1]।
नौ सिद्धां कर जोरि खरी हैं। गुर आइसु अनुसार धरी हैं ॥ ४१ ॥
अपर जि शकतां अनिक प्रकारैं। चहुं दिश गुर कै निति परवारें।
अंगीकार न तिस को होवै। कबहुं नहीं तिन की दिश जोवें ॥ ४२ ॥

1. नमस्कार करना।

अपनो नहिं प्रताप करि साकहिं। तूशन भई गुरू मुख ताकहिं।
करामात को सागर भारी। बूंद समान जान नहिं प्यारी ॥ ४३ ॥
कबहुं न हित करि किसहुं दिखाई। मनहु समीप न, एव छपाई।
अजर जरन श्री अंगद जैसे। भूत भविख्य न अब भा तैसे ॥ ४४ ॥

दोहरा

रचनि संहारनि लोक त्रै अस शकती को पाइ।
निबल नरन ते दुख सहैं धंन गुरू सुखदाइ ॥ ४५ ॥

॥ इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अंगद गुण' वरननं नाम बिंसती अंशु ॥ २० ॥

अंशु २१

श्री अंगद अरु तपे को प्रसंग

दोहरा

इस प्रकार केतिक दिवस बीत गए तिसु थान।
प्रगटहिं जग महिं नहिं अधिक श्री अंगद गुन खान ।। १ ।।

चौपई

इक खडूर महिं तपा रहित है। अपनी सतुति जु सदा कहति है।
जंत्र मंत्र करिबे जिस आवै। लोकन बिखै पखंड कमावै ।। २ ।।
बहुते नर जिस मानहिं आनि। चरन धरहिं सिर नमो बखानि।
जिस को कह्यो करहि सभि कोइ। बहुत भांति तिस पूजा होइ ।। ३ ।।
खहिरे जाट खडूर मझार। बसति हुते सहि बड परवार।
सरब तपे की आइसु मानहिं। अनिक उपाइन देवन ठानहि ।। ४ ।।
दुगध, दधी घ्रित अर मिशटाना। पर बन बिखै ल्याइं धनधाना।
तिह ढिग अरपहिं, बिनै बखानहिं। इत्यादिक प्रिय बसतू आनहिं ।। ५ ।।
तिसते डरहिं ग्राम नर सारे। नहिं रिस धारि कुबाक उचारे।
कहै सु मानहिं नर ग्रामीन। जो संतन को सकहिं न चीन ।। ६ ।।
प्रिय[1] तिस कौ निस बासुर करिहीं। दे धन धान सुबि नै उचरिहीं।
तहां बास गुर अंगद केरा। नहीं महातम लखहिं घनेरा ।। ७ ।।
कबहि न जाइ निवावहिं सीस। नहिं मानहिं-इह सभि जग ईश।
अपर लोक जिम बासहिं ग्राम। त्यों जानहिं इह भी रहिं धाम ।। ८ ।।
सति संगी जिन महिं नहिं कोई। किमि प्रभाव को जानहिं सोई।
केतिक समां बितीतन भयो। बरखा बिना समैं तबि हुयो ।। ९ ।।
मास भाद्र पद औड लगी अस[2]। सभि ही शुशक हो गई बड ससि।
पूरब जहां पिखति हरिआई। बिन पाके फिरगी जरदाई[3] ।। १० ।।
हवै नहिं अन्न-त्रसे ग्रामीन। हमरे तौ जीवन इहु चीन।
बिनां अन्न ते बहु दुख पाइं। सकल कुटंब कहो क्या खाइ ।। ११ ।।

1. प्रेम। 2. ऐसा मौका पड़ा। 3. पीलापन।

तन धन ते अर पशुअन संग। जो हम पालन करी अभंग।
जे बरखा अबि होवहि नांही। निज परवार कुतो निरवांही ॥ १२ ॥
बिन पाके हुइ जाइ बिनाश। कहां अन्न की पूजहि आस।
हमरे निकट दरब कुछ नाँही। जिस को खरच मोल ले खांही ॥ १३ ॥
इत्यादिक चिंता गलताने। आपस बिखै मिले इक थाने।
कहति भए जो बडे कहावैं। पूछहु पांधा जे घन आवै ॥ १४ ॥
करि हैं सकल कहै जो सोइ। जिम खेती हरिआवल होइ।
सुनति एक ते दूसर कहै। हमरो गुरू तपा जो अहै ॥ १५ ॥
करामात युति मैं हों भाखति। सभि ते वडा तेज जो राखति।
सकल ग्राम को है हितकारी। जो समुदाइ बिघन दै टारी ॥ १६ ॥
हमरी त्रिय ले जावहिं बालिक। मंत्रन ते दुख दारिद टालिक।
संकट, अपर अनेक निवारहि। शकतिवंत है सुख दातारहि ॥ १७ ॥
तिस ढिग मिलि करि चलि हो सारे। कछु मिशटान लि धरहु अगारे।
करहिं बेनती परिकै पाइ। तिस ते जाचहु बरखा आइ ॥ १८ ॥
अस मसलत[2] करि ब्रिध सभि लीने। गए तपे ढिग चिंता कीने।
गादी को लगाइ सो बैसा। समद दंभ धरि मूरति जैसा ॥ १९ ॥
धर्यो अगारी करि मिशटान। नमो सभिनि करि बंदे पान[3]।
ब्रिधन तिस को जस बहु भाखा। 'तुम पूरहु बहुतनि अभिलाखा ॥ २० ॥
अजमतिवान महान पछाने। बहु आवति तुम ढिग दुख हाने।
यांते रावरि की बहु कीरति। है समुदाइ ग्राम बिसतीरति ॥ २१ ॥
सभि चलि आए शरण तुमारी। अबहि कामना पुरव[4] हमारी।
सुनि करि तपा हरखि कै गरबा। मम अनुसारि सदा रहिं सरबा[5] ॥ २२ ॥
पिखहुं तुमारी भगति बिसाला। करहु कामना दिहुं दरहाला[6]।
तुम मेरे हो सेवक सारे। पूजहु चरन देहिं दुख टारे ॥ २३ ॥
सुनि कै राहक[7] बिनै बखानी। सुनो तपा जी ! दुरलभ पानी।
प्रथम भई बरखा बहु धरा। बीजे खेत उगे रंग हरा ॥ २४ ॥
ब्रिधी अरोग बड़ी जबि होई। हटे मेघ नभ आइ न कोई।
बीत्यो कितिक काल बिन पानी। हरी हुती सकली कुमलानी ॥ २५ ॥
वहिर अन्न जे होयहु नांही। शंका हमरे जीवनि मांही।
यांते करुना करहु महानी। जिस ते घन हुइ मोचहिं पानी ॥ २६ ॥

1. लगातार। 2. परामर्श। 3. हाथ। 4. पूर्ण करो। 5. सभी। 6. शीघ्र।
7. जिमींदार।

सुनति तपे ने बात बिचारी। हुतो गुरू सों मतसरि भारी।
आइं वहिर ते सिक्ख घनेरे। रहति निकट पुन गमनैं डेरे॥ २७॥
तिन को देखि दुखति मन मांही। गुरता गुरन सहि सकहि नांही।
महां तपहिं चित चिंता धरिता। निस दिन महां असुया करिता॥ २८॥
खहिरे सेवक हैं मित मेरे। नहिं भरमाइ जाइं तिस डेरे।
यांते डरति रहति डर मांहि। निसि बासुर बहु निंद कराहि॥ २९॥
गुरु कीरति रांका सु प्रकाशी। सो तसकर दुरमती दुरासी।
चहति छादिबे मूरख मानी। लखि उपाइ को बोल्यो बानी॥ ३०॥
भो खहिर्यो तुम जानहु कारन। जिस ते बरखा होति न बारन।
खत्री ग्राम तुमारे अहै। सो अपराध करति ही रहै॥ ३१॥
पूरब नाम अहै जिस लहिणा। अबि अंगद ही तिस को कहिणा।
नाम आन अपनो धरवायो। कित कित ते नर ह्वै समुदायो॥ ३२॥
टेकहिं मसतक होति अनीती। नहीं साध पुन ग्रिहसती रीती।
करहि पुजावनि लोकन पास। बैठहिं गुरता धरहि प्रकाश॥ ३३॥
जे अस पदवी चाहति सोइ। पट कखाय[1] साधू सम होइ।
निज कुटंब ते होइ निराला। ले अलंब किहि पंथ बिसाला॥ ३४॥
करहि पुजावन पुन सभि मांहि। तउ बिपरीति नहीं हुइ तांहि।
पुत्र भारजा महिं इह रहे। कथं[2] पुजावन नर ते लहै॥ ३५॥
तुम भी रिदे बिचारो बाति। होति फि नहीं एहु उतपाति।
तुम तो नहीं मानते तांहि। इह नीके मैं जानति आहि॥ ३६॥
तऊ पिखहु तुम तिस के बासि। भयो कशट सभि को सु प्रकाश।
अबि उपचार करहु तिस केरा। तबहूं बरखैं मेघ बडेरा॥ ३७॥
सभि मिल जावहु अबि उस पासि। अपन ग्राम ते देहु निकास।
जबि सो ग्राम निकसि कै जाइ। बहुर तुमारो ह्वै मन भाइ॥ ३८॥
अपर ग्राम किस जाइ बसै है। फेर तुमहिं नहिं संकट पै हैं।
इमि सुनि कै सभि ने मन मानी। कहहु तपा जी! तुम सचु बानी॥ ३९॥
ग्रिहसती होइ पुजावन करि ही। आवहिं अनिक बहिर के नर ही।
हम तो तिस को मानें नांही। जाइ समीप तांहि निकसाहीं॥ ४०॥
इमि कहि गमने खहिरे सारे। हरख्यो तपा सु रिदै मझारे।
अपन कामना पूरन जोई। इमि नहि लखहिं निकट म्रितु होई॥ ४१॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे' श्री अंगद अरु तपे को' प्रसंग बरननं नाम एकबिसती अंशु॥ २१॥

1. भगवे कपड़े। 2. क्यों।

अंशु २२
श्री अंगद को ग्राम ते निकासन

दोहरा

मूरख खहिरे क्रिखी करि मन महिं निशचै ठानि ।
निंदक अघी दुरातमा दुशट बाक को मानि ।। १ ।।

चौपई

अनहित को बच हित करि माना । गुरू महातम ते अनजाना ।
महां मंद मति नौ दस मिले । श्री सतिगुर के घर को चले ।। २ ।।
इमि तरकन हित गुरु ढिग गए । गिरा कठोरी भाखति भए ।
इहां बसन नहिं नीक तुमारो । जहिं इच्छहु थल आन पधारो ।। ३ ।।
बरखा हटी बिघन क्रिखि भारी । अखिल ग्राम को संकट धारी ।
सभिहिनि को अति चिंता हेत । अहै तुमारो एक निकेत ।। ४ ।।
एक ग्राम हित देश दुखावै । तउ तिह त्यागन ही बनि आवै ।
इक कुल हेत ग्राम दुख पाइ । तौ तिस कुल को त्याग कराइ ।। ५ ।।
इक के त्यागे कुल बच रहै । करहिं तजनि यौं बुधि जन कहैं ।
यांते तुम घर त्यागन करे । सगरो ग्राम चित को हरे ।। ६ ।।
इमि मन जानहु निकसि सिधारो । नहीं घटी अबि रहनि तुमारो ।
करहु उताइल वसतु सम्हारो । रहै शेष धरि जाहु अगारो ।। ७ ।।
पुन अपनी ले गमनहु सारी । चले जाहु नहिं करहु अवारी[1] ।
ग्रामाधीस ग्राम नर सारन[2] । मतो एक है वहिर निकारनि ।। ८ ।।
कोइ न पख्य तुमारो करिही । जिस ते रहहु धीर उर धरि ही ।
बड बुधिवंत तपा जी कह्यो । तिस को बसे तुसन दुख सह्यो ।। ९ ।।
करी ग्राम पर क्रिपा बडेरि । जतन बतायो बरखा केरि ।
नई रीति तुम न इहु धरी । नहिं ग्रहसती न फकीरी करी ।। १० ।।
इसी दोष ते घन नहिं आवै । क्रिखी शुशक, नीर न बरखावै ।
पंचाइत पति है इस ग्राम । सो सभि कहिं निकसहु तजि धाम ।। ११ ।।
सुनि कै श्री गुर अंगद कह्यो । बास हमार काल चिर रह्यो ।
निति बरखा बरखति क्रिखी होई । हमरो दोष कहै किमि कोई ।। १२ ।।

1. देर । 2. सब का ।

पुरशन के करमन अनुसार। सुख-दुख उपजति बारंबार।
कबहू सुखी कबहिं दुख पावैं। जिमि इस दिन आवति पुन जावैं ॥ १३ ॥
राउ रक के एक समान। उपजति है अवश्य नहिं हान[1]।
सुख होए हरिखाइ हंकारति। अधिक अहंता अपनी धारति ॥ १४ ॥
दुख को पाइ दीन हुइ जाहिं। दियो प्रभू ने कहि बिललाहिं[2]।
ईशुर बिखै अरोपहिं दोष। निज करमन रीति की नहिं ये होश ॥ १५ ॥
प्रानी करम करंति निज जथा। फल दे प्रभू देखि करि तथा।
सुख दुख जगत नाथ के हाथा। सुमति लखहिं दोशन निज साथा ॥ १६ ॥
दोइन महिं प्रभु को सिमरंते। जानहिं करमनि फल उपजंते।
तिस को पुरखन कहि धीरा। परमेशुर को लखहिं गहीरा ॥ १७ ॥
सुनि कै गुर के बच सुखसार। पुनहि भनी पुरखा क्रिखीकार।
को कबि सुनै न ग्यान तुमारो। मत सभि को तुम निकसि सिधारो ॥ १८ ॥
नांहि त गहि कै बांह तुमारी। तूरन बल करि देहिं निकारी।
तपे बखान्यो हटहिं सु नांही। बातैं आन बनावहु काही[3] ॥ १९ ॥
श्री अंगद सुनि बहु बिकसाने। बुड्ढे सों अस बाक बखाने।
उठवावहु परयंक हमारो। हम ते इनको होति बिगारो ॥ २० ॥
जंगल मैं इक डीह पुरानी। खान रजादा नाम बखानी।
चलहु तहां हम रहहिं इकंत। शुभति इकंतहि संत महंत ॥ २१ ॥
सुनि कै सभि सिक्खन मन जाना। तपे असूयक[4] दुषट बखाना।
राहक मूरख लखहिं न कैसे। अघी इरखा ठानहि जैसे ॥ २२ ॥
अपर उपाव बनति कुछ नांही। निकसहिं चलहिं आन थल मांही।
करहिं देर बिगरहिं मतिमंदे। महां मूढ मिल जैहहिं ब्रिंदे ॥ २३ ॥
लखि अजतन निकसन ही चहा। चले वहिर को सो थल जहां।
क्रिखी कारन सो निकसति कह्यो। 'हमरे बास जि तुम दुख लह्यो ॥ २४ ॥
तो हम जाइ अपर थल रहैं। ग्राम दुखी क्यों करिबे चहैं।
जितिक सिक्ख से संग सिधारे। चले पिछारी, गुरू अगारे ॥ २५ ॥
चौदहि लोकन थापि उथापे। तऊ छिमानिधि परम अमापे।
गमनति पहुंचे केतिक दूरे। कर्यो जाइ डेरा गुर पूरे ॥ २६ ॥
सिख्य समीप बैठिगे तहां। इक रस रिदा शांति नित महां।
जहां जाइ बैठे तहिं जंगल। सतिगुर पग ते भा थल मंगल ॥ २७ ॥

1. मिटता नहीं। 2. व्याकुल होना, रोना। 3. अन्य बातें बनाते हो। 4. ईर्ष्यालु।

सभि मंगल के गुरु इसथान। क्यों न होहि तहिं जहिं भगवान।
करहिं कीरतन सुनैं अनेक। सोभहिं बीच समुंद्र बिबेक ॥ २८ ॥
तबि श्री बुड्ढे बाक बखाना। 'आप परम हो छिमा निधाना।
द्रोहि अकारन तपा संतापी। निंदा करति असूयक पापी ॥ २९ ॥
इह राहक मूरख मति हीने। रिदे बिचार जिनहु नहिं कीने।
आनि आप को किय अपमाना। सभि सिरमौर उचित सनमाना ॥ ३० ॥
तुमरी करी अवज्ञा जोइ। तपा पाइ फल अति दुखि होइ।
बिन कारन ही द्वेष कमावहि। हमहि निकासि, कहां सुख पावहि ॥ ३१ ॥
अजर जरन धीरज तुम मांही। करि सकि है समता, अस नांही।
छिमावंत छिति जिमि सभि काला। कै रावरि सों छिमा बिसाला ॥ ३२ ॥
आप समरथ चहहु सो करहु। सभिनि डरावहु तुम नहिं डरहु।
एक बाक सों बिना उपाइ। मारहु सभिहिनि देहु जिवाइ ॥ ३३ ॥
तिनके कहे निकसि अबि आइ। नहीं आपने कछू जनाइ।
ज्यों तुम भावहु सोई भले। हमरो कहनि नहीं कुछ चले' ॥ ३४ ॥
इमि कहि मौन धारि करि बैसे। पिखहिं गुरू गति करि हैं जैसे।
निज प्रताप को नहीं जनावहिं। अपर नरनि सम अपन दिखावहिं ॥ ३५ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अंगद को ग्राम ते निकासन' प्रसंग वरननं नाम दोइ बिसती अंशु ॥ २२ ॥

अंशु २३
जोगी तपे को

दोहरा

तेजो के नंदन जुऊ सेब करति दिन रैनि।
गमने हुते निकेत को प्रेम भरे जुग नैन ॥ १ ॥

चौपई

निकसे गुरू पिछारी आयो। डेरे ग्राम बिखै दरसायो।
तहिं संगी निज कोइ न देखा। सहत गुरू नहिं सिक्ख अशेषा ॥ २ ॥
बूझन कीनि 'गुरू कित गए। सिख जे सगल संग ही लए।
कौन काज तिन को अस भयो। ततछिन गमन वहिर को कयो' ॥ ३ ॥
सुनि किसि नर ने कथा बखानी। पापी तपे दुशटता ठानी।
कह्यो कि बरखा होवै तदा। श्री गुर अंगद निकसहिं जदा ॥ ४ ॥
सुनि राहक मूरख मति आए। निकसहु ग्राम कठोर अलाए।
छिमा धारि गुरु वहिर पधारे। नहिं घन बरखे किनहुं निहारे ॥ ५ ॥
करी अवग्या सतिगुर केरी। तपहि तपा मतसर ते हेरी।
भयो अबहि अपराधी ऐहू। उचित दंड के सो लखिलेहू ॥ ६ ॥
मन बच कर्म ते कबि अपकारा। नहिं कीनसि, तद्यप दुरचारा।
करति द्वेष को कारण बिना। इस ते अपराधी को घना ॥ ७ ॥
जिसने हित अनहित न बिचारे। सिखवन दे गुर बहिर निकारे।
श्री गुर अमर सुनति दुख पायो। देखो क्या इनि द्वेष कमायो ॥ ८ ॥
सरल समान चित्त गुर पूरे। राहक तपा मंदमति कूरे।
लेनि देनि तिन को नहिं कोई। क्यों कुकरम मिलि ठान्यो सोई ॥ ९ ॥
मो ते जर्यो जाइ नहिं कैसे। जावद फल मैं देउं न तैसे।
इमि कहि गए पंचाइति पास। बैठे धार्यो बरखा आस ॥ १० ॥
'भो राहिक गन काज तुमारे। भयो किधौं नहिं गुरू निकारे।
जो इच्छा मन मैं तुम ठानी। भयो कि नहिं खेतों महिं पानी ॥ ११ ॥
सुनि क्रिखी कारन ऐसे बैन। कहत भए 'को बरखा है न।
कह्यो तपे को हम ने कीना। ह्वै करि आतुर नीर बिहीना ॥ १२ ॥
जो बरखा बरखावनि करै। तिस को कह्यो न हम ते फिरै।
जिस अधीन जीवन सभि केरा। ह्वै अस अन्न सु खेत घनेरा ॥ १३ ॥

बाक तपे को मान्यो सही। तऊ भई बरखा किमि नहीं।
हम आतुर भे नीर बिहीना। निज जीवन चहि अकरन कीना ॥ १४ ॥
बरखा दे जु ऋिखी हित करिही। हम राहक तिह निति अनुसरही।
तिस की आइसु को अस मानहिं। नहीं करन भी करिबो ठानहिं ॥ १५ ॥
इमि श्री अमरदास सुनि बैन। कह्यो सु छोभ कोप रसु नैन।
कहे तपे के घन नहिं आवा। श्री गुर ग्रामहि ते निकसावा ॥ १६ ॥
श्री सतिगुर के सेवक जेई। बरखा देनि शकति धरि तेई।
कह्यो तिनहिं को मानहु नीका। बरखहि मेघ भावतो जीका ॥ १७ ॥
तपे ईरखा करि निकसाए। शकति हीन नहि घन बरखाए।
अबि तुम जाहु तपे के पासि। सुनि नर गए करी अरदास ॥ १८ ॥
गुर ती हम ने दीन निकारी। तऊ न बरख्यो बादर बारी[1]।
तपे कुछक रिस करि मुख भाखी। मूठी महिं बरखा नहिं राखी ॥ १९ ॥
मंत्र जंत्र करि जुगित बनावौं। तुम हित बरखा को बरखावौं।
सुनि नर आइ कही तिमि बाति। अबि तौ बोलति कछुक रिसाति ॥ २० ॥
तबि श्री अमर कह्यो बिन देरि। 'हम बरखा बरखाइं बडेरि।
नहि ऐसे गुर के सिख जानो। बरखा करहि कह्यो तिन मानो ॥ २१ ॥
सुनि राहक लालच करि पानी। बिरथी बात तपे की ठानी।
हम तो हैं तिस के अनुसारी। जो जल देहि किदार मझारी ॥ २२ ॥
हित जल के तिस को बचु माना। अपर जु दे बरखाइ महाना।
कहै सु हम मानहि सभि ग्राम। जो जीवनि को दे अभिराम ॥ २३ ॥
नांहि त हम मरिहैं दुख पाइ। छुधा सही नहि किसि ते जाइ।
जे जलदाता बचु नहि मानहि। तौ हम अपना जीवन हानहि ॥ २४ ॥
अस को आज होइ उपकारी। दे जीवनि जीवन सुख कारी।
तिस के हम हैं सदा गुलामू। करहि सेव की सभिही ग्रामू ॥ २५ ॥
इमि निशचै सभि को करिवाइ। कहि श्री अमर 'सुनहु समुदाइ।
दिवस रह्यो थोरो रवि जाइ। यांते तूरण करहु उपाइ ॥ २६ ॥
रवि असतन ते पूरब काल। जहि जहि तपा जाइ दरहाल।
तहि तहि घन जल को बरखावै। भरहिं खेत, बहु अन्न पकावै ॥ २७ ॥
बहु किदार हैं दिन रहि थोरा। ले गमनहु निज निज दिश ओरा।
अंग प्रत्यंग जहां लग जाइ। तहि लग धाइ मेघ बरखाइ ॥ २८ ॥

1. जल।

निकसहि जबहि तपा निज डेरे। तौ घन होइ पता लिहु हेरे।
पहुंचहि जब किदार मंहि जाइ। तबि देखहु घन जल बरखाइ॥ २९॥
इमि सुनि सभि के जाग्यो चाउ। कहति भए 'लिहु इह पती आउ।
गमने राहक सभि मिलि तहां। सथित तपा गादी पर जहां॥ ३०॥
गरब हरख मंहि फूल्यो वैसा। तेज तरे पै उफन्यो जैसा।
क्रिखीकरि ब्रिंद जाइ करि कह्यो। 'सुनहु तपा जी नहिं घन लह्यो॥ ३१॥
अबहि आप करुना को धारि। उठि करि पावहु चरन किदारि।
तुमरे चले जि घन बरखैहै। [इस ते हम मनु कामन पै है॥ ३२॥
जे हित चाहति आप हमारा। निकसहु बाहर गमहु किदारा।
हम सभि चलि हैं संग तुमारे। करहु ग्राम पर अस उपकारे॥ ३३॥
करति म्रिदुलता जुति पतिआवन। इमि कहि बहु विधि किय निकसावन।
वहिर ग्राम ते निकस्यो जदा। समुख आइ घन देख्यो तदा॥ ३४॥
ले जबि गए किदार मझार। बरखनि बूंदै लगी फुहार।
दूसर खेत विखै पग धारा। मोचति भए मेघ जलधारा॥ ३६॥
लघु दिन रह्यो-चित उपजावैं। निज निज दिश को चहति चलावैं।
आपस मंहि राहक करि गिन को[1]। किमि इहु कारज पूर सभिनि को॥ ३७॥
निज किदार दिश ऐंचन लागे। जिद्दति परसपर रिस उर जागे।
तपा भयो ब्याकुल तिस काला। झिरक झिरक तिन परहि बिसाला॥ ३८॥
कह्यो तपे को नंहि को मानंहि। निज किदार ढिग सभि सो आनंहि।
खैंचति खैंचति भयो बिहाला। बोलन ते थक रह्यो न चाला॥ ३९॥
जबि चलिबे ते हरि सो रहिऊ। मोहन पिता आइ तबि कहिऊ।
'मास असथि जहिं जहिं लै जै हो। तहिं तहिं बरखा घन की पै हो॥ ४०॥
सुनि के सभनि घसीट्यो जदा। निकसे प्रान भयो हति तदा।
रंहि बरखा बिन खेत हमारे। इम बोलति अर चिंत बिचारे॥ ४१॥
एक मरे जीवहि सभि गाउं। यांते तोर लिए कर पाउं।
आपो अपने खेत पधारे। जंहि जहिंगे पसर्यो घन सारे॥ ४२॥
तपा मरे ते इक रस बारि। बरखा कीनसि मेघ किदारि।
महां पखंडी—सभिहिनि जान्यो। द्वेश ठानि गुर को निकसान्यो॥ ४३॥
झूठो हुतो फुरी नंहि बानी। गुरदासनि कहि दीनसि पानी।
होति भोर श्री अंगद आनहु। निज अपराध छिमापन ठानहु॥ ४४॥

1. गणना करना, विचार करना।

इमि श्री अमरदास तहिं करिकै। गमन्यो गुर दिश प्रीति सु धरिकै।
परम प्रसन्न रिदै हुइ गइओ। प्रापति डेरे महिं चलि भइओ॥ ४५॥
गुर को जाइ बंदना कीनसि। प्रिशटि फेरि बैठे चित चीनसि।
अज़मत करी दिखावनि जानी। नहिं नीकी श्री अंगद मानी॥ ४६॥
सिच्छा अजर जरन की देनि। सिख उर समता निज करि लेनि।
प्रिशटि दए बैठे गुर स्वामी। सरब बारता अंतरजामी॥ ४७॥
पिखि श्री अमर दुतिय दिश गइऊ। नंम्रि बंदि कर इसथित भइऊ।
लज्जा करँ सुनेत्र निवाए। चित महिं दुचिताई उपजाए॥ ४८॥
त्रिती दिशा पुन आनन फेर्यो। अपनि दास को नांहिन हेर्यो।
शकति जनावन किय अपराधू। नहीं करम कीनसि इहु साधू॥ ४९॥
भए दीन मन मोहिन तात। पुन सनमुख होये पछुतात।
कहिन बाक को उदिति भयो जबि। चतुरथ दिश मुख फेर लियो तबि॥ ५०॥
होइ उताइल मुख दिश फेर। निज अपराध सु बूझ्यो हेरि।
भो प्रभु गुर! अबि छिमां करीजै। शुभि उपदेश मोहि कउ दीजै॥ ५१॥
भूले को तुम बखशन हारि। नमो नमो गुर ग्यान उदार।
सुभग बतावन महिं परधान। रावरि के समान नहिं आन॥ ५२॥
श्री गुर अंगद तबहि बखाना। हम पीछै क्या क्रित तैं ठाना।
घन बरखाइ तपा मरवायो। अपन आप को महिद जनायो॥ ५३॥
सतिगुर को घर है नित नीवा। होनि • हंकार थांव नहिं थीवा।
पापी तपा कुकरम करंता। अंत समै दुख नरक लहंता॥ ५४॥
फलदाता ईशर सभि कांहू। जीव अबल किस गिनती मांहू।
कारन करन एक जग नाथा। करति करावति सो सभि साथा॥ ५५॥
अपन आप निज क्रित प्रक्रित महिं। नही अरोपहिं कबि सुधीर लहि।
एकंकार आसरो करिकै। नहीं जनावहिं आपा हरि कै॥ ५६॥
सुनि श्री अमर बंदना ठानी। भो गुर बखशहु मति अनुजानी।
अबि ते फेर न करि हौं ऐसे। आपा मैं न जनावौं कैसे॥ ५७॥
इहु तुमरो अपराध महाना। सह्यो न गयो तबहि क्रित ठाना।
रावर की रजाइ इमि जोई। करहि अपर ऐसो नहिं कोई॥ ५८॥

दोहरा

इमि कहि छिमा कराइ करि बैठे श्री गुर पासि।
जंगल महिं मंगल महा जहिं गुर कर्यो निवासि॥ ५९॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'जोगी तपे को'** प्रसंग बरननं नाम तीन बिंसती अंशु॥ २३॥

अंशु २४
श्री अंगद पुन खडूर आवन

दोहरा

राहक मिले खडूर के उर प्रसन्नता पाइ।
मन भावति बरख्यो जलद हरित खेत समुदाइ ॥ १ ॥

चौपई

सकल मिले सभि बात विचारी। गुर की भई अवग्या भारी।
जिन महिं अजमत एतिक अहै। बरख्यो जल जिन सेवक कहै ॥ २ ॥
रहति हमेश नहीं मिति जानी। जा बैठे हैं अपर सथानी।
अबि मिलि चलहु न बिलम लगाबहु। भई भूल तूरन बखशावहु ॥ ३ ॥
नांहि ते श्राप देहिं भै दायक। अपदा परहि प्रमोद नसाइक।
इमि कहि मिलि करि ले पकवान। बखशावन गमने तिस थान ॥ ४ ॥
जिस प्रकार इस थल चलि आवहिं। तिमि सभि करिहु क्रिपाल रिझावहिं।
खान रजादे के थल गए। श्री गुर बैठे देखति भए ॥ ५ ॥
सभिनि जाइ पद बंदन ठानी। बिनती जुकति बखानी बानी।
श्री गुर हमने भेद न पाइव। सभि को जोगी तपे भुलाइव ॥ ६ ॥
रावति को निंदक बड पापी। धन लोभी मन कूर संतापी।
दुरमति खोट करमि किय जेतिक। तातकाल फल पाइहु तेतिक ॥ ७ ॥
शरणि परे हम राहक सारे। छिमहु गुरू तुम महिद उदारे।
सुनि सतिगुर तिन दिश पिखि बिकसे। बाक सुधा, ससि मुख ते निकसे ॥ ८ ॥
सभि जग मिथ्या रूप निहरें। हम काहू संग बैन न करें।
मिथ्या मान अपर अपमान। हरख शोक हम नाहिन ठानि ॥ ९ ॥
करहि करम जस तस फल पावहि। बुरा भला निशफल निंह जावहि।
मिथ्या महिं ग्यानी नहिं रचे। साच सरूप बीच निति मचे ॥ १० ॥
दुबिधा तुम महिं देखी भूरी। हम त्याग्यो तबि ग्राम खडूर।
तुम को संकट कोइ न होइ। बसहु सदन मैं सभि सुख जोइ ॥ ११ ॥

---

1. खुशी दूर करने वाली विपत्ति।

हम तो जहिं बैठहिं हरखावहिं। किति ने पाइ न कितहूं गवावहिं।
हान लाभ हमरे किम नांही। मंगल है इस जंगल मांही ॥ १२ ॥

सुनि राहकि गहि पद अरबिंद। छिमहु छिमहु तुम रूप गुबिंद।
चलि कै ग्राम प्रवेशन कीजै। त्याग आन निज थान बसीजहि ॥ १३ ॥

बिरद संभारहु शील क्रिपाल। बखश देहु अपराध बिसाल।
बिहस कह्यो पुन सहिज सुभाइ। हमरे हठ होहि न क्रिस भाइ ॥ १४ ॥

ऐबो इहां कि जैबो ग्राम। इक सम वहिर कि बैठनि धाम।
जे करि तुम प्रसन्न समुदाइ। ले संग चलहु बसहिं तिस थाइं ॥ १५ ॥

बिधि निखेप हमरै कछु नांही। समो बिता वहिं बैठहिं जांही।
सुनि हरखे नर उर समुदाई। कहि करि सतिगुर लिए उठाई ॥ १६ ॥

सिख्यन सिर प्रयंक उचवाए। अपर वसतु कछु ले गमनाए।
श्री अंगद को संग सिधारे। सिख्य जाट सगले परवारे ॥ १७ ॥

मारग चले आइ गुरु स्वामी। सम चित आनंद अंतरजामी।
पंथ बिखै भैरोपुर ग्रामू। खीओ भल्ले को तहिं धामू ॥ १८ ॥

सुनि आगवनि सतिगुरू केरा। मिल्यो आन, करि भाउ घनेरा।
वहु बिनती जुति वंदन करी। कहिति भयो सफली इह घरी ॥ १९ ॥

टिकहु आप मैं ल्याउं अहारा। अचवहू करुना करिहु उदारा।
राउ रंक को परखति कोइ न। समसर जानति हो तुम दोइनि ॥ २० ॥

भाउ बिलोकहु भोजन खाते। लालो घर श्री नानक जाते।
दिज बाहज बैसन की तजिकै। शूद्र सदन महिं अचवति रज कै[1] ॥ २१ ॥

हुती भीलनी जाति सनाति[2]। रामचंद्र तिस के फल खाति।
इमि कहि सतिगुर ग्राम टिकाए। सदन अहार त्यार करिवाए ॥ २२ ॥

तूरन त्यारी सकल कराइ। रिदे भाउ धरि गुर ढिग आइ।
हाथ जोरि करि बिनै बखानी। भोजन भयो त्यार गुनखानी ॥ २३ ॥

पद अरबिंद सदन मुझ पाईए। सभि संगति अपने संग ल्याईए।
आसा पूरन करहु गुसाईं। औचक आवन भयो कदाईं ॥ २४ ॥

भाउ जानि तिह रिदे घनेरे। चले संग जिस भाग वडेरे।
जल छिरकाइ सु बसत्र बिछाए। ऊपर चौंकी चारु डसाए ॥ २५ ॥

तिस पर बसतर वहुर बिछावा। श्री अंगद को तहां बिठावा।
थाल विसाल क्रिपाल अगारी। खीर खंड घ्रित ऊपर डारी ॥ २६ ॥

1. पेट भर कर। 2. नीच।

अपने हाथ परोस्यो तांही। गुरु अर्चहिं हरखहिं मन मांही।
सभि संगति को दियो अहारा। त्रिपताए अचि स्वाद उदारा ॥ २७ ॥
सीतल पानि पान करिवावा। सभि हरखे मन बांछति पावा।
चुरी कीनि अरु हाथ पखारे। भए गुरू चलिबे कहु त्यारे ॥ २८ ॥
तबि श्री अमर दियो बर ताहू। 'हुइ संतति तव बड सुख पाहू।'
गमन कीनि तबि ग्राम खडूर। राहक आदिक संगत भूर ॥ २९ ॥
अपने आसन आनि असीने। सुन्यो सभिनि मिल दरशन कीने।
सभि के मंगल भयो बिसाला। करि बरखा पुन बसे क्रिपाला ॥ ३० ॥
नहीं स्राप किस हू को दीना। सभि अपराध बखशबो कीना।
पूजनि लगे बहुर गुर चरना। जिनके सिमरन जनम न मरना ॥ ३१ ॥
पुन श्री अमर गुरू बचनालि। गमन कीनि मग गोइंदवालि।
केतिक हुते सिख्य तबि संग। पाछल दिश गमनहिं तिस ढंग ॥ ३२ ॥
मारग बिखैं[1] हाड इक मानव। पर्यो हुतो कबि को नहि जानव[2]।
लग्यो चरन पाछल दिस जाते। करामात जिनि महिं अधिकाते ॥ ३३ ॥
नरक बिखैं ते निकस्यो पापी। दुसहि सजाइ सकल ही खापी[3]।
ततछिन मानुख तन हुइ गयो। जो निरजीव सजीवी थियो ॥ ३४ ॥
सभि के देखति गमन्यो कितै। अचरज लख्यो संग थे जितै।
अमरदास निज सहजि सुभाइ। गोइंदवाल गए निज थाइं ॥ ३५ ॥
निसा बिताई बसे निकेत। चले प्राति को दरशन हेत।
जाइ बंदना कीनि अगारी। बैठे संगति केर मझारी ॥ ३६ ॥
हुते संग सिख किनहु बखाना। 'गुर जी ! अचरज पिख्यो महांना।
जाति हुते हम गोइंदवाल। मग स्री अमरदास के नाल ॥ ३७ ॥
असथी एक चरन संग छुह्यो। तातकाल नरतन बनि गयो।
जीव उठ्यो गमन्यो जित चाहू। इनहु न कह्यों सुन्यो कुछ तांहू ॥ ३८ ॥
श्री अंगद सुनि कै तिन पासु। निकट बुलाइ आपनो दासु।
नीकी बिधि समझावन कर्यो। 'तुमरे चरन पदम विधि धर्यो ॥ ३९ ॥
पुन गुर घर की सेव कमाई। सरब भांति करि भा अधिकाई।
महिमा जानि सकहिं नर नांही। जेतिक शकति अहै तुब मांही ॥ ४० ॥
संतन मति-अज़मति बिदताइ न। तोहि रिदे महिं भी इह भाइ न।
तऊ अचानक नर म्रितु जीव्यो। लोकन महिं अचरज अति थीव्यो ॥ ४१ ॥

1. मार्ग में। 2. नहीं जाना जाता। 3. नष्ट हो गई। 4. अच्छी नहीं लगती है।

सहजि सुभाइक तुम निति आवो। इस प्रकार पुन अमर जिवावो।
जग महिं बिथरहि नहिं इहु आछी। मति संतन महिं नाहन बांछी ॥ ४२ ॥
यांते अब मेरी सिख मानि। द्रिड राखहु, नहिं त्यागन ठानि।
जबि दरशन की हुइ उर प्यास। हम चलि आवहिंगे तुम पास ॥ ४३ ॥
अजमति बिदत जगत नहिं होइ। मेरे मन भावहि विधि सोइ।
तुमही निति ऐसे ही करनो। जो संतन के मति शुभ बरनो ॥ ४४ ॥
सुनि श्री अमरदास कर बंदि। कह्यो बचन 'श्री गुरु मुकंद।
जो तुम को भावहि भलि सोई। करहि अपर सुख पाइ न कोई ॥ ४५ ॥
अर मैं तो चरननि को दासु। त्रिपतों नहिं तुम दरस पिआस।
आगै श्री सतिगुर जो भावै। सो आछी हम को बनि आवै ॥ ४६ ॥

दोहरा

सीख धारि उर द्रिड करी पुन आइस के नालि।
संझ समैं पाछल पर्गनि पहुंचे गोइंदवालि ॥ ४७ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे' श्री अगद पुन खडूर आवन' प्रसंग बरननं नाम चतुर्विंसती अंशु ॥२४॥

अंशु २५

श्री गोइंदवाल आवन

दोहरा

केतिक दिन बीते जबहि गुरु दरशन नहिं कीन ।
जो नित प्रति निकटी रहैं होइ प्रेम आधीन ॥ १ ॥

चौपई

तिनको बिन देखे दिन बीते । कुतो शांति करि चीति प्रतीते ।
तरफति रात नींद नहिं आवैं । दिन महिं रुचि करि असन न पावैं ॥ २ ॥
खान पान सों नहीं सनेहू । पद अरविंदनि प्रेम अछेहू ।
सभि सों उदासीन रहिं बैसे । नहिं रुचि बोलन सुनहिं न कैसे ॥ ३ ॥
मन सिमरन करि करों हकारन । निशचै आवहिंगे मम कारन ।
तऊ तिनहु को श्रम मग होइ । इहु मेरे चित रुचहि न कोइ ॥ ४ ॥
दरशन बिनां शांति किम धारैं । इम असमंजसु रिदै बिचारैं ।
जाइ खडूर निहारन करिहों । हुकम मिटहि अपराध बिचरिहों ॥ ५ ॥
मन महिं अनगिन ठानहिं गिणती । निस दिन भनहिं दीन बनि बिनती ।
चित चरिपटी[1] लगति अधिकाई । करों कहा कुछ करी न जाई ॥ ६ ॥
उत श्री अंगद जग गुर स्वामी । दास रिदै लखि अंतरजामी ।
बढी प्यास जिह शांति न आवति । सुकचति चित करि नहीं बुलावति ॥ ७ ॥
असमंजस महिं सेवक परिओ । अपनो बिरद संभारन करिओ ।
जिमि चात्रिक की प्यास बिचारु । जलधर धावहि करुना धारि ॥ ८ ॥
बूझि प्रेम निज बचन सम्हाला । उठि करि गमने द्याल बिसाला ।
रह्यो निकटि जबि गोइंदवालू । लखि श्री अमर उठे ततकालू ॥ ९ ॥
हित सनमान अगारी गए । मनहु प्रेम धरि मूरति धए ।
देखि दूर ते द्रिग जल छाए । धाइ परे चरननि लपटाए ॥ १० ॥
पकरि भुजा गर संग लगाइव । दुह दिश प्रेम अधिक उमगाइव ।
कर सों कर गहि करि पुन चले । ग्यान विराग मनहु दो मिले ॥ ११ ॥
पुरि महिं नहीं प्रवेशन कीनसि । सलिता कूल ललित को चीनसि ।
जहां बिहंगन के शुभ जोटे । बोलति आपस महिं सुर[2] छोटे ॥ १२ ॥

---

1. बेचैनी । 2. स्वर ।

चलति प्रवाह बिमल जलजाला। मछ कछ उछरति स्वच्छ बिसाला।
सुन्दर हुतो सथान उतंगा। सिकता म्रिदुल पुलनि जनु गंगा ॥ १३ ॥
ललित सुथल पिखि बैठे जाई। श्री अंगद सेवक सुखदाई।
लोचन पुट ते अंम्रित रूप। करति पान श्री अमर अनूप ॥ १४ ॥
त्रिपत न हेति हेरि जनु जीवति। अति हरखति चित शांती थीवति।
नीचे थल सनमुख हुइ बैसे। बासदेव अरजन जुगु जैसे ॥ १५ ॥
महिमा महां लखी नहीं परे। अंम्रित बचन ग्यान रस भरे।
हे पुरखा! तुम हो मम रूप। भेदन जानहु तनक अनूप ॥ १६ ॥
सदा रिदे बासति हो मेरे। तुझ सों प्यार सदीव वडेरे।
आतम ज्ञान सदीव बिचारहु। नाना भेद रिदे निरवारहु ॥ १७ ॥
देहनि केर सनेहु अछेहा। मिथ्या अहै न राखहु एहा।
आदि अंत महिं जोनहिं पय्यति। मध्य सत्य सो कैसे लहियति ॥ १८ ॥
जो उपजहि सो बिनसनि हारो। लखि तांको मिथ्या निरवारो।
इस महिं संकट अनिक प्रकार। नाशवंत द्रिशमान संसार ॥ १९ ॥
जिस को इहु अलंब नित भासे। सो बिन आदि न अंत प्रकाशे।
काल सपरशहि जांहि न क्यों हूं। आदि अंत मधि इक रस त्यों हूं ॥ २० ॥
सो तूं अपनो रूप पछान। एक आतमा महिद महांन।
सति चेतन आनंद सो ब्रह्म। बिशै न इंद्री को निरभ्रम ॥ २१ ॥
बिछरन मिलन न जिस मैं पय्यति। व्यापक नभ समि थल लहियति।
जनम न मरन न शोक न हरखा। दुंद विहीन सुबुधि करि परखा ॥ २२ ॥
अहंब्रह्म अद्वै घन रूप। इहु ब्रित्ति निशचल धरहु अनूप।
लोकन को सिखवनि हित बाहर। हम हैं दास प्रभू के जाहर ॥ २३ ॥
भगति बिथारहु संगति माहूं। चलहिं सिक्ख पिख करि तुम राहू।
इत्यादिक कहि गुरू सुजाना। अहं ब्रह्म द्रिड आतम ग्याना ॥ २४ ॥
कीनि आपने सद्रिश क्रिपाला। जिमि मसाल ते जगहि मसाला।
कहिं लग कहउं सु बचन विलास। करे बैठि सतिगुर संग दास ॥ २५ ॥
बहुर उठे तहिं ते जग नाथा। सहित प्रेम गहि सेवक हाथा।
'धंन धंन' भाखति संग जाते। बार बार दरशन निरखाते ॥ २६ ॥
पंथ बरोबर गमने जाहिं। गहि करि दाहन कर कर मांहि।
बाम हाथ श्री अमर सुभाइक। लटकति जाति सु तरे डुलाइक ॥ २७ ॥
इस बिधि आवति पंथ खडूरे। सेवक संग लीए गुर पूरे।
कितिक राह चलि करि जबि आए। तबि श्री अमर जु भुजा डुलाए ॥ २८ ॥

भई अचानक गुर के आगे। देखति अमर दास वड भागे।
बढी चिंत चित दारुन भारी। महां अवग्या गुर की धारी ॥ २९ ॥
वाम बांह भी डोल अगारे। सतिगुर इसने कीन पिछारे।
लखि अपराध सु भुजा बिसारी। तूरन सुकचावन को धारी ॥ ३० ॥
छाती संग लाइ सो लीनसि। तिस छिन नेम एव करि लीनसि।
अबि इस को अपनी नहिं जानों। कीनो गुर अपराध पछानों ॥ ३१ ॥
कारज इस के साथ न करौं। नहिं ममता को मन महिं धरौं।
जबि लग महि महिं तन कौ धारौ। तिस के संग न कछू सुधारौं ॥ ३२ ॥
छाती साथ लाइ सो हाथ। चले जाति संग श्री गुर नाथ।
एक हाथ दाहन ते तबि हूं। क्रिया सुधारति भे तन सबि हूं ॥ ३३ ॥
जेतिक तन आदिक की कारे। नहीं बाम सों कबहूं सुधारे।
इहु श्री अमर कह्यो कस करी। अंग अंग गुर भगती धरी ॥ ३४ ॥
इस बिधि अपर जि को नर करे। भगति मुकति लहि भवजल तरे।
श्री अंगद अबलोक प्रसन्ने। कर सु छुडाइओ कहि धनं धंने ॥ ३५ ॥
उर महिं जाते करति बिचारा। इह देवहिं उपदेश उदारा।
भगति करहिं नर बिच सति संगति। सत्यनाम संग होवहि रंगति ॥ ३६ ॥
इस ते होइ उधार हजारो। सिखी मारग को बिसतारो।
पहुंचे जाइ खडूर मझारू। बैठे बहुर सिंहासन चारू ॥ ३७ ॥
ढिग श्री अमर हेरि हरखाइ। बाक बिलासनि दिवस बिताइ।
संध्या समैं जबहि नियराना। कह्यो 'जाहु पुरखा! निज थाना ॥ ३८ ॥
आइसु पाइ चले तिसु भांती। गुर दिश मुख गमनहिं पशचाती'।
तीन कोस चलि करि हुइ खरे। गुरू ध्यान धरि बंदन करे ॥ ३९ ॥
कोस रहहि जद गोइंदवाले। पुरि की दिश मुख करि तबि चाले।
जाइ आपने धाम बिराजे। जिन के ध्यान धरे जम भाजे ॥ ४० ॥
प्रेम निरंतर रिदे प्रवाहू। चितवहिं गुर सरूप तन मांहू।
मुख ते बोलहिं तौ गुर नामू। सुनहिं श्रौन किरतन सुख धामू ॥ ४१ ॥
अपर न देख्यो सुन्यो न भावै। इक सतिगुर की उर लिवलावें।
जबि सिमरहिं तबि दरशन करें। ब्रह्म ग्यान को निति उर धरैं ॥ ४२ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रिंथे प्रथम रासे 'श्री गोइंदवाल आवन' प्रसंग बरननं नाम पंच बिंसती अंशु ॥ २५ ॥

अंशु २६

श्री अंगद समावन प्रसंग

दोहरा

इक दिन श्री अंगद गुरू गमने गोइंदवाल ।
सेवक को दरशन दियो कहि सुनि बचन रसाल ।। १ ।।

चौपई

सहज सुभाइक आवति चले । मग महिं सीहां उप्पल मिले ।
देखति ही पग बंदन करी । भयो नंम्रि उर शरधा धरी ।। २ ।।
इक सौ छांग संग तहिं अहे । तिन कहु देखि गुरू बच कहे ।
भो सीहां ! इहु कित ते ल्याइ । किउं कीनसि इनको समुदाइ ।। ३ ।।
सुनि कर जोरे कह्यो ब्रितंत । हे श्री सतिगुर जी भगवंत ।
मोहि पुत्र को मुंडन अहै । बड उतसाह कर्यो हम चहैं ।। ४ ।।
हमरी कुल सभि इकठी होइ । बडे हमारनि की बिधि सोइ ।
इस बिधि करन अहै बिवहार । आवहिं आमिख करहिं अहार ।। ५ ।।
सदा जठेरन रीति हमारे । ओदन आमिख देहिं अहारे ।
खुशी अनेक प्रकारन होइ । होहिं मेल कुल के सभि कोइ ।। ६ ।।
सुनि करि बिकसे गुरू क्रिपाल । भलो करन हित कहि तिस काल ।
इतने जीवन हिंसा करैं । पाप बिसाल अपन सिर धरैं ।। ७ ।।
अबि तो सुगम जानीअहि करिबो । अंत महां दुख नरकन परबो ।
देहिं शासना[1] जम के दूत । तहां न पहुँचे बंधप पूत ।। ८ ।।
जिन के हित अघ करम कमाइं । तहां न रंचक होइं सहाइ ।
सुख भोगैंगे सगरे लोक । अपदा परहि तोहि बड शोक ।। ९ ।।
धरम राइ जब करि है लेखा । लहैं महां दुख रहै न शेषा ।
सुनि शीहे भै धारि बडेरे । कह्यो करौं जसु[2] आइसु तेरे ।। १० ।।
श्री गुर ! कहां करौं उपचार । जिस ते होइ न जीव संहार ।
नीकी बात आप मुझ कहो । बच जिम रहौं सु मैं भी चहों ।। ११ ।।
होहिं न पाप नरक नहिं परिऊं । जीवघात ते चित महिं डरिऊं ।
आप शकतिधर हो समरत्थु । राखहु मोहि प्रभू दिहु हत्थु ।। १२ ।।
तुम ते बडो कहां मैं पावों । पर्यो शरन मैं नित गुन गावों ।।

---

1. दंड । 2. जैसी ।

जिमि इहु जीव घात नहिं होवैं। नहीं जठरन को दुख जोवैं ॥ १३ ॥
अस उपाइ अबि आप अलावो। अपनो सेवक जानि बतावो।
इमि बिनती सुनि कै तिस केरी। भए क्रिपाल भन्यो बच फेरी ॥ १४ ॥
हमरे द्वारे मुंडन करो। उर को भरम सब परहरो।
बिघन जठेरनि को नहिं होइ। सिमरहु सत्तिनाम दुख खोइ ॥ १५ ॥
जिन को दुखदाइक तूं जानै। जो तेरे सभि बिघननि ठानै।
सरब ओर ते हुइं रखवारे। सभि सुख देहिं न काज बिगारे ॥ १६ ॥
अज सगरे अब दीजहि छोर। नरक निहारहिं नहिं दुख घोर।
सुने बचन धरि शरधा माने। हाथ जोरि अपनो हित जाने ॥ १७ ॥
अज खलास तिसु छिन सभि कीने। गुर के चरन कमल मनु लीने।
जाइ सदन सभि जेतिक त्यारी। आनति भा गुर केर अगारी ॥ १८ ॥
अपने बंधू तहां हकारे। बहुर पुत्र को श्री गुर दुआरे।
मुंडन रीति बंस की जैसे। भली भाँति करवाइव तैसे ॥ १९ ॥
पहित भात[1] को दीन अहारा। रुचि करि खाइं सरब परवारा।
सिख संगत सभिहूंन अचावा। बिघन कछू नहिं होवनि पावा ॥ २० ॥
सतिगुर को प्रताप अति भारी। बिघनकार होए रखवारी।
पूरन सकल काज तिन कर्यो। श्री गुर पंथ रिदे द्रिड धर्यो ॥ २१ ॥
भयो सिक्ख तिसु दिन ते गुर को। सेवहि चरन भाउ करि उर को।
द्रिड प्रतीत कीनसि गुर ओरी। अपर सभिनि की मनता छोरी ॥ २२ ॥
जे सभि त्याग अलंब गुरू गहि। वसतु अलभ नहीं को महि[2] महिं।
शीहां उप्पल इसी प्रकारे। भयो सिक्ख सतिगुर मति धारे ॥ २३ ॥
बहरो श्री अंगद बहु बारी। गोइंदवाल जाति हित धारी।
मिलहिं दास को आनंद देति। वहिर रहहिं कै जाइं निकेति ॥ २४ ॥
इस प्रकार कुछ समो बिताइव। जग महिं मग सिक्खी प्रगटाइव।
गई बितीत सिसुर रुति सारी। सभि थल भा बसंत गुलज़ारी ॥ २५ ॥
चढ्यो चेत सभि को सुख देति। नहिं अति सीत न उशन तपेति।
बिकसे कुसम अनेकनि रंग। अति शोभा सुन्दर सरबंग ॥ २६ ॥
पात निपात पलास प्रकाशे। जित कित अरुण बरण ही भासे।
चहुंदिश बन की दिखीअति भूमि। जनु गन अगनी लाट अघूमि ॥ २७ ॥
उपबन महिं गुलाब चटकीले। बिकसति बूटन साथ छबीले।
कौन कौन तरु फूलनि केरी। कहीअहि जात रुचिरता हेरी ॥ २८ ॥

---

1. दाल-चावल। 2. पृथ्वी पर।

शोभा बन उपबन की बाढ़ी। मनहु दिखावनि निज ते काढी।
ब्रिंद बिहंगन बोलबि जनीयति। कानन रहि कानन महिं सुनीयति ॥ २९ ॥
रुति वसंत जग बिदत छबीला। शांति ब्रिति सतिगुर की लीला।
आवति गोइंदवाल जदाई। बिपन बिलोकति सुंदरताई ॥ ३० ॥
तन को त्यागन चितवति चाहति। गमनैं अबि बैकुंठ उमाहति।
सभि संगति महिं कहि बिदताई। तजहिं सरीर अबहि चित आई। ३१ ॥
सुनि सुनि सिक्ख रिदै बिसमावें। 'वाहिगुरु तजि देहि समावें।
जहिं कहिं पसर गई इम बाती। हितू सुनति भरि आवति छाती। ३२ ॥
ऊच नीच जुति चारहुं बरना। सुनि सुनि रिदै बिसमता करना।
पूरब कहैं समावहि फेर। करामात के धनी बडेर। ३३ ॥
जहिं कहिं सिख बहु सुनि सुनि आवैं। दरसहिं सतिगुर बहुर समावैं।
अपर लोक अवलोकन कारन। आवहिं करिते सुजस उचारन। ३४ ॥
सुनि श्री अमर अधिक अकुलाए। नहिं पहुँचहिं ढिग बिना बुलाए।
घटी कलप सम बीतहि तांही। करति अराधन बहु मन मांही। ३५ ॥
श्री अंगद लखि अंतरजामी। पठ्यो हकारन सिख तबि स्वामी।
सादर जाइ अवाहन कीने। सुनति चल्यो जल सों द्रिग भीने। ३६ ॥
तातकाल गुर दरशन कर्यो। तूरन करति चरन पर पर्यो।
द्रवी बिलोचन ते जल धारा। मनहु प्रेम को छुट्यो फुहारा ॥ ३७ ॥
ब्याकुल परम जानि करि दास। श्री अंगद मुख वाक प्रकाश।
'सुनि पुरखा पूरन तुम ग्यानि। परम धाम 'मैं करौं पयानि ॥ ३८ ॥
हरख शोक मन महिं नहिं कोऊ। तूं परतख्य रूप मम होऊ।
देह अछत ग्यानी जग ऐसे। भर्यो कुंभ सागर रहि जैसे ॥ ३९॥
घट फूटे जल सों जल मिलै। तन तजि ग्यानी ब्रह्म सों रलै।
आवनि नहिं मेरो नहिं जावौं। परमातम निज रूप समावौं ॥ ४० ॥
पुन सिख्यन सों गिरा उचारी। उठि आनहु गागर भरि बारी।
अमरदास इशनान करावहु। सभि संगति को मेल करावहु ॥ ४१ ॥
दोनहु पुत्र हकारन करो। मम त्यारी है देरि न धरो।
ससकारन की सौज बिसाला। करहु इकत्र सकल ततकाला ॥ ४२ ॥
पैसे पंच नलेर अनावहु। फूलन माल बिसाल बनावहु।
तिल चंदन केसर को आनहुं। कुशा पुनीत लीपबो ठानहु ॥ ४३ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'श्री अंगद समावन' प्रसंग** बरनन खशटबिंसती अंशु ॥ २६ ॥

अंशु २७

श्री अंगद परमधाम गमन प्रसंग

दोहरा

श्री गुर अंगद की सुनी आइसु सिक्ख समसत ।
बिसमति हुइ लागे करन पूर्जाहि करहिं नमसत ॥ १ ॥

चौपई

तबि श्री अमर ठानि इशनाना । नंम्रि होइ करि निकट महाना ।
बैठे बंदन करि पद कुंज । आनि मिली संगति सभि पुंज ॥ २ ॥
बीच बिराजहिं सतिगुर बैसे । सभि ग्रह मैं सूरज हुइ जैसे ।
निसा अविद्या निकट न आवैं । निंदक तसकर देखि पलावैं ॥ ३ ॥
पेचक[1] बेमुख अंधे रहे । नहीं प्रकाश महातम लहे ।
संत कमल बिकसे हरखाए । अलि जग्यासी जहिं मंडराए ॥ ४ ॥
मति बहु रीति उडग जग मांही । परम प्रकाश सु पावति नांही ।
कैरव कानन गन दुरचारी । सभि मुरझाइ रहे तिस बारी ॥ ५ ॥
सदगुन जुति नर जागति भए । बिखई जीव तमचर[2] सुपतए ।
जाग्रत करहिं सु आदि शनान । तिम सिख लगे भगति अर ग्यान ॥ ६ ॥
सुपत रहे बिशियन को सेव । नहीं पछान सके गुर भेव ।
तब श्री अंगद मुख पर लाली । खिर्यो कमल जनु प्रभा बिसाली ॥ ७ ॥
निजानंद महिं मगन महाना । सभिहिनि महिं तब बाक बखाना ।
सुनि पुरखा श्री अमर सुप्यारे । अबि तुम बैठहु थान हमारे ॥ ८ ॥
राज जोग को महद सिंहासन । तिस पर शोभहु करिहु प्रकाशन ।
कहि पहिराए बसत्र नवीन । तिलक भाल निज कर सों कीनि ॥ ९ ॥
भगति विराग जोग तत ग्याना । इन चारन को दीनि खजाना ।
मन बांछत दिहु जग महि दान । तोट न दिन प्रति, बधहि निधान ॥ १० ॥
तारक मंत्र[3] सभिनि पर छाया । वाहिगुरु मुख जाप जपाया ।
ठांढी तोहि अग्र नौ निद्धि । दूजी दिश पिख अशट दशो सिद्धि ॥ ११ ॥
सनमुख खरी लच्छमी तेरे । सुर गंध्रब, किंनर गन हेरे ।
विद्यधर आदिक सभि आए । आग्याकारी तुव समुदाए ॥ १२ ॥

---

1. उल्लू । 2. चमगादड़ । 3. उद्धार करने वाला (वाहिगुरु) मंत्र ।

तीन लोक महिं मुख्य महाने। सभि कर जोर खरे अगुवाने।
निति अधीन रहिं रिदे बिचारो। नमहु करति, इन दिशा निहारो ॥ १३ ॥
तबि श्री अमर नंम्रि हुइ कह्यो। इन सों मैं कुछ काम न लह्यो।
करहुं कहां मैं इनको लोर। बसहु रिदे पद पंकज तोर ॥ १४ ॥
सभि के मन की जानहु स्वामी। जिमि बरतहिं तिम अंतरजामी।
यांते मेरे मन की जान। बसो रिदे नित कांख महान। ॥ १५ ॥
श्री अंगद सुनि पुन समझाइव। बिना चहे इह सभि ढिग आइव।
करनहार आग्या नित तेरी। सगल भांति इन शकति बडेरी ॥ १६ ॥
चहहु कहहु, नहिं चहहु, न कहीअहि। ए सभि निकट आपने लहीअहि।
सकल जगत को तुझ गुर कीना। राज जोग सिंहासन दीना ॥ १७ ॥
सत्यनाम को सिमरन सारे। उपदेशहु, हुइ भगत उदारे।
नरन हज़ारनि को कल्यान। करो आप दे करि उर ग्यान ॥ १८ ॥
प्रेम भगति मैं हेरि तुमारी। बसि ह्वै दई सम्रिधी सारी।
पैंसे पंच नालीअर एक। ले बुड्ढे ते जलधि बिबेक ॥ १९ ॥
ठांढे भए प्रदच्छन दीनी। श्री गुर घर की रीति सु कीनी।
पैंसे पंच अगारी धरे। झोली महिं नलेर धरि खरे ॥ २० ॥
करि बंदन सिंहासन दीना। सभि सों वाक उचारन कीना।
मेरो सिक्ख पुत्र कै दास। अंत समैं जो चहि मम पास ॥ २१ ॥
सो सभि उठहु बंदना ठानहु। नहीं अपर बिधि मन महिं आनहु।
सुनि करि बुड्ढा सभिनि अगारी। खरो होइ पग बंदन धारी ॥ २२ ॥
तिस पीछै सिक्ख संगति सारे। करी नमहिं श्री अमर अगारे।
श्री अंगद निज सुत दिशि देखा। उठ्यो न मन महिं गरब विशेखा ॥ २३ ॥
दासु साथ भन्यो गुर नाथ। उठि तुम भी टेको निज माथ।
सुनहु पिता इहु दास हमारा। इक तौ लीनसि मम अधिकारा ॥ २४ ॥
दुतीए उठ करि सीस निवावैं। इह तौ हम तें नहिं बनि आवै।
निज सथान पर इही टिकाए। हम को छूछे राखि सिधाए ॥ २५ ॥
तुम सों क्या बस चलहि हमारो। कियो पंथ सभि जग ते न्यारो।
जिम तुम दास होइ करि पाई। तिम अबि दई दास बडिआई ॥ २६ ॥
सुनि दासू ते दातू साथ। आग्या कहि गुरु 'टेको माथ।
तिन भी नहिं मानी थित रह्यो। निज बडिआई को वच कह्यो ॥ २७ ॥
श्री अंगद तूशनि मुख धारी। भली बुरी सुत सों न उचारी।
पुन संगति महिं कह्यो सुनाई। मम सरूप अबि इहै सुहाई ॥ २८ ॥

---

1. आकांक्षा।

मो महि इस महिं भेद न जानहुं । एक सरूप दुहूंन को मानहु ।
पुन श्री सतगुर आग्या करी । भोजन त्यार होइ इस घरी ॥ २९ ॥
सभि संगति को देहु अहारा । सभि मिलि करउ अनंद उदारा ।
तबि श्री अमर उठ्यो हित धारि । कीनसि जाइ अहार सु त्यारि ॥ ३० ॥
सतिगुर आप जाइ करि खाइव । पुन सभि संगत महिं बरताइव ।
अपन सिंहासन पर गुर गए । अति अनंद जुति शोभति भए ॥ ३१ ॥
मिलहिं परसपर सिख समुदाइ । पूरबली कहि बात सुनाइ ।
श्री नानक निज देहि समेत । कीन गमन वैकुंठ निकेत ॥ ३२ ॥
भगत कबीर आदि जे भए । बहुत शरीर समेत सु गए ।
इमि बिचार सिक्खन मैं होई । श्री अंगद जानी मन सोई ॥ ३३ ॥
रिदे ब्रिचारहिं शंका इन के । नीके नहिं बिबेक मन जिन के ।
देहि सनेह न संतन मांही । इमि सूछम गति जानहिं नांही ॥ ३४ ॥
जे इन की मन शंक न जाइ । मम संगति को क्या फल पाइं ।
पुंन महांन ब्रिथा सभि खोवहिं । अस संदेह मैं जे मन होवहि ॥ ३५ ॥
शरधा त्यागे दोष बिसाले । उर निशचा इन के सभि हाले[1] ।
इमि सिक्खन पर करुना ठानी । अदभुत लीला रची महानी ॥ ३६ ॥
भए अलोप सिंहासन पर ते । हुते समीप न कहू निहरि ते ।
देखि चलित्र बिसम मति रही । अद्भुत लीला जाति न कही ॥ ३७ ॥
चहुं दिश बोलि उठे सिख सारे । तन जुति गुर वैकुंठ पधारे ।
पर्यो रौर[2] संगति के मांही । सतिगुर दरशन प्रापति नांही ॥ ३८ ॥
लंगर बिखे सेव सभि केरी । करति हुते श्री अमर बडेरी ।
सुनि करि चलि आए ततकाला । पर्यो सिंहासन हीन क्रिपाला ॥ ३९ ॥
पिखि श्री अंगद की अस लीला । खरे होइ करि तहां सुशीला ।
अचरज गति कुछ लखी न जावै । जो सम होइ तऊ कुछ पावै ॥ ४० ॥
करहिं बिचारनि अपने चीति । श्री गुर क्यों कीनसि अस रीति ।
तातपरय को नीके जाना । प्रगटावन हित सुजस बखाना ॥ ४१ ॥

प्रमाणिका छन्द

अनंद कंद रूप हो । बिलंद भूप भूप हो ।
न आदि अत तोहि को । समान आन होहि को ॥ ४२ ॥
मुकंद सेवकान को । प्रकाश चंद भानु को ।
सु दान दे जहान को । करै जु खान पान को ॥ ४३ ॥

1. [illegible] । 2. शोर ।

चरित्र तो बचित्र हैं। भने सुने पवित्र हैं।
अदेव देव नाथ हैं। सभै निवाइ माथ हैं॥ ४४॥
अजाय[1] हो, अमाय[2] हो। सदीव सुद्धि भाय हो।
परंपरा परेश[3] हो। धरंधरा अदेश[4] हो॥ ४५॥
रहे बिसाल गोप ह्वै। जि खोजिए न ओप ह्वै[5]।
अजान लोक ह्वै रहे। प्रतीत धारि ना लहे[6]॥ ४६॥
गुरू महान चीनियो। निहाल दास कीनियो।
निवारि मोह ताप को। जपाइ नाम जाप को॥ ४७॥
सदा अधीन प्रेम के। निबाहि कीनि नेम के।
सु ताइ जेमु हेम के। सु दान देति छेम के॥ ४८॥
सुछंद सिंधु नंदना। अमंद हो, मनिंद ना।
गोबिंद, शत्रु कंदना। सु बंदना, तु बंदना॥ ४९॥

दोहरा

श्री सतिगुर किम आप अबि हुइ गे अंतर ध्यान।
लोकनि की शंका कहां तुमहि न उचित महांन॥ ५०॥
दिहु दरशन करुना करहु प्रथम जगत की रीति।
करते रहे सु अबि करहु क्यों ठानहु बिप्रीत॥ ५१॥
परम धाम अभिराम को गमनहु इह तन त्यागि।
इम बिनती सुनि दास की जानि महां अनुराग॥ ५२॥
सिंहासन पर बिदत भे देखि सकल हरि खाइ।
जै जै शबद उचारि करि परे दौर सभि पाइ॥ ५३॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे 'प्रथम रासे' **श्री अंगद परम धाम गमन प्रसंग** बरननं नाम सपत बिंसती अंशु॥ २७॥

---

1. अजन्म। 2. माया रहित। 3. ईश्वर से भी परे। 4. नमस्कार हो। 5. जिन्होंने आपको खोजा है, उनकी उपमा नहीं कही जा सकती। 6. दर्शन नहीं करते।

अंशु २८

श्री अंगद जी बैकुंठ गमन प्रसंग

दोहरा

अमरदास हुइ पास गुर निज अरदास प्रकाश ।
अदभुत लीला आप की सदा बिलास हुलास ॥ १ ॥

चौपई

इह कारन किम रावर कीना । सभि के मन अचरज बड दीना ।
इस प्रकार नहिं उचित तुमारे । परम धाम को जथा पधारे ॥ २ ॥
श्री अंगद सुनि तबहि बखाना । सिक्खन के मन शंक महाना ।
सहत सरीर बिकुंठ सिधारे । आपस महिं मिल करति उचारे ॥ ३ ॥
एव न करते शरधा नासति । लगति दोसु मम दासन ग्रासति ।
सभिहिनि मन शंका मल धारी । इहु क्रिति करि जलु साथ पखारी[1] ॥ ४ ॥
मम संगत ते सिख सुख पावहिं । बिन शरधा सो हाथ न आवहि ।
बिगस बदन ते बहुर बखानी । सुनि पुरखा तूं पूरन ग्यानी । ५ ॥
इह जग सलिता को सु प्रवाहा । चल्यो जात, पुन पूरन आहा ।
जल तरंग जिउं जलहि समावैं । हैं जल जल ते भिन्न दिखावैं ॥ ६ ॥
संत द्वैत तिम नांहिन माने । आतम परमातम इक जाने ।
जिमु जल बिखै बुदबुदा होइ । जनम मरन देहिनि इम जोइ ॥ ७ ॥
पत्र पुरातन तरु के गिरैं । बहुर न जुरैं नए लग परैं ।
तथा सरीर जरजरी होइ । मरति न ए उपजहि जग जोइ ॥ ८ ॥
जगत अनादि काल को ऐसे । चल्यो आइ जिह पार न कैसे ।
अबि तुम सभि ने मोहि पिछारी । करहु न शोक मोह को टारी ॥ ९ ॥
मंगल नाना भाँति करीजै । शबद कीरतन पठहु सुनीजै ।
दोनहु पुत्र आइ तिस काला । परे चरन अरबिंद क्रिपाला ॥ १० ॥
दया धारि बिवहार बतावहु । जिमि पीछे हम करहिं, जनावहु ।
जगत रीति अरु कुल आचार । जैसे आयो होति अगार ॥ ११ ॥
सुनि श्री सतिगुरु वाक उचारे । 'जग अर कुल के जितिक अचारे ।
हमरे हेत नहीं कुछ करना । कीरति पठि सुनि नाम सिमरना ॥ १२ ॥

---

1. धो दी ।

करहु अनंद मंगला चारा। देहु सरीर अगनि ससकारा।
पुत्रन को संगति साथ। कहि श्री अमर गहायो हाथ॥ १३ ॥
सभिहिनि को उपदेश द्रिड़ायो। इह मैं अपने थान बिठायो।
मों महिं इस महिं भेद न जानो। जो जानै लहि खेद महानो॥ १४ ॥
भुगति मुकति सभि इन के हाथ। जो सेवहि होवै सुख साथ।
शरन परै सोऊ जग तरै। होइ दुखी द्रोह जु उर धरै॥ १५ ॥
इरखा करै सरै नहि कार। उलटो अपनो लेहि बिगार।
इम कहि लीनि हकारि जुलाहे। ततछिन आए सतिगुर पाहे॥ १६ ॥
तिन सों कह्यो 'तजहु इह ग्राम। अपर थान कीजहि निज धाम।
कीला अमर चरन लग गिर्यो। सो तरु होइ भयो अबि हर्यो[1]॥ १७ ॥
तिस के ढिग ससकार हमारो। मंदर सुंदर बनहिं उदारो।
नहीं बिदार सकहि तिस कोऊ। रहि चिरकाल थिरहि तरु सोऊ॥ १८ ॥
दरब ब्रिंद तबि दियो कुविंदह[2]। करहु अपर थल सदन बिलंदहि।
जे करि इहां बसहु कबि आइ। नहिंन बचो सगरे मरि जाइ॥ १९ ॥
सो इह थान हमारा भयो। तिस को मोल तुमैं दै दयो।
सुनि कुविंद धरि त्रास बिलंद। लयो दरब जो दीनसि ब्रिंद॥ २० ॥
पुन श्री अमर सिक्ख समुदाए। तन सिसकारन को समुझाए।
जहिं करीर होवै तरु हरो। तिस के निकट थान मम करो॥ २१ ॥
मुख प्रसन्न इमि कहि सभि कांहू। थिर्यो कमल जनु जल के मांहू।
अतिशै सुंदरता छवि बाढी। लाली अरुणोदय सम गाढी॥ २२ ॥
कमल पत्र सम बिकसे लोचन। देखति सभि दिश सोच बिमोचन।
मुसकावति बोलति मन भावति। सिख सभि पिखि करि बलि बलि जावति॥ २३ ॥
निज अनंद महिं मगन बिलंदे। धारन त्यागन देहि सुछंदे।
क्रिपा द्रिशटि सों सभि दिशि देखा। दीनसि दरशन अनंद विशेखा॥ २४ ॥
पुन सभि के देखति ततकाल। पौढ गए श्री गुरू क्रिपाल।
ऊपर बिसद बसत्र को लीनो। परम धाम प्रसथानो कीनो॥ २५ ॥
तिह छिनि विधि शंकर चलि आए। 'साधु साधु' मुख बाक अलाए।
गुर आशै को द्रिड़ बड कर्यो। अजर जरन निशचै उर धर्यो॥ २६ ॥
अपनी चाहनि हित बडिआई। करामात नहिं रंचु दिखाई।
उर गंभीर धीर बुधिवंता। अचल मेरु सम नहीं चलंता॥ २७ ॥
अपर देव इंद्रादिक आए। मंगल करि 'जै शबद सुनाए।
गोरख आदि सिद्ध समुदाई। आइ सभिनि कीनसि बडिआई॥ २८ ॥

1. हरा हो गया है। 2. जुलाहे को।

'जै जै कार' सुरग महिं भयो। अति उतसाह देवतनि कयो।
धंन धंन सतिगुरू बखानैं। आइ अगाऊ आदर ठानैं॥ २९॥
कलप ब्रिछ फूलन की माला। पहिरावहिं गुर गरे बिसाला।
पुशपांजल छोरति बरखावैं। बड सुगंधि चंदन चरचावैं॥ ३०॥
इत्यादिक अरपहिं अर गावैं। देव बधू नाचति हरिखावैं।
गुर आगवन सुरग उतसाहू। कहिं लग कहों जु भयो उभाहू॥ ३१॥
इत श्री अमर सिख्य जे सारे। आइसु ते उर शोक निवारे।
सभि मिलि करहिं कीरतन चारु। ऊचे उचरहिं जै जै कारू॥ ३२॥
पुन बिबान नीको बनवाइव। माल बिसाल पुशप लरकाइव।
सुंदर बसत्र लाइ दिश चार। मिलि बहुतनि शुभ रीति सुधार॥ ३३॥
सतिगुर तन करिवाइ शनान। बर अंबर ऊपर को तान।
बीच बिबान बहुर पौढाए। बुढे आदि सु लीनि उठाए॥ ३४॥
जहां जुलाहनि सदन सथान। चिखा रची तहिं रुचिर महान।
चंदन ब्रिंद धर्यो तिस बींच। तिल घ्रित अधिक आनि तिह सींच॥ ३५॥
सतिगुर तन ऊपर पौढाइ। दासू दीनसि अगनि लगाइ।
सत्तिनाम को सिमरन करैं। होति कीरतन शोकहिं हरैं॥ ३६॥
भली रीति ससकारणि करे। नमो ठानि धर पर सिर धरे।
मंगल करति रहे समुदाइ। गुर आइसु ते शोक नसाइ॥ ३७॥
बैठे बहुर सु डेरनि जाइ। कहहिं सुनहिं गुर जसु समुदाइ।
सागर सम गंभीर महांने। रिदे अचल मेरू सम ठाने॥ ३८॥
अजर जरन जिन केर समान। भयो न भूत भविख्य जहान।
क्रिपा द्रिशटि जिसु पिखहिं विशेशू। दे उपदेश निकंदन कलेशू॥ ३९॥
कली काल अंधेर गुबारा। तिन दरशन दीपक उजिआरा।
धंन धंन स्री अंगद रूप। जिन की महिमा महां अनूप॥ ४०॥
इत्यादिक गुन कहि सिमरंते। केतिक दिन जबि कीनि बितंते।
अन्न घ्रित मिशटान बिसाला। कर्यो इकत्र सभिनि तिसु काला॥ ४१॥
जहिं कहिं ते सिख साध हकारे। सभि आए श्री सतिगुर द्वारे।
श्री गुर अमर आप बिच थिरे। बीच रसोई के शुभ करे॥ ४२॥
सभि प्रकार करि त्यार अहारा। अपर सिख्य मिलि पाक सुधारा।
बहु पंकति इकसार बिठाई। लगे परोसन को समुदाई॥ ४३॥
स्वाद बिसाल अचहिं सभि संगति। बैठि बैठि करि अपनी पंगति।
सभि त्रिपते अचि स्वाद अहारा। कीनसि इनि गुर पुरब उदारा॥ ४४॥

श्री अंगद गुर सिमरन करि करि। बंदति कर बंदहि सिर धर धरि।
श्री नानक को लेकरि नामा। करि अरदास सरब अभिरामा ॥ ४५ ॥
मसतक टेकति संगति सारी। करि उतसाह मिली तिस बारी।
दासू अरु दातू के मन की। लखि श्री अमर गुरू बिधि इन की ॥ ४६ ॥
होइ नंम्रि पद पर करि नमो। संगति भई संग तिह समो।
गोइंदवाल पंथ चलि परे। मुख खडूर दिश तिस बिधि करे ॥ ४७ ॥
पाछल दिशा गमन ते जाइं। इसी प्रकार पहुंचि तिस थाइं।
श्री अंगद को सिमरन करि कै। मसतक धरनी पर निज धरि कै ॥ ४८ ॥
नमसकार करि प्रेम प्रवीन। गोइंदवाल दिशा मुख कीन।
जाइ आपुने सदन बिराजे। गुरता गादी पर शुभ साजे ॥ ४९ ॥

दोहरा

सोलह सै संमत हुतो नौ ऊपर तिस जान।
चेत सुदी तिथि चौथ तबि श्री अंगद प्रसथान ॥ ५० ॥
त्रेहण कुल बाहज बरन फेरू पिता सु भाग।
सभिराई माता हुती श्री अंगद सुख बाग[1] ॥ ५१ ॥
थीवी नाम सु भारजा पतिव्रत धरम सदीव।
दासू दातू पुत्र दुइ महां शक्ति जुत थीव ॥ ५२ ॥
संमत द्वादश मास खट नौ दिन ऊपर चीन।
गुरता गादी पर थिरे अंगद गुरू प्रवीन ॥ ५३ ॥
पठहि सुनहि इतिहास को आशा पूरन होइ।
इह दूसर पतिशाह को कर्यो सुन्यो जिम जोइ[2] ॥ ५४ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे श्री अंगद जी बैकुंठ गमन प्रसंग बरननं नाम अष्ट बिंसती अंशु ॥ २८ ॥

---

1. सुखदाता। 2. जो जैसा सुना है।

अंशु २६

श्री सतिगुरु अमर प्रसंग

दोहरा

अबि श्री सतिगुर अमर की कथा कहीं रुचि ठानि ।
श्रोता सुनहु प्रसन्न ह्वै दिहु सिक्खी मुझ दान ॥ १ ॥

पाधड़ी छन्द

मैं सुनी जितक सिख मुख दुवार । अर लिखी पठी जहिं कहिं उदार ।
सो सभि बनाइ छंदन मझार । अबि करव निरूपन रीति चारु ॥ २ ॥
श्री अमरदास जिम मारतंड । गादी गुरूनि स्यंदन अखंड ।
तिस पर अरूढ थित होइ आप । कीनसि प्रकाश सभि दिश प्रताप ॥ ३ ॥
गुरपुरब आदि करि कै खडूर । गोइंदवाल पहुंचे हदूर ।
दीनानि नाथ गुरता सु पाइ । हुइ अनंद मगन प्रविशे सु जाइ ॥ ४ ॥
इक हुतो सदन पर सदन चारु । तिस पर अरूढि दिय दर किवार ।
निकसे न वहिर नहिं को बुलाइ । थित हुइ समाधि गंभीर लाइ ॥ ५ ॥
ह्वै करि इकंत आनंद लीन । जबि महद जोति प्रापत प्रबीन ।
नहिं सकहि बेद जिस को बताइ । मन गिरा जुगति जिह नहिं लखाइ ॥ ६ ॥
अस आनंद सिंधु महिं सथित होइ । जिस एक बूंद लहि जगत जोइ ।
ब्रह्मादि अपर चीटी प्रयंत । तिस बिखै सकल पायति न अंत ॥ ७ ॥
अस सुमति वंत कहु कौन होइ । तिस को बिचार करि कहहि जोइ ।
टिकगी समाधि इक रस बिसाल । नहिं सकहि त्याग प्रेमी रसाल ॥ ८ ॥
बहु सिख्य वहिर इकठे सु होइ । चित चहति देखिबे दरस सोइ ।
सुनि जहां कहां पुरि ग्राम बीच । चलि आइ देखिवे ऊंच नीच ॥ ९ ॥
गन हुइ इकत्र करते बिचार । गुरु देहिं दरस तिम करहु ढारि ।
इन को न बैठिओ बनै ऐस । अबि देहिं दरस गुरु प्रथमु जैस ॥ १० ॥
सभि कह्यो को ब्रिध आपु जाइ । सिख संगतानि सुध दिह पुचाई ।
हित दरस आनि इकठी बिलंद । गन सम चकोर चित चहति चंद ॥ ११ ॥
सुनि कह्यो ब्रिध 'सभि लखन हार । लेहिं जानि मन की बिन उचार ।
निज दया करहिं अपुनी महान । तबि देहिं दरस सभिहूंनि आन ॥ १२ ॥

सुनि रहे ढटि क[1] कहि सकि न कोइ। दिन प्रती चाहि चित चगुन होइ।
सिख सकल महां अकुलाइ भूर। कबि देहिं दरश गुर इच्छ पूर ॥ १३ ॥
जिम स्वांति बूंद चात्रिक पिपास। चकवा न चाहि सूरज प्रकाश।
पतिव्रता तरुनि पति के बिओग। जिम महां कशट ते चहि संजोग ॥ १४ ॥

दोहरा

नहिं कोऊ जबि कहि सकै कीनसि अपर उपाइ।
इक सेवक बल्लू हुतो सो गुरु सेव कमाइ ॥ १५ ॥

सवैया

बल्लू ते नित प्रति सभि सेवा हुइ प्रसंन सतिगुर करवाइ।
प्रेम जुगति सो नीके करता सनमुख खरो रहै हित लाइ ॥
जबि कुछ टहिल करहिं फुरमावनि तबि सो करति सुधारि बनाइ।
नांहि त ठांढों रहै अगारी इमि सतिगुर के चित को भाइ ॥ १६ ॥
बुड्ढे आदि सिख्य सभि मिलि कै तिस बल्लू को निकटि बुलाइ।
बिनै बखानी प्रीत महानी इह संगत बैठी समुदाइ।
सभि चाहति हैं सतिगुर दरशन सपत दिवस इनि दिए बिताइ।
बन सूरज पंकज मुरझावहिं इह गति सभि की परै लखाइ ॥ १७ ॥
तबि बल्लू कर जोरि सभिनि ढिगि कहति भयो 'मैं तुम अनुसार।
जिम तुम कहहु करहुं मैं तिस विधि दरशन प्रापति होइं उदार।
अरज़ गुज़ारनि पर उपकारनि इस ते नीकी[2] और न कार[3]।
'सभि को ले निज संग गयो दर खरे करे तहिं बिनै उदार ॥ १८ ॥
आप निकट सतिगुर के गमन्यो हाथ जोरि हुइ समुख बखानि।
सभि घटि अंतरजामी हे प्रभु ! बहिर खरी संगति हितवान।
दरशन को अभिलाखति उर महिं जे सिक्खी महिं रहिं सवधान।
तर शुशकति जल को जिमु कांखति पित देखन सुत चाहि महान ॥ १९ ॥
बिनै सुनी लखि सिख्यन मन की बोले श्री सतगुर सुख खान।
तनहु चंदोवा सुंदर ऊपर फरश करहु बैठनि इस थान।
बल्लू ने सभि कीनसि त्यारी ज्यों ज्यों श्री गुर कीनि बखानि।
आइ सिंहासन पर तबि बैठे भगत वछल निज बिरद पछान ॥ २० ॥
चक्रवरति न्रिप पोशिश पहिरहि तथा त्रितीओ रूप सुहाइ।
जिमि इक नट हुइ सांग करै बहु, बदलहि वेख जगत दिखराइ।

1. ठिठक जाना। 2. अच्छा। 3. कार्य।

देख निहार भिन्न पहिचानहिं सभि की मति कौ दे बिरमाइ।
ढिग वरती[1] जे दास ताहि को लखहि सु इक बहु बेख बनाइ ॥ २१ ॥

तिमि सतिगुर के सिक्ख समीपी सो जानहिं–इक जोति जगंति।
अपर सरीर धरन समु बेख[2]—सु द्रिड़ मति राखहिं नहीं भुलंति।
श्री नानक अंगद अवि सो इह बैठे तखत सुहाइं महंत।
आइसु पाइ निकट सभि आए बंदन करि अकोर अरपंति ॥ २२ ॥

दरशन करि करि आनंद धरि धरि मिलि मिलि गुन कहि कहि सहि प्रेम।
उद्योग्यान रवि, हरि अग्यान तम, पुरहिं कामना प्रापति छेम।
बुड्ढे आदिक सिख्य सकल जे रिदे सुद्ध तपत्यो जिमि हेम।
नंम्रि होइ करि बैठि गए ढिग जिन के मन सिक्खी कहु नेम ॥२३॥

शबद कीरतन होनि लग्यो तबि करहिं रबाबी राग अलाप।
श्री गुर को दरबार लग्यो पिखि सिख्यन कै मन आनंद थाप।
सुने शबद निज भाग बडे लखि बिदत्यो जहिं जहिं गुरू प्रताप।
थाप उथापन सभि के संम्रथ, पाप कलाप खापि[3], हरि जाप ॥ २४ ॥

दोहरा

गुरता गादी पर थिरे व्रितीओ रूप नवीन।
बुड्ढे आदिक सिख्य सभि उसतति करति प्रवीन ॥ २५ ॥

त्रिभंगी छंद

कलिजुग नर तारन, लखि इह कारन, तन को धारन कीन प्रभो।
सिक्खन हितकारी जम भै हारी भगति बिथारी आप विभो।
दासन सुखदाता पुरख बिधाता, अन भै राता रूप थिरे।
जै जै गुरदेवा अलख अभेवा, सुर नर सेवा देव हरे ॥ २६ ॥
कलि कलुख निकंदन, जग गुर बंदन, तारहु मंदन करि करुना।
सभिहिनि के स्वामी, अंतरजामी नित निशकामी दुख दरना[5]।
उरि इच्छा पूरनि, शत्रुनि चूरनि, दासनि तूरनि दे सरना[6]।
जै जै गुर अमरं, पति सभि अमरं[7], सद अज अमरं[8] हम परना[9] ॥ २७ ॥

---

1. निकट रहने वाले। 2. वेश धारण करने के समान। 3. नाश करने वाले। 4. नष्ट करने वाले। 5. दुखों को काटने वाले। 6. दासों को शीघ्र शरण देने वाले। 7. देवताओं के स्वामी। 8. अजन्मा एवं मृत्यु रहित। 9. सहारा।

पाधडी छंद

इस भांति सिख्य सभि सतुति कीन। 'इम देहु दरस हम को प्रबीन।
दासन मझार बैठहु सदीव। सभि को अलंब अबि आप थीव ॥ २८ ॥
श्री नानक अंगद रूप दोइ। परलोक गमन बैकुंठ सोइ।
गुर भए आप तिन के सथान। दिहु नाम दान तारहु जहान ॥ २९ ॥
सुनि बिनै सभिनि ते उचित जोइ। मुख भन्यो भलो इह रीति होइ।
सिख्यन मझार हमरो निवास। चित चहहि सदा पूरहिं सुआस ॥ ३० ॥
गुर सिख्य धंनु बड भाग होइ। तिन को मिलाप सभि बिघन खोइ।
करि बच बिलास बहु इस प्रकार। पुन उठति भए श्री गुर उदार ॥ ३१ ॥
इमि निता प्रती दरशंन देति। पुन आइं संगतां बहु निकेत।
हति मोह मिरग गुर शुभति सिंह। पिख लहि संतोख संतोख सिंह ॥ ३२ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'श्री सतगुरू अमर' प्रसंग** बरननं नाम एकोनत्रिसंती अंशु ॥ २९ ॥

अंशु ३०

श्री अमरदास नित्त बिवहार प्रसंग

दोहरा

सपत दिवस पीछे प्रभू ठहिराइव बिवहार।
चलहिं निता प्रति तिसी बिधि सुनहु सु करव उचार ॥ १ ॥

निशानी छंद

जाम निसा बाकी रहै, हुइ अंम्रित वेला।
तबि जागहिं श्री सतिगुरु लखि भजन सुहेला[1]।
बल्लू आग्या लेहि तब जल को उठि जावै।
सलिता ते भरि कलस को मज्जन करिवावै ॥ २ ॥
केसनि महिं निति दधी सों गुर करहिं सकारे।
परम ब्रिध बहु सेत कच करशमश[2] पखारे।
बल्लू सरब सरीर को उबटनि मलि आछे।
सुद्ध होइ सभि रीति सों पट पहिरहिं पाछे ॥ ३ ॥
तिलक लगावहिं भाल महिं शुभ चंदन केरा।
बहुर सिंहासन पर थिरहिं इक मन तिस वेरा।
निज अनंद महिं लीन हुइ लग सहजि समाधा।
जोगी शिव ब्रह्मादि सभि जिस करहिं अराधा ॥ ४ ॥
प्राति होति लग इसी विधि इसथिरता पावैं।
बहुर रबाबी आइ करि गुर शबद सु गावैं।
अनिक रीति के राग को सुनि अनद बिलंदे।
मनो मधुर घन गरजते ज्यों मोर सुहंदे[3] ॥ ५ ॥
श्री नानक अंगद गुरु इन की वडिआई।
बखशश दई निहाल करि नर सुख समुदाई।
प्रेम संग सिमरन करहिं मुख धंन उचारहिं।
पुलकावल गदिगदि गिरा उपकार बिचारहिं ॥ ६ ॥
लीन होइ मन गुर चरनि अस अंम्रित वेला।
अंम्रित बरखति गुरु निकट सुनि होति सुहेला[4]।

1. भजन करने का सुहावना समय। 2. दाढी। 3. शोभित होते हैं। 4. सुखी।

जिनके शुभ बडिभाग हैं पहुंचहिं तिस काला।
जिम समुंद की झाल ते लहि रतन सुखाला॥ ७॥
इस प्रकार गुर सद गुन को पावैं।
जनम मरन चिरकाल के इन मूल मिटावैं।
परम प्रेम उमगहि रिदै सिमरहिं सतिनामू।
मिथ्या लखि परपंच को, इक थल बिसरामू॥ ८॥
दिवस चढ़े इस रीति सों हुइ अनंद बिलासा।
तब संगति सगरी मिलहि हुइ परम प्रकाशा।
दरशन लहै पुनीत बहु जन शांति सरूपा।
परम ब्रिध कद लघु जिनहुं, गुर व्रिती अनूपा॥ ९॥
हलत पलत करते सफल दरशन के पाए।
बंदन करि बैठहिं निकट मन मोद उपाए।
परमेशुर की दिश रिदा अभिलाखति जोई।
सु प्रसन्न तिस पर अधिक प्रभु प्रापति होइ॥ १०॥
सुमग बताइ निहाल करि ततकाल अनंदे।
सिमरन की लिव उर लगहि तिन अहं निकंदे।
जो अरथीय पदारथन दरशन को आवैं।
जानि बिरद निज देति हैं खरचति ही भावै॥ ११॥
परमेशुर की प्रीत जुति अति लागहि प्यारो।
बोलहिं करैं सनेह तिह पाइसि हरि द्वारो।
सुत बित की चित कामना करि दरशन पावै।
पूरन होइ सु तिनहु की, नहिं प्रेम बढावैं॥ १२॥
इस प्रकार मध्यान लौ गुर करि दरबारा।
लंगर होवहि त्यार तबि सभिहूंन अहारा।
निकट आइ जब लांगरी भाखहि अरदासा।
सुनि श्री सतिगुर तबि उठहिं संग संगति दासा॥ १३॥
चरन पखारहिं बारि सों सेवक हरखावैं।
सिख संगति सभि संग ले चौंके महिं आवैं।
आश्रम बरन बिचार नहिं इक पंकति बैसे।
सुंदर बिसद मराल सभि इकसम ह्वै जैसे॥ १४॥
सिख्यन महिं सतिगुर शुभति बैठे तिस काला।
मनहु मुनिनि महिं बन बिखै रघुबीर क्रिपाला।

लवन बिना हुइ ओगरा[1] सतिगुर सो खावैं।
अलप अचहिं, रहिं छुधा जुत, नहिं उदर भरावैं॥ १५॥

अपर सरब ही संगतां बहु स्वाद अहारा।
भांति भांति के अचति हैं सुख लहति उदारा।
इक पंकति अचकरि उठहिं भेदन जहिं दूवा।
आप आपने थान महिं पुन पहुंचन हूवा॥ १६॥

दिन के चौथे भाग महिं पुन बैठहिं स्वामी।
इक पंडित की प्रीति लखि गुर अंतरयामी।
जिस के मन मैं कामना—मैं कथा सुनावौं।
करौं भला मैं आपनो सतिगुरू रिझावौं॥ १७॥

तिस के उर की जानि कै गुर कथा कराई।
द्विज केशो गोपाल कहि विद्या निपुनाई।
आवै चौथे जाम जि दिन इतिहासु प्रकाशै।
सुनें सतिगुरू बैठि करि संगति इक पासै[2]॥ १८॥

बहुर रबाबी आइ करि गुर शबद सुनावैं।
राग रागनी धुनि सहत सुंदर बिधि गावैं।
कथा कीरतनि करति ही निसु जाम बितावैं।
सिमरन हुइ सतिनाम को इक चित लिवलावैं॥ १९॥

पुनि सुपतन हित सेज पर सतिगुरू बिराजैं।
इस बिधि का विवहार निति जिन पिखि अघ भाजैं।
अपर नेम ऐसो कर्यो श्री अमर सुजाना।
सेत बसत्र तन पर धरैं निति बिमल महाना॥ २०॥

अपर बसत्र नहिं ढिग रखहिं जब दूसर लेइं।
पूरब ऊपर होइ जो किसि रंकहि[3] देईं।
दुतिय रहहि नहिं सदन मैं ऐसे कहि दीना।
खैवे हेत जु अन्न हुइ निति आइ नवीना॥ २१॥

जितिक देग महिं लगहि तबि सो सरब पकावैं।
सिख संगति गन रंक जे मन भावति खावैं।
बचहि शेष सो नहिं रखहि देवहिं किसु ताईं।
किधौं पुरी महिं पशु गन तिन सकल खुलाईं॥ २२॥

1. दलिया। 2. पाठ० हुइ संगत पासै। 3. भिखारी को, गरीब को।

अगले दिन हित नहिं रहहि, इक मनुज अहारा।
आइ वहिर ते देग हुइ, इम नेम सुधारा।
अपर वसतु गिनती कहां जल कलसनि मांही।
सभि गिराइ छूछे धरहिं राखहिं कुछ नांही॥ २३॥

जिमि बिहंग दरवेश[1] ह्वै संचै न करैं हैं।
निति नवीन ले करि अचेहिं ईशुर तिनि दैहै।
घर महिं रहै न अन्न धन नहिं बसत्र बधीका।
कर्यो नेम श्री सतिगुरू ऐसी बिधि नीका॥ २४॥

वाहिगुरू सिख मुख जपहिं, जबि मिलहिं सु दोई।
पैरी पवणा सतिगुरू' आपस महिं होई।
जुति सनेह सिमरन करहिं गुर दरशन पावैं।
नई रीति गुर सदन की पिखि जगत रिझावैं॥ २५॥

निंदहिं खल बिंदहि नहीं—इह मग निरबाना।
कलि महिं भगति सु मुकति दा धरमन को आना।
पुन सतिगुर इमि नेम किय चहु बरन मझारा।
आश्रम धारी होइ को आवहि दरबारा॥ २६॥

प्रथम देग महिं जाइ के भोजन को खावै।
पुन दरशन गुर को करहि चलि करि ढिग जावै।
जो नहिं अचहि अहार को सुच संजम वंता।
तिस को दरशन होति नहिं हटि घर गमनंता॥ २७॥

आश्रम बरन जि भेद महिं नहिं मिलहिं हदूरा।
खावहिं कुनका देग को दरसहिं गुर पूरा।
निति प्रति आनहिं अन्न को सिख सेवक जोई।
होति देग बिन तोट[3] के खावैं सभि कोई॥ २८॥

बिदति भए सभि देश महिं सुनि सुनि सिख आवहिं।
श्री नानक के समें के पहुंचहिं दरसावें।
श्री अंगद महिमा लखहिं जे दरस करंते।
सभि आवहिं श्री अमर ढिग तिन थान लखंते॥ २९॥

धरहिं कामना उर बिखै, बिन कहे सु पावैं।
जो अरपति हैं आनि करि वहु बिनै अलावैं।

---

1. फकीर। 2. हजूर में, अर्थात् गुरु जी के सामने। 3. कमी के बिना।

एक दिवस के खरचि कौ लेवहिं तिन पासे।
और हटाइ सु देति तिन नहिं रखहिं अवासे॥ ३०॥

बिदतहि दिन प्रति अधिक ही निति भगति प्रकाशे।
अज़मति जुति केतिक भए लहिं सिद्धि सु पासे।
सेवहिं गुर पग कमल को करि प्रीति बिसाला।
सिमरन हुइ सतिनाम को दिन रैंन सुखाला॥ ३१॥

बसे पुरी महिं आनि के बहु कीनि निकेता।
केतिक भई दुकान तहिं बहु बनज समेता।
सभिहिनि की गुज़रान हुइ थुरि है नहिं कोई।
बिना रोग सुख भोग जुति, बसिबो तिन होई॥ ३२॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अमरदास नित्त बिवहार' प्रसंग बरननं नाम त्रिसती अंशु॥ ३०॥

अंशु ३१

सावणमल राजपुत्र जिवाइबा प्रसंग

निसानी छन्द

सिक्खी मग प्रगटाइबे श्री सतिगुर पूरे।
देहि दरस बहु संगता सिख्यन इछ पूरे।
इक दिन बल्लू खरे हुइ निज अरज़ गुज़ारी।
सुनहु प्रभू ! पतिशाहु तुम सिख पीर बिदारी[1] ॥ १ ॥

चार बरन के लोक गन बसिबे हित आए।
नीके बने निकेत नहिं यांते अकुलाए।
चरन भरोसे आपके इह आनि बसे हैं।
ग्रहि मंदर सुंदर बिना सुख नहीं रसे हैं ॥ २ ॥
क्रिपा होइ जबि आपकी घर उसरहिं सारे।
नर नारी सुख पाइ रहिं अपने परवारे।
प्रापति बसतू अपर सभि काशट नहिं पावैं।
दीरघ दार बिहीन घर कैसे उसरावैं ॥ ३ ॥
शरन परे सभि आप की आन न विशवासा।
ज़िकर करति निति काठ को, नहि आवति पासा।
सुनि प्रसन्न सतिगुर भए कहि दीनि दिलासा।
काशट आवहि बहुत अबि करि लेहिं अवासा ॥ ४ ॥
भ्राता को इक सुत हुतो सावण मल नामू।
निकट हकार्यो तांहि को बोले सुख धामू।
राज हरीपुर को जहां तहिं को गमनीजै।
दीरघ दार समूह जो निज पुरी अनीजै[3] ॥ ५ ॥
बेडे बांधो तहां ते सलिता महिं डारो।
जाइ बिलंब न लाईए तूरनता धारो।
आवहि काशट बहु इहां नर लेहिं निकासे।
करहिं सदन निज बसन को पुन लेहिं सुख रासे ॥ ६ ॥

---

1. सिक्खों की पीड़ा को दूर करने वाले। 2. लम्बी लकड़ियों के बिना। 3. लाओ।

सावण मल बोल्यो सुनति जोरे जुग हाथ।
दरब बिना किम आइ है नहिं नर गन साथ।
एकाकी हौ जाइ कै क्या करवि उपाए।
परबत बासी लोक जे किम कह्यो कमाए॥ ७॥
गुर महिमा जानहिं नहीं जे परबत बासी।
ल्यावन काठ समूह को किम करवि प्रयासी[1]।
जो बिधि आप बखान हौ तैसे मैं ल्यावौं।
कै अजमत मुझ निकट हुइ न्रिप को दरसावौं॥ ८॥
करों सिक्ख तिस देश को आग्या पुन मानै।
आवहि दीरघ दार तब हम जितिक बखानै।
तबि सुनि कै श्री अमर जी लखि कै तिस आशै।
कह्यो कि जैसे चित चहहु तस हुइ तुव पासै॥ ९॥
सावण मल की मात ने सुनि श्रोन मझारा।
कर्यो पुत्र को मोहु बहु उर महिं डर धारा।
कंपति हाथनि पगनि ते, धरकति बहु हीआ।
चलि आई सतिगुर निकट अस बोलन कीआ॥ १०॥
हाथ जोरि कंपति खरी 'इक सुत है मेरे।
डाकनि परबत महिं रहति मैं सुनी घनेरे।
काढि करेजा खाइंगी परदेशी जानैं।
नहिं कुछ चलहि सहाइता जबि प्रानन हानैं॥ ११॥
इक पुत्रा मुझ जानि कै कीजहि निज दाया।
जिस ते इह जीवति रहै सुख हुइ अधिकाया।
इस को नहीं पछान कुछ बिरमाइं कुचाली।
किमि आवहि हरि सदन को, जहिं बिघन बिसाला॥ १२॥
सुत सनेह बिरधा महां सुनि बाक सत्रासा।
करुना निधि बिगसे बहुत कहिं दे भरवासा।
तोहि पुत्र को भै नहिं गन भूत जु प्रेता।
डाकनि बपुरी क्या करैं बड भा बल एंता॥ १३॥
बीर बवंजा जोगनी इस आइसु मानैं।
सरब सुरासुर जित किती डर धरें महानै।

---

1. यत्न।

महां शकति इस मैं भई नहिं कीजहि त्रासा ।
गई सदन को दीन बनि कुछ कारि भरवासा ॥ १४ ॥

सावणमल्ल हकारि पुन निज निकट बिठावा ।
इक रुमाल कर पौंछनो गुर हाथ उठावा ।
दयो तिसहि समझाइ करि 'इस अज़मति भारी ।
चर्हाहिं जि किसहि संहार दिहु चहिं म्रितक जिवारी ॥ १५ ॥

जिसकी चित माँहि चाहि हुइ इस महिं ते लीजै ।
सरब सुरासुर आदरें, चाहि सु कहि दीजै ।
थाती अज़मति की इही, निहसंसै मानो ।
करहु देश सिख आपनो पुन काज बखानो ॥ १६ ॥

बपुरे कहां पहारीए आइसु नहिं मानैं ।
तीन लोक पर हुकम तुब नहिं फेरन ठानै ।
ले रुमाल हरख्यो रिदै कर जोर बखानी ।
प्रभु जी सभि कारज बनै अज़मत ले मानी ॥ १७ ॥

ले रुमाल सिर पर धर्यो खुलिराए कपाटा ।
सभि सिधां आगे खरी हेर्यो बड ठाटा ।
बंदन करि गमन्यो सदन मातादि :कुटंबा ।
सभि को धीरज करि दई, मुझ बडो अलंबा ॥ १८ ॥

नहिं चिंता चित मैं करहु पद ऊच मिल्यो है ।
मुदित कर्यो है परवार को पुन पंथ चल्यो है ।
सनै सनै गमन्यो तबहि मग उलंघ्यो सारे ।
गयो हरीपुर के निकट गिर रुचिर निहारे ॥ १९ ॥

सुन्दर बन उपबन जहां हरिआवल होए ।
हरित पत्र फल फूलगन सावनमल जोए ।
बिमल नीरगन वापका गन रहैं बिहंगा ।
नर अवकीरन[1] जहिं कहां धर बेख सुरंगा ॥ २० ॥

सुंदर सरबंगन बिखै तरुनी गन हेरी ।
आंख कमल की पांखरी चल चाल घनेरी ।
बिधु बदनी, सुक्रिशोदरा, सुठ श्याम सुकेसी ।
गजगमनी, सुर कोकला, कट केहरी जैसी ॥ २१ ॥

---

1. फैले हुए ।

कंठ कपोती सुंदरी, सम ओठ प्रवाला ।
जोगिन जो धीरज हरैं ऐसी गन बाला ।
आन देश अवनी बिखै तिस देश समाना ।
अबला कितहूँ होति नहिं अस रुचिर[1] महाना ॥ २२ ॥

रजधानी तिह न्रिपत की नर गन धनवाना ।
पिखि सुंदरता अधिक ही पुन निकट पयाना ।
रोदन को बड शबद ह्वै सुनि श्रोन मझारा ।
लोक सँकरे मिलि रहे करिं हाहाकारा ॥ २३ ॥

बूझ्यो इक नर 'क्या भयों किउं रोदन ठांनैं ।
नगर दुखी सगरो अहै उर शोक महांनैं ।
को एसो बड विघन भा, व्याकुल नर नारी ।
दिखीयति हरखति को नहीं सभि हैं इक सारी ॥ २४ ॥

नर नै भन्यो ब्रितांत तबि 'जो नगर नरेशा ।
एक पुत्र तिस को हुतो तन चारु विशेषा ।
तरुन होनि लाग्यो हुतो पिखि जीवति राजा ।
पटरानी को परम प्रिय म्रितु भयो सु आजा ॥ २५ ॥

यांते सभि व्याकुल भए न्रिप पाग उतारी ।
पीटति सिर सुध नहिं रही मूरछना धारी ।
तिमि राणी आतुर बडी भा रिदे कलेशू ।
प्रजा कुतो हरखहि रिदै दुख लह्यो अशेशू ॥ २६ ॥

न्रिप सुखि ते परजा सुखी दुखि ते दुख पावै ।
इम ब्याकुल नर हुइ रहे रव रुदन उठावैं ।
सुनि कै चित महिं चितवतो इहु अज़मत थाई ।
न्रिप सुत एक जिवाइबे सभि लागहिं पाई ॥ २७ ॥

सेवक होवहिं भाव धरि सभि सेव कमावैं ।
इस ते नीकी अपर बिधि को हाथ न आवै ।
उर प्रसन्न हुइ करि गयो न्रिप द्वार अगारे ।
कूंजन सम रानी जहां कुरलावति पुकारे ॥ २८ ॥

केस उखारति सीस के नहिं बसन संभारै ।
कर तल सों पीटति बदन सिर जंघन मारै ।

1. सुन्दर ।

अति ब्रिलाप संकट लह्यो लोचन जल गेरैं ।
जहिं कहिं हाहाकार भा ऊची धुनि टेरैं ॥ २९ ॥
न्रिपति महां ब्याकुल पर्यो मंत्री बिलखावै ।
आपस महिं को धीर देइ, इक सम दुख पावैं ।
अवनी तल महिं लिटति को, सिमरहिं गुन केते ।
'सूरत सुंदर राजसुत सभि को सुख देते ॥ ३० ॥
राजा रानी प्रजा को सचिवन समुदाया ।
सभिहिनि को इक आसरा सो प्रभु नहिं माया ।
अति कलेश जुत हेर करि उर दया उपाई ।
अर स्वारथ हित आपने सावण मनि आई ॥ ३१ ॥
न्रिप ढिग ते इक सचिव को निज निकटि हकारा ।
हुइ इकंत तिस को कह्यो 'बड कहिर गुज़ारा ।
तऊ गुरनि की क्रिपा ते मैं इसे जिवावों ।
सिक्ख होइं मेरे सकल, सिक्खी बिदतावों ॥ ३२ ॥
प्रथमे राजा सिख बनहि पुन सचिव रु सैना ।
बहुर प्रजा पाहुल पिवै, कहु न्रिप सों बैना ।
सुनति सचिव हरखति अधिक ढिग गा महिपाला ।
कही बात समझाइ सभि 'इक संत बिसाला ॥ ३३ ॥
श्री नानक के पंथ को बोलति इमि बानी ।
मति मेरे महिं न्रिपत हुइ जे लेवहि मानी ।
तौ मैं न्रिप सुत प्राण जुति ततकाल जिवावौं ।
पीछे मम सिक्ख होहिं सभि सिक्खी प्रगटावौं ॥ ३४ ॥
सुनि महिपालक कान महिं जनु अंम्रित डारा ।
कह्यो 'सरब ही सिक्ख ह्वैं, गुरदेव हमारा ।
कुवर जिवावहु आनि करि आइसु जिम भाखे ।
हम तिस के अनुसारि निति सेवा अभिलाखे ॥ ३५ ॥
आनहु बिलम बिहीन तिह प्राननि को दाता ।
नाहि त सभिही हम मरहिं संगि अपने ताता ।
दौरि सचिव संग ले गयो न्रिप साथ मिलायो ।
करी चरन पर बंदना सनमान बिठायो ॥ ३६ ॥
प्रान सहत सुत को करहु हम सभि अनुसारे ।
निस बासर सेवा लगहिं हम दास तुमारे ।

सावण मल ने कह्यो तबि 'ले म्रितक सु आवो ।
भीर हटावो सकल ही करि शांति बिठावो ॥ ३७ ॥

वाहिगुरु सिमरन करहु नहिं रोदन कीजै ।
सतिगुर पर बिशवास धरि उर सभि हरखीजै ।
न्रिप सुत म्रितक उठाइ करि आन्यो ततकाला ।
सावण के आगे धर्यो बिसमाइ बिसाला ॥ ३८ ॥

बसत्र उधार्यो बदन ते जल बहुर मंगायो ।
तिस रुमाल की खूंट इक धोई कर लायो ।
सो जल जबि मुख महिं पर्यो 'सतिनाम' बखाना ।
सीस छुहाइ रुमाल को आए तिस प्राना ॥ ३९ ॥

जथा संजीवनि जल घसी लछमन मुख डारी ।
तथा कुवर जीवति उठ्यो चख पलक उघारी[1] ।
राजा मिल्यो पसारि भुज रानी मुख चूंमा ।
ठांढो ततछिन सो भयो तजि करि तल भूंमा ॥ ४० ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे '**सावण मल राज पुत्र जिवाइबा**' प्रसंग बरननं नाम एक त्रिसती अंशु ॥ ३१ ॥

---

1. नेत्रों की पलकें खोलीं ।

अंशु ३२

सावणमल श्री गुर संग मिलन प्रसंग

सवैया छंद

भयो अनंद बिलंद सभिनि कै मंगल गावहिं अनिक प्रकार।
बड उतसाह कर्यो महिपालक दीननि दीनसि दरब उदार।
लघु दुंदभि गन संग नफीरन बाजनि लागे दुरग सु द्वार।
भार कलावति करति राग धुनि बजहिं म्रिदंग, रबाब सतार॥ १॥

महां अमंगल प्रिथम हुतो जहिं तहिं तब मंगल रचहिं बसाल।
राजा रानी सचिव सहत सभि सावण मल आगे ततकाल।
हाथनि जोरि अकोरन अरपहिं गर पहिराई फूलनि माल।
चमरु फुरावहिं सुजस बधावहिं सीस निवावहिं धरि पद भाल॥ २॥

सिवका[1] पर चढाइ तहिं ल्याए सुंदर मंदर अंदर थान।
सादर डेरे को करवायो खान पान सभि दीनसि आन।
बहुत मोल को पलंघ डसाइहु आइ सभिनि ने बंदन ठानि।
ज़रीदार गुंफे जिस लटकति ऊपर रुचिर चंदोआ तानि॥ ३॥

इत्यादिक सुस्रूखा[2] कीनसि महिमा पिख सगरे बिसमाइ।
गुर समरत्थ महां सभि रीतिन न्रिपसुत म्रितु को दीनि जिवाइ।
कितिक दिवस महिं न्रिप सिख होयहु पुन सभि सिक्खी के मग आइ।
वाहिगुरु सिमरहिं सुख पावहिं चित इच्छा कहि देति पुजाइ॥ ४॥

पुन सावण मल न्रिप संग भाख्यो 'हमरे सदन बिपासा तीर।
चाह दार दीरघ की तिह ठां इकठां करहुं बिसाल शतीर।
बेडे बंधहु काशट गन के द्रिड करि बीच डारीए नीर।
तरन हार नर संग सिधावहिं सने सने तरि पाइं बिहीर॥ ५॥

गोइंदवाल नगर तट ऊपर तहां जाइ सगरो निकसाइं।
इमि सुनि भूप हरीपुर के तबि बहु नर दीने कार लगाइं।
काशट को बटोर बहुतेरा खाती ते तछाइ[4] चिरवाइ।
दीरघ लै लकरी करि संचै अनिक भांति सुंदर धरिवाइ॥ ६॥

---

1. पालकी। 2. सेवा। 3. अर्थात् चलते जाएँ। 4. छिलवा कर।

बेडे बंधि बिपासा के बिच नर करि संग सु दिए चलाइ।
गोइंदवाल बिसाल काठ गन तहिं ते तूरन पहुंची आइ।
बहिर निकासी सतिगुर हेरी, खरे आप हुइ दई बंडाइ[1]।
जितिक चहति नर दई तितिक तिन ले सभि गए आपनी थांइ ॥ ७ ॥

निज कुटंब के मानव जेई बिप्र ब्रिद को बांट सु दीनि।
बाई जात जु खत्री कुल की गोइंदवाल बास तिन लीन।
सरब जाति सिख सदन करे तहिं तिन काशट ले निज घर कीनि।
बसन हार पुन अपर जि मानव बांछति दीनसि गुरू प्रबीन ॥ ८ ॥

श्री गुर अमरदास हुइ ठांढे धामनि की अवनी अवलोक।
जथा जोग बांटी सभिहिनि को, लेकरि मुदिति भए सभि लोक।
आप आपने रचे सदन शुभ जो गुरु दईसु लीनी रोक।
बडे भाग जिनि भाल हुते तबि बसे नगर महिं सदा अशोक ॥ ९ ॥

सुंदर सलिता तीर बिपासा नीर बिमल गंगा सम जांहि।
पाप बिनाशन पावन सो बहु जल को अंग सपरशै वाहि।
तातकाल फल सतिगुर दरशन जिहिं जोगी ध्यावहिं उर मांहि।
बेद समान गिरा गुर सुनिबे समझनि सुगम अगम तिय नांहि ॥ १० ॥

देग होइ सगरे दिन गुर की सरब जाति भोजन को खाइं।
जो नहिं खांहि न दरशन पावहिं इही नेम सतिगुर ठहिराइ।
बचहि अहार जु लंगर मांही सो सभि गऊअनि देहि खिलाइं।
पसू अघाइ शेष पुन रहि जो सरब बिपासा महिं दे पाइ ॥ ११ ॥

निस महिं शेष रहिन नहिं पावै अन्न दरब जेतिक चलि आइ।
सभि को देहिं अनंदनि लेवैं, देग विखै त्रिपतहिं तहिं खाइ।
तातकाल पुरि बस्यो रुचिर सो स्री सतिगुर जहि आप बसाइ।
जो धरि आइ कामना मन महिं दरशन परसति सो नर पाइ ॥ १२ ॥

उत सावन की कथा कुछक है श्रोता सुनहु सुजसु गुर केरि।
सादर बास हरी पुर कीनसि मनता जिस की होति बडेर।
जब राजा तिह चरन पखारे अपरन की गिनती क्या हेरि।
बंदन करहि ब्रिद नर मिलि मिलि कर जोरहिं करि भाउ घनेर ॥ १३ ॥

धरहिं कामना जाचहिं आनि जु तिस रुमाल ते पूर करंति।
सुत बित की कै तन अरोग की इत्यादिक प्रापति हरखंति।

---

1. बांट दी।

पाइन पास उपाइन[1] अरपति सरब देश नर जसु उचरंति।
सिक्खी बिथरी सावन मल की अज़मत हेरति उरबिसमंति ॥ १४ ॥

राजा रानी त्रास करति बहु सेवहिं नित हुइ करि अनुसार।
बहुत मोल के बसत्र मंगावैं करिवावैं पोशश सभि चारु।
भोजन महिं अमेज़ करि मेवे शुभ स्वादनि को देति अहार।
ठांढे रहैं दास हित सेवा हुकम देहिं सो करहिं सुधार ॥ १५ ॥

अस पद ऊचो जबहि पहूचो चित महिं चितवति भा इसि भाइ।
कारज मधुर गयो सभि गुर को पहुंचाए काशट समुदाइ।
पुरि के घर सभि उसर परहिंगे बहुरो कुछ बाकी बच जाइ।
गोइंदवाल उचित है चलिबो दरसहिं सतिगुर पंकज पाइ ॥ १६ ॥

तऊ एक चिंता तहिं जैबे इस रुमाल ते अज़मतवान।
ढिग पहुंचे गुर लेवहिंगे इहु, कारज भयो पूर, उर जानि।
शकतिहीन हुई हौं तिस छिन महि बहुर न करि है को मम मान।
वडिआई गुर की तबि बिदतहि मैं बन जावौं अपर समान ॥ १७ ॥

इहां रहे ही बने वारता पूजहिं लोक बिलोकि महान।
सेवहिं सरब न्रिपत ते आदिक अरपहिं अनिक उपाइन आनि।
गोंइदवाल गए कथा प्रापति बन्यो रहौं गुर इस ही थान।
चहों सु अज़मत ते सभि पावौं कीरति बिदतहि बहुत जहान ॥ १८ ॥

इम द्रिढ़ चित महिं करि तहिं ठहिर्यो-नहिं जावौं अब गोइंदवाल।
कितिक मास बसते तहिं बीते अंतरयामी गुरू बिसाल।
जान्यो चित बिकार जुति तिस को पठ्यो हुकमनामा तिस काल।
पठि करि कुछ विलाउ लिखि 'भेज्यो आवन देति नहीं महिपाल ॥ १९ ॥

केतिक दिन महि दरशन करिहौं 'श्री सतिगुर सुनि जान वलाउ।
अज़मत जुकति रुमाल जु ततछिन गोइंदवाल चह्यो चलि आउ।
चितवन ते तूरन ही आयहु छूछो सावन तहां रहाउ।
जानि गुरू गति बहुत बिसूरति मैं कुकरम ही लियो कमाउ ॥ २० ॥

दिन दुइ चतुर बिसूरत बीते पुन मन महिं समझ्यो इस भाइ।
राजा रानी सचिव प्रजा जुत मैं अब चलहु परहु गुर पाइ।
भूल करौं बखशावन[3] सगरी अहैं बिसाल[4] न कुछ मन ल्याइं।
सभि संगति जुति शरनी परिहौं बिनती करिहौं थिर अगवाई ॥ २१ ॥

---

1. भेंट। 2. बहाना। 3. क्षमा करवाना। 4. उदार।

वडिअनि की रिस अगनी समसर बिनै नीर ते होवति शांति।
अवर उपाव नहिं कुछ बनि है, करहिंजि बल छल घ्रित पर जाति।
इह मति द्रिढ़ करि कह्यो न्रिपति को 'हमरे बडे तहां अवदाति[1]।
क्रिपा पाइ तिन की मैं आयहु बस्यो बहुत सभि को सुखदाति ॥ २२ ॥
अबि दरशन हित मैं चलि जै हौं तुम भी चलि करि परसहु पाइ।
अति पुनीत है मेल तिनहूं को लोक प्रलोक भलो हुइ जाइ।
उत्तम अधिक अकोरन को लिहु गुर प्रसन्नता ते सुख पाइ।
सभि रणवास सचिव अरु सैना प्रजा लोक संगै समुदाइ ॥ २३ ॥
न्रिप कर जोरे मान बारता भ्यो त्यार सभिही संग लीनि।
सावणमल हित सिवका दीनसि गज बाजी रचि साज नवीन।
बहु डोरे महिखी[2] ते आदिक चढि चाली उर आनंद कीनि।
भयो उमाह सभिनि के मन महिं—दरशन देखहिं गुरू प्रबीन ॥ २४ ॥
सने सने सभि मारग उलंघे गोइंदवाल पुरी को आइ।
नदी विपासा के तट उतरै न्रिप महिखी सैना समुदाइ।
धीर दिलासा दे करि तबिही सावणमल्ल पुरी प्रविशाइ।
मिल्यो मेलीअनि सिख सभि संगति कुशल प्रशन करि उर हरखाइ ॥ २५ ॥
पुन सतिगुर के दरशन कारन कुछक लाज जुति गमन्यो पास।
पग पंकज पर सिर को धरि करि कीन बंदना भाउ प्रकाश।
मैं रावरि को सिख अर सुत सम सेवक सदा एक उर आसु।
लघु बिगार दे बड़े सुधारहिं, छिमा करहिं अपनो लखि तासु ॥ २६ ॥
सिक्खा देति दुलारति सुत को अवगुन अवगुन मन महिं धरहिं न कोइ।
उपजहि लाज बडन के हीअरे सिख सेवक सुति खोट जि होइ।
बखशहिं खता बिरद निज जानहिं, तुम अतरयामी सभि जोइ।
कहौं कहां तुम जानहु सगरी इमि कहि जोर रह्यो कर दोइ ॥ २७ ॥
श्री सतिगुर मुसकाने पिखि कै क्रिपा सिंधु करि क्रिपा बखान।
सिख, सेवक, सुत अहैं जि मेरे तिन को चहौं करन कल्यान।
तुव मन महिं हंकार व्यापि भी तिस हरिबे हित इमि क्रित ठानि।
लियो रुमालन करि चित चिंता, अबि भी तुझ दैहौं बहु दान ॥ २८ ॥
देश हरीपुर सहत न्रिपति जुत इहु संगति सगरी तुझ दीन।
चिरंकाल सुख भोगहु बनि गुर मेरी दात न होवहि हीन।

1. प्रकट। 2. पटरानी।

रहो कुशल सों सभि कुछ पावहु पुन प्रलोक मैं निज ढिग कीन ।
न्रिभै फिरहु सभि भूत प्रेत जे डाकन आदि सु तोहि अधीन ॥ २९ ॥

गुपत रहति जे शकति जुकति बड मम बखशिश ते तुझ ढिग आइ ।
चित महिं चहहु करावहु तिन ते नहिं आग्या को सकहिं मिटाइ ।
निस दिन सेवहिं सगरे तो कहु मम सेवा ते इहु फल पाइ ।
बनि गुरचरन पुजावहु सभि ते अपर न शंका कुछ मन ल्याइ ॥ ३० ॥

मम रुमाल ते सिद्धां सगरी भयो तोहि मन तिन महिं लीन ।
पाइ भयो हंकार तिनहु ते भगति पंथ ते होयहु हीन ।
गति प्रलोक बिगरे है तिन ते यांते मैं सभि लीनसि छीन ।
रछ्या करी सकल बिधि ते तुव अबि सिमरहु सतिनाम प्रबीन ॥ ३१ ॥

दोहरा

इस बिधि अपनो जानि कै सुख दीनसि दुइ लोक ।
धंन धंन श्री गुर अमर सिमरहु करैं अशोक ॥ ३२ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'सावणमल श्री गुर संग मिलन 'प्रसंग बरननं नाम दोइ त्रिसती अंशु ॥ ३२ ॥

अंशु ३३

सच्च ना सच्च प्रसंग

दोहरा

जुग लोकनि सुख दाति लहि सावण मल हरखाइ ।
महिमा जानी गुरू की अपर न को अधिकाइ ॥ १ ॥

सवैया

जथा जोग श्री सतिगुर कीनसि मम मन को नास्यो हंकार ।
संगति दई ्पुपति बसि होए कारज सगरे दए सुधार ।
मुदित होइ करि बिनै बखानी 'आयो भूप सहत परवार ।
सैना प्रजा सचिव संग सगरे महिखी आदिक और जिदार[1] ॥ २ ॥
आग्या रावर की अबि होवहि दरशन करहिं समीपी आनि ।
अभिलाखा तिन पूरन प्रापति करहिं बिलोचन सफल महानि ।
होहिं पुनीत, पाप सभि नासहिं, पावहिं पुंन वंदना ठानि ।
शरधा धरि धुरि ते इह गमन्यो तुम अंतरजामी सभि जानि ॥ ३ ॥
श्री गुर अमरदास करि करुना कह्यो 'देग ते भोजन खाइ ।
नर संगी सभि ही संग आनै इसत्री रूप न आवनि पाइ ।
पुन सावण अरदास बखानी 'महांराज सुनीअहि सुखदाइ ।
चित आसा धरि अधिक प्रेम करि कहि न्रिप सों आई समुदाइ ॥ ४ ॥
करहु आप अभिलाखा पूरन चहति दूर ते पहुंची आइ ।
हुइ निरास बिन दरशन गमनहिं बहुत बिसूरहिंगी दुख पाइ ।
दया करन को बिरद संभारहु आइसु देहु सकल दरसाइं ।
धरैं भावनी सकल भामनी गुर जी पठबहु तिनै बुलाइ ॥ ५ ॥
तबि सतिगुर आइसु इमि कीनसि जितिक भारजा न्रिप की होइं ।
दासी आदि अपर जे दारा रंगदार अंबर ले जोइ ।
सभि सों कहहु स्वेत करि पोशिश मुख को नहीं छुपावहि कोइ ।
दरशनि करि करि सगरी गमनहिं इस प्रकार की बनि कै सोइ ॥ ६ ॥

---

1. स्त्रियाँ ।

देग अहार अचहिं नहिं शकहिं, दरशहिं, नहिं लाजहिं मन मांहि ।
इमि दरशनि को करहिं आन करि जे तिन के चित महिं अति चाहि ।
सावन सुनि करिं तहिं ते गमन्यो गुर आइसु को कहि तिह पाहि[1] ।
मैं कहि बहु बिधि अस ठहिराई देनि दरस तिय मानहिं नांहि ॥ ७ ॥

इसत्री नहिं हजूर महिं पहुंचहिं बरजी रहहिं वहिर के थान ।
नमो करति बिन देखनि ते सभि, तुम को इस बिधि कीन बखान ।
सेत वसत्रं पहिरावहु सभि को पुन पावहिं दरशन इत आनि ।
सुनि महिपालक मानी तिस बिधि मुदति भयो मन बिखै महान ॥ ८ ॥

सभिनि देग ते भोजन खायो बहुर गयो संग ले रणवासु ।
वसत्र सुपेद सभिनि तन धारे बदन अछाद्यो नहिं किस बासु[2] ।
सतिगुर खरे रहति गहि कीलक[3] वीच चुबारे ऊच अवासु ।
हुती दरीची निकट तिसी कहु दरशन करहिं जिनहुं कहु प्यास ॥ ९ ॥

तिस के तरे खरे हुइ करि कै अवलोकति गुररूप सुजान ।
दरशन करि करि गमनति आगे अपर आइ हेरहिं तिस थान ।
देश बदेशनि की बडि संगति इसी रीति दरसति है आनि ।
अंगीकार अकोर करहिं नहिं एक दिवस को लें हितु खानि ॥ १० ॥

इह मिरजाद करी श्री गुरु जी निकट सिक्ख इस विधि को जानि ।
सोइ करहिं अपर नहिं बरतहिं महिपालक आयहु तिस थान ।
सनमुख खरे होइ गुरु दरसे हाथ जोरि बंदन को ठान ।
उत्तम अधिक अकोरनि को तबि अरपन लाग्यो बिनै बखानि ॥ ११ ॥

सभि विधि तबि सिक्खन समझाई फेर नमो करि कीन पयान ।
पुन सचिवन दरसे स्री सतिगुरु अरु सैना के लोक महांन ।
महिखी सहत अपर जे दारा बिसद बसत्र जुति वंदन ठानि ।
आवति जाति प्रणाम सु करि करि सीस निवाइं जोर करि पान ॥ १२ ॥

इक राणी सनमुख जबि होई झटित बसत्र ते बदन छिपाइ ।
हुती नवीन लाज उर छाई मति बिन[4] गुर बचन न सिमराइ ।
तिस की दिशि अवलोकन करि कै सतिगुर बोले सहिज सुभाइ ।
इह कमली किस कारन आई जे हमरो दरशन नहिं भाइ ॥ १३ ॥

ततछिन सुधि-बुधि-नाश भई तिस, बसत्र उतारति दीए बगाइ[5] ।
धाइ अचानक गई वहिर को मानव घेर रहे समुदाइ ।

---

1. उनके पास । 2. वस्त्र से । 3. किल्ली । 4. मूर्ख । 5. फेंक दिए ।

न्रिपत ब्रितांत सुन्यो गुर बच को अधिक त्रास करि उर बिसमाइ।
शरधा वधी अमोघ वाक अस जिम रघबर के सर[1] सफलाइ॥ १४॥

रह्यो कितिक दिन, निति प्रति दरसहि बंदन करहि भाउ बहु ठांनि।
नहीं भारजा प्रापति होई करे बेग गमनी उदिआना।
देग करावति रह्यो गुरू की सचिवनि सहत करति तहिं खांनि।
डरहि अवग्या ते कछु होहि न, मन ते नंम्रि रहै महानि॥ १५॥

कितिक दिवस बसि बिदा भयो पुन सतिगुर आइसु तिसु को दीनि।
सावणमल्ल गुरू है तुमरो इस को निति मानहु हित कीनि।
सुत जिवाइबे आदि कामना पूरब पूरन करी प्रबीन।
अबि भी बांछति देइ सभिनि तिन शरधा धरहु कशट गन छीन[2]॥ १६॥

सरब देश तुमरे को गुर है हित करि सेवहु प्रिथम समान।
हाथि जोर न्रिप ने सिर धारी, तिन के निति अनुसारि महान।
मनहु प्रान सभि के सुत ऐसो म्रितक जिवाइ दियो वड दान।
इस ते नीको आन कौन है जिस करि तुमरो दरशन ठानि॥ १७॥

इमि कहि न्रिप को बिदा कर्यो प्रभु, गयो हरीपुर अपने देश।
सिमरन करति रह्यो श्री सतिगुर सावणमल को पूज विशेश।
सचिवन सहत प्रजा सभि मानहिं उत्तम देति अकोर हमेश।
गोइंदवाल वसहि कबि आइ सु कबहूं जाइ समीप नरेश॥ १८॥

इक सेवक नित लंगर के हित समधा बन ते भार सु ल्याइ।
प्रीति रिदै सतिगुर पद पंकज अपर न प्रेम करे किसि थांइ।
क्रिआ करम बिवहार अचारनि जुकति न कोऊ जानि सकाइ।
पठनि सुननि, बोलनि गति मिलिबो, देन लेन कुछ नहीं लखाइ॥ १९॥

जाप मंत्र कुछ जपि नहिं जानहिं सेवा करनि बिखै हित ठानि।
सच्चनि सच्च' बके इक मुख ते, दूजी बात धरहि नहिं कान।
उठति बैठति आवति जाते बन महिं पुर महिं सभि ही थान।
सच्चनि सच' बचन इमि उचरहि, मन राखहि सतिगुर को ध्यान॥ २०॥

सिख संगति सगरे ही सुनि करि 'सच्चनि सच्च' नाम कहिं तांहि।
दया करहिं तिस पर हित धारहिं, हसहिं बहुत सभि उर हरखाहिं।
'आवहु सच्चनि सच्च पुकारहिं बहुर सराहहिं सेव दिखाहिं।
इंधन आनहिं आइसु मानहि जो सिख कहहिं सु फेरहि नांहि॥ २१॥

---

1. तीर। 2. सभी कष्ट दूर हो जाएँगे।

इमि संगति की खुशी होति निति सतिगुर भी उर होहिं क्रिपाल ।
जिस पर सिख्य प्रसन्न रहहिं बहु तिस पर तीन लोकपति द्याल ।
प्रभू प्रसन्न होइं जबि जिस पर करुना करहिं चराचर जाल ॥ २२ ॥
कंवर एक धरहि तन छादन 'भूरे वारो' करहिं उचार ।
सेवहि सदा देग की सेवा ल्यावनि समधा आदि जिकार ।
सो बन बिखै नितप्रति गमनति इक दिन गयो बंधिबे भार ।
सो न्रिप की दारा इस पिखि करि आई दौर महां बिकरार ॥ २३ ॥
सिर पर बार खिडे चहुं दिश महिं नगन अंग सगरो जिस केरि ।
भै दायक बन महिं निति बिचरहि सच्च निसच्च गह्यो तिन हेरि ।
गर लपटी मुख दंतनि काटति करे नखन के घाव घनेरि ।
छूट चह्यो, बल कर्यो आपनो, तऊ न छोड्यो त्रास बडेरि ॥ २४ ॥
घाइल भयो, रुधिर बहु श्रव्यो[1] करहि जतन छूटन तिसि पास ।
नीठि नीठि तिस दूर कर्यो जबि अपनो जोर बिसाल प्रकाश ।
बडि लकरी कर महि तबि धारी इक दुइ हती पाइ बड त्रास ।
तबि तजि करि कानन दिश गमनी महिद बावरी सुधि बुधि नाश ॥ २५ ॥
ईंधन कुछक सकेल्यो[2] त्रासति तूरनि बंधि हट्यो पुरि ओरि ।
आगे चलति पिखति बहु पाछे त्रास भर्यो उर देखे घोरि ।
गोइंदवाल पहुँच्यो आइ सु रुधरि श्रवति अरु लकरी थोरि ।
अवलोकति सभि लोकनि बूझ्यो 'कहां भयो तुझ को किस ठौर ॥ २६ ॥
श्री सतिगुर निज निकट हकार्यो पूछति भए 'कहां इह कीन ।
किन तन घाव करे तुझ मार्यो रुधरि श्रावते उर भै भीनि ।
कौन लर्यो किन बिघन पसार्यो, अरु लकरी थोरी बन लीन ।
बाहर बिलम लगी तुझ दीरघ निज ब्रितांत कहु लें सभि चीन ॥ २७ ॥
आगै सतिगुर हाथ जोरि करि उचर्यो 'बन महिं एक बलाइ ।
बार खिडे सिर नगन अंग ते मोहि बिलोकति तूरनि आइ ।
गर लपटी नख दंत हते बहु नीठि नीठि मैं आप छुटाइ ।
तिस दिश मेरो बनहि न जानो, पकरहि धाइ, प्रान बिनसाई ॥ २८ ॥
समधा लेनि दई नहिं तिसने देखति त्रास रिदै उपजाइ ।
परारबध ते छूटन होयहु नांहि त मारि देति तिसु थाइ ।
रह्यो पुकार न मानव नेरे आनि छुटावहि जो बलि लाइ ।
अपर दिशा ईंधन हित लैबे मैं गमनहुंगो, भाइ सि भाइ ॥ २९ ॥

---

1 बहा । 2 इकट्ठा किया ।

सुनि करि श्री गुरु अमरदास कहि 'मत मै करहु सु नहीं बलाइ।
भूप हरीपुर तिस की दारा भई बावरी सुधि नहीं काइ।
जाहु भोर लिहु कौंस[1] हमारी जबि आवहि तेरी दिश धाइ।
हतहु सीस महि होइ सु राजी अपने संग तांहि लै आइ॥ ३०॥

सुनि सभि संगति विसमय ह्वै करि सच्चनि सच्च साथ बच गाइ।
नहिं अब डरहु जाहु तिस ही दिश निसि बिताइ करि जा तिसु थाइं।
देखि दूर ते कूक पुकारति, भै दायक जो दिखी न जाइ।
ऊची भुजें उलारति दौरि ततछिन निकटि गई तिस आइ॥ ३१॥

कर मारन को जबहूं उछरी कौंस हती तिसु सीस मझारु।
गुर पनही छूवत सुधि होई बैठि गई तन भई संभारु।
नगन अंग जाने निज सकुची अति लज्जा को चित महिं धारि।
सिमरन करी बारता सोऊ कमली, श्री गुर कीनि उचारि॥ ३२॥

हे गुर सिख! मुहि बसत्र देहि कुछ तन छादन मैं करौं सुधारि।
श्री गुर निकट जाइ बखशावौं निज अपराध न आग्याधारि।
महां कशट मुहि प्रापति होयहु अबि होई तन की संभारि।
दरशन करहिं दोस गन नासहिं, ले चलि तूं अब पुरी मझारि। ३३॥

सुनि कंबलि अपुनी तिनि दीनसि, ढांप्यो तन, अपने संग ल्याइ।
जुग बडिभाग खरे तबि आगे सतिगुर पिखि तिन बहु बिगसाइ।
क्रिपा करी पुन कह्यो सुनहुं तुम पति इसत्री बनि रहु इक थाइ।
तेरी घालि परी अबि थांइ सु मेरो ध्यान करहु घर जाइ॥ ३४॥

दुतिय कौंस भी लिहु हम पग की ब्याधि उपाधि जि किस के होइ।
इसके छुवति बिनस सभि जावहिं तिस तन के दुख रहै न कोइ।
बचन फुरहि तुव बर जु स्राप सभि निज ग्रहि बसहु चिंत चित खोइ।
गुरमुख पंथ प्रकाशहु जित कित अजमत सहत भयो तबि सोइ॥ ३५॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'सच्च ना सच्च प्रसंग' बरननं नाम तीन त्रिसती अंशु॥ ३३॥

---

1. खडाऊं।

अंशु ३४

दातू गोइंदवाल जानि प्रसंग

दोहरा

इस प्रकार स्री सतिगुरू बखशिश कीनि बिसाल ।
मेरु कर्यो रंचक हुतो सफल भई तिस घाल ।। १ ।।

चौपई

क्रिपा द्रिशटि स्री सतिगुर देखि । कर्यो बूंद ते जलधि विशेखि ।
जिन के सम न गरीब निवाजू । आपि डूबति सो करे जहाजू ।। २ ।।
बिदा कर्यो इसत्री सो दीनो । भयो प्रमुदित कशट मन छीन ।
बार बार गुर पद अरबिंद । करी बंदना लहि सुख ब्रिंद ।। ३ ।।
ऊचे पद को प्रापत भयो । अपने ग्रिह को मग पुन लियो ।
निज सथान महिं कीनि प्रकाश । बहुत नरनि की पूरति आस ।। ४ ।।
संकट सहत जाइ ढिग जोऊ । कौस छूवति बिन रुज के[1] सोऊ ।
लोक हजारनि ही चलि आवैं । कहैं स्राप बर से सफलावैं ।। ५ ।।
महिमा महां देश तिस भई । पूजहिं परम भावना लई ।
अनिक लोक तिन किए निहाल । कशट मिटाइ अनंद बिसाल । ६ ।।
सेखौ पुरि प्रसिद्ध है अबि लौ । कौंस समीप अहै तिन तबि लौ ।
छूवति रोग अनेक बिनासैं । यहां महातम जगत प्रकासै । ७ ।।
जिस जिस पर गुर किरपा करी । भए निहाल अविद्या हरी ।
दुहिं लोकन की लहि वडिआई । तरे, सु लीनि संग समुदाई । ८ ।।
तप, जप, जोग, जग्य व्रति दानू । गुर सेवा के ह्वै न समानू ।
जिन के बडे भाग जग जागे । सो सतिगुर की सेवा लागे । ९ ।।
इस प्रकार गुर को जसु फैला । सुनि सुनि आंइ दरस हित गैला ।
लोक अनेक कामना धारैं । सभि पावति जबि रूप निहारैं ।। १० ।।
ग्राम पुरनि के लोक घनेरे । आवति दरसहिं भाग बडेरे ।
लगहि दिवान महांन हमेशु । संगति नितिप्रति आइ विशेशु ।। ११ ।।
उत्तम ब्रिंद उपाइन ल्यावैं । अंगीकार न होइ हटावैं ।
जेतिक देग बिखै लगि जाइ । ग्रहिन करहिं, सो नर गन खाइं ।। १२ ।।

1. रोग रहित ।

लंगर चलहि अतोट बिसाला। होवन लगहि प्राति ही काला।
जबहि द्योस आवहि मध्यान। तबि सतिगुर, पहुंचहिं हित खान ॥ १३ ॥
अचहिं ओगरा होइ अलूना[1]। सो भी तनक[2], उदर रहि ऊना[3]।
संगति खट रस खाइ अहारा। मधुर तुरश जे अनिक प्रकारा ॥ १४ ॥

तबि ते लंगर बरतति रहै। आनि अचहि भोजन जो चहै।
नहिं किसहूं हटकारन होइ। देश बिदेशी लहिं सभि कोइ ॥ १५ ॥
जहिं कहिं सुजसु बिसाल प्रकाशा। सिख्यन मन महिं होति हुलासा।
श्री अंगद को सुत सुनि करि कैं। जरहिं नहीं, जावति जर बरि कै ॥ १६ ॥

हमरे घर की इहु बडिआई। हम कउ किउं न होहि सुखदाई।
श्री अंगद बैकुंठ पधारे। करी तेरहवीं जबहि पिछारे ॥ १७ ॥
बुड्ढे उर बिचार करि नीका। दीनसि अमर गुरू कहु टीका।
दातू ने निज बल को धारे। ले सभि ते बांधी दसतारे ॥ १८ ॥
बैठहि नित गादी पर सोइ। पूजा करनि आइ नहिं कोइ।
उपदेशति संगति को रह्यो। तऊ न गुर इस को किन कह्यो ॥ १९ ॥

आइ नहीं को माथ निवावै। मिलहि न कुछ अकोर अरपावै।
यांते रिस करि दुखहि घनेरा। होहि ईरखा सहत किस दिश ते ॥ २० ॥
बनहि गुरु पर बन्यो न जाई। नहिं संगति किस दिश ते आई।
हुते मित्र खत्री इस केरे। निकट बैठि करि तरक घनेरे ॥ २१ ॥
तुम सपूत बैठे रहि छूछे। आइ नहीं, को बाति न पूछे।
को सिख आइ न दरस निहारहि। भेटन अरपहि, नमो न धारहि ॥ २२ ॥
जीवति ही भे म्रितक समाना। पित गादी नहिं लई महांना।
किसी थान को खत्री आयो। महां अरूज[4] तांहि न पायो ॥ २३ ॥
देशनि के नरेश चलि आवहिं। अरपि उपाइन सीस झुकावहिं।
निति प्रति भीर सु गोइंदवाल। आइ संगता मिलहिं बिसाल ॥ २४ ॥
पूजहिं पाइन सुजसु बखानहिं। अति उत्तम वसतू कहू आनहिं।
मारैं बचन बान उर गाडे। सुनति दातू धीरज निज छाडे ॥ २५ ॥
महिमा जद्यपि जानहि तिन की। तदपि कुसंग हती ब्रिति मन की।
दीपति मतसर अगनि अगारी। दुशट गिरा मेली घ्रित धारी ॥ २६ ॥
व्याकुल भयो सह्यो नहिं जाई। अति रिस ते चित अस उपजाई।
अमर गुरू को जाइ संहारौं। गुरता गादी बहुर संभारौं ॥ २७ ॥

---

1. कम नमक का दलिया। 2. तनिक, थोड़ा। 3. खाली। 4. प्रताप।

पित की वसतु पूत हम मालिक। अपर किसू के किम हुइ तालिक[1]।
इमि बिचार करि कै प्रसथाना। पहुंच्यो श्री गुर अमर सथाना ॥ २८ ॥
लग्यो दिवान बिराजहिं बीच। दरसहिं मिले ऊच अरु नीच।
को टेकति है माथ अगारी। को बिनती कर जोरि उचारी ॥ २९ ॥
को बैठे सिमरहि सतिनामू। गाइं रबाबी धुनि अभिरामू।
को इक चित ह्वै शबद सुनति है। को मन बिखै विचार गुनति है ॥ ३० ॥
जथा शंभु मुनि गन के मांही। पावन सभा शुभति है तांही।
पिखि प्रताप नहिं रिदै सहारा। भयो क्रोध ते छोभति भारा ॥ ३१ ॥
अपर कछू तहिं होइ न सकई। पहुंच निकट गुर तन को तकई।
रिस करि उर महिं लात प्रहारी। जिमि लछमीपति के भ्रिगु भारी ॥ ३२ ॥
सिंहासन ते गिर करि परे। ब्रिध सरीर कंप कहु करे।
बहुर संभारि उठे ततकाला। गहि दातू के चरन क्रिपाला ॥ ३३ ॥
कर कमलन सों मरदन करे। बिनती सहत सु बाक उचरे।
इक तो सेवा करति रह्यो हौं। दुतीए बय ते ब्रिध भयो हौं ॥ ३४ ॥
यां ते अधिक सरीर कठोरा। तुमरो चरन म्रिदुल नहिं थोरा।
हुयो होइगो कशट महाना। छिमहु भयो अपराध अजाना ॥ ३५ ॥
श्री गुर के सुत हो बड भागे। मम हित करि इतनो दुख लागे।
तुम को देखि न अग्र खरोवा। हुतो मान मम सो तुम खोवा ॥ ३६ ॥
ताडन उचित जानि करि मार्यो। भलो कर्यो निज दास निहार्यो।
सेवा अपनी मोहि बतावहु। करौं सु ततछिन, रोस हटावहु ॥ ३७ ॥
सुनि दातू करि क्रोध उचार्यो। इहु कैसे तैं डिंभ[2] पसार्यो।
गुरता गादी है हम पाही। तैं बांधी सिर पाग सु नांही ॥ ३८ ॥
सभि ने मुझ को पाग बँधाई। तैं कैसे करि आप पुजाई।
गुरू भयो तूं आपे आप। हमैं देखि लागति संताप ॥ ३९ ॥
इहु पखंड नहिं मोहि सुहावै। इक संगति आवहि इक जावै।
अति सूधे थे पिता हमारे। करी सेव तिनकी छल धारे ॥ ४० ॥
झूठि साचि तिन ते कहिवाए। बन बैठ्यो गुर, गरब वढ़ाए।
तिस थल ते उठ कर चलि जय्यै। बहुर न बैठहु दंभ कमय्यै ॥ ४१ ॥
पिता हमारे कहि तुझ तांई। नगरी गोइंदवाल वसाई।
बैठ्यो मालिक तिस को होइ। हम को नहिं जान्यो कित कोइ ॥ ४२ ॥

---

1. सम्बन्ध। 3. पाखंड।

अबि सेवा कछु नहीं हमारी। उठि गमनहु तूरनता धारी।
सुनि करि सभा न बोल सकै हैं। करति ढीठता बदन तकै हैं॥ ४३॥
गुर को डर धरि बैठि रहे हैं। भले बुरे किस हूं न कहे हैं।
बिसमत पिखि गुर गौरवताई। हौरे पुरखन की हरिवाई॥ ४४॥
तबि लौ पशचम रवि असतायो। संध्या भई तिमर गन छायो।
सभि उठि उठि अपने असथाना। मति बिसमति हुइ कीन पयाना॥ ४५॥
श्री गुर अपने सोवन थान। जाइ बिराजे क्रिपा निधान।
दातू रह्यो तिसी थल मांहि। कुछ सेवक जिह संगी आहि॥ ४६॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'दातू गोइंदवाल जानि' प्रसंग बरननं नाम चतुरत्रिसती अंशु॥ ३४।

अंशु ३५

श्री अमरदास खोजन प्रसंग

दोहरा

श्री गुर अमर विचारि कै—कलहि बुरी बहु मानि ।
निस आधी महिं निकसि करि वहिर कीनि प्रसथान ॥ १ ॥

चौपई

चले इकाकी कछू न लीना । बिन पद त्रान पयानो कीना ।
बासर की नगरी ते उरे । सुंदर अवनी तहां निहरे ॥ २ ॥
धेनुपाल को कोशठ हेरा[1] । तिस दर पर लिखि कीनि बसेरा ।
इस दर जो नर करहि उपारे । तिस के गुर नहिं सिक्ख हमारे[2] ॥ ३ ॥
लोक प्रलोक दौन ही खोवै । नहीं सहाइक हम तबि होवैं ।
दिण दर को लिखि कै सु प्रवेशे । पदमासन करि श्री गुर बैसे ॥ ४ ॥
छपे तहां नहि जानहि कोऊ । निज सरूप महिं थिति ब्रिति होऊ ।
अचल समाधि अगाधि लगी है । ब्रह्म सरूप आनंद पगी है ॥ ५ ॥
प्राति भई गुर नहिं तहि पाए । खोजति हैं सभी कहां सिधाए ।
इत उत देखि रहे नहिं पायो । सुनि करि दातू उर हरखायो ॥ ६ ॥
गुर की बसतु सकल अपनाई । बसत्र बिभूखन तन पहिराई ।
गुरता गादी वैठि सजाई । करति प्रतीखन को चलि आई[3] ॥ ७ ॥
नहिं संगति तिसु निकट गई है । करि अवग्या कुपति भई है ।
देखि दूर ते इत उत होइ । सादर नंम्रि भयो नहिं कोइ ॥ ८ ॥
दुखहि देखि करि सिक्ख महांने । क्या इन कर्यो लोभ उर ठाने ।
निज निज थान रहे सभि बैसे । तिस ढिग गमन्यो कोइ न कैसे ॥ ९ ॥
एकल वैठि बहुत अकुलायो । अर संगति के उर नहिं भायो ।
भयो उदास बसतु सभि लीनी । वेसर[4] लादि सु त्यारी कीनी ॥ १० ॥
संध्या समै चल्यो दिश ग्रामू । कुछ सेवक संग जाइ सु धामू ।
मग महिं निसा भई तम छायो । आनि मिले तसकर समुदायो ॥ ११ ॥
भाजे दास लूटि सभि लयो । होइ छूछ घर पहुँचति भयो ।
घर के बसत्र विभूखन खोए । हती लात तिस महिं दुख होए ॥ १२ ॥

---

1. ग्वाले का कोठा देखा । 2. न वह हमारा सिख है, न हम उसके गुरु हैं । 3. कि कोई आएगा । 4. खच्चर ।

घर महिं बैठि बिसूर्यो[1] फेरि। मैं कुकरमि क्या कीनि बडेर।
गयो दरब को घर ते खोयो। हते लात ते रुज बहु होयो॥ १३॥
लज्जिति हुइ प्रविश्यो घर मांही। बहुर गरब करि निकस्यो नांही।
शोक विखै ब्याकुल बहु रह्यो। अपनो खोट न किह सों कह्यो॥ १४॥
गोइंदवाल मिले सिख सारे। लाइ दिवान बिचार बिचारे।
गुर बिन ब्याकुल बहु मुरझाए। बिन सूरज पंकज समुदाए॥ १५॥
जिमि नरेश बिन सैन दुखारी। जिमि सुरपति[2] बिन सुर दुखि भारी।
जथा पंख बिन होहिं बिहंगा। जिम पति बिन इसत्री सरबंगा॥ १६॥
बिना नीर जिमि तरु शुशकंते। तथा सिख्य दुख बिखै तपंते।
आप आपनी बुधि अनुसारे। रिदे बिचारति बाक उचारे॥ १७॥
सतिगुर होए अंतर ध्यान। पहुंचे अपन बिकुंठ सथान।
गुर अंगद सुत की रिस देखि। त्याग्यो तुरत समाज अशेष॥ १८॥
रहनि चलनि तिन एक समान। सिख्यन हेत हुते इस थान।
केचित कहैं गए 'बन मांही। कलहि सहहिं दातू की नांही॥ १९॥
केचित कहैं 'बिदेश मझारा। पहुंचे सतिगुर दरस उदारा।
तहां सिख्य सेवक हुइं ब्रिंद। है जिन मसतक भाग बिलंद॥ २०॥
इत्यादिक बहु थान बतावैं। निशचै मति कोइ न ठहिरावै।
तबि सभि मिलिकै कीनि बिचारनि। बुड्ढा जानहिगो इस कारन॥ २१॥
गुर घर महिं सो सचिव समान। तिस ढिग चलहु रहहि जिसु थान।
सतिगुर जहिं सो खोज बतावहि। अपरन ते क्यों करि नहिं पावहि॥ २२॥
इमि कहि सिख सभि आंसू ढारति। उर बिखाद ते हैं बहु आरति।
जथा क्रिशन भे अंतर ध्याना। गन गोपी रुदियंत महांना॥ २३॥
सभि इकठे हुइ करि तबि चले। जहिं थल भाई बुड्ढा भले।
धर्यो प्रसादि अगारी जाइ। करी बंदना सीस निवाइ॥ २४॥
हाथ जोरि हुइ करि तब खरे। जसु के सहत बेनती करे।
तुम अरु गुर महिं भेद न कोऊ। जोति एक धारे तन दोऊ॥ २५॥
सिक्ख सहाइक पर उपकारी। सभि संगति इहु खरी अगारी।
सिंधु संदहनि मगन बिसाला। बनहु जहाज आप इस काला॥ २६॥
सिख्यन बिखै अगाऊ आप। दे टीका गुर गादी थाप।
ब्रहम ग्यान महिं निशचल नीति। अंतरजामी जहिं कहिं चीति॥ २७॥

---

1. पछताना। 2. इन्द्र।

सरब शकति जुति समरथ अहो। अज़मति सदा छिपाए रहो।
सभि संगति पर करुना कीजहि। शरन आपकी परी लखी जहि॥ २८॥
सुनति बिनै कहु बुड्ढा बोल्यो। किस कारन तुमरो मन डोल्यो।
मेरे उचित कौन सो काम। करौं सु कहो सकल अभिराम॥ २९॥
इक सिक्ख की सेवा फल महां। संगति सेव पाईअहि कहां।
जिस पर सतिगुर होंहि क्रिपाल। निज दासन की दें तबि घाल॥ ३०॥
संगति कह्यो तबहि कर वंदि। गुर बिन ब्याकुल डर सिख ब्रिंद।
कहां गए, नहिं जानी जाइ। जथा अचानक रवि असताइ॥ ३१॥
मसतक टेकहिं तांहि अगारी। रहहिं बैठि अबि कौन अधारी।
जिमि तारनि महिं चंद बिराजहि। तिमि संगत महिं सतिगुर छाजहिं॥ ३२॥
जिस को आप सथापहु गुर करि। तिस को संगति मानहिं सिर धरि।
इमि सुनि कै सभि ते निज कान। बुड्ढे तबहि लगायो ध्यान॥ ३३॥
इक घटिका लग द्रिग नहिं खोले। बैठे संगति जुकति अडोले।
तीन लोक महिं खोजन कीने। सतिगुर बिदत नहीं कित चीने॥ ३४॥
छपे कहूँ पुन देखति भयो। थान अनेक खोजिबो कियो।
जान्यो मन महि तबि गुर फुरे। प्रविशे कोशठ अंतर दुरे॥ ३५॥
दर चिण राख्यो[1], वहिर न काहूं। करि समाधि वैठे तिस माहूं।
सगरो खोजि ध्यान महि देखि। खोले लोचन वीच अशेष॥ ३६॥
उर बिचार इमि कीनि बिसाला। करों बतावन जे इस काला।
सतिगुर अमुक सथान सुहाए। अंतर छपे समाधि लगाए॥ ३७॥
तबि अज़मति ज़ाहिर हुइ जाइ। नीकी रीति नहीं इसु भाइ।
अपर फरेब करीजै कोई। जिस ते सतिगुर दरशन होई॥ ३८॥
सभि संगति संगि बाक सुनावा। श्री गुर सभिनि बिषाद मिटावा।
नहीं चित कीजहि मम प्यारे। सभिनि सहाइक कारज सारे॥ ३९॥
सतिगुर सिमरहु प्रेम बिसाले। मिलहिं गुरू सभि लेहिं संभाले।
चलहु सकल ही गोइदवालौं। मैं बी अबि तुमरे संगि चालौं॥ ४०॥
गमन कर्यो सभि केरि अगारी। हरखति संगति चली पिछारी।
तूरन ही सभि पुरि महिं आए। गुर विन नगर न सदन सुहाए॥ ४१॥
जथा सुरग मघवा[2] विन होइ। नर नारी चिंता चित सोइ।
पूरब बुड्ढा गयो चुबारे। बिनै बचन हुइ खरे उचारे॥ ४२॥

---

1. ईंटों की दीवार से द्वार बंद कर रखा है। 2. इन्द्र।

श्री सतिगुरु संगति दिश हेरहु। अपर बारता रिदैं निबेरहु।
चिंतातुर उदब्वेग - समेत। प्रभु जी! सूने परे निकेत ॥ ४३ ॥
तुम बिन किसहि न लागति आछे। खान पान की रुचि नहिं बाछे।
संकट सभि को हरहु क्रिपाला। देहु दरस अपनो इस काला ॥ ४४ ॥
इमि कहि वहिर सरब मैं वैसे। बूझति इह प्रसंग भा कैसे।
निकसे सतिगुर कौन समें हैं। खोजें खोज बताउ हमे हैं ॥ ४५ ॥
कह्यो सभिनि 'गुर अंगद ताता। आइ प्रहारी गुर के लाता।
अरध निसा महिं निकसे पुरि ते। को जानहिं गमने किस धिर[1] ते ॥ ४६ ॥
पीछै दातू सभि किछु लीनि। अपने सदन पयानो कीन।
इक बडवा[2] तिन त्यागनि करी। गुर की प्रिय अति सो घर खरी ॥ ४७ ॥
इस को दातू लेवन लग्यो। चढ़न न दियो प्रिथी 'पर डिग्यो[3]।
लेइ सु चलौं-जतन करि रह्यो। नहिं अरूढ करि आसन लह्यो ॥ ४८ ॥
चपल तुरंगनि सतिगुर प्यारी। रही आप, दिय नहिं असवारी।
यांते गयो त्याग करि सोऊ। अपर संभार लयो घर सोऊ ॥ ४९ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अमरदास खोजन' प्रसंग बरननं नाम पंच त्रिसती अंशु ॥ ३५ ॥

1. किधर से। 2. घोड़ी। 3. गिर गया।

अंशु ३६

श्री अमरदास पुरि आगमन प्रसंग

दोहरा

सुनी तुरंगनि बारता वुड्ढे बहु सुख पाइ।
इह असवारी गुरू की अजमत जुति दरसाइ ॥ १ ॥

चौपई

गुर बिन नहीं अरूढनि देति। यांते सो तजि गयो निकेति।
अबि इस को कीजहि शिंगार। प्रथम शनानहु सुंदर बारि ॥ २ ॥
धूप दीप चंदन चरचावहु। फूल बिसाल माल पहिरावहु।
पाइ बसतनी[1] सुंदर ज़ीन। कविका[2] देहु मुहार नवीन ॥ ३ ॥
संगति करहि बेनती सारी। छोरि देहु इहु चलहि अगारी।
संग संगता गमनहिं पाछे। गुरु को खोज लेहि इहु आछे ॥ ४ ॥
ब्रिध को बाक मानि सभि लीना। सभि शिंगार शिंगारनि कीना।
दई छोरि पुरि वहिर तुरंगनि। बहु सुंदर जो सगरे अंगनि ॥ ५ ॥
सने सने चलि सहज सुभाइ। पीछे सगरी संगति जाइ।
बुड्ढे आदिक सिख समुदाए। अवलोकति बडवा बिसमाए ॥ ६ ॥
किते हरेखा[3] ऊचो करै। कित चंचलता जुति पग धरै।
कितिक दूर ते कोशठ देखा। थिति ह्वै ऊचो कीन हिरेखा ॥ ७ ॥
बहुर अगारी कीन पयाना। गई तहां कोशठ जिस थाना।
दूर दूर फिर चहुंदिशि तांही। पुन दर दिश गमनी हुइ पाही ॥ ८ ॥
तहां पहुंच करि सीस झुकावा। पुन ऊचे हिहनाट सुनावा।
संगति देखि देखि बिसमावै। इहां न सतिगुर कहूं दिसावैं ॥ ९ ॥
बडवा नहिं अबि आगे जावति। जनु लछमी, इत बिशनु बतावति।
राजशिरी[4] पुरहूत[5] खुजंती। अबि इसथल को नहिं तजंती ॥ १० ॥
पिख वुड्ढे सभि को समझायो। इह कोठा किस को बनवायो।
दर देखहु नहिं पय्यति याही। बडवा रही सथिर हुइ पाही ॥ ११ ॥
प्रथम प्रकरमा इस की करी। दूर दूर चहुं दिश महिं फिरी।
सीस झुकाइ बंदना ठानी। थिर अबि रही, गुरू इस थानी ॥ १२ ॥

---

1. ज़ीन के ऊपर का कपड़ा। 2. लगाम। 3. हिनहिनाना। 4. शची। 5. इन्द्र।

तबि कोशठ के चहुंदिश फिरिओ। दर को थिर्यो निहारनि करिओ।
अकबर लिखे देखि करि कह्यो। सभि आवहु इक पता सु लह्यो ॥ १३ ॥
गुरू हाथ की लिखति दिखीजहि। मैं अब पठिहौं सरब सुनीजहि।
गए धाइ तिस देख्यो जाइ। पठि अक्खर सो ब्रिध सुनाइ ॥ १४ ॥
आइ इहां दर पारहि[1] जोऊ। हम नहिं गुरू, सिक्ख नहिं सोऊ।
हलत पलत महिं नहीं सहाई। जो आइसु को देहि मिटाई ॥ १५ ॥
सुनि संगति सगरी बिसमानी। किमिहूं कही जाइ नहिं बानी।
आन गुरू की उलंघ न सक्कई। खरे परसपर मुख को तक्कई[2] ॥ १६ ॥
जानी जाइ जुगति नहिं कोई। जिस ते दरस गुरू कहु होई।
चितमान ह्वै करि तबि सारे। शरन ब्रिध की बाक उचारे ॥ १७ ॥
इह कौतक सभि आप दिखाए। तुम बिन किस ते ह्वै न उपाए।
सभि संगति पर करुना करीए। आप जतन करि गुरू दिखरीए ॥ १८ ॥
सुनि बिचार बुड्ढे तबि कीनसि। सिख्यन पर करुना रस भीनसि।
चितव्यो गुरु ने बचन उचारा। होहि दोश जे खोलहिं द्वारा ॥ १९ ॥
अपर थान को पारन करौं। तहां नहीं इह दोश निहरौं।
दरशन करि कै बिनती ठानहिं। सभि अपराध छिमहि हित जानहिं ॥ २० ॥
रिदै ध्यान धरि बंदन कीनसि। कोशट को पिछली दिश चीनसि।
तहां जाइ करि ईंट उखेरी। तीछन लोह संग तिस बेरी ॥ २१ ॥
गरी करी[3] तहिं प्रविशनि जेती। संगति देखति अचरज सेती।
पशचम दिश महिं कोशट द्वारा। पूरब दिशा पार को पारा ॥ २२ ॥
अंतर धीरज धारि प्रवेशा। पिखे गुरू तबि मनहु महेशा।
आसन लाइ समाधि अगाधा। ब्रह्म रूप इक अचल अबाधा ॥ २३ ॥
अंग अडोल टिके जग स्वामी। कोटि बरख जिमि शिव निशकामी।
पद अरबिंद बंदना धारी। कर सपरश करि थिर्यो अगारी ॥ २४ ॥
छुवतन हाथ समाधि बिराम[4]। खुले बिलोचन क्रिपा सु धाम।
देखि ब्रिध को बाक उचारा। किमि तैं टार्यो हुकम हमारा ॥ २५ ॥
श्री गुरु! हम नहिं आइसु टारी। तजि दर फोर्यो द्वार पिछारी।
सभि सिख्यन मन ब्याकुल हेरा। दुरे आप करि जगत अंधेरा ॥ २६ ॥
इह बिधि क्यों करि बनहिं गुसाई। छपहु आप संगति दुख पाई।
सरब शकति जुति समरथ पूरन। चहहु जि चित्त महिं करि हो तूरन ॥ २७ ॥

---

1. खोलेगा । 2. एक दूसरे का मुँह देखते हैं । 3. सुराख किया । 4. समाधि खुल गई।

तीन लोक पर हुकम तुमारा। बैठहु तुम किस ते डर धारा।
निकसहु बहिर दिखावहु दरशन। करिहैं संगति पाइन परसन ॥ २८ ॥
श्री अंगद की सिमरहु सिक्खा। नाम जपाइ करहु सिख रख्या।
सुनति भए श्री अमर प्रसन्न। कह्यो ब्रिध को 'तुम बहु धंन ॥ २९ ॥
पर उपकार हेतु सभि कर्यो। सिक्खी को सथंभ ह्वै थिर्यो।
मतसर पावक ज्वलती महाना। ईंधन धीरज ग्यान रु ध्याना ॥ ३० ॥
पिशताशनी[1] आस[2] दुखदाई। पुरहि न राज त्रिलोकी पाई।
ब्रह्मादिक जिन जीते सारे। कलिजुग के नर कौन बिचारे ॥ ३१ ॥
मोह सैन को जोर महाना। जहिं कहिं सद्गुन की कहिहाना।
बहु कुचाल कलिकाल बिथारी। पंडित मूढन सभि उर धारी ॥ ३२ ॥
तिस को त्रास बिलोकि बिसाला। आनि छपे कोशठ इस काला।
सुनि ब्रिध न पुन बाक बखाने। सभि कौतक तुम नै इह ठानै ॥ ३३ ॥
अपनी लीला आप निहारहु। किसे उपावहु किसे संहारहु।
सभि जीवन को जीव बिसाला। देहु जीवका तुम सभि काला ॥ ३४ ॥
संगति व्याकुल अपनी जानो। दरशन देहु कशट को हानो।
धरहिं कामना पूरन करीए। बिरद क्रिपाल सदीव बिचरीए ॥ ३५ ॥
बिनती सुनि कै बाक उचारा। उठहु आप अबि खोलहु द्वारा।
संगति को दरसाउ भले रे। इह उपकार हुए सभि तेरे ॥ ३६ ॥
सुनि कै ब्रिध बिलंद अनंद्यो। तूरन उठ्यो गुरू पद वंद्यो।
ढाहि ईंट का खोल्यो द्वारा। सभि संगति को तबहि हकारा ॥ ३७ ॥
दिखति, हुती, सुनि ब्रिध की आग्या। हरखति भई प्रेम रस पाग्या।
हुम हुमाइ संगति सभि आई। भई भीर तहिं थाउ न पाई ॥ ३८ ॥
पद पंकज परसहिं, कर बंदहिं। दरसहिं सतिगुर रिदै अनंदहिं।
धरहिं उपाइन प्रेम बधावहिं। जै जै कार उचारि सुनावहिं ॥ ३९ ॥
सभि संगति बैठी हरषाए। भेटनि के अंबार लगाए।
सभिनि सुनाइ गुरू तब कह्यो। इहु उपकार सु बुड्ढे लह्यो ॥ ४० ॥
खेद वडो निज तन पर लीना। नीको हित संगति को कीना।
तिस को पार दयो दरसावै। सो नर जम को पिखन न पावै ॥ ४१ ॥
इहु संगति को बोहिथ भारा। भउ जल ते करिहै निसतारा।
सिक्खी अवधि, न इस ते परै। नाम लिए गन बिघन सु हरै ॥ ४२ ॥
ब्रिध ने कह्यो तुरंगनि खरी। जिसने रावरि की सुधि करी।
उठहु अरढहु, चलहु क्रिपाला। सदन आपने गोइंदवाला ॥ ४३ ॥

1. आसुरी, राक्षसी, आदमखोर, मनुष्य भक्षी। 2. आशा।

तबि श्री गुरु निकसे तिस बाहर। खरे भए दिय दरशन ज़ाहर[1]।
आइ तुरंगनि सीस निवावा। फुरकावति हिरदा हरषावा ॥ ४४ ॥
तबि श्री अमर फेर करि हाथ। चढ़े सिमर श्री नानक नाथ।
सुंदर गति बडवा तबि चलै। संगति चलति संग सभि मिलै ॥ ४५ ॥
भई त्रिध रकाब तवि गही। सभिहिनि अस शोभा तबि लही।
अनंद उदधि की उठहिं तरंगें। इमि सभि जाति चले गुर.संगै ॥ ४६ ॥
चलि आए इमि गोइंदवाल। सभि ने उतसव कीनि बिसाल।
दीपमाल सगरे पुरि होई। दरशन कंहु आए सभि कोई ॥ ४७ ॥
मधुर प्रसादि भयो समुदाई। बरतति संगति सगल अघाई।
फूलन माला आनति केई। दरसैं कितिक आनि फल तेई ॥ ४८ ॥
सभि संगति की सुनि करि बिनती। गादी पर बैठे तजि गिनती।
देनि लगे दरशन पुन तैसे। सिक्ख सरब पखरति बैसे ॥ ४९ ॥
जेतिक संगति हुती बिदेशु। दरशन करि वर पाइ विशेषु।
रहि केतिक दिन गई अवासू। दस दिश कीरति करति प्रकाशू ॥ ५० ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे '**श्री अमरदास पुरि आगमन**' प्रसंग बरननं नाम खशट त्रिसती अंशु ॥ ३६ ॥

---

1. प्रकट।

अंशु ३७

सिख्यन को प्रसंग

दोहरा

इस प्रकार स्री सतिगुरू पुरी बिराजे आइ।
भई ब्रिध केतिक दिवस रह्यो निकट सुख पाइ ॥ १ ॥

चौपई

दातू लात बिखै दुख भयो। असथि बीच ते पीरति थियो।
गुरू अवग्या ते दुख पावै। आइ समीप नहीं बखशावै ॥ २ ॥
लज्जा जुत क्या मुख लै जै हौं। बैठि सभा शोभा किमि लै हौं।
सदन बिखै बैठ्यो नित रहै। कशट लात को दीरघ सहै ॥ ३ ॥
हरख न, शोक न, रहै समान। श्री सतिगुर उर छिमा निधान।
भला बुरा किसहूं न बखानहिं। सभि पर दया द्रिशटि को ठानहिं ॥ ४ ॥
तबि भाई बुड्ढे कर जोरे। बिदा होइ गमन्यो ग्रिह ओरे।
ग्यानवान गुर ध्यान सदीवा। सभि ते ऊच अधिक मन नीवा ॥ ५ ॥
पारो जुलका डल्ले माहिं। परमेशुर सो प्रेम उमाहिं।
सतिगुर की महिमा को जानहिं। गुरबानी सु बिचारन ठानहि ॥ ६ ॥
दरशन की मन प्यासु घनेरी। सतिगुर पहि आयहु इक बेरी।
नमसकार करि बैठ्यो पास। मन महिं दीरघ प्रेम प्रकाश ॥ ७ ॥
अंतरयामी गुर ने जाना। 'परम हंस' तिस नाम बखाना।
पूरन ग्यान रिदे हुई आवा। एक रूप सभि जग द्रिशटावा ॥ ८ ॥
परम हंस सतिगुर के कहे। ब्रह्म सरूप अपन सुख लहे।
जोग, विराग, भगति विग्यान। पूरन होए जिस के आनि ॥ ९ ॥
निद्धि सिद्धि रिद्धि गुर ते पाई। आवति ही सतिगुर शरनाई।
कुल आचार करति बिवहार। उर महिं गुर चरनन को धारि ॥ १० ॥
जोग भोग दोनहुं को पाइ। रहै अलेप कमल जल भाइ।
दुइ दिन घर, पुन सतिगुर पास। आवहि, रहै दरस की प्यास ॥ ११ ॥
इक दिन चढ्यो तुरंगनि आवै। नहिं अवनी पर पाइं टिकावै।
गति बिहंग की बडवा चालहि। करामात के सहति बिसालहि ॥ १२ ॥
दिल्ली ते नवाब मग जाइ। गज पर हुतो चमूं समुदाइ।
अवलोक्यो तिन भाई पारो। महां अचरज रिदै महिं धारो ॥ १३ ॥

शीघ्र जाइ भा खरो अगाऊ। दरशन को धरि कै चित चाऊ।
तजि गज को पाइन पर पर्यो। पारो किरपा द्रिशटि निहर्यो ॥ १४ ॥

अधिक रिदै तिह प्रेम प्रकाशा। मन ते भयो बिकार बिनाशा।
हाथ जोडि कै ताहिं उचारा। अहो वली! क्या नाम तुमारा ॥ १५ ॥

किति को जाति कहां ते आए। खादम[1] कीजहि बरा खुदाए।
पारो नाम हमारो अहै। गुर दरशन जावति चित चहै ॥ १६ ॥

सुनि नवाब मन सिदक उदारा। बूझ्यो किह ठां पीर तुमारा।
हम को संग लेहु दरसावहु। धंन गुरू जिस पहि तुम जावहु ॥ १७ ॥

पारो कह्यो 'संग जो लशकर। अपर बिभूति सरब को परहहि।
तबि तुम गमनहु दरशन करीअहि। सतिगुर परसन को फल धरीअहि ॥ १८ ॥

प्रेम नबाब कीनि तिस काला। सुत को सौंपि समाज बिसाला।
खिजमत पातिशाह की करो[2]। हमरो ख्याल नहीं उर धरो ॥ १९ ॥

सुत को सभि बिधि तिन समझायो। पारो संग आप चलि आयो।
सतिगुर को बंदन करि बैसे। भए प्रसन्न देखि करि तैसे ॥ २० ॥

पारो धंन धंन उपकारी। तरहु आप अपरन दे तारी।
बोलन मिलन संत सों नीका। तात काल कटि संकट जीका ॥ २१ ॥

पारो ने सभि कह्यो प्रसंग। जिस प्रकार आन्यो सो संग।
सुनि श्री अमर करी तबि करुना। हर्यो तिसी को जनम रु मरना ॥ २२ ॥

सतिगुर की प्रीति परी है। मन बिकार की पीर हरी है।
भयो निहाल निबाब घनेरा। केतिक दिन गुर निकट बसेरा ॥ २३ ॥

संत संग सम पारस छुह्यो। हुतो मनूर सु कंचन भयो।
परमानंद पाइ करि भलो। बिदा होइ पारो संग चलो ॥ २४ ॥

डल्ले ग्राम नाम इक लालू। प्रेमी पारो संग बिसालू।
सतिगुर जाप जपे दिन रैन। हरे बिकारन ते मन चैन ॥ २५ ॥

पारो इक दिन आवनि लागा। गुर दरशन को मन अनुरागा।
कहि लालो 'गुर के ढिग जावहु। मो को भी दरशन करिवावहु ॥ २६ ॥

तुव करुना ते भव को तरौं। जनम मरन ते मन महिं डरौं।
शरन पर्यो गुर की अब चाहौं। रिदे संदेहिन सभि को चाहौं ॥ २७ ॥

सिख गुरमुख होवति उपकारी। तुव परि सतिगुर करुना धारी।
बध्यो प्रेम लालू कहु पल सैं। पुलक्यो तन, लोचन जल गल मैं ॥ २८ ॥

---

1. सेवक 2. सेवा।

चरन बंदना करहि अगारी। भयो अधीर दरस को भारी।
पारो ने लालू संग लीनो। गोइंदवाल चलनि को कीनो ॥ २९ ॥
गुर दरबार जाइ रज लाई। मसतक मुख सगरे तन मांही।
पुन लंगर महि कर्यो अहारा। भयो पुनीत परम सुख धारा ॥ ३० ॥
अंतर जाइ गुरन को हेरा। पद अरबिंद बंदि तिसु बेरा।
पुट लोचन ते अंम्रित रूप। पान करति, त्रिपतै न अनूप ॥ ३१ ॥
बोले सहिज सुभाइ क्रिपालू। अति हरिरंग चलूल्यो[1] लालू।
सुनि करि परमानंद कहु पायो। निसि दिन ध्यान गुरू कहु लायो ॥ ३२ ॥
करुना करि लालू के भालू। निज कर धर्यो निहाल बिसालू।
दिन प्रति सतिगुर कीनि बडेरा। ज्यों ज्यों हेरहि प्रेम घनेरा ॥ ३३ ॥
एक दिवस गुरु होइ क्रिपालू। लालू को बखशीश बिसालू।
जेतिक गुपत लोक जग मांही। द्रिशटि न परैं फिरहिं सभि जाही ॥ ३४ ॥
तिन सभि को गुर तिसे बनायो। अपर हुकम ते तांहि पुजायो।
संगति गुपतनि की हुइ जेती। लालो को पग पूजनि तेती ॥ ३५ ॥
दूर दूर ते आवहिं सेई। मानहिं हुकम दरस करि तेई।
खरे अगारी रहहिं हमेश। कहिहि सु करहिं जि काज विशेष ॥ ३६ ॥
कोस हजारन को चलि आवहि। तूरन सो लालो दरसावहि।
जिस आइसु दे मानहिं सोई। आन उपाइन अरपति जोई ॥ ३७ ॥
इक पठान सौदागर भारो। भरि जहाज बारथ[2] महिं डारो।
तांको मेल सु लालू साथ। मिलति जबहि बंदहि जुग हाथ ॥ ३८ ॥
सो समुंद्र महिं बनज करंता। टापू बिखै लाभ लभयंता।
इक बिर[3] तिह जहाज फटि गयो। सकल समाज डूबतो भयो ॥ ३९ ॥
यहां अंधेरी ते बड फूटा। तखता एक संग ते टूटा।
तिस पर चढ्यो पठान बच्यो तबि। वायु बेग ते बह्यो गयो जब ॥ ४० ॥
इक टापू महिं लग्यो सु जाइ। देख्यो तिह ठां नगर बसाइ।
तखते पर ते उतर सु गयो। किह को मिलि तहिं बूझति भयो ॥ ४१ ॥
कौन देश, को पुरि को नाम। बसहिं कौन इह थल करि धाम।
गपत सकल टापू तिस बसहि। देखि मनुख को सो तबि हसहिं ॥ ४२ ॥
कह्या तिनहुं 'गुपतनि को थांयो। तूं मानुख कहु कित ते आयो।
त्रसति पठान बखानति अहे। देश पंजाब दूर तहिं रहै ॥ ४३ ॥

---

1. रंगा गया। 2. समद्र। 3. एक बार।

फूट गयो जहाज जब मेरा। दैव जोग करि इह थल हेरा।
तबि गुपतनि पूछ्यो तिसु पाही। लालू को तूं लखहिं कि नांही ॥ ४४ ॥
सुनि पठान हरख्यो वचु कहै। हम लालो के ढिग ही रहैं।
मिलति सदीव बंदना करौं। बडो संत भाउ सु उर धरौं ॥ ४५ ॥
सादर तिह बिठाइ हित कीनो। पता देश नगरी को लीनो।
जबि पठान सिमर्यो तहिं लालू। द्रिग जल लीनि उसास बिसालू ॥ ४६ ॥
इस को पिखि गुपतनि करि दया। क्यों होवति, पूछन को किया।
हम लालू के सिख सभि अहैं। तिमि करि देहिं जथा चित चहैं ॥ ४७ ॥
कहैं पठान 'दिखावहु लालू। करिहु जि मुझ पर मिहर बिसालू।
सभि किछु खोइ दूर मैं आयो। देश पंजाब चहौं अबि जायो ॥ ४८ ॥
गुपतनि दोइ लाल तिह दीने। इह लालू की भेट सु कीने।
अपर जवाहर अपने हित लिहु। इह दुइ लालो हम दिश ते दिहु ॥ ४९ ॥
तबि पठान लीने हरखाइ। कहि तिन पुन इस द्रिग मुंदवाइ।
गुपतनि सो ततकाल पुचायो। खोले द्रिग ग्रिह महिं पिखि आयो ॥ ५० ॥
जाइ लाल लालू को दए। कहति सुजसु बहु बंदन किए।
अपनी ब्रितांत कह्यो 'पुरि मांही। क्रिपा संत आयो तुम पाही ॥ ५१ ॥
लालो लाल लिए कर दोइ। गुरु ढिग आनि रखे तिन सोइ।
पिखि श्री अमर बचन मुख भाखा। नाम रतन हियरे महिं राखा ॥ ५२ ॥
इन को जाहु नदीं मों डार। धरहु न बिवहारहु करि प्यार।
लालो गुर की आग्या मानी। फंके जाइ गहिन जहिं पानी ॥ ५३ ॥

दोहरा

सतिगुर अर गुर सिखन की महिमा महां महान।
धंन गुरू अरु धंन सिख जगत उधार निवान ॥ ५४ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे '**सिख्यन को**' प्रसंग बरननं नाम सपत त्रिसती अंशु ॥ ३७ ॥

अंशु ३८
शेखन प्रसंग

दोहरा

खान छुरा डल्ले बिखै गुरमुख सिक्ख बिसाल।
पूजहि पग पंकज सदा श्री गुर अमर क्रिपाल ॥ १ ॥

चौपई

दीपा मालू शाही और। सिक्खी करति बसहिं तिस ठौर।
नाम किदारी सिक्ख उदार। इत्यादिक सिख बहुत बिदार ॥ २ ॥
गिनती बिखै बहत्तर भए। श्री गुर अमर उधारन किए।
कहौं अगारी कथा तिनहुँ की। हरी अबिद्या गुरू जिनहुँ की ॥ ३ ॥
नाम महेशा पुरि सुलतान। बहु बाही अर धनी महान।
सतिगुर की महिमा सुनि तांही। उपज्यो प्रेम महां मन मांही ॥ ४ ॥
गोइंदवाल गयो तबि आइ। दरशन करि गुर को हरषाइ।
पूरब भोजन लंगर खायो। बहुर जाइ सतिगुर दरसायो ॥ ५ ॥
बडे भाग ते बैठ्यो पास। निस दिन जिस के प्रेम सु प्यास।
बार बार बंदन को करिही। समुख बैठि गुर दरसु निहरिही ॥ ६ ॥
बूझन हित गुर तिसे अलायो। कवन अरथ तूं चलि करि आयो।
कहां बसैं किस को मत धारहिं। मंत्र जाप किस बदन उचारहिं ॥ ७ ॥
हाथ जोरि तिन कह्यो बुझाई। प्रभु जी मैं आयो शरनाई।
रावरि नाम आस को धरौं। मिटे शोक भव सागर तरौं ॥ ८ ॥
अपर सभिनि ते आस मिटाइ। रहौं आप की परि शरनाइ।
तबि श्री सतिगुर कह्यो सुनाई। हमरी शरन पर्यो नहिं जाई ॥ ९ ॥
जे हमरो सिक्ख होयो चहैं। नहीं संपदा तुझ ढिग रहै।
नर उपहास करहिं समझावहिं। दुखी होइ पुन बहु पछुतावहिं ॥ १० ॥
सुनति महेशे तबहि उचार्यो। तन मन धन तुमरे पर वार्यो।
नाश होहि तौ चहों न कोऊ। तुमरो प्रेम करों द्रिड सोऊ ॥ ११ ॥
सभि दिश ते मैं त्यागी आस। निज चरनन महिं देहु निवास।
द्रिड निशचा देख्यो जिस काला। निज कर धर्यो तिसी को भाला ॥ १२ ॥
सत्तिनाम को मंत्र जपावा। सिख ने द्रिड कीनसि सुख पावा।
बहुर कसौटी महिं सो कस्यो। [केतिक दिन महिं धन सभि नस्यो ॥ १३ ॥

जिस जिस कार बिखै जिह दीन। तहिं सभि नाश्यो भयो बिहीन।
हसन लगे नर 'इहु क्या कीनो। सिक्ख होइ तैं क्या कित लीनो॥ १४॥
घर ते संपद भई बिनाश। अन्न बसत्र की तोट न पास।
सुनति महेशे सभि सों कह्यो। मैं गुर उच्च प्रेम पद लह्यो॥ १५॥
जो कबहूं नहिं बिनसनहारा। दुख सागर ते करहि उधारा।
इहु संपद मिथ्या सम सुपने। किमि परलोक लेति संग अपने॥ १६॥
एक बार इहु ब्योग उदोते। जीवति जाति कि मिरतक होते।
गुर पग पंकज जे मन लागे। हलत पलत के संकट भागे॥ १७॥
मिथ्या संपत नाश भई है। साची सतिगुर शरन लई है।
परमानंद भयो अबि भौ न[1]। इमि कहि सभि संग ठानी मौन॥ १८॥
बहु उपहास करति रहिं लोग। करति नहीं मन हरख कि सोग।
सतिगुर प्रेम बिखै मसताना। सिमरन सत्तिनाम को ठाना॥ १९॥
पुन गुर दरशन को चलि आयो। हाथ जोरि करि सीस निवायो।
दुरबल भयो देखि करि तांहि। क्रिपा करी श्री गुर मन मांही॥ २०॥
सिख ने सह्यो कसौटी ताउ। बारह बेनी भयो सु भाउ।
आगे ते दस गुन धन पैहैं। लोक प्रलोक सुफल तुव ह्वै है॥ २१॥
इमि वर देकरि कर्यो निहाल। पुन तिस ढिग धन भयो बिसाल॥
इसी प्रकार बहुत नर तारे। सिक्खी मारग चल्यो उदारे॥ २२॥
आइ शरन जो गुर की परैं। ब्रह्म ग्यान जुति शकति सु धरैं।
दोनहु हाथन सो बरतावें। मानें बचन पार परि जावैं॥ २३॥

दोहरा

गोंइदवाल शोभा निरखि शेखनि रचे निकेत।
अकबर साथ रहति वही सभि भायनि संमेत[2]॥ २४॥

चौपई

गुर सथान मंगल बहु होवै। गावति सभि सिख शबदन जोवैं।
शेखन के सिस देखि सुचाली। सहि न सकहिं वहि करें कुचाली॥ २५॥
नीर भरन घट लै सिख जावें। बाल गुलेला मारि गवावें।
या बिधि बहुत करी जबि तिनै। गुर पै सिख्यन कीनी बिनै॥ २६॥
शेखन सुत घट तोरें तूरन। जल कौ जबि करि ल्यावें पूरन।
तबि करुनाकर बोले बानी। मशकं बीच लिआवो पानी॥ २७॥

---

1. अब भय नहीं है। 2. भाइयों सहित।

मानि बचन त्यों ही तिन कीनी। जल तरिबे को मशकैं लीनी।
तबि बारक कर धारि कमानै। तीर मार फारें अभिमानें ॥ २८ ॥
पुन सिक्खन गुर केरि हदूरा। सकल ब्रितांत बखान्यो तूरा।
मशकें फारति कस कै तीरनि। बस नहिं चलति करति अवगीरनि[1] ॥ २९ ॥
तबि मुख चंद बचन परकाशे। गागर मैं जल ल्याउ हुलासे।
सत्ति भाखि कीनी तिन तैसे। कहीं मुकंद अनंदति जैसे ॥ ३० ॥
वह बालक घट ईंटन भानै। जुलमी करें दुशट अभिमानै।
मात तात तिन के नहिं होरैं[2]। होति प्रसन्न निहारि बहोरें ॥ ३१ ।
पुनि अरदास करी सभि संगति। गागरन तोरें बालक पंगति।
सुनि तूशन करुनाकर होए। उत्तर नांहि दयो तबि कोए ॥ ३२ ॥
तहां तबहि संन्यासी आए। बालनि तैसे कीनी जाए।
नीर पूर जबि ल्यावै कोऊ। तोर देति बिन बेर सु सोऊ ॥ ३३ ॥
लाग्यो तहां गुलेला जाई। निकस्यो नैन महंत तदाई।
शसत्र पकर करि केते मारे। केते चीरे केते फारे ॥ ३४ ॥
तिही समें तुरकन को डेरा। पर्यो आइ परि के चौफेरा।
खचरन धन की लदी अनेका। उतरी आइ रैन करि टेका ॥ ३५ ॥
प्रातिकाल चलिबो तिन कीनो। आंधी अई प्रलै सी चीनो।
अपनो परो न देख्यो जाई। जनु सकले भे अंध तदाई ॥ ३६ ॥
बाइ लाग गिर हैं नर घोरे। खच्चर भाजी तबि पुरि ओरे।
बरी जाइ तिन तुरकनि धामा। गुर सों करति बिरोध जि गामा ॥ ३७ ॥
तातकाल तिन अंतर पाई। खुरा खोज जान्यो नहिं जाई।
आंधी हटी भयो उजियारा। खच्चर देखन लगे अपारा ॥ ३८ ॥
टोलि टोलि बहु रहे, न पाई। हुइ निरास जबि चले मुराई।
ग्रहि अंतर खच्चर तबि बोली। बरे सिपाही लीनसि खोली ॥ ३९ ॥
जपत कर्यो घर वाहर तिनको। गुर सों बैर हुतो थो जिन को।
केतिक फांसी दीन उठाई। केतिक की तबि पति उतराई ॥ ४० ॥
गुर पै सिक्खन कही सपूरन। सुनि गुर कहति भए तबि तूरन।
एक संत पै सिक्ख सु बोल्यो। सो सुनि हो धरि ध्यान अमोल्यो ॥ ४१ ॥
जे काहू को वुरा करावै। तो क्या करै, कहो सुखदावैं।
भला करै जो वुरा करावै। बदला लेवन ते हटि जावै ॥ ४२ ॥

---

1. नाश करते हैं। 2. नहीं रोकते।

फेर करै तौ ? करि है करि है। तौ भलि आई बहु दुख भरि है।
करिने जोगा रहै न सोऊ। आपे ही मरि जै है सोऊ ॥ ४३ ॥
जैसी करै सु तैसी पावै। गुर सथान नीवों बिरधावै।
श्री परमेसुर है समरत्थ। संतन को राखति दै हत्थ ॥ ४४ ॥
जिन के ऐसे भयो गिआना। सेवैं गुरू भाव धरि नाना।
कही संतोख सिंह इह कथा। जिनहि सुनी तिन काल न मथा ॥ ४५ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे '**शेखन**' प्रसंग बरननं नाम अशट त्रिसती अंशु ॥ ३८ ॥

अंशु ३८

सिक्खन प्रसंग

दोहरा

इक लालू बुधिवान नर दूसर दुरगा नाम ।
जीवंदा मिल तीसरो चलि आए गुर साम[1] ॥ १ ॥

चौपई

करि बंदन को लागे सेवा । इक दिन बैठि निकट गुर देवा ।
हाथ जोरि अरदास बखानी । दिहु उपदेश अपनि जन जानी ॥ २ ॥
जिस ते होइ उधार हमारा । श्री गुर अमर सु वाक उचारा ।
परउपकार समान न और । करहि सदा तिस गति सुख ठौर ॥ ३ ॥
सो उपकार सु तीन प्रकारा । धरो आप तुम लखि उर सारा ।
जेतिक अपने ढिग धन अहै । देहु रंक जो दुखीआ लहै ॥ ४ ॥
पिखहु गरीब अनाथनि जहां । बसत्र अहार दीजीअहि तहां ।
देखहु दुखी दया को धारहु । जथा शकति तिह दुख निरवारहु ॥ ५ ॥
निज बानी ते शुभ बनि आवै । बिगर्यों कारज पर सुधरावै ।
कै बिद्या हुइ अपने पास । अपर पढावहि धरहि हुलास ॥ ६ ॥
पुन मन ते सभि को भल चाहै । बुरा करनि हित कबि न उमाहै ।
पास पदारथ, अरु बच कहै । त्रितीए किस को बुरा न चहै ॥ ७ ॥
इम तीनो ते परउपकार । करहु सदा, पर दुख निरवारि ।
सरब दान ते अहै बिसाला । अन्न देनि कीजहि सभि काला ॥ ८ ॥
जिस ते प्रान धरति है प्रानी । अपर होहि किमि तांहि समानी ।
काचो पाको ज्यों क्यों दीजै । छुधित देखि करि 'नांहि न कीजै ॥ ९ ॥
जिस किस समे सांझ कै प्राति । बिना बिचारे भोजन दाति ।
ऊच नीच नहि परखहु ज़ाती । देकरि अन्न करहु त्रिपताती ॥ १० ॥
श्री गुर अमरदास की बानी । शरधा धरि उर तीनहु मानी ।
तीन बिधिनि कीनसि उपकारा । देति छुधित को अधिक अहारा ॥ ११ ॥
गुर के सिक्ख भए इस रीति । आवहिं दरशन को धरि प्रीति ।
सेवति रहे भगति को पाइ । अंत गुरू ढिग पहुंचे जाइ ॥ १२ ॥

---

1. गुरु की शरण ।

जग्गा सतिगुरु के ढिग आयो। करि दरशन को सीस निवायो।
सिख गुर के गन देखि हुलासा। हाथ जोरि करि बाक प्रकाशा ॥ १३ ॥

मैं चाहति अपुनी कल्यान। मिल्यो एक दिन जोगी आनि।
तिस आगे मैं बिनै सुनाई। तबि ऐसे भाख्यो मुझ तांई ॥ १४ ॥

घर कुटंब सनबंधी सारे। बंधन रूप सु लेहु बिचारे।
त्याग करहु अबि बनहु फकीर। पुन आवहु चलि हमरे तीर ॥ १५ ॥

श्रेय हेत लिहु मम उपदेशु। छोरहु घर को सहत कलेशु।
रावरि निकट चहों मै पूछा। किमि हुइ श्रेय, बनै उर सूछा ॥ १६ ॥

किमि प्रापति हुइ भगति महानी। जिस ते प्रापति प्रभु निरबानी।
शरधा जानि गुरू बच भाखा। घर त्यागनि की नहिं करि कांखा ॥ १७ ॥

जे घर तजे मिलहि भगवान। क्यों फकीर पुरि पुरि महिं भ्रान।
हाटनि पर बनकनि[1] सों झगरे। जाचति डोलति बासुर सगरे ॥ १८ ॥

गुरमुख ग्रिहसति बिखे करि भगति। पाइं मुकति, नहिं जनमति जगति।
जिमि जल महिं अलेप अरबिंद। राखहि ऊरध ध्यान दिनिंद ॥ १९ ॥

तिमि गुर सिक्ख किरत को करते। देकरि सति संगति पुन बरते।
हुइ फकीर जाचति तबि खाइ। जप तप निज घाटो तबि पाइ ॥ २० ॥

सेवा करहिं लेहिं सो तिस ते। खान पान निति करितो जिस ते।
ग्रिसती अपनो पुंन न देति। सेवा ठानि अपर ते लेति ॥ २१ ॥

जथा धेनु को घासु खिलावैं। तिस को पलटो प पुन पावैं।
तिमि जग्गा! लिहु समझ बिसाल। ग्रिसति धरम मुख है कलिकाल ॥ २२ ॥

तन ते क्रिति करहु संत सेवा। मन ते भगति करिहु गुरदेवा।
इस ते शीघ्र लहैं कल्यान। तजहु न सदन ठानि गुर ध्यान ॥ २३ ॥

सुनि करि सीख रिदे तिन धारी। किरति भगति करनी सुख कारी।
मान भलो तबि करिबे लागा। गुर की सेव लग्यो बड भागा ॥ २४ ॥

खानू अर माईआ पित पूत। कीनो सतिगुर दरशन पूत।
तीसर मिलि गोविंद भंडारी। बिनै कीनि 'हम शरन तुमारी ॥ २५ ॥

ऐसो गुन कीजहि उपदेश। जिस महिं गुण हुइं भले अशेष।
सुनि सतिगुर कहि 'बिच इस जगति। सकल गुनन को गुन हरिभगति ॥ २६ ॥

भगति करति सगरे गुण पावैं। गुण निधान भगवान रिझावैं।
गुण करता जबि ही बसि होइ। दुरलभ गुन पुन रहै न कोइ ॥ २७ ॥

1. बनियों के साथ।

बूझन लगे 'भगति किसु रीत। करहु बतावनि उपजहि प्रीति।
तबि सतिगुर ने कह्यो बुझाई। नवधा भगति एक सुखदाई॥ २८॥
दूजे-प्रेमा भगति बिचारी। परा भगति त्रितीए निरधारी।
प्रथम सुनहु नवधा के भेद। प्रापति भए बिनासहिं खेद॥ २९॥
शरधा सहत गुरू के बैन। श्रवन करहि सनमुख मन नैन।
दुतीए कथा कीरतनु करने। नीके प्रभु के गुन गन बरने॥ ३०॥
त्रितीए सत्तिनाम सिमरंते। बिना भजन नहिं समां बितंते।
स्वासन संग सु नाम मिलावैं। ऊठति बैठति नहिं बिसरावैं॥ ३१॥
चौथे सतिगुर कै भगवान। ठानहि चरन कमल को ध्यान।
कै संतन के चरन पखारै। शरधा ते चरनांम्रित धारै॥ ३२॥
पंचमि करहि अहार भलेरे। प्रथम अरपि हरि गुरू अगेरे।
जथा शकति संतन अचवावै। बसत्र शरीर साध पहिरावै॥ ३३॥
खशटमि प्रभु गुर कै गुरदवारे। बंदन करहि प्रदछना धारे।
धूप दीप चंदन चरचावै। फूलन आनि सुगन्धि चढावै॥ ३४॥
सपतमि दासु आप को जानै। परमेश्वर स्वामी पहिचानै।
तन मन धन जानै प्रभु दान। सती नार सम पति भगवान॥ ३५॥
अशटमि मित्र लखै श्रीपति कौ। नहीं डुलावै अपने चित को।
जो कछु करहि भली मम जानै। नहीं तरकना तिस पर ठानै॥ ३६॥
जथा सखा की क्रिति लखंता। करहि जु कछु मम भला करंता।
तिमि प्रभु मित्र किरत को हेरै। जो किछु करै भली सो मेरै॥ ३७॥
नौमी तन धन प्रभु अरपाइ। अपनो कछू न लखहि कदाइ।
ममता तजहि पदारथ केरी। हरि के जानि न सुख दुख हेरी॥ ३८॥
नवधा भगति कही इहु जोइ। जेकरि इक भी प्रापति होइ।
तौ उधार जन को करि देति। क्या संसै हुइ सरब समेत॥ ३९॥
अपर सुनहु जस—प्रेमा भगत। जिह सम अपर न सुख दे जगत।
तरुवर फल पूरब हुइ सावा। स्वाद बिखै कौरा लखि पावा॥ ४०॥
पुन पीरो तब लहि तुरशाई। ब्रिछ बीच ते ले रसु पाई।
पुन पाको होवहि रंगु लाल। स्वाद पाइ सो मधुर बिसाल॥ ४१॥
तिमि परमेशुर प्रेमी होइ। तिन के लच्छन इस बिधि जोइ।
प्रथमै रुदन करति चित चाहै। प्रीतम दरशन धरति उमाहै॥ ४२॥

बिछरे हम यांते दुख पावै। दीरघ स्वासनि ले पछुतावै।
रोमंचति हुइ गद गद बानी। कबि गुन गाइ, कि तूशन ठानी ॥ ४३ ॥
तबि मुख को सावा हुइ रंग। सुधि भूलहि सभि आदिक अंग।
ज्यों ज्यों वध है प्रेम बडेरा। त्यों त्यों होति अहार छुटेरा ॥ ४४ ॥
भूख प्यास की गम हुइ थोरी। निस दिन रहै प्रेम मति बोरी।
ब्रिहु ते बधहि बिखाद अधीरा। बदन बरन हुइ आवति पीरा ॥ ४५ ॥
प्यारे की जे बात बतावहिं। अस संतन के निकट सिधावहि।
सुनि पिखिकै प्रिय मिलनि निशानी। निकट जानि हुइ प्रीतम हानी ॥ ४६ ॥
संत संग जबि वध्यो वधेरा। पूरन प्रभू सरब मैं हेरा।
तबि मुख लाल रंग द्रिशटावै। त्रिपति होइ मन कितहुं न धावै ॥ ४७ ॥
शांति मधुरता तबि हुइ आई। अंतर ब्रिती सथिरता पाई।
दिढ अभ्यास ग्यान मनि लावहि। परा भगति उतपति हुइ आवहि ॥ ४८ ॥
अपनी सरूप निहारन चाहा। ईशुर जीव अभेद उपाहा।
सति चेतन आनद ब्रह्म रूप। नभ सम ब्याप्यो चलित अनूप ॥ ४९ ॥
इस प्रकार जे भगति कमावै। इकता ब्रह्म रूप हुइ जावै।
तीनहु सुन कै भए अनंद। खानू माईआ अरु गोबिंद ॥ ५० ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे **प्रथम रासे** 'सिक्खन प्रसंग' बरननं नाम एकोन-चत्वारिंसती अंशु ॥ ३९ ॥

———

अंशु ४०

सिक्खन प्रसंग

दोहरा

जोध रसोईआ देग महिं गुर हित करति अहार ।
विप्र जाति सेवा करे उर हंकार निवारि ॥ १ ॥

चौपई

धन आदिक जे सिख गन ल्यावैं । भेट धरहिं सतिगुरू मनावैं ।
सो सभि जोउ रसोईआ लेति । लंगर पर लगाइ करि देति ॥ २ ॥
इक दिन महिं जेतो लग जाइ । तितिक लेति, लंगर महिं लाइ ।
दिन अगले हित रहनि न पावै । वधहि जि पसूअन वहिर खुवावै ॥ ३ ॥
नांहि त सरिता मांहि गिरावै । जल गागर ते सकल डुलावै ।
नीर आदि हित प्राति न धरै । कहां अन्न की गिनती करै ॥ ४ ॥
इमि गुर हुकम सु बरतहि जोध । लंगर कार करहि हित बोध ।
पाछे कुछ भोजन रहि जाइ । बिना स्वाद ते खाइ, बिताइ ॥ ५ ॥
गुर के सिक्ख जानि समुदाई । सभि की सेवा करहिं बनाई ।
जो जिस काल पुरी महिं आवै । तबि करि त्यार अहार अचावै ॥ ६ ॥
नहिं आलस को दिजिबर करै । आइ छुधिति की छुधा सु हरै ।
देखि सेव रीझे गुरदेव । सतिनाम दे ग्यान करेव ॥ ७ ॥
जनम मरन को दुख निवारा । पायो पद जहिं अनंद उदारा ।
एक बार गे सहिज सुभाइ । डल्ले ग्राम बिखे सुखदाइ ॥ ८ ॥
प्रिथी मल्ल अर तुलसा दोइ । हुते जात के भल्ले सोइ ।
सुनि दरशन को तबि चलि आए । नमो करी बैठे ढिग थाए ॥ ९ ॥
उर हंकारी गिरा उचारी । एको जाति हमार तुमारी ।
श्री गुर अमर भन्यो सुनि सोइ । जाति पात गुर की नहिं कोइ ॥ १० ॥
उपजहिं जे सरीर जग मांही । इन की जाति साच सो नांही ।
बिनसि जात इहु जरजरि होइ । आगे जाति जात नहिं कोइ ॥ ११ ॥

श्री मुखवाक ॥

अगै जाति न जोरु है अगै जीउनवे ।
जिनकी लेखै पति पवै चंगे सेइ केइ ॥ ३ ॥

---

1. करवा दिया ।

इम श्री नानक बाक उचारा। आगे जात न जोर सिधारा।
उपजें तन इतही बिनसंते। आगे संग न किसे चलंते॥ १२॥
सिमर्यो जिन सतिनाम सदीवा। सिक्खन सेव करी मन नीवा।
तिनकी पति लेखे परि जाइ। जाति कुजाति न परखहिं काइ॥ १३॥
मल्लण आनि पर्यो गुर शरनी। करि बंदन पद, बिनती बरनी।
मोकहु कुछ दीजहि उपदेश। जिस तें मिटें कलेश अशेष॥ १४॥
सतिगुर कह्यो 'त्याग हंकारा। संतन सेवो होहिं सुखारा।
शरधा धरि अहार करिवावहु। चरन पखारहु रुचि त्रितावहु॥ १५॥
बसत्र बनाइ गुरन हित देहो। छुधति नगन ते आशिष लेहो।
सत्तिनाम सिमरहु तजि कान। होहि अंत को तुव कल्यान॥ १६॥
सुनि गुर बच ते करन स लाग्यो। संतन सेव बिखै अनुराग्यो।
उग्रसैन अरु रामू दीवा। आइ नगौरी गुरू समीपा॥ १७॥
करि बंदन बूझ्यो उपदेश। गुर बोले क्रिपा विशेश।
सिख जिस समें आइ करि मिले। देहु त्यार करि भोजन भले॥ १८॥
अंम्रित वेला करिहु शनान। गुर को शबद पठहु करि ध्यान।
अरथ बिचार उचारन करीअहि। किधौं सुनो करि निरनै धरीअहि॥ १९॥
चतुर घटी सभि काज बिसारहु। अरथ सुनहु कै आप उचारहु।
सलिता महिं नौका बहु भरीयति। चतुरंगल जल वहिर निहरीयति॥ २०॥
भरी भार सों उतरहि पार। तिमि जग कारज के बिवहार।
निस दिन करिहु धरम की किरति। चतुर घटी दिहु गुर महिं बिरति॥ २१॥
सभि कारज जुति हुइ कल्यान। प्रभू प्रसीदहिं प्रेम महान।
सगरे कारज गुरू सवारै। हलत पलत महिं कबहूं न हारै॥ २२॥
गुरू शबद को करिहु बिचारु। इक चित हुइ करि नाम उचारु।
सुनि उपदेश रिदै शुभ धारा। गुर सिक्ख हुइ करि जनम सुधारा॥ २३॥
गोपी दूसर रामू महिता। मोहण मल अमरु के सहिता।
चारहुं आइ लग गुर चरनी। कर जोरति, कहिं 'राखहु शरनी'॥ २४॥
बिरद गरीब निवाज तुमारा। उपदेशहु जिमि होहि उधारा।
श्री गुर अमरदास तबि कह्यो। हउमैं करि बंधन को लह्यो॥ २५॥
अणहोवति ही रहु बनिआई। बुरी बलाइ सभिनि लपटाई।
परमेशुर कहु देति भुलाइ। अन होवति दुख दे समुदाइ॥ २६॥
यांते इस को दीजहि त्यागे। प्रभु के संग गंढ तबि लागे।
चारहुं सुनि पुनि सति गुर पूछे। किमि इस ते हम होवहिं छूछे॥ २७॥

कह्यो कि जानहु तन को कूरा। बिनसै होइ समो जबि पूरा।
सने सने इस ते ब्रिति छोरि। करहु लगावन आतम ओरि॥ २८॥
सहिन शीलता छिमा धरीजै। किस के संग न द्वैश रचीजै।
बाक कठोर अनादर करे। सुनि करि तपहि न रिसि कबि धरे॥ २९॥
सुनि उपदेश करन सो लागे। अंतर ब्रिती धरहिं बड भागे।
गंगू अपर सहारन भारू। करि बंदन बैठे दुखि आरू॥ ३०॥
तिन को भी उपदेशन कीनि। वंड खाहु धरि भाउ प्रबीन।
मधुर गिरा सभि संग उचारहु। कहिन कठोर नहीं रिस धारहु॥ ३१॥
गुर सिक्खन को प्रथम अचावहु। शेष रहै भोजन तुम खावहु।
महां पवित्र होति है सोइ। सिख्यन पीछे अचीयति जोइ॥ ३२॥
सिमरो वाहिगुरू नित नामू। लिव लागे पद दे अभिरामू।
मडी, टोभडी, मठ अरु गोर। इनहु न सेवहु सभि दिहु छोर॥ ३३॥
खानु, छुरा, अरु, बेगा पासी। नंद सूदना होइ हुलासी।
उगरू, तारू, झंडा, पूरो। सुनि जसु आए गुरू हजूरो॥ ३४॥
मसतक टेकि अदब ते बैसे[1]। बूझति भए श्रेय हुइ जैसे।
श्री गुर अमर कह्यो 'सुनि लीजै। अबि कलि काल बिसाल जनीजै॥ ३५॥
प्रथम जुगन महिं जग्ग करंते। होमति देवतान त्रिपतंते।
तिस सम फल सिख देहु अहारा। भाउ करिहु लिहु भगति अधारा॥ ३६॥
जीवति रहो सरब सुख पावो। वाहिगुरू उर बिखै बसावो।
ग्रिहसत बिखे सुख लहो सुखारे। जथा करन तप विपन मझारे॥ ३७॥
दुइ छीबे मल्यार सहारू। परे चरन लखि गुर सुख कारू।
तिन प्रति करति भए उपदेश। सिक्खन सेवा करिहु विशेष॥ ३८॥
सीवंहु बसत्र अंग पहिरावो। हुइ मलीन जे मैल गवावो।
उज्जल आछे करि करि देहु। उर उज्जलता पुन तुम लेहु॥ ३९॥
गुर के संग गंढ तब परै। सति संगति मन की मलु हरै।
शरधा धरिहु करहु गुर सेवा। सिमरहु नाम जु देवन देवा[2]॥ ४०॥
इक पाधा बूला जिस नामु। नमो ठानि आयो गुर सामु।
कहति भयो सेवा नहिं होइ। दिज को जानि कराइ न कोइ॥ ४१॥
जिस प्रकार हुइ मम कल्यान। करो आप उपदेश बखान।
कर्यो बचन 'पठि सतिगुर बानी। कीजहि कथा प्रेम को ठानी॥ ४२॥

---

1. आदर के साथ। 2. परमेश्वर।

सति संगति महिं करिहु सुनावनि। गुरमति सिक्खन को सिखरावनि।
पोथी लिखहु सुफल गुरुबानी। गुर नमित्त दीजहि सिख जानी॥ ४३॥
जे को आप दरब दे जाइ। धरि संतोख बरतियहि पाइ।
नहीं आप जाचहु किस पासी। इह सेवा बड फलहि प्रकाशी॥ ४४॥
डल्ले बासी सिख समुदाए। इक दिन सकल गुरू ढिग आए।
देखि दियो सांझा उपदेश। श्री सतिगुर करि क्रिपा विशेष॥ ४५॥
दिन गुर पुरब दरस संक्राति। दीपमाल आदिक बख्याति।
होहि दसहिरा मिलि इक थाइ। करिहु कराहु उछाह बधाइ॥ ४६॥
गुर नमित्त करि दिहु बरताई। शबद कीरतन करो बनाई।
सिख गरीब हुइ बसत्र बिहीन। दीजहि तिसहि सिवाइ नवीन॥ ४७॥
पिखहु छुधिति को देहु अहारो। मिलि करि सकल देव प्रति पारो।
किह सिख को कारज अरि जाइ। नहिं तिस ते क्योंहूं बनि आइ॥ ४८॥
मिलहु सकल महिं करि अरदास। जथा शकति लीजहि सभि पासि।
इकठो करि धन दिहु तिसु ताईं। जिस ते कारज को बन जाई॥ ४९॥
इहि रीति निज बिखे चलावहु। करो जोर शुभ दिन जबि पावहु।
पुत्र पौत्र होहिं तुमारे। करहिं कार इस रीती सारे॥ ५०॥
इह रहिरासु कदीमी[1] चलहि। सिक्खी धरे महां सुख मिलहि।
धरि शरधा गवहिं गुर बानी। परालबध जिन होइ महानी॥ ५१॥
अस उपदेश सभिनि को करिके। गुन सिखराइ अगुन परिहरि कै।
गोइंदवाल गुरू चलि आए। सेवक संग अहैं समुदाए॥ ५२॥
भजन कीरतनु लागति रंग। होति अनंद गुरू के संग।
अंम्रित सम अहार निति होवै। दरशन करहिं कलखन खोवैं॥ ५३॥
आइ शरन तिस करहिं उधारे। उपदेशहिं सतिनाम सुखारे।
जहिं कहिं सिक्खी बहु बिदताई। किनि सिक्खन ते गुर मति पाई॥ ५४॥
को गुरमुख ते सुनि उपदेश। मेटहि बंधन कशट अशेष।
बावन चंदन की सम होइ। नर तरु सुजस सुगंधति सोइ॥ ५५॥
निकट बसे पूरब बडिभागी। सतिनाम सों उर लिव लागी।
धंन धंन गुर अमर उचारें। अंतर ब्रिती बैठि नित धारें॥ ५६॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे सिक्खन प्रसंग बरननं नामु चत्वारिंसती अंशु॥ ४०॥

---

1. प्राचीन मर्यादा।

अंशु ४१

बीरबल प्रसंग

दोहरा

बिशै अगनि को नीर सम दास भीर कट देति ।
अमरदास गुर पद पदम बंदौं नित्यं नेत ॥ १ ॥

चौपई

संमत शत दस पंच इकासी । लवपुरि नगर सदा जिन वासी ।
बंस लऊ को सिंध मनिंदू । जनमे रामदास गुर इंदू ॥ २ ॥
सभि पुरि हरख अचानक लह्यो । नदीअन नीर छीर ह्वै वह्यो ।
सने सने भे बडे क्रिपाला । बधि बिलंद निकंदन[1] काला ॥ ३ ॥
पास बुलाइ कह्यो हरिदास । काम करो घर को सुख रास ।
खेलन के दिन खेल गए हैं । यांते मैं बच तोहि कहे हैं ॥ ४ ॥
सत्ति वचन जो कहो सु करि हूं । मैं रावरि के सद अनुसरिहूं ।
निसि वीती तबि भयो सकारे । चनक उदक सन मात उवारे[2] ॥ ५ ॥
भरि चंगेर सुत के कर दीनी । बेचहु पुत्र लाभ दा चीनी ।
लै करि गए बजार क्रिपाला । होका देवति मधुर बिसाला ॥ ६ ॥
इक सु साधु नित लियो बुलाइ । हमै देहु इउं गिरा अलाइ ।
सुनि इक मुशट लगे भरि देनि । हमै न चाहि एक की लेनि ॥ ७ ॥
इस बिधि द्वै त्रै देहिंन लेवै । सकल चंगेर पल दी एवैं ।
ग्रिह आए पित देख्यो खाली । लोचन पूर लए तबि लाली ॥ ८ ॥
दिखि पित नैन वहिर निकसाए । रुदन करति जल नेत्र वहाए ।
संगति तिह ते चली निहारी । गोइंदवालहि पुरी बिचारी ॥ ९ ॥
तिन संग चले क्रिपाल बिसाला । गोइंदवाल समूह उताला ।
सभि संगति गुर दरशन पाई । कछुक काल रहि बिदा सिधाई ॥ १० ॥
रहति भए गुर केर हदूरा । जो भाखें करि हैं द्रुति रूरा ।
लंगर सेवा सरब सु करिहैं । सभि संगति अनुसारी चरिहैं ॥ ११ ॥
इत ते भई और सुनि कानी । महल कह्यो जिमि गुर प्रति बानी ।
महांराज सुनीए बच मेरा । भानी बडी भई मैं हेरा ॥ १२ ॥

---

1. सेवकों के कष्टों को दूर करने वाले । 2. माता ने चने पानी में उबाले ।

इस की बनहि सगाई करी। इमि माता तबि गिरा उचरी।
इमि सुनि गुर आए निज थाना। बैठे बारी बीच निधाना ॥ १३ ॥
बिप्र बुलाइ कह्यो सुन प्रोधा। करो लगाई भानी सोधा[1]।
सुनि दिज कह्यो कि सुनो क्रिपालू। एस बाल सम होवै वालू[2] ॥ १४ ॥
सुनि बच बिप्र, मौन गहि लीनी। इसै बुलावहु, गुर कहि दीनी।
सुनि बिप रामदास बुलिवावा। आइ गुरू ढिग सीस निवावा ॥ १५ ॥
हाथ जोरि बैठ्यो गुर पास। अमरदास गुर बाक प्रकाश।
'कां को सुत को, जात सथाना। कहो मोहि ढिग सभि बिबधाना[3] ॥ १३ ॥
सोढ बंश, लवपुरि प्रभु बासा। सुत हरिदास, नाम रमदासा।
सुनि बच हरखे परम क्रिपाला। लिखि पत्री लवपुरि ततकाला ॥ १७ ॥
लीन सदाइ[4] मात पित तबै। करी सगाइ हरषति सबै।
कुछक काल लौ कर्यो बिवाहा। सभिहिनि बीच भयो उतसाहा ॥ १८ ॥
तिन को बिदा कीनि लवपुरि को। पास रहे अनुगामी गुर को।
सेवा करें सकल गुन खानी। जो भाखें गुर, आइसु मानी ॥ १९ ॥
या बिधि संमत बहुत बिताए। सेवा करति सकल हरषाए।
संमत सोलह सत इक चारी। जनम्यो प्रिथीआ प्रथम हंकारी ॥ ३० ॥
रिदै अनंदति दंपति ह्वै कै। प्रतिपार्यो बहु लाड लडै कै।
समां बितायो केतिक धाम। जनम्यो महांदेव अभिराम ॥ २१ ॥
संमत खोडस सै अरु अ्रश्ट। प्रतिपारे दोनहु करि पुश्ट।
सोलां सै दस ऊपर भए। वदी विसाख सपतमी थिए ॥ २२ ॥
मेख प्रविश्टे अठदस केरा। मंगलवार लगन शुभ हेरा।
जुगमं जाम जामनी जबै। हुतो निछत्र रोहिणी तबै ॥ २३ ॥
श्री गुर अरजन कुल नभ चंद। लीनो जनम अनंद बिलंद।
सदन नानके भए बडेरे। बाल आरबल[5], तरुन सु फेरे[6] ॥ २४ ॥
ब्याह आदि मंगल जे नाना। होए गोइंदवाल महाना।
महिला[7] गंगा अरजन प्यारी। रहे अनंद सदा सुखकारी ॥ २५ ॥

दोहरा

अकबर को मंत्री हुतो बिप्र बीरबल नाम।
पशचम दिशा मुहिम करि चढ्यो जीतिबे काम ॥ २६ ॥

---

1. विचार कर। 2. बालक-वर। 3. विवरण। 4. बुला लिया। 5. आयु।
6. फिर। 7. पत्नी।

चौपई

रखहि शाहु तिह संग सनेहू। प्रियक न होनि देति कबि केहु[1]।
होनहार जबि तिह सिर आई। कहति भयो 'मैं करौं चढ़ाई॥ २७॥

सकल मवास तोर करि आवौं। बार बार को झगर चुकावौं।
सुनि अकबर बहु भयो प्रसन्न। कह्यो बीरबल की तुम धंन॥ २८॥

तोहि गए बिन काज न सरै। और कुमति करि कोइ न अरै।
बहु सैना इस संग चढ़ाई। तोप रहकला[2] दे समुदाई॥ २९॥

पिखि समाज हकार्यो बिप्र। कहै 'हतौं शत्रुगन छिप्र[3]।
अकबर हरखति बाक बखाना। लिखि करि पान दियो परवाना॥ ३०॥

खत्री जात जितिक जिस देश। ग्राम कि नगर बसंत[4] अशेष[5]।
इक घर एक रजतपण दै कै। मिलहि तोहि नंम्री सिर कै कै॥ ३१॥

इमि सभि लिखत दई करि हाथ। लई बीरबल हुइ मद[6] साथ।
दिल्ली ते चढि चलि करि आयो। बड लशकर जिह संग सिधायो॥ ३२॥

जाइ देश जिस उतरै सोइ। खत्री आनि मिलहिं सभि कोइ।
गिन गिन घरनि रजतपण[7] देति। खोजि खोजि तिस के नर लेति॥ ३३॥

इमि ही करति लए भट भीर। उतर्यो आनि बिपासा तीर।
करी सकेलन तरनी घनी[8]। तर करि पार परी सभि अनी[9]॥ ३४॥

गोइंदवाल सिवर को घाला। बिप्र बीरबल चमूं बिसाला।
पुरि मैं प्रविशे नर मति हीन। घर खत्रीन खोजि करि लीन॥ ३५॥

आइ दिवान बीरबल बैठा। मिलहु सकल देकरि तुम भेटा।
सुनि करि गुर सनबंधी घने। अपर मिले कुछ गुर ढिग भने॥ ३६॥

आग्या देहु जथा हम करैं। नांहि त बिप्र द्वैख को धरैं।
श्री गुर अमर भन्यो जुग जावहु। हमरी दिश ते भाखि सुनावहु॥ ३७॥

इह गुर पुरि जानहु उस मांही। कार विहार करति को नांही।
जो परमेसुर देति पठाइ। सो अचि, औरन दें अचवाइ॥ ३८॥

भोजन लेहु देग ते जेता। तुमरे निकट पठहिं हम तेता।
नहीं रजतपण लेति न देति। इही रीति है गुरू निकेत॥ ३९॥

---

1. किसी तरह। 2. छोटी तोप। 3. शीघ्र। 4. बसते हैं। 5. सारे। 6. अहंकार। 7. रुपये। 8. बहुत सी नौकाएँ इकट्ठी कीं। 9. सेना।

तिस के नरन संग सिख गए। बैठ्यो विप्र अहंक्रित कए।
खरे होइ करि बात सुनाई। श्री नानक गादी इस थाई ॥ ४० ॥

त्रिती थान गुरु अमर सुहाए। सिख संगति उपदेश द्रिडाए।
देग चलावति भोजन देति। नहिं संचै कुछ रखैं निकेति ॥ ४१ ॥

तिन की पुरी बसहिं नर नारी। करहिं सभिनि की नित रखवारी।
धारहु शरधा चहहु अहारे। तो ग्रानहिं जेतिक गुर द्वारे ॥ ४२ ॥

सुनि कै कह्यो बीरबल फेर। जेतिक खत्री के घर हेर।
सभि मिल संचि रजतपण ल्यावहिं। पुन आगे हित नाम लिखावहिं ॥ ४३ ॥

करहिं बहाने अनिक प्रकारे। इह नहिं मिटहिं लेहु उरधारे।
जिस के गुर तिस के बन रहो। हमैं सुनावनि हित किमि कहो ॥ ४४ ॥

कार कदीमी हटहि न मोरी। सभि पर दंड लग्यो चहुं ओरी।
सुनि कै सिख अनमन हुइ आए। सतिगुर निकट ब्रितंत सुनाए ॥ ४५ ॥

इहु दिज हंकारी नहिं जानहि। कर मेरो अब देहु वखानहि।
नांहि ते बल को करहिं, कुचाली। लाखहुं सैना के भट नाली ॥ ४६ ॥

सुनि श्री अमरदास मुसकाए। 'जिनहुं जगत प्रभुता कित पाए।
मद करि अंध होति मति बौरे। अपने सम नहिं जानहिं औरे ॥ ४७ ॥

बिन गुर सेवे होव संताप! ठानति मूरखि बहु बिधि पाप।
करति साहिबी केतिक दिनि की। बिसर जाति गति जनम मरन की ॥ ४८ ॥

नहिं दीरघ दरसी हुइ हेरैं। अंत समै धन संग न मेरै।
औचक गहै आइ जखाणा[1]। नगन इकाकी करहि पयाणा ॥ ४९ ॥

पिखिय न जबि लौ नांहिन मानहिं। पहुंची जर तन इस नहिं जानहिं।
बिरम्यो माया मोह जु मीठा। परच्यो चित बनिता सुत ईठा ॥ ५० ॥

सुनि सिख्यन पुन बूझठ ठाने। इस को किमि उपाव हम जाने।
करहि अवग्या देह बिखादू। जिस के गुरु महिमा नहिं यादू ॥ ५१ ॥

सहज सुभाइक सतिगुर बोले। निशचै राखहु क्यों मन डोले।
देखहु कहां करहि करतार। सिर लागे ते समझ गवार ॥ ५२ ॥

जाइ बिलोहु तहिं तुम दोऊ। कहै बारता सुनीअहि सोऊ।
आइसु मानि गए ततकाला। बैठे जिह ठां पौर विसाला ॥ ५३ ॥

1. यमदूत।

तिस छिन अकबर के परवाने। आए बड तूरनता ठाने।
भन्यो बीरबल सों तिन नरन। 'इस पुरि महिं गन खत्री बरन ॥ ५४ ॥
अबि लौ हुकम मानि नहिं आए। संध्या परी सु समां बिताए।
हुकम आपको होइ सु करैं। जाइ तिनहुं ढिग कै इत टरैं ॥ ५५ ॥
कह्यो बीरबल 'अबि निस परी। प्रात मुकाम[1] करहिं इस पुरी।
तबि सभि को गहि कै मंगवावैं। नाहिं त हुकम मानि करि आवैं ॥ ५६ ॥
भयो तिमर सिख सुनि करि आए। बिगरहि प्राती 'गुरनि बताए।
कहिं श्री अमर 'मुकाम न होइ। बेग इहां ते गमनहि सोइ ॥ ५७ ॥
नहीं चिंता चित बिखे बिचारो। रहो अनंदति सदन सिधारो।
सुन्यो बीरबल जबहिं प्रवाना। लिखी जिसी महिं शीघ्र महांना ॥ ५८ ॥
तिसी देश भा दुंद घनेरा। लूट कूट लीनो दल डेरा।
नहिं कित ठहिर मुकाम करी जहि। दीह मजल ते तहिं पहुंची जहि ॥ ५९ ॥
करहु जाइ सर[2] लरहु घनेरे। दीरघ लशकर है संग तेरे।
'सुनि निस महिं त्यारी करिवाई। बड़ी प्राति ते होहि चढाई ॥ ६० ॥
सभि लशकर महिं सुधि करि दीनि। निसा बितावन तिहठां कीनि।
भोर भूर ते बजे नगारे। सुनि सभि जीन तुरंगन डारे ॥ ६१ ॥
आप चढिन की त्यारी कीनी। चल्यो प्रसंग तवहि खत्रीन।
इस पुरि के नहिं चलि करि आए। नहीं रजतपण किनहुं पठाए ॥ ६२ ॥
किस अलंब हंकार करंते। बडो आप ते किसहि लखंते।
जिस ते त्रास न धरहिं तुमारो। कहैं कि हम ते लेहु अहारो ॥ ६३ ॥
सुनि करि कह्यो बीरबल तबै। भई शीघ्र चाले चढ़ि अबै।
हरि कै आवैं जबि इस पुरि को। करहिं बिलोकन तबि हम गुर को ॥ ६४ ॥
अबि ते दस गुना धन लेहिं। अपर सजाइ कछू इन देहिं।
नहिं राखी मेरी वडिआई। मिले न दयो दरब समुदाई ॥ ६५ ॥
इमि इक नर सों भाखि पठायो। आप अरूढ्यो पंथ सिधायो।
शीघ्र करति ही लशकर चाला। दूर बिसाल सिवर को घाला ॥ ६६ ॥
सो नर चलि करि गुर ढिग आयो। कह्यो बीरबल केर सुनायो।
तुम पर होयो क्रोध घनेरे। देउं सजाइ आइ जिस बेरे ॥ ६७ ॥

---

1. डेरा। 2. विजय करना।

क्यों नहिं चाह्यो अपन भलेरा। मिले क्यों न दे दरब बडेरा।
हरि आवहि बहु देइ बिखादा[1]। करहि कैद, धन ले बहु बादा[2] ॥ ६८ ॥
बोले अमर गुरू सुनि सोइ। इहां न आवन इसको होइ।
बरफ संग तिह ठां गर जाइ। हंकारी नहिं जीवन पाइ ॥ ६९ ॥
चितवहि बुरा गुरू घर संग। किम ठहिरहि तूरन हुइ भंग।
इम कहि तूशन भए गुसाईं। गयो विप्र तुरकन पर धाइ ॥ ७० ॥
इक दुइ जंग अखाडे भए। बरफ गिरन महिं सभि धसि गए।
नाक सीत ते ठर गिर पर्यो। दुंदभि तवै बजावन कर्यो ॥ ७१ ॥
भई बरफ नभ बरखा घनी। दब्यो बीरबल जुति सभि अनी।
गुर को बाक सदा सुफलावै। नहीं सुरासुर को उलटावै ॥ ७२ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'बीरबल प्रसंग'** बरननं नाम एक चत्वारिंसती अंशु ॥ ४१ ॥

———

1. कष्ट। 2. झगड़ा करके।

अंशु ४२

तेईआ ताप को प्रसंग

दोहरा

इक दिन सतिगुर निसा महिं सिहजा पर सुपताइ।
कूक पुकारि नारि इक सगरी पुरी सुनाइ ॥ १ ॥

चौपई

गुर के खुले सुनति ही नैन। बोले दास संग सुख दैन।
कौन अचानक कीन पुकारी। किस ते दुख पायो इस नारी ॥ २ ॥
सुनि बल्लू ने तबहि बताई। पुत्र पुत्र कहि कौ बिललाई।
कहां भयो कुछ जाइ न जाना। नंदन दुखी कि हति भा प्राना ॥ ३ ॥
सतिगुर कह्यो 'जाइ सुध आनहु। भई दुखी किमि हमहिं बखानहु।
सुनि ग्राइसु बल्लू चलि गयो। म्रितक पुत्र तिह देखति भयो ॥ ४ ॥
सभि विधि बूझि गुरू ढिग कह्यो। त्रिय बिधवा के इक सुत रह्यो।
तेइग्रा ताप खेद तिसु दै कै। कर्यो म्रितक बहु निरबल कै कै ॥ ५ ॥
सुनि गुर कह्यो, प्राति जबि होइ। मर्यो पुत्र तिस जीवन होइ।
ग्रबि कहि देहु न करहि ब्रिलाप। बंधहि कैद जि तेईआ ताप ॥ ६ ॥
सुनि बल्लू ने जाइ हटाई। भई भोर सुत म्रितु लै आई।
उठि सतिगुर तिह चरन लगायो। तूरन बालक तबहि जिवायो ॥ ७ ॥
पुन गुर तेईआ ताप हकार्यो। तिस को बालक सम तन धार्यो।
चरन जंजीर डार करि दीन। गर महिं तौक पाइबो कीन ॥ ८ ॥
जुग हाथन महिं डारि हथौरी। लोह पिंजरे महिं तिस ठौरी।
पाइ बीच निज पौर टिकायो। कह्यो गुरू 'इन त्रास न पायो ॥ ९ ॥
आनि ग्रवग्या पुरि महिं कीनि। विधवा को बालक हति दीनि।
हमरो करिओ प्रण नहिं जान्यो। मातहिं पितहिं पिखति सुत हान्यो ॥ १० ॥
एक रोग को होइ मजाइ। पुन हमरे पुरि कोइ न आइ।
रहै पिंजरे महिं इहु पर्यो। गोइंदवाल निडर हुइ बर्यो ॥ ११ ॥
इमि कहि अपने पौर रखायो। केतिक मासन समां बितायो।
गुर बच संगल संग रह्यो है। छुधति अधिक न अहार लह्यो है ॥ १२ ॥

दुरबल अंग होइ बहु गयो। गुर सिक्खन को बंदति भयो।
को आवहि ऐसो उपकारी। मोहि मुचावहि करुनाधारी॥ १३॥
निकट कदीमी सेवक जोइ। लखहिं दुखद हित कहैं न सोइ।
डल्ले ग्राम बिखै सिख जेई। गुर दरशन हित ग्राए सोइ॥ १४॥
अरपि अकोर[1] अनेक प्रकारा। श्री सतिगुर मुख कमल निहारा।
करि करि बंदन बैठि नजीका। बोले गुरू गिरा रमणीका॥ १५॥
कुशल अनंद सभिनि महुं अहे। मिलि सभि संगति को रस लहे।
डल्ले महिं सिख सेवक मेरे। पारो लालो आदि बडेरे॥ १६॥
निति प्रति मोकहु अतिशै प्यारे। जिन मिलिबो नर और उधारे।
सुनि लालो कर जोरि बखानी। 'बखशहु अपनी संगति जानी॥ १७॥
जो किछु अहै प्रताप तुमारा। हम सम बपुरे कहां बिचारा।
इत्यादिक बच सुनि अरु कहिकै। इक दुइ दिवसु बिताए रहिकै॥ १८॥
आवति जाति पिंजरा हेरा। बालक दुरबल बीच वडेरा।
देखि घनी करुना मन आई। सतिगुर के ढिग जाइ सुनाई॥ १९॥
महांराज इस करहु खलासी[2]। दुरबल अधिक लहै दुख रासी।
भयो दीन कर जोरि दिखावै। छुटिबे कारन बिनै सुनावै॥ २०॥
तबि श्री अमर कह्यो छुटवाउ। संग आपने ले करि जाउ।
हमरी दिशा बहुर नहिं आवै। मिली सजाइ थिर्यो पछुतावै॥ २१॥
इम आग्या सतिगुर की लीनि। ग्राइ खालसी ततछिन कीनि।
गुर ते बिदा होइ सभि चाले। तिस बालिक को लीनसि नाले॥ २२॥
पहुंचे कितिक कोस जबि जाइ। तेइआ ताप छुधित बिकुलाइ।
लालो संग कह्यो कर जोरि। बहु चलिबे को नहिं मम जोर॥ २३॥
भूख अधिक लागी तन मेरे। बिन अहार दिन बिते घनेरे।
दिहु आग्या मैं ग्रबि त्रिपतावौं। पुन तूरन तुम साथ सिधावौं॥ २४॥
सुनि लालो करि दया उचारी। ग्रागे चलि हैं ग्राम मझारी।
पहित[3] चून ले बहुत पकावैं। नीकी रीति तोहि त्रिपतावैं॥ २५॥
नहीं दूर कछु नेरे जानि। मन भावन कीजै तहिं खान।
पुन तुझ को ले संग सिधारैं। सने सने चलि, नाहिं न हारैं॥ २६॥
सुनि बालक तबि बाक बखाना। मम अहार अबि है इस थाना।
तुम आग्या बिन सकौं न खाइ। करहु तुरत ही ह्वै त्रिपताइ॥ २७॥

1. भेंट। 2. मुक्त करना। 3. दाल।

सहज सुभाइक लालो कह्यो। त्रिपतावहु अहार जहिं लह्यो।
घरी मात्र हम ठहिरनि करें। पुन हम चलै तोहि संग धरैं॥ २८॥
तहिं धोबी इक बसत्र पखारहि। जल निचोर शुशकनि को डारहि।
जबि लालो ते आग्या लीनि। ततछिन चढिबो तिस तन कीनि॥ २९॥
भयो कंप धोबी गिर पर्यो। सरब सरीर पीरबो कर्यो।
रुधिर निचोर लीनि तबि ऐसे। बसत्र निचोरति जल को जैसे॥ ३०॥
तहिं घट फोरि ठीकरा भर्यो। लालो निकट ल्याइबो कर्यो।
लग्यो दिखावन 'लेहु निहार। इस प्रकार को मोरि अहार॥ ३१॥
चिरंकाल ते छुधति बिसाला। पान करौं त्रिपतौं इस काला।
क्रिपा आप की मोहि बचायो। वड बंधन ते खोलि मुचायो॥ ३२॥
सुनि अर पिखि लालो उर त्रासा। गह्यो पिंजरे बिखे निकासा।
बडी बलाइ न मैं कुछ जाना। संग क्रूर करमां अबि आना॥ ३३॥
कहनि लग्यो 'चलि हरि गुर पौर। मैं न लिजावौं अपनी ठौर।
जीवन कौ दुखदाइक पापी। ब्याकुल करहि महां संतापी॥ ३४॥
गुर राखहि कैद मझारी। कहां रुधर को पाइं अहारी।
सुनि तेइआ चित अतिशै त्रासा। नहिं ले जाहु अबहि गुर पासा॥ ३५॥
मैं तुमरे बाकन अनुसारी। जिमि उचरहु सो करिहौं कारी।
अबि ते आगे इही प्रसंग। जिस बिधि होयो हम तुम संग॥ ३६॥
कहै कथा को सुनहि सुनावै। श्री गुर अमर नाम को ध्यावै।
तहां न मैं दुख देहुं बिसाला। सुनि प्रसंग गमनौं ततकाला॥ ३७॥
करुना करहु छोर अबि जावहु। निज उपकार कर्यो न मिटावहु।
बिनै सुनी लालो तजि गयो। गुरू कैद ते छुटति भयो॥ ३८॥
बहुर न गोइंदवाल प्रवेशा। सुने नाम उर धारि विशेशा।
इस प्रकार सभि रोग डराए। गुर पुरि बिखै न फेरो पाए॥ ३९॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे '**तेईआ ताप** को प्रसंग बरननं' नाम दोइ चत्वारिंसती अंशु॥ ४२॥

———

अंशु ४३

द्विज बाहज फरियादी प्रसंग

दोहरा

इक दिन पारो ने करी गुर आगे अरदास।
प्रिथक प्रिथक सिख संगतां आवति हैं तुम पास ॥ १ ॥

चौपई

नहीं परसपर मिलिबो होइ। भाउ प्रेम नहिं धारहि कोइ।
किह की किह सों ह्वै न चिनारी। दरस जाइं घर वारो वारी ॥ २ ॥
आपस महिं जबि प्रापति मेला। भाउ भगति बहु वधहि सुहेला।
करिबो उचित होउ अस बाती। आवहि संगति उर हरखाती ॥ ३ ॥
एक दिवस महिं मेलो होइ। बहु देशनि पुरि संगति जोइ।
रावर की रजाइ बनि जै है। दूरि दूरि के सिक्ख मिलै हैं ॥ ४ ॥
सुनि श्री अमर सु भए प्रसन्न। कह्यो बाक 'पारो तुम धंन।
पर उपकार बिचारन करैं। सिक्ख अनेक मिलहिं निसतरैं ॥ ५ ॥
जो तुम चितवी मम चित सोए। सगरे आवहिं दिवस बसोए[1]।
सभि सिक्खन को लिखहु पठावहु। गुर दरशन को इकटे आवहु ॥ ६ ॥
तबि पारो ने लिखि परवाने। पठे पुरनि जहिं जहिं सिख जाने।
सुनति हुकमनामा गुर केरा। सिक्खन के चित चाउ घनेरा ॥ ७ ॥
रहे उडीकति पुन सभि कोए। पहुंचहिं गुर ढिग दिवस बसोए।
दिन प्रति वधति रहति बड भाउ। गुर दरशन को चौगुन चाउ ॥ ८ ॥
बीति सिसुर बसंत प्रकाशा। सुमन सु बन उपबनहिं बिकासा।
बहुती उसन[2] न सीतलताई। चलन पंथ को है सुखदाई ॥ ९ ॥
जहिं जहिं सतिगुर के सिख ब्रिंदे। दरशन को उमगे आनंदे।
बंधे टोल संगत आई। चहुं दिश ते वसतू गन ल्याई ॥ १० ॥
आनि सभिनि गुरु दरशन हेरा। मेला मिलि कै भयो वडेरा।
जथा चकोर होइ समुदाया। श्री सतिगुर निसपति[3] दरसाया ॥ ११ ॥
गोइंदवाल बिसाल सु भीर। दरसैं वार न पावहिं तीर।
पाइन पास उपाइन धरि धरि। आवहिं जाहिं बंदना करि करि ॥ १२ ॥

---

1. वैसाखी अथवा बरसात। 2. उष्णता, गरमी। 3. चन्द्रमा।

सिख अनेक देग़ को लागे। करहिं पाक सिध उर अनुरागे।
केतिक नीर आनिबो करिहीं। संगति को सेवहिं हित धरिहीं ॥ १३ ॥
महां कुलाहल मेला होवा। ह्रखति संगति दीरघ जोवा।
करहिं परसपर भाउ बिसाला। उचरहिं मिलि गुर को जस् जाला ॥ १४ ॥
अति अनंद संगति महिं होइ। सिख मेले को लहि सभि कोइ।
कितिक समो बीत्यो जबि जान्यो। श्री सतिगुर किरपाल बखान्यो ॥ १५ ॥
रामदास को चिर बहु होवा। कहां गयो हम निकटि न जोवा।
सेवक बल्लू कह्यो सुनाइ। संगति की बहु सेव कमाइ ॥ १६ ॥
देग त्यार करि देहि अहारा। पंकति को बिठाइ इक सारा।
सीतल जल को भरि भरि ल्यावै। बूझि बूझि संगति को प्यावै ॥ १७ ॥
छुधा पिपासा सभि की हरै। बांछत सिख्यनि दैबो करै।
कर महिं गहै बीजना फेरि। बायु करति उशन बहु हेरि ॥ १८ ॥
सभि संगति को खुशी करंता। इत उत फिर कै सेव बुझंता।
चहे जु देहि अहार कि पानी। इस प्रकार की सेवा ठानी ॥ १९ ॥
यां ते नहिं आवन तिस केरा। रह्यो रुक्यो जहिं काज बडेरा।
सुनि श्री सतिगुर अमर प्रसन्न। कह्यो कि रामदास है धन्न ॥ २० ॥
जिन संगति की सेवा करी। हमरे हित इमि प्रीती धरी।
दुलभ पदारथ होइ न कोइ। नौ निधि सिधि पाए है सोइ ॥ २१ ॥
सिख मेरे सेवे अनुराग। अपर न इसते को बडि भाग।
जग महिं बंस बिसाल जु इसको। पूज मान होवहि चहुं दिश को ॥ २२ ॥
जो नर मम संगति को सेवहि। हलत पलत महिं शुभ फल लेवहि।
मोर महातम जेतिक अहै। रामदास जानहि फल लहै ॥ २३ ॥
दुइ लौकनि महिं जो पद ऊचे। रामदास तहिं जाइ पहूचे।
जग महिं प्रगट प्रकाश करहिंगे। इस पीछे सिख ब्रिंद तरहिंगे ॥ २४ ॥
इत्यादिक बहु जस को कह्यो। इहु लायक सतिगुर ने लह्यो।
बहुत संगता भई इकत्र। गुर भाई प्रेमी भए मित्र ॥ २५ ॥
गुर सम सिख को सिख मिल सेवहिं। चरन धोइ चरनांम्रित लेवहिं।
सगल नगर किरतन धुनि होइ। वाहिगुरू सिमरहि सभि कोइ ॥ २६ ॥
तिस दिन ते मेले की रीति। करी बिदति गुर 'हुइ अबि नीति।
पिखि प्रभाउ सतिगुर बडिआई। निंदक दुशट महां दुख पाई ॥ २७ ॥
मेला बिछुरे पुरि पुरि गए। गुरू ब्रितांत सुनावति भए।
पंथ नवीन प्रकाशन कर्यो। भेद बरन जाती परहर्यो ॥ २८ ॥

चतुर बरन इक देग अहारा। इक सम सेवहि धरि उर प्यारा।
चरनांम्रित को दे सिख करैं। वाहिगुरू सिमरहिं हित धरैं॥ २९ ॥
सुनी खत्री दिज गन अग्यानी। परम अभगत जाति अभिमानी।
जरहिंन गुर की सिफति उदारा। कहैं सु क्या परपंच पसारा॥ ३० ॥
इक दिन मिलि सभि मसलत[1] करी। इह तो रीति बुरी जग परी।
अबि दिज को नहिं मानहि कोइ। खत्री धरम नशट सभि होइ॥ ३१ ॥
चतुर बरन को इक मत कर्यो। भ्रिशट होइ जग धरम प्रहर्यो।
इक थल भोजन सभि को खई[2]। संकरि बरन प्रजा अबि भई॥ ३२ ॥
देव पितर की मनता छोरी। सभि मिरयाद जगत की तोरी।
अबि उपाइ इक करन पुकार। बरजहि पातसाहि इस ढार[3]॥ ३३ ॥
इम मसलत करि इकठे ह्वै कै। दिज खत्री मुखि अति दुख पै कै।
लवपुरि गए फिरादी[4] सारे। ढिग अकबर के जाइ पुकारे॥ ३४ ॥
तुम मिरयादा राखन हारे। बिगरति को जग देति सुधारे।
गोइंदवाल अमर गुरु होवा। भेद बरन चारहुं का खोवा॥ ३५ ॥
राम गाइत्री मंत्र न जपै। वाहिगुरू की थापन थपै।
जुग चारहुं महिं कहीं न होई। जिमि मिरजाद बिगारी सोई॥ ३६ ॥
श्रुति सिम्रति का राह न चाले। मन को मति करि गए निराले।
हमरी करहु अदालत[5] ऐही। द्रिड हुइ धरम सु राज ब्रिधेही[6]॥ ३७ ॥
पसर जाइ सभि जगत बिसाला। पुन मुशकल इहु टलहि न टाला।
सुनि अकबर ने दीन दिलासा। करहुं न्याउं राखहु भरवासा॥ ३८ ॥
तिन को इस थल लेहिं बुलाई। सभि बिधि बुझहिं बिच समुदाई।
अपनी बात तबहि तुम कहो। दोनहु की सुनि हैं जिम लहो। ३९ ॥
झूठ साच तबि करहिं नितारा। सुनि कै सभि संवाद तुमारा।
करौं अदालत नीके बैस। वहु पुरि के मुखि मुखि तुम हैस॥ ४० ॥
इमि सुन सगरे लवपुरि रहे। गुर को मति मोरहिं चित चहे।
दिज खत्री सु जाति अभिमानी। भए इकत्र द्रुजन अनजानी॥ ४१ ॥
केतिक दिन महिं अकबर शाहू। लिखि परवाना भेज्यो पाहू।
तुम पर भए फिरादी आइ। वहु पुरि के नर ह्वै समुदाइ॥ ४२ ॥
करहु जबाबदिही इन संग। नातुर इनके चालहु ढंग।
परवाना सतिगुर पहि आयो। सुन्यो श्रवन--हम शाहु बुलायो॥ ४३ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'द्विज बाहज फरियादी'** प्रसंग बरननं तीन चत्वारिंसती अंशु॥ ४३ ॥

---

1. परामर्श। 2. सब किसी का खिलाते हैं। 3. इस रीति से। 4. फरियादी होकर। 5. न्याय। 6. राज बढ़ेगा।

अंशु ४४

लवपुरि ते श्री रामदास आगवन

दोहरा

सुनि परवाना शाहु को सतिगुर कर्यो बिचार।
को लायक तहिं भेजिबे बोले सभा मझार॥ १॥

चौपई

अजर जरन अर चतुर महाना। कहनि सुननि गति जानहि नाना।
जथा जोग प्रशनोतर करैं। कूरे बनहि पुकार जि धरै॥ २॥
सभि बिधि को लायक मन जाना। रामदास गुन मनहु खज़ाना।
निकटि हकार्यो लीन बिठाइ। हित सों नीके तिह समझाइ॥ ३॥
हे सुत ! दिज खत्री कुलवान। गए पुकारू जाति गुमान।
हम को देखि सकहिं नहिं सोइ। अग्यानी मति मूरख होइ॥ ४॥
बहु पुरि के मिलि गए फिरादी। मतसर करि मिथ्या अपवादी।
बीच कचहिरी के संवाद। कहि कहि जीतहु धरि अहिलाद॥ ५॥
जिमि बूझहिं तिम देहु जवाब। करहु न देरी जाहु शिताब।
सुनति खरे हुइ बिनती ठानी। हे सतिगुर सभि मति गुन खानी॥ ६॥
तुमरे प्रेम बिना कुछ आन। मैं नहि जानति कहां बखान।
गाइत्री श्रुति सिंम्रिति सार। पठे न कबहूं करे बिचार॥ ७॥
आग्या तुमरी के अनुसार। मैं बोलौं संग होहिं हजार।
बिरद लाज तुम को सभि अहै। हमरो नाम न कोऊ कहै॥ ८॥
इमि बिनती सुनि श्रोन क्रिपाल। क्रिपा द्रिशटि पिखि कै तिस काल।
सतिगुर कह्यो भले समझाइ। हे सुत त्रास न कीजहि काइ॥ ९॥
निज भुज पिखहु दाहिनी जबै। सभा बिखै फुर आवहि सबै।
चारहुं वेद भेद को पावहिं। खट शासत्र बकता हुई जावहिं॥ १०॥
अपर जि उकति जुकति सभि होइ। सार पुरानन को लखि सोइ।
निरभै सभि महिं कहीअहि बानी। हे सुत प्रापति बिजै महांनी॥ ११॥
शासत्रान के करता जोइ। तुझ संग कहैं समरथ न सोइ।
इहु नर बपुरनि की क्या गिनती। सरब सुरासुर ठानहिं बिनती॥ १२॥

इमि सुनि बाकनि धर्यो भरोसा। करि बंदन को चले अदोशा।
लवपुरि अपने ग्रहि महिं गए। उठे प्रात तहिं जावति भए॥ १३॥
सुनि अकबर ने सरब हकारे। दिज खत्री पहुचे तबि सारे।
अपर लोक अरु सभि उमराव। मिलि इकठे होए तिस थाव॥ १४॥
सभि संग अकबर ने कह्यो। कौन खोट इन महुं तुम लह्यो।
जिस पर करि पुकार सभि आए। अपनो धरम कहहु समुझाए॥ १५॥
दिज खत्री पंडित बिच केई। मतसर अगनि जरति हैं जेई।
सो बोले 'इन खत्री जाति। अपनो पंथ कर्यो बख्यात॥ १६॥
बेद रीत को त्यागन कर्यो। औरे मत अपनो परचुर्यो।
अपर बात तो कहिनी कहां। हिंदुनि धरम गाइत्री महां॥ १७॥
सो भी नहिं जानहिं नहिं जपैं। गुरबाणी कुछ औरहि थपैं।
तबि अकबर ने इन दिश देखा। गाइत्री तुम धरम विशेखा॥ १८॥
सो भी पठी न तुम ने कैसे। हिंदु धरम खत्री किमि हैसे।
रामदास गुर बचन संभारा। भुजा दाहिनी दिशा निहारा॥ १९॥
सभि बिद्या प्रापत भी ऐसे। चिरंकाल पठि पावहि जैसे।
बोले रामदास संग शाहू। 'पठहिं गाइत्री हम तुम पाहू॥ २०॥
अरथ समेत सुनावहिं सारी। जो आशै है तांहि मझारी।
सभि के बीच पाठ तिस पढे। पाप पुंन सभि इन सिर चढ़े॥ २१॥
इमि कहि धुनि कीनसि इस भांति। सकल अरथ को कहि बख्याति।
'ओ अंकार' उचारन कर्यो। सुनि धुनि बायू गमनति थिर्यो॥ २२॥
पाथर म्रिदुल तहां हुइ गए। सुनि सभि लोक बिसमते भए।
द्रव्यो सु मन सभि को तिसकाल। तूशनि पंडति कीनि बिसाल॥ २३॥
सीतल रिदै भए सभि केरि। प्रगटी प्रीत रहे मुख हेरि।
अचर चरे, चर अचर भए जबि। क्या गिनती नर बपुरन की तबि॥ २४॥
अकबर अति प्रसन्न हुइ गयो। सभिनि सुनाइ बखानति भयो।
'परमेशुर दरवेश जि दोऊ। नहीं भेद एको इह सोऊ॥ २५॥
इन सों समता तुम हुइ नांही। इह साचे तुम मिथ्या मांहीं।
बेद पुरान कह्यो इन कर्यो। तुम कहिबे मातर में थिर्यो॥ २६॥
क्यों न कहहु अबि सनमुख बानी। अरथ सहत गाइत्री बखानी।
इस महिं करहु प्रशन जे जानहु। नांहि त अबि बंदन को ठानहु॥ २७॥
पिखि अकबर को तेज बिसाल। झूठे होइ सकल तिस काल।
बाक न किनहु उचारनि कीना। उठि सभि ने घर मारग लीना॥ २८॥

रामदास के संग पिछारी। बानी अकबर शाहु उचारी।
जग के लोक दुखहिं तुमि हेर। अनिक भांति की निंदा टेरि ॥ २९ ॥
यांते सभिहिनि को मन राखनि। मम दिश ते गुर सों करि भाखनि।
करनि तीरथन को इशनान। अंगीकार करहिं रुचि ठानि ॥ ३० ॥
तुम हो बडे रखहु मिरजादा। अर सभिहिनि को मिटहि बिबादा।
तीरथ पावन तुम ते होइं। मूरख नर नहिं जानहि कोइ ॥ ३१ ॥
इस प्रकार कहि अकबर शाहू। रामदास करि बिदा उमाहू।
इक दिन अपने ग्रहि रहि करिकै। श्री गुर को मन प्रेम संभरि कै ॥ ३२ ॥
जबि बजार महिं पहुंचे जाइ। बहुत मोल के बसत्र बिकाइं।
अति सुंदर को देखन लागे। इह गुर उचित-चितवबे लागे ॥ ३३ ॥
गर को बसत्र होइ इस केरा। इह ऊपर को बनहि बडेरा।
धन ढिग नहीं मोल जो देइं। गुर हित बसत्र बनाइ जि लेइं ॥ ३४ ॥
गुर के उचित जानि नहिं तजै। खरो रह्यो हिरदे महिं जजै।
मन करि बसत्र सीवतो खर्यो। गर गुर के पहिरावन कर्यो ॥ ३५ ॥
पुन ऊपर को बसत्र सुधारहि। पहिरावहि गुर ध्यान सु धारहि।
गोइंदवाल जान करि भाउ। श्री गुर पहिरहिं अंग हिलाउ ॥ ३६ ॥
कबि हाथन को ऊचे करैं। कबि तनी बधन को धरैं।
इत उत हो करि देहि हिलावहिं। सभि सिख देखि देखि बिसमावहिं ॥ ३७ ॥
बैठे श्री सतिगुर बिन कारन। इत उत तनि करि भुजा उसारन।
सभि कै मन की बल्लू जान। संसै जुति हुइ बूझनि ठानि ॥ ३८ ॥
हे प्रभु ! सिंहासन पर थिरे। किमि इत उत अंगन को करे।
राविरि लीला लखी न जाइ। कहीअहि प्रभु चाहति समुदाइ ॥ ३९ ॥
तबि श्री अमर मन्यो मन भवति। 'रामदास मुहि पट पहिरावति।
लवपुरि के बजार महिं थिर्यो। तहिं पिखि पर पहिरावन कर्यो ॥ ४० ॥
सुनि सनिहिनि तबि सीस निवायहु। भाउ सदा सिक्खन को भायहु।
इम तहिं बसत्र निवेदन करे। लखि गुर उचित प्रेम ते भरे ॥ ४१ ॥
रामदास पुन चले अगारे। आए चौंक नरवास[1] मझारे।
बिन रुति ते तहि आंब बिकाइं। अति सुंदर पिखि रह्यो लुभाइ ॥ ४२ ॥
लवपुरि की इह वसतु अजाइबु। अरपन उचित सरस गुर साहिब।
रिकत हाथ[2] वडिअनि ढिग जाना। इस ते परे आन को हाना ॥ ४३ ॥

1. मंडी। 2. खाली हाथ।

अदभुत बिन रुत फल लै जै हौं। अरपि अगारी बंदन कै हौं।
बहु दिन के बिछरे दरसै हौं। पिखि सरूप लोचन त्रिपतै हौं ॥ ४४ ॥
ढिग हुई बूझ्यो बेचन वारो। कहहु मोल इहहु फल बिवहारो।
एक रजतपण मोल कियो है। सो दे करि निज हाथ लियो है ॥ ४५ ॥
करे शीघ्रता गमन्यो फेरि। गोइंदवाल पंथ को हेरि।
बढ्यो प्रेम श्री सतिगुर पूरन। मिल्यो चहै चलि करि मग तूरन ॥ ४६ ॥
चलति चलति दिनमनि असतायहु। ग्राम बिखै बसि निसा बितायहु।
बडी प्रभाति उठे पुन चले। चित महिं प्यास अधिक गुर मिले ॥ ४७ ॥
भैरोवाल ग्राम तबि आए। गोइंदवाल रह्यो निकटाए।
लगी उशनता कर की फल को। फूट गयो रस निकसति ढल को ॥ ४८ ॥
गुर लग नहिं पहुंचै चितचीनि। तब श्री अमर ध्यान धरि लीनि।
हे प्रभु ! इह फल अरपन कर्यो। बिन रुत को रसु जाइ सु ढर्यो ॥ ४९ ॥
अंगीकार करहु मुख पावहु। मम मनसा को पूर करावहु।
इमि कहि आंब खाइ सो लीनि। इत श्री गुर रस चूसनि कीनि ॥ ५० ॥
बहुत प्रीति सों स्वादति करि करि। रस चूसति घूटनि बर भरि भरि।
कितिक समैं गुठली मुख राखी। बहुर निकासि दास सों भाखी ॥ ५१ ॥
इस को राखहु ताक मझारी। पुन हम लैहैं कबि इक वारी।
बल्लू ने आइसु को मानि। धरी संभारि सभा के थानि ॥ ५२ ॥
रामदास केतिक चिर पाछे। पहुंचति भए प्रेम चित बांछे।
देखि दूर ते मुदति महाना। जिउं रवि हेरि कमल बिगसाना ॥ ५३ ॥
चरन सरोजन के द्रिग भौर। करी नमो तूरन ही दौर।
सतिगुर ने गहि भुजा उठावा। जानि प्रेम बहु कंठ लगावा ॥ ५४ ॥
क्रिपा द्रिशटि सों देख्यो कैसे। जलद त्रिखति चात्रिक को जैसे।
सनमानति सनमुख थिर थीवा। मनहुं प्रेम दीरघ की सीवा ॥ ५५ ॥
बूझ्यो 'कहु ब्रितांत सुलतान। किमि दिज बाहज कीनि बखान।
तुम ने को उत्तर दे मोरे। किमि अकबर कहि कीनस हौरे ॥ ५६ ॥
हाथ जोरि बिरतांत बखाना। सुनहु प्रभू किछु जाइ न जाना।
पाठ करन गाइत्री चह्यो। सभि नर अरु अकबर ने कह्यो ॥ ५७ ॥
नहिं मैं जानति हुतो अगारी। बच संभारि तुम भुजा निहारी।
सरब ग्यात ततछिन हुइ आइव। पूरब ओ अंकार सुनाइव ॥ ५८ ॥
सुनि धुनि चक्रित चित महिं चमके। सक्यो न कहि को तब बच सम के।
सतिगुर धंन' बखानति शाहू। भा प्रताप तुमरो सभि माहूं ॥ ५९ ॥

इक पठिबो गाइत्री तबै। भए मौन नहिं बौलै सबै।
सुनि सतिगुरू प्रसन्न महाना। बूझ्यो 'हम हित क्या तुम आना ॥ ६० ॥
नगर बिसाल बिखै चलि गयो। क्या वसतू तहिं ल्यावति भयो।
हाथ जोरि कहि 'तुम सभि जानो। जथा बसत्र पहिरावनि ठानो ॥ ६१ ॥
बिना मोल ते अरपन करे। रावरि उचित जान करि खरे।
बिन रुति फल रसाल को आगे। पिखति भयो, बहु सुंदर लागे ॥ ६२ ॥
आन्यो मोल आप के कारन। तूरन कीनसि पंथ पधारन।
निकट रह्यो पुरि अपने आवनि। हुतो पाक रसु लाग चुचावन ॥ ६३ ॥
फूट गयो रस निकसति जाना। पहुंच्यो भैरोंवाल सथाना।
अरप्यो धरि करि ध्यान तुमारा। हुइ निसंक निज मुख महिं डारा ॥ ६४ ॥
पूरन सभि घटि बिखै क्रिपाल। राखहु शरधा जन सभि काल।
अरपति जे तुम को जन लोग। भोगति हो इह रावरि जोग ॥ ६५ ॥
प्रेम मगन सतिगुरू सुनाइव। फल रसाल जो मम हित ल्याइव।
सो हम खायो गुठली धरी। बल्लू तबहिं दिखावनि करी ॥ ६६ ॥
रामदास अरु नर गन सारे। हेरति अचरज थिरे बिचारे[1]।
श्री सतिगुर नित भाउ अधीना। सभिनि प्रवीननि लीनसि चीना[2] ॥ ६७ ॥
बंदति-लखी न जावहु लीला। पार ब्रह्म श्री गुरू गहीला।
सिख्यन हित अचरज दिखरावति। सदा प्रेम बसि इही जनावति ॥ ६८ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'लवपुरि ते श्री रामदास आगवन'** प्रसंग बरननं नामु चतुर चत्वारिंसती अंशु ॥ ४४ ॥

———

1. चकित होकर विचारने लगे। 2. चतुर व्यक्तियों ने समझ लिया।

अंशु ४५

श्री अमर जी को तीरथ प्रसंग

दोहरा

श्री सतिगुर इस रीति निति, करति सिक्खत कल्यान ।
नाम दान दें मुकति हित, जाहर जोति जहान ।। १ ।।

सोरठा

दरशन पुरब अभीच पुंन रूप तीरथ गुरू ।
मिटहि जनम अर मीच[1] मजहि जे प्रेमी भगतु ।। २ ।।

चौपई

निरमल ग्यान जांहि बर बारी । जोग विराग कूल सुखकारी ।
सिख संगति जल जंतु अनेका । सम दम सति संतोख बिबेका ।। ३ ।।
सुच संजम इशनान रु ध्याना । इहु सभि खिरे कमल बिधि नाना ।
कलमल कलिके काल मलीना । दरशन मज्जन ते करि हीना ।। ४ ।।
सीतलता मुकती जिस मांही । बडे भाग प्रापति हुइ तांही ।
अस सतिगुर तीरथ अति पावनि । इच्छति भे छित तीरथ जावन[2] ।। ५ ।।
गंगा आदिक तीरथ जेई । मज्जहि कली काल नर तेई ।
अनगन पाप तजें तिन मांही । तिन को भार सहारति नांही ।। ६ ।।
यांते श्री सतिगुरू अराधा । आनि चरन पावो हति बाधा ।
पापनि ते पीड़ति हम होए । करि करि दोश हमहूं महुं धोए ।। ७ ।।
हे सतिगुर तुमरे पग पावन । जबि हम बिखै करहुगे पावन ।
ततछिन हम सभि होहिं सुखारे । आवहु तूरन करुना धारे ।। ८ ।।
सभि तीरथ को लखिभि प्राय । भए त्यार संगति संग लाय ।
जहिं जहिं सिक्खन जिस जिस ग्राम । जात्रा सुनी गुरू सुखधाम ।। ९ ।।
तहिं तहिं ते हुइ त्यार चले हैं । आनि सतिगुरू संगि मिले हैं ।
गुर ग्रिह के संबंधी जेते । भए त्यार चलने कहु तेते ।। १० ।।
सति संगति सिमरनि हरि नामू । होति कीरतनि धुनि अभिरामू ।
गोइंदवाल त्यागि करि चले । सने सने मग महिं बहु मिले ।। ११ ।।

---

1. मरण । 2. पृथ्वी के तीर्थों पर जाने की इच्छा थी ।

इक तो निति गुर दरशन करैं। किरतन सुनहिं अघन पर हरैं।
बहुर जेजवा तुरकन केरा। उलंघहिं तिस को इह सुख हेरा ॥ १२ ॥
यांते मिलहिं संग बडि भागे। चले जाति रस प्रेम सु पागे।
उलंघि विपासा सलिता सारे। देश दुआवे बीच पधारे ॥ १३ ॥
सने सने करि त्याग्यो सारो। सतुद्रव को पुन आइ निहारो।
बहु गंभीर नीर जिस मांही। सभि संगति मज्जन करि तांही ॥ १४ ॥
चढि करि तरी भए पुन पारी। गमने सतिगुर बहुर अगारी।
कबि बडवा पर करहिं पयान। कबि गुर गमनहिं चढ़ि झंपान ॥ १५ ॥
शमस स्वेत बहु ब्रिध सरीर। अतिशै सेत धरे बर चीर।
सुजसु स्वेत बिसतरहि बिसाला। तथा स्वेत मन है सभि काला ॥ १६ ॥
हाथ लशटका बर कद छोटा। मनहुं भए बावन के जोटा।
धारति शकति महिद महीआन। गमनहिं मंद मंद सभि थान ॥ १७ ॥
पहुंचे आन पहोए थान। जहां सरसुती पुंन महान।
नाना घाट रिखनि तप तपे। बरख हजारहुं जापन जपे ॥ १८ ॥
ब्रह्म लोक को प्रापति होए। जनम मरन के संकट खोए।
तहां सतिगुरू कीनसि डेरा। संग संगता मेल घनेरा ॥ १९ ॥
बहु घाटन पिखि सार सुती के। सिख कर जोरि प्रशन किय नीके।
सलिता सार सुती इक पावन। कहैं महातम इस वहु थावन[1] ॥ २० ॥
के कारन इहु गुरू बखानो। भूत भविक्ख गती तुम जानो।
सभि संगति कै इहु संदेहू। क्रिपा करहु उचरहु सुख देहू ॥ २१ ॥
सिक्खन ते सुनि कै गुर कह्यो। इहु सथान पावन अति लह्यो।
प्रथम जुगनि समरथ सभि जीव। तन पर संकट सहिवो कीव[2] ॥ २२ ॥
बिसवामित्र आदि रिखि घने। कीनसि तप कुछ जांहि न गने।
एक समें दक्खन के मुनि गन। आए तप साधन बांछत मन ॥ २३ ॥
अठतालीस कोस बिच फिरे। बैंठबि थान कहूं न निहरे।
तपसी गन की भीर बिसाला। जहिं कहिं करति घालना घाला ॥ २४ ॥
जबि सथान कितहूं नहिं पायो। सारसुती को तबि हुं धिआयो।
कह्यो बिर्दति हुइ मुनि गन संगा। क्या बांछति तुम कहो निसंगा ॥ २५ ॥
तिनहुं जाचना कीनि सुजान। हे देवी! दिहु वैठनि थान।
तबि इह सलिता मुनिगन हेत। हटी कोस दुइ बेग समेत ॥ २६ ॥

---

1. बहुत से स्थानों पर। 2. सहन किये।

तिनि बैठन को दीनसि थल है। बसे मुनी तप कीनसि भल है।
जस तप तप्यो घाल बहु घालि। को गनना कर सकहि बिसालि ॥ २७ ॥
सभि की कथा कहां लग कहैं। सुनी अहि इक मुनि की जिमि अहै।
अहै पहोए ते त्रै कोसु। इक मंकन मुनि हुतो अदोसु ॥ २८ ॥
महां बिखम तपु घाल्यो ताहू। तीर सरस्वती केर प्रवाहू।
छुधा त्रिखा सहि कठन कराला। बरखा सीत उशन तन झाला[1] ॥ २९ ॥
बहुत बरख ऐसो तपु साध्यो। सरबोतम पद लैन अराध्यो।
एक दिवस किमि आंगुर चीरा। रुधिर नहीं निकस्यो तिस धीरा[2] ।। ३० ॥
हरित पत्र ते रस तस निकसा[3]। तिस को देखि मुनी बहु बिगसा।
ऐसो तप मैं तप्यो बिसाला। जिस ते तन महिं रुधिर न चाला ॥ ३१ ॥
जथा हरित दल को रस होइ। तथा सरीर बिखे मम जोइ।
इमि मन जानि अधिक उतसाहा। भयो धंन मैं अस तप मांहा ॥ ३२ ॥
उठि करि लग्यो नाचिबे सोऊ। भुजा उसारति ऊचे होऊ।
पाइन की गति करि कर नाचहि। अनद बिलंद बिखै मन माचहि ॥ ३३ ॥
तिस ते तप प्रभाव के संग। सभि जग नाचन लग्यो उमंग।
भूलि गए सुधि सभि बिवहार। नाचहि सभि जग अंग सुधारि ॥ ३४ ॥
अस अनीति पिखि देव दुखारे। शरन शंभु की सकल सिधारे।
शंकर करहु क्रिपा पिखि जग को। भूल गए सुध, नाचन लग को ॥ ३५ ॥
तप प्रभाव रिखि केर बिसाला। अपरन ते न हटहि इस काला।
करहु उपाव आप अबि कोई। जिस ते जगत सथिरता होई ॥ ३६ ॥
सुनी सुरन की बिनै महानी। शंकर करि बिचार सुख दानी।
मुनि के मन को लखि उतसाहा। तिसे निवारनि को चित चाहा ॥ ३७ ॥
अपर वेख को धरि गौरीशा। आवति भा जहिं हुतो मुनीशा।
निकट होइ करि बूझन कीना। क्यों नाचति तौं क्या चित चीना ॥ ३८ ॥
क्या आशै अस तव मन अहै। जिस ते नित ही नाचति रहैं।
सुनि मंकण ने बाक बखाना। मैं इह ठां तप तप्यो महांना ॥ ३९ ॥
इक दिन चीर अंगुरी आवा। हरित पत्र रस सम निकसावा।
नहीं रुधिर भी देहि मझारा। यांते भा मुझ हरख अपारा ॥ ४० ॥

---

1. शरीर पर झेली। 2. धीर। 3. जिस प्रकार हरे पत्ते से रस निकलता है, उस तरह का (जल) निकला।

नहीं समाव[1] तिह चित मांही। नाचति रहौं हेत लख यांही।
सुनि शिव ने निज अंगुरी चीरी। निकसी[2] भसम परी तिस तीरी॥ ४१॥

कह्यो—देखि तप होवति ऐसो। कर्यो दिखावनि को अबि जैसो।
अपर अंस कुछ रही न तन मैं। पीवति भसम रह्यो निति बन मैं॥ ४२॥

यांते सभि सरीर के मांही। बिना भसम श्रोणत कित नांही।
तऊ न मुझ अस आनंद आवा। जस तूं देखि रिदे गरबावा॥ ४३॥

सुने बाक अरु नैन निहार्यो। मुनि मंकण चित चाव निवार्यो।
हट्यो नाचिबे ते, जग शांती। इस प्रकार मुनि भए संगाती॥ ४४॥

तिन के तप करिबे इस थानि। भए अधिक पावन मन जानि।
करहि शनान सु होइ पुनीत। इमि प्रसंग सुनि कै शुभ रीति॥ ४५॥

संगत भई हरख, करि नमो। सार सुती मज्जे तिह समो।
श्री गुर अमर कीन इशनान। मिले बिप्र तिनि दीनसि दान॥ ४३॥

एक निसा बसि तहां बिताई। उठे प्राति किरतन धुनि गाई।
करि शनान सुख मानि घनेरा। कर्यो कूच पुन आगे डेरा॥ ४७॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रिथम रासे **'श्री अमर जी को तीर्थ प्रसंग'** बरननं नाम पंच चत्वारिंसती अंशु॥ ४५॥

———

1. समाता। 2. उसके पास जा पड़ी।

अंशु ४६

कुरछेतर आगमन श्री अमर प्रसंग

दोहरा

तहिं ते पुन आगे चले संगति सतिगुर संग।
जोतीसर तीरथ निकट पहुंचे सुनो प्रसंग ॥ १ ॥

चौपई

कैरव पांडव को दल भारा। इहां आनि किय जंग अखारा।
इकठी अठदस छुहनि भई। होइ सनद्धबद्ध थिर थई ॥ २ ॥
इक दिशि सपत, इकादश दूई। इस थल सो मुकाबले हूई।
तब अरजन तिन देखि बिचारा। किस को करिहौं इहां संहारा ॥ ३ ॥
गुरू पितामा आदिक सारे। जान्यो परै अपनि परवारे।
कुल नाशक कैसे अबि होवौं। अपर शत्रु को इहां न जोवौं ॥ ४ ।
निज दल ते निकासि करि स्यंदन। इस थल थिति किय नंद सु नंदन[1]।
आशै अरजन को जबि जाना। करि उपदेश दयो मन ग्याना ॥ ५ ॥
तन संबध को मिथ्या जान। सत चेतन है अलिप महान[2]।
करता भुकता आप न लखीयहि। मति करि निज सरूप को पिखयहि ॥ ६ ॥
इत्यादिक गीता महिं कह्यो। रिदै ग्यान अरजन सुनि लह्यो।
वासुदेव कहि अनिक प्रकारा। करिवाइसि बडि जंग अखारा ॥ ७ ॥
इसि थल थिति रथ क्रिशन पुनीता। अरजन साथि कही शुभ गीता।
यांते पावन इह इसथाना। संगति सगरी करहु शनाना ॥ ८ ॥
सुनि सिक्खनि सुख पाइ बिसाला। कीनि शनान दान तिसि काला।
बहुर थनेसर सतिगुर गए। भीर संग बहु डेरा कए ॥ ९ ॥
खान पान करि निसि बिसरामे। करनि कीरतन उठि रहि जामे।
रागनि की धुनि सुंदर साथ। उपजति प्रेम प्रमेशुर नाथ ॥ १० ॥
भयो प्रकाश प्राति को जाना। कीन तीरथनि बिखै शनाना।
सारसुती सलिता जल पावन। गयो प्रवाह पुंन बहु थावन ॥ ११ ॥
तीरथ ब्रिंद बिखै बहि बारी। पावन करी भूमिका सारी।
तिसि महिं करि शनान हरषाए। जपि प्रभु दान दीनि समुदाए ॥ १२ ॥

1. कृष्ण। 2. छोटे और बड़ों में।

सभि तीरथ अरु नगर मझारा। सुनि सुनि सुधि नर करहिं उचारा।
श्री नानक ते तीसर थान। बैठे गादी गुरू महान॥ १३॥
सो तीरथ को करिबे कहु आयहु। महां जोति जिन जग बिदतायहु।
संन्यासी ब्रह्मचारी ब्रिंद। पंडित बिद्या बिखै बिलंद॥ १४॥
बैरागी आदिक बहु बेखनि। चलि आए सतिगुर कहु देखनि।
नर ग्रिहसथी गुर के सिख केई। गुरू दरश हित आए तेई॥ १५॥
ले करि केतिक शुभ पकवान। किनहूं सुमन सु लीनसि पान[1]।
को फल मूल ल्याइबो करैं। चारहु बरन भेट को धरैं॥ १६॥
दरसहिं सतिगुर करि करि नमो। भई भीर भारी तिह समो।
देखति सरब प्रताप उचेरे। धर्यो सरूप जनु ग्यान बडेरे॥ १७॥
पंडित अरु संन्यासी ब्रिंद। ढिगि बैठे हंकार बिलंद।
श्री सतिगुर को दरशन कर्यो। करि बंदन को प्रशन उचर्यो॥ १८॥
श्री नानक जो कीनसि बानी। तिस को कारन परहि न जानी।
आगै हुते सु वेद पुरान। पठहिं सुनहिं बिसतरे जहान॥ १९॥
सो कल्यान करति जग्यासी। चलहिं कहे पर, काटहिं फासी।
मुकति पंथ को नीकी भाँति। बरन्यो उपदेश जु बख्यात॥ २०॥
तिनि के होते श्री गुर बानी। क्यों कीनसि कुछ जाइ न जानी।
इस प्रकार तिनि ते सुनि कान। श्री गुर कीनसि शबद बखान॥ २१॥

श्री मुख वाक :—

महला ३ गउडी बैरागणि॥

जैसी धरती ऊपर मेघुला बरसतु है किआ धरती मधे पाणी नाही।
जैसे धरती मधे पाणी परगासिआ बिनु पगा बरसत फिराही॥ १॥
बाबा तूं ऐसे भरमु चुकाही।
जो किछु करतु है सोई कोई है रे तैसे जाइ समाही॥ १॥ रहाउ॥
इसतरी पुरखु होइ कै किआ उइ करम कमाही।
नाना रूप सदा हहि तेरे तुझही माहि समाही॥ २॥
इतने जनम भूलिं परे से जा पाइआ ता भूले नाही।
जाका कारजु सोई परु जाणै जे गुर कै सबदि समाही॥ ३॥
तेरा सबदु तूं है हहि आपे भरमु कहाही।
नानक ततु तत सिउ मिलिआ पुनरपि जनमि न आही।४।१।१५।३५।

1. हाथ में फूल लेकर।

चौपई

बेद पुराननि को उपदेश। किसहूं को प्रापति किसि देश।
प्रथमे नीकी होवहि जाति। पुन तिसि ते चहि मति अविदाति ॥ २२ ॥
बहुर अभ्यास कमावहिं घनो। दुरि दुरि बैठति कबहूं भनो।
पुनहि प्रेम परलोक करैं जो। कोटि मधे नरको नितरैं जो ॥ २३ ॥
जथा कूप को नीर पछान। को जव घालहि घाल महांन।
निज हित कुछ खेती करि लेति। जे नित पालनि सों करि हेति ॥ २४ ॥
श्री सतिगुर को सबद सुखारो। सरब जाति को है अधिकारो।
सरब काल अरु सगरे देश। लघु बिसाल सभि हतहिं कलेश ॥ २५ ॥
धनी निरधनी सभि ले पाइ। ऊठति बैठति हरि गुन गाइ।
बिना सोच, कै करहि शनान। करहि भजन पावहि कल्यान ॥ २६ ॥
नीच ऊच सभि को इकि सार। तिसि पर सुनि द्रिशटांत उचार।
बेद पुरान कूप जल जैसे। बरोसाइ को इक किति कैसे[1] ॥ २७ ॥
सतिगुर बानी मेघ समाना। बरखै चहुं दिशि बिखै महांना।
बन के पसु पंछी सुख पावहिं। करहिं पान अरु तपत मिटावहिं ॥ २८ ॥
कूप किसू कै होइ कि नांही। इक सम घन ते सभि सुख पांही।
सगरे खेती बोइ पकाइ। बिना जतन सभि ही सुख पांही ॥ २९ ॥
त्यों सतिगुर के शबद सुखेन। पढि गति प्रापति जेन रु केन[2]।
धरती बिखै कूप को पानी। तऊ मेघ बरखहि, सुख ठानी ॥ ३० ॥
यांते पंडति रिदै विचारहु। घन अरु कूप नीर निरधारहु।
गुरबानी को कारन ऐहू। मुनहु सुजन नहि करहु संदेहू ॥ ३१ ॥
बरोसाइं लाखहुं गुर बानी। ऊच नीचु कै एक समानी।
प्रेम ठानि जो पढहि बिचारहि। बहुर कमावहि हुई निसतारहि ॥ ३२ ॥
नगर तीरथनि पर जो बासी। सुनि करि सगरे भए हुलासी।
बंदन करि सभिहूंनि सगरे। गए आपने धामनि मांहे ॥ ३३ ॥
इस प्रकार कुछ चरचा भई। सुनि केतिक की दुरमति गई।
खान पान करि संगति साथ। दूजी निस बासे जगनाथ ॥ ३४ ॥
दिवस तीसरे तीरथ आन। सभि सिख्यन जुति कीनि शनान।
जथा शकति सभिहिनि दे दान। बैठे डेरे क्रिपा निधान ॥ ३५ ॥
खानपान संगति सभि करिकै। गुर ढिग आइ हरख कहु धरिकै।
हाथ जोरि सभि बूझन कीने। श्री गुर ! तुम उर सभि कुछ चीने ॥ ३६ ॥

1. कोई कोई ही लाभ प्राप्त करता है। 2. जिस किस को।

इह कुरछेत्र कोस अठताली। किमि पुनीत इह भयो बिसाली।
तीरथ जिस महिं बने हजारों। अनिक भए तपसी तप धारो ॥ ३७ ॥

थान पुनीत जानि इह महां। कैरव पांडव लरि मरि जहां।
किसि कारण ते पावन भयो। बहुति नरनि तन त्यागनि कियो ॥ ३८ ॥

कौतक बरतै रिदै हमारे। सकल सुनावहु कथा उचारै।
सभि संगति के सुनि कै बैन। करुना भरे रसीले नैन ॥ ३९ ॥

पर उपकार करनि निति चाहति। बहु लोकन की दुरमति दाहति।
तिस कारन को धरि अवितारा। सो नित करति भगति बिसथारा ॥ ४० ॥
कथा पुरातन बहु चिर केरी। गिनती संमत परहि न हेरी।
जगत आदि को इए बिरतांत। श्री गुर चह्यो करनि बख्यात ॥ ४१ ॥
भो संगति ! सुनीअहि दे कान। उपज्यो नहिं जबि जगत महांन।
श्री नाराइण बैठे इहां। भयो इतक महिं आसन महां ॥ ४२ ॥
अशट कोस लगि नीचे थान। आगे जानु बधे महांन।
उत्तर दिशि भी प्रिशटि बडेरी। दक्खण को मुख किय तिस बेरी ॥ ४३ ॥
अशट कोस चउगिरदे मांहि। मद्ध थान भगवान सु आहि।
सो थल इहै थनेसर जानहु। महां महातम रिदै प्रमानहु ॥ ४४ ॥
सुनि संगति गुरि बूझन कीने। इहां प्रमेशुर किम आसीने।
को कारन भा बरनन करियहि। सभि सिख्यनि की इच्छा पुरियहि ॥ ४५ ॥
भूत भविख्य तीन हूं काल। रावरि को सभि ग्यात बिसाल।
श्री गुर अमरदास सुखरास। निज दासन की पूरति आस ॥ ४६ ॥
कहनि लगे इतिहास पुरातनि। जिम कीनो श्री प्रभू सनातन।
संगति सुनहु सु कथा नरायन। जिस ते होवति पाप पलायन ॥ ४७ ॥

इति श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'कुरछेतर आगमन श्री अमर प्रसंग'** बरननं नाम खशट चत्वारिंसती अंशु ॥ ४६ ॥

अंशु ४७

श्री अमरदास कुरछेत्र प्रसंग

दोहरा

श्री नारायण हरि प्रभू सेज शेष ते पाइ।
सुपति जथा सुख काल चिर, जिह जोगी जन ध्याइ ॥ १ ॥

चौपई

परम सरूप तेज अतुलत है। बीच भूत सभि जग को अति है[1]।
निज महिं धरतो शकति अनंत। त्रिशटि सथित संहार करंत ॥ २ ॥

परम पुरख परमेशुर पूरन। अन उपमा गन शत्रू चूरन[2]।
निरभै अनंद रूप परमातम। होति चराचर सभि को आतम ॥ ३ ॥

श्यामल अलसी कुसम समान। म्रिदुल मधुर मुख ते मुसक्यान।
अयुत बिलोचन मुद्रित करे। रतन तलप[3] पर श्री प्रभु थिरे ॥ ४ ॥

चहुं दिशि महिं पसर्यो जल जाला। अपर न कुछ पय्यति किति भाला[4]।
करता पुरख इच्छ अनुसारे। कमल नाभि भा युत बिसथारे ॥ ५ ॥

तिस ते ब्रह्मा उतपति होवा। नेत्रनि ते जल जहिं कहिं जोवा।
तिसि कमल के थल को पाइ। लग्यो करनि तप को तपताइ ॥ ६ ॥

पुनह अकाल पुरख इछ ठानि। हाथ आंगुरी दे करि कानि।
कुछक हलाइ सुकंडू[5] करि कै। कितिक तहां ते मैल निकरि कै ॥ ७ ॥

निज अनामिका ते सु बगाई[6]। जोजन कितिक परी किति जाई।
तिस ते दैत दोइ तन धारे। बली बिसाल बडी भुज वारे ॥ ८ ॥

ब्रिधे कलेवर तिन ततकाला। अप्रमान बल महत कराला।
चहुंदिशि बिचरहिं जल के मांही। भरे गरब ते रण उतसाही ॥ ९ ॥

महां बदन अरु दाड़ जिनहुं के। रकत बिलोचन भीम तिनहुं के।
दंड प्रचंड बजावहिं बल ते। भैरव[7] गरज उताइल चलते ॥ १० ॥

बिचरति आइ पहूंचे तहिंवा। हुतो कमल पर ब्रह्मा जहिंवा।
देखि दुहन को डर्यो बिसाले। काले परबत मनहुं कराले ॥ ११ ॥

---

1. जो सारे जग का बड़ा मूल तत्व है। 2. शत्रु नाशक। 3. सेज। 4. कुछ भी ढूंढा नहीं मिलता। 5. खजाकर। 6. चिचली उंगली से फैंक दी। 7. भयानक।

तन रुहि[1] खरे तरोवर जाल। जानु जुग जुग श्रिंग बिसाल।
भुजा भुजंगराज से[2] निकसे। महिद तलाउ बिलोचन बिकसे॥ १२॥
रकत बरन श्रोणत के पूरे। सैल दघध जनु आइ हदूरे[3]।
निंद्रा जोग बिखै गोसाईं। लखि बिधि ने तबि कीन उपाई॥ १३॥
सतुत महां माया की ठानी। उतपत सथित हतन जग रानी।
निंद्रा रूप भगवती महां। स्वाहा सुधा बखटक्रित[4] अहा॥ १४॥
री स्त्री परम ईशुरी पुशटी। सरब चराचर रूपी तुशटी।
खडगनि सूलनि चक्रनि घोरा। महां नादनी संखनं शोरा॥ १५॥
परम सुंदरी नमो हमारी। बुद्ध रु बोध लच्छणा भारी।
जग स्वामी परबोधन करियहिं। त्रास बिसाल मोर परहरियहि॥ १६॥
इम उसतति को कीनि महानी। अरु पंकज को गहि करि पानी।
सकल ओज सो कीनि कंपावनि। जगतनाथ के हेतु जगावनि॥ १७॥
भगत वछल भै काटनहारे। जागे प्रभू दया उर धारे।
कमलासन को धीरज दीनसि। निरभै रहु रच्छक मुझ चीनसि॥ १८॥
दुशट दैत जिब वड आकार। करि संघर को लेहुं संहार।
श्री प्रभु निज सरूप दिखरायो। श्यामल मेघ मनहु बिदतायो॥ १९॥
देखति दैंतनि अचरज माना। इह को है जिह धीर महाना।
हमहिं बिलोकति भै नहिं माने। दरपति[5] रिदै सथिरता ठाने॥ २०॥
हम दोनहुं इहु एकल खर्यो। बदन प्रसन्न नैक नहिं डर्यो।
लांबी भुजा बिभूखन धारी। आयुत छाती सोभन भारी॥ २१॥
पकरहिं इसि भच्छन करि लेहिं। छुधा निवारहिं है जु अछेहि[6]।
इम कहि दोनो ओज संभारा। त्रिशट त्रिशट[7] मुख ऊच उचारा॥ २२॥

भुजंग प्रयात छंद

सुनी श्री प्रभू श्रोन मैं ऊच बानी। भरे ओत साहं भए सावधानी।
कह्यो 'मैं खरो आप ग्रावो सु नेरे। दिउं दुंद जुद्धं सु क्रुद्धं घनेरे॥ २३॥
मिले आप मांही जगन्नाथ दैतं। भरे बेग भारे चहैं होहि जैतं।
बिरुद्धे सु क्रुद्धे मच्यो सुद्ध जुद्धं। महां द्रप मद्धं करैं बद्ध उद्धं॥ २४॥
गहे वाह दोऊ करे ओज पेलैं। अरीले हठीले मुछाले धकेलैं।
भिडैं भेड भारे भए भीम भेखं। चपेटैं दपेटैं लपेटैं अशेषं॥ २५॥

---

1. रोम पर्वत की चोटियाँ। 2. शेषनाग से। 3. सामने। 4. एक देवता का नाम। 5. अहंकार ग्रस्त। 6. एक रस, अछेद। 7. खड़ा हो।

अटा अट्टहासैं, सटा पट्ट जुट्टैं। लटा पट्ट होवैं घटा घट्ट कुट्टैं।
झटापट्ट झटकैं पटक्कैं पलट्टैं। कटा कट्ट ओठं अटक्कैं न लहैं[1] ॥ २६ ॥
दुऊ दैंत दोरे दया सिंधु ऊपै। गही बांह दोनो महां भीम रूपै।
करैं ओज दाबैं जथा नंम्रि होवैं। धरैं पाइ पेलैं हठीले खरोवैं ॥ २७ ॥

दोहरा

मधुकैटभ जुट्टे सु भट गही महां बलि बांहि।
दोनहुं दिशि दोनहु खरे द्रिढ प्राक्रम के मांहि ॥ २८ ॥

पाधडी छंद

तब प्रभू आपनो बल संभारि। बाहुनि उठाइ ऊरध उदारि।
लटके उतंग दोनहु महांन। करि झटक गेर दिय दूर थान ॥ २९ ॥
तब परे जाइ जोजन सु बीस। गिर करि उठे सु निज दांत पीस।
गरजंति भूर तरजंति आइ। मुखि 'मार मार' बकते रसाइ ॥ ॥ ३० ॥
उछलंत नीर तिन बेग[2] संग। सम सैल मेरु मंदर उतंग।
इति प्रभू बेग कीनसि उदार। पंकत हुवंति जल को प्रहार ॥ ३१ ॥
पुन भिडे आइ मुशटनि चपेट। बाहुनि उठाइ हनते सु भेट।
तबि अलंकार प्रभु के सु अंग। रण करति शबद उठतो उतंग ॥ ३२ ॥
रुणकंति चरन नूपर सुहाइ। जिन पर जराउ गन रतन छाइ।
बहु बजति मेखला मध्य देश। उछलंति उरध जबि बल विशेष ॥ ३३ ॥
करन कंकन दंड अंगद उदार। डुलयंति करन कुंडल सुचारु।
सिर मुकट बिराजति दिपति जोति। जनु कोटि दिवाकर दमक होति ॥ ३४ ॥
वारन प्रहार दावन लगाइ। जबि लगै घाव बहु धुनि उठाइ।
जिम परहि बज्र भूमी महांन। तिम लगहि मुशट करि हतहि तान ॥ ३५ ॥
तरजंति महत गरजंति बीर। जिम प्रलै मेघ की धुनि गंभीर।
उछलंति नीर बेगै करंति। दस दिशनि पूर शबदै उठंति ॥ ३६ ॥

दोहरा

तीनहु तन जल जाल महिं बिचरति एव सुहाइ।
त्रै गिर मंदर पाइ जनु सागर मथहिं बनाइ ॥ ३७ ॥

भुजंग प्रयात छंद

इतै एक प्रभू, उतै दोइ भाई।
रिसे लाल नेत्र सु मुशटै उठाई।

1. हटते नहीं। 2. तेज। 3. मुक्कों, चपतों के साथ।

अरीले अरैं पाइ रोपे अगारे।
भिरे संमुखे सूर बांके जुझारे ॥ ३८ ॥

गहैं हाथ जोरैं मरोरैं महाना।
भए रूप घोरैं न छोरैं सु थाना।
अहैं अंग सों अंग मेलैं धकेलैं।
चपेटैं हतैं दंड ठोकैं सु पेलैं ॥ ३९ ॥

तपे तेज ते क्रोध जागे जिन्हों के।
करै घाव, लागैं सरीरं तिन्हों के।
कई कोस लौ खेत मैदान पायो।
फिरैं बीच नीरं सु शबदं उठायो ॥ ४० ॥

जुटे धरम जुद्धं विरुद्धं बिसाले। तकैं मारिबे को फिरैं आलवाले।
चपेटैं चटाकैं सु मुशटैं उतंगे। करैं घात जोधे सहैं घाव अंगे ॥ ४१ ॥
तरै ऊपरे त्रिजगे[1] दाव खेलैं। फिरैं दाहने बाम बाहुनि पैलैं[2]।
कहां लौ कहैं कोइ, का मैं सु बुद्धं। भिड़्यो भेड भारो भयो भूर जुद्धं ॥ ४२ ॥

सवैया

संमत पंच सहंस्र बिते जबि हार नहीं किस हूँ दिशि मानी।
श्री प्रभु ने तबि कीन बिचारनि तूरन प्रेर दई इम बानी।
दैतनि बीच प्रवेश भई भरमाइ दई मति यौं तबि ठानी।
द्वै हम बीर बली बड हैं इह एकल धीर महां अभिमानी ॥ ४३ ॥

मन मोहनि! तोहि सरूप महां अति जुद्ध कर्यो अधिकै घमसाना।
हम रीझ रहे तव प्राक्रम को पिखि भांति अनेक सु बुधि ते ठाना।
तुझ संग न जंग उमंग करैं अब होहु निसंग उतंग महाना।
चित चाहति हैं कुछ देवनि को अभि बांछति जांच लिजै बरदाना ॥ ४४ ॥

श्री भगवान सु जानि महान भन्यो—सिर दान अभै करि दीजै।
साच करो बच आपनि को अबिनाशि वडे जसु को बर लीजै।
या बिन चाहि न मोहि कछू जिस ते तुम को किम जाचन कीजै।
कीरति जां बिसती रति है, नित जीवति थीवति अंम्रित पीजै ॥ ४५ ॥

मधु कैटभ दैत उभै बड बीरज धीरज धारि ये वाक उचारा।
जल हीन जहां थल तो तल ऊपर सीस टिकाइ कै लेहु उतारा।

---

1. तीन जगह। 2. धकेलते हैं।

करि बाक दयो नहिं कूर क़रैं तिह, पूरनि होइ सु परण[1] हमारा ।
जसु जीवन है धंन थीवन ह्वै, लिहु सीस, करो नहिं आप अवारा[2] ॥ ४६ ॥

जगनाथ नरायन श्री पुरशोतम यौ सुनि बाक उपाइ बिचारा ।
निज आसन को करिकै जल ऊपर बैठि गए करिकै बिसतारा ।
तव दैत को उरू दिखावनि कीनसि, है थल ना जल लेहु निहारा ।
तव ग्रीव ते सीस उतारन में हुइ साच कह्यो जसु पाइ उदारा ॥ ४७ ॥

कुंडल ते मुख मंडल शोभति सीस किरीट रह्यो चमकाई ।
आन धर्यो प्रभु केर उरू पर पूरन प्रण की चौंप बढाई ।
और सरीर पर्यो जल ऊपर दीने पसारि कै हाथु रु पाई ।
यौ मध कैटभ दैत दुऊ, मन पावन ते दिय दान महाई ॥ ४८ ॥

श्री जगनाथ उभार कै हाथ सु चक्र संभार हज़ार है आरा ।
दैतनि को सिर काट दियो जिन को धर भीम पर्यो बिसतारा ।
पूरनि कीनि मनोरथ श्री प्रभु तातन ते जबि सीस उतारा ।
पंकज आसन को करि श्वासन—जो तव कंटक[3] संकट हारा ॥ ४९ ॥

चीकनता निकसी तिन भाल ते ऊपर नीर रही तर छाई ।
तांही ते होति भई धरनी जगदीश कला निज ते ठहिराई ।
आसन के तर भेद नहीं परि पावन याहीं ते भी अधिकाई ।
होइ असीन नरायन को इमि तीरथ भे इसमे समुदाई ॥ ५० ॥

चौपई

भई मेद तें धरनी इहै । यांते नाम—मेदनी कहैं ।
तिस पीछे ब्रह्मा तप घाला । लाखहुं संमत तप्यो बिसाला ॥ ५१ ॥
पुन सभि इह परपंचु बनायो । जड़ जंगम जेतिक दिशटायो ।
लाखहुं रिखि इस थल महिं आइ । तप को तपि ऊचो पद पाइ ॥ ५२ ॥
भो संगति इतिहासु बिसाला । सुनति पठति अघ नासहिं जाला ।
इम श्री अमरदास मुख गायो । दिवस तीसरे तहां बितायो ॥ ५३ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'श्री अमरदास कुरछेत्र प्रसंग'** बरननं सपत चत्वारिंसती अंशु॥ ४७ ॥

---

1. प्रण, प्रतिज्ञा । 2. देर । 3. दुःख

अंशु ४८

जमना प्रसंग

दोहरा

तीन दिवस श्री अमर जी कुरुछेतर महिं बास।
पुन आगे गमने सुमग सिमरति श्री अबिनाश ॥ १ ॥

चौपई

सनै सनै सहि संगति चले। सभिहिनि की सुधि लेवति भले।
होहि श्रमत तिस देहिं सहारा। किह नहिं संकट किसू प्रकारा ॥ २ ॥
सभिहिनि को अरोग करि चलि हैं। जै जैकार होति सुनि भलि हैं।
जहिं कहिं जसु पसरहि सतिगुर को। मिलहिं बहुति नर प्रेम सु उर को ॥ ३ ॥
पहुंचति भे कालिदी[1] कूल। सुंदर श्यामल जल अनुकूल।
संगति भीर संग गुर भारी। उतरे सुंदर छाय निहारी ॥ ४ ॥
पावन जल महिं सकल शनाने। जथा शकति दीनसि तहिं दाने।
खान पान करि कै बिसरामे। उठति सकल सिमरति हरि नामे ॥ ५ ॥
सभि संगति चित चाउ घनेरा। सतिगुर वाक सुनहिं सभि वेरा।
हाथ जोरि करि सभिनि अगारी। बूझनि के हित गिरा उचारी ॥ ६ ॥
प्रभु जी जमना केर प्रसंग। करहु सुनावनि संगति संग।
जबि तीरथ को लहैं ब्रितांत। भाउ सहत मज्जहिं शुभ भांति ॥ ७ ॥
हमहु लाभ नित होति बिसाला। इक तौ दरसहिं तुम सभि काला।
दुतीए तीरथ करहिं शनान। सिमरहिं नाम, देहिं पुन दान ॥ ८ ॥
बहुरि प्रसंग तीरथनि केरा। सुनति जाति नित होति भलेरा।
यांते अहै भावना सभिहूं। कहहु ब्रितांत नदी बर अबहूं ॥ ९ ॥
किस ते जनमी जमना नाम। किम पावन है जल अभिराम।
क्रिपा धारि कै सकल सुनावहु। सभि के मन अभिलाख पुरावहु ॥ १० ॥
इम सिख्यनि ते सुनि करि बैन। बोले परम रसीले नैन।
चिरंकाल को इह भी जानहु। रुचिर प्रसंग सुनहु हित ठानहु ॥ ११ ॥

---

1. यमुना।

कारीगर सभि देवनि केरा। बिशुकरमा[1] बुधिवान बडेरा।
सुता स्त्रचला तिस के भई। सरब अंग सुंदर दुतिमई[2] ॥ १२ ॥
आंख पांखरी कवल सरीखी। जिन की कौर बान सम तीखी।
गज गामनि सुठ कंठ कपोती। जिस को पिखि रति लज्जति होती ॥ १३ ॥
सो सूरज ने ब्याहन ठानी। रुचिरंगी[3] निज घर महिं आनी।
कोमल अंगा कट ते छीनी[4]। मेचक केसा उरुजनि पीनी[5] ॥ १४ ॥
कितिक काल बीतावनि कीना। सूरज दुसह तेज ते चीना।
तऊ दुखिति ह्वै रही निकेत। कुल की लाज राखिबे हेतु ॥ १५ ॥
दोइ पुत्र इक तनुजा होई। जमुना नाम जानी यहि सोई।
मनु अरु जम दूसर सुत होवा। महां प्रताप साथ उदत्योवा[6] ॥ १६ ॥
पति के तेज संग हुइ बिहबल। सह्यो न जाइ अंग रहि जल वल।
निज छाया की तीय बनाई। निज सरूप सम सदन बिठाई ॥ १७ ॥
त्रास तेज को पाइ बिसाला। चोरी गमन कीनि पित शाला[7]।
बिशुकरमा ने जबहि निहारी। जानि अजोग कठोर उचारी ॥ १८ ॥
पति ते छपि कै बिना हकारे[8]। क्यों आई चलि सदन हमारे।
मो घर महिं रहिबे नहिं थान। जहिं इच्छा तहिं करहु पयान[9] ॥ १९ ॥
बाक पिता के सुनि कुमलाई। अपनि देहि तबहि पलटाई।
बडवा[10] को धारनि करि तन को। प्रापति भई जाइ बड बन को ॥ २० ॥
इस की गति सूरज नहि जानी। छाया त्रिया जानि रति ठानी।
तिस ते भी दुइ सुत जनमाए। नाम सनीचर आदिक गाए ॥ २१ ॥
एक सुता छाया निपजाई[11]। तपती नाम तिसी को गाई।
दक्खन बिखै बही हुइ सलिता। बिमल अगाध जांहि जल चलता ॥ २२ ॥
जुग तनुजा अरु नंदन चार। मारतंड के भए अगार।
एक दिवस छाया के साथ। जम लरि पर्यो बहस किसि गाथ ॥ २३ ॥
अधिक क्रोध दोइन के होवा। रकत नेत्र आपस महिं जोवा।
गिरा कठोर बिसाल उचारी। तबि जम ने निज लात उभारी ॥ २४ ॥
उदत्यो करनि प्रहार सु छाया। इनि देखति इम स्राप अलाया।
चरन उभार्यो मोकहु जोइ। चहैं प्रहार करनि को सोइ ॥ २५ ॥

---

1. विश्वकर्मा। 2. प्रकाशमयी। 3. सुन्दर अंगों वाली। 4. क्षीण। 5. कठोर स्तनों वाली। 6. प्रकट हुए। 7. पिता के घर। 8. बिना बुलाए। 9. प्रस्थान। 10. घोड़ी का। 11. जन्मी।

अब गहि जाहु[1] न आछो रहै। करि अपराध उचित दुख सहै।
छाया स्राप दयो इम जबै। जम को चरन गयो गर तबै ॥ २६ ॥
सुधि सूरज ने जबिहूं सुनी। रिदै बिखै बहु बिधि सों गुनी।
इह सुत माता लखीयहि कैसे। घोर करम कीनसि जुग ऐसे ॥ २७ ॥
सहत संदेह सूर[2] जबि होवा। आयो छाया की दिशि जोवा[3]।
साच बतावहु है तूं कौन। सुत सों इम को करि हहि भौन ॥ २८ ॥
दिनपति जबहि त्रास उपजायहु। छाया साचु ब्रितांत बतायहु।
तुव दारा गमनी पित ओर। मुझ को गई राखि इस ठौर ॥ २९ ॥
आदि सनिशचर संतति मेरी। मनु जमु जमुना है तिस केरी।
चिरंकाल की त्याग पलाई[4]। मैं पालनि कीने चहुं भाई ॥ ३० ॥
सुनि सपतासु[5] तुरत[6] ही धायो। बिशुकरमा के घरि चलि आयो।
कह्यो सुता तेरी इति आई। बिते काल बहु, अबि सुधि पाई ॥ ३१ ॥
करी अजोग बात लखि लीजै। मोकहु अब बताइ तिस दीजै।
बिशुकरमा ने कह्यो ब्रितांत। मो घर आई हुती पलाति[7] ॥ ३२ ॥
नहीं सदन महिं रहनि दई है। हुइ निरास किति वहिर गई है।
भो दिनमणि ! सुनि है सो साची। दुखति बहुत लागहि तुव आंची[8] ॥ ३३ ॥
तेज न सह्यो जाति है तेरा। निकसी करि उर त्रास बडेरा।
जे करि कह्यो मोहि तूं मानहिं। सभि गति आछी होहि पछानहिं ॥ ३४ ॥
कुछक बरन धूसर सम तेरा। तपत अहै अति जाहिन हेरा।
मोर चरख[9] पर चढ़ि इक वारी। छोल देहुं तुज देउं सवारी ॥ ३५ ॥
सुप्रकाश इक तौ हुइ जाइ। अतिशै तपत मिटहि इस भाइ।
आछी बाति जानि करि पूखन[10]। चढ्यो खराद सु होनि अदूखन ॥ ३६ ॥
बिशुकरमे लै तीखन साधनि। फेरि तिसी को कीनि खरादनि।
ऊपर को तन छोलनि कीना। निकस्यो सुंदर रूप नवीना ॥ ३७ ॥
धूम्राकार सु तेज जितेक[11]। छोल्यो धर्यो खराद तितेक[12]।
निज तन देखि हरख रवि भर्यो। बिशुकरमे सु बतावनि कर्यो ॥ ३८ ॥
अमुकै बन मैं बडवा तन है। निज दारा आनहु हित मनि है।
सुनि सविता असु को तन धर्यो। सो कानन को जाइ निहर्यो ॥ ३९ ॥

---

1. गल जाएगा। 2. सूर्य। 3. देखा। 4. छोड़ कर भाग गई है। 5. सूर्य। 6. शीघ्र। 7. भाग कर। 8. गर्मी से। 9. खराद। 10. सूर्य। 11. जितना धुएँ जैसा रंग था। 12. उतना।

हुती तुरंगनि मिल्यो सु जाइ। सूंघि नासका जबि सुख पाइ।
ततछिन द्वै सुत को उपजायो। अश्विनि कुमार नाम जिन गायो ॥ ४० ॥

पुत्र सहत दारा निज आनी। मिली सभिनि सों उर हरखानी।
तबि की जमना बन महिं जाइ। तप को तपति रही बहु भाइ ॥ ४१ ॥

द्वापर अंत भए गोपाल। इन को पति कीनसि तिस काल।
अनिक प्रकार भोग सुख घने। मिली श्याम सों सुत दस जने ॥ ४२ ॥

सो जमुना सलिता हुइ बही। जिस हित सकल बारता कही।
पावन जल पापन को नासनि। रछ्या करहि आपने दासनि ॥ ४३ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'जमना प्रसंग'** बरननं नाम अशट चत्वारिंसती अंशु ॥ ४८ ॥

———

अंशु ४६

तीरथ प्रसंग

दोहरा

सुनि प्रसंग संगति सरब श्री गुर अमर कि पास।
पुन पूछ्यो 'किमु भान कौ भयो बरन घूम्रास ॥ १ ॥

चौपई

श्री गुर कहति भए इतिहास। संगति सुनहु भई गति जास[1]।
कस्यप रिखि अतिशैतप घाला। जिस कै भई भारजा जाला[2] ॥ २ ॥
जने दिती ने दैंत कराल। दनु ते दानव भए बिसाल।
बिनता ते खगपति जनमायो। नाम गरुड बड बली सुहायो ॥ ३ ॥
कद्रू[3] ने पनंग[4] उपजाए। इत्यादिक इसत्री समुदाए।
अदिति ते सभि देव भए हैं। सुधा पान जे अमर थिए हैं ॥ ४ ॥
तिस अदिति के गरभ मझारा। सूरज हुतो अपनि तनु धारा।
इक दिन ससि सुति बुध चलि आयो। ब्रह्मचारी को बेख बनायो ॥ ५ ॥
तप कों तपत हुती बन मांही। भिच्छा हित आयहु तिस पांही।
अदिती गरभ सहत तिस काला। आलस उठिबे केर बिसाला ॥ ६ ॥
केतिक चिर बीता तिह खरे। दयो स्राप बुध ने रिस धरे।
जिस गर्भ धरि तें आलस कीना। भिख्या मोहि तुरत नहिं दीना ॥ ७ ॥
सो तव गरभ गरहु नहिं बाचे। इम कहि गयो आन[5] घर जाचे।
अदिती बहुत त्रास को पाइ। पति के निकट गई सहिसाइ ॥ ८ ॥
बुध को स्राप सुनावनि कीना। रच्छा करहु जि गरभ न छीना।
सुनि कस्यप ने बर को दयो। बचे गरभ तब होहि न छयो ॥ ९ ॥
तन ऊपर को म्रित हुइ जाइ। तिस महिं अमर देह को पाइ।
म्रितक अंड मरि हुइ अभिरामु। यांते मारतंड कहि नामु ॥ १० ॥
इम बर पाइ रह्यो बच सोइ। म्रितु तन महिं नौतन तन होइ।
जनम्यो सूरज तन द्वै रहे। धूम्र बरन को यांते लहे ॥ ११ ॥

---

1. जिस प्रकार। 2. जिसके बहुत सी स्त्रियाँ थीं। 3. कश्यप की एक स्त्री का नाम। 4. सर्प। 5. अन्य।

तन ऊपर को शुशक रह्यो है। बिच को सुंदर देहि लह्यो है।
बिशुकरमा ने छोल्यो सोऊ। अंतरि को शुभ प्रगट्यो जोऊ॥ १२॥
धूम्र बरन कुछ तेज निवारा। सुप्रकाश पुन कीनि सुधारा।
ऊपर ते रवि खुरच्यो जेतो। अपर कार महिं लायहु तेतो॥ १३॥
चक्र सुदरशन तेज बिसाला। बिशुकरमा कीनसि तिस काला।
लच्छमीपति को सो कर सोहैं। महां तेज यांते तिह मों है॥ १४॥
पुन त्रिसूल तिस ते रचि लीनो। सो त्रिनैन[1] के कर महिं दीनो।
इत्यादिक कछ और बनावा। इम प्रसंग इहु रुचिर सुनावा॥ १५॥
सुनि संगत ने हरख उपायहु। सकल भेव मन महिं लखि पायहु।
श्री जमना को करि इशनाना। आगै सतिगुर कीनि पयाना[2]॥ १६॥
हुते जगाती से चलि आए। दरशन करि उर महिं हरखाए।
लोक हज़ारहुं वंदन करते। महिमा दीरघ आंख निहरिते॥ १७॥
त्रासत भए जगाती हेरि। नहीं जेजवा लीनसि घेरि।
डर कर नमो करी पग आइ। हाथ जोरि बोले हित पाइ॥ १८॥
'सतिगुर! करुना द्रिशटि निहारहु। निज संगी ले संग सिधारहु।
तिन ते हम कुछ लेवहिं नांही। त्रास आप को धरि उर मांही॥ १९॥
क्रूर बाक नहिं कहीअहि कोइ। लेहिं जु नाम तजहिं हम सोइ।
अपरन ते धन लेति जगाति। तौ आगे मग को चलि जाति॥ २०॥
सुनि श्री सतिगुर तिन सों कह्यो। हम दिश ते जे करि उर लह्यो।
तौ सुनि नाम न कहीअहि काहू। जाव्री आइं सरब हम पाहू॥ २१।
जे तुम चाहति हौ धन लेना। तौ हम सों अबिहूं कहि देना।
पीछे ते नहिं रोकहु कोई। अबि हम देहिं चहहु धन जोई॥ २२॥
श्री सतिगुर जेतिक तुम साथ। सो सभि जाहु, गहैं नहिं हाथ।
तबि श्री अमरदास चलि परे। लोक हज़ारहुं संगी करे॥ २३॥
पीछे जिस ते गहि करि मांगैं। सो गुर नाम लेति चलि आगैं।
हम तौ गुर के संगी अहैं। चले जाति ऐसे जबि कहैं॥ २४॥
तिस दिन सगरे महिं नर नारी। जबि रोकहिं, गुर नाम उचारी।
तिस को त्यागहिं, जाहि सुखारो। हरखति उचरति जै जै कारो॥ २५॥
पछुतावति जे हुते जगाती। आज नही को दाम अगाती।
मुख मुंदण तिन के पै रही। रिदे बिसूरति रोकहिं नहीं॥ २६॥

---

1. शिव। 2. प्रस्थान।

सगरो जगत पर्यो गुर पाछै। लें किस ते हम, छूछे गाछै[1]।
तिस दिन की नहिं मिली जंगाति। बस नहिं चलति रहे पछुताति॥ २७॥

श्री सतिगुर सभि नरन जनाई। बडे भाग जिस लेहि सु पाई।
जमु जगाती सभि जग डंडै। गुर को नाम सुनहि तिस छंडै[2]॥ २८॥

यांते सतिगुर शरनी परै। जम को त्रास यहां परहरै।
जैसे तुरक जगाती अवै। सुनि गुर नाम तजे नर सवै॥ २९॥

अबि प्रतछ्य करि कै दिखराई। ले गुर नाम सु जम छुटकाई।
तिस दिन ते गुर के संग भीर। भई अधिक मग चलहि बहीर॥ ३०॥

जबि संध्या कहु करि है डेरो। दरशन को उमगाइ बडेरो।
गंगा संग सगल चलि आवैं। कर बंदहिं गुर दरशन पावैं॥ ३१॥

'जै जै कार' पुकार उचारैं। मिलि सतिगुर को आनंद धारैं।
इसी रीति स्री गंगा गए। कनखल बिखै सिवर को किए॥ ३२॥

सुरसरि तट पर पीपर थान। वैठे श्री सतिगुर भगवान।
सुनि सुनि लोक हजारों आवहिं। चहुं दिश भीर थाउं नहिं पावहिं॥ ३३॥

खान पान पुन करि विसरामें। जागे बहुर रही निस जामे।
श्री गंगा को ऊजल नीर। कीन शनान सरीर सधीर॥ ३४॥

भई प्रभाति सभिनि सुनि लीनि। 'श्री गुर अमर आगमनि कीनि।
रिखि, मुनि, पंडित, तीरथ बासी। संत, महंत अनिक जग्यासी॥ ३५॥

ब्रह्मचारी, औधू[3], संन्यासी। ग्रिहसती, बैरागी मिलि रासी।
अपर अनेक वेख के साधू। दरशन कारन ग्यान अगाधू॥ ३६॥

श्री सतिगुर चहुंदिशि परवरे। कर जोरहिं सिर बंदन धारे।
नर परधान निकट हुइ बैसे। मुनि गन व्यास पास सुभ जैसे॥ ३७॥

जोगी बडे दिगंबर आए। षट दरशन के नर समुदाए।
प्रशनोतर करि अनिक प्रकारा। आप आपने मत अनुसारा॥ ३८॥

जे करि चरचा सकल बखांनौं। ग्रिथ बधै यांते डर मानौं।
जथा जोग सभि सों कहि करिकै। भए प्रसन्न तोखता[4] धरि कै॥ ३९॥

सभि ने जाने गहिर गंभीर। इन को थाह न दीरघ धीर।
करि करि नमो बिदा हुइ गए। करति सतुति मग गमनति भए॥ ४०॥

---

1. खाली चले गए। 2. उसे छोड़ देता है। 3. अवधूत। 4. तृप्ति।

पुन श्री गुर सुरसरि आराधी। हे देवी बडि जतननि लाधी[1]।
केतिक न्रिप तप करि करि मरे। बहुरि भगीरथ ल्यावनि करे॥ ४१॥

शिव ने धार सीस पर धारी। अघ हरिबे को धर पर बारी।
तीन लोक मानी अघ हानी। प्रथम सेव तुमरी हम ठानी॥ ४२॥

तिह को फल शुभ प्रापत होवा। सरब प्रपंच आप करि जोवा।
दिहु दरशन बिदतहु निज देह। नेह अछेह मोहि लेखि लेह॥ ४३॥

इत्यादिक निज सिफति[2] सुनी जबि। श्री गंगा प्रगटी जल ते तबि।
श्री गुर अमर बंदना ठानी। धंन धंन अवलोकि बखानी॥ ४४॥

जगतेश्वर की जोति बिसाला। तुम को प्रापति भई उजाला।
तुम पावनि पावनि कर पावन[3]। कल नर पापनि भार नसावन॥ ४५॥

सुनि प्रसन्न श्री गुर तबि होए। अंतर ध्यान भई जल मोए[4]।
केतिक दिन बसि कीनि शनाना। मन भावति देकरि तहिं दाना॥ ४६॥

सनैं सनै पुनि डेरा पावति। गोइंदवाल दिशा को आवति।
जै जै कार करति नर संग। अधिक अनंदति पिखि गुर अंग॥ ४७॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे '**तीरथ प्रसंग**' बरननं नाम ऊन पंचासंति अंशु॥ ४९॥

———

1. यत्न करके प्राप्त की। 2. प्रशंसा। 3. पवित्र पावों को रखो। 4. जल में।

अंशु ५०

श्री गंगा ते आगवन प्रसंग

दोहरा

क्रम क्रम पंथ उलंघ करि तिसी ग्राम को आइ।
पदम पछान्यो बिप्र जिह गुरता जबि नहिं पाइ ।। १ ।।

चौपई

डेरा वहिर कीन गुर तहां। संगति संग भीर नर महां।
जै जैकार करति दरसंते। जहिं कहिं कीरति महित करंते ।। २ ।।
दुरगा बिप्र हेरि नर भीर। बूझति भयो एक के तीर।
किस के साथ अहै समुदाइ। उतर्यो कौन आइ तिस थाइं ।। ३ ।।
तिस ने सकल बतावनि कीना। अमरदास श्री गुरू प्रवीना।
श्री नानक गादी पर बैसा। होति सफल मुख ते कहि जैसा ।। ४ ।।
छत्री जाति बिप्र बय महां। तिन के संग लोक बहु इहां।
इक तौ दरशन को सुख पावहिं। तुरक जेजवा बहुरि हटावहिं ।। ५ ।।
इत्यादिक सुखि लखि सभि भांती। रहैं संग जात्री दिन रातीं।
सुनि दुरगे दिजबर बीचारा। पिख्यो हुतो पद पदम अकारा ।। ६ ।।
तिन को नाम रु जाति बताई। सोई हुइ पाई बडिआई।
किधौ आन ह्वै[1] करति संदेहू। कीनि गमन निज तजि कै ग्रेहू ।। ७ ।।
सनै सनै तिह संग मझारा। श्री गुर को तबि निकट सिधारा।
खरो दूर ते करति चिनारी। है तो सही सु लघु आकारी ।। ८ ।।
परम प्रसंन भयो दिज हेरे। कही अशीरबाद हुइ नेरे[2]।
बैठि निकट लखि नीकी रीति[3]। निशचै धरति भयो तबि चीति ।। ९ ।।
हे प्रभु ! मैं दिज जानहु सोई। पूरब मिल्यो बरख बहु होई।
पिख्यो पदम पद पदम मझारी[4]। तब न जाचना कीनि तुमारी ।। १० ।।
जबि इस को फल प्रापति होइ। तबि लेवौं चित बांछति जोइ।
कर्यो हुतो तकरार सु जोवा। प्रापति समैं आइ सो होवा ।। ११ ।।

---

1. कोई दूसरा न हो। 2. निकट। 3. अच्छी तरह से। 4. आप के चरण कमलों में कमल (का चिह्न) देखा था।

मन बांछति मुझ को अबि दीजै। प्रथम कह्यो सिमरनि सो कीजै।
श्री सतिगुर सुनि भए प्रसन्न। कहिबो दिज बर तेरो धंन॥ १२॥

ज्यों तैं कह्यो सु नीके भयो। चक्रवरति को छत्र सु दयो।
चहुं चक्कन पर हुकम हमारा। जहिं कहिं पठैं न ह्वै हटकारा॥ १३॥

अबि मन बांछति जो कुछ तेरे। सो लीजै सुख अहै न देरे।
लोक बिखै सूख अनिक प्रकारा। सुत बित आदिक सुंदर दारा॥ १४॥

जो चाहहु सो जाचनि कीजहि। अबि ते परम सुखी हुइ जीजहि।
जे करि जग के सुख नहिं चाहैं। नाशवंत लखि नहिं थिरताहै॥ १५॥

तौ परलोक अचल सुख भारी। जनम मरन नहिं संकट भारी।
रुचहि जे मन महिं जाचहु सोइ। नीके लिहु बिचार करि जोइ॥ १६॥

लोक प्रलोक महां सुख दोई। लीजहि एक, जाचि करि सोई।
सुनि दिजबर को संसा पर्यो। निरनै नांहिन एकै कर्यो॥ १७॥

जे करि सुख प्रलोक को जाचौं। इहां रंक बनि दारिद राचौं।
मांगति रहौं, न सुख ह्वै कोइ। अब प्रापति कैसे दिउं खोई॥ १८॥

जे करि लोक बिखै सुख भारा। धन आदिक ते होहि सुखारा।
जाचि लेउं मैं प्रापति होवै। सगरी दारिदता को खोवै॥ १९॥

मन भावति सुख करौं बिलासा। जाचनि की मिटि है सभि आसा।
जम के बसि जबि परिहौं जाई। देहि सासना[1] नरक गिराई॥ २०॥

कित को सुख अबि जाचनि करौं। संसै होति न निरनो धरौं।
तूशनि एक घटी लगि होवा। तबि श्री सतिगुर तिस दिशि जोवा॥ २१॥

भो दिज बर! क्यों तूशनि ठानी। जाचन कीजै चाहि महांनी।
सो हम ते लिहु जो मन भावा। साच करहिं बच हम जु अलावा[2]॥ २२॥

सुनि कै तबि होयहु दिज दीन। द्वै लोकनि सुख लालस कीनि।
बिनै सहत बच कहै बनाइ। गुरु प्रताप लखि सीस निवाइ॥ २३॥

दिज उवाच॥

नाम देहिं, धन देहिं न जन को, धन बिहीन जन, जग न सुहाइ।
जे धन देहिं नाम नहिं देवैं, नाम बिना जन जम पुरि जाइ।
तुम पहि कहि नहीं बनि आवहि, ज्यों भावैं त्यों बनति बनाइ।
गुर अमरदास तेजो के नंदन दोनहु निरमल पक्ख[3] चलाइ॥ २४॥

---

1. कष्ट देना। 2. कहा है। 3. पंथ।

चौपई

सत्यनाम जे देवैं जन को। रहै दारिदी पाइ न धन को।
इहां लोक परताप न जानहि। अहै रंक हीनो पहिचानहिं॥ २५॥
तुमरी दात न जानै कोई। सुख प्रलोक नहिं पावहि सोई।
जे करि धन देवहु निज जन को। भोगहि अनिक रीत बिशियन को॥ २६॥
बिना नाम जम के बसि परै। नाना नरक बिखै दुख भरै।
नहीं आपकी दात पछानहि। सभि संकट प्रापति जिस जानहिं॥ २७॥
दोनहु लोक आप को दान। बिदतै जन पावहि कल्यान।
कहनि बनहि नहिं रावरि पास। जिम जानहु तिम पूरहु आस॥ २८॥
लोक प्रलोक मलीन बिहीन। तुमरो जन होवै सुख लीन।
इम कहि बंदन दिज ने करी। द्वै लोकन सुख कांखा धरी॥ २९॥
पिखि सतिगुर दिज की चतुराई। भए प्रसन्न तनक मुसकाई।
कह्यो बाक 'दोनहु तुम लेहु। प्रापति ह्वै सुख अबहि अछेहु॥ ३०॥
जबि लौ जीवहु धन बहु पावहु। सिमरहु सत्तिनाम लिव लावहु।
अंत समै जम नहिं दरसै हो। पुंनवान के लोक सिधै हो॥ ३१॥
ब्रर ले करि दिज वर हरखाइव। जनम मरन संदेह मिटाइव।
नमसकार करि सदन सिधारा। तबि ते प्रापति दरब उदारा॥ ३२॥
सगरी चिंता रिदे बिनासी। अनिक भांति के लहि सुखरासी।
अंत समां जबि प्रापति होवा। नहीं नरक को संकट जोवा॥ ३३॥
पुंनवान पुरखनि गति पाई। श्री सतिगुर की दात सुहाई।
तहां रात्रि बसि करि गोसाईं। भई प्राति जागे समुदाई॥ ३४॥
नित की क्रिया कीन इशनाने। संगति भीर संग प्रसथाने।
सने सने मग इसी प्रकार। नित उठि चलहिं गुरू सुखकार॥ ३५॥
प्रापति भए बिलोकति देश। बोलति जै जैकार अशेष।
जमना उलंघे देश अगारे। पुन आए सतुद्रव किनारे॥ ३६॥
चढ़े तरी पर होए पारा। देश दुग्रावे केर मझारा।
सनै सनै उलंघ्यो जबि सारो। तीर बिपासा[1] आनि निहारो॥ ३७॥
गोइंदवाल जबहि सुधि आई। रामदास ले नर समुदाई।
जुत उतसाह अगारी चाले। पठहिं शबद करि प्रेम बिसाले॥ ३८॥

---

1. ब्यास नदी।

दरशन करे जाइ सुख रासी। धरहिं अकोर चरन के पासी।
सभि की कुशल बूझि सतिकारे। रामदास सों बाक उचारे ॥ ३९ ॥

तुम को गए सौंप सभि कारी। कुशल संग सो भले संभारी।
अनद समेत[1] अपर सभि अहैं। गोइंदवाल बिखै जे रहैं ॥ ४० ॥

हाथ जोरि करि सकल बताई। प्रभु तुम ने सभि सुख बरताई।
जेतिक जिस ते कार कराई। तेतिक भई कुशल समुदाई ॥ ४१ ॥

इम मिलि सकल नरन के साथ। उतरे पार बिपासा नाथ।
पुरि महिं प्रविशे मंगल करिते। दरसहिं त्रिय नर हरख सु धरिते ॥ ४२ ॥

आइ बिराजे अपनि सथान। मंगल होति अनेक बिधान।
जो ग्रामनि के संगी हुते। करि बंदन घर गमने तिते ॥ ४३ ॥

सुजसु करति बहु सतिगुर केरा। फैल्यो देश बिदेश बडेरा।
करति अनिक जीवनि कल्यान। द्योस बितावहि गुरु भगवान ॥ ४४ ॥

दोहरा

प्रथम रीति नित चलति तिम, देग करनि ते आदि।
सिख्य सैंकरे होति हैं, प्रापति परम प्रसादि ॥ ४५ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे '**श्री गंगा ते आगवन प्रसंग**' बरननं नाम पंचासती अंशु ॥ ५० ॥

———

1. आनन्द सहित।

अंशु ५१

लवपुरि नरनि प्रसंग

दोहरा

धरम धुरंधर अमर गुरु सदा चहिति उपकार।
रचिवे तीरथ बावली सिख्यनि हेतु उधार॥ १॥

चौपई

इक दिन सभा मझार उचारा। इहां बावली लगहि उदारा।
सिख संगति दरशन को आवहिं। सभि मिलि गुर तीरथ जल नावहिं॥ २॥
इम कहि सतिगुर आइसु दीनसि लिखहु हुकमनामे हित चीनसि।
तीरथ की त्यारी गुरु करें। हुइ निहाल सेवा हित धरें॥ ३॥
पारो ने लिखि सकल पठाए। पुरि ग्रामन ते सुनि सिख आए।
भयो मेल संगति को भारो। जथा शकति लै आवहिं कारो॥ ४॥
दरशन हेतु चौंप[1] चित धारे। सेवा ठानहिं गुरू अगारे।
मिलि गुर पग को बंदन ठानहिं। धरहिं भाउ अपनो हित जानहिं॥ ५॥
श्री गुरू ने शुभ दिवसि निहारा। निकसे बहिर अनंद उदारा।
सभि संगति को संगि सु लीनि। बहु मिशटान मंगावनि कीनि॥ ६॥
थल सुंदर पिखि पास बिपासा। ढिग पुरि गोइंदवाल प्रकाशा।
मंद मंद पद सुंदर धरिहीं। संग संगतां भीर निहरिहीं॥ ७॥
सुथल जानि गुरु इस थित भए। टक लावनि की आइसु दए।
बुड्ढे प्रथम कही कर गही[2]। जहिं गुर कही तिरथ करि सही॥ ८॥
तहिं ते माटी लीनि उपाटी[3]। भरी टोकरी सिर धरि साटी[4]।
बहुरो सकल सिख्य लगि परे। धरे चौंप सेवा हित करे॥ ९॥
सतिगुर खरे करावति कार। संगति करति चौंप चित धारि।
जहिं कहिं पसरि गयो बिरतंतू। तीरथ रच्यो गुरू भगवंतू॥ १०॥
निज घर ते कहीआं बहु ल्यावहिं। सिर पर धरे टोकरे आवहिं।
ज्यों ज्यों सेव करहिं धरि भाऊ। त्यों त्यों सतिगुर होति पसाऊ॥ ११॥
नित प्रति करति कार नर ब्रिंद। काढहिं माटी खोदि बिलंद।
संगति कार करति तहिं जेती। अचहि देग ते भोजन तेती॥ १२॥

1. उत्साह। 2. हाथ में कसी पकड़ी। 3. खोद ली। 4. फेंकी।

लगहिं मिहनती गन जे आइ। सो दुइ टके दिहारी पाइं।
लंगर ते अहार मन भावति। ले करि सो भी तहिं ते खावति ॥ १३ ॥
देग बिसाल होनि तबि लागी। आनहिं अन्न सिख्य बडिभागी।
केतिक दास दरब ले आइं। बैठि मिहनती देति लगाइ ॥ १४ ॥
रहै बावली थल वड भीर[1]। कबि कबि सतिगुरु बैठहिं तीर।
धन ते तन ते सेवहिं गुर को। प्रेम करहिं दीरघ नर उर को ॥ १५ ॥
घालहिं घाल लेहिं फल चाहा। हलत पलत को दीरघ लाहा।
सुनि सुनि सुधि को सिख उतलावति। करति चौंप चित तिस थल आवति ॥ १६ ॥
लवपुरि आदि नगर गन जोई। ग्राम ब्रिंद महिं इह सुधि होई।
सतिगुरु तीरथ रचहिं सु वापी। फलदायक, जहिं उधरहिं पापी ॥ १७ ॥
गए भावनी करि हुइ पूरन। इम सुनि नर गन पहुंचहि तूरन[2]।
धन ते लाइ मिहनती देति। पुन उठि खनहिं कही कर लेति[3] ॥ १८ ॥
इक जावहिं इक आवहिं पास। सिख संगति महिं अधिक हुलास।
कार वापिका महिं अनुरागे। सतिगुर की सेवा मो लागे ॥ १९ ॥
लवपुरि ते मजूर चलि आए। करहिं कार चित चौंप बढाए।
दिन महिं लंगर भोजन खावति। संझ दुआनि दिहाडी पावति ॥ २० ॥
इक सिख प्रेमी तहिं चलि आवैं। इक मिहनती दिहाडी पावैं।
दिन प्रति बापी कार महाना। होवति है भी बिदत जहाना ॥ २१ ॥
सभि महिं रामदास मिलि करिकै। सतिगुर चरन प्रेम को धरिकै।
करहिं बापिका सेव बिसाला। सरब गरब ते होहि निराला ॥ २२ ॥
अति हित करि कै कार कमावहिं। धरहिं टोकरी सिर निकसावहिं।
निज कुल की लज्जा को परहरि। सनबंधिनि की आन नहीं धरि ॥ २३ ॥
सभि जग की राखी नहिं कान। सेवा के ततपर सवधान।
खेद सरीर सु नहीं विचारति। प्रेमा भगति राति दिन धारति ॥ २४ ॥
अपर संग नहिं इरखा ठानहिं। करहिं टहिल[4] सुख महिल प्रमानहिं।
खनहिं म्रितका सीस उठावें। निकसि वहिर को दूरि गिरावैं ॥ २५ ॥
धूल सरीर बसत्र को लागहि। ह्वै मन भंग न, प्रेम सु जागहि।
मन, बच, कर्म, सेवा के ततपर। अपर मनोरथ को नहिं उर धरि ॥ २६ ॥
श्री गुरु पूरन अंतरजामी। तिस की लखहिं सेव सभि स्वामी।
उर परपक्य प्रेम करि रूरा। शरधा सुमति संग परिपूरा ॥ २७ ॥

---

1. भीड़। 2. शीघ्र। 3. फिर कसी हाथ में लेकर स्वयं खोदते हैं। 4. सेवा।

परम लाभ सेवा कहु जानहिं। श्री सतिगुर सभि भेव पछानहिं।
कितिक काल बीता लगि सेवा। लेश मात्र जिस नहिं अहंमेवा ॥ २८ ॥
लवपुरि संग जाति गन गंगा। आइ कियो डेरा थल चंगा।
बहु सनबंधी है तिन माहिं। रामदास के मेली आहिं ॥ २९ ॥
को ग्याती[1], भ्राता है कोई। संढ बंस के नर बर सेई।
केतिक तिन महिं सखा सबंस[2]। केतिक प्रिथम परोसी हैस[3] ॥ ३० ॥
केतिक ब्रिध अहैं हितकारी। पिखन मात्र ही कितिक चिनारी।
ताऊ, चचे कितिक कुल महिं के। सभि मिलिबे हित आइ सु चहि के ॥ ३१ ॥
दिज केतिक प्रोहत ते आदि। छत्री कितिक पिखिनि अहिलादि।
वैश, शूद्र जे निकट बसंते। जिन सो बोलति बस बरतंते ॥ ३२ ॥
कहति परसपर मिलकै ब्रिंद। इहां बसहि हरिदास सु नंद।
श्री गुरु अमर लीनि गुरिआई। नगरी गोइंदवाल बसाई ॥ ३३ ॥
गुर के ह्वै अलंब सुख लह्यो। घर सुसरार आनसो रह्यो।
वडो भ्रात इन को संहारी। पित सथान लवपुरि मझारी ॥ ३४ ॥
अपने सगरे सदन संभारे। रह्यो सु द्रिड ग्यातीन मझारे।
आनि बस्यो इह तजि पुरि भलो। देखहिं कहां हाल अब चलो ॥ ३५ ॥
वाध कि घाट सम्रिधी तहिं ते। किस बिधि भयो आइ इति रहिते।
किरति कौन सी करति बसंता। जिस ते ग्रिहसथ कर नित्रहंता ॥ ३६ ॥
इत्यादिक कहि आपस महीआ। सनै सनै आवति भे तहीआ।
जहां कार बापी सु कमावहिं। धरे टोकरी सिर पर आवहिं ॥ ३७ ॥
सभिनि बिलोक्यो सनमुख आवति। सिर ते म्रितका तहां गिरावति।
पिखि सभि को सनमुख हुइ करिकै। 'राम राम' तिनि साथ उचरिकै ॥ ३८ ॥
'पैरी पवणा' कहि किह संग। गहे टोकरी खरोनि संग।
हुते जु ब्रिध बिलोकि रिसाने। केतिक देखि दशा मुसकाने ॥ ३९ ॥
धूल संग छादति सरबंगा। बसत्र मलीन कुढंग कुरंगा।
कह्यो सभिनि 'कुल लज्या खोई। घर ससुरारि म्रितका ढोई ॥ ४० ॥
जनम्यो भलो सोढीअनि वंस। राखी नहीं लाज की अंस।
इस ते परै करै क्या हीनी। छत्री कौन करै जिम कीनी ॥ ४१ ॥
हेतु जीवका अनिक उपाइ। शुभ मतिवंत करति समुदाइ।
करति जि इही समान हमारी। चलति जीवका अनिक प्रकारी ॥ ४२ ॥

---

1. सम्बन्धी। 2. अपनी आयु के मित्र। 3. थे।

म्रितका खनिनि सीस पर धरनो। को बाहज अस करि है करनो।
हम सभि की पत दई गवाइ। भलो निकास्यो नाम सु आइ॥ ४३॥
सभि सन बंधनि महिं लघुताई। करी बिदति जानी न जिठाई।
इत्यादिक तिन बाक बखाने। सुनि श्री रामदास मुसकाने॥ ४४॥
कह्यो सभिनि सों 'जानति नाहन'। श्री सतिगुर महिमा दुख दार्हनि[1]।
एक बेर हेरैं करि करुना। कटहिं कोटि संकट भव मरना॥ ४५॥
परमेशुर की प्रापति देति। जिसहि अराधे जोग समेति।
किसू क्रिति ते जो नहिं पयति। सो सतिगुर ढिग सुगम लभयति॥ ४६॥
जिनि की सेव न बिरथी जाइ। मन बांछति शरधा ते पाइ।
इन की सेव करहिं नहिं जोइ। तिन सम कौण मंदमति होइ॥ ४७॥
जिस के बडे भाग शुभ अहैं। सो सतिगुर की सेवा लहै।
इस ते परै लाभ नहिं और। हुइ गुर दास सभिनि सिरमौर॥ ४८॥
हित की बात तिनहु संग कही। करति कुतरकनि, मानहिं नहीं।
मुसकावति निज डेरे गए। महां दीन ता सम लखि लए॥ ४९॥
दिवस रह्यो जबि घटिका चारि। गुर दरशन को भे सभि त्यारि।
प्रथम देग ते भोजन करि कै। बहुरो प्रविशे अंतरि घर कै॥ ५०॥
अहंकार के सहत बिसाले। पद पंकज पर धर्यो न भाले।
लखे साक इह कुडम[2] हमारे। लघु थान इम रिदै बिचारे॥ ५१॥
नहिं मंदनि[3] महिमा कुछ जानी। बैठे 'राम राम' कहि बानी।
मिरजादिक श्री अमर महाने। हित मिरयाद कीनि सनमाने॥ ५२॥
जथा सथान भए थिति सारे। तिनि महुं बडिअनि बाक उचारे।
अब तुम जग महिं लही बड़ाई। वय महिं बडे ब्रिधता पाई॥ ५३॥
सभि बिवहार अलप रु महत। तम जानति हो मति के सहत।
कुल की लाज सकल के अहै। भ्रातनि बिखै अधिकता चहै॥ ५४॥
तुम होए गुर रूप उदारा। कुछ न तुमरे ऐहु बिचारा।
खत्री बंस बिसाल हमारो। सहत बडाई करनि अचारो॥ ५५॥
तउ रहि आवहि जाति मझारा। हीन कहावहिं नहिं किस बारा।
भ्रातनि बिखै न तरक सहारैं। यांते ठानति करम उदारैं॥ ५६॥
नाम 'मंगला एव अलाए। तबि हूं रामदास चलि आए।
गुर सूरज को जबहु निहारा। बदन कमल परफुल्य उदारा॥ ५७॥

1. दु:खों का नाश करने वाली। 2. समधी। 3. छोटा और बड़ा व्यवहार।

पद अरबिंद सुगंधि अनंद। लोचन भ्रमर करे कर बंदि।
इसको देखति लवपुरि के नर। कह्यो बहुर तरकनि को उर धर ॥ ५८ ॥
इह भी जनम्यो बंस हमारे। लाज गवाई सरब प्रकारे।
पित के मरे सदन को त्यागा। घर ससुरारि बस्यो निरभागा ॥ ५९ ॥
मिल्यो मिहनती ब्रिंद मझारे। खनि म्रितका कहीअनि कर धारे।
भरे टोकरी सीस उठावै। रज तन लगे वहिर निकसावै ॥ ६० ॥
इसने तौ सिर माटी पाई। करहु बिचार न तुम उचताई।
कार अनुचित आप ने दीनि। लाज कुटंब न तुम ने चीन ॥ ६१ ॥
अपर किरति को अब इस दीजै। उचित अनुचित बिचारि सुलीजै।
गुरु सुनि रामदास दिशि देखा। मुख प्रसन्न उर प्रेम विशेखा ॥ ६२ ॥
देखि दशा सतिगुर छकि रहे। नदी प्रेम मम, मन इस बहे।
बैदिक लौकिक रीति त्रिणनि सम। प्रेम धारि जल ते ठहिरहि किम ॥ ६३ ॥
प्रेम भगति मेरी रंग रातो। तजे, न जानहि जाति सु पातो।
लवपुरि के पंचनि दिशि हेरि। सहज सुभाइक गुर तिस बेरी[1] ॥ ६४ ॥
उर प्रसन्न ह्वै भनति वचन को। सभि जग छत्र दीनि मैं इनको।
माटी परि है सीस तुमारे। गुर अभगति, तुम प्रेम न धारे ॥ ६५ ॥
जे इह बंस जनम नहिं धारे। गिरति नरक महिं पितर तुमारे।
रामदास कर जोरि उचारा। 'पतित उधारन बिरद तुमारा ॥ ६६ ॥
गुर महिमा की ग्यात न पाई। क्या इन के बसि, जग उरझाई[2]।
सुनि करि सतिगुर भए प्रसंन। 'रामदास! तुझ को धंन धंन ॥ ६७ ॥
करि सेवा मुझ को बसि कीना। मैं जानों तुझ, तैं मुझ चीना।
पुन लवपुरि के नर समुदाई। करे बिदा गमने अगुवाई ॥ ६८ ॥
पद अरबिंद बंदना ठानी। सेवहिं बहुरि करम मन बानी।
करहिं कार धरि चौंप चगूने। लोक लाज ते होइ बिहूने ॥ ६९ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे **'लवपुरि नरनि प्रसंग'** बरननं नाम एक पंचासती अंशु ॥ ५१ ॥

———

1. उस समय। 2. जगत के प्रपंचों में फंसे हुए।

अंशु ५२
माईदास बैशनो प्रसंग

दोहरा

अति आचारी वैशनो माई दास सु नाम।
भगति करति श्री क्रिशन की प्रेम सहत निशकाम ॥ १ ॥

चौपई

संतनि की संगति नित करे। क्रिशन क्रिशन मुख महिं जपु धरे।
मोर मुकट पीतांबर धारी। इसी ध्यान को मन आधारी ॥ २ ॥
निस दिन सिमरहि अपर न काम। मन की लिव चितवति घनश्याम।
कमल पत्र बिसतरति बिलोचन। कुंडल गंडसथल दुख मोचन ॥ ३ ॥
मंद मंद सुंदर मुसकावनि। भगतनि के चित चौंप वधावनि।
ऐसो ध्यान बिखै मन लागा। सिमरहि नाम सदा अनुरागा ॥ ४ ॥
तिन श्री अमर महातम सुन्यो। वहु गुर सिख्यन तिह सों भन्यो।
चाहति दरशन को दिन बीते। कबि कबि चलनि ठटहि निज चीते ॥ ५ ॥
समो पाइ गुर के पुरि आयो। थिर्यो पौर पर पूछि पठायो।
सुनि श्री अमर नेम निज भाख्यो। जे मन तुव दरशन अभिलाख्यो ॥ ६ ॥
करहु देग ते भोजन जाइ। होहि त्रिपत पुन हम ढिग आइ।
माईदास सुनति संदेह। बिन संजम ते इन के गेह ॥ ७ ॥
होति अहार अचों नहिं ऐसे। मेरी क्रिआ रहहि सुचि जैसे।
सो बिधि करनी अबि बनि आवै। सुचि बिन दरशन क्या फल पावै ॥ ८ ॥
चितवति रह्यो चिंत चित खर्यो। बहुति देरि महिं निशचै कर्यो।
बिना अचे नहिं दरशन देति। जे अचि लेउं धरम बिगरेति ॥ ९ ॥
यांते नांहिन दरशन करि हों। संजम सहत अचों प्रण धरि हों।
बिन दरशन तबि फिर करि गयो। निस दिन मन महुं संसै भयो ॥ १० ॥
नर महातमा अज्ञमति भरे। तिनि को दरशन मै नहिं करे।
लोक सैंकरे करे निहाल। भए सिद्ध मिलि कै तिन नाल ॥ ११ ॥
किस कुकरम ने मुझ को प्रेरा। जिस ते महां पुरख नहिं हेरा।
भयो उदास न ठहिर्यो थान। चलौं द्वारका-मन अस ठानि ॥ १२ ॥

प्रासचित[1] तब उतरहि मेरा। चलि दुआरका हरि ल्यों हेरा।
अति चित प्रेम भबो चल पर्यो। थिर्यो न 'हरि हरि' नाम सुर्यो[2] ॥ १३ ॥
इच्छा अपर नहीं मन ल्यावै। करति भगति-दरशन दिखरावै।
जाइ क्रिशन को हेरनि करौं। पुरि दुआरका महिं हित धरौं ॥ १४ ॥
भयो प्रेम करि अति मसताना। दिन प्रति करतो जाति पयाना।
दिशा द्वारका होति अनंदा। करौं दरस मैं गमनि बिलंदा ॥ १५ ॥
निकट द्वारका पहुंच्यो जाई। तिथि इकादशी मग महिं आई।
बन दीरघ दारुन तिस थाना। जहिं समीप नर दिखहि न आना ॥ १६ ॥
घटा बडी तिस दिन उमड़ाई। बायू बही बहुति बल पाई।
दामनि दमकति करकति भारी। कारी घटा बरखती बारी ॥ १७ ॥
तिस बन महिं व्रत राखनि करे। चल्यो जाति ब्याकुलता धरे।
नहिं फलुहार हाथ किति आवा। निरजल ही हठ कीनि रहावा ॥ १८ ॥
भयो सीत बरखा ते कंपति। निकटि न मानव को बच जंपति।
इति उति खोजति हार पर्यो है। थान न पायो नहीं थिर्यो हैं ॥ १९ ॥
पुन व्याकुल बरखा ते भयो। छुधा बहुति फुलहार न पयो।
सघन तिमर होई जबि जामनि। ठौर न प्रापति भा बिसराम नि ॥ २० ॥
चलिबे ते इक थल थिर होवा। खोखर सहत ब्रिच्छ इक जोवा।
खरे होन को तिस महिं थान। बैठनि पौढ़नि को नहिं जानि ॥ २१ ॥
तिस महिं प्रविश्यो ठांढा भयो। सिमरनि क्रिशन क्रिशन मुख लयो।
सगरी जामनि खरे बिताई। बहुरो तहिं प्रभाति हुइ आई ॥ २२ ॥
क्रिशन प्रीत इक आसन औरी। दुतियन दीखति को तिस ठौरी।
दिवस द्वादशी के चितवंता। बरत उपारन बिधि न लहंता ॥ २३ ॥
क्रिशन क्रिशन आराधति खर्यो। एक प्रेम महिं मन रहि थिर्यो।
भगत बछल प्रभु दीन क्रिपाला। जान्यो-जाग्यो प्रेम बिसाला ॥ २४ ॥
मो बिन इसके आस न और। कानन घोर बिखै अस ठौर।
अपनो जन जान्यो युति प्रेम। चाहति भए करनि को छेम ॥ २५ ॥
आन रूप करि ल्याइ अहारा। तिह आगे धरि अनत सिधारा।
माईदास सु भोजन देखा। सहत पहित के भात विशेखा ॥ २६ ॥
मैं आचारी-शंका ठानी। बिन संजम किनि आन्यो थानी।
सुच सों चौके अंतरि खावौं। बिगरहि नेम जि इस मुख पावौं ॥ २७ ॥
जे होवति पकबान बनायसि। अचिति ब्रती मैं छुधा मिटायसि।
इस बिधि तरकति बहु चित मांही। हुतो छुधति पर खायसि नांही ॥ २८ ॥

1. प्रायश्चित्त। 2. उच्चारित किया। 3. व्रत खोलने की।

उर अंतर की लखि भगवानू । ल्याए अनिक भांति पकवानू ।
तिसि ढिग धरि करि अनत सिधारे । माई दास निहारि बिचारे ।। २९ ।।
इसि भीखन कानन के मांही । मानव किसी थान दिखि नांही ।
एकि बार दई काच रसोई । मम मन की लखि करि पुन सोई ।। ३० ।।
ल्यायसि कौन न जान्यो जाई । मन की गति नहिं अपर लखाई ।
प्रभु बिन और नहीं इह कोई । उर की लखि ल्यावति भा सोई ।। ३१ ।।
नहिं मुझ को दरसन दिखरायसि । दोइ बार दे अन्न सिधायसि ।
इम बिचारि करि हेरनि लागा । चहुं दिशि फिरति वध्यो अनुरागा ।। ३२ ।।
पर्यो रह्यो तिहठां पकवान । इति उति खोजति भयो हिरान ।
प्रेम समुद्र बिखै बहि गयो । माई दास थाहु नहिं लह्यो ।। ३३ ।।
रुदनि करति अरु ऊच पुकारै । नहिं तन की सुधि कुछ संभारै ।
गुन गावति 'हे पतित उधारन । हे घनश्याम जगत के कारन ।। ३४ ।।
हे अनाथ के नाथ क्रिपाला । नाम गरीब निवाज बिसाला ।
हे मनमोहनि सुंदर सावरि । मै मलीन पांमर ते पांवरि[1] ।। ३५ ।।
अपनो बिरद संभारनि करीयहि । मम अवगुन को नहीं निहरीयहि ।
ह्वै क्रिपाल दिहु दरस गुसाई । प्रिथम जथा भोजन दिय आई ।। ३६ ।।
इत्यादिक प्रभु को जसु कहै । बिनती करति नीच निज लहै ।
कर्यो प्रेम ने ब्याकुल भारा । तबहि श्यामघन बिरद संभारा ।। ३७ ।।
आद्रिश ह्वै करि श्री भगवान । हित कल्यान सु कर्यो वखान ।
माईदास भगत तूं मेरा । सहत प्रेम बैराग बडेरा ।। ३८ ।।
इक अपराध आपनो सुनो । जहां प्रेम तहिं नेम न गुनो ।
जहां नेम तहिं प्रेम न पूरा । यांते रह्यो रिदे महिं ऊरा ।। ३९ ।।
जहिं श्री सतिगुर गोइंदवाल । दरशन हित गमन्यो जिस काल ।
तहि शंका करि राख्यो नेम । दरशन कर्यो न छोर्यो प्रेम ।। ४० ।।
लखि इहि समै सरूप सु मेरा । करौं अनेकनि श्रेय अछेरा ।
तूं महिमा जानति सभि रीति । राख्यो नेम प्रेम तजि चीति ।। ४१ ।।
इहां बिअरथ ब्रिलाप न करीअहि । होइ न दरशन आस निवरीअहि[2] ।
हटि अबि गमनहु गोइंदवाल । तहिं मम दरसन करहु क्रिपाल ।। ४२ ।।
श्री गुर अमर मोहि महिं कोऊ । भेद न जानहु इक लखि सोऊ ।
जिस विधि को सरूप उर बांछे । तहां जाइ दरशहु सो आछे ।। ४३ ।।

---

1. नीच से भी तुच्छ, अति नीच । 2. आशा छोड़ दो ।

जग कारन तारन तन मेरा। भगत रूप धरि सो लिहु हेरा।
शंका मन महिं करहु न कोई। शरधा धारि दरसीअहि सोई ॥ ४४ ॥
सुनि के माईदास अदंभा। पछुतावति मन मानि अचंभा।
निशचै भयो मोर अपराधू। इहां दरस कैसे अबि लाधू ॥ ४५ ॥
पार ब्रह्म श्री सतिगुर रूप। जग महिं कीरति बिमल अनूप।
संजम सों भोजन कहु खाना : इसने मोकहु कीनि हिराना ॥ ४६ ॥
उर करि सरल मिलौं अबि जाई। तहिं श्री क्रिशन रूप दरसाई।
इम निशचै करि भोजन खायो। हट्यो तहां ते प्रेम बढायो ॥ ४७ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'माईदास' बैशनो प्रसंग बरननं नाम दोइ पंचासती अंशु ॥५२।

अंशु-५३
माणक प्रसंग

दोहरा

अति आतुर हुइ दरस को माई दास पयान।
पंथ चलति बहु शीघ्र ते होवति श्रमति महान ॥ १ ॥

चौपई

निस बिसरामति दिवस पयानहि। क्रिशन सतिगुरू नाम बखानहि।
चित महि चितवति आवति सोई। पारब्रह्म गुर अमर जि होई ॥ २ ॥
मो कहु रूप श्याम दिखरावहिं। चतुर भुजा बनमाला सुहावहि।
मुर उर की शरधा करि पूरी। दरसौं सभि ते मूरत रूरी ॥ ३ ॥
केतिक दिन महि पहुंच्यो आइ। जिह ठां गोइंदवाल सुहाइ।
प्रथमहि गयो देग के थाना। कर्यो जाचि कै भोजन खाना ॥ ४ ॥
त्रिपत होइ पुन अंतर गयो। मन बांछति तस दरशन भयो।
जिह सरूप की उसतति बेद। करति रहति नहिं पावति भेद ॥ ५ ॥

कवित्त

सूरज समान कोट[1] प्रभा है महान तन,
शोभन है सीस, दुति बाहुन अजान की।
कंबु ग्रीव, लोचन तिरीछे तीछे बान मानो,
तीखन है नासका महान सुखदान की।
अधर प्रवाल लाल, सुंदर बिसाल भाल,
कुंडल कपोल पर डोल चंचलान की।
कुंतल सुनीले ढीले छूटे हैं छबीले,
चटकीले पट पीले फहिरीले बेगवान की[2] ॥ ६ ॥
पद अरबिंद छबि ब्रिंद है बिलंद म्रिदु,
आनंद के कंद हैं मुकंद निज दास के।
आंगरी सुमिले नख जाल हैं बिमल कलि,
नूपर जराऊ जे जवाहर प्रकाश के[3]।

---

1. कोटि। २. पवन के वेग से पीले वस्त्र लहरा रहे हैं। ३. चमक रहे हैं।

केहरि सी कट, सुलपेटी छुद्र घंटका सु,
त्रिवली उदर, उर आयुत बिलास कै।
चंद्रमा उजास के समान रहि भास के,
बदन सुख रास के सुहायो त्रास नास के॥ ७॥
दिज पद चिंन्हि, बनमाल है विसाल गर,
चतुर भुजानि गह्यो गदा अरविंद है।
संख चक्र बक्र[1] धरे, चंदन चरच करे,
अंगद समेत भुजदंड सो बिलंद हैं।
कंध हैं उतंग अंग अंग बिखै संधि[2] जेई,
मासल कठोर सभि बज्र के मनिंद है।
हसैं मंद मंद हैं, उशावति अनंद हैं,[3]
अनिद जगवंद है—मुकंद श्री गुबिंद हैं॥ ८॥

दोहरा

अपर सुंद्रता प्रभू की बरन सकै अस कौन।
कोट काम ससि सूर की समता नांहिन तौन॥ ९॥

चौपई

माईदास बैशनो देखि। तन मन की सुधि रहि न शेष।
हेरि सरूप मसत हुइ रह्यो। को बिधि मुख ते जाति न कह्यो॥ १०॥
मुद्रित करे बिलोचन जबै। अंतर पिख्यो रूप सो तबै।
कितिक बार नहि नैन उघारे। उर महिं मूरति थिर्यो निहारे॥ ११॥
बहुर बिलोचन खोले जबै। पिखि श्री अमर रूप नर तबै।
सतिगुर ने निज रूप बनाओ। बांछति चित सो तिसै दिखायो॥ १२॥
निकट हकार्यो माईदास। आवो भगत बैठिये पास।
सुनति बैन चरननि पर पर्यो। श्री गुर निज कर मसतक धर्यो॥ १३॥
रुधिर प्रसंसा करिवे लाग्यो। गुरु क्रिपाल के पग अनुराग्यो।
धंन धंन सतिगुर गतिदानी। कलि महिं करहु उधारन प्रानी॥ १४॥

भुजंग छंद

नमो दीन दयालं न आदं न अंतं।
अगाधं[4], अबाधं[5] रचे सरब जंतं।

---

1. टेढ़ा चक्र। 2. जोड़। 3. आनंद देते हैं। 4. समुद्र समान। 5. बाधा-दु:ख रहित।

तुही लोक चौदा रचे धारि लीला।
प्रवेश्यो सबै मैं, अलेपं सु मीला ॥ १५ ॥
महां बीज बीजं बिथारै बिथारा।
तूही एक मूलं जगं साख सारा[1]।
उपावें तुही, फेर पालैं संहारैं।
संकोचें सबै द्रिश्यमानं पसारै ॥ १६ ॥
लखै नांहि कोई अकारं कितो है।
तुही आप जानै गति में जितो हैं।
रचे पंच भूतं रिखी की[2] जि सारी।
करी खान चारी अनेकै प्रकारी ॥ १७ ॥
क्रिपा धारि जांको करो दान नामं।
रटै नीति सोई परै तोहि सामं।
तजै देहि हंता लखै सो निराला।
लगै मीठ भाणा, रहंतो सुखाला ॥ १८ ॥
लखै मीत तोही, सरैं काज सारे।
अनेकानि मैं एक तोहि निहारे।
तुही दीन बंधू दया सिंधु स्वामी।
उधारैं लखैं दासु प्रेमी अकामी ॥ १९ ॥
महांराज राजा प्रतापं बिराजै।
तुही सरब के सीस पै एक छाजें।
घनानंद ग्यानं मनिंदै न कोई।
कली देह धार्यो कला सरब गोई[3] ॥ २० ॥
गूरू रूप होए त्रिती थान सो हैं।
असंखै उधारे बने दास जो हैं।
नई रीति सिक्खी बिथारी उदारी।
लई धारि जांही भए दुख्य पारी[4] ॥ २१ ॥
सदा जै, सदा जै, सदा गुसाईं।
मया[5] कीनि मोपै सु लीनो बचाई।
गुबिंदे, मुकंदे अनंदे अनूपे।
नमसतं, नमसतं, समसतं सरूपे ॥ २२ ॥

1. सारा संसार शाखाएं हैं। 2 इंद्रियाँ। 3. छिपाई हुई है। 4. दुखों से पार।
5. कृपा, दया।

दोहरा

इस प्रकार असतुति करी हरिखति माईदास।
भयो निहाल बिसाल ही पूरन प्रेम प्रकाश ।। २३ ।।

चौपाई

हे प्रभु ! जे प्रसन्न मुझ पर हो। राखो चरन कमल रज करि हो।
नित दरशन मैं तुमरो पाऊं। जनम जनम को भरम मिटाऊं ।। २४ ।।
सुनि श्री अमर प्रसीदनि भए[1]। मुसकावति मुख सुख को दए।
बचन कह्यो सुन माईदास। अब तू रहो हमारे पास ।। २५ ।।
प्रभु को दशनन इह ठां पायसि। सरब कामना ते त्रिपतायसि।
अशट दिवस जबि अबहि बितावै। बहुरो तोहि गुरू बिदतावैं ।। २६ ।।
रहु अंनद हुइ गोइंदवाल। मिल सतिसंगति सिख्यन नाल[2]।
हाथ जोरि तिनि तैसे मानी। रह्यो समीप संदेहन हानी ।। २७ ।।
कार बापिका की बड होवै। सभि संगति सिर करि नित ढोवै।
खोदति खोदति जल लगि गए। कर रोरन को देखति भए ।। २८ ।।
नहिं टूटहि बहु जतन करति हैं। बुधि बलि अपनो सकल धरति हैं।
तबि श्री अमर निकट चलि कह्यो। सतिगुर ने ब्रितांत सभि लह्यो ।। २९ ।।
माणक चंद पथरीआ जाति। खत्री कुल सुंदर, द्रिड गाति[3]।
तिह संग सतिगुर कीनि बखान। हे माणक चंद लेहु विदान ।। ३० ।।
करहु जोर तिह हतहु बनाइ। सुनि करि चरन पर्यो सहिसाइ।
गुर निज कर तिह पीठ धर्यो है। ले विदान को वीच बर्यो है ।। ३१ ।।
कर को करि बल मारति भयो। टट्यो जल सो थल भरि गयो।
बूड्यो माणक हाने प्रान। सतिगुर सुनि ब्रितंत इहि कान ।। ३२ ।।
माणक होइ सु मरतो नांही। ले आवहु तिस को हम पाही।
सुणि माणक को ल्याइ निकास। धर्यो आनि करि सतिगुर पास ।। ३३ ।।
दाहन चरन सीस को छ्वायो। उठि बैठ्यो जनु सुपति जगायो।
सिर पर सतिगुर नै कर फेरा। भयो प्रकाश बिनाशि अंधेरा ।। ३४ ।।
सभि रिधि सिधि बखशन को कर्यो। नामु 'जीवडा' तिस को धर्यो।
माईदास हकार्यो पास। सतिगुर कीनसि बाक प्रकाश ।। ३५ ।।
तोहि गुरू इहु माणक चंद। राखहु इन सो प्रेम बिलंद।
मंत्र आपनो तोहि बताइ। तिलक गुरमुखी मसतक लाइ ।। ३६ ।।

1. प्रसन्न हुए। 2. सिक्खों के साथ। 3. शरीर। 4. बड़ा हथौड़ा।

सेल्ही दई करहु सिख सगति। सत्यनाम जपीए मिलि पंगति।
संग्या भगतनि की तुम होई। जग संताप बिनासो जोई ॥ ३७ ॥
तुम अबि अपने ग्रिह कउ जावहु। सत्य नाम को जाप जपावहु।
गुर मुख मारग करहु प्रकाश। जहिं कहिं होवहिं भगति निवास ॥ ३८ ॥
सुनि मुद[1] माईदास बिसाल। माणक के पाइन ततकाल।
नमसकार करि होयहु संगि। दोनहु प्रापत अनंद अभंग ॥ ३९ ॥
भुगति मुकति प्रापति कर मांही। गुर ते कुछ अचरज इहु नांही।
गुर चेला दोनहु तबि होइ। पद श्री अमर परत भे सोइ ॥ ४० ॥
करि बहु प्रेम बिनै बहु ठानी। हे सतिगुर अपदा सभि हानी।
दोनहु गमन कीनि ततकाले। सदन आपने बसे सुखाले ॥ ४१ ॥
सत्यनाम बहु नर उपदेशा। सिक्खी को बिसतार विशेखा।
बचन कह्यो ततछिन फुर जावै। लोक अनेक पूजिबे आवैं ॥ ४२ ॥
जो जाचहि इन के ढिग आइ। रिदे मनोरथ ततछिन पाइ।
होहि बसोए को दिन जबै। चलि आवहिं सतिगुर ढिग तबै ॥ ४३ ॥
दरशन करि निज बिनय सुनावहिं। बहुर आपने ग्रिह को जावहिं।
भई जगत मैं बडि बडिआई। अंत समैं सुख सों गति पाई ॥ ४४ ॥

सोरठा

बखशिश करहिं क्रिपाल सिक्खी पंथ प्रसिद्ध हित।
सेवक होत निहाल पारब्रह्म गुर प्रेम चिति ॥ ४५ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रथे प्रथम रासे 'माणक प्रसंग' वरनन नाम तीन पंचासती अंशु ॥५३॥

---

1. प्रसन्न हुए 2. पूरा हो जाता है।

अंशु-५४

गंगो प्रसंग

दोहरा

अकबर दुरग चितौड को टूट्यो न करते जंग।
श्री सतिगुर ढिग नर पठ्यो[1] बहुत बेनती संग ॥ १ ॥

चौपई

पीर फकीर प्रथम बहु सेवे। हुइ प्रसन्न सभिहिनि बर देवे।
नहीं फते भा[2] दुरग चितौर। अबि मैं शरन हाथ को जोर ॥ २ ॥
सुनि गुर कह्यो 'तबहि गढ छूटे। इहां वापिका को नर टूटे'।
तब ते रह्यो शाहु को मानव[3]। कड टूट्यो जबि ही तिन जानव[4] ॥ ३ ॥
लिखि ले गयो वार तिथि मास। पहुंच्यो चलि अकबर के पास।
जिस छिन कड टूट्यो तिस काल। तबहूं छूट्यो चितौड बिसालु ॥ ४ ॥
अकबर उर प्रतीत बडि आई। दरशन करिबे चाह बधाई।
आम खास महिं करी प्रशंसा। श्री नानक अल्लहि नंहि संसा ॥ ५ ॥
आरफ[5] कामल[6] वली वलाइत। होहि सहाइ दास हरि साइत[7]।
हिंदू मुसलमान ते न्यारे। नर अनेक दोनों ते तारे ॥ ६ ॥
लवपुरि चलहिं मिलहिं दरसावहिं। इम निशचे करि प्रेम बढावहि।
बस्सी खत्री गंगो नामा। धन बिवहार करनि तिह कामा ॥ ७ ॥
दरब हजारहु बनज चलावै। नित प्रति मति कर अधिक बधावै।
बिगर्यो एक बार बिवहारै। पाइसि तोटा[3] जिति किति सारै ॥ ८ ॥
नहीं सहाइक को तिस भयो। हुतो उधार न सो किन दयो।
बडा कशट होय सिमन मांही। सो उपचार चल्यो तिस नांही ॥ ९ ॥
निज कुटंब सनबंधी आन। अरु जिन संग बंनज को ठानि।
सखा आदि सभि ते दुख पाइसि टिक्यो न पग करि रह्यो उपाइसि ॥ १० ॥
चहुं दिशि ते जबि संकटि पर्यो। सतिगुर सुजसु श्रवन तिन कर्यो।
छोर सभिनि को निकस्यो कैसे। फस्यो जाल झख त्याग्यो जैसे ॥ ११ ॥
उर श्री अमर आस इक धारी। परौं शरन हुइ दुख ते पारी।
द्रिड प्रतीत धरि दरशन आयो। प्रिथम देग ते भोजन खायो ॥ १२ ॥

---

1. भेजा। 2. विजय प्राप्त नहीं कर सके। 3. बादशाह के आदमी। 4. जाना। 5. परमात्मा को पहुंचा हुआ, ज्ञानवान्। 6. पूर्ण। 7. प्रत्येक घड़ी। 8. घाटा।

प्रेम धारि पुन गमन्यो पास। देखे जबि मन भयो हुलास।
त्राहि त्राहि करि शरनी पर्यो। गुर पग पंकज पर सिर धर्यो ॥ १३ ॥
बैठ्यो निकट कह्यो गुरद्याल। कहु गंगो क्या तोर हवाल।
सुनि कै निज संकट सभि कह्यो। प्रभु जी धन तोटा मैं लह्यो ॥ १४ ॥
गुरू कह्यो 'अबि दिल्ली जय्यै। मान बाक तहिं कोठी[1] पय्यै।
सति संगति की सेवा करहु। ह्वै है दरब न चिंता धरहु ॥ १५ ॥
श्री गुर की आइसु ले गयो। पुरि महिं कोठी पावति भयो।
मुगल अचानक इक तहिं आयो। लाख मुहर जिन संग लदायो ॥ १६ ॥
एक फरद हुंडी को चाहे। बूझति फिरति कोठीअन मांहे।
सुनि हुंडी इक करै न कोऊ। दरब अधिक ते त्रासति सोऊ ॥ १७ ॥
तबि गंगो की कोठी आयो। इक हुंडी मैं चहति करायो।
सतिगुर के बच सिमरिन करे। इस ते धन मम ब्रिधता धरे ॥ १८ ॥
मैं करि हौं हुंडी कहि दयो। दरब मुगल ते सगरो लयो।
लिखी दरशनी तिह कर दीनी। ले करि लवपुरि त्यारी कीनी ॥ १९ ॥
तबि गंगो दीनार[2] सु सारी। पहुँचाई तिस नगर अगारी।
मुगल प्रवेश्यो लवपुरि जाए। गयो बनक ढिग हाट पुछाए ॥ २० ॥
मोर दरशनी हुंडी लेहु। लाख मुहर अबि गिन करि देहु।
पहुंची मुहर सु दई निकास। गयो मुगल ले रिदे हुलास ॥ २१ ॥
तिस पीछे गंगो को काम। भयो ब्रिध तैसो धन धाम।
वधी प्रतीत चल्यो बिवहार। जान्यो बहुते नगर मझार ॥ २२ ॥
कितिक बरस बीते तिस खायो। तबि श्री अमर निकट दिज आयो।
कंन्या एक निकेत कुमारी। श्री गुर आयो शरन तुमारी ॥ २३ ॥
कितिक दरब तुम ते जबि पावौं। कंन्या पान ग्रहिन करवावौं।
रिण रिपु बल ते दुख नहिं ऐसे। पित कुमारी को पावति जैसे ॥ २४ ॥
श्री गुर क्रिपा धारि सुखरासि। लिखे रजतपण देहु पचासि।
गंगो पर हुंडी करि दीनि। ले करि बिप्र गमन को कीनि ॥ २५ ॥
पहुंच्यो पुरि कागज़ जबि दयो। गंगो पिखि बिसमै हुइ गयो।
तूशनि भयो, न धन को दीन। हट्यो बिप्र उर संकट पीन ॥ २६ ॥
श्री गुर अमरदास के पास। आयो छूछा[3] भयो निरास।
अंतरजामी सभि कुछ जाना। गंगो पाइ दरब अभिमाना ॥ २७ ॥

1. आढ़त आदि की दुकान। 2. सोने का एक सिक्का। 3. खाली।

कर्यो विचारन—दरब सुभाइ। जिस ढिग आवै सुधि तिसु जाइ।
गुर परमेशुर बीसर जैहै। लालच लगे कशट को पैहै ॥ २८ ॥
करहि बावरा सुरति बिसारै। जोग अजोग न बहुर बिचारै।
इमि लखि दिज को दरब दिवायो। कंन्यां ब्याहु कर्यो हरखायो ॥ २९ ॥
तिस दिन ते गंगो को दरब। जाति जाति बिनस्यो पुन सरब।
थोरन दिन मैं रंक भयो है। तबि निज औगुन जानि लयो है ॥ ३० ॥
सतिगुर ते बेमुख मैं भयो। यांते दरब सरब हरि गयो।
तिन बिन कौन सहाइक मेरा। उचित मोहि बनिबो अब चेरा ॥ ३१ ॥
सभि बिधि सेवा करौं गुसाईं। फेरौं बढनी[1] तिन दर जाईं।
सिर धरि जल ढोवौं चिर काल। करौं सेव इत्यादि बिसाल ॥ ३२ ॥
दिल्ली पुरि ते निकस्यो चोरी। तूरन पंथ आइ गुर ओरी।
इहां बापिका होवति त्यारी। मिलि सभिहिनि मैं लाग्यो कारी[2] ॥ ३३ ॥
अंतरजामी सभि किछ जाना। ढिग हकार नहिं कछू बखाना।
बहुत मोल के बसत्रानि मांहि। बाधैं ईट पीठ धरि जाहि ॥ ३४ ॥
लोक लाज कुल रीति महाना। खान पान आदिक तजि ग्याना।
बापी कार बिखै रहि लागा। सभि सुधि भूलि प्रेम रस पागा ॥ ३५ ॥
किह सों कहै न सुनि है बात। सेवा के ततपर दिन रात।
गुर सेवा को तप असु कीना। जग बिवहार छोरि सभि दीना ॥ ३६ ॥
होति भयो उतशाहु बिसाला। अंतर ब्रिति टिकगी तिसि काला।
प्रेम प्रवाह बह्यो उर मांही। चिंत कशट छिण ठहिर्यो नांही ॥ ३७ ॥
ज्यों ज्यों सुख प्रापति भा उर को। त्यों त्यों सेव प्रेम भा गुर कों।
मन महिं मूरति अचल टिकाई। कबहूं वहिर पिखहि गुर ताईं ॥ ३८ ॥
निस दिन ध्यान टिकायो कैसे। जोगी की समाधि हुइ जैसे।
अतिशै खेंच प्रेम जबि कीनि। रह्यो गयो नहि गुरू प्रबीनि ॥ ३९ ॥
दासन के बसि बिरद संभारा। वसी प्रेम ते निकट हकारा।
मुसकाने गुर बाक बखाना। गंगों शाहु आउ दुख हाना ॥ ४० ॥
पद पंकज पर सिर निज धर्यो। बहुर जोरि कर आगै खर्यो।
माया मगन विमुख मैं भयो। अपनो जानि बखश करि लयो ॥ ४१ ॥
पद अरबिंद बिखै मुझ राखहु। सेवक आड़-बचन मुख भाखहु।
सुनि सतिगुर करुना रस ठरे। ततछिन महिं निहाल तिस करे ॥ ४२ ॥

1. झाड़ू। 2. काम।

बसत्र बिसद पहिराइ नवीन। मसतक पर निज कर धरि दीन।
सत्यनाम मुख मंत्र कहायो। 'गंगुशाहु' कहि नाम बुलायो ॥ ४३ ॥
भुगति मुकति निध सिधि तुहि दीनी। ग्रहि को गमनो आग्या कीनी।
अपनी संगति कीजहि जाइ। गुर सिक्खी की रीति चलाइ ॥ ४४ ॥
अज्मत जुति करि कै सु पठायो। पाइ बखश पुन सीस निवायो।
बिदा होइ करि सदन सिधारा। ध्यान रिदे सतिगुर को धारा ॥ ४५ ॥
बहु प्रकार की उसतति करि कै। भयो निहाल सु अज़मत धरि कै।
जाइ सदन महिं संगति कीनि। सतिगुर नाम जपावन दीनि ॥ ४६ ॥
जिस को बचन कहै फुर जाइ। होवति भए सिक्ख समुदाइ।
अबि लग तिस के जाने जाइं। कवि संतोखसिंह पूरन ध्याइ ॥ ४७ ॥

॥ इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रिथम रासे 'गंगो प्रसंग' बरननं नाम चतुर पंचासती अंशु ॥ ५४ ॥

अंशु ५५

पतिव्रता माई को प्रसंग

दोहरा

कार होति निति बापिका करहिं प्रेम सों दास।
क्रिपा द्रिशटि जिस को पिखित तिस के ग्यान प्रकाश ॥ १ ॥

चौपई

ल्याइं ईटका करदम[1] करिकै। चूना प्रिथम सु नीक सु धरि कै।
पीसहिं चाकी महिं करि प्रेम। सिर धरि करि गमनहिं हित छेम। २ ॥
किस को किम कोई नहिं कहै। आपे करन सेव शुभ चहैं।
इक आवहिं इकले ले जाहिं। कारीगर के ढिग पहुंचाहिं ॥ ३ ॥
ज्यों ज्यों करहिं प्रीत सों सेवा। त्यों त्यों लखि सभि को गुरदेवा।
पूरहिं मनो कामना तिन की। ब्यापक जोति सभिनि महिं जिनकी ॥ ४ ॥
एक सिक्ख काबल महिं रहै। प्रतीब्रता इसत्री जिस अहै।
पति महीं प्रेम जामनी दिन मैं। फुरहि न अपर पुरष को मन मैं ॥ ५ ॥
तिह सिख ने सिक्खी सु द्रिड़ाई। अपनि भारजा को सुखदाई।
पतिब्रति ते तिह शकति बिसाला। जहिं चाहै पहुंचै ततकाला ॥ ६ ॥
कोस हजारहुं घटिका मांही। पहुंचति देर लगहि जिस नांही।
इत्यादिक शकती कहु धारति। सदा प्रेम पति सों प्रतिपारति[2] ॥ ७ ॥
कार बापिका की तिन जानी। त्यार करावति गुर गुन खानी।
फल बिसाल लघु सेवा कीने। कौन तजहि अस जिन मन चीने ॥ ८ ॥
सो सिखनी काबल ते आवै। प्राति होति गुर सेव कमावै।
सगरे दिवस टहिल को करिही। खनते[3] कारि सु बहिर निकरिही ॥ ९ ॥
चूंना ईंट देति पहुंचाइ। धरे प्रेम बहु चौंप बधाइ।
किह सों करहिं बोलबो नांही। सतिगुर चरन धरहि उर मांही ॥ १० ॥
परहि निसा हुई अंतरध्यान। निज घर काबल करहि पयान।
खान पान सभी कुटंब समेत। करि सुपतहि सो अपन निकेत[4] ॥ ११ ।
होति प्राति पुन आइ अचानक। करहि सेव सिमरहि श्री नानक।
देखति सिक्ख अचंभै रहैं। तिस इसत्री को भेव न लहैं ॥ १२ ॥

---

1. गारा। 2. पालती है, करती है। 3. खोद कर। 4. घर।

सेवा करती हाथ पसारहि। पलना को झूलवाना धारहि।
बहुर कार को करहि बनाइ। पुन घटिका महिं देति झुलाइ[1] ॥ १३ ॥
कहिं ते आवै जाइ हमेश। नहिं जानहिं सभि बिसम विशेष।
दूजे हाथ पसारति हेरहिं। लखहिं न गति आचरज बडेरहिं ॥ १४ ॥
बूझ न सकहिं प्रेम सों सेवहि। करहि कार को लखहिं न भेवहिं।
आपस महिं चरचा बहु करहिं। किसहूं को कुछ समझ न परहि ॥ १५ ॥
अंतर ब्रिति इकागर सुरति। कार करन महिं धरती फुरति।
नित प्रति सेवा महिं हितवाने। बिन आलस उद्‌दम[2] बहु ठाने ॥ १६ ॥
बहुत दिवस इस भांति बिताए। अचरज महि निति सिख समुदाए।
मिलि सगरे सतिगुर पहि गए। बिसमति मति सों बूझति भए ॥ १७ ॥
हे प्रभु जी! आवति इक माई। मिलति सभिनि महिं कार कमाई।
जामहिं महिं अलोप हुइ जाइ। सभि के देखति दिखति न काइ ॥ १८ ॥
प्राति होति प्रगटति पुन तैसे। करति कार सभि सिक्खन जैसे।
इक इचरज पुन करति सु और। कार करति बैठति जिस ठौर ॥ १९ ॥
हाथ पसार संकोचति फेर। जान्यो जाइ न हारे हेरि।
बहुत दिवस के देखति रहैं। आज बूझवो तुम सो चहैं ॥ २० ॥
को है इहु, किह पुरि घर बसै। किमि पहुंचहि, अरु किमि नहिं दिसै।
करुना करहु ब्रितंत बतावहु। सभि सिख्यन मन भरम मिटावहु ॥ २१ ॥
सुनि श्री अमर दास तिन संग। कर्यो सुनावनि सरब प्रसंग।
काबल महिं इक सिख है मेरो। तिस की इहु त्रिय प्रेम घनेरो ॥ २२ ॥
पतीब्रता बड भागनि भली। गुर सेवा के ततपर ढुली।
पति को परमेश्वर करि जानै। आइसु तिस की सिर पर ठानै ॥ २३ ॥
नहिं पर पुरष फुरै मन मांही। सदा प्रेम निज पति के मांही।
रिद महिं ध्यान गुरू को धारति। बाहर किस को नांहि उचारति ॥ २४ ॥
तिह सिख न गुर सेव बताई। पति सेवति इन शकती पाई।
निज इच्छा गामनि भी ऐसे। सिद्धां युत होवति सिध जैसे ॥ २५ ॥
आइ प्राति को सेव कमावै। होति संझ[3] काबल घर जावै।
सुत को पलना पर पौढावहि[4]। निज शकती कर तिसहि झुलावहि ॥ २६ ॥
काबल ते जबि चलिबे लागहि। पलने पर निज सुत को त्यागहि।
वापी कार करहि तिसु जानहि। हाथ पसार झुलावन ठानहि ॥ २७ ॥

1. शीघ्रता करती है। 2. परिश्रम। 3. संध्या। 4. लेटा देती है।

करती कार पसारहि कर को। शकति समेत झुलावन करि को।
इस थल ते निज पुत्र लडावै। सहत प्रेम के कार कमावै ॥ २८ ॥
निस महिं घर को जाइ संभारै। सुत पति सों मिलि आनंद धारै।
पति ब्रति सम नहिं धरम और त्रिय। जिस ते महां शकति धारति हिय ॥ २९ ॥
पति बरता पूरब भी दारा। जिनि कीनसि दस दिन अंध्यारा।
सूरज उदै होन नहिं दयो। शकति महां बल एतिक थयो ॥ ३० ॥
सुनि संगति ने बूझी कथा। श्री गुर भनहु प्रथम भई जथा।
सुनि श्री अमरदास तबि कह्यो। इक मुनि मांडव तपु करि रह्यो ॥ ३१ ॥
तसकर न्रिप की करी सतेई। चले जाति रिखि देखहिं तेई।
एक हार बहु मोल हुतो जिह। रिखि को जानि अरप दीनसि तिह ॥ ३२ ॥
तसकर गए आपने सदन। बैठ्यो मुनी समाधहि मगन।
इतने महिं न्रिप के भट आए। देखि हार मुनि गह्यो उठाए ॥ ३३ ॥
कहि बहु रह्यो न मानी काहू। तसकर लखि सूलि दिय ताहूं।
तप के बल करि मर्यो न सोऊ। धरम राइ सों क्रुधति होऊ ॥ ३४ ॥
इह अन्याइ कर्यो मतमंद। तुझ को दैहौं स्राप बिलंद।
सगरी आरबला तप तापो। बिन अध सूली मोहि चढ़ायो ॥ ३५ ॥
जम तबि आइ मुनी सो कह्यो। पूरब करम केर फल लह्यो।
आरबला बालक महिं धरी। सूल संग भ्रिड बेधन करी ॥ ३६ ॥
तिस ते सूली ताको होई। सुनि मुनि बोल्यो—न्याइ न कोई।
बालक बय[1] सुधि बिनु जबि रहै। करिह करम, किम तिह फल लहै ॥ ३७ ॥
करहु म्रिजाद आज ते ऐसी। धरमराइ ! मैं भाखों जैसी।
बालक बय होइ न सुधि मांही। करहि करम फल पाइ सु नांही ॥ ३८ ॥
मुनि मांडव सूली पर रह्यो। इक्क पतिब्रता ताहि न लह्यो।
पिंगलपति को सीस उठाए। चलत्यो सूली संग लगाए ॥ ३९ ॥
हुतो तिमर नहिं देख्यो गयो। हलि करि मुनि देख्यो रिस भयो।
दियो स्राप रवि उदयति साथ। मरहि उठायो जो निज नाथ ॥ ४० ॥
सुनि प्रतिब्रता बहु दुख पावा। बिन जाने मैं तोहि छुवावा।
होइ प्राति, पति मम मरि जाइ। यांते नहि सूरज निकसाइ ॥ ४१ ॥
जो मेरो पति मर्यो जिवावै। मारतंड को सो उदतावै।
इमि प्रतिब्रता ने जबि कह्यो। उद्यो न रवि तम दहि दिश रह्यो ॥ ४२ ॥

1. बाल्यावस्था।

दस दिन बीत गए इस भांती। सगरो जगत भयो बिकुलाती।
सरब सुरनि तबि कीनि उपाइ। तिसिको पति मिलि दयो जिवाइ ॥ ४३ ॥
इमि पतिब्रता बिखै बहु बल है। धरे शकति गमनै सभि थल है।
यांते काबल ते चलि आई। इक पतिब्रति, पुन सेव कमाई ॥ ४४ ॥
सतिगुर ध्यान धरहि दिन रैन। भई अधिक शकती गन ऐन[1]।
ग्रिहसति बिखै जे भगति करंते। गुर सेवहि प्रभु को सिमरंते ॥ ४५ ॥
तिन समान दूसर नहिं होइ। सुनि गुर ते हरखे सभि कोइ।
धंन धंन तुम प्रभू क्रिपालू। दाता शकती ब्रिदं बिसालू ॥ ४६ ॥
पुन सो माई निकटि हकारी। करि निहाल सु गिरा उचारी।
आतम ग्यान दंपती पावहु। अंत समै मुझ सों मिल जावहु ॥ ४७ ॥
इमि प्रसंग तिस माई केरा। कर्यो उधार परम सुख हेरा।
सतिगुर सकल शकति को दाता। सिख संगति सभिहिनि मन जाता ॥ ४८ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रथे प्रथम रासे 'पतिब्रता माई को प्रसंग' बरननं नाम पंच पंचासती अंशु ॥ ५५ ॥

---

1. सारी शक्तियों का घर।

अंशु ५६

सिख्यन सतिगुर बूझन प्रसंग

दोहरा

श्री सतिगुर उपकार हित तीरथ रच्यो बिसाल।
करी टहिल जिनि प्रेम धरि सो सभि करे निहाल॥ १॥

चौपाई

सतिगुर पौर मुकति को द्वारा। धरि प्रतीत इमि ठानति कारा।
राख्यो खोल मुकति भंडारू। ज्यों ज्यों बखशति होति उदारू॥ २॥
श्री गुर अमर कि देव तरोवर। बड प्रताप बिसतार बरोवर[1]।
आल बाल सति संगति सोहै। शुभ गुन गन दल संकुल सोहै॥ ३॥
बिशियन ते बिराग जिस छाया। ब्रहम ग्यानी देवन को भाया।
श्री सतिगुर पग पंकज सेवा। इही बीज उपजनि शुभ भेवा॥ ४॥
भगती तुचा करति द्रिड राखा। जहिं कहिं सिक्खी दीरघ साखा।
सत्तासत बिबेक शुभ सुमनस[2]। चाहति रहति भगति गन सुमनस[3]॥ ५॥
जाचक सिख्य अनेक जिआवति। मनोकामना ततछिन पावति।
जिन के बडे भाग जग जागे। सो गुर सुर तरुवरु अनुरागे॥ ६॥
कोश अतोट देति निति रहैं। दोनहु हाथन बांटति अहैं।
जगति बिदति अज़मति के दाता। भुगति मुकति ले जिनहु पछाता॥ ७॥
अधिक क्रिपाल न दुख दिख सक्कई। संसै नाशै जिस दिश तक्कई।
कौन कौन गुन बरनन करौं। सुजस बिसाल बुधि लघु धरौं॥ ८॥
बनहि बंदना पद अरबिंदा। बंस प्रकाशक चंद मनिंदा।
धरि प्रतीति जे कार कमावें। भुगति रु मुकति मजूरी पावें॥ ९॥
अस सतिगुर जिन सेव्यो नांहि। जनम बाद तिन को जग मांहि।
एक पलक मैं करहिं निहाल। काटे जनम को काटहिं काल॥ १०॥
अलप सेव ते परम प्रसंन। करति सुरनि ते भी बड धंन।
हम ते होवहिं सिख पशचाती। तिन की प्रीति अगाऊ जाती[4]॥ ११॥

---

1. समान। 2. अच्छे फूल। 3. अपने मन में सारे भक्त चाहते रहते हैं।
4. जान ली।

प्रापत हुइ कल्यान महांन। तिन हित बापी रची सुजान।
चहुं जुग महिं गुर सम उपकारी। सुन्यो नहीं नंहि किनहुं उचारी ॥ १२ ॥
अस गुर को सिमरहिं जे नांही। तिन सम तोटा नंहि जग मांही।
करहिं बापिका टहिल बिसाला। धरहिं चौंप चित जे सिख जाला ॥ १३ ॥
बहुत नरन की हुइ निति भीर। देग बिखै अचि भोजन नीर।
पाक सिद्ध सिक्ख बहुते करें। अन्न अनेक आनि करि धरें ॥ १४ ॥
प्राित हेत[1] निस राखहिं नांही। लेहिं तितक जेतिक नर खांही।
भोजन होहि हज़ारन केरा। देहिं सभिनि पर आप न हेरा ॥ १५ ॥
प्रिथम सतिगुरू पंकति लाइ। लवन बिहीन ओगरा खाइं।
संगति को अहार सभि भांति। स्वाद सरस हुइ पहति रु भाति ॥ १६ ॥
अपर सलवण अनेक प्रकारा। गोधुम चून पकाइं अहारा।
सुदर मधुर बनावहिं किती। आइ जाइ नर खाइसि जितो ॥ १७ ॥
बरतन लगहि दिवस मध्यान। निसा जाम लग ले को आमि।
कोइ न अटकावहि तहिं जाते। त्रिपति होहिं नर ले सभि खाते ॥ १८ ॥
नित प्रति सतिगुर देग चलावें। होहि छुधातुर सभि को खावै।
कार करहिं वापी नर जेई। इक पंकति करि अचवहिं तेई ॥ १९ ॥
जुग तनिया श्री गुर के हुती। बडि भागा भगतनि शुभ मती।
इक को पति रामा तिस नामा। रामदास दूसर अभिरामा ॥ २० ॥
सतिगुर बिखै भावना भारी। सेवा करहिं अनेक प्रकारी।
कार बापिका की मिलि दोऊ। करति आप करिवावति सोऊ ॥ २१ ॥
रामदास जी संझ सवेर। करहिं टोकरे इक थल हेर।
करि कै कार अपर हटि जाइं। कही आदि सभि करि इक थाइं ॥ २२ ॥
धरहिं संभारि सकल पशचाती। आनि देति जबि होवति प्राती।
कारीगर निज साधन सारे। तिसी रीति तिन को संभारे ॥ २३ ॥
अति प्रतीत अति प्रीत धरंता। श्री सतिगुर की सेव करंता।
तैसे रामा दूसर जोइ। कार बापिका लाग्यो सोइ ॥ २४ ॥
करहि आप अरु कहि करिवावै। सेवा लग्यो नहीं अलसावै।
दोनहु पर सतिगुर हित करें। अपने भगति जानि उर धरें ॥ २५ ॥
तिन दोनों कहु देखति सारे। करहिं परसपर बाद उचारे।
को इक सिख इमि कहै बनाइ। रामे पर गुर हित अधिकाइ ॥ २६ ॥

1. प्रातः के लिये।

निज गादी पर देहिं बिठाई। रामा लेहि जगत गुरिआई।
निस दिनु आइसु बिखै चलंता। करति सेव को नहिं अलसंता[1] ॥ २७ ॥
केतिक कहैं सिक्ख पिख तौर। रामदास पावहि गुर ठौर।
इन पर गुर की खुशी घनेरी[2]। रिदै गरीबी नित बहुतेरी ॥ २८ ॥
आपा कबहु जनावहिं नांही। निस दिन हित अति सेवा मांही।
इमि दिश दिखि गुर उर हरखंते। सेवा के बसि विरद धरंते ॥ २९ ॥
इमि आपस महिं बादति रहिहीं[3]। दोनहु दिश के हित की कहिहीं।
तऊ बहुत जे सिक्ख महांने। सतिगुर भेद रिदे को जाने ॥ ३० ॥
देखि गरीबी प्रीति सुभाऊ। करन प्रतीति, धरति उर भाऊ।
धीरज, खिमां आदि गुण सारे। जिनि ते गुर प्रसन्नता धारे ॥ ३१ ॥
सो लखि रामदास महिं आछे। कहैं बहुतु 'हुइ इहु गुर पाछे।
अर प्रसन्नता गुर की देखैं। इन पर सद ही होति विशेखैं ॥ ३२ ॥
अस अनुमान करति सिख ब्रिंदहिं। धारति रिदे संदेह बिलंदहि।
इक दिन सतिगुर के सभि तीर। दरशन करति भई सिख भीर ॥ ३३ ॥
हुते मुख्य केचित तिन मांहू। सो बोले श्री सतिगुर पाहू।
हाथ जोरि करि बिनती ठानी। सरबग आप सदा गुन खानी ॥ ३४ ॥
किह सों नही सनेह तुमारा। केवल सेवक बसि अनुसारा।
श्री नानक तजि सुत गुन खानी। दास बिठायहु अपनि सथानी ॥ ३५ ॥
तिमि श्री अंगद बसि ह्वै सेवा। तुमहि विठायहु जग गुरदेवा।
निज अनुसारि पुत्र नहिं जाने। अजर जरन गुन हीन पछाने ॥ ३६ ॥
तिमि सुभाव रावर को जान्यो। दासन के बसि इहु प्रन ठान्यो।
साक आप के दोनहु जेई। सेवक भी बिसाल हैं तेई ॥ ३७ ॥
दोनहु सेवा करहिं बिसाला। घालहिं घाल जाल सभि काला।
गुर संगति की सेवा ठानहिं। बापी कार करति हित मानहिं ॥ ३८ ॥
सभि बिधि सों समान हैं तुम को। तउ होति संसै सभि हम को।
सतिगुर पूरन सरब समान। एक द्रिशटि सभि पर ब्रहम ग्यान ॥ ३९ ॥
बादहिं आपस महिं हम ऐसे। दोनों दीखति हैं इक जैसे।
क्रिपा द्रिशटि तुम धारन करो। इक सम दीनहु सों हित धरो ॥ ४० ॥
तउ देखीयति कबि कबि ऐसे। रामदास पर हुइ बहु जैसे।
सो भी सेवा करहि घनेरी। निस दिन लाग्यो रहति बिन बेरी ॥ ४१ ॥

---

1. आलस्य नहीं करता। 2. बहुत। 3. कहते रहते हैं।

होवहि इन महिं कवन बिसाला। को करि है निज बंस उजाला।
तारतंमता प्रेम मझारे। किमि जानहिं सिख सेवक सारे ॥ ४२ ॥
कहे आप के लेहिं पछानू। सिख बादहिं हुइ संसै हानू।
क्रिपा करहु चाहति सभि पूछा। सुनि रावरि ते बाकनि सूछा[1] ॥ ४३ ॥
सुनि सिक्खन ते सतिगुर तबै। अरु मन की जानति भे सबै।
उत्तर देनि उदिति गुर भए। जिन बहु दासन को सुख दए ॥ ४४ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रथे प्रथम रासे 'सिख्यन सतिगुर बूझन' प्रसंग बरननं नाम खशट पंचासती अंशु ॥ ५६ ॥

---

1. पवित्र वाक्य।

अंशु ५७
प्रेम परखन प्रसंग

दोहरा

सुनि सिक्खन के बचन को संसै सुन्यो बिसाल।
क्रिपा द्रिशटि ते देखि करि बोले गुरू क्रिपाल।। १ ।।

चौपाई

जग के बिखै एक नर नेमी। नेम निबाहति चाहति छेमी[1]।
इक प्रेमी नर नेम बिहीना। रैनि दिवस एकै लिवलीना ।। २ ।।
प्रेम प्रवाह वधै निति जिन के। वसी होति पुरषोतम तिनके।
बिना प्रेम सिमरन अरु सेवा। फल कुछ थोरो हुइ लखि एवा ।। ३ ।।
इन दोनहु महिं परखहु प्रेम। तारतंम जिम तिप लहि छैम।
प्रभु बसि होति प्रेम लखि घनो। अंग संग रहि नित हित सनो[2] ।। ४ ।।
परखे जाइं न जे तुम पासी। जिस के रिदे प्रेम अबिनाशी।
तौ हम परख देहि तुम ताईं। राखहु गोप न कहहु कदाई[3] ।। ५ ।।
सिक्खन के संदेह बिनाशन। निज पाछे थापन सिंहासन।
परखन हित श्री सतिगुर पूरे। जुगल हकारन करे हदूरे ।। ६ ।।
रामा रामदास तबि आए। पास बापिका गुरू सिधाए।
लए लशटका हाथ मझारी। ब्रिध अवसथा तन महिं भारी ।। ७ ।।
खरे होइ अवलोक्यो थांन। रामे सों तबि कीन बखान।
'इहा हमारे बैठनि कारनि। रुचिर बेदका करो सुधारनि ।। ८ ।।
इमि कहि सतिगुर करी लकीर। 'इस बिधि चिनवावहु थल थीर[4]।
बहुरो दिशा दूसरी गए। तहिं सयान पिखि ठांढे भए। ९ ।।
रामदास की दिशा निहारा। करन कार को गुरू उचारा।
इस दिश बैठन हेत हमारे। घडी बनावहु रुचिर प्रकारे ।। १० ।।
करि लकीर को तिसहि बतायहु। 'इस बिधि कहि करि तुम चिनवायहु।
इस पर बैठहिं प्राताकाल। तिस पर संध्या हुइ सुख नाल ।। ११ ।।

---

1. क्षेम, मुक्ति। 2. प्रेम युक्त 3. गुप्त नहीं रखेंगे, कभी कह देंगे। 4. बैठने का स्थान।

इमि बताइ श्री सतिगुर गए। तिस थल दोनहु थिरता लए।
प्रिथक प्रिथक थल बैठनि केरा। लगे करावनि को तिस[1] बेरा ॥ १२ ॥
दिन सगरे महिं कार कराए। संध्या भई गुरू तबि आए।
करी जु रामे पूरब हेरी। परखन हित बोले तिस बेरी ॥ १३ ॥
इह तो नीकी नहीं बनाई। बैठन हेत न हम कहु भाई।
कर्यो खेद सभि निशफल गयो। टेढी कंध उसारति भयो ॥ १४ ॥
ढाहि देहु नहिं देरि करीजहि। हमरो कह्यो नीक[2] सुनि लीजहि।
इति दिश सूधी भीत चिनावहु। बहुर बेदका भले बनावहु ॥ १५ ॥
सुनि रामे मन भंग बन्यो है[3]। निज मत आछी जानि भन्यो है।
जिम तुम कह्यो तथा बनवाई। को कारन भा रिदै न भाई ॥ १६ ॥
सुंदर बनी बैठिबे लाइक। समुख खरे दरसहि जहिं पाइक'
मेरो दोष न या महिं कोई। आप कही जिमि तथा सु होई ॥ १७ ॥
कीनि जतन मैं भले सुधारी। जिमि रावर ने रीति उचारी।
इमि रामा कहि रह्यो घनेरा। श्री गुर ढहिवाई तिस बेरा ॥ १८ ॥
निज करि छरी लकीर निकारी। कह्यो 'करहु इस रीति सुधारी।
तहिं ते चलि दूसर दिश गए। रामदास ढिग ठांढे भए ॥ १९ ॥
पद अरबिंद बंदना करिकै। खरो रह्यो निज ग्रीव निहुरि कैं।
श्री गुर अमरदास पिखि कह्यो। 'हमरो आशय तैं नहिं लह्यो ॥ २० ॥
जथा बताई तथा न करी। वक्र भीत[4] रची कीनस थरी।
भई न बैठनि उचित हमारे। इस कारन ते करहु बिदारे ॥ २१ ॥
गुर ते सुनि शंकति मन ह्वै कै। तातकाल निज हाथ गिरै कैं।
नंम्रि होइ बूझी बिधि फेरी। बख़शहु अबै अवग्या मेरी ॥ २२ ॥
मैं मतिहीन सक्यो नहिं जानि। बहुरि बतावहु क्रिपा निधान।
तबि सतिगुर ने कीनि लकीर। अपर बताई सभि ततबीर ॥ २३ ॥
करहु चिनावन दोनहु फेरे। इमि कहि श्री गुर गमने डेरे।
निसा बिते उठि करि भुनिसार। लगे करावन दोनहु कार ॥ २४ ॥
जिमि कीनहु सतिगुर फुरमावनि। तिमि सुचेत ह्वै लागि बनावनि।
भली रीति सों जुगल सुधारी। पंक ईटका सुंदर सारी ॥ २५ ॥
श्री गुर जान्यो सायंकाल। चले बावली दिशा क्रिपाल।
प्रिथम जहां रामे ने करी। आनि बिलोकन कीनसि थरी ॥ २६ ॥

1. तब। 2. अच्छी तरह। दिल टूट गया 4. टेढ़ी दीवार।

कह्यो तांहि 'इह करी न आछी। तथा बनी न जथा हम बांछी[1]।
करहु बिदारन फेर बनावहु। बिन मति ते श्रम बाद करावहु ।। २७ ।।
सुनि रामे निज रिदे बिचारा। मैं नीके थल थरी सुधारा।
कहनि लग्यो 'मैं तथा बनाई। जिस बिधि तुमने दीनि बताई ।। २८ ।।
बनी रुचिर बैठिबि के जोग। देखति करहिं सराहिन लोग।
मैं कैसे करि देहुं ढहाई। इस ते आछी क्या बनि जाई ।। २९ ।।
तबि सतिगुर न दई ढहाई। करी कार पुन भले बताई।
'इस प्रकार कीजहि शुभ थरी। सुरत संभारहु उर मति धरी ।। ३० ।।
रामदास की दिश चल गए। हेरि थरी को उचरति भए।
'इह तैं नीकी नहीं बनाई। बैठिबि कारन हमहु न भाई ।। ३१ ।।
करहु बिदारन राखहु नांहि। कह्यो न लख्यो तुमहुं मन मांहि।
सुनि सतिगुर के बाकन श्रौन। ढाहन करी धरे मुख मौन ।। ३२ ।।
उर भै धरि कै बोल्यो फेर। तुमरी मती अगाधि बडेर।
हम मतिमंद सकहिं नहिं जानि। तऊ क्रिपा तुम करहु महांन ।। ३३ ।।
बिसरि जाति हमरी मति थोरी। बखशहु खता आप अबि मोरी।
जिस प्रकार की देहु बताइ। हित रावर के अबहि बनाइ ।। ३४ ।।
सुनि सतिगुर ने करी लकीर। इस बिधि करहु थरी धरि धीर।
इमि दोनहु कउ फेर बताइ। मंद मंद गमने निज थाइं ।। ३५ ।।
भई प्रभाति आइ पुन दोऊ। लगे बनावन थल पिखि सोऊ।
नीकी रीति सुधारनि करे। पंक ईटका पंकति जरे ।। ३६ ।।
दिन सगरे महि लई बनाइ। दोनहु दिश बुधि करि अधिकाइ।
पुन आए गुर तीसर बारी। लखि न सकहि को महिमा भारी ।। ३७ ।।
उर गंभीर धीर के धरिता। सभिहिनि ते उत्तम जिनि चरिता।
प्रथमै रामे की दिश आए। खरे थरी दिश द्रिशटि लगाए ।। ३८ ।।
कह्यो बाक 'भो रामे! तोहि। कर्यो नही जिमि भाख्यो मोहि।
नहिं पसंद इहु आइ हमारे। जिमि चाहति तिमि नहीं सुधारे ।। ३९ ।।
बहुत बार समझावनि कर्यो। थरी काज करिबो नहिं सर्यो।
सुनि रामा चितवति चित मांही। इह कारन क्या लखीयति नांही ।। ४० ।।
करति बिचार सुनिशचै ठाना। इन को बहु सरीर बिरधाना[2]।
गई आरबल बीत बडेरी। कह्यो न याद रखहिं इस बेरी ।। ४१ ।।

1. जैसी हम ने चाही है। 2. वृद्ध हो गये हैं।

इमि ठटि मन महिं[1] कीन बखान। जिमि तुमने मुहि कहु फुरमान[2]।
करी तथा मैं बुधि बल लाइ। कह करि आछे सुधि बनिवाइ ॥ ४२ ॥
आप कहु जिमि बिसरै फेर[3]। इस महिं दोष अहै क्या मेर[4]।
इमि सुनि सतिगुर तूशन ठानी। अति गंभीर धीर गुन खानी ॥ ४३ ॥
पुन श्री राम दास ढिग गए। हेरि थरी कहु बोलति भए।
इह तें नीकी नहीं बनाई। कई बार बहुमति नहिं आई ॥ ४४ ॥
जिमि कहि गए बनी तिमि नांही। श्रम बाद[5] कीनसि इसि मांही।
सुनि गुर बाक मंद निज जान्यो। भयो नंम्र पाइन लपटान्यो ॥ ४५ ॥
हौं अजान नित भूलन हारो। तुम क्रिपाल निज बिरद संभारो।
बार बार बखशति हो मोही। अपराधी अर मूरख को ही ॥ ४६ ॥
जेतिक सुमति देति सो जानव। बिना दिये क्या बपुरा मानव।
रावर करुना करहु बतावउ। नीकी रीति भाखि समझावउ ॥ ४७ ॥
मैं मतिमंद अभाग बिचारा। जानि सक्यो नहिं कह्यो तुमारा।
इमि कहि गर महिं अंचर डारा। छिमहु प्रभू अपराध हमारा ॥ ४८ ॥
सिख समीप सभि ही सुनि करिकै। हरखे सिक्खी रीति बिचरिकै।
परम प्रसन्न भए गुर पूरे। गुरता उचित लखे गुन रूरे ॥ ४९ ॥
सभिनि सुनावति बाक अलावहिं। 'इसकी सेवा मो मन भावहि।
आपा कबहुं न करहिं जनावनि। निस दिन प्रेम भगति महि पावनि ॥ ५० ॥
सुनि सभि सिख्यन संसै खोवा। गुरता उचित भले इह जोवा[6]।
बाकन ते पछान करि लीने। आपा जुति अरु आपा हीने ॥ ५१ ॥
सतिगुर निज सथान कहु आए। सिक्ख संग जे तिनहु सुनाए।
रामदास है पुरख मंहाने। इस के संग तरहिं नर जाने ॥ ५२ ॥
ब्रिदंन को करता कल्यानि। बसी कर्यो मुझ सेवा ठानि।
तिस ते नहिं अदेय कुछ मोरे। सभिहिनि ते पद प्रापति गौरे ॥ ५३ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रिथम रासे 'प्रेम परखण' प्रसंग बरननं नाम सपत पंचासती अंशु ॥ ५७ ॥

---

1. मन में ऐसा विचार करके। 2. मुझे आदेश दिया था। 3. भूल जाते हैं। 4. मेरा। 5. व्यर्थ। 6. देखा।

अंशु ५८

बावली पूरन प्रसंग

दोहरा

भगति खज़ाना खुलि रह्यो सतिगुर के दरबार।
चार पदारथ संगतिहिं देति लगति नहिं बार॥ १॥

चौपई

तीरथ परम रच्यो बड पुंन्य। सेवति भए पुरख सो धंन्य।
महां महातम है जिस केरा। जिस मज्जै फल लहै घनेरा॥ २॥
सुंदर सीतल निरमल खरो। अति गंभीर नीर जिह भरो।
दक्खण दिश महिं झरना बह्यो। सुरसरि को प्रवाह तहिं लह्यो॥ ३॥
रची चुरासी जिह सौपान[1]। गिनि जबि देखी क्रिपा निधान।
मुख ते बाक कह्यो तिसि काल। जो सिख दरसहि प्रेम बिसाल॥ ४॥
बारि चुरासी करहि शनान। इतने जपु जी पाठ बखानि।
सतिगुर मूरति करिकै ध्यान। मिटहि चुरासी आवनि जानि॥ ५॥
ज्यों क्यों पाइ भगति गुर केरी। मिटहि जून तिह भ्रमन कुफेरी।
अपर मनोरथ धरि करि न्हावै। शरधा धरै तुरत सो पावै॥ ६॥
अनिक अघन की नाशनि हारी। भई वापिका निरमल बारी[2]।
गुर सिख्यन हरखावन वारी[3]। जल पीए निरमल उरकारी[4]॥ ७॥
करहिं शनान दान जो देवैं। गुरबानि पढि करि सुख लेवैं।
तिन को फल होवै अबिनाशी। करहिं बिनाशन जम की फासी॥ ८॥
इस बिधि अधिक महातम ताहि। श्री गुर अमरदास मुख प्राहि[5]।
करहिं आप इशनान सु नीर। होइ बहुत सिख्यन की भीर॥ ९॥
करहिं चौंप सों मज्जन सारे। बहुर सराहहिं सुजस पसारे।
धंन्य गुरू कीनसि उपकारा। शरन परहि तार्यो गन भारा॥ १०॥
इक लुहार तहिं कार करति है। काठनि की पौरी सु घरति है।
अपर काज जो होहि सु करिही। काशट लोहा निजकर घरिही॥ ११॥

1. सीढ़ियाँ। 2. जल। 3. प्रसन्न करने वाली। 4. मन को शुद्ध करने वाली।
5. कहा।

जल के निकट सपत सोपान। लाइ काठ तिन रची महान।
जिसते जल सुखेन ही लेय। न्हान पान जो चहै करेय ॥ १२ ॥
तिसकी क्रिति हेरि गुर पूरे। सुप्रसन्न बुलवाइ हदूरे।
सुनि आइसु को ततछिन आवा। बड भागी चरनन सिर लावा ॥ १३ ॥
तिस के मसतक धरि करि हाथ। मंत्र सु सत्तिनाम दिय नाथ।
'संत सधारन' नाम धर्यो तिह। प्रापति रिदै प्रकाश लह्यो जिह ॥ १४ ॥
सेव परी सभि थाइं तुमारी। जाइ रहहु अबि ग्रेह मझारी।
करहु भजन बैठे सुख पावो। लैन दैन को कहूँ न जावो ॥ १५ ॥
हुई निहाल गुर को बच माना। सत्तिनाम निति सिमरनि ठाना।
ग्रिह निज गयो भयो सुखवासी। पायो अनंद बिलंद अनाशी[1] ॥ १६ ॥

दोहरा

तिह गंगा इशनान के संग चल्यो बहु जाति।
तिसी पंथ आवति भए जिस पुरि गुरू रहाति ॥ १७ ॥

चौपई

डेरा कियो आनि कै संग। जो मज्जन को गमनति गंग।
तिस मंहि एक मीत गुर केरा। प्रथम बैस को हुतो बडेरा[2] ॥ १८ ॥
सो मिलिबे हित गुर ढिग आयो। मिलि करि बड लखि सीस झुकायो।
बापी पर बैठे तिसकाल। कुशल प्रशन करि कै हित नाल ॥ १९ ॥
साधू हुतो तिसहि ससुझायो। चलिबे पंथ कशट क्यों पायो।
दूर पंथ पहुंचहु श्रम धारे। तोहि भले हित हे मम प्यारे ॥ २० ॥
बीच बापिका गंगा आनी। उर शरधा धरि होहु शनानी।
नहिं शंका किमि मन महिं जानो। जानि सुरसुरी मज्जन ठानो ॥ २१ ॥
फल जो चहहु निसंसै पावहु। पुन घर गमनहुं हरि गुन गावहु।
बाक गुरू को मानि शनाना। किमि इह सुरसरि शंका ठाना ॥ २२ ॥
बहुर बैठि करि केतिक काला। बिनती कीनसि 'हे प्रभु दयाला।
घर ते चल्यो संग के संग। गंग शनाननि हेतु उमंग ॥ २३ ॥
सभि के साथ पहुंचि हरिद्वार। करि इशनान अवौं इक बार।
कारज पितरन को करि तहां। दरशन हित पुन आवौं इहां ॥ २४ ॥
तिस की लखी सरब गति डोले। श्री गुर अमरदास तबि बोले।
नीकी बात, जाहु हरिद्वार। हम हित ल्यावहु सुरसरि बार[3] ॥ २५ ॥

1. नष्ट न होने वाला। 2. बड़ा। 3. बारि, जल।

इमि आइसु दीनसि तबि गयो। तीर जानवी[1] पहुंचति भयो।
मन भावति करि भले शनान। पितरनि काज करावनि ठानि ॥ २६ ॥

गुरबच सिमर्यो आवनि कालि। लोटा लीनसि हाथ संभालि।
हरिदुआर महिं प्रविश्यो जाई। कर लोटा टुभकी तबि लाई ॥ २७ ॥

गयो हाथ ते छुटि, नहिं पायो। रह्यो खोज नहीं द्रिशटि आयो।
सरब संग के नर चलि परे। पाइ नहीं लोटा बहु फिरे ॥ २८ ॥

मिलि कै संग संग हटि पर्यो[2]। सुरसरि बारिन ल्यावनि कर्यो।
क्रम क्रम पंथ उलंघ्यो सारे। आइ निकट सतिगुरू निहारे ॥ २९ ॥

मसतक टेकि बेनती करी। मो ते क्रित न रावरि सरी।
सुरसरि जल तुम ने मंगवायव। मैं छूछो तिस ते हटि आयव ॥ ३० ॥

लोटा ले पहुंच्यो हरिद्वार। भरनि लग्यो तिस महिं जबि बारि।
छुट्यो हाथ ते बहि करि गयो। खोजि रह्यो नहिं प्रापति भयो ॥ ३१ ॥

परम कुभाग अपन मैं जाना। चलति संग के संग पयाना[3]।
सुनि सतिगुर ने बाक कह्यो तिह। चिंता करहु नहीं को उर महिं ॥ ३२ ॥

लोटा पहुंच्यो निकट हमारे। ल्याइ बेग ते गंगा धारे।
नहिं प्रतीत जे तुव उर मांही। बीच बापिका देखहु तांही ॥ ३३ ॥

दक्खण दिश को श्रोत प्रवाहू। सो सुरसरि को बापी मांहू।
तहिं ते अपना लोटा लीजहि। जल सुरसरि को पान करीजहि ॥ ३४ ॥

सुनि सतिगुर के बाक सुहाए। प्रविश्यो बीच बापिका जाए।
दक्खण दिश देख्यो जल झरना। सीतल सुखद बिमल बर बरना[4] ॥ ३५ ॥

तहिं लोटा निज पर्यो निहारा। पिखि चरित्र बिसमाद बिचारा।
शीघ्र निकस करि पद अरबिंद। पर्यो जाइ गुर पिखि सुखकंद ॥ ३६ ॥

मैं अजान महिमा नहिं जानी। बीच बापिका सुरसरि आनी।
प्रथम तुमारो बाक न मान्यो। बखशहु भूल प्रभू अब जान्यो ॥ ३७ ॥

सुनति क्रिपा करि गुर भगवान। सत्तिनाम को दीनसि दान।
कर्यो निहाल कशट सभि टार्यो। जग सागर ते दुखति उधार्यो ॥ ३८ ॥

बीच वापिका सुरसरि नीर। इमि आन्यो सतिगुरू गहीर।
तीन लोक के तीरथ जेई। स्री गुर चरन बिखे सु तेई ॥ ३९ ॥

---

1. गंगा। 2. साथियों के साथ मिलकर लौट पड़ा। 3. चल पड़ा। 4. उज्जवल, श्रेष्ठ रंग वाला।

सुरसरि ल्यावन बापी मांही। कुछ अचरज इहु जानहुं नांही।
जिमि चाहहिं तिमि करहिं सु तूरन। स्री प्रभु सरब शकति ते पूरन ॥ ४० ॥
करी बापिका निज सिख कारन। जनम जनम के कलुख निवारन।
कथा सुनहिं जे चित को लाइ। सो नर पापन ते छुट जाइं ॥ ४१ ॥
इक दिन श्री सतिगुरू सुहायो। बैंठे हुते सिद्ध इक आयो।
बंदन करि कै गिरा सुनाई। आप लई जबि ते गुरिआई ॥ ४२ ॥
तबि ते मैं शरधा उर धारी। दरशन चहति रह्यो हितकारी।
बडे भाग जागे अबि मेरे। जिस ते आइ आप को हेरे ॥ ४३ ॥
मैं चिरकाल जोग तप कीने। लहि सिद्धि नर करे अधीने।
मन मेरे महिं शांति न होई। मानहिं मोहि जगत सभि कोई ॥ ४४ ॥
सभि गति पिखि मैं रिदे बिचारा। इह सिद्धां लौकिक बिवहारा।
करि करि कशट जोग तप तापति। नहीं अनंद मोहि को प्रापति ॥ ४५ ॥
अबि निज शरन राखि सुख कंद। उपदेशहु जिमि लहहुं अनंद।
चिरंकाल की आसा मेरी। पूरन कीजहि क्रिपा बडेरी ॥ ४६ ॥
अपन भगत जोगी कहु जाना। श्री सतिगुर तिह संग बखाना।
इहु तन तजि कै अपर धरीजै। पुन हम ढिग हुइ आनंद लीजै ॥ ४७ ॥
इमि सतिगुर ते सुनि करि गयो। इच्छा पुरबक तन तजि दयो।
उर धरि करि गुर को अनुरागा। अरु सभि जग ते करि वैरागा ॥ ४८ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'बावली पूरन' प्रसंग बरननं नाम अशट पंचासती अंशु ॥ ५८ ॥

अंशु–५६

श्री अमरदास पौत्रन जनम प्रसंग

दोहरा

सो जोगी धरि बाशना जनम्यो गुर कुल माहि।
ह्वै अनुसारी बाशना प्रगट्यो अपनी चाहि ॥ १ ॥

चौपई

श्री गुर अमरदास के नंद। प्रथम भए द्वै शुभ जनु चंद।
भयो बडो मोहन तिस नाम। परम विरागवान निशकाम ॥ २ ॥
ग्यानानंद महिं सदा बिलासहि। उर बिकार को लेश न तासहि।
वड अवधूत इकाकी रहै। किह ते सुनै न मुख ते कहै ॥ ३ ॥
मौन धरे मन थिरता गहै। शुभ गुन गन को मंदर अहै।
नहिन प्रबिरती महिं चित जांही। सदा शांति रस स्वाद सु ग्राही ॥ ४ ॥
दुतिय मोहरी महां सुजान। जग बिवहार बिखै बुधिवान।
इस के पुत्र प्रथम निपजयो। नाम अरथमल तिह धरि दयो ॥ ५ ॥
परम भगति गुनि गन अनुरागी। गुरकुल महिं उपज्यो वडभागी।
तिस पीछे सो जोगी आइ। जनम्यो महिद मोद उपजाइ ॥ ६ ॥
जिन तप जोग कर्यो बहु काला। जनम्यो शरधा धरे बिसाला।
पाइ ग्यान को लह्यो अनंद। इहि बाशना भली मुकंद ॥ ७ ॥
गुर अंतरजामी सभि जाना। पौत्र जनम को सुनि करि काना।
बल्लू सों फुरमावन कियो। पुत्र मोहरी के जो भयो ॥ ८ ॥
तिस का आनहुं निकट हमारे। जनम्यो जो अनंद इछ धारे।
सुनति दास गमन्यो तिस थाना। गुर फुरमावनि तिनहुं बखाना ॥ ९ ॥
आइसु मेट सकहि नहिं कोई। तुरत प्रसूत म्रिदुल सिस होई।
तूल सु बसत्र अछादन कर्यो। ले बल्लू निज हाथनि धर्यो ॥ १० ॥
सनै सनै सतिगुर ढिग अन्यो। इहु वड भाग सभिनि मन जान्यो।
प्रभु ने पौत्र लियो निज गोद। सभि प्रवार मैं भयो प्रमोद ॥ ११ ॥
बल्लू सों बोले भगवंत। इह अवतर्यो वडो शुभ संत।
रिद अनंद की इछा जांहू। लीन जनम हमरे कुल गांहू ॥ १२ ॥

इस को नाम अनंद धरीजै। महां पुरख हुइ गुनि सभि लीजै।
हम भी इस को देहिं उपाइन। बानी सुंदर करहिं गुनाइन ॥ १३ ॥
नाम अनंद ताहि को राखहिं। मनुकामन दानि जो भाखहिं।
इमि सतिगुर कहि बल्लू संग। लगे बनावन गिरा उमंग ॥ १४ ॥
पौत्र गोद चित मोद धरंते। बानी को रसना उचरंते।
पौडी करी दोइ कम चाली[1]। निज पौत्रे परिथाइ बिसाली ॥ १५ ॥
पौत्र सु बानी को आनंद। नाम धर्यो गुर भयो अनंद।
पुन बल्लू को दीनसि बालक। ले घर को गमन्यो ततकालक ॥ १६ ॥
तिस माता की दियो सु गोद। देखि पुत्र को महां प्रमोद।
जबि बल्लू गुर के ढिग आयो। मंगल मूल सु बाक सुनायो ॥ १७ ॥
लिहु ढोलक अबि अपने हाथ। चढि कोठे पर बड सुर साथ।
गावहु अनद बजावहु जावहु। हरखवाहु बहु नरनि सुनावहु ॥ १८ ॥
इहु बानी सुंदर गुन भरी। सुनहिं जु पाइ कामना धरी।
निति इस पठन नेम निरबाहे। अलभ न वसतु होति जिह चाहे ॥ १९ ॥
भुकति मुकति की इह फल दाइक। पाइ पदारथ सहिज सुभाइक।
रची हेतु सिख्यन कल्यान। पठहिं सुनहिं सुख लहहिं महांन ॥ २० ॥
सभि कारज की सिद्धी देति। जो इसि धारहि प्रेम समेत।
सभि मंगल के आदि पढीजै। पूरन ह्वै निरबिघन लहीजै ॥ २१ ॥
गुर आइसु ते बल्लूदास। लेकरि ढोलक अपने पास।
कोठे पर चढिकै ततकाला। कीनि बजाबनि धुनि बिसाला ॥ २२ ॥
आठ तीस पौडी सभि गाई। धुनि ऊँची सों नरन सुनाई।
जिन जिन सुन्यो कान महिं तबै। भाउ भगति प्रगटी उर सबै ॥ २३ ॥
अनंद मूल बाणी शुभ करी। भगति विराग ग्यान सों भरी।
चतुरथ पातसाह जबि भए। इक पौडी तिनहूं रचि कए ॥ २४ ॥
इक श्री अरजन तिह संग जोडी। अनंद महातम चालिस पौडी।
अंम्रित समै जु पठहि अनंद। मिलहि गुबिंद मुकंद अनंद ॥ २५ ॥
केतिक चिर पुन बीतति भयो। पौत्रा त्रितिय बहुर निपजयो।
'अरजानी' तिह नाम बखाना। पूरब सतिगुर भगत महाना ॥ २६ ॥
हुतो बिरकत[2] जनमति म्रितु भयो। शोक अधिक जननी ने कयो।
तिन ले करि गुर ढिग पहुंचायो। रुदति देखि करि चरन छुहायो ॥ २७ ॥

---

1. अठतीस। 2. विरक्त।

जीवति भयो देखि सुख पाइ। निज वर ले गमनी हरखाइ।
कितिक काल ग्रिह बिखै बित्यो जबि। बालक म्रितक भयो देखति तबि ॥ २८ ॥
शोकारति जननी गुर पास। रुदति दीन कीनसि अरदास।
लोक हजारन केरि सहाइक। जग गुर हो तुम सहिज सुभाइक ॥ २९ ॥
मो पर क्रिपा आपनी धरीए। पुत्र मर्यो जीवावन करीए।
दीन सनूखा के सुनि बेन। भरे क्रिया सो सुदर नैन ॥ ३० ॥
बालिक पुन ततकाल जिवाइव। अरजानी तिन नाम धराइव।
पौत्रे तीन मोहरी नंद। प्रगट भए जग बिखै बिलंद ॥ ३१ ॥
दिन दिन प्रति हम कुल बिरधै है। इह वर दियो सुनति हरखै है।
भई मोहरी संतति ऐसै। मोहन कथा सुनहुं भी जैसे ॥ ३२ ॥
देहि बुद्धि नहिं, बड अविधूत। पूरन पुरख सतिगुरू सपूत।
बिधि निखेध[1] नहिं शोक न हरखा। अंतर के रस ने मन करखा[2] ॥ ३३ ॥
इक दिन श्री गुर सहिज सुभाइ। पिखि मोहन सिस बाक अलाइ।
आउ पुत्र मोहन मसताने। सहिज सरूप बिखै गलताने ॥ ३४ ॥
तिस दिन ते मोहन लहि ग्यान। देहि बुद्धि अरद्वैती हानि।
अच्छत देहि देहि नहिं जाने। परम आतमा अनंद समाने ॥ ३५ ॥
रहै इकंत कोठरी बैठ्यो। मन इंद्री के सहत इकैठ्यो।
करहि कपाट असंजति दरके[3]। किह सो कहै न सुनहि निकरि के[4] ॥ ३६ ॥
इक दिन रहे कपाट असंजति। वहिर निकसि गमन्यो मनरंजति[5]।
आइसु दे गुर सिक्ख पठाए। अंतर मोहन देहु बिठाए ॥ ३७ ॥
गमने देखति जहि कहि थाइं। भयो अलोप न देख्यो जाइ।
कितिक समें महि कोठे मांहि। प्रगट भए देखहि सभि तांहि ॥ ३८ ॥
अंतर ध्यान होति किह काल। कबहूं प्रगट पिखहिं नर जाल।
सिर ते नगन रहैं कबि बैसे। करति चेशटा उनमति जैसे ॥ ३९ ॥
जोग हाथन सों भोजन खावें। कबहूं मौन कवि ऊच अलावें।
ऐसी दशा देखि तिंस माता। ढिग आई गुर आनंद दाता ॥ ४० ॥
बिनै सहित मन दीन बखाने। 'तुम सु द्रिशटि ते बावर स्याने।
म्रितक भए जीवहि ततकाल। कारज सिद्ध करहु सिख जाल ॥ ४१ ॥
जेठो पुत्र सुमति जुति रावरि। किमि होयहु मोहन इह बावर।
जानति हुते जि इमि मन मांहू। तौ काहे कीनसि इस ब्याहू ॥ ४२ ॥

---

1. निषेध। 2. खींचा 3. द्वार के पट बंद करके। 4. निकल कर। 5. मन प्रसन्न।

बड़ी सनूखा पती बिहीनी। रहति बिसूरति दुख ते दीनी[1]।
मैं ढिग देखों तिस पछुताऊँ। परी लाज बसि कहै न काऊ॥ ४३॥
हरख समेत होति कबि नांही। अपर त्रियन को पिखि सुख मांही।
संतति हीनी परम वियोगन। चहति न बसन विभूखन सोगन[2]॥ ४४॥
तिम दुख ते दुखीआ मन मेरा। परम अनाथ समान जि हेरों।
सुनि श्री अमर प्रसन्न भए हैं। मोहन यहां अनंद रए हैं॥ ४५॥
मोहन मोहन भेद, सु एक। लीन समुंद्र अनंद बिबेक।
गुहज कथा इह किमि नहिं कहै। मोहन सभि बिधि पूरन अहैं॥ ४६॥
कहति सनूखा मोर अनाथ। यांते इमि कहीऐ तिह साथ।
बसत्र नवीन देहि पहिराइ। अपने संग लेहु तिहुं जाइ॥ ४७॥
मोहन के चरनन पर पावहु। बनि कै दीन सु बिनती गावहु।
परहि द्रिशटि मोहनि की तिस पर। प्रापति होइ पुत्र को तबि बर॥ ४८॥
सुनि सतिगुर के बांक सुहाए। आइ सनूखा को समुझाए।
गमनी आप संग सो लीन। मोहन दया द्रिशटि तबि कीन॥ ४९॥
करि बंदन निज पति को आई। गरभ पर्यो तिस ते पिछवाई।
केतिक दिन महिं सुत अभिराम। जनम्यो तबि मोहन के धाम॥ ५०॥
श्री गुर को सुध आनि सुनाई। कीनो मंगल बजी वधाई।
भयो अनंद सरब ही धाम। 'संसराम' राख्यो तिस नाम॥ ५१॥
प्रिथम जनम महिं घाल बिसाल। तप आदिक कीने जिन जाल।
बालक किंतिक दिनन जबि भयो। जननी को सरीर छुटि गयो॥ ५२॥
तिस पर कीनसि क्रिया क्रिपाल। प्रतिपार्यो करि जतन सुबाल।
भोजन गुर को सीत प्रसादि। खावति रह्यो लहे अहिलादि॥ ५३॥
जबिही बय करि भयो बडेरा। सतिगुर बानी लिखहि घनेरा।
प्रिथम गुरू की जेतिक अहै। श्री अंगद गुर अमर जु कहैं॥ ५४॥
सभि बानी को लिखहि बनाई। समझहि अरथ महां सुख पाइ।
सीत प्रसादि पितासे केरा। अचिति रह्यो सिध भयो बडेरा॥ ५५॥
इमि श्री अमरदास के पोते। जनम लीनि गुन गन के पोते।
सुनहि पठहि चित दे निति एह। बिन संसति के संतति देहि॥ ५६॥
अपर कामना पूरी करै। श्री गुरु अमर कथा जो ररै।
मुकति मुकति की ए बड दाता। फल लहि जिनहुं महातम जाता॥ ५७॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'श्री अमरदास पोतन जनम' प्रसंग बरननं नाम एक ऊने शशटी अंशु॥ ५९॥

1. दीन। 2. शोक युक्त।

अंशु–६०

मथो मुरारी प्रसंग

दोहरा

श्री गुर क्रिपा निधान सकल लोक सुखदान ।
भाग हीन निंदक लहति निज करमन फल जानि ॥ १ ॥
जैसे भानु उदै भए सभि जग तिमर नसाइ ।
दुरभागी पेचक तऊ अंध भए दुख पाइ ॥ २ ॥

चौपई

सभि जग सतिगुर के गुन गावै । दरस परस मन बांछत पावै ।
तपा हुतो इक गोइंदवाल । सुनि जस जरै होति बेहाल ॥ ३ ॥
मुरवाहन को प्रोधा जानो । उस जोगी को मित्र समानो ।
जां कउ श्री गुर अमर प्रकाश । मद्ध खडूर दंत द्यो रास[1] ॥ ४ ॥
तांकी कथा प्रसिद्ध सु पाछै । बरनन भई प्रकाश सु आछै ।
दीन द्याल गुर अंगद केरी । करी अवग्या दुशट घनेरी ॥ ५ ॥
सो गुर अमर सहार न सके । पुन इह तपा निंद गुर बके ।
श्री सतिगुरू नाम रसु माते । अज्जर जरैं रहैं सुख दाते ॥ ६ ॥
कछुक काल इमि भयो बितीत । खेल रच्यो सतिगुर इस रीति ।
श्री बावली भई तईआर । जठ्ठ[2] अरंभी गुर करतार ॥ ७ ॥
बिप्र आदि जो थे अधिकारी । संत महंत जती घरबारी ।
तिनहि निमंत्यो भोजन हेतु । सभि नै मान्यो सहत सुहेत ॥ ८ ॥
तपे निमंतन मान्यो नांही । तपत रह्यो मतसर के मांही ।
दुइ त्रै बार सु मानुख फिरे । दुशट न मांनी माया घिरे ॥ ९ ॥
श्री सतिगुरू धरम के पालिक । दंभ मोह मद मतसर घालिक ।
तांके दंभ खंडने कारन । श्री मुख ते इमि कियो उचारन ॥ १० ॥
जेको गुरु घर भोजन खैहै । एक रुपय्या दच्छन पैहै ।
तउ भी तपा सु आयो नांही । पुन गुर बचन कियो सभि मांही ॥ ११ ॥

---

1. बहुत । 2. गृह-प्रवेश उत्सव-अनुष्ठान ।

भोजन जेवन को जो आवहि । दोइ रुपय्ये दछना पावहि ।
यां पर भी जबि तपा न आयो । तबि सतिगुर इह भांति अलायो ।। १२ ।।
पांच मुद्रका पावै सोई । भोजन कै हित आवै जोई ।
तपा न आयो पर ललचायो । पुन गुर दस का लोभ दिखायो ।। १३ ।।
ओडक जबि गुर मुहर सु कही । तबहि तपे की बुद्धि सु बही ।
व्याकुल भयो बहुत ललचायो । सुत भेजन को ब्योत बनायो ।। १४ ।।
द्वारे द्वारे प्रवेश न पायो । पकड भीत पर पूत चढायो ।
सो गिर पर्यो भीत ते तरे । टूटी टांग रुदन बहु करे ।। १५ ।।
नीच ऊच मैं उघर्यो पाज । लोभ तपे कउ दीनी लाज ।
सतिगुर सुनि मुसकावति भए । दुशटन के इमि ही घर गए ।। १६ ।।
तिस अउसर गुर अंतरजामी । श्री गुर रामदास प्रभु स्वामी ।
भोजन सभिनि करावति खरे । सुनिति ब्रितांत बचन सो करे ।। १७ ।।
गौडी राग वार के भीतर । भन्यो श्लोक सु सुनो सिक्ख बर ।
सतिगुर को प्रताप दिखरायो । निंदा दोख अधिक प्रगटायो ।। १८ ।।

सलोक महला ४

श्री मुखवाक :

तपा न होवै अंद्रहु लोभी नित माइआ नौ फिरै जजमालिआ ।
अगो दे सदिआं सतै दी भिखिआ लए नाही पिछोदे पछुताइकै
अणि तपै पुतु विचि बहालिआ । पंच लोक सभि हसण लगे
तपा लोभि लहरि है गालिआ । जिथै थोडा धनु वेखै तिथै
तपा भिटै नाही धनि बहुतै डिठै तपै धरमु हारिआ ।
भाई ऐहु तपा न होवी बगुला है बहि साध जना वीचारिआ ।
सत पुरख की तपा निंदा करै संसारै की उसतति विचि होवै
ऐतु दोखै तपा दयि मारिआ । महा पुरखां की निंदा का
वेखु जि तपे नो फलु लगा सभु गइआ तपे का
घालिआ । बाहरि बहै पंचा विचि तपा सदाए ।।
अंदरि बहै तपा पाप कमाए । हरि अंदरला पापु पंचा नो
उघा करि वेखालिआ । धरमराइ जमकंकरा नो आखि
छडिआ ऐसु तपे नो तिथै खडि पाइअहु जिथै महां महां
हतिआरिआ । फिरि ऐसु तपे दै मुहि कोई लगहु नाही
एहु सतिगुरि है फिटकारिआ । हरि कै दरि वरतिआ
सु नानक आखि सुणाइआ ।। सो बूझै जु दयि सवारिआ ।। १ ।।

चौपई

सतिगुर दयाल दया के रूप। बैठति पंकति बीच अनूप।
हटक्यो नांहि दियो तिस भोजन। निंदक धिरकार्यो सभि लोगन ॥ १९ ॥

दोहरा

इह साखी जे को सुनै पढ़हि करहि बख्यान।
तिस के निंदक नाश सभि होवति जग मैं जान ॥ २० ॥
श्री सतिगुर तारन तरन दीन बंधु गुन खान।
जो जो आवहि शरन को सो सो लहि कल्यान ॥ २१ ॥

चौपई

अपर कथा अबि सुनहुं अगारी। श्री सतिगुरू महातम भारी।
इक खत्री थो प्रेमा नाम। मात पिता नहिं भ्राता धाम ॥ २२ ॥
कुशट सरीर बिखे रुज भयो। अधिक दरिद्री सो हुइ गयो।
हाथ पाद गरि कै गिर परे। को नहिं निकट होनि दे खरे ॥ २३ ॥
बेख अनंगल पिखति गिलान[1]। माखी ब्रिंद संग निति ठानि।
गल महिं बांध्यो माटी बासन। ठांढो होइ आइ को पास न ॥ २४ ॥
बैठ्यो घिसरि घिसरि करि चालहि। करि को दया टूक तिह घालहि।
इस बिधि अपनो समो बितावहि। द्योस जामनी संकट पावहि ॥ २५ ॥
जिस ढिग हुइ त्रिसकारहि सोइ। देखनि भी न करहि तिस कोइ।
तिनि गुर महिमा सुनी घनेरी। जनम रंक जिम सुरतरु केरी ॥ २६ ॥
सुनि सुनि जस कउ हुलस हिय मन महिं। क्रिपन महा जिमि आमद धन मैं[2]।
बध्यो प्रेम उर गावति गीत। धरहिं ध्यान ठहिरावहि चीत ॥ २७ ॥
उमगहि प्रेम पुकारहि ऊचो। सुनि सुनि आवैं ऊच रु नीचो।
मन की उकती करै उचार। प्रेम मगन को लहै न सार ॥ २८ ॥
राग कवित्त न बानी जानहि। बिन जाने ही बदन बखानहि।
कहि द्रिशटांत बाक कछु मोटा। मुझ अबि लद्दा गया कछोटा ॥ २९ ॥
सुनहु जहानां कहौं वडेर। गया कछोटा लद्दा फेर।
जबि कबि प्रेम रिदै अधिकावै। गया कछोटा लद्दा गावै ॥ ३० ॥
सुनि सुनि हसहिं सु आपस मांही। पाणी अन्न आनि दें तांहि।
सतिगुर को सिमरति चित चाहति। दरशन पावौं बहुत उमाहति ॥ ३१ ॥

---

1. घृणा। 2. धन के आने से जैसे कोई कंजूस आनन्दित होता है।

संग नितंबनि घिसरति चालहि। पल पल प्रेम कला प्रतिपालहि।
चितवति-मैं गुर दरशन पाऊं। आधि व्याधि अघ-ओघ नसाऊं ॥ ३२ ॥
जो गुर मग को मिलि ढुलि चले। किउं नहिं भुगति मुकति-फल फले।
चिरंकाल महिं चलि करि आयो। हरख्यो जन नव निधि सुख पायो ॥ ३३ ॥
सतिगुर के दरबार अगारी। लई धूल धरि शरधा भारी।
सिर मुख पर सगरे तन फेरी। बैठि रह्यो तहिं केतिक बेरी ॥ ३४ ॥
आवति जाति सिक्ख जो अहैं। अवलोकति इस को बच कहैं।
गुर दरशन कुशटी नहिं पावै। तौ पावै जे आप बुलावैं ॥ ३५ ॥
सुनि कै शोकारति चित होवा। जे अबि मोहि न दरशन होवा।
आवन श्रम बाद हुइ मेरा। भयो न फल प्रापति दुख घेरा ॥ ३६ ॥
मैं निरभाग जहां चहि जाऊ। निफलहि तहां नहीं कछु पाऊं।
बिन दरशन गमनो किति नांही। कै मरि रहौं इसी थल मांही ॥ ३७ ॥
धिक जीवन अबि नासौं प्रान। गुर के दर पर परों सथान।
द्रिड करि प्रेम थिर्यो दर आगहि। सनमुख बैठहि, नहिं थल त्यागहि ॥ ३८ ॥
प्रेम बिसाल गुरू महिं धरे। मुख ते निति 'गुर गुर गुर' करे।
कबि कबि गावहि ऊची धुन ते। आवति जाति सिक्ख सभि सुनते ॥ ३९ ॥
'गया कछोटा लद्दा' गावै। ऊचे टेरति गुरू सुनावै।
खरे आनि होवति सुनि पाहू। कहि कहि पुनहि गवाइसि तांहू ॥ ४० ॥
कहे नरनि कै पुन पुन गावहि। चहति दरस दिन रात बितावहि।
पूरब जनम महां मैं पापी। जिस ते आधि रु व्याधि संतापी ॥ ४१ ॥
सभि जग दरसति गुर को नीति। मोहि न मिलहिं सु, तरसति चीत।
इस ते आछो थान न आन। कबहूं तौ हुइ हैं अघ हान ॥ ४२ ॥
गुर दर को अबि त्यागौं नांही। जीवति मिरतक कै दुख मांही।
रहौं शरण मैं चितवति ऐसे। आवहिं लोक कहावहिं तैसे ॥ ४३ ॥
पाणी अंनदया करि देति। बैठ्यो रहै सु दरशन हेति।
कबहि कशट ते प्रेम ब्रिधंता। बोलति बोलति भूम गिरंता ॥ ४४ ॥
पर्यो रहै रोदन को ठानति। गुर दरशन को अति हित जानति।
इमि ब्याकुल को देखि दुखित को। सिख्य दया करि द्रवते चितको ॥ ४५ ॥
अरज़ गुज़ारति गुरू अगारी। इक कुशटी जिस तन दुख भारी।
पर्यो रहे रावर के द्वारे। गावति गीत हसावति सारे ॥ ४६ ॥
दरशन को चित चाहति रहितो। सिमरत सदा आप को कहितो।
मुख ते गावति गीत जु सोऊ। क्या किछु रहै न जानति कोऊ ॥ ४७ ॥

सुनि सतिगुर ने सभि समुझाए। हम जानति हैं जो कुछ गाए।
पडदा बसत्र जु मेरो गयो। पुन गुर सों मुझ प्रापति भयो ॥ ४८ ॥
मोकहु पायो ताहिं सु गावै। सभि लोकन को टेरि सुनावै।
मैं जानति हौं तिस को प्रेम। जिसी प्रेम ते प्रापति छेम ॥ ४९ ॥
इस प्रकार दिन कितिक बिताए। ऊचे टेरति गुरू सुनाए।
जबहि प्रेम ने ब्याकुल कर्यो। नहिं सुध देहिं, रह्यो घर पर्यो ॥ ५० ॥
तिस उर की लखि अंतरजामी। सरब कला समरथ गुर स्वामी।
जान्यो भगत प्रेम जिह जागा। अपर आसरो मन करि त्यागा ॥ ५१ ॥
थांउ निथांवन, मान निमाना। इस विधि को निज बिरद पछाना।
भए प्रसन्न सभिनि सों कहा। तिस को ले आवहु अबि इहां ॥ ५२ ॥
हमरे मज्जन को जल जहिंवा। संचति टिक्यो लिजावहु तहिंवा।
नीके जाइ शनानहि ऐहि। होइ जाइगी सुध सभि देही ॥ ५३ ॥
रंग मजीठी अंबर ल्यावहु। सरब शरीर इसे पहिरावहु।
नख सिख लौ छादन कर सारे। पुन आनहु तुम निकट हमारे ॥ ५४ ॥
सुन सिख्यन करि चौंप गए हैं। कह्यो उदै तब भाग भए हैं।
तिह जल जाइ शनान करावा। रंग मजीठी वसत्र उढावा ॥ ५५ ॥
नख शिख छादन कीनि सरीर। ले पहुंचे पुन सतिगुर तीर।
क्रिपा द्रिशटि ते देखि क्रिपाला। निज कर सो मुख बहिर निकाला ॥ ५६ ॥
द्रिशटि परी सतिगुर की जबै। तन अरोग भा सुंदर तबै।
निज कर ते पुन बसत्र दए हैं। सभि नवीन पहिराइ दए हैं ॥ ५७ ॥
मंत्र सु सत्तिनाम को दीनसि। भाल बिसाल तिलक तिनि कीनसि।
रज कन ते गिर समसर कियो। नाम 'मुरारी' पुन धरि दियो ॥ ५८ ॥
सभा मझार कह्यो गुर बैन। तनुजा है जिह सिख के ऐन।
मम आइसु ते इस को देवहि। लोक प्रलोक अनंत सु लेवहि ॥ ५९ ॥
शीहां उप्पल सिक्ख कुलीन। तिन कर जोरे बिनती कीनि।
वर प्रापति कंन्या घर मेरे। हे प्रभु! फिरैं इसी संग फेरे ॥ ६० ॥
इमि कहि निज इसत्री ढिग आयो। क्रूरा कलहिनि निठुर सुभायो।
तिह के साथ न गाथ जनाई। अपर बात कहि दई टलाई ॥ ६१ ॥
तुझ पर सतिगुर बाक उचारे। लंगर टहिल करहु दिन सारे।
पति ते सुनि गमनी जिस काला। संग सुता ले गुर ढिग चाला ॥ ६२ ॥
ततछिन साथ मुरारी तहां। फेरे दिए भाउ करि महां।
भुकति मुकति तूरन तिस दीन। अस गुर भजहिं न से मति हीन ॥ ६३ ॥

जीव नारकी[1] सुरग पुचावा। अदभुत ऐसो रूप बनावा।
भयो अरोग देह तिह सुंदर। दई सुंदरी पुन सुख मंदर॥ ६४॥
देखति सुनति सकल बिसमाए। सतिगुर महिमा लखि अधिकाए।
चहैं सु करें कला सभि पूरन। दास उधारनि दुशटनि चूरन॥ ६५॥
एक घरी महिं सभी कुछ पायो। तन अरोग पुन ब्याह सुहायो।
णीहे त्रिय लंगर महिं सुन्यो। महां दुखित चित महिं सिर धुन्यो॥ ६६॥
आई रुदति सतिगुरु तीर। 'इहु क्या कीनसि हे प्रभु धीर।
कुशटी, मात पिता कुल हीन। सुता निनावे को मुर दीन॥ ६७॥
सुनि श्री अमर दास तबि हसे। कह्यो तांहि करुना रंग रसे[2]।
जानहुं मम सुत इहु जु मुरारी। ब्याह्यो तनुजा संगि तुमारी॥ ६८॥
तव तनुजा को नाम मथो है। नाम मुरारी यांहि कथो है।
मथो मुरारी सिमरे नाम। पूरन होहि नरन के काम॥ ६९॥
मथो नाम आगे कहिं आछै। नाम मुरारी भाखहिं पाछै।
नर पूजहिंगे मथो मुरारी। चित चिंता दिहु शोक बिसारी॥ ७०॥
इहु दोनहु होए बड भागे। मेरी प्रेम भगति महिं पागे।
तूशनि होइ पुनहि घर गई। दंपति को गुर आग्या दई॥ ७१॥
मथो मुरारी! अबि तुम जावहु। सत्यनाम उपदेश द्रिडावहु।
गुर सिक्खी जग अधिक ब्रिधावहु। निज ग्रहि बसहु सदा सुख पावहु॥ ७२॥
तेरो बाक फुरै[3] जिमि कहैं। बर कै श्राप देहिं जिस चहैं।
तेरी भगति परी अबि पूरी। प्रापति भई महां गति रूरी॥ ७३॥
तुझि सों मिलै सु भवजल तरै। तौ कहिबो इस ते क्या परै।
भुकति मुकति नवतन तिस दैहै। बिदा कर्यो गमन्यो सुख पैहै॥ ७४॥
ग्रिह निज बसि गुर सुजस करंता। मिल्यो जि तिस सुखि सोपि भवंता।
करे गुरु इव दीननि काम। थाते 'दीन दयाल' कहिं नाम॥ ७५॥
इंम मतिमंद अनेक उधारे। जग महिं प्रगट्यो जै जै कारे।
धरे प्रेम जो सुनै सुनावै। चार पदारथ गुर ते पावै॥ ७६॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'मथो मुरारी' प्रसंग बरननं नाम शशटी अंशु॥ ६०॥

1. [illegible] जीव को। 2. करुणा से भर कर। 3. पूरा होना।

अंशु ६१

गोदे सुत प्रसंग

दोहरा

दिज बर खेडा सोइरी दुरगा भगति बिसाल।
नित प्रति पूजा बहु करे धरे ग्यान सभि काल ॥ १ ॥

चौपई

नर समुदाइ मिलहिं ढिग आवें। श्री दुरगा के दरशन जावें।
संमत महिं जुग जात्रा करिही। निरजल निराहार व्रत धरिही ॥ २ ॥
इक बारी जात्रा को चल्यो। तिस के संग ब्रिंद नर मिल्यो।
चलति पंथ महिं गुर पुरि आवा। दरशन करिबे को ललचावा ॥ ३ ॥
भयो ठांढि जबि गुर के द्वारे। तबि सिख्यन इमि बाक उचारे।
गुर आग्या को सुनिबो करीअहि। बहुर निकेत पौर महिं वरीअहि ॥ ४ ॥
प्रथम देग ते अचवहु जाइ। पीछे गुर दरशन को पाइ।
सुनि करि खेडे कीनि बिचारनि। मैं किमि करिहौं नेम निवारनि ॥ ५ ॥
सुच करि करों अहार हमेशू। गुर की देग प्रवेश अशेशू।
आश्रम, बरन, नेम, बिवहार। गुर को मिलहिं सकल निरवारि ॥ ६ ॥
ऐसा को वड प्रेमी होइ। गुर हित रखहि अपर सभि खोइ।
दुरलभ वरन सु आश्रम धरम। नहिं तजि सकौं सहत जग शरम ॥ ७ ॥
इमि उर ते तरकति हरि सो रह्यो। अंतर गयो न दरशन लह्यो।
गमन्यो पंथ अगारी फेर। लियो संग महिं संग बडेर ॥ ८ ॥
गोइंदवाल तज्यो दुइ कोस। जाइ कर्यो डेरा श्रमु होस[1]।
खान पान करिके जबि सोयो। महां भिआनक सुपनो होयो ॥ ९ ॥
दारुन रूप कालका हेरि। त्रास पाइ करि बोल्यो फेर।
हे माता ! मैं भगत तुमारा। क्रूर जोगनी मुहि परवारा ॥ १० ॥

1. थक कर।

इन ते इच्छा मेरी करी अहि। नहिं भक्खहिं सगरी निखरीअहि।
कौन दोष मेरो अस जोवा। जिस ते त्रासक दरशन होवा ॥ ११ ॥
सुपने महिं तिस को समझायो। हुतो भगत, तबि दरशन पायो।
सतिगुर ते बेमुख हुइ आवा। या ते तोहि त्रास दरसावा ॥ १२ ॥
मोहि भगति करिबे फल इहु है। शरधा युति गुरदरशन लहिहै।
नांहि ति मेरी भगति न पावै। गुर तें बेमुख हुइ दरसावै ॥ १३ ॥
जगत उधारन हित अवतार। भगति रूप हुइ रहति उदार।
लाखहुं लोक सुमति को पाइं। सिक्खी मारग को प्रगटाइं ॥ १४ ॥
दुरे रहैं प्रभु के अवतार। हटि अबि मिलहु भरम निखार।
सुनि सुपने महिं बंदन कीणि। जाग्यो पुन अचरज मंन लीनि ॥ १५ ॥

दोहरा

भई भोर उठि करि हट्यो दरशन गुर की प्रीति।
आयहु गोइंदवाल महिं दिढ शरधा धरि चीति ॥ १६ ॥

चौपई

प्रथम देग माहिं अच्यो अहारा। पुन गमन्यो जहिं सतिगुर द्वारा।
जिस के रिदै प्रेम बहु जागा। जागन लगे भाल के भागा ॥ १७ ॥
दरशन कर्यो जाइ करि जबै। प्रेम अधीन पर्यो पद तबै।
सतिगुर ने बूझ्यो दिज कहो। कित ते आइ दरस को लहो ॥ १८ ॥
सुनि खेडे ने सरब ब्रितांत। बिदत गुपत सभि कहि बख्यात।
मन गिलान करि मै उठि गयो। दारुन दरस कालिका भयो ॥ १९ ॥
तुमरो भेव बतायो सारो। हटि आयो मैं शरन तुहारो।
अबि मेरे पर जे तुम दया। सुपने महिं देवी कहि दया ॥ २० ॥
कुपत रूप तबि हेरन कर्यो। सुने बाक जिस के मैं मुर्यो।
सो सरूप जगमात महांबर। भई की नहीं प्रसन्न मोहि पर ॥ २१ ॥
ऐहु संदेहु महां उर मेरे। मिटहि न बिना भगवती हेरे।
तुम समरथ सभि रीति महांना। क्रिपा करहु संसै उर हाना ॥ २२ ॥
सुनि श्री सतिगुर बिकसे भाख्यो। इमि भी होइ जथा अभिलाख्यो।
शकति न असु जो दुरगा हेरैं[1]। होइ बिदत ठहिरैं न अगेरैं ॥ २३ ॥
इस गति को उर लेहु बिचारी। सुनि खेडे पुनि गिरा उचारी।
करुना करहु दिखावहु मोही। सहौं सकल ही जस गति होही ॥ २४ ॥

---

1. तुम्हारे अन्दर ऐसी शक्ति नहीं कि देवी को देख सके।

श्री प्रभु बल्लू संग बखाना। इस को गहहु पान महिं पाना।
अबि ले जाहु बीच चौबारे। जग माता को दरस निहारे।। २५ ।।
सुनि आग्या बल्लू गहि कर को। अंतर जाइ दिखायहु घर को।
देख्यो दिपति तेज रवि जैसा। असत्र शस्त्र ते शुभति विशेशा।। २६ ।।
अशट भुजी जबि देखन करी। दिजबर ने सुधि बुधि सभी हरी।
व्याकुल होइ धरन गिर पर्यो। मुरछति पर्यो प्रान जनु हर्यो।। २७ ।।
बल्लू ने सुधि सरब सुनाई। गुरु कह्यो 'ले आउ उठाई।
तिन बल करिके तांहि उठावा। आनि प्रभु के पाइन पावा।। २८ ।।
पिखि श्री अमरदास तिस काला। गहि कै चिबुक[1] उठाइ बिठाला।
मनहु म्रितक भा पुनहिं जिवायों। खुल्हे नेत्र गुर दरशन पायो।। २९ ।।
देखि प्रभाव चकित चित रह्यो। कर जोरति गुर सों बच कह्यो।
देहु शरन, करीअहि निज दासु। बनौं क्रितारथ पूरहु आसु।। ३० ।।
बिकसे सतिगुर बहुर उचारा। सुनि खेडा तूं दास हमारा।
करहु सदा देवी की सेवा। जप सतिनाम मंत्र गुर देवा।। ३१ ।।
मिलहि जु तोहि देहु उपदेशा। सिक्खी को बिसतार बिशेशा।
इमि कहि क्रिपा द्रिशटि सों हेरा। उपज्यो ब्रह्म ग्यान तिस बेरा।। ३२ ।।
करि अज़मत जुति दीन बिदाई। राम नाम की उर लिवलाई।
भुगति मुकति पर ले घर को गयो। नर अनेक को संकट हयो।। ३३ ।।
जिन जिन संगति तिस की कीनि। तिनहुं नहीं जमु को दुख लीनि।
सतिगुर की सिक्खी बिरधाई। दरशन परसहि कवि कवि आई।। ३४ ।।
जिस पर द्रिशटि क्रिपा की करैं। निज कुटंब जुति भउजल तरैं।
जिमि गोंदे गुर अंगद पास। पूरब करी हुती अरदास।। ३५ ।।
गोइंदवाल बिसाल बसायो। सो गुर के अनुसारि रहायो।
आरबला तिस पूरी भई। प्रान अंत कायां तजि दई।। ३६ ।।
तिस की संतति पाछे रही। तिन मति गुर अनुसरनी नहीं।
चौधरता हमरे इमि जाने। इस पुरि के नर विखे महांने।। ३७ ।।
सगरो नगर हमारो अहै। अरपैं भेट इहां जो रहैं।
श्री गुर को घर अहै बिसाला। देति नहीं सो कुछ किस काला।। ३८ ।।
आवति इन के दरब वडेरे। चलहि देग नर अचहिं घनेरे।
उचित अबहि इन ते धन लीजहि। हक्क चौधरता को कहि दीजहि।। ३९ ।।

1. ठोड़ी।

प्रथम आमदन धन की थोरी। अबि चहुं दिश ते आइ अकोरी।
मति मलीन मिथ्या अभिमानी। निकट गुरू नहिं महिमा जानी ॥ ४० ॥
तीरथ बासी जिम नर होवहिं। नहीं महातम तिन को जोवहिं।
नहिं शरधा सो देहि शनानहिं। निस दिन मूढ अवग्या ठानहिं ॥ ४१ ॥
जाहिं दूर ते सादर मज्जहिं। शुभ फल प्रापति कलमल मज्जहिं।
तिमि इहु मूरख रिदे मलीने। गुरु महातम नहिं मन चीने ॥ ४२ ॥
लगे अवग्या करन कुढाली। हंकारी, दुरमति, कुचाली।
सतिगुर निकट जाइ करि बैसे। धरे लोग बोले तबि ऐसे ॥ ४३ ॥
हमरे नगर बास जे कीजै। कुछ सिरदारी को हम दीजै।
अपर सरब ही मानहिं आन। जथा जोग • देवहिं घर आनि ॥ ४४ ॥
बहु संमत बीते तुम रहो। अनिक उपाइन जग ते लहो।
पूरब अलप हुती गुजरान। अबि मानहि बहु आन जहान ॥ ४५ ॥
मतिमंदन ते सुनि गतिदानी। सहिज सुभाइक बोले बानी।
लंगर बिखै गमनि करि जाँवहु। जितो अन्न चाहहु तहिं खावहु ॥ ४६ ॥
देश बिदेशी संगति सारी। चलहि देग तहिं अचहि अहारी।
हटकार न किस की तिस थान। छुधिति करति सभि भोजन खान ॥ ४७ ॥
सो जानहुं सरबंस हमारा। अहै गरीबनि केरि गुजारा।
पिता तिहारे कछू न चाहा। धरे लोभ आए हम पाहा ॥ ४८ ॥
धन को संचनि हमरे नांहनि। अन्न आदि वसतू घर मांहि न।
जो तुम को हम देहिं निकास। सो नहिं रांखहि कछू अवास ॥ ४९ ॥
सुनि गोंदे सुत बाक बखान्यो। हम तो लेनि दरब को ठान्यो।
अपर वसतु हम लेति न कोई। धन दीजहि कर धारैं सोई ॥ ५० ॥
सदन आपने अचहिं अहारा। अन्न खरीदहिं मोल बजारा।
तुमरे निकट कमी नहिं कोऊ। संगति रहै भीर करि सोऊ ॥ ५१ ॥
निति प्रति आनहिं दरब उदारा। दूर दूर के नर बहु बारा।
शरधा धरहिं निवावहिं सीस। केतिक आवति निकट महीश ॥ ५२ ॥
आइ उपाइन अनिक प्रकारा। तिन महिं ते दिहु हक्क हमारा।
सुनि श्री अमरि कह्यो तिनि फेर। धन को लोभ करति हो फेर ॥ ५३ ॥
गुर के सदन मिलेगी देग। अवर लोभ त्यागहु तुम वेग।
काहे त्रिशना अधिक करति हो। हम सों धन के हेतु अरति हो ॥ ५४ ॥
ऐसे बहुत भई तकरार। ओडक दुष्ट करति भे रार।
कहति भए 'हम दिल्ली जावहिं। करि फरयाद तुम धन पावहिं ॥ ५५ ॥

सतिगुर कह्यो 'खुशी सो करो। हम ते थन की आस न धरो।
गए सदन उठि मता पकायो। दिल्ली जाइ कलंक सु पायो॥ ५६॥
चवगत्ते आगे फरियाद। मूरख करति भए बहु बाद।
एक पठान गुरू का दास। सभा मद्ध चवगत्ते पास॥ ५७॥
सरव भेद प्रगटावति भयो। दुशटन को झूठा तिन कयो।
लगी होनि तिन पर बहु मार। धक्के दे काढे दरबारु॥ ५८॥
बहुत दुखी सभि सौज गवाई। घर आवति लज्जा बहु पाई।
रुल मर गए जु आए फेर। दुखी भए जमु मारे घेर॥ ५९॥
ऐहु ब्रितांत सभिनि सुनि पायो। दुशटनि को प्रभु दांड दिवायो।
श्री गुर रामदास प्रभु स्वामी। क्रिपासिंघु सभि अंतरजामी॥ ६०॥
ताहिं समें गुर सेव मझारा। ततपर रहति हुते दरबारा।
गउडी राग वार के अंतर। इस परिथाइ शलोक सुतंतर॥ ६१॥
उचरति भए भलौ चित लाइ। जो गुर की महिमा प्रगटाइ।
सुनहु सिक्ख चित करि सवधान। श्री सतिगुर की कीन बखान॥ ६२॥

सलोकु म० ४

मलु जूई भरिआ नीला काला खिधोलडा[1] तिनि वेमुखि वेमुखै नो पाइआ॥
पासि न देई कोई बहणि जगत महि गूह पडि सगवी[2] मलु लाइ मनमुखु आइआ।
पराई जो निंदा चुगली नो वेमुखु करि कै भेजिआ उथै मुहु काला दुहा बेमुखा दा कराइआ।
तड़ सुणिआ सभतु जगत विचि भाई बेमुखु सणै नफरै पउली पउदी फावा होइ कै उठि घरि आइआ।
अगै संगती कुडमी वेमुखु रलणा न मिलै ता वहुटी भतीजी फिरि आणि घरि पाइआ।
हलतु पलतु दोवै गए नित भुखा कूके तिहाइआ॥
धनु धनु सुआनी करता पुरखु है जिनि निआउ सचु वहि आपि कराइआ।
जो निंदा करे सतिगुर पूरे की सो साचै मारिपचाइआ।
एहु अखरु तिनि आखिआ जिनि जगतु सम उपाइआ॥ १॥

चौपई

रहि गयो वालक एक पिछारी। गोंदे की त्रिय गुरु अगारी।
पछुतावति कर जोरि बखानी। इह सभि मंद न, महिमा जानी॥ ६३॥
तुम प्रताप ते इहु सभि होए। करी अवग्या तुम सभि खोए।
रह्यो वाल इहु अवहि पिछारी। राखहु क्रिपा करहु सुख कारी॥ ६४॥

1. शीघ्र। 2. बहुत, ज्यों की त्यों।

तिनहु कर्यो जसु तसु फल पायो। अब रावरि की शरनी आयो।
संत प्रसन्न सदा उपकारी। करहिं बुरे को भला बिचारी ६५ ॥
सुनि प्रभु ने करुना करि राख्यो। इस ते बंस ब्रिधै तवि भाख्यो।
भई प्रसंन सु ग्रिह को गई। करी अवग्या सो बखशई ॥ ६६ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'गोदे सुत' प्रसंग बरननं नाम एक शशटी अंशु ॥ ६१ ॥

अंशु ६२

बेनी पंडत फिरे कटारे को प्रसंग

दोहरा

इक पंडति बेनी हुतो बिद्या बिखै प्रबीन।
न्याइ शासत्र ते आदि जे रसना अग्र सु कीन ॥ १ ॥

चौपई

देश विदेशन बिखे हमेश। विचरति बिद्या मान बिशेश।
जहां पठति विद्या सुनि लेह। तहिं पहुंचै चरचा हित एहु ॥ २ ॥
लोक ब्रिद महिं लिखै प्रथम इमि। होइ पराजै चरचा महिं किम।
तिसके पुसतक छीनै सारै। जीतनि हारो लेहि संभारे ॥ ३ ॥
लोक मिलहिं वहु चरचा मांहि। सुनै सरब हो रिदै उमाहि।
वेनी पंडत जीतहि जबिहूं। दिज ते पुसतक छीनहि सभिहूं ॥ ४ ॥
सुनहिं धनी नर धन अरपावहिं। वहु कीरति को कहैं सुनावहिं।
इस बिधि बहुते नगर मझारा। फिरति लदायो पुसतक भारा ॥ ५ ॥
उशटर[1] एक लयो संग फिरिही। यां ते बहु हंकार सु धरिही।
बिद्याअरथी पठिबे कारन[2]। फिरहिं संग बहु करति बिचारन ॥ ६ ॥
मैं दिग बिजै करों छिति फिरिकै। को ठहिरहि विद्या संग अरकै।
मम सम अपर नहीं जग कोइ। इमि हंकार रिदे भरि सोइ ॥ ७ ॥
सहिज सुभाइक बिचरति आवा। डेरो गोइंदवाल सु पावा।
तहिं सतिगुर की सुनि कै कीरति। वहु निरमल सभि जग बिसतीरति ॥ ८ ॥
चहति देखिवे रिदे उमाहू। वहिर गुरू आए छिन तांहू।
सथित बापिका निकट सथान। दरसहिं नर बैठे गुन खानि ॥ ९ ॥
आए वहिर जानि मन मांही। उठि पंडति आयो प्रभु पाही।
सादर सतिगुर निकट बिठायहु। कुशल खेम बूझी हरखायहु ॥ १० ॥

1. ऊंट 2. पढ़ने के लिये विद्यार्थी।

तबि संगत बहु दरशन करै। बंदहि चरन उपाइन धरै।
चित बांछति सतिगुर ते पावें। हित प्रलोक गति रिदै मनावें॥ ११ ॥
बेनी पंडत देखि सभिनि को। मन हँकारति कार्यो बचन को।
तप. तीरथ. ब्रत दान महांना। इत्यादिक शुभ करम सुजाना॥ १२ ॥
निरमल अंतहकरंन करंते। तौ मानव शुभ गती लहंते।
तुमरे पंथ बिखै इहु नांहीं। कुतो परम गति इहु नर पाही॥ १३ ॥
जे इन भला करन तुम चाहो। अस उपदेश देहु दुख दाहो।
तप आदिक महिं जोरहु इन को। इस बिधि बिमल करहु इन मन को॥ १४ ॥
उपदेशहु शासतन को मति जिम। इन की छेम होति कही अहि तिम।
सुनि पंडित ते गुरू प्रबीन। हंकारति को उत्तर दीन॥ १५ ॥
तप आदिक मख[1] करिबे करम। इह तौ तीन जुगन को धरम।
अबि जे नर होए कलि मांही। किसू करन की समरथ नांही॥ १६ ॥
बिना अन्न ते प्रान बिनासें। किमि तप करहि जाइ बनबासें।
दरब नहीं अर बलु कछु नांही। कहां शकति मख करिबे मांही॥ १७ ॥

करम कांड महिं जे अबि लागें। किमि हुइ आवै सभि दिन भागें।
दुसकर सौच आदि को करनो। खान पान बिधि तैसी बरनो॥ १८ ॥
इमि अशकति नर जानहुं सबै। प्रिथम धरम किमि हौवहिं अबै।
तिन को करत्यो सुख दुख पावें। सुरग बिखै कबि नरक सिधावें॥ १९ ॥
अबिचल पदवी पाइ न कोऊ। हंता सहत करम शुभ जोऊ।
खेद बहुत फल थोरो पाइ। नाशवंत जे इहु समुदाइ॥ २० ॥
अबि कल जुग को समो सु आवा। जिस कौ राज तिसी को न्यावा।
तप आदिक शुभ करम महाने। गुर सेवा के ह्वै न समाने॥ २१ ॥
सत्तिनाम को सिमरन सार। भुकति मुकति दे महिद उदार।
सिमरन श्रवन भगति बडिआई। जिस सम कलि[2] नाहिं आन बडाई॥ २२ ॥
इस बिन मुकति न कोई पावै। ज्यों सिकता ते तेल न आवै।
तप ब्रत आदिक जे आचार। फोकट नाम बिहीन असार॥ २३ ॥
और कहां लग कहौं बनाई। अपर बिपरजै हुइ सभि जाई।
सिमरहिं नाम हरहिं हंकार। करमन महिं इहु बधहि उदार॥ २४ ॥
सो हंकार है दूशन मूल। गति कांखी धारहि नहि भूल।
तुम बिद्या पठि गही मसाल। अपरन करहु प्रकाश बिसाल॥ २५ ॥

1. यज्ञ। 2. कलियुग में।

आप अंधेरे महिं गिर परो। औरन कहो जगत तुम तरो।
उर हंकार तोहि अबि ऐसे। बिजै त्रिलोकी ठानी जैसे ॥ २६ ॥
मन नहिं जीत्यो शत्रु बिसाला। अपर जीतबे क्या फल पाला।
सिख्य हजारों तरे हमारे। सत्यनाम जप निरहंकारे ॥ २७ ॥
पंडित डूबो गिनती मांही। उर हंकार धार बहि जाहीं।
सुनि पंडित ने रिदे बिचारा। ब्रिद्या महिं होवति हंकारा ॥ २८ ॥
निर हंकार परम पद पावै। सत्यनाम जप दोश नसावै।
यांते जथा जोग गुर बानी। मैं पावौं कछु हुइ निरमानी ॥ २९ ॥
गुर दरशन ते मारग सूझा। भयो दीन उपदेशहिं बूझा।
मैं बिद्या बहु पठी बिचारे। त्यों त्यों मम उर बध्यो हकारे ॥ ३० ॥
यांते हरि की भगति न होई। करति रह्यो खट करम जिसोई।
चरचा करि मिथ्या अभिमानी। सतिसंगति प्रभु गति नहिं जानी ॥ ३१ ॥
तुमरे बच प्रताप मैं जान्यो। अपनो रिदा द्रवत पहिचान्यो।
करुना करहु देहु उपदेश। काटहु मेरे महां कलेश ॥ ३२ ॥
मन महिं बस आवहि किस रीति। काम क्रोध हंकारी नीति।
जिस ते मेरो मन सुधि होइ। क्रिपा करहु मिथ्या दिहु सोइ ॥ ३३ ॥
बेनी की बिनती सुनि श्रौन। बोले सतिगुर करुना भौन।
जिस ते मन बिकार करि नाश। भयो बिसाल सुरिदे प्रकाश ॥ ३४ ॥

मलार महला ३ घरु २

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

श्री मुखवाक ॥

इहु मन गिरही कि इहु मनु उदासी ॥
कि इहु मनु अवरनु सदा अविनासी ॥ १ ॥
कि इहु मनु चंचलु कि इहु मनु बैरागी ॥
इसु मन कउ ममता कि थहु लागी ॥ १ ॥
पंडित इसु मन का करहु बीचारू ॥
अवरु कि बहुता पड़हि उठावहि भारू ॥ १ ॥ रहाउ ॥
माइआ ममता करतै लाइ ॥
एहु हुकमु करि सृटि उपाई ॥
गुर परसादी बूझहु भाई ॥

सदा रहहु हरि की सरणाई ॥ २ ॥
से पंडितु जो तिहां रुणां की पंड उतारै ।
अनुदिनु एको नामु वखाणै ।
सतिगुर की ओह दिखिआ लेइ ।
सतिगुर आगै सीमु धरेइ ।
सदा अलगु रहै निरबाणू ।
सो पंडितु दरगह परवाणू ॥ ३ ॥
सभना महि एको एकु वखाणै ।
जां एको वेखे तां एको जाणै ।
जाकउ बखसे मेले सोइ ।
एथे ओथै सदा सुखु होइ ॥ ४ ॥
कहत नानकु कवन बिधि करे किआ कोइ ।
सोई मुकति जाकउ किरपा होइ ।
अनुदिनु हरि करे किआ कोइ ।
सासत्र बेद की फिरि कूक न होइ ॥ ५ ॥ १ ॥ १० ॥

चौपई

सहत अरथ के शबद बखाना । सुनि पंडत हान्यो निज माना ।
मुनसब होइ बिचारन लागा । उचरति सत्य-करति अनुरागा ॥ ३५ ॥
क्रिपा द्रिशटि पुन गुर ने कीनसि । अंतर ब्रिती होइ सुख चीनसि ।
जनम जनम को सुपति जगायो । निज सरूप आतम प्रगटायो ॥ ३६ ॥
बैठे लगी समाधि अडोले । कितिक देर महिं लोचन खोले ।
देखि अवसथा गुरु सराह्यो । पंडित भए धंन, दुख लाह्यो[1] ॥ ३७ ॥
तबि बेनी मन आनंद पावा । सतिगुर सुजस अनिक बिधि गावा ।
भगति होति अवतार गुसाईं । महिमा तुमरी तुम बनि आई ॥ ३८ ॥
केतिक दिन सतिगुर के पास । रह्यो प्रीत धरि तजि सभि आस ।
उशटर भार जि पुसतक ब्रिंद । सरिता बिखे बहाइ बिलंद ॥ ३९ ॥
शांति पाइ करि सीतल होवा । ताप बिकारन को उर खोवा ।
बिदा भयो रहि कै चिरकाल । पूज पूज करि परम क्रिपाल ॥ ४० ॥
सिक्ख हुते हुई फिर्या कटारा । सेवति रहे बहुत गुरद्वारा ।
इक दिन तिन को देखि गुसाईं । भए प्रसन्न बखशबे ताईं ॥ ४१ ॥

---

1. मिटा दिया ।

निकट बुलाए बूझन ठाने। जहां तुमारे रहिन ठिकाने।
कहहु देश तिह किह उपदेश। हित प्रलोक के क्रित[1] क्या है सु ॥ ४२ ॥
जो होवै सो जाइ हटावहु। सत्तिनाम सिक्खी प्रगटावहु।
बोले दोनहु द्वै करि जोरि। श्री गुर जी हम महिं क्या जोर ॥ ४३ ॥
जोगी कंनपाटे उपदेशहिं। जंत्र मंत्र जिंन शकति विशेशहिं।
गोरख गोरख जाप जपै हैं। पूजति नित जोगीन सबै हैं ॥ ४४ ॥
देवी देव देहुरा थान। नहिं मानहि किह[2] नर अग्यान।
तप जप तीरथ कोइ न जानहिं। किउहूं परमेशुर नहिं मानहिं ॥ ४५ ॥
भाउ भगति को नाम न लेंय। अरथी मूढ नहीं समझेंय।
गुरु क्रिपा बिन सुधरहिं नांही। फसे जु जंत्र मंत्र के मांही ॥ ४६ ॥
सुनि श्री सतिगुर दई निदेशु[3]। तुम गमनहु अबि तिसही देश।
सतिनाम को दिहु उपदेशू। गुरमुख पंथ द्रिडाउ विशेशू ॥ ४७ ॥
फिर्या कटारा बाक उचारा। मंत्र जंत्र को बल तिन धारा।
बदैं न काहूं[4] देहिं खदेर[5]। मार देति बैरी बिन देरि ॥ ४८ ॥
बिना शकति किमि तहां सिधावैं। सतिनाम किमि तिनहुं जपावैं।
ह्वै प्रसन्न तिन संग उचारा। अबि ते फुरहि सु बाक तुमारा ॥ ४९ ॥
शकति बिसाल होहि तुम मांही। तुम ढिग मंत्र जंत्र फुरि नांही।
जहिं कहिं मठ जोगी को होइं। दिहु निकास पुन भगनहु सोइ ॥ ५० ॥
जोगी तुम को देखि न सक्कैं। भ्रम चित होइ भागवो तक्कैं।
धरमसाल सभि ग्राम करावहु। भजन कीरतन करि सुख पावहु ॥ ५१ ॥
नाम दान इशनान द्रिडाइ। पावन देश करहु सभि जाइ।
आनि मिलहिं नर गन तुम जोइ। पूजहिं चरन बिनै कहिं सोइ ॥ ५२ ॥
इमि कहि सिद्धि सिद्धि गुर दीनसि। दे बरदान बिदा जुग कीनसि।
नमसकार करि धरि पग ध्याना। प्रभु आग्या ते कीनसि प्याना ॥ ५३ ॥
बड जोगी के मठ तहिं गए। त्रास दीन सिसु दारुन भए।
तबि तिन मंत्र जंत्र बल लावा। उलट पर्यो जोगी दुख पावा ॥ ५४ ॥
अगनि लगी तन मनहुं बिसाला। निज ते बडो जानितिस काला।
भयो महंत पलावनि तबै। जोगी अपरन ठहिरहिं सबै ॥ ५५ ॥

1. साधन। 2. किसी को भी। 3. आज्ञा। 4. किसी की परवाह नहीं करते। 5. भगा देते हैं।

देखि बाज को खग जिम भाज। जनु म्रिग चले केहरी गाज।
तिस मठ को करि भगन गिरावा। पिखि लोगन को गन तबि आवा॥ ५६॥
करि बिचार नर करति उचारी। जोगी पीर हमारो भारी।
इन को देखि सु गयो पलाई। महांबली इहु परहिं लखाई॥ ५७॥
निकट चलो बूझहिं अबि इन्हैं। हैं इह कौन पठाए किन्हैं।
गुर गोरख को मठ जिन्ह गेरा। डरे नहीं तप तेज बडेरा॥ ५८॥
जबि नर मिलि आए समुदाए। इन दोनहु गुर शबद सु गाए।
भजन कीरतनि सुनि करि सारे। भए नम्रि मुख नमो उचारे॥ ५९॥
प्रेम बध्यो सभि भाउ करंते। निकटि होइ इक मने सुनंते।
सतिगुर बर ते भे सिक्ख आइ। सत्यनाम इन मंत्र द्रिडाइ॥ ६०॥
गुरमुख भए भगति को लागे। दीरघ भाग भाल जिन जागे।
मन बांछति को जाचति जबै। इन वर ते प्रापत हुइ तबै॥ ६१॥
धरमसाल सुंदर बनिवाई। सति संगति निति ह्वै समुदाई।
अपर हुते मठ जिस जिस थान। करि करि भगन दए बच मानि॥ ६२॥
तहां धरमसाल बनवाइ। नामु दान इशनान द्रिडाइ।
जंत्र मत्र तहिं ते करि दूर। देश बिरति सिक्खी सुख पूर॥ ६३॥
दुरमति सभि की कीनि बिनाशु। पूरति भए सभिनि की आस।
अज़मत अपुनी दे दिखराइ। परे चरन मानव समुदाइ॥ ६४॥
भांति अनेकन अरप उपाइन। सति संगति दें भोजन आइन।
सगरो देश निहाल बिसाले। गुर सिक्खी कै मारग चाले॥ ६५।
फिरे कटारे इस बिधि देश। सत्यनाम दीनसि उपदेश।
कबि कबि दरशन गुर को आवहिं। पूजन करि पुन तहां सिधावहिं॥ ६६॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे "बेनी पंडत फिरे कटारे को" प्रसंग बरननं नाम दुइ शशटी अंशु॥ ६२॥

अंशु ६३

बालक जिवावन, अकबर प्रसंग

दोहरा

सतिगुर दीनानाथ जी दया सिंधु सिरमौर।
अधिक प्रकाशति जग भए सम नहिं को कित और ॥ १ ॥

चौपई

उचित त्रिलोकी दुख के हरता। गोइंदवाल पर क्रिपा सु करता।
जथा अजुध्या रघुबर प्यारी। प्रजा सरब सु दै दै पारी ॥ २ ॥
जिमि श्री क्रिशन द्वारका रहे। निज ढिग बासन[1] के दुख दहे[2]।
तिस बिधि सतिगुर गोइंदवाल। नाना संकट कटे कराल ॥ ३ ॥
अपर कशट की गिनती को है। दारुन काल न आन सको है।
अवधि बिते न नर जो मरि जाइ। क्रिपा करहिं तिस देहिं जिवाइ ॥ ४ ॥
पुरी बिखै नहिं म्रितु को पावहि। गुर प्रताप ते जियहि रहावहिं।
जिसके घर को नर मरि जाइ। सो उठाइ गुर आगै ल्याइ ॥ ५ ॥
तबि क्रिपाल निज चरन छुहावति। तात काल तिस म्रितक जिवावति।
जिस को नर उठाइ लै आवहिं। सो निज पग ते सदन सिधावहि ॥ ६ ॥
इमि प्रताप गुर को नर पाइ। बसहिं सुखी कीरति बिरधाइ।
प्रापत तन मन की कल्यान। नर अरोग निति रहैं सुजान ॥ ७ ॥
सभिहिनि ते बरध्यो परवार। भए धनी नर दारिद टारि।
खान पान ते अखुट भंडार। नहिं चिंता किसु रिदे मझार ॥ ८ ॥
'धंन धंन' सतिगुर को कहैं। द्वारे पर निति बंदति रहैं।
जहिं कहिं बैठहिं गुरू सराहैं। समता रामचंद की प्राहैं ॥ ९ ॥
बल्लू सों आग्या कहि रखी। पुरख कि इसत्री जो होई दुखी।
तिह की सुधि तबि आनि सुनावहु। कहि हम सों तिह कशट मिटावहु ॥ १० ॥
बिधवा बसति पुरी छत्रानी। हुतो एक नंदन सुखदानी।
महां कशट ते सुत को पाला। बिन भरता ते प्रिय सु बिसाला ॥ ११ ॥

1. निकट रहने वालों के। 2. दु:खों का नाश किया।

इक दुइ दिन तिस को तप आवा। तात काल तिसु तन बिनसावा।
आधी निसा हुती तिस काला। रुदति त्रिधा पिखि सुत ग्रस काला ॥ १२ ॥
शोक करति बिरलाप पुकारा। हे सुत मैं अबि लौ तुझ पारा[1]।
सुख तोरो नहिं देखन कीना। गयो कहां तूं मोहि बिहीना ॥ १३ ॥
अपने संग लेहु हे नंदन। मैं करिहौं निज प्राननि कंदन।
कहां करों जिय कै पशचाती। इक अलंब तूं मम सुख थाती ॥ १४ ॥
इत्यादिक बहु ऊच पुकारति। महां शोक महिं केस उखारति।
सिर पीटति ऊची धुनि रोई। अति संकटि ते धीर न होई ॥ १५ ॥
जाम जामनी जबि रहि शेष। उठे जाग तबि प्रभू विशेष।
विधवा ने निज सुत उचवाइ[2]। गुरू द्वार पर पायहु आइ ॥ १६ ॥
रोदति ऊची धुन को करि कै। तिह छिन कान परी सतिगुर कै।
दुखी बिलापति सुनति क्रिपाल। सहि नहिं सके रिदे तिस काल ॥ १७ ॥
निकरि देखि बल्लू संग कह्यो। कौन ब्रिलापति दुख जिन लह्यो।
जाहु निकट तिसु रुदन हटाओ। धीरज दे करि इमि समझाओ ॥ १८ ॥
अंम्रित वेला सभि फल वारो। प्रभु सिमरन को नाम संभारो।
छिमा करहु होवन लगि प्राती। उदे सूर ते दुख हुइ हाती ॥ १९ ॥
बल्लू सुनि करि बाहरि आयो। देखि त्रिधा को तबि समझायो।
सतिगुर आग्या दीनसि तोहि। अंम्रित समै तृशनी होहि ॥ २० ॥
होति प्राति तब नंदन तेरा। देहिं जिवाइ न करही देरा।
शबद रुदन को नही उठावहु। बैठी रहहु राम गुन गावहु ॥ २१ ॥
सुनि बल्लू के बच सुखवारे। जियहु पुत्र-निशचै चिति धारे।
तऊ शोके ते पीडति भारी। ऊची कूक सु त्रिया पुकारी ॥ २२ ॥
करन लगी बिरलाप घनेरा। मुझै अलंब सतिगुरू तेरा।
सुत बिनु मेरो की जग नाही। इक पुत्रा मैं संकट मांही ॥ २३ ॥
शरन आप की आनि रहे हम। इस की लाज बिचारहु उर तुम।
'हाइ हाइ' कहि कूक पुकारहि। पीटति सिर के बार उखारहि ॥ २४ ॥
तबि बल्लू ने आन सुनाई। श्री प्रभु मैं कहि बहु समझाई।
सुनति रुदन पुन करति घनेरा। विधवा पुत्र मर्यो घर गेरा ॥ २५ ॥
तबि क्रिपाल निकसे निज द्वारे। गए तहां जहिं रुदन उचारे।
निज पग पंकज सीस छुहायो। म्रितक बाल ततकाल जिवायो ॥ २६ ॥
सुत समेत करि गुर को बंदन। गमनी सदन संग करि नंदन[3]।
श्री गुर अमर गए निज थान। बल्लू सों इस रीति बखान ॥ २७ ॥

---

1. पालन किया। 2. उठवा कर। 3. पुत्र।

म्रितक जिवावन भली न बात। याते अबि इस ते उपराति।
नर त्रिय म्रितक होइं कबि नांही। जब लग तन धरिं हम पुर मांही ॥ २८ ॥
जमु को ठाक दियो तिसु काल। जो सभि जीवन करतो काल।
गोंइदवाल विखे नहिं आवहु। किसके प्रान नहीं बिनसावहु ॥ २९ ॥
दोइ बीस संमति लौ सतिगुर। ले गादी को बसति भए पुरि।
तबि लौ इसत्री पुरख अनंदे। किसके नहिं जमु प्राण निकंदे ॥ ३० ॥
जुत परवार बसे सुख पाई। जमु को त्रास दियो बिसराई।
अचरज चरित गुरू के महां। दीपक बरैं तेल नहिं जहां ॥ ३१ ॥
सिकता महिं ते तेल निकासहिं। सिकता को जल करि त्रिपतासहिं[1]।
जल पर पावक परम प्रजारहिं[2]। पावक चंद्र सद्रिस करि डारहिं ॥ ३२ ॥
चंद दिनिंद मनिंद बनावहिं[3]। छिति पर आन दिमिंद छुवावहिं।
छिति को वायु समान चलावहिं। वायु को सम मेरु टिकावहिं ॥ ३३ ॥
मेरुधूर कन करहिं उडावहिं। धूली कन को सैल बनावहिं।
सैल तुंग थल गरत देहिं करि। गरत गिरे को देहिं सुरग बर ॥ ३४ ॥
सुरग देव आवश्यक होइ। गेरहिं नरक न बिलमहि[4] कोइ।
नरक जातना जीव जु सहैं। गुर करुना ते मुकति सु लहैं ॥ ३५ ॥
बिधि प्रपंच मिरजाद बिगारहिं। बिगरे की मिरजाद सुधारहिं।
अचल चलावें, चलत थिरावें। राउ रंक, रंक राउ बनावें ॥ ३६ ॥
इमि अचरज सतिगुर के खेल। जिन को कोइ न साकस पेल[5]।
चहैं सु करहिं प्रभू समरत्थ। भंनण घडन जिनहुं के हत्थ ॥ ३७ ॥
तदपि जु श्रावति चली अनादि। राखन हेतु रखहिं मिरजादि।
दया सिंधु सिख बतसल महां। जस विसाव्रित भयो जहिं कहां ॥ ३८ ॥
निज पुरि मैं गुर पुरख अगाधि। बरजी आधि रु ब्याधि उपाधि।
तबि अकबर दिल्ली ते आवा। सलिता उतरि सिवर निज पावा ॥ ३९ ॥
लवपुरि को गमनति तहिं रह्यो। निकट होइ गुरु के सिक्ख कह्यो।
हज़रत ! सो सतिगुर इस पुरिहैं। जिन को बचन आपको फुरहै ॥ ४० ॥
सुनि अकबर ने रिदे बिचारी। गढ़ चितौड की बात चितारी[6]।
धरि प्रतीत दरशन को चाह्यो। उत्तम लीन उपाइन पाह्यो ॥ ४१ ॥

1. तृप्त कर देते हैं। 2. जला देते हैं। 3. चंद्रमा को सूर्य के समान बना देते हैं। 4. देर। 5. उलटा नहीं सकता। 6. याद की।

सुधि दैबे हित पठ्यो मुसाहिब। तीर बापिका बैठे साहिब।
बल्लू बोल्यो बंदति हाथ। पातशाह! इहु दिल्ली नाथ॥ ४२॥
दरशन को आवति धरि भाऊ। चहिय पांवडे इस अगुवाऊ।
इमि कहि आइसु ले उतलाइव। रुचिर पटंबर बहु मंगवाइव॥ ४३॥
चल्यो सिवर ते अकबर शाहू। असवारी तजि आदिक बाहू[1]।
तहिं ते करे पांवडे पावन। म्रिदुल पटंबर हित सुख पावन॥ ४४॥
शुभ मति शाहु बिलोकति कर्यो। ऊपर पांव न तिस के धर्यो।
निज कर ते उठाइ निखारे[2]। गमन्यो पगनि नंम्रता धारे॥ ४५॥
श्री गुर के समीप चलि आइव। अंग बिभूखन संग सुहाइव।
जाति रूप के जरती करे[3]। जाहर जोति जवाहर जरे॥ ४६॥
दमकहिं हीरा अरु गन मोती। बहु मोले शोभा बड मोती।
सुंदर सूखम बसत्र सुहावति। होति सतूयमान[4] चलि आवति॥ ४७॥
लाखहुं सीस नंम्रि जिस आगे। महां प्रतापवंति दुति जागे।
कंचन छरीदार अगुवाऊ। हाथ बैंत धारी समुदाऊ॥ ४८॥
बसत्र बिभूखन सुंदर जिन के। चहुं दिश टोलि चलति संग तिनके।
दरशन करति नंम्रि हुइ बैठे। अदब करे करि पाद इकैठे[5]॥ ४९॥
कुसल प्रशन करि आपस बिखैं। प्रेम करे गुर दरशन पिखैं।
नहीं देग ते अच्यो अहारा। इही नेम गुर रिदे चितारा॥ ५०॥
तूरन अकबर को मन प्रेरा। हाथ जोरि बोल्यो तिसु बेरा।
गुर साहिब! क्या खाना खावहु। किस महिं रुचि चित ते उपजावहु॥ ५१॥
सतिगुर कह्यो सु चित रुचि ऊना। होति ओगरा लवन बिहूना।
तिस को एक बार कर खावनि। अशट जाम लगि हुइ त्रिपतावन॥ ५२॥
सुनि सुलतान बिसमता पाइव। ब्रिध देहिं नहिं ओज रहाइव।
बहुर निबल ही करति अहारा। क्रांतिवंत तन शुभति उदारा॥ ५३॥
कर जोरति कहि 'मिहर करीजहि। वही तबर्रक मुझ को दीजहि।
तुम खुदाइ की जाति सुजाने। फुरहि स्राप बर जथा बखाने॥ ५४॥
दरशन पाइ भयो मैं धंन। देहु तबर्रक होहुं प्रसंन।
बिनै सप्रेम जाचना जानी। सुनि क्रिपाल मुख मधुर बखानी॥ ५५॥
बल्लू हमरो है जु अहारा। आनहुं जाइ सु बन्यो जि त्यारा।
गमन्यो शीघ्र थार भरि आना। धर्यो शाहु के अग्रय खाना॥ ५६॥

---

1. वाहन। 2. एक ओर करना। 3. सोने के कड़े। 4. स्तुति करना।
5. इकट्ठे करके।

कर पखार मुख पायव ग्रासा। स्वाद अजाइब जानि बिकासा।
जितक मधुरता उत्तम अहै। प्रिथम कवर महिं साद सु लहै ॥ ५७ ॥
रुचि जागी तबि दूसर खावा। तुरश स्वाद उत्तम को पावा।
बिसम्यो शाहु कहां यहि बात। दुतियो रस होयसि किस भांति ॥ ५८ ॥
बहुर तीसरो पाइस कौर। स्वाद सलवण पाइ तबि और।
चतुरथ महिं पाइस कहु पाइसि। ज्यों ज्यों अचि त्यों त्यों बिसमाइसि ॥ ५९ ॥
खटरस के शुभ स्वाद जि होइं। अचति शाहु ने लीने सोइ।
जनम धारि ओ स्वाद न पायो। लवन बिहीन ओगरो खायो ॥ ६० ॥
त्रिपति शाहु कर बहुर पखारे। बिसमति हुइ कर जोरि उचारे।
सिफ़त आप की कही न जाइ। आरफ[2] कामल[3] सभि सुख दाइ ॥ ६१ ॥
जेकरि मेरे पर अनकूल। हरख देहुं कुछ करो कबूल।
जो सेवा तुमरी हुइ जाइ। बनहुं सफल शांती मुझ आइ ॥ ६२ ॥
बिकसि प्रभु भुख तां सो कही। किसू वसतु की ख्हाश[4] न रही।
दिए गुरू ने अतुट भंडारू। खरचति खावति पाइ न पारू ॥ ६३ ॥
शाहु सहत उमरावन फेर। बेर बेर कहिं 'करहु न फेर'[5]।
कितिक ग्राम को पटा लिखाइव। श्री सतिगुर के चरन चढाइव ॥ ६४ ॥
इह सभि निरनै आगै करि हैं। जहां सुधासर कथा उचरि हैं।
दे करि गयो ग्राम सुलतान। बैठे शोभति गुर भगवान ॥ ६५ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'बालक जिवावन, अकबर प्रसंग' बरननं नाम तीन शशटी अंशु। ६३।

1. पहले ग्रास में। 2. ईश्वर से मिला हुआ। 3. पूर्ण। 4. इच्छा। 5. इंकार न करें। 6. दुखी।

अंशु ६४

सिक्ख लंगरे प्रसंग

दोहरा

रामदास हित ग्राम सभि लीन गुरू महाराज ।
जान भविख्यत सरब गति बरधन जथा समाज ।। १ ।।

चौपई

श्री सतिगुर इमि भगति बिचारति । बखशश करति देखि करि आरति ।
छोटी सुता सेव निति करै । लखहि प्रभू इमि भाउ सु धरै ।। २ ।।
पित करि नहिं जानहि बहु स्यानी । भाउ भगति को तन जनु भानी ।
मनहुं कीरती रूप कर्यो है । कै श्री निज बेस धर्यो है ।। ३ ।।
बड भागा पतिब्रता सुशीला । नंम्रिभूत निति सुमति गहीला[1] ।
अपर निकट को होन न पावहिं । इह धरि शरधा सेव कमावहि ।। ४ ।।
जथा प्रसंन होहि पित हेरि । तथा करहि निति सेव बडेर ।
पहिर रात ते करहि शनान । तबि पहुंचहि दरशन हित ठानि ।। ५ ।।
मन करि बंदन करहि सदीव । पिता प्रमेसुर जानहि जीव ।
बहुर सेव हित जबि कबि आवै । भानी क्रिति गुरू मन भावै ।। ६ ।।
इक दिन बैठी वनि कै दीन । बिनती सहत बोलिबो कीन ।
पित जी बडे शरीक हमारे । अधिक धनी गन रिदे हंकारे[2] ।। ७ ।।
सरब शरीकन ऊचा बोलहिं । बसत्रनि पहिरें ले बहु मोलहिं ।
कंचन के भूखन बहु पावहिं । हम को तरकें उर गरबावहिं ।। ८ ।।
सुनि तनुजा के मन की जानि । बोले श्री सतिगुर भगवान ।
समुख शिला इक परी निहारी । इतिक हेम महिं हुइ सभि कारी ।। ९ ।।
बसत्र बिभूखन होहिं कि नांही । जे करि बनहिं गहो कर मांही ।
पित जी आप सरब गति जानो । सभि बिधि समरथ चहहु सु ठानो ।। १० ।।
इमि कहि शिला बिलोकी जबै । दमकति हुई हेम की सबै ।
पित आइसु ते लीनि उठाइ । निज अर सुत को भूखन पाइ ।। ११ ।।

---
1. श्रेष्ठ बुद्धि ग्रहण करने वाली । 2. अहंकारी ।

कहति भए गुर करुना धारि। हम तो राखहिं नही अगार।
होहि तुमारे ऐश्वरज भारी। जाच्यो यांते लेहु अगारी ॥ १२ ॥
ज्यों ज्यों पित बोलति अनकूल। त्यों त्यों भानी हुइ सुख मूल।
रहै नंम्रि बहु सेव कमावहि। अनुसारी हुइ सदा रिझावहि ॥ १३ ॥
गुर पुरि ते त्रै कोसिक ग्राम। हुतो कोइ तिलवंडी नाम।
तहिं सिख इक खत्री जिह जाति। इक पग हुतो चलति लंगरात ॥ १४ ॥
निति शरधा धरि दधि को ल्यावति। धरति प्रीति सतिगुरू खुलावति।
करति सेव बीत्यो चिरकाल। अपनो नेम रख्यो प्रतिपाल ॥ १५ ॥
जे बरखा बरखहि बहु भारी। आनहि दधि को लाइ न बारी।
टूटी टंगरी काशट पर धरि। समैं सीत के ल्यावति करि पर ॥ १६ ॥
इक दिन दही लिये कर चल्यो। ग्राम चौधरी मग महिं मिल्यो।
हासी करि तिन गहिबो कीनि। लई काठ की टंगरी छीन ॥ १७ ॥
कहति भयो 'नित गुर ढिग जावहिं। प्रेम धारि दधि सदा खुलावहिं।
साबत टंगरी करी न तोहि। बिरथा[1] श्रम तेरो सभि होहि ॥ १८ ॥
आवति जाति चरन लंगरात। बहुत खेद धरि पहुंचहिं प्राति।
इह भी कशट न तेरो खोवा। क्या अचरज तुव दिश नहिं जोवा ॥ १९ ॥
म्रितक नगर के कितिक जिवाए। अजमत जिनकी जग अजमाए।
क्या दुरमति तेरे महिं जानी। क्रिपा द्रिशटि नहिं देखन ठानी ॥ २० ॥
सुनि खत्री कहि 'नहिं अटकावहु। समो जाति बीत्यो इस थावहु।
सतिगुर मेरे बे परवाहू। चहैं सु करहिं एक छिन मांहू ॥ २१ ॥
जिमि रज़ाइ तिन की हम हेरहिं। हरखमान हुइ रहैं घनेरहिं।
भलो जीव को जिमि हुइ जाइ। तिमि सिक्खन हित गुरू कराइं ॥ २२ ॥
इमि कहि जाचि सु लकरी लीनी। कितिक समें बीते तिस दीनी।
टंगरी लंगरी काशट पर धरि। मारग चल्यो उताइल को करि ॥ २३ ॥
देग थान महिं सतिगुर आए। थाल परोसु धर्यो अगुवाए।
सगरी संगति केरि अगारे। करे परोसन बिबिध अहारे ॥ २४ ॥
बैठि रहे सतिगुर तिस काल। मुख महिं ग्रास न पाइं रसाल।
गुर दिश पिखि करि सिगरी संगति। नहिं अहार मुख पावहि पंगति ॥ २५ ॥
बूझे बल्लू दास जु अहै। अचति नहीं प्रभु ! को बिधि अहै।
बैठी संगति त्यार अहारा। नहीं ग्रास किन मुख महुं डारा ॥ २६ ॥

---

1. व्यर्थ।

सुनि बोले गुर 'अचें न तबि लौ। सिख प्रेमी नहिं पहुंचै जबि लौ।
रोक्यो ग्राम चौधरी आवति। उपालंभ जुति हास सुनावति ॥ २८ ॥
इतने मैं चलि तूरन आइसु। दधि आगे धरि सीस निवाइसु।
ले सतिगुर ने अच्यो अहारा। अपर सरव त्रिपते छुधि टारा ॥ २८ ॥
पानि पानि करि पान पखारे। शरधा पूरन हेतु उचारे।
आज कहां तुम बिलम लगाई। आयव भोजन समों बिताई ॥ २९ ॥
हाथ जोरि तिन सरब प्रकाशी। करी पंच ने मो संग हासी।
गुर जे समरथ सेव कमाई। टंगरी लंगरी क्यों न बनाई ॥ ३० ॥
आवति जाति बाद[1] श्रम कर्यो। दुतिय पैर जे नहिन सुधर्यो।
काशट की टंगीआ मम छीनी। कितिक देरि करि मुझ को दीनी ॥ ३१ ॥
इस बिधि बिलम लगी मुझ आवति। जबि तिन दई आई उतलावति।
सुनि कै गुर सभि बिखै अलाई। बात नहीं हमरे चित आई ॥ ३२ ॥
शाहु हुसैन पास अबि जावहु। तिस ते निज टंगरी सुधरावहु।
जबि तूं मिलहिं जाइ धरि भाऊ। पैहहिं टंगरी बिलम न काऊ ॥ ३३ ॥
मानि बचन गुर को तबि गयो। शाहु हुसैन निकट जा भयो।
इस प्रकार तिह हुतो सुभाऊ। निकट जु आवै मार भगाऊ ॥ ३४ ॥
गुर आग्या ते सिख जबि गयो। इस को नहीं हतन किछु कयो।
बूझति भयो 'कहां ते आइसि। सिर निवाइ इन सकल सुनाइसि ॥ ३५ ॥
हाथ बंदि हुइ सनमुख बैठ्यो। देखि हुसैन शाहु तबि ऐंठ्यो[2]।
हतिकै कुतका झिरक उठाइव। डरि करि भाग चल्यो उतलाइव[3] ॥ ३६ ॥
प्रिशट फेर जबि भाजति भयो। चरन दूसरो तस बनि गयो।
अचरज ह्वै करि हट्यो पिछारी। गहे चरन पर रह्यो अगारी ॥ ३७ ॥
मुझ लंगरे की टांग बनाई। अहै आपकी अधिक बडाई।
शाहु हुसैन बैनि तबि कहे। करन करावन औरे अहे ॥ ३८ ॥
श्री गुर अमरदास सभि स्वामी। करहिं आप, हम दें बदनामी।
अबि गमनो रहीए तिन शरनी। हम दिश ते कहु परनो चरनी ॥ ३९ ॥
सतिगुर पर ही धरो भरोसा। हम सम दास अनेक अदोशा।
सिख चरित्र सभिही बिसमाए। अचरज गति कुछ लखी न जाए ॥ ४० ॥
जब खत्री आयो चलि पास। बिकसे सतिगुर क्रिपा अवास।
महांराज सेवा फल दाता। सिख वतसल दे आतम ग्याता ॥ ४१ ॥

---

1. व्यर्थ। 2. अकडाया। 3. शीघ्रता से।

जहिं कहिं पूरन कीरति होई। पीर फकीर पिखहिं सभि कोई।
संत साध बैराग जती। दरसहिं सतिगुर को शुभ मती॥ ४२॥
इक दिन संगति सतिगुर पास। बैठी हुती ब्रिंद चहुं पासि।
बुड्ढे आदिक सिक्ख जु स्याने। हित बूझन के बैन बखाने॥ ४३॥
सिक्खी की रहिनी जिस ढाल। श्री मुख ते अबि कहहु क्रिपाल।
जिस महिं सिख बरतै गति लहै। भउजल बिखै बहुर नहिं बहै॥ ४४॥
सुनि ससि मुख ते सुधा समानी। सतिगुर करुना करी बखानी।
गुरू बाक द्रिड़ जिन करि माने। सो मम प्यारो सिख्य महाने॥ ४५॥
जागहि जाम जामनी रहे। मज्जन करि इकंत हुइ बहै।
मोरि सरूप रिदे मों धारे। गुरबानी को रिदे बिचारे॥ ४६॥
मन द्रिड करि कै सुरति टिकावै। प्राति होति लौ नाम अलावै।
धरम किरत करि संतन सेवै। पर त्रिय परधन कबहुं न लेवैं॥ ४७॥
निंदा झूठ न निठुर बखाने[1]। पर दुख दुख, पर सुखु सुखु मानै।
छुधा बिना नहिं खैबो करै। नींद बिना नहिं सुपतन परै॥ ४८॥
जे सुपतहि निज अवधि घटावहि। छुधि बिन खाइ रोग उपजावहि।
होहि न सत्तिनाम को सिमरन। सासि सासि जपु बिसर न इक छिन॥ ४९॥
परमेसुर को भाणो मानहिं। नहीं दोशु प्रभु महिं कबि ठानहिं।
आछो जान मुदति चित रहै। तन हंता को निति प्रति दहै॥ ५०॥
काम न क्रोध न लोभ न धारै। जथा लाभ संतुशट बिचारै।
आछो करम दिखाइ न चाहै। लाभ घटै पाखंड इस मांहै॥ ५१॥
नामदान इशनान न त्यागहि। निति प्रति इन ही सों अनुरागहिं।
हरि गुर की निंदा सुनै। भागहि तहिं ते कै तिसु हनै॥ ५२॥
छर[2] मतसर, त्रिशना को तजि कै। निज आछो जानहिं हरि भजि कै।
सुख परलोक चाहि करि सदा। जग सुख महि उर झहि नहिं कदा॥ ५३॥
गुर सेवन हरि सिमरन करनो। इस ते नीको अपर न बरनो।
शुभ मति इन कउ त्यागहि नांही। मिल्यो रहै सतिसंगति मांही॥ ५४॥
गुर बानी सों मनु अनुरागहि। पठति सुनति जबि मीठी लागहि।
तबि जानहि मम हुइ कल्यानहि। सुनि गुर शब्द कमावन ठानहि॥ ५५॥
इमि गुर कही, सुनीदै कान। गुर सिख्या सिख्यन सुख दान।
धरी रिदे महिं जे वडिभागी। सत्य नाम् जपिबे लिव लागी॥ ५६॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रिथम रासे 'सिक्ख लंगरे प्रसंग' बरननं नाम चतर शशटी अंशु॥ ६४॥

1. कठोर वाक्य न कहे। 2. छल।

अंशु ६५
बीबी भानी प्रसंग

दोहरा

घटि घटि ब्यापक सतिगुरू जिम अकाश सभि मांहि ।
सो जानहि इस भेव को क्रिपा द्रिशटि है जांहि ॥ १ ॥

चौपई

इक दिन देग सथल गुर गए । सिक्ख सरव ही संगी बहे ।
लवण बिहीन ओगरा खाइव । पानी पानि कीन त्रिपताइव ॥ २ ॥
खट रस को अहार शुभ भांती । सतिसंगति अचम्यो करि पांती ।
सूखम ओदन पाइस[1] घनी । सरपी सिता स्वाद सों सनी[2] ॥ ३ ॥
अनिक भांति सी सूप[3] बनाई । डाल मसाले स्वाद रसाई[4] ।
गोधुम चून[5] सु फलका करै । म्रिदुल पातरे बहु करि धरै ॥ ४ ॥
इत्यादिक शुभ होति अहारा । पिखि करि बुड्ढे वाक उचारा ।
श्री सतिगुर जी परम क्रिपाल । होति अहार अनेक रसाल ॥ ५ ॥
सो सभि संगति अचै सु चीन । आप ओगरा लवण बिहीन ।
इह सिख्यन के उचित न कोई । तुम बिन अचहि स्वाद रस भोई ॥ ६ ॥
जसु तुम अचहु चाहि करि चित मैं । सो सिख अचहि रीति इह हित मैं ।
तुमरे बिना खाहि नहि नीके । एव मनोरथ है मम ही के ॥ ७ ॥
बहु दिन को मैं चाहति रह्यो । आव सुनायो अवसर लह्यो ।
सुनि प्रसन्न बुड्ढे पर भए । इस प्रकार को उत्तर दए ॥ ८ ॥
गुरमुख संगति अरु मम मांही । भेद दुहिन मैं जानो नांही ।
मैं संगति के संग अभेद । सुख ते सुखी, खेद ते खेद ॥ ९ ॥
जो संगति रुचि करति अहारा । सो मुझ पहुंचै स्वाद सारा ।
करते चूरा बचन इमि कहे । देखो मुख मेरे महिं अहैं ॥ १० ॥
करि कै चूरा दिखावन कीना । सकल असन कन तिस महिं चीना[6] ।
पाइस आदिक देखनि करे । सभि महिं गुरू रूप निज धरे ॥ ११ ॥

---

1. पतले चावलों की खीर । 2. घी और खांड के स्वाद से मिला हुई । 3. रसोई । 4. स्वाद युक्त । 5. गेहूं का आटा । 6. देखा ।

आप अचावहिं अचवहिं आपे। आपे- सभि घर थाप उथापे।
सगरी अन्न अंश दिखराई। पुन श्री सतिगुर बरन सुनाई ॥ १२ ॥
दंतन जाड़न महिं लगि जोई। सिख को कौन दिखावन सोई।
परम हितू ब्रिध ! तूं बुधिवंता। निशचै मेरो इह मतंता ॥ १३ ॥
संगत अचहि प्रेम के नाल। सो मुझ पहुंचहि सभि ही काल।
संगति मो विन दूसर नांही। एक रूप जानहुं मन मांही ॥ १४ ॥
सुनि करि ब्रिध बचन सतिगुर के। महां प्रमोद प्रेम जुति धरि के।
चरन कमल पर सीस टिकायो। सुजस बिसाल करति हुलसायो ॥ १५ ॥
संगति अधिक ब्रिधी[1] गुर केरी। शुभ मति प्रापति भई बडेरी।
सिक्खी रीति महिद बिसतारी। बिसै बाशना सभि निरवारी ॥ १६ ॥
सतिगुर नेम सदा निरबाहैं। जामु जामनी जागन का है।
उठहिं क्रिआ निति की करि सारी। करहिं सौच संग म्रितका बारी ॥ १७ ॥
पुन मज्जहिं पहिरहिं पट निरमल। बैठहिं सतिगुर हुइ इकंत थल।
ब्रिति टिकाइ निज रूप मझारी। लेहिं अनंद तिस को हितकारी ॥ १८ ॥
भोर होति लौ ब्रिती टिकावें। अविचल अनंद रूप हुइ जावें।
दिवस चढ़े सिक्ख हुइ समुदाइ। दरसहिं सेवहिं सुख को पाइ ॥ १९ ॥
शबद रबाबी गावनि करें। संगति सहत सुनहिं मुद धरें[2]।
चिरंकाल लग ठांढे रहैं। किलक भीत महिं कर सों गहैं ॥ २० ॥
महां ब्रिध जीरन तन होइ। तप को तपहिं पिखहिं सभि कोइ।
देग सु त्यार होइ है जबै। संगति सहत अचहिं गुर तबै ॥ २१ ॥
इक दिन जागे प्रभू क्रिपाल। करी सौच मज्जे तिस काल।
हित दरशन के तनुजा भानी। पहुंची निकट मगति जिह भानी ॥ २२ ॥
तबि चौंकी पर सतिगुर चरे। ध्यान धरन हित बैठबि करे।
दौनु बिलोचन मुद्रित करि कै। अंतरमुखी ब्रिति को धरि कै ॥ २३ ॥
हुइ अडोल तबि लाइ सु ध्यान। शंभु समान गुरु भगवान।
हुतो हीन चौंकी इक पावा। पिखि भानी मन इमि ठहिरावा ॥ २४ ॥
हालहिं पिता इतहुं जबि होइं। चौंकी डोल जाइ थित जोइ।
छुटहि समाधि अराध अगाधू[3]। जिस हित जोगी जतन सु साधू[4] ॥ २५ ॥
परहि बिखेप ध्यान के मांही। बिरति अडोल टिकहि तबि नांही।
अपर वसतु तहिं पाइ न कोई। पावै तरे धरे हित जोई ॥ २६ ॥
चहुँ दिश द्रिगन चलाइ निहारा। नहिं समीप, जो देहि अधारा[5]।
उतलावति ने दीनसि हाथ। नहिं डोलै चौंकी तिह साथ ॥ २७ ॥

---

1. बढ़ गई। 2. दीवार में लगी कील को हाथ से पकड़ते हैं। 3. परमात्मा की आराधन की समाधि। 4. धारण करते हैं—साधते हैं। 5. सहारा।

चहुं पावे पर इक सम भारू। होति भयो सभि लीन सहारू।
तनु इसत्री करि कोमल कर हैं। भयो भार ते पीडत तर हैं॥ २८॥
तउ न कर्यो डुलावन कर को। बैठि रही धीर धरि उर को।
पावा रह्यो हथेरी गडि कै। नहीं निकासति तिह थल छडि कै॥ २९॥
पुरखन को दुशकरि[1] बहु जोई। भगति पिता की हित किय सोई।
प्राति होति लगि नांहिन हाली। मनहुं मूरती चित्र निकाली॥ ३०॥
भुजा सूंन कंधे लग भई। उतर्यो रुधिर लाल हुइ गई।
ध्यान हटावनि समो भयो जबि। कमल बिलोचन बिगसति भे तबि॥ ३१॥
बैठी सुता समीप निहारी। बहुरो दृशटि भुजा पर डारी।
थूल नसा श्रोनत भरि रह्यो। श्री सतिगुर बूझन हित कह्यो॥ ३२॥
इहु क्या कीन रही क्यों बैसी। भुज पर पीडनि दीखति ऐसी।
सुनि बोली बडभागा भानी। पित जी! पावै हीन पछानी॥ ३३॥
निकट बिलोकन कछु न कीन। जांते हाथ तरे मैं दीन।
डोले ते समाधि छुटि जाइ। राखी यांते सथित टिकाइ॥ ३४॥
तबि श्री सतिगुर तरे उतरिकै। हाथ निकास्यो प्रेम निहरिकै[2]।
गरत हथेरी बिखै निहारा। कह्यो 'खेद बीबी किमि धारा॥ ३५॥
पित जी! हमरी मति अनजानी। होइ न सकहि सेव गुन खानी।
निस बासुर मैं रहति बिसूरत। अहो आप परमेशुर मूरति॥ ३६॥
सफल नेत्र जे दरशन करे। हाथ सफल टहिल[3] जु अनुसरे।
रिदा सफल जिस महिं तुम बासो। चरन सफल तुम हित चलि जासो॥ ३७॥
सकल सरीर सफल बड भागे। जो रावर की सेवा लागे।
सुनि तनुजा के बचन सुहाए। पिखि दुश करम[4] कीनि जिसु भाए॥ ३८॥
हुइ प्रसन्न बर दयौ सुजाना। संतति तेरी बधै महांना।
सकल जगत की होवहिं पूज। जैसो चढहि चंद्रमा दूज॥ ३९॥
बड ऐश्वरज बधहि तिम आगे। जो तिन सेवहि सो बड भागे।
आगे बंस बिखै निपजैहैं। महां बली से जग महिं ह्वै हैं॥ ४०॥
शसत्र गहैं दुशटन को घावहिं। अपनो अधिक प्रताप वधावहिं।
परम धरम पीरी अरु मीरी। धरहि आप दे अपर तगीरी[5]॥ ४१॥
कलजुग महिं जहिं कहिं जैकारो। करहिं उधारन नरन हजारो।
सोढीवंस कहु बडि बडिआई। तैं करि भगति भले अबि पाई॥ ४२॥

1. दुष्कर, कठिन। 2. देख कर। 3. सेवा। 4. कठिन काम। 5. पूर्व की रीति बदलना।

तीनो क़ाल बिखै तुझ जैसी। हुइ, न है, होवहिगी ऐसी।
पिता गुरू जग गुर हुइ कंत। पुत्र, गुरू, होइ पौत्र महंत ॥ ४३ ॥
क्या अबि कहैं तोर बडिआई। जिसकी सम को ह्वै न सकाई।
अति प्रसन्न श्री अमर क्रिपाल। इत्यादिक बर दिये बिसाल ॥ ४४ ॥
सुनि कर जोरति उर सनिमानी। बडभागन ने बंदन ठानी।
पिति बानी साची निति जानी। बर देवन ते बहु हरखानी ॥ ४५ ॥
आइसु ले ग्रहि बिखै सिधाई। सरबोतम पद को निज पाई।
सदा भगति के बसि गुर स्वामी। देति अदेति जु अंतरजामी ॥ ४६ ॥
एक दिवस श्री अरजन लघु बय। खेलति अजर बिखै इत उत हुय।
बालक गुर ढिग जाइ न कोऊ। बरजे हुते प्रिथम ही सोऊ ॥ ४७ ॥
शमस बिहीनो जाइ न पास। असु आइसु गुर करि प्रकाश।
तबि श्री अरजन सहिज सुभाइ। जननी पित के ग्रहि दिशजाइ ॥ ४८ ॥
अंतर प्रविशे तहिं लग गए। गुर प्रयंक पर जहिं थित थिए।
पौढन समैं हुतो सभि जान। सेवक निकट थोरई थान ॥ ४९ ॥
भानी ने सुत जाति निहारा। थाइ गहिन हेतु डर धारा।
खेलति लगी देहु बहु माटी। ठांढो गहे पलंघ की पाटी ॥ ५० ॥
आवति जननी लग तहिं गयो। संग पलंघ के ठाढो भयो।
गहिन हेत जबि निकट सिधारी। पिखि क्रिपाल ने गिरा उचारी ॥ ५१ ॥
नहिं ले जाहु रहिन दिहु खर्यो। जुग करि सों गुर गहिबो कर्यो।
ऊपर को उठाइ तबि तोल्यो। गुरव भार लखि श्री मुख बोल्यो ॥ ५२ ॥
'भारी गुर जग महिं बिदतै है। वाणी को बोहिथ बड ह्वै है।
तबि श्री अरजन चरन उठाइव। ऊपर धरन प्रयंक लुभाइव ॥ ५३ ॥
गुरू देखि करि बाक बखाने। अबि ते ही गादी ललचाने।
अपने पिता पास ते लीजहि। तबि लगु धीरज धारि धिरीजहि ॥ ५४ ॥
सुनि करि पिता बाक अनकूले। अधिक क्रिपा लखि मन महिं फूले।
लघु सुत को गुर चरनन पाइव। ले करि गोद प्रमोदति ल्याइव ॥ ५५ ॥
तीनहुं पुत्रन को प्रतिपारति। पित सेवा महिं प्रीती धारति।
तिम ही रामदास बड भागे। निस वासुर सेवा महुं लागे ॥ ५६ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'बीबी भानी प्रसंग' बरननं नाम पंच शशटी अंशु ॥ ६५ ॥

अंशु ६६

पारो अपर मोहरी प्रसंग

दोहरा

इक दिन श्री सतिगुरू जी अमरदास सुख रासि।
कर्यो हकारन[1] एकलो पारो अपने पासि॥ १ ॥

चौपई

परस हंस आवसथा जांही। जड़ चेतन इक ते बिलगाही।
जिम पानी पै इक हुइ जाइ। हंस करहि दोइन प्रिथकाइ॥ २ ॥
तुरीआ महिं ब्रिति थित नित रहे। ढिग बिठाइ हित सों गुर कहे।
मन मेरे महिं अब इम आवै। गुरता गादी तोहि बिठावैं॥ ३ ॥
परमहंस मेरो ई रूप। परम अवसथा सदा अनूप।
बखशति हौं मैं जग गुरिआई। करहु उधार लोक समुदाई॥ ४ ॥
भगति जगति महिं अधिक बिथारहु। पर उपकार कार को सारहु।
कर जोरे पारो पग पर्यो। 'त्राहि त्राहि' करि बचन उचर्यो॥ ५ ॥
प्रभु जी गुर सिक्खी मुझि भावै। गुरिआई सतिगुरहिं सुहावै।
मुझ पर क्रिपा द्रिशटि कहु धरीए। गुर सिक्खी पद बखशन करीए॥ ६ ॥
कहि इमि गहे हाथ गुर चरना। बखशो आग्या मोरमि करना।
सुनति बिनै गुर अमर बखाना। जे कर सिक्खी महिं मन माना॥ ७ ॥
सदन आपने अविचलि जावहु। तन त्यागहु नहिं बिलम लगावहु।
मम चरनन महिं तेरी प्रीति। मो महिं मिलो आनु सिख मीत॥ ८ ॥
तोहि सहत मैं अपर शरीर। प्रविशौ सिक्खन के हित, धीर।
करने काज अनिक जग मांही। संत उधारन खलनि खपाही॥ ९ ॥
सुनि आग्या पारो कर बंदे। करि बंदन को रिदै अनंदे।
गमन्यो ग्रिह पहुंच्यो ततकाला। अधिकारी जे पिखे बिसाला॥ १० ॥
सरब समाज बांटि तिन दीनसि। बडवा बसत्र दरब रखि लीनसि।
नर ब्रिंदन को कह्यो सुनाई। इह गुर वसतु देहु पहुंचाई॥ ११ ॥

1. बुलाया।

इमि सभि हेरति तन तजि पारो। फूल माल गज तजै सुखारो।
सभिनि कर्यो ससकार बनाइ। जथा जोग चहीअहि जिस भाइ ॥ १२ ॥
श्री गुर बिखै आनि लै होवा। जिन अग्यान भरम को खोवा।
पुन डल्ले ते इक नर आइव। पारो को परलोक सुनाइव ॥ १३ ॥
सभि सिक्खन को मोह महांना। सिमरहिं पारो के गुन नाना।
म्रिदुल, सरलता, मुदता, मैत्री। बड जोधा मन शत्रु जैत्री ॥ १४ ॥
तरुवरु समसर पर उपकारी। सहन सील उर धीरज धारी।
सतिगुर सिक्खन को समुझाइव। इह अनंद के सिंधु समाइव ॥ १५ ॥
अस नर होति न सोचन जोग। ब्रह्म ग्यान सों जिन को जोग।
जिनहुं जनम बिशियन लग हारा। जथा जूप महिं दरब उदारा ॥ १६ ॥
नहिं गुर शबद जिनहु कबि सुन्यो। सति संगत सतिनाम न भन्यो।
से सोचस के जोग सभिनि के। जो ततपर नहिं गुरू जजन के[1] ॥ १७ ॥
कहि दासन को धीरज दीन। दीन मने जो प्रेम प्रबीन।
बीन सिख्य सभ ते खट लीन। लीन प्रेम महिं जिन मन कीन ॥ १८ ॥
नाम मोहरी छोटो नंदन। निकट हकार्यो कशट निकंदन।
आन कीनि तिन पद पर बंदन। श्री गुर पित को चहि अभिनंदन ॥ १९ ॥
पुत्र बिलोक्यौ सथित अगारी। खट संग दे सिख गिरा उचारी।
पारो परम हंस प्यारो। तज्यो सरीर सु धीर सुखारो ॥ २० ॥
डल्ले ग्राम अबहि चलि जाओ। जथा जोग करि सभि हरखाओ।
सुनति मोहरी ह्वै करि त्यार। पित बंद्यो अस्व भा असवार ॥ २१ ॥
सिक्ख खशट कौ संग मिलाए। अपरदास गन बोलि रलाए।
पंथ उलंघ डल्ले महिं गए। तिन के सदन प्रवेशति भए ॥ २२ ॥
सभिहिनि उठि कीनहुं सनमाना। बंदहिं चरन जोरि जुग पाना।
बैठे जाइ सभिनि के मांहू। कुशल प्रशन कहि करि सभि पाहू ॥ २३ ॥
पारो को सभि करैं सराहिन। जिस के समसर दूसर नांहिन।
कुलदीपक निज वंस उधारा। तन सुछंद तजि अंत पधारा ॥ २४ ॥
सुने मोहरी ते सुख पायो। हाथ जोरि सभिहूंन सुनायो।
सतिगुर पुत्र ! सुनहु तिन कीना। अधिकारी पिखि सभि कुछ दीना ॥ २५ ॥
सतिगुर कारनि जानि प्रबीन। बीन तीन वसतू रखि लीनि।
लीन ब्रिती परमातम जांहि। जाहि न कहूं अनंद के मांहि ॥ २६ ॥
सुंदर चंचल बली सुरंगनि। बिदति सभिनि महुं एक तुरंगनि।
जिसु की समता करहि न कोई। सतिगुर हेत रखी तिन सोई ॥ २७ ॥

1. गुरु पूजा में तत्पर नहीं।

सूखम बसत्र मोल मोल बहु केरे। पहिरनि उचित गुरू के हेरे।
ब्रिद दरब, इह वसतू तीन। इमि क्रिति करति त्याग तन दीन ॥ २८ ॥
सुनि करि बसे जामनी तहां। पारो के बरनति गुन महां।
प्राति होति करि के इशनाना। बिदा होइ करि कीन पयाना ॥ २९ ॥
अपर सिख्य मिलि कै समुदाया। गुर सम पूजन करि मन भाया।
जथा शकति दे भेट सुहाए। बिदा हेतु मग कुछ चलि आए ॥ ३० ॥
आइ मोहरी पुरी प्रवेशा। गुर पद बंदे नंम्रि विशेशा।
सभि पारो की गाथ सुनाई। धन, पट, बडवा, अग्र दिखाई ॥ ३१ ॥
पिखी उपाइन परो की जबि। सतिगुर रिदे बिचार कर्यो तबि।
रामदास जान्यो अधिकारी। वसतू दई सउंप करि सारी ॥ ३२ ॥
परम प्रेम ते कह्यो गुसाईं। इह पारो मम भेट चढ़ाई।
सो मैं तोहि बखश करि दीनी। अंगीकार करहु बडि पीनी ॥ ३३ ॥
चपल तुरंगन अंगन सुंदर। बली बिसाल ब्रिद गुन मंदर।
अपर न दीजहि, आप अरूढहु। पहिरहु तन पर अंबर रूढहू ॥ ३४ ॥
खरचहु दरब चाहि हुइ जिस मैं। नहिं अधिकार अपर को इस मैं।
ले करि नंम्रि होइ पद बंदे। गुर प्रसन्नता जानि अनंदे ॥ ३५ ॥
दिन प्रति होवति अति अनकूले। लखि गंभीर प्रेम को मूले।
अजर जरन आदिक गुन हेरे। सहत नंम्रता सेव घनेरे ॥ ३६ ॥
बखशहिं बखशश करहिं निहाल। संगति रहहि सदा अलबाल।
चहैं कामना प्रापति होवें। सिमरहिं नाम नाम दरस गुर जोवें ॥ ३७ ॥
भीर रहै बहु गोइंदवाल। चहति मुकति को तजि जंजाल।
जिस पर क्रिपा द्रिशटि परि जावहि। सो जन चार पदारथ पावहि ॥ ३८ ॥
इक दिन सखा बंधुजन मांही। हुतो मोहरी बातन प्राही।
बिबहारन की चरचा करें। रीति अनेक बोलबो धरें ॥ ३९ ॥
तहां मोहरी बात उचारी। जबि की हमने सुरति संभारी।
लाख टका इक थान अशेखा। अबिलौ नही बिलोचन देखा ॥ ४० ॥
नहिं भावहि सतिगुर को माया। करहिं हटावन ह्वै जहि दाया।
चाहति पिता गुरू जिस नांही। सो किस रीति आइ हम पाही ॥ ४१ ॥
तिन को दियो पदारथ आवहि। होइ जि नहीं कहां कर पावहि।
अंतरजामी गुरसभि जानी। नरन बिखै जिम पुत्र बखानी ॥ ४२ ॥
चितवति चित सुत शंका हरनी। दोश दिखावौं जस धन करनी।
अगले दिवस गुरू फुरमाइव। संगति महिं जेतिक सिख आइव ॥ ४३ ॥

जबि पहुंचहिं परसन कहुं हमैं। पैसे पंच ल्याइं तिह समै।
धरि धरि आगै बंदन करें। इमि गुर आग्या सिर पर धरें॥ ४४॥
सगरे नगर संगतां जेई। गुर आइसु सुनि सुनि करि तेई।
होति प्राति के सतिगुर बैसे। आवहिं सिक्ख भेट ले पैसे॥ ४५॥
धरि धरि आगै बंदन ठानहिं। दरसहिं सतिगुर प्रेम महांनहिं।
एक जाम लौ श्री प्रभु बैसे। लग्यो ढेर आए बहु पैसे॥ ४६॥
पुत्र मोहरी को बुलवाइव। ढिग बिठाइ करि पुन समझाइव।
इन को गिन करि लेहु संभारी। खरचहु जिह ठां चाहि तुमारी॥ ४७॥
मानि बाक तबि गिनिबे लागा। भए ब्रिंद देखति अनुरागा।
संख्या करि करि भे कर कारे[1]। बहुत पखारे बिन न उतारे॥ ४८॥
तबि श्री अमरदास बच कह्यो। धन को तुम सुभाव भी लह्यो।
जिस ते छुवति भए कर कारे। मन कारो हुइ लग बिवहारे॥ ४९॥
जे संचति करि रखीअति भौन। कहो ह्वाल होइ पुन कौन।
चितवनि ते अंतर हुइ कारा। अंत गमन नहिं संग सिधारा॥ ५०॥
प्रथमहिं संचन अघ करि होइ। जतन अनेकन ते अवलोइ।
पुन राखन महिं त्रास महाना। तसकर न्रिप आदिक बलवाना॥ ५१॥
जाइ त प्रान समेत दुखारे। भगति बिरोधी बिघन पसारे।
इस को त्याग अधिक सुखदाई। हरि सिमरन संचहु समुदाई॥ ५२॥
इह धन सभि को सार पछानहुं। कित हूं ते जिस त्रास न ठानहुं।
सुनहुं पुत्र इस महिं दुख घने। महां बली सभि जग महिं हने॥ ५३॥
हरि सिमरन धन ते सुख पावै। जनम मरन दारिद[2] बिनसावै।
सुनी मोहरी नै पित बानी। उर बिचार करि साची मानी॥ ५४॥
बहुरो जीवति जब लगि रह्यो। कबहुं न धन को मन ते कह्यो।
नीकी पित की बात बिचारी। बिमल बुधि प्रापति सुख भारी॥ ५५॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'पारो' अपर मोहरी प्रसंग बरननं नाम खशट शशटी अंशु॥ ६६॥

---

1. हाथ काले हो गए। 2. दरिद्रता।

अंशु ६७

गुरिआई दैन प्रसंग

दोहरा

बावन चंदन[1] सतिगुरू होवहिं जिन बन देश।
मल्य कर करति तरुवरुन को तिउं नर भगति अशेश ॥ १ ॥

चौपई

गोइंदवाल बसे इक थान। सकल देश भी भगति महान।
जहिं कहिं ते सुनि करि जग्यासी। आनंद धारि बसहिं गुर पासी ॥ २ ॥
चार पदारथ ठांढे द्वारे। देति जननि को खुले भंडारे।
जिम चित चितवहिं गुरू क्रिपाल। सो बिधि बनहिं आन ततकाल ॥ ३ ॥
इक दिन मज्जन करि गुर थिरे। भानी आइ दरस को करे।
पिखि तनुजा पर परम क्रिपाल। श्री मुख ते बोले तिस काल ॥ ४ ॥
रामदास अबि तन पर हरै। कहु पुत्री क्या तूं करैं।
छिन भंगर सभि अहैं सरीर। बिनसति तुरन न करिहो धीर ॥ ५ ॥
भानी महां चतुर सभि जानी। होति न कबहूं कूर पित बानी।
द्रिड निशचै धरि इसी प्रकारी। करति शीघ्र नक नाथ उतारी ॥ ६ ॥
श्री गुर पित के धरी अगारी। हाथ जोरि मुख बिनै उचारी।
प्रभु जी अपरकार क्या करिहौं। जे बिधवा के धरम, सु धरिहौं ॥ ७ ॥
किधौं चिता के ऊपर चरि हों। जर करि पति के संगि सिधरिहौं।
जो तुम आग्या होइ सु करि हौं। निशचै मरौं सु रिदै बिचरिहौं ॥ ८ ॥
सुनि श्री सतिगुर बाक बखाने। हे पुत्री सुनि सुमति महांने।
तन को राखि भयो जगदीस। अबि मैं करिहौं तुम बखशीश ॥ ९ ॥
रामदास की बय अबि नांही। पूरन अवधि आज दिन मांही।
तिन जीवन कौ आनि उपाइ। नहीं होति निशचै इम ल्याइ ॥ १० ॥
अपन आरबल[2] अबि मैं देवौं। हित परलोक गमन सुभ लेवौं।
इमि कहि रामदास बुलवाइव। निकट बिठाइ भले समुझाइव ॥ ११ ॥

1. एक प्रकार का चंदन। 2. आयु।

हे सुत तेरी अवध बिताई। मैं अबि जान लीनि अगुवाई[1]।
इक मत संमत आठ रु चारी। आरबला हमरे तन सारी ॥ १२ ॥
अब खट बरख इकादश मास। दय्‌ोस अशट दस शेश रहास।
सो अपनी हम तुम को दीनसि। प्रेम भगति मैं लीन प्रवीनसि ॥ १३ ॥
तोहि मोहि मैं भेद न रह्यो। इक सारूपता दोनहुं लह्यो।
जल को भर्यो होति घट जैसे। परै उदधि लहि इकता तैसे ॥ १४ ॥
तिमि सरूप मेरो इक होवा। क्यों हूं भेद परहि नहिं जोवा।
प्रेम भगति अस तव उर बसी। बसी कीनि मोकहु करि जिसी ॥ १५॥
पिखि बल्लू दिश आइसु दीनि। दीन मना जिन सभि सुनि लीनि।
लीन प्रेम मन जांहि प्रबीन। बीन नलेर लेहु लेहु सुभ चीन ॥ १६ ॥
करहु शीघ्र आनो मुझ पासी। पासी जम नहिं, सदा निरासी[2]।
रासी सुख प्रापति अबिनाशी। नाशी हंता बिषय उदासी ॥ १७ ॥
रामदास करिवाउ शनाना। नाना बसत्र आनि दुतिवाना।
पहिरावो नहिं देरु लगावहु। गावहु शबद अनंद उपजावहु ॥ १८ ॥
अपर सौज त्यारी करि देहि। देहि तजन को समा लखेहि।
सुनि करि बल्लू इमि गुर जी ते। जीते मन इंद्रै जिन नीते ॥ १९ ॥
अस श्री रामदास तिस बार। बारि बिमल ते मज्जति चारु।
चार पदारथ जिन दरबार। बार बिहीन[3] पाइ सभि सार ॥ २० ॥
बल्लू आने बसत्र नवीन। पहिराए सूखम दुति पीन।
श्री सतिगुर जी अमर क्रिपालू। प्रेम सहत सनमान बिसालू ॥ २१ ॥
कर सों पकरि आपने थान। बैठारे करि क्रिपा निधान।
भाल बिसाल सु तिलक निकास्यो। तिस ते महिद प्रकाश प्रकाश्यो ॥ २२ ॥
जोतिनि जोति सभिनि महांराजा। तिसहि सिंहासन मनो बिराजा।
नव निधि सिद्धां दुगन इनहुं ते। रिद्धां पूरन जगत जिनहुं ते ॥ २३ ॥
सभि को प्रेरक नित विन लिप्यो। भाल बिसाल काल तिस दिप्यो।
झोरी बिखै नारीअर पाइव। तीन लोक स्वामी सु बनाइव ॥ २४ ॥
पुन बल्लू सों कीनि बखान। मोहन अपर मोहरी आनि।
सभि संगत आवहि इस काल। दास, सिख्य छोटे सु बिसाल ॥ २५ ॥
मेरो हुकम सुनावनि करीए। सकल हकारहु बिलम प्रहरीए।
तूरन पढे बुलावन ठाने। जहिं जहिं जिन के हुते ठिकाने ॥ २६ ॥

1. पहले से। 2. आशा रहित। 3. बिना देर।

सुनि सुनि सभि महिं रौरा परिओ। चाहिसी गुरू पयानौ करिओ।
रामदास सतिगुरू बनाए। बिसमति बात सुनति चलि आए॥ २७॥
भाई बुड्ढे आदिक सारे। पहुंचे सिक्ख आइ गुरद्वारे।
दोनहुं पुत्र आइ ततकाल। जबि पूरन भा सभा बिसाल॥ २८॥
बोले प्रथम जुगम सुत साथ[1]। रामदास कहु टेकहु माथ।
होइ नंम्रि इन घाल कमाई। अजर जरन गुन जुति समुदाई॥ २९॥
मोहन जिह सुभाव मसताना। नहिं राखहि किह की कबि काना।
सभि मैं बोल्यो निवौं न आगै। हमरी बसतु देनि इन लागे॥ ३०॥
चिरंकाल रहि सदन हमारे। करी गुजर सभि जुति परवारे।
उचित बैठिबो तुमै पिछारी। अहै मालकी सरब हमारी॥ ३१॥
अपर सबंधी रावरि केरे। रहैं समीपी ऐश्वरज हेरे।
इह भी है तिन सभिनि समाना। अबि पद दैबे लगे महाना॥ ३२॥
हम रावरि के नंदन अहैं। गुरता पद ते छूछे[2] रहैं।
तऊ न किउंहूं माथ निवावहिं। सतिगुर के सपूत कहिलावहिं॥ ३३॥
जबि मोहन को ऐसे लह्यो। पुत्र दूसरे सों तबि कह्यो।
सिक्खी पद नंदन! तुम लेवहु। नहिं लेवहु नउ अबि कहि देवहु॥ ३४॥
सुनति मोहरी रिदे बिचारा। श्री नानक प्रसताव चितारा।
पुन श्री अंगद कीनसि ऐसे। सरब ब्रितांत बिचार्यो तैसे॥ ३५॥
जिस के जागैं भाग बडेरे। पूरन क्रिपा द्रिशटि तिह हेरे।
घाली घाल परै जिस थाइं। इस बडिआई को सो पाइ॥ ३६॥
करै ईरखा कैसिहूं कोई। मिटहिं नहीं उलटो दुख होई।
यांते श्री पित के अनुसारी। इस महिं शोभा होइ हमारी॥ ३७॥
इमि बिचार करि ठांढो होवा। सगरी संगति ने तबि जोवा।
बुड्ढे आदि जि सेवक सारे। खरे भए गुर सुत पिछवारे॥ ३८॥
मान मोहरी पित के बैन। करि अनंद जुति फुल्यत नैन।
रामदास के चरनी पर्यो। 'धंन धंन' सभिहिनि तबि रर्यो॥ ३९॥
बहुरो सगरी संगति हेरि। पर चरन पर तिस ही बेरि।
धरि धरि सरब उपाइन आगे। बंदहिं कर जोरहिं बड भागे॥ ४०॥
सथित भए सभि ही तिस काला। बोले श्री गुर अमर क्रिपाला।
पुत्र मोहरी करहु बखाना। रामदास को क्या करि जाना॥ ४१॥
किमि जानहिं हम ते पशचाती। चित की ब्रिती कहो जिस भांती।
हाथ जोरि तबि सभि महिं कह्यो। सुनहु पिता जी! मैं जिमि लह्यो॥ ४२॥

1. दोनों पुत्रों से। 2. खाली।

श्री नानक श्री अंगद स्वामी। त्रितीए तुम हो अंतरजामी।
सो सरूप इह चौथो होवा। श्री गुरु रामदास इमि जोवा ॥ ४३ ॥
सुनि गुर जुति सभि भए प्रसंन। पुत्र मोहरी तूं बड धंन।
सभि ते श्रेशट बुद्धि उदारे। मिल्यो सदा तूं संग हमारे ॥ ४४ ॥

दोहरा

भयो सभिनि को मोहिरी[1] नाम मोहरी तोहि।
कीनो सारथ[2] सो अबहि मम अभेदता होहि ॥ ४५ ॥

चौपई

इक्की कुल हुइ संत उधारे। तुम ने ब्याली जग निसतारे।
सुनति मोहरी कहि बडिभागे। धरम राइ लेखा ले आगे ॥ ४६ ॥
तिह लेखे ते जबि छुट जय्यै। तबि उधार निज कुल को पय्यै।
सुनि गुर कह्यो अछत तन मोही। लेखा दियो चुकाइ जि होही ॥ ४७ ॥
धरम राइ के निकट न जै हो। पंथ अपर ही हम ढिग ऐहो।
तूं मम सिक्ख पुनीत सु भयो। सिक्खी पद मैं तो कहु[3] दियो ॥ ४८ ॥
संतति ब्रधहि समूह तुमारी। तिन को सिक्खी दीन अगारी।
तुव कुल पूजहि मोकहु नीति। अपर न चीत धरहि कबि प्रीति ॥ ४९ ॥
मैं ही देव सु पित्र जठेरे। मैं ही इशट देव कुल तेरे।
इमि संवाद सुन्यो जबि कान। रामदास जी कीनि बखान ॥ ५० ॥
अधिक प्रेम लोचन जल छावा। गुर चरित्र हेरति बिसमावा।
श्री प्रभु मुझ सिक्खी पद दीजहि। आप मोहरी कहु गुर कीजहि ॥ ५१ ॥
मैं हों दास आप को जैसे। निज मन ते जानति इन तैसे।
गुरता उचित जुगम तुम नंदन। मो कौ उचित इनहुं पद बंदन ॥ ५२ ॥
श्री गुर सुनति प्रसंग चितारा। हम नै देनो हुतो तुमारा।
पूरब कह्यो हुतो बरदाना। तिस को देनि समो अबि जाना ॥ ५३ ॥
अति गरीब इहु संतति मेरी। निर हंकार, न हुइ किस बैरी।
कीजहि इनकी निति प्रतिपाला। मिले रहहु करि प्रीति बिसाला ॥ ५४ ॥
आन इकत्र भयो पखारू। हेरहिं सतिगुर के बिवहारू।
उठि करि बड भागन तबि भानी। पित आगे कर जोरि बखानी ॥ ५५ ॥
हे प्रभु तुम बखशी गुरिआई। रहहि हमारे बंस, सदाई।
होहि न अस को दास अगारी। करि सेवा लेवहि पद भारी ॥ ५६ ॥

---

1. श्रेष्ठ। 2. सार्थक। 3. तुझे।

बर निज देहु न जावहि आन। रहै सथिर अबि इस ही थान।
सुनति क्रिपाल होहि बच कहे। नहिं कित जाहि तुमहु घर रहे ॥ ५७ ॥
तऊ बिमल सलिता जल चलिता। पायहु बंधन आगे ढलता।
होहिं कलेश उपद्रव भारे। जिन कउ को न सकहि निखारे ॥ ५८ ॥
लछमी श्री नानक ढिग गई। द्वादश कोस दूर थिर थई।
खशट कोस श्री अंगद राखी। निकटि होनि को तिनहुं न भाखी ॥ ५९ ॥
आनि हमारे ठांढी द्वार। कर्यो आपनो जोर उदार।
पैसकार अंतर नहिं भयो। खरी रही दर पर हित लयो ॥ ६० ॥
अबि तुमरे घर बिखै प्रवेशी। बिघन कलेशन बिखै बिशेशी।
तऊ अलेप रहहिं इस मांही। इस के दोश सकहिं छ्वै नांही ॥ ६१ ॥

दोहरा

इस प्रकार बर गुर दए मुदति सुता हित मानि।
रामदास श्री सतिगुरू कीने बिदति जहान ॥ ६२ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे 'गुरिआई दैन' प्रसंग बरननं नाम सपत शशटी अंसू ॥ ६७ ॥

---

1. कोई हटा नहीं सकेगा। 2. छू नहीं सकेंगे।

अंशु ६८

श्री अमरदास बैकुंठ गमन प्रसंग

दोहरा

बुड्ढे संमत[1] गुरू हुइ, पैसे पंच नलेर।
रामदास की भेटि धरि क्रिपा द्रिशटि को हेरि॥ १॥

चौपई

करि प्रदच्छन फिर चहुं ओरे। बंदन करति भए कर जोरे।
तबै मोहरी संगति ह्वै कै। नमो मोहरी किय सिर नैकै॥ २॥
पुन सभि सिक्खन कीनसि बंदन। जानि गुरू गन पाप निकंदन।
इमि दै करि सभि जग गुरिआई। हित प्रलोक ह्वै त्यार गुसाईं॥ ३॥
नेत्र प्रफुल्लित जनु अरबिंदा। दिपत बदन दुति इंद मनिंदा।
दासन देति अनंद बिलंदा। सुधा गिरा दुख दुंद निकंदा॥ ४॥
जहिं कहिं प्रगट बिसाल प्रसंगा। तन को तजहिं सुछंद उमंगा।
सुनि सुनि निकट ग्राम नर जेई। हेत दरसबे पहुंचहि तेई॥ ५॥
बांहन पर अरोह कै आए। को पाइन ते तूरन धाए।
दुरलभ दरशन बड फल दाता। सुनि अस को न आइ उमहाता॥ ६॥
चहुं दिश मग आवहिं समुदाए। पुरि प्रविशै गुर दरशन पाए।
श्री अंगद को नंदन दातू। पूरब आइ प्रहारी लातू॥ ७॥
तबि को संकट चरन मझारा। होति असथि महिं पीर उदारा।
लज्जित निकट नहीं चलि आइव। बिनती करि कै नहिं बखशाइव॥ ८॥
सो सुनि कै श्री अमर पयाना। रिदे बिखै इमि चितवन ठाना।
निस बासुर दुख लहौं घनेरा। बखशावौं तिन ते इस बेरा॥ ९॥
अपनि कुमति ते मैं नहिं जाऊँ। सो तो महां क्रिपाल सुभाऊ।
देखति दया करें दुख हरिहीं। जिमि जाचें तिमि दैबो करिहीं॥ १०॥
बिन बखशावन कशट घनेरा। अरु बिगरहि परलोक सु मेरा।
आज समां फिर हाथ न आवै। तिन के जियत मिलिन बनि आवै॥ ११॥
इमि बिचार करि तूरन चाला। पहुंच्यो पुरि महिं प्रेम बिसाला।
औचक जाइ चरन सिर धर्यो। 'त्राहि त्राहि' हुइ दीन उचर्यो॥ १२॥
श्री सतिगुरु जबि देखन कर्यो। भयो दीन करि प्रेम सु पर्यो।
सत मानति करि समुख बिठायो। नमसकार करि भ्रिदुल अलायो॥ १३॥

---

1. बुड्ढे के परामर्श से।

मो पर क्रिया करी तुम आए। धंन भए हम दरशन पाए।
कौन काज मैं करों तुमारा। जिस ते सफलहि जनम हमारा ॥ १४ ॥
हाथ जोरि दातू बच भाखे। करो काज मम जस अभिलाखे।
अपराधी मैं प्रभु, तुमारा। होइ ढीठ जवि चरन प्रहारा ॥ १५ ॥
मतसर अगनि दही मम छाती। दुतिये मिल्यो कुसंग उतपाती।
तिन करि मति बावर मम होई। बखशावन चाहति अबि सोई ॥ १६ ॥
लज्जित रह्यो न तुम ढिग आइव। करी अवग्या दुख फल पाइव।
क्रिपा निधान छिमा तुम धारो। उर गंभीर धीर हित सारो ॥ १७ ॥
सुनि श्री अमरदास तबि बोले। तुम सतिगुर के पुत्र अडोले।
मन तन करि मैं दास तुमारा। अबि प्रलोक होवति मम त्यारा ॥ १८ ॥
रामदास अबि सतिगुर भयो। निज पद मैं तिन को शुभ दयो।
क्रिपा द्रिशटि ते देखत करीअहि। तुम हो वडो बिघन गन हरीअहि ॥ १९ ॥
इन को सुत गुरता जबि पावैं। समो पाइ सो तुम ढिग आवैं।
सो जबि करहि सपरशन हाथ। हरहि सरब संकट तिह साथ ॥ २० ॥
दासू आइ मिल्यो सुख पाए। अपर लोक दरसहिं समुदाए।
कर जोरहि सभि सीस निवावहि। धंन धन गुर सबद सुनावहि ॥ २१ ॥
सभि संगत सों पुनह उचारा। रामदास मैं रूप सुधारा।
मम सम इस को पूजन करना। सौं अभेद इन सों इक बरना ॥ २२ ॥
अपनी अवधि दीन बैठाइ। शरधा धरहि, सु सभि फल पाइ।
मैं होवौं अबि अंतर ध्यान। सुनि संगति गुर के बच कान ॥ २३ ॥
जै जैकार उचारन कीना। बंदहि, कर जोरहि मन दीना।
भादों की शुभि पूरन माशी। चहति समावन गुर अबिनाशी ॥ २४ ॥
संगति सहत सु नंदन हेरा। अल आइसु दीनसि तिस बेरा।
त्यारी करो बिमान बनावहु। सभि कारज कहि शीघ्र करावहु ॥ २५ ॥
सुनति मोहरी कहि बच ऐसे। क्रिपा करम की आइसु कैसे।
निज कुल की मिरजाद जु अहै। करहिं कि नहीं आप जिमि कहैं ॥ २६ ॥
सुनि सतिगुर ने कह्यो बिचार। 'मम नहि कुछ करमन अधिकार।
जग मिरजाद रखी जे चहीअहि। प्रेत नाम मुख ते नहिं कहीअहि ॥ २७ ॥
सुरसरि असथ पिंड को दीजहि। तुम बड हो मिरजाद रखीजहि।
बहुर मोहरी बूझन करे। ग्रिही धरम, तुम कहि सो धरे ॥ २८ ॥
बिन माया सिध होइ न सारे। किरत कि करहिं चलहि बिवहारे।
बिनां किरत कर आइ न माइआ। जो कुछ करहि, कहहु करि दाइआ ॥ २९ ॥
सतिगुर कह्यो 'करहु शुभि कार। धरम किरत ते सिधि बिवहार।
कुल महि संकट आइ जि परैं। सिमरहु मोहि काज सभि सरैं ॥ ३० ॥
हे सुत धरम किरत जो करनी। हरि सिमरनि इहु भगति सु बरनी।
भगति करहि सुख लहै अभरम। हरि की भगति कहावति धरम ॥ ३१ ॥
बिन हरि भगति करहि गन करम। सो सगरो हुइ जाहिं अधरम।
सभि संगति को जबि उपदेशा। करि हरि भगति बिनास कलेशा ॥ ३२ ॥

क्रिपा द्रिशटि सभि ओर निहारे। हुती भावनी जो जिस धारे।
सभि को मन बांछत फल पावा। पुन सतिगुर सभि संग अलावा ॥ ३३ ॥
सुत भ्राता बंधु सिख दास। पाछे करहु न शोक प्रकाश।
मुदत रहहु, हरि के गुन गावहु। कथा कीरतन सुनहु सुनावहु ॥ ३४ ॥
इमि कहि सतिगुर घर लिपवाइस। चंदन आदि सुगंधि छिरकाइस।
बरन बरन फूलन की माला। कुश आसन पर पौढे द्याला ॥ ३५ ॥
सभि के देखति भीर घनेरी। बिसद बसत्र ते मुख पर फेरी।
करति भए परलोक पयाना। नभ महिं कौतक होति महांना ॥ ३६ ॥
सूरज तेज मंद परि गइऊ। अनिक प्रकाश अपर बिधि भइऊ।
देवतान के घने बिबाना। आवति भए छाइ असमाना ॥ ३७ ॥
चली सुगंधिति मंद समीरा। गरजति घन धुनि म्रिदुल गंभीरा।
बिधि शिव.सुरपति, रवि,ससि आए। गंध्रब सिद्ध रिखी समुदाए ॥ ३८ ॥
करैं कुलाहल अनिक प्रकारा। जै जै धुनि सुर ऊच उचारा।
मंगल करति अनेक प्रकारन। गाइं अपसरा भुजा उसारन[1] ॥ ३९ ॥
गण मणीअन के ख्चति बिसाला। आइ बिमान सु करति उजाला।
तिस पर सतिगुर तबि आरोहे। कोट काम छवि पिखि सभि मोहे ॥ ४० ॥
जै जै धुनि ठानति सभि बंदै। दरशन देखति रिदे अनंदै।
सुर बिमान चहुं दिश हुइ चाले। गुरू बिराजहिं बीच बिसाले ॥ ४१ ॥
अनिक भांति के मंगल गावति। इमि सभि चले जाति सुख पावति।
गमन शकति जिस जिसकी जहां। करि करि नमो सथिर भे तहां ॥ ४२ ॥
परम धाम बैकुठ मझारा। पहुंचति भे सतिगुरू उदारा।
परम जोति महिं जोति समानी। जथा मिलहिं पानी संग पानी ॥ ४३ ॥
गोइंदवाल मिले नर नारी। धंन धंन सतिगुरू उचारी।
निरमल नीर बिपासा लीन। गुर तन को मज्जन सुभि कीन ॥ ४४ ॥
सतिगुर रामदास तबि लागे। पुत्र मोहरी उर अनुरागे।
भाई साहिब बुड्ढा मिलिकै। सेवक बल्लू इन सों रलिकै ॥ ४५ ॥
तन शनान गुर को करिवाइ। शुभ बिबान पर तबि पौढाइ।
चारों ने निज कंध उचाए। अपर लोक लागे समुदाए ॥ ४६ ॥
बहु संखन की धुनि उठाई। लाजा[2] पुशपन बहु बरखाई।
पौत्रे सरब गुरु के आए। कर महिं लीने चवर ढुराए ॥ ४७ ॥
शबद रबाबी गावनि करिहीं। बदे धुनि बर विप्र उचरिहीं।
कंचन आदि दरब बरखावैं। सहत सुगंधि फूल बहु ल्यावैं ॥ ४८ ॥
ऊपर डारति जाति बिमान। पहुंचे तीर बिपासा थान।
सुंदर पावन थल को हेरा। जब तिल चंदन आनि घनेरा ॥ ४९ ॥
संग हजारहुं नर की भीर। करे उतारन सलिता तीर।
रचि चंदन की चिखा[3] बिसाला। गुर तन तिस पर धरि ततकाला ॥ ५० ॥

---

1. भुजाएँ ऊपर करके। 2. चावलों की खीलें। 3. चिता।

बहु संगधि अर घ्रित को पाइव। सतिगुर अमर नाम सिमराइव।
अगनि मोहरी कर महिं धारी। सिर दिश ते पुन सभि दिश बारी ॥ ५१ ॥
करी कपाल क्रिपा जिस काल। उठे मोहरी के सभि नाल।
नीर बिपासा कीन शनान। पित को कर्यो तिलांजुलि दान ॥ ५२ ॥
तहिं ते मंद मंद चलि आए। बैठि बापिका पर समुदाए।
गुन गन सिमरहिं सभि गुर केरे। अस प्रताप हम किसहूं न हेरे ॥ ५३ ॥
धरम राइ की काण चुकाई। गोइंदवाल न किस म्रितु पाई।
तिस ते परै अपर वडिआई। कर उपकार कहहु क्या पाई ॥ ५४ ॥
रामचंद के राज मझारा। हम ने सुन्यो भयो तिस बारा।
ब्रिधन आगे मर्यो न बालक। को म्रित भा जिवाइ ततकालिक ॥ ५५ ॥
इन के नगर ब्रिध, सिस, तरुन। भयो नहीं किसहूं को मरनि।
जो मरि गयो सु दयो जिवाइ। इत्यादिक गुन गुर समुदाइ ॥ ५६ ॥
सिमरहिं, शोक न करहि सु कोई। गुर को बाक चितारति सोई।
हमहिं बसायो सभि सुख दीने। सो न होहिं चित चिंता भीने ॥ ५७ ॥

दोहरा

चंद अगनि रस मही गिन भादों पूरन मासि[1]।
कुज दिन[2] महिं श्री सतिगुरू जोति जोति मिलाप ॥ ५८ ॥
पंच मास बाई बरख दिवसु इकादशु और।
पतिशाही जग महिं करी भल्यन कुल सिरमौरु ॥ ५९ ॥

कवित्त

खोले हैं खजाने करामात के मंहाने,
निति देति सिख दाने, बरुसाने अनगन हैं।
काटते कलेश उपदेश दे, महेश सम,
पाइ कै विशेश भए सेवे तन तन हैं।
गुन को न अंत, भगवंत वेख संत धरि,
आदि न, अनंत जांहि भजें मुनि जन हैं।
श्री गुर अमर पति अमर संतोखसिंह,
अमर करति दास सदा धंन धंन हैं ॥ ६० ॥

दोहरा

श्री अंगद गुर अमर की कथी कथा चित लाइ।
भई रास पूरन इहां बिना बिघन समुदाइ ॥ ६१ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे प्रथम रासे कवि संतोखसिंह बिरचितायां भाखयां 'श्री अमरदास बैकुंठ गमन' प्रसंग वरननं नाम अशट शशटी अंसू ॥ ६८ ॥ प्रथम रास समापतं। सुमंभसतु ॥

---

1. चंद्रमा। 2. अगनि 3, रस, 6, मही—1, अर्थात् 1631 के भादों की पूर्णिमा 2. मंगलवार।

१ओंकार सतिगुर प्रसादि

अथ श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रास लिख्यते ।।

श्री वाहिगुरू जी की फते

अंशु १

श्री गुरु रामदास प्रसंग

मंगलाचरण

सवैया

बेदी बिभूषण[1] बेदि कै[2] जांहि को बेद कहै नहिं तीन प्रछेदी[3] ।
छेदी[4] कुचाल कुचीलनि[5] की कलि नाम जपाइ कुरीतिन खेदी ।
खेदी ना होत अखेद[6] उदोतक दे उपदेश जु रूप अभेदी[7] ।
भेदी बनावन कैवल को[8] गुर नानक पाइ प्रणाम निवेदी[9] ॥ १ ॥

कवित्त

अंजन[10] ते हीन श्री निरंजन[11] प्रवीन प्रभु
भंजन पखंड पाप गंजन[12] अनंद करि ।
दीनो ग्यान अंजन[13] सु मंजन को मोह मल[14],
रंजन को जन जग भगत बिलंद[15] करि ।
फेरू-नंद अंगद सुछंद[16] श्री गुबिंद है,
मनिंद[17] चंद बिंद जस दासन मुकंद करि[18] ।
पद अरबिंद मकरंद[19] को मनिंद मन,
बिघन निकंद[20] करौं बंदना दुबंद कर[21] ॥ २ ॥

---

1. बेदी वंश के विभूषण । 2. जानकर । 3. वेद जिसे तीनों प्रच्छेदों (देश, काल, वस्तु) से रहित कहते हैं । 4. काटना । 5. दुराचरण । 6. खेद रहित । 7. भेद रहित । 8. मुक्ति का रहस्य जान लेने वाला बनाता है । 9. निवेदन करना । 10. माया । 11. मोह माया रहित । 11. नाश करने वाला । 13. ज्ञान का सुरमा । 14. मोह की मैल दूर करने को । 15. बुलंद, ऊंचा करना । 16. स्वछन्द । 17. मानिन्द-समान । 18. मुक्तिदाता । 19. पराग, आत्मरस । 20. नाश करने वाले । 21. दोनों हाथ जोड़कर ।

दोहरा

अमर[1] करहिं जग माहि नित सहाइता लहिं अमर[2]।
अमर करे[3] जन जाहिं अमर नाम दे[4] गुर अमर ॥ ३ ॥

चित्रपदा

रामसु दास गुरु सुखरास हरें जम त्रास रिदा निशकाम ।
काम न क्रोध बिरोध निरोध[5], सदा सुध बोध सरूप-निकाम ।
काम करे जन शाम परे तिन ताप हरे नित होति अनाम ।
नाम जपे अघ ब्रिद खपे सु रपे[6] हरिरंग सदा अभिराम ॥ ४ ॥

चौपई

श्री सतिगुर अरजन कुल चंद । चंदन सम बच सीत मुकंद ।
कंद अनंद[7] बिमोह निकंद । कंदल सुखद तिनहुं पर बंदि ॥ ५ ॥
वारी इक[8] धरि द्वै तरवारी[9] । वारो शत्रु सैन बलवारी ।
वारी धरि[10] सम धुनि सुखवारी । वारी[11] गुर खट पर बहु वारी[12] ॥ ६ ॥

दोहरा

भव[13] महिं भव के[14] रंक जे भव[15] सम होइ क्रिपालु ।
पालक प्रिथवी के करे, श्री हरिराइ रसाल ॥ ७ ॥

सोरठा

सभि दरशन को सार दरशन परसन ते लह ।
हाथ सुदरशन धारि श्री हरि क्रिशन सु बंदना ॥ ८ ॥

सवैया

मानस तीर मराल[16] बिराजति त्यों सिख श्री गुर तेग बहादर ।
मानस मैं धरि ध्यान नमो करि, राखबि धरम बिसाल बहादुर ।
मानस दाहिन जे बिधि दाहिन[17], दाहनि दोशन होति सु हादर ।
मान सही जिम सीख कही सतिनाम भजो मिलि संत महा दर[18] ॥ ९ ॥

---

1. अमर करना । 2. देवता । 3. जन्म मरण रहित । 4. ब्रह्म । 5. वैर का अभाव । 6. रंगे हुए । 7. आनन्द दाता । 8. एक बार ही, एक समय में ही । 9. दो तलवारें धारण कीं—एक पीरी की, एक मीरी की । 10. बादल । 11. बलिहारी । 12. बहुत बार छठे गुरु पर (बलिहारी) । 13. संसार में । 14. जन्म के । 15. परमेश्वर । 16. मानसरोवर तट पर हंस । 17. जिन मनुष्यों का वे पक्ष लेते हैं, ब्रह्मा भी उनकी ओर हो जाता है । 18. संत-संगति का ऊँचा द्वार ।

चौपई

वारा[1] तुरकन तेज अपारा। पारा[2] धरम हिंद बिसतारा।
तारा दास बिरद[3] संभारा। भारा जस कलगीधर वारा[4] ॥ १० ॥

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी)

हानी गन बिघनहुं सुखदानी। दानी जिसहि सराहिं समानी।
मानी तीन लोक सरबानी। बानी सिमर सुमत्ति महानी ॥ ११ ॥

(कवि संकेत मर्यादा)

चौपई

सारद बरदा सुमति बिसारद। सारद चंद बदन ते भा रद।
पारद बरनी तन दुति नारद। दारिद हरिता दासनि सारद ॥ १२ ॥

दोहरा

करि सभिहिनि पद बंदनां धर पर धरि करि सीस।
रचौं कथा सतिगुरू की बिघन हरहु जगदीश ॥ १३ ॥
श्री नानक अंगद गुरू अमर दास बिरतांत।
रच्यो छंद सुंदर बिखैं सुन्यों पठ्यो जिस भांति ॥ १४ ॥
तीन गुरनि की कथा रचि अहै जथा मति मोहि।
अब चतुरथ अवतार की करिहौं जिस बिधि होहि ॥ १५ ॥
सभि संतनि आगैं करौं बिनती गिनती छोरि।
घोर कथा हुइ अंत लौ बंदौं जुग कर जोर ॥ १६ ॥

नराज छंद

सु राम राम नाम मैं अभेदता लखाइये।
तथा सरूप एक है संदेह ना उठाइये।
महीप रूप होन ते सु चंद संग भाखिये।
जनावतार ए भए तु 'दास' नाम आखिये ॥ १७ ॥

सोरठा

भगति देहि अवतार यांते राम सु दास कहि।
राजा राम उदार रामचंद कहिबो बनै ॥ १८ ॥

1. दूर करना। 2. प्रतिपालन। 3. सेवकों को पार करने का विरद। 4. वाला, का।

चौपई

श्री गुर अमरदास के पाछे। सोढी बंस बिभूखन आछे।
सिंहासन बैठे गुर पूरे। माया ते अलेप गुन रूरे॥ १९॥
गुरता रथ अरूढबो करे। चौथो सूरज जनु नभ चरे[1]।
अज़मत जुति अनेक सिख उडगन। सभि महिं शोभति पूरन ससि जनु॥ २०॥
जहिं कहिं ते सुनि सुनि सिख आए। श्री गुर अमर-इही-लखि पाए।
श्री नानक की जोति बिसाला। इन महिं दिपति जान तिस काला॥ २१॥
धरि धरि सभिनि उपाइन बंदे। देखि सरूप सुभाउ अनंदे।
त्रै दिन बिते जानि समुदाई। जहि ससकार गए तिस थाई॥ २२॥
सतिगुर रामदास हुइ खरे। कमल बिलोचन जल सों भरे।
संग मोहरी शोक उपावति। मोहन आदिक सीस निवावति॥ २३॥
ब्रिध ने सभि सों बाक उचारा। कह्यो गुरू को क्यों न चितारा।
मेरो शोक न करहु कदाईं। सिमरहु हरि हरि अनंद उपाईं॥ २४॥
उलंघनि जोग न बाक तिन्हों का। यांते करहु न कबि मिलि शोका।
सुनि ब्रिध करे उचित शुभ बैना। रोक्यो जल को निज निज नैना॥ २५॥
बीनि बीनि करि असथि सकेले[2]। सुंदर बसत्र बिखै सभि मेले।
सुरसरि को ततछिन पहुंचाए। सावण मल तिन संग सिधाए॥ २६॥
जगत म्रिजाद हेत क्रित सारी। जथा जोग कीनसि हित कारी।
बैठहिं सकल बावली तीर। आवहि नित संगति की भीर॥ २७॥
गावहिं शबद रबाबी राग। जिन के बिखै परम बैराग।
सभा लगहि जबि होवति भोर। आवहिं सिक्ख करहिं बहु जोर॥ २८॥
तिसी प्रकार देग निति होइ। मिलहिं हज़ारहुं अचवहिं सोइ।
त्र्योदश दिवस बितीते जबै। भोजन कर्यो अनिक बिधि तबै॥ २९॥
गोइंदवाल मेल बहु होवा। सभिहिनि रामदास गुर जोवा।
सकल बेख साधू समुदाए। करनि अहार मेल करि आए॥ ३०॥
बखशिश भई मंजीआ जेतिक। ले अकोर को पहुंचे तेतिक।
श्री गुर रामदास के आगे। अरपि अरपि करि पाइन लागे॥ ३१॥
जिस को आप गए करि टीका। कौन हटाइ सकै तिन लीका[3]।
मोहन अपर मोहरी दूवा। तिन दिश देखि दीन मन हूवा॥ ३२॥

---

1. चढ़े। 2. इकट्ठे करना। 3. मर्यादा।

अपर सबंधिनि की लखि चाली। मनु जिन के खरपरी बिसाली।
श्री गुर रामदास महांराजा। महद बिलोचन लाज जहाजा ॥ ३३ ॥
बहु कोमल जिन सरल सुभाऊ। नहिं पिखि सकैं भंग मन काऊ।
रिदै बिचारहिं अनिक उपाऊ। किम हम करहिं न देखि सकाऊ ॥ ३४ ।
अपर बारता अन बन जानी। भए प्रवेश सदन गुन खानी।
रहे इकांकी बैठि गुसाई। अंतर ब्रिती रहे सुख पाई ॥ ३५ ॥
वहिर निकस करि नाहिंन बैठहिं। सिख संगत जहिं सकल इकैठहि।
श्री गुर अमरदास पद प्रेम। उमगहि रिदा बहै सभि नेम ॥ ३६ ॥
जहिं बैठे तहिं बैठे रहैं। जित देखति तित दिश को लहैं।
ठांढे रहहिं कि पौढहिं कबै। कितिक काल थिरता गहिं तबै ॥ ३७ ॥
प्रिथीआ, महादेव, श्री अरजन। बंदहि चरन बुलावहिं तिस छिन।
दे धीरज तिन बोलहिं थोरा। बैठे रहैं, परहिं, इक ठौरा ॥ ३८ ॥
मति गति भई अपर बिध सारी। रहैं इकांकी बिनां चिनारी।
कबहि प्रेम को बहै प्रवाहू। बाणी रचहिं गुरू छिन तांहू ॥ ३९ ॥
बिच गमन के शबद बनावहिं। मधुर मधुर मुख ते धुन गावहिं।
वहिर भयो सिक्खन महिं रौरा। गुरू न आइं वहिर की ठौरा ॥ ४० ॥
सचनि सच माणकचंद जोइ। डल्ले वासी सिख सभि कोइ।
सावण मल्ल अरु माई दास। गंगो बस्सी खतरी दास ॥ ४१ ॥
मधो मुरारी इह चलि आए। फिर्या कटारा सिख समुदाए।
खेडा सुइरी दिजबर तहां। बेनी पंडित प्रेमी महां ॥ ४२ ॥
आदि हिंदाल वहिर के सारे। बासे गोइंदवाल मझारे।
मोहन अपर मोहरी दोऊ। सहत पुत्र के थित ह्वै सोऊ ॥ ४३ ॥
साहिब बुड्ढा आदि जि और। बैठहिं सकल बावली ठौर।
चितमान चित महिं अति सारे। गुरू न आवहिं वाहरि द्वारे ॥ ४४ ॥
इह क्या तिनहुं रिदै मैं ठानी। बैठहिं बीच न दरशन दानी।
प्रेरन कर्यो ब्रिध को सबहूं। आनहु वहिर जाहु तुम अबि हूं ॥ ४५ ॥
ब्रिध ने भन्यो बाक 'सुनि लीजै, अनबन मेरो गमन जनीजै।
मोहन को सुभाउ मसताने। हान लाभ बहु कहिबे जाने ॥ ४६ ॥
यांते सतिगुर सुत लघु जावै। सुमति मोहरी कहि तिन ल्यावै।
मैं भी संग करौं इन केरा। मानौं संगति बाक भलेरा ॥ ४७ ॥

सभिनि मोहरी सों जबि कह्यो। आवहि मोह गए ते लह्यो।
कुछक सिक्ख अरु ब्रिध को लैके। गुर समीप पहुंचे हित कैकै। ४८॥
अंतर बैठे जाइ निहारे। अपर सुभाउ जिनहुं उर धारे।
पिखे सकल उठि करि सनमाने। मिले परसपर बंदन ठाने॥ ४९॥
बाक मोहरी तदहि उचारे। तुम किम बैठे सदन मझारे।
सतिगुर पित नै निज असथान। तुमहु बिठाइसु करि सनमान॥ ५०॥
जिम सिख संगति तिन हुं उधारे। तिम तुम करहु बैठि इहु कारे।
सभिहिनि महिं बैठिहु हरखावहु। उपदेशहु सतिनाम जपावहु॥ ५१॥
जिम गुर कह्यो बाक तिम मानहुं। सति संगति मति इमि पहिचानहु।
हम तुम सभि कहु धरम इही है। गुर आग्या सिर धरन सही है॥ ५२॥
सुनि गुर रामदास इन बैना। परम प्रेम ते जल भरि नैना।
तुम गुर सुत अरु सिख सारे। मैं नित हौं अनुसारि तुमारे॥ ५३॥
सादर बचन मानिबो मोहि। मो कहु महां धरम इहु होहि।
अस कहि निकसे बाहरि आए। बैठि सभा महिं शोभ बडाए॥ ५४॥
जिम उडगन मंडल महिं आइ। पूरन चंद मनिंद सुहाइ।
किधौं बिमन सैना के मांहि। महिपालक आयहु चित चाहि॥ ५५॥
सभिनि खरे हुइ बंदन कीनि। अरपि उपाइन सगरी दीनि।
करि दरशन उर हरखे सबै। मिल्यो प्राति रवि कमलन अबै॥ ५६॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रिंथे दुतिय रासे **'श्री गुरु रामदास' प्रसंग** बरननं नाम प्रथमो अंशु॥ १॥

अंशु २

सिद्ध आगमन प्रसंग

दोहरा

सिंहासन संतोख पर सत्य छतर अभिरामु ।
सत्यनाम झंडा झुलति राजति सतिगुर राम ॥ १ ॥

लछमी भगति बिसाल ते ग्यान मुकट दुति धाम ।
पूरन सिख शुभ मति सचिव राजति सतिगुर राम ॥ २ ॥

मैत्री, ध्रित, करुना, खिमा, मुदिता, आठहु जाम ।
स्यंदन की सैना सहत राजति सतिगुर राम ॥ ३ ॥

सारासार विचार बर दिढ विराग अभिराम ।
जोग धरम गज चमूं इहु राजति सतिगुर राम ॥ ४ ॥

सम दम, जोग सु नेम, यम, उपरति ततिख्या नामु ।
सभि तुरंग की बाहिनी, राजति सतिगुर राम ॥ ५ ॥

शरधा, सौच, सु बुद्धि बर, सभि शुभ करम बिराम ।
भौ, तप, भाउ जु पैंक दल[1] राजति सतिगुर राम ॥ ६ ॥

प्रेम बली सैनापति हरि कीरतन अभिराम ।
दुंदभि इहु निरभैं बजन राजति सतिगुर राम ॥ ७ ॥

मोह शत्रु मन देश महिं राज करति रचि धाम ।
मारि छार प्राजै कर्यो राजति सतिगुर राम ॥ ८ ॥

काम, क्रोध अरु लोभ भट बड हंकार जिनि नाम ।
हति सैनापति मोह के राजति सतिगुर राम ॥ ९ ॥

हिंसा, त्रिखा,[2] सु द्वैशता, आशा, त्रिशना नाम ।
रिपु बिकार जनता[3] हती राजति सतिगुर राम ॥ १० ॥

सूपनखा अरु तारुका जिम हति राजा राम ।
हंता ममता तिम हती राजति सतिगुर राम ॥ ११ ॥

---

1. पैदल सेना । 2. क्रोध । 3. विकारों को उत्पन्न करने वाली ।

मतसर, कपट, असूयता, तीन बाशना नामु ।
निंदा जुत हृति सभिनि को राजति सतिगुर राम ।। १२ ।।
नहिं नाना, अद्वैत है, सचिदानंद सु नाम ।
फेरि दुहाई सभिनि परि राजति सतिगुर राम ।। १३ ।।
जन परजा पालन करहिं चोर बिकारन ग्राम[1] ।
करि सभि को निरमूलता राजति सतिगुर राम ।। १५ ।।
सरल सुशील, उदार, उरि, दान, मान शुभ काम ।
इत्यादिक निति संग रहिं राजति सतिगुर राम ।। १५ ।।
हुकम फिरहि सभि देश परि सति संगति श्रुति[2] नाम ।
अति प्रताप नित प्रति बधति राजति सतिगुर राम ।। १६ ।।
जोग, छेम, दाता महां निज दासन अभिरामु ।
पर उपकारी, सुजस जुति, राजति सतिगुर राम ।। १७ ।।
सदगुन को सुरभिख कर्यो जहिं कहिं इन को नाम ।
अवगुन को दुरभिख पर्यो राजति सतिगुर राम ।। १८ ।।
माया अलिबालति रहहिं नित अलेप निशकाम ।
काटति बंधन जनों के राजति सतिगुर राम ।। १९ ।।
जल महिं राखे शुशक पट, बिच सुरमे नहिं श्याम ।
अदभुत महिद चरित्र जिसु राजति सतिगुर रामु ।।२० ।।
पठहि जु बीसी दोहिरे निता प्रती करि नेमु मन ।
बांछति फल देति गुर सुत बित आदिक छेम ।। २१ ।।

चौपई

सभि संगति महिं बैठि सुहावति । जिमि मुनि महिं रघुबर छवि पावति ।
उपदेशहिं सिक्खन सुख इशट । राम सभा महिं जथा बशिशट ।। २२ ।।
संत बिलोकति अनंद बिलंद । ब्रिंद चकोर मनिंद सुचंद ।
उदै होति सूरज जिम आवै । कमल बदन सिक्खन बिगसावैं ।। २३ ।।
दासन रिदै दीप सम थिरैं । आतम रतन परखबो करैं ।
क्रिपा द्रिशटि जिस माथे हाथ । बनैं हेमु अय पारस साथ ।। २४ ।।
बावन चंदन ढिग तरु जैसे । मुकति सरूप समीपी तैसे ।
कितिक समां बीत्यो इस रीति । सभि ते रहिं उदास प्रभु प्रीति ।। २५ ।।

1. विकार-समूह । 2. सुनते हैं ।

चतुरथ गुरू भयो सिध जान्यो। हेतु परखबे आवन ठान्यो।
जिम तीरथ पर जात्री आवैं। गुर तन सुनि तिम सिध सभि धावैं ॥ २६ ॥
गुर नानक गादी पर बैसे। पूर कि ऊन लखहिं अबि तैसे।
सतिगुर सभा बिखै सभि आए। ब्रिंद अदेस अदेस अलाए ॥ २७ ॥
कुशल बूझ श्री प्रभु सनमाने। निकटि बिठाइ हेरि हरखाने।
परखनि कारन चरचा रीति। बोले जे मुखि सिद्ध बिनीत ॥ २८ ॥
श्री गुर तुमरी संगति बिखै। नहिं अशटांग जोग कहु सिखैं।
मन थिर होहि न जोग बिहीने। मन थिर बिन नहिं आतम चीने[1] ॥ २९ ॥
आतम जाने बिनां न जुगति[2]। जुगति बिनां किम होहि न मुकति।
मुकति बिना बंधन महिं रहै। तौ गुर सिक्खी महिं क्या लहै ॥ ३० ॥
इह शंका हमरे मन मांही। सिक्खी धरि पय्यति कुछ नांही।
सुनि श्री सतिगुर उत्तर दीनसि। जोग आसरे जिसको लीनसि ॥ ३१ ॥
सो सतिनाम हमारे मति मै। तिस को सिमरति निसदिन चित मैं।
प्रेमा भगति जाग जबि आवहि। अपर वसतु महिं ब्रिती न लावहि ॥ ३२ ॥
निधि सिधि बहु अजमति दिखरावति। निज कीरति जग बिरवै बधावति।
तिन को छोर नाम ब्रिति अटकी। भूल जाति सभिहि सुधि घटकी ॥ ३३ ॥
एक रंग महिं रज्यो रहंता। ब्रिति इसथिरता जबहिं लहंता।
प्रभु की क्रिपा होइ ततकाला। हुइ आवै तब ग्यान सुखाला ॥ ३४ ॥
आतम ग्यान अचल जबि पावहि। रजू महिं सरप जगत लखि पावहि।
म्रिग त्रिशना को नीके जानी। नहिं दौरहि म्रिग मन हित पानी ॥ ३५ ॥
भावा भावा बिलावहि सारो[3]। निज सरूप ही लखहि पसारो।
ऐसे प्रेम भगति महिं हमरे। इक चित सत्य नाम को सिमरे ॥ ३६ ॥
प्रेम बहीन जि साधन मुकति। निशफल होति संत की उकति।
बिना प्रेम करि घाल बिसाला। प्रेम करहि फल लहि ततकाला ॥ ३७ ॥
तुमरो मत जो कशट जोगु को। कल महिं होहिन लहै रोगु को।
जे पूरनि गुर ते सिद्ध करै। अनिक जतन ते मन को थिरै ॥ ३८ ॥
पुन सिद्धां जबि आइं अगारी। तिन महुं बिरमहु मन हितकारी।
तबि जग महिं दिखरावन चाहो। नर बहु पूजहिं—रिदा उमाहो ॥ ३९ ॥

1. मन टिके बिना आत्म-ज्ञान नहीं होता। 2. चित्त-वृत्तियों का विरोध। 3. यह है, यह नहीं है।

सिद्धां महुं फसि कै तजि रस को। जगत बाशना चाहति जस को।
आतम ग्यानी कै सिधि सारी। हाथ जोरि करि थिरहिं अगारी ।। ४० ।।

इन को तजि करि ले रसु ग्यान। अनंद रूप सभि लखहि जहान।
भेखि जोग को सदा कमावो। बिना प्रेम प्रभु को किम पावो ।। ४१ ।।

मन नहिं जीतहु इत उत धावै। सिद्धां महिं उरझ्यो भरमावै।
श्री गुर रामदास कहि करि कै। शबद सुनायहु तिनहु उचरि कै ।। ४२ ।।

श्री मुखवाक

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ।। महला—४
रागु आसा घरु ६ के ३ ।।

हथि करि तंतु वजावै जोगी थोथर वाजै बेन।
गुरमति हरि गुण बोलहु जोगी इहु मनुआ हरि रंगि भेन ।। १ ।।

जोगी हरि देहि मती उपदेसु। जुगु जुगु हरि हरि एको वरतै तिसु
आगै हम आदेसु ।।१।। रहाउ।

गावहि राग भाति वहु बोलहि इहु मनुआ खेलै खेल।
जोवहि कूप सिंचन कउ बसुधा उठि बैल गए चरि बेल ।। २ ।।

काइआ नगर महि करम हरि बोवहु हरि जामै हरिआ खेतु।
मनूआ असथिरु बैलु मनु जोवहु हरि सिंचहु गुरमति जेतु ।। ३ ।।

जोगी जंगम स्रिसटि सभ तुमरी जो देहु मती तितु चेल।
जन नानक के प्रभ अंतर जामी हरि लावहु मनूआ पेल ।। ४ ।।

चौपई

सुन्यो सवद सतिगुर ते जबै। 'श्री नानक' जान्यो सिध तबै।
करी परीख्या, छोरी गिनती[1]। होइ प्रसन्न भनी मुख बिनती ।। ४३ ।।

बिदा भए कहि चले अदेसु। देखति संगति तहां अशेशु।
अंतर ध्यान भए ततकाला। सभि बिसमाए पिखति बिसाला ।। ४४ ।।

प्रशनोत्तरं सुनि करि सभि काना। पारब्रह्म गुर रूप पछाना।
बूझे 'संत कहां ते आए। कहि सुनि टिके न, तुरत सिधाए ।। ४५ ।।

सतिगुर सरब सुनावन कीनि। 'इह गोरख को पंथ प्रबीन।
फिरहि सरब महिं इच्छा चारी। करन परीख्या अए हमारी ।। ४६ ।।

1. संशय।

प्रशनोत्तर करि गए पयान। सिद्धां ढिग, सभि सिध बड मान।
इम सुनि कै संगति हरिखानी। तुमरी गति कछु जाइ न जानी ॥ ४७ ॥
सिख्यन हित निज रूप धर्यो है। संगति को कल्यान कर्यो है।
सुनि इम सभिनि निवायहु सीस। तुम सुखदाते हो जगदीश ॥ ४८ ॥
क्रिपा द्रिशटि संगति पर करी। भए निहाल कितिक तिस घरी।
केतिक दयोस बितावन कीनि। श्री सतिगुरू बिसाल प्रबीन ॥ ४९ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'सिद्ध आगमन' प्रसंग बरननं नाम दुतीओ अंशु ॥ २ ॥

अंशु ३

श्रोतनि को बूजबो प्रसंग

दोहरा

रामदास श्री सतिगुरू रहैं प्रेम ग़लतान[1]।
सतिनाम सिमरन करनि दे सिख्यन कहु दान ॥ १ ॥

चौपई

सति संगति निति होति बिसाला। आवहिं, सिक्ख बनहिं नित जाला।
जहिं कहिं नगर ग्राम बड छोटे। 'गुर' 'गुर' जपहिं लाख कई कोटे ॥ २ ॥
सिक्खी के मारग शुभ परि हीं। अपरनि के मत को परहरिहीं।
मानुख जनम सफलता करिहीं। गुर महिमा शरधा ते धरिहीं ॥ ३ ॥
दुशट देखि करि दुखति बिसाले। बरखा जलहि जवासो जाले।
सहि नहिं सकहिं कमूढ कुभागे। मनहुं चंद्रिका बिरहनि लागे ॥ ४ ॥
सिक्खन की अस रीति नवीन। एक तपे ने देखनि कीन।
तरक करन को उमग्यो रहै। इहु क्या कीनि, नरनि सों कहै ॥ ५ ॥
बूझन को करि प्रीति बडेरी। आइ सभा सतिगुर की हेरी।
वंदन करि समीप तबि थिर्यो। वैठाइव गुर आदर कर्यो ॥ ६ ॥
पुन बूझ्यो कहि दुशटन दवनू[3]। कारन कवन आप आगवनू।
क्रिपा करहु समझावहु कहि कै। हम पूरहिं तिहचित महि चहि कै ॥ ७ ॥
तपा कहनि लागसि चित चाहू। भ्रमन कर्यो बहु अवनी मांहू।
सकल मतन के संत विशेखे। बेद पुरान सुने बहु देखे ॥ ८ ॥
तीरथ ब्रिंदन जाता करी। बहु थल जल पावनता धरी।
सिक्ख तुमारे बहु अभिमानी। शासत्र रीति न जानी मानी ॥ ९ ॥
बरनाश्रम जग महि समुदाए। कह्यो वेद सभि के मन भाए।
तुमरे सिख्य न जानहिं सोई। ए शुभ रीति चलति नहिं कोई ॥ १० ॥

---

1. सरोबार, डूबे हुए। 2. करोड़। 3. दुष्टों का नाश करने वाले। 4. आगमन।

तुम को जानहिं, पूजन ठानहिं। तुमरी बानी बदन बखानहिं।
वाहिगुरू को सिमरन करहिं। उर महिं ध्यान तुमारो धरहिं ॥ ११ ॥

तीरथ बेद प्रभाव न जान्यो। इन को धरम सुभाव न मान्यो।
किस प्रकार सिक्खन गति होवहि। जनम आपनो निशफल खोवहिं ॥ १२ ॥

सुनि श्री रामदास तबि कह्यो। कौन महातम इन को लह्यो।
करहिं प्रीत सों शरधा धारि। कौन पाइं फल अंतीवार ॥ १३ ॥

तपे कह्यो करि कै बिसतारा। तीरथ मज्जन फलद उदारा।
पाप खाय ते आप शनाने। करहिं अंत को सुरग पयाने ॥ १४ ॥

अनिक भांति के सुख तहिं पावहिं। पठि बेदन ब्रह्म लोक सिधावहिं।
सुनि श्री सतिगुर वाक बखाना। 'सुरग भोग सुख लह्यो महांना ॥ १५ ॥

साच जानि उर करहु उपाया। महां कशट ते लिहु तिन पाया।
सो सभि संतन मिथ्या जाने। क्यों संकट तिन हित करि ठाने ॥ १६ ॥

सति संगत सेवहु तुम नांही। क्यों सुख तिनहुं लखहु मन मांही।
सत्य वसतु तुम लखी न कैसे। चक्र वरती सुख रंक न जैसे ॥ १७ ॥

ब्रिथा दोश मय सिख्यन दीनिस। तत्तु वसतु को भेद न चीनसि।
सकल जनम तैं कीन बितीत। मिल्यो न गुर नहिं आइ प्रतीत ॥ १८ ॥

जंगम तीरथ अति सतिसंग। तिस को मिल्यो न लहि हरि रंग।
उर महिं गरब धर्यो दिढ कूरा। तबहि मिटहि मिलि है गुर पूरा ॥ १९ ॥

सुनि कै तपे कह्यो आचार। अरु सभि तीरथ मज्जन बार।
किम लघु कहहु जि सभि ने माने। महिमा महां पुरान बखाने ॥ २० ॥

कर विचार मुझ दिहु समुझाई। सति संगति की किमि बडिआई।
तबि श्री रामदास हितकारि। शबद सुनायो कीनि उचारि ॥ २१ ॥

श्री मुखवाक ॥ मलारु महला ४ ॥

गंगा जमना गोदावरी सरसुती ते करहि उदमु धूरि साधू की ताई।
किलविख मैलू भरे परे हमरे विचि हमरी मैलू साधू की धूरि गवाई ॥ १ ॥
तीरथि अठसठि मजनु नाई।
सत संगति की धूरि परी उडि नेत्री सभ दुरमति मैलु गवाई ॥ १ ॥
रहाउ ॥ जाहरनवी तपै भागीरथि आणी केदारु थापिओ महसाई।
कांसी क्रिसनु चरावत गाऊ मिलि हरि जन सोभा पाई ॥ २ ॥

श्रोतनि को बूझबो प्रसंग

जितने तीरथ देवी थापे सभि तितने लोचहि धूरि साधू की ताई।
हरि का संत मिलै गुर साधू लै तिस की धूरि मुखि लाई॥ ३॥
जितनी सिसटि तुमरी मरे सुआमी सभ तितनी लोचै धूरि साधू की ताई।
नानक लिलाटि होवै जिसु लिखिआ तिसु साधू धूरि दे हरि पारि लंघाई॥ ४॥ २॥

दोहरा

श्री सतिगुर मुख ते सुन्यो शबद सु अरथ समेत।
गद गद भयो प्रसन्न तबि उर भा प्रेम निकेत॥ २२॥

चौपई

तपे रिदे शरधा तबि आई। करति भयो बहु भांति बडाई।
क्रिपा द्रिशटि गुर हेरन करी। जिस ते दुरमति तिस कीहरी॥ २३॥
कहिन लग्यो 'जागे मम भागा। अनुरागति रावरि मुख लागा[1]।
जबि तुम क्रिपा करहु लखि दास। तबि उर देते तुरत प्रकाश॥ २४॥
मो मन मानी मान महांन। महिमा नहिं मानी मति हान[2]।
सनमुख बोल्यो मैं बहु भूला। प्रतिकूलनि पर तम अनुकूला॥ २५॥
अस दाते तुम त्यागहि जोइ। सो मूरख ले सभि कुछ खोइ।
अबि मन जान्यो संत महातम। जिस ते प्रापति ग्याता आतम॥ २६॥
तजि पखंड गुर को सिख होइओ। मिलि सतिसंगति महि सुख जोइओ।
निकट रहै कबि अनत सिधारै। श्री गुर पग पंकज उर धारै॥ २७॥
निति सिख देश बिदेशन आवहिं। लगे दरब अरपन हरखावहिं।
श्री गुर अमरदास इक दिन को। चले खरच ले इतन कु धन को॥ २८॥
अरपहि अधिक सु देति हटाइ। निस बासुर बहु देग चलाइं।
संचहि कर्यो न घर महिं एतो। एक दिवस भोजन होइ जेतो॥ २९॥
आइ नितप्रति हुइ गुज़राना। निज सरीर लग अस प्रन ठाना।
चतुरथ पातिशाहु गुनखानी। सेवा लखमी कीन महांनी॥ ३०॥
तीन गुरन को जाचति रही। तऊ समीप करी किमि नही।
महां बली जोधा इहु वैसे। जाचन लखमी को लखि तैसे॥ ३१॥
अंगीकार करी तबि आई। अरपहिं आन सिख्य समुदाई।
माया महिं अलेप निति ऐसे। जल कन कमल छुवै नहिं जैसे॥ ३२॥

---

1. आपके दर्शन करके प्रेम उत्पन्न हुआ है। 2. मतिहीन ने।

प्रिथीआ रहिन समीपी लाग्यो। धन आगम ते मन अनुराग्यो।
सरब संभारहि देग चलावहि। काज अपर ह्वै सो निरबावहि ॥ ३३ ॥

महांदेव मन मसत रहंता। हान लाभ कउ कछु न गनंता।
रिदे प्रेम पित गुर को भारी। श्री अरजन जी भगति संभारी ॥ ३४ ॥

जननी भानी के अनुसारे। बंदन करहिं सेव को धारे।
सुकचति रहैं पिता ते मन महिं। बिवहारी किम भए न धन महिं ॥ ३५ ॥

'अलप बैस महिं 'सगरे जानहिं। यांते नहिं बिवहार पछानहिं।
पिता गुरू सभि जानहिं प्रीति। जिम बरतति जन गन के चीत ॥ ३६ ॥

सोढी बंस बिभूखन होवहिं। सभि गुन निपुन, पिता इम जोवहिं।
निज कुल महिं राखहिं गुरिआई। जानि न देहिं, करहि थिरताई ॥ ३७ ॥

अपर लोक प्रिथीए को जानहिं। सभि बिवहार महांन पछांनहिं।
पिता समीपी निस दिन रहै। देनि लेनि सगरो निरबहै ॥ ३८ ॥

सभि बिवहारन महिं सवधाने। करहि कार पित को न बखाने।
सतिगुर कहैं न कैसे तांहू। उपदेशति थिति सिक्खन मांहू ॥ ३९ ॥

इक दिन संगति भई घनेरी। सुन्यो चहै बानी गुर केरी।
लग्यो दिवान सथान महांन। गुरमुख सिख्य सु मिले सुजान ॥ ४० ॥

गन चकोर जनु भए अशेखैं। सतिगुर बदन चंद को देखैं।
चात्रिक ब्रिंद त्रिखातुर बहु लहिं। गुर घन ते उपदेश बूंद चहिं ॥ ४१ ॥

सभि सिख्यन की लखि करि लालस। लागे सतिगुर कहिन क्रिपालस।
'जो को मेरो सिख्य कहावहि। शुभ गति अंत समै ललचावहि ॥ ४२ ॥

सेवा करन बिखे चित करै। उर हंकार न कवहूं धरै।
अपर जुगन महिं तप को तापनि। सहहि कशट बहु बिधि तन आपन ॥ ४३ ॥

निरमल अंतहि करन करे है। ह्वै निशकाम अनंद थिरे है।
सो तप को अब समां न जानहुं। सति संगति की सेवा ठानहुं ॥ ४४ ॥

तप ते दस गुन फल इस केरा। अंत समें बल लहै बडेरा।
तप को बहु दिन जे निति तापति। अलप समै सेवा फल प्रापति ॥ ४५ ॥

दिढ शरधा धरि सेवा करै। जनम मरन भवजल ते तरै।
आपा कबहु जनावहि नांहिन। कहै कठोर दुखावहि काहि न ॥ ४६ ॥

सेवा करि ले चतुर पदारथ। गुर सिख सेवहि होहि क्रितारथ।
बिन सेवा ते भगति न पावहि। भगति बिनां नहिं ग्यान उपावहि ॥ ४७ ॥

ग्यान बिना नहिं मुकति पदारथ। सेवा मूल सु करहु क्रितारथ।
जो सतिसंगति सेवा ठाने। सो बहु प्यारो मम मन मांने॥ ४८॥

जथा शकति भोजन बनिवावै। नंम्रि होइ सिख संत अचावै।
चरन पखारै नीर पिवावै। कर बीजन ले पौन झुलावै॥ ४९॥

चांपहि चरन मधुर कहि बानी। पट पहिरावै बिनै बखानी।
अरपहि फल बर फूल अपारी। बसत्र पखारहि संत अगारी॥ ५०॥

मंदर चिनहि चिनावहि चारू। जहिं बिसरामहिं संत उदारू।
शरधा प्रेम सहत करि सेवा। नहिं ब्यापै मन को अहंमेवा॥ ५१॥

इस पर इक इतिहास बखाना। इक नर ने खग सेवा ठाना।
पानी चोग देहि धरि ऊचे। सभि पंछी तिह सदन पहूचे॥ ५२॥

खग प्रसन्न बहु तिस पर होइ। आने हंस सदन तिह दोइ।
खाइं न चोग न पीवैं पानी। तिन पिखि कै चित चिंता ठानी॥ ५३॥

किनहूं आनि तिसै समुझाइसु। मुकता दूध खाइं ब्रिततादिसु।
सुनि अनबिध मुकता सो ल्याइव। रुचि करि हंसन सो तहिं खाइव॥ ५४॥

पीयो दुगध नीर को त्यागा। भे प्रसन्न तिह पिखि अनुरागा।
दोइ लाल उगले धरि दीने। हंस गए उडि सो तिनि लीने॥ ५५॥

वेच तिनहुं कउ धन वहु आन्यो। सुंदर सदन बनावन ठान्यो।
करहि बिहंगन सेव बिसाला। ब्रिंद हंस आए इक काला॥ ५६॥

देखहिं चलि जो भगत हमारो। इमि चहि तिह घर आइ हजारों।
अनबिध मुकता धरे अगारी। दीनसि दुगध सेव हितकारी॥ ५७॥

तिंह पर सभि प्रसन्न तबि होइ। रतन अनेक दीन तिह जोइ।
भूप समान भयो खग सेवैं। संतन सेव महां फल लेवै॥ ५८॥

निधि सिधि के दाता निति संत। मुकति पदारथ देवति अंत।
हंस समान सिख्य जो मेरे। इन सेवे फल पाइं घनेरे॥ ५९॥

अलभ वसतु ऐसी नहिं कोई। मम सिख सेवे पाइ न जोई।
इम श्री सतिगुर सेव महातम। कह्यो सुनति सिख ले सुख आतम॥ ६०॥

दोहरा

श्री सतिगुर ब्रिध अमर जी आइ तिनहुं के पास।
ग्रामकितिक अरपनि करे अकबर बिनै प्रकाश॥ ६१॥

---

1. पक्षियों की सेवा।

सो सगरे ही ग्राम गन गुरता गादी साथ।
रामदास गुर को दए कुल भल्यन के नाथ ॥ ६२ ॥

चौपई

आप अछत ही प्रथम पठाए। ताल खनावनि को फुरमाए।
कुछक खन्यो अर ग्राम बसावा। नाम 'गुरू को चक्क' धरावा ॥ ६३ ॥
अस इतिहास सुनति सभि सिंह। करी बिकारन को बड सिंह।
हाथ जोरि बोले तबि श्रोता। रामकुइर ! तुम अनंद उदोता ॥ ६४ ॥
कथा सुनाइ सरब सुख दीए। जिस ते भए प्रफुल्लित हीए।
अब श्री अंम्रितसर की कथा। करहु सुनावन होई जथा ॥ ६५ ॥
एसो तीन लोक के अंदर। सुन्यो न थल तीरथ अति सुंदर।
किम उतपती भई इस केरी। महिमा कही न जाहि बडेरी ॥ ६६ ॥
जिस को महां महातम आहि। कह्यो बहुत श्री ग्रिंथ सु मांहि।
किस प्रकार इहु ताल लगावा। हरि मंदर सुंदर बनिवावा ॥ ६७ ॥
लछमी सथित सेवती जहां। संतन के चित भावति महां।
महां कठोर रजगत अस कोइ न। दरशन ते शरधा जिस होइ न ॥ ६८ ॥
अस दुरभागि कवन जग होइ। करहि तरकना इस को जोइ।
दरशन ते मन हरिबे हारो। मज्जन सेवन ते सुख भारो ॥ ६९ ॥
सकल जनन को सभि फल दाइक जथा क्रिपाल त्रिलोकी नाइक।
देवन गन के रहिबे लाइक। परहि भीर ते बनहि सहाइक ॥ ७० ॥
इस को सकल प्रसंग सुनावहु। श्रोतन को संदेह मिटावहु।
सभि के रिदे लालसा भारी। गही आइ करि शरन तिहारी ॥ ७१ ॥
तुमरो महां क्रिपाल स्रबग्य। ब्रह्म ग्यान ते महां ततग्य।
शकतिमान चाहो जिमि करहु। नहिं त्रिलोक मैं किस भै धरहु ॥ ७२ ॥
भूत भविख्यत केरि ब्रितांता। रावरि रिदै सरब की ग्याता।
प्रेम जान करि मनि श्रोतानि। करहु सुधासर को बख्यान ॥ ७३ ॥
रामकुइर भाई सुनि सबै। परम प्रसन्न भयो मन तबै।
कथा सुननि की लालस जानी। है श्रोतनि प्रीति देखि अपारा ॥ ७४ ॥
यां ते कथा कहिन पर गुर की। वधी प्रीति भाई के उर की ॥ ७५ ॥
साहिब सिंहादिक जे श्रोता। करे सराहिन अनंद उदोता।
धंन सुमति अरु चाहि तुमारी। गुर की कथा सुननि अधिकारी ॥ ७६ ॥

सुनहुं प्रेमधरि सरब सुनावउं। सभि श्रोतनि के रिदै रिझावउं।
जिस के सुने भरम बिनसावैं। गुर आशै को सिख सभि पावैं ॥ ७७ ॥
अति सुंदर गुर को इतिहास। रिदे बिकारन करता नाश।
श्री अम्रितसर की शुभ कथा। भई जथा उचरों मैं तथा ॥ ७८ ॥
इक मन होइ सुनहु करि प्रीति। महां महातम प्रापति मीति।
सतिगुर कथा कि है सुखरासि। जनम मरन के कशट बिनासि ॥ ७९ ॥

दोहरा

राम कुइर भाई तबै करि श्रोतनि सवधान।
करन लग्यो इतिहास को बरनन जथा महान ॥ ८० ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्रोतनि को बूझबो प्रसंग बरननं नाम त्रितीओ अंशु ॥ ३ ॥

अंशु ४
जैमल फत्ते को प्रसंग

श्री रामकुइरोवाच ॥

चौपई

श्रोतनि की उर चाहि बिचरि कै। बोले रामकुइर हित धरि कै:।
कथा सुधासर की भई जैसे। सुनहु कान दै बरनौं तैसे ॥ १ ॥
श्री गुर अमरदास जबि भए। सिख्यन गन उधार जिन कए।
रचन बापिका कीनसि त्यारी। महल चिनावति भे बड भारी ॥ २ ॥
लगे अनिक कारीगर करने। बहुत मजूर कहां को बरने।
दूर दूर ते नर चलि आवें। सेव बापिका की सु कमावें ॥ ३ ॥
कितो काल बीत्यो करिवावति। बैठे सतिगुर ब्योंत बतावति।
लोकन के उधारिबे हेतु। बनवावति कहि क्रिपा निकेतु ॥ ४ ॥
उत दिल्ली महिं अकबर शाहू। जैमल फत्ता रहिं तिस पाहू।
वड जोधा दोनहुं रजपूत। लखि तुरकेश बली किय सूत ॥ ५ ॥
गढ चतौड को राज करंते। आइसु अकबर की बरतंते।
कबहिं रहैं निज गढ के मांहि। कबि दिल्ली महिं अकबर पाहि ॥ ६ ॥
इक दिन पिशन[1] सुनावनि लागा। सुनहु खुदावंद तुम बड भागा।
तीन वसतु जैमल घर मांहि। सो रावरि के उचिती आहि ॥ ७ ॥
बली तुरंगम रुचिर मतंगा। दोनहुं घर राखहि बिधि संग।
इहां न आनति त्रास बिचरिकै। शाहु लेहिगो चारु निहरि कै ॥ ८ ॥
इक जैमल तनुजा तन सुंदर। चातुरता चंचल गन मंदर।
कमल पत्र बिसतार बिलोचन। पिखति कटाछन धीरज मोचन ॥ ९ ॥
बेनी नागन सी सटकारी[2]। मध्यदेश सूखम कुच भारी।
गौर रंग चंपक जनु पाति। किधौं दिपति कंचन अविदात ॥ १० ॥

---

1. चुगली। 2. लटकती हुई, लम्बी।

भौर गुंजारति [illegible] बिचारति ।
चौदहिं बरखन की बर बाला । मनहुं अधूम लाट है ज्वाला ।। ११ ।।
जिस की जाति पदमनी कहैं । भूखन भार देहि नहिं सहै ।
सखियन बांहु गहे जबि चालति । कचन[1] कुचन[2] के भार बिहालति[3] ।। १२ ।।
बीच पजामे उरू[4] जु मेले । गोल सछीलक जनु जुग केले ।
चारु चकित म्रिग सिसि द्रिग सोहति । पलट मीन की जनु जबि जोहति ।। १३ ।।
जावद छुअति अपर नहिं लोग । तावद शाहु आप के जोग ।
जैमल से जाचहुगे जबिहूं । अरपहि सुता तुमहि को तबिहूं ।। १४ ।।
नहिं जग महिं को तुम ते आछो । भाग बडो रावरि जे बांछो ।
उचित आप के मैं मन जानी । यांते सभिही बात बखानी ।। १५ ।।
इम गुन सुनि, भरम्यो मन शाहू । अकबर शाहु तुरक नर नाहू ।
पठ्यो वकील तबहि तिस डेरे । कहि कहि लालच देनि बडेरे ।। १६ ।।
जैमल निकटि जाइ तबि कह्यो । शाहु प्रसन्न तुमहूं पर लह्यो ।
बहु हित करि के मोहि पठावा । बारि बारि तुव सतुति सुनावा ।। १७ ।।
बडे बहादर दोनहुं भ्राता । तिनि समान मैं अपर न जाता ।
मुझ सों करहि सबंधं बनाए । कह्यो मोहि मानहिं हरिखाए ।। १८ ।।
तिन को मनसब करब बडेरे । हुकम होइ तिन देशन मेरे ।
अपनी सुता देहिं मुझ ब्याहि । हय, हाथी, दायज दै तांहि ।। १९ ।।
इस ते परै खुशी नहिं मोहि । जैमल को अतिशै हित होहि ।
सुनि रजपूत महां दुख माना । हन्यो कान जनु तानि सु बाना ।। २० ।।
कितिक काल करि मौन अडोला । पुन जैमल मुख ते बच बोला ।
तुरक शाहु हम हिंदू धरम । नहीं समान दुहन के करम ।। २१ ।।
अंतर राति दिवस को अहै । किम समता तिस की हम लहैं ।
आपस बिखै विपरजै रीति । करे बिचार बनहिं नहिं नीति ।। २२ ।।
असमंजस इहु किमि बनि आवै । भ्रातन मैं क्या बदन दिखावैं[5] ।
इम सुनि दूत जाइ सुधि दीनसि । खुदावंद ! नहिं मानन कीनसि[6] ।। २३ ।।
कहति भए हम है रजपूत । तुरकेशर सों किम हुइ सूत ।
निस बासुर रहिं आइसु कारी[7] । बिधि सबंध की हुइ न हमारी ।। २४ ।।

---

1. बाल । 2. स्तन, वक्ष । 3. व्याकुल हो जाती है । 4. पर । 5. क्या मुंह दिखाऊँगा । 6. नहीं मानी । 7. आज्ञाकारी ।

दोहरा

परहि जंग जहिं शाहु को तहां सुरधारहिं कार।
नांहि त हित तुरकेश के प्रान देहिं ललकार॥ २५॥

चौपई

करहिं सबंध न धरम हमारो। निंदहि जीवति जगत मझारो।
अकबर के उर महिं लिव लागी। सुनि गुन तिय के लालस जागी॥ २६॥
पुनहि दूत सों कीन बखान। बहुर जाइ कहुं दे सनमान।
मुझ ते भलो जगत मैं कौन। तनुजा को दै हैं जिस भौन॥ २७॥
मम घर महिं बेगम कहिलावै। सभि जहान जिह सीस निवावै।
जिस ते परै नहीं बडिआई। राउ रंक मैं करवि बनाई॥ २८॥
देहु सुता निज हठि को खोवहु। आगे ते चौगुन अबि होवहु।
जबि इमि कह्यो न मानै सोइ। अपने हठ महिं रहहि खरोइ॥ २९॥
तबि मेरे दल बल को त्रास। करहु सुनावनि सभि तिन पास।
भुव मंडल महिं कहां पलावहु। कहां जाइ बसि प्रान बचावहु॥ ३०॥
शाहु गहहि तुम को सभि ठौर। नहीं बचाइ सकहि को और।
सुनि अकबर ते गमन्यो दूत मिल्यो जाइ जैमल रजपूत॥ ३१॥
कही शाह की सकल सुनाई। देहु त्रास कै लेहु बडाई।
इहु तउ बात टरहि नहिं कैसे। देहु सुता कारज शुभ ऐसे॥ ३२॥
सुनि कै तबि चिंता चित ठानी। कितिक देर लौ भनी न बानी।
पुन जैमल बोल्यो बलसाली। इस को उत्तर दैं हम काली॥ ३३॥
अपने भ्रातनि साथि बिचारि। सार असार करहिं निरधार[1]।
सुनति दूत तबि गयो बिचरिकै। फत्ते सों जैमल मिलि करिकै॥ ३४॥
महां शोक दुख मन महिं पागे। दोनहुं मसलत करने लागे।
इहु तुरकेश बडो गरबीला। धन दल बल ते अधिक हठीला॥ ३५॥
हम रजपूत शासत्र बड़ धारी। इस के साथ न बनहि हमारी।
जे तनुजा दे राज कमावें। निंदा हलत पलत दुख पावें॥ ३६॥
गढ चितौड चढि चलहु शिताबी। तहां जंग हम करहि अजाबी[2]॥
इस को लशकर देहिं खपाइ। हनहिं शासत्र जै लेहिं उपाइ॥ ३७॥

---

1. विचार करके। 2. आश्चर्ययुक्त।

नांहि त धरम जुद्ध महिं मरिहैं। सुर पुरि बिखै पयानो करिहैं।
जंग करन ते दोनहुं लोक। सुधरति हैं, तजि द्यो मन शोक ।। ३८ ।।

तनुजा देनि बिखै दुख पावैं। लोक जाइ परलोक गवावैं।
जीवन धंन तिसी को अहै। जग उसतति, मरि सुर पुरि लहै ।। ३९ ।।

अस मसलत करि दोनहु भ्रात। बडे सुभट चढि चले रिसात।
मग महिं लूट कूट पुरि ग्राम। जाइ पहुँचे अपने धाम ।। ४० ।।

गढ चित्तौड आकी हुइ रहे। सगल विधिनि तकराई गहे।
सैन सकेलि दुरग करि त्यारी। चहिय वसतु सभि अंतर डारी ।। ४१ ।।

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' जैमल फत्ते को प्रसंग बरननं नाम चतुरथो अंशु ।। ४ ।।

अंशु ५

गढ़ चतौर को जंग प्रसंग

दोहरा

गढ चितौड़ आकी भए जैंमल फत्ता भ्रात।
सुनि अकबर सहि नहिं सक्यो रिस्यो ओठ फरकाति ॥ १ ॥

चौपई

सभि सूबे ढिग जे उमराऊ। तिन देकरि नीके सिरुपाऊ।
रण सामिगरी सकल दिवाई। उचित जान करि दीन बडाई ॥ २ ॥
सैन सकेलि देश ते भारी। साज़ी, पैदल, गज अंबारी[1]।
तोप, रहिकले, तुपक, जमूरे। अति उतसाह भरे उर सूरे ॥ ३ ॥
तबि अकबर सभि पीर मनाए। भेट शीरनी[2] दे अधिकाए।
चढी कमान बीच अजमेर। भयो प्रसंन शाहु सम शेर ॥ ४ ॥
गढ चतौड़ दिश कीन चढ़ाई। चढ्यो शाहु बड वंब बजाई।
सनै सनै डेरे करि कूचं। गढ रिपु के तबि जाइ पहूचं ॥ ५ ॥
लाइ मोरचे दीन चुफेरे। पर्यो जुद्ध घमसान घनेरे।
चलहिं तोप जनु गाज गजब की। उडहिं सुरंगन मार अजब की ॥ ६ ॥
तबि रजपूत अफीम चढाइ। मुख लाली मन कोप बढाइ।
गहि शमशेर होइ सम शेर। मारि मारि करि परे दलेर ॥ ७ ॥
दौरि दौरि करबार प्रहारें। बजहि सरोही पौरें उतारें।
छुटहि तुफंग गडहिं तन गोरी। रुधिर भीजि जनु खेलहिं होरी ॥ ८ ॥
परहिं गुबारे दुरग मझार। एक वार ते अनिक[3] संहार।
हला हली माच्यो संग्रामा। मरहिं परसपर बजै दमामा ॥ ९ ॥
तुररी रण सिंघे गण ढोल। परहि नफीरन के बड़ बोल।
तोप रहिकले छुटहिं जंजैल। चलहिं जमूरे गूंजति सैल ॥ १० ॥

---

1. हाथी का होदा। 2. मिठाई। 3. अनेक।

भयो कुलाहल सूरनि केरा। उठ्यो शबद चहुं दिशनि बडेरा।
झट पट कटि कटि सकट लिटे हैं। सट पट जुट करि रिसन मिटे हैं॥ ११॥

करे अंग लोहू बहु चाले। जुद्ध खेत महिं गन मुरछाले।
केतिक के कर पग उड गए। गोरे लगहिं नहीं थित भए॥ १२॥

कडा कडी करवाररनि करी। ठिला ठिली सेलन, सर सरी।
हथावथी हथिआरनि होए। सांगनि अंग निसंग परोए॥ १३॥

उडहि बरूद साथ नभ मांही। भ्रमति गिरति प्रानत बिनसांही।
लगै घाव सनमुख मरि रहैं। शत्रु आइ सनमुख नहि सहैं॥ १४॥

होठनि काटति मूंड परे हैं। रुंड परे कर शसत्र धरे हैं।
आमिख ग्रिध ग्रिध को खावैं। जंबुक त्रिपतं कूक सुनावैं॥ १५॥

लोथन गन को पोथन[1] करैं। श्रोणित खप्पर जोगनि भरैं।
निकस परे भट जैमल फत्ता। बिचरति रण महिं जिम गज मत्ता॥ १६॥

प्रिथम तुफंगन की करि मार। बीच मोरचे सुभट संहारि।
इत ते चढी शाह की सैना। मिले समुख मुख भट रण ऐना॥ १७॥

चलन लग्यो तीखन गन सार। मारि मारि करि परे जुझार।
नमसकारनी[2] ते छुटि गुलकां[3]। ज्वाला ज्वलहि दिपहिं जनु उलका॥ १८॥

चहुं ओरन गोरनि मुचकंती। जनु ओरन घोरन बरखंती।
उर फोरन तोरन मुख करैं। डर होरन को कोरन अरै॥ १९॥

चहुं दिश ते उमड्यो दल भारी। जैमल फत्ता घेरि मझारी।
मारहु पकरहु जान न दैहो। दौरहि कहहिं 'रोक इन लैहो॥ २०॥

जबि रजपूत रुके इस भांती। जुद्ध क्रोध करि आंखन राती।
प्रिथम तुफंगन की करि मारि। तोमर सांगनि सेल संभार॥ २१॥

पुनि तरवारेन पर [illegible] धरे। सनमुख मुख करि दुहि दिश भिरे।
अंग बिदीरनि जोधा भए। घाइल घूमति मुरछा लए॥ २२॥

कटि कटि गिरे सुभट रण मांही। मरे समुख सुर पुरि को जाहीं।
नही चरन इक हटे पिछारी। श्रोणित बिथर्यो अवनि मझारी॥ २३॥

म्रितक अनेक परे छित कीरन[5]। कर पग कटि होए बिसतीरन।
आंत्रै केस बिसाल परे हैं। खडग तुटे गन कवच गिरे हैं॥ २४॥

कहूं तुरंग मरे धरि परे। कहूं तुफंग छूछीअन[6] धरे।
तोमर साथ बिधे तनु केते। गोरी लगी फटे उर तेते॥ २५॥

---

1. ढेर। 2. बंदूकों से। 3. गोलियां। 4. छूटती हैं। 5. बिकीर्ण। 6. खाली।

किति तरफति माँगति हैं पानी। हाइ हाइ हति कूकति बानी।
जंबुक म्रितक घसीटति काहूं। काक ग्रिध त्रिपते रण मांहू॥ २६॥

हलाहली माच्यो संग्रामा। मरि-मरि पहुँचति भे जम धामा।
इस प्रकार रण घालि घनेरे। हरि प्रविशे निज दुरग बडेरे॥ २७॥

बहिर तुरक सैना ढुकि नेरे। करे मोरचे गढ चउफेरे।
धहा धही तोपनि को मारैं। उडहिं सुरंगनि गजब गुज़ारैं॥ २८॥

अंतर ते गन तुपक चलावैं। आवति जाति अनिक भट धावैं।
इसी रीत नित माचहि जंग। लिटहिं सुभट जनु परे मलंग॥ २९॥

गोरे गोरी बरखा बरखहि। होति शबद काइर उर धरखहिं[1]।
उठहि पलीते[2] दागहि तोडे। कडकहिं तडिता सम मुख मोडे॥ ३०॥

कितिक दिवस महिं पुन करि त्यारी। निकसे बहिर भेड[3] करि भारी।
मारन मरन सुभट करि सूरि[4]। कटि कटि अंग मिलति हैं धूरि॥ ३१॥

लरि लरि पचि पचि श्रमत सु होइ। कटि कटि निज दिश हटि दल दोइ।
संमति कितिक बितीतति भए। नहीं जुध को मेटन कए॥ ३२॥

बीच मोरचनि होति लराई। तोप, तुपक, जंजैल चलाई।
गोले गुलकां लागहि धाइ। नितप्रति हति हैं सुभट रिसाइ॥ ३३॥

कई बार हेला करि परैं। दौरि दौरि सनमुख हुइ मरैं।
ज्वाला बमणी करि करि त्यारी। दागहि एक बार भट मारी॥ ३४॥

अनिक जतन को रचहिं बनाइ। हतहिं दुरग किम जै को पाइ।
दुहूं दिशनि के भट बहु मारे। लरहिं परसपर मरहिं जुझारे॥ ३५॥

निज निज पति की जीत चहंते। हेतु जीवका लरति मरंते।
दुह दिश बजहिं जुझाऊ बाजे। करि उतसाहु भिरति [illegible] राजे॥ ३६॥

गढ चतौड कहु करिकै घेरा। पर्यो कटक बड अकबर केरा।
लरि बहु बार भए भट हौरे। सनै सनै लरते निज ठौरे॥ ३७॥

इस प्रकार घेरे कौ पाइ। पर्यो शाहु अकबर तिसु थाइं।
कितिक बरख तहिं बीत गए हैं। नहिं संग्राम सु टिकन किये हैं॥ ३८॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे "गढ़ चतौर को जंग" प्रसंग बरननं नाम पंचमो अंशु॥ ५॥

---

1. हृदय धड़कना। 2. जलती हुइ मशाल, जिससे तोप को दागा जाता है। 3. लड़ाई। 4. शूरवीर।

अंशु ६

सिक्ख वाक अकबर प्रसंग

दोहरा

बहुत बरख जब बीत गे अकबर शाहु बिसाल ।
सोचति सोचन को अधिक करि बिचार तिसकाल ॥ १ ॥

चौपई

सभि सूबे उमराउ बुलाए । गन मंत्री सुनि करि चलि आए ।
मुखी सैन के सकल हकारे । निज सामीप कहति सतिकारे ॥ २ ॥
जबि सभि आए लग्यो दिवान । उमरावन दिश पिखि सुलतान ।
कहति भयो 'सुन हो बच सारे । करहु बिचारन पुनहुँ उचारे ॥ ३ ॥
जबि दिल्ली ते चढे चतौर । तबहि मनाए सभि ही ठौर ।
जिते पीर सभि को मैं माना । दीन शीरनी वसतू नाना ॥ ४ ॥
सभिहिनि की 'आग्या कहु पाए । बिच अजमेर कमान चढाए ।
मैं निज कारज कौ सिध जाना । करि पीरन पर सिदक महाना ॥ ५ ॥
चढि चतौर पर आयहु तबै । अपनो दल संग लै करि सबै ।
इहां जंग जेता कछु भयो । सकल बीच तुम जानि सु लयो ॥ ६ ॥
अनिक जतन करि कीनि लराई । जोधा मरे ब्रिद दुह घाई ।
बरख किते बीते इस थान । खरच खज़ाना भयो महान ॥ ७ ॥
बहुते सुभट रहे रन ठौर । बिदत जुद्ध भा सभि महिं गौर ।
चारहुं दिशा पेखैं सुनि गयो । शाह चतौर संग रण भयो ॥ ८ ॥
बिन मारे जे उठि अबि चाले । होति उपद्रव हर्नाहि बिसाले ।
अनिक सूर राजे मैं दले । सो सभि मिल करि होवहिं खले ॥ ९ ॥
आकी होइ जंग को चाहैं । बिगर जाइं, नहिं मिलन उमाहैं ।
हतहि चतौर रहहि पति मेरी । पतिशाहित तबि बधहि बधेरी ॥ १० ॥
जे गढ नहिं टूटहि हटि जाहिं । अनिक थान तबि जंग मचाहिं ।
भले चढे निज काज सुधारनि । पूरब को भी कीनि बिगारन ॥ ११ ॥

तुमरे महिं बुधिवान महांन। कहहु उपाव होहि गढ हान।
जो इहु काज सुधारहि मेरा। तिस ते अपर भला नहिं हेरा॥ १२॥

सभ महिं ब्रिधहि सु मोहि अगारी। तिसकी आन मानि हौं भारी।
बड संकट इहु गढ को पर्यो। टूट्यो नहीं जुध बड कर्यो॥ १३॥

भेद नही रजपूतन मांहि। अपर उपाउ बनहि को नांहि।
पीर फकीर अपर जे कोई। जिसको कह्यो बाक फुरि होई[1]॥ १४॥

सो खोजहु चारहुँ दिश मांहि। जहां सुनहु परखहु तहिं जाहि।
जिम प्रसन्न हुइ करुना करई। मैं सभि जुति तिसके अनुसरई॥ १५॥

ऐसो खोज बतावहि मोही। अधिक हितू तिह सम नहिं होही।
इस संदेह गरत महिं गिर्यो[2]। करहि निकासन जो हित भर्यो॥ १६॥

इम सुनि कै सभि लगे बिचारन। अस पूरन को करहिं निहारन।
किसहूं ने को पीर बतावा। नहिं पसंद अकबर की आवा॥ १७॥

कहन लग्यो 'इस ते भि बडेरे। प्रिथम मनाए पीर घनेरे।
किसहूं ते न सर्यो मम कामू। भए निफल खरचे बहु दामू॥ १८॥

गुर घर को इक सिक्ख महाना। शाहु बाक तिन भी सुनि काना।
सहति संदेहु कहनि को होइ। इहु है तुरक श्रधालु न कोई॥ १९॥

गुर घर पर किमि सिदक धरे है। रिदे नंम्रि किम सीस करेहै।
गुर को निमहिं पाइ बडिआई। गुर को निमहि सु इच्छ पुराई॥ २०॥

एव बिचार एक दिन राति। पुनि निशचै चित कीनसि बाति।
एक बार मैं इस को कहौं। सतिगुर को प्रताप जस लहौं॥ २१॥

इस के भले भाग ले मान। नांहि त पावै कशट महांन।
इमि बिचार के चित द्रिड करि के। गयो शाहु ढिग खरो निहरिकै॥ २२॥
कर तसलीम[3] समुख करि नैन। शाहनशाह सुनहु मम बैन।
निमक तुमारो हम नित खाति। भलो चहति हैं चित दिन राति॥ २३॥

जग गुर नानक प्रथम भए हैं। सभिहिनि शुभ उपदेश दए हैं।
हिंदू तुरक दुऊ जिस मानहि। गुरू पीर जिस नाम बखानहिं॥ २४॥
अजमति मैं पूरनि सभि भांती। जिस के समसर नहिं किसु बाती।
करामात सभि धान लगाई। पीर मीर नंम्रे अगुवाई॥ २५॥

---

1. पूरा हो जाए। 2. सन्देह के गढ़े में गिरा हुआ। 3. सलाम।

ज़ाहर सभि जहान महिं लेख [illegible] के सनमुख को न [illegible] ।
बाबर शाहु जु बडो तुमारो । तिन बखश्यो इहु पद जु उदारो ॥ २६ ॥
जनमति ही अज़मति अति धारी । सुपति छांव किय फण बिसतारी ।
महिखन चरि कै खेत उजारा । छिन महिं किय हरिआवल सारा ॥ २७ ॥
अनिक म्रितक भी करे जिवावन । जहिं तहिं बिचरे जसु अति पावन ।
करामात धारी जग जेते । गोरख आदिक सिध गन केते ॥ २८ ॥
तुरकन बिखै पीर अज़मती । मती बिलंद, द्वैत चित हती ।
शमस आदि जिनहुं दिन नाथ । तरै उतार्यो बोलन साथ ॥ २९ ॥
श्री गुर सभि सों चरचा करे । अज़मत को दिखाइ करि तरे ।
केतिक गिनीएं जगत मझारे । दरशन दे करि नर निसतारे[1] ॥ ३० ॥
खलक बिखै अस ठौर न कोई । श्री नानक को लखै न जोई ।
जिन के हिंदू तुरक समान । मोख पंथ उपदेशति दान ॥ ३१ ॥
कहाँ कहां लग तिन की कीरति । बिदति जगत सगरे बिसतीरति ।
रावर के समीप उमराव । बूझि पिखहु सभि लखैं प्रभाव ॥ ३२ ॥
ते बैकुंठ लोक जबि गए । गादी पर गुर अंगद थिए ।
मन इंद्रै को जीतन हारे । हारे शत्रु जिनहूं अगारे ॥ ३३ ॥
अति गंभीर धीर धरमातम । को कहि सकि है तिनहूं महातम ।
करामात श्री नानक केरी । लई छपाइ नहीं किन हेरी ॥ ३४ ॥
अपन सथान थाप कै आप । जाहर करि जहान परताप ।
देवलोक महिं गए गुसाईं । गादी पर तिन ते पिछ्वाई ॥ ३५ ॥
अमरदास है त्रितीओ रूप । बैस ब्रिध मुख जोति अनूप ।
जिनहुं प्रतिग्या अचरज करी । आइ बसहि जो हमरी पुरी ॥ ३६ ॥
देखति मात पिता के तात । मरहिं नहीं जीवहिं कुशरात ।
करामात इत्यादि अनेक । बिदति जगत महिं सहत बिबेक ॥ ३७ ॥
आगै थिति निति रिधि सिधि निद्ध । मुख को देखहिं सकल सम्रिधि ।
जन अनेक जिन कीन निहाल । कहैं जु मुख, हुइ सो ततकाल ॥ ३८ ॥
सुन करि अकबर अचरज माना । रिदै चाहि करि वाक बखाना ।
कौन देश पुरि कौन सथाना । नेरे किधौं दूर परमाना ॥ ३९ ॥
तिन ते बर लेवन के कारन । गुर सेवक ! तुम करो उचारन ।
सुनि कै हाथ जोरि गुरदास । कहति भयो अकबर के पास ॥ ४० ॥

---

1. उद्धार किया ।

शाहनशाह सुनहु, इस थल ते। अहै दूर बहु, मारग चलते।
रावर को न बनहिं अबि जानो। दिल्ली पुरि ते निकट सु जानो ॥ ४१ ॥

लवपुरि के है बहुत समीप। नदी विपासा, हे! अवनीप।
गोइंदवाल तीर तिसु अहै। अमरदास गुर तिह ठां रहै ॥ ४२ ॥

अबहि मातबर[1] रावर केर। पहुंचहि तिन ढिग करहि अदेर[2]।
अनिक उपाइन को लै जाइ। तुमरी दिश ते बिनै सुनाइ ॥ ४३ ॥

शरधालू हुइ भाव महांना। अरज़ गुज़ारहि गरज सुजाना।
तबि जो करहिं बाक गुर पूरे। पूरन होइं ज़रूर ज़रूरे ॥ ४४ ॥

जबहि पठावन करि हो कोइ। तबि तुम हाथ जोरि कै दोइ।
श्री गुर अमरदासु ले नाम। मुख सनमुख करि कै तिन धाम ॥ ४५ ॥

अपनो काज चितव करि मन मैं। तसलीमात[3] करिहु तिसु छिन मैं।
करहु आज ते ऐसी बात। गमनै मारग दिन अरु राति ॥ ४६ ॥

जाचहि जबहि जाइ करि जोइ। निशचै कारज तुमरो होइ।
पुन आगै सतिगुरू मनावहु। मन बांछति फल तिन ते पावहु ॥ ४७ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'सिक्ख-वाक अकबर प्रसंग' बरननं नाम खशटमो अंशु ॥ ६ ॥

1. विश्वास पात्र। 2. शीघ्र। 3. आदर सहित नमस्कार करना।

अंशु ७

श्री गुर अमरदास प्रसंग

दोहरा

सुनि अकबर शरधा धरी कहिन लग्यो सभि मांहि ।
मक्के ते हाजी अए अपर मुजावर[1] आहि ॥ १ ॥

चौपई

तिनहुं मोहि ढिग कही सुनाइ । श्री नानक पहुंचे तिसु थाइ ।
तहिं मकान की दिश करि चरन । सुपते निसा परे ढिग धरनि[2] ॥ २ ॥
जीवन गयो मुजावर हेरि । कहे क्रूर बच गहि करि पैर ।
करे घसीटन तहिं ते जबै । दर मकान तिस दिश भा तबै ॥ ३ ॥
मुसलमान भी मानहिं तिन को । इक सम जस ब्याप्यो जगु जिन को ।
तिन ते मैं अबि होइ सनाथ । कारज पुरवों धरि पग माथ ॥ ४ ॥
इम कहिं त्यार कीन बुधिवाना । पढ्यो पारसी इलम महांना ।
निति सतिसंगी, माधुर कहै । बिमल रिदा जो सभि बिधि लहै ॥ ५ ॥
साथ उपाइन उत्तम दीनसि । जरी वसत्र पशमबर लीनसि ।
इत्यादिक ले दरब घनेरा । चल्यो गुरू दिश भाव बडेरा ॥ ६ ॥
पुन अकबर ने सिक्ख सो कह्यो । गुरू ब्रितांत सरब तैं लह्यो ।
तूं भी गमनहुं इस के साथ । मम दिश ते टेकहु पग माथ ॥ ७ ॥
जथा वचन श्री मुख ते कहैं । तुम संग बहुत सांढनी अहैं ।
अतिशै तुरतै पठावहु सुधि को । सेवहु सतिगुर करि सुधि बुधि को ॥ ८ ॥
अकबर ते रुखसर हुइ चले । करति उताइल मारग ढले ।
लघु बिसरामहिं गमनें दूर । जाइ पहुँचे गुरू हजूर ॥ ९ ॥
गोइंदवाल सिवर करि दीनि । सगरी भेट हाथ धरि लीनि ।
श्री गुर अमरदास निज थाइं । बडी वापिका कहु बनवाइं ॥ १० ॥

---

1. पुजारी । 2. पृथ्वी, ज़मीन पर ।

बैठहिं आप जाइ करि तहां। शिलपी कार सवारहिं जहां।
श्री मुख ते फुरमावहिं ज्यों ज्यों। ब्योंत बनावहिं शिलपी त्यों त्यों ॥ ११ ॥
अनिक जतन को करते अहैं। मनुज सैंकरे निस दिन रहैं।
होइ रहति मीर चहुं फेरे। घने मिहनती, सिक्ख घनेरे ॥ १२ ॥
अनिक देश ते संगति आवै। दरशन दरस कामना पावै।
तिसु दिन भौर होति जबि आए। बैठे गुर मसनद विछाए ॥ १३ ॥
देश-देश ते सिख चलि आइ। धरें उपाइन सीस निवाइ।
बैठे सबद गावनो होति। गुर सिक्खी कहुं करति उदोति ॥ १४ ॥
इतने महिं अकबर के मानव। आए संग उपाइनि नानव[1]।
हाथ जोर धरि दीन अगारी। होइ दीन मन बंदन धारी ॥ १५ ॥
गुर पूछे तुम कित ते आए। भेट मोल बहु बसतू ल्याए।
को कारज गुर पुर्यो तुमारो। कै जाचन को चहति, उचारो ॥ १६ ॥
सुनि कै नवी सिंद[2] कर जोरे। शहन शाह तुम चरन निहोरे[3]।
रावरि निकटि पठावन कीने। जस तुमरो श्रवनन सुनि लीने ॥ १७ ॥
पठी उपाइन शरधा धरि कै। बारि बारि बहु बिनै उचरि कै।
सभि पीरन ते होइ निरासे। पठ्यो हमहिं को रावरि पासे ॥ १८ ॥
कीरति श्री नानक की सुनि कै। गुर अंगद की गुरता गुनि कै।
रावरि की महिमा कहु मानि। पठ्यो हमैं अकबर सुलतान ॥ १९ ॥
कीनसि दिल्ली ते प्रसथान। बिगर परे रजपूत महान।
तहां जंग ऐसो कछु होवा। गन सुभटनि को रण थल सो वा ॥ २० ॥
तोपैं बहुत बरख चलिवाई। धूम धार नभ महिं बहु छाई।
अनिक सुरंगैं खोद उडाई। लाखौं ज्वाला बमणि छुटाई ॥ २१ ॥
निकसहिं बहिर दुरग ते राजे। बजहिं जुझाऊ दुहु दिशि बाजे।
जोधा भिरहिं परसपर घने। लरहिं मरहिं गिर श्रोणित सने ॥ २२ ॥
इस बिधि मचहि घोर संग्राम। लाखहुं नर पहुंचहिं जम धाम।
अनिक उपाउ शाह करि रह्यो। गढ चितौर को क्यों हुं न लह्यो ॥ २३ ॥
सभि पीरनि के बाक सिमरि कै। रह्यो शाहु अचरज उर धरि कै।
कारज सर्यो न जबि किस भांति। सुनि तुमरी कीरति अविदाति ॥ २४ ॥

1. नाना प्रकार की भेंट। 2. मुंशी ने। 3. चरणों में विनती की है। 4. शूरवीरों का समूह रणभूमि में सो गया है।

बचन आप के सुनिबे कारन। पठ्यो उताइल काज सु धारन।
हम रावरि की शरनी परे। पूरह पैजि तहां जिमि करे[1] ॥ २५ ॥

श्री नानक सों बडो हमारो[2]। मिलि करि पायो राज उदारो।
यांते हम तिन ही के अहैं। हमरी शरम[3] आप ही लहैं ॥ २६ ॥

रावर की[4] मैं सुनी बडाई। परैं शरनि तजि आस पराई।
तिस के सदा सहाई होति। चिंता सगरी संकट खोति ॥ २७ ॥

श्री गुर अमरदास सुनि बैन। ब्रिद्ध बैस जिनि आयुत नैन[5]।
शत बरखन लौ पहुंचे जाइ। बिसद शमस, बर बदन सुहाइ ॥ २८ ॥

तन प्रमान लघु जिनि को अहै। तबि भी तप तापति अति रहैं।
पुरशोतम सभि सुख पर हरि कै। कर्सहिं सरीर, कशट निरि धरि कै ॥ २९ ॥

सुनि कै सिख के बाक सदीन[6]। अकबर शरधा जानि नवीन।
दूर देश ते पहुंचे आइ। इन की आसा पूरि कराइ ॥ ३० ॥

इम मन ठानि महांन क्रिपाल। बोलति भए बाक तिस काल।
जबि को अकबर चढ्यो सुचेत। गढ चितौर निज लैबे हेत ॥ ३१ ॥

सरब भांति करि दल बल त्यारी। घेर्यो दुरग जतन करि भारी।
तबि ते तिसी रीति हम कीनि। उद्‌दम बापी रचन नवीन ॥ ३२ ॥

अनिक जतन हम भी करि रहे। सिधता नहि बापी की लहे।
जबहि बापिका को कड तूटे[7]। तबि ही दिढ चतौर गढ छूटे ॥ ३३ ॥

दोनहुं कारज अहैं समान। तहिं रजपूत महां बलवान।
इहां कठोर रोर अर रहे[8]। करे जतन बहु भगन न लहे ॥ ३४ ॥

तैसे तहां न्रिपति भट भारी। सर नहिं भए[9] करति नित रारी।
रोरन को ऊर जबि हम ढोरैं। शाहु निसंसै दिढ गढ तोरैं ॥ ३५ ॥

जिसी मास को पख्य जु होइ। तिथि अरु वार इक ही जोइ।
तिसी जाम की घटिका इक महिं। टूटहिं दोनहु सम, नहिं अटकहिं ॥ ३६ ॥

आगै पाछे काज न सरै। तिसही समै सिद्ध जुगु करैं।
इम सुनि कै दोनो बुधिवान। रिदै कंतूहल सहत महांन ॥ ३७ ॥

---

1. जैसे भी हो सके। 2. हमारे पूर्वज। 3. इज्ज़त। 4. आपकी। 5. विशाल नेत्र। 6. विनयपूर्ण। 7. टूटेगा। 8. रोड़े अड़ रहे हैं। 9. उन पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।

अति प्रसन्नता धरि करि उर मैं। शरधा वधी बिसाली गुर मैं।
कर जोरे पद नमो करंते। 'सत्य, सत्य' मुख ते उचरंते॥ ३८॥
सुनि गुर वाक सिवर महिं आए। शाहु काज सिधि लखि हरखाए।
आवन सफल हमारो होवा। दरशन दरसे संकट खोवा॥ ३९॥
हम पर शाहु प्रसन्नै होइ। बांछति दरब देइ है सोइ।
अति दुख सागर संसै नांहि। पारि परहि उर मैं हरखाहि॥ ४०॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्री गुर अमरदास' प्रसंग बरननं नाम सपतमो अंशु॥ ७॥

अंशु ८

चतौर गढ़ टूटन प्रसंग

दोहरा

अति हरखति खत को लिखति सतिगुर बच जिस भांति।
दयो सांढणी को तुरत कह्यो गमहुँ दिन राति ॥ १ ॥

चौपई

ले खत तत्रै उताइल धायो। निस दिन चलति जानु बदलायो[1]।
बहुर डाक महिं सुधि ततकाल। पहुंच्यो जहिं अकबर महिपाल ॥ २ ॥
कागद महिं जो लिख करि पठयो। शाहु खोल कै ततछिन पठयो[2]।
हरख मानु हुइ बहु मन मांहि। सो जान्यो जो श्री मुख प्राहि ॥ ३ ॥
मनहुं क्रिपन कहूं पारसु पावा। गहि लैहौं बिसवास उपावा।
शरधा अधिक रिदै बिरधाई। तहिं बैठे ही ग्रीव निवाई ॥ ४ ॥
कौतक रिद ह्वै खत लिखवायो। तुम ने लिख्यो सु हम लखि पायो।
श्री गुर जे इम बाक बखाना। तुम दोनो रहियहु तिस थाना ॥ ५ ॥
बापी कर टूटन के हेत। करहु जतन धन बुद्धि समेत।
जिमि उदपान[3] सिद्धि हुइ जाइ। जथा शकति बहु करहु उपाइ ॥ ६ ॥
शिलपी चातुर लेहु बुलाई। करिहु शीघ्रता मुझ हरखाई।
खत दे करि तिसै तकराई। 'अति तूरन सुधि दिहु पहुंचाइ ॥ ७ ॥
गढ टूटे हरखहि सुलतान। करहि सभिनि बखशीश महान।
चल्यो सांढणी पौण समान। गोइंदवाल दई सुधि आनि ॥ ८ ॥
जान्यो तिनहुं शाहु भिप्राय। रहन लगे करि बहुत उपाय।
ब्रिंद मिहनती शिलपी लाए। कीनसि त्यार महिल समुदाए ॥ ९ ॥
कर रोरन को अटक्यो तरे। भगन खनहिं[1] बिच नर बहु बरे।
श्री गुर अमरदास दिन सारे। बैठि करावहि बापी कारे ॥ १० ॥

---

1. सवारी बदलते हुए। 2. पढ़ा। 3. बावली।

अकबर शाहु पठे नर जोइ। चतुर जाम बैठे रहिं सोइ।
बुधि बल धन बल करिते रहैं। सिद्ध उताइल हुइ चित चहैं॥ ११॥
लोहन के हथ्यारन साथ। लघु अर गरव हतहिं गहि हाथ।
बहुत कट्यो थोरे रहि गयो। टूटनि को सु त्यार जबि भयो॥ १२॥
गढ चतौर उत अकबर हरखा। करिवावति भा गुलकन बरखा।
तोपैं बडी जंजैल जंबूरे। निकट दुरग हुइ दागति सूरे॥ १३॥
हलाहली करि रौर मचाए। शकती तोमर खडग उठाए।
अनिक गुबारन की करि मारे। गिरद सुरंगैं दुरग बिदारे॥ १४॥
उत रजपूत सहे नहिं अंतरि। निकसे चाहति जंग निरंतर।
जैमल फता दोनहुं भ्राता। लरे वहिर जोधा बख्याता॥ १५॥
दल दोनहुं मिलि आपस मांही। करहिं प्रहार अंग कटि जाहीं।
गिरहिं तुरंग ते सुरग चढंते। इक घाइल घूमति तरफंते॥ १६॥
अस दारुन संग्राम मचावा। शव देहन करि सो थल छावा[2]।
रुंड मुंड भुजदंड बिहंडे। खंड खंड बड दंड घमंडे॥ १७॥
कहां लगे रण बरनन करौं। इही ग्रिथ बड ह्वै इम डरौं।
तिस बासुर लरते जुग भ्रात। बहु लशकर तुरकन करि घात॥ १८॥
फत्ता गिर्यो युद्ध महिं ऐसे। मूल कटे धर तरुवर जैसे।
लगे शसत्र बहु जरजरि होवा। हूरन नूर रूर को जोवा॥ १९॥
रन सनमुख तन त्यागन करिकै। गयो सुरग उर आनंद भरि कै।
जैमल वहिर भ्रात मरिवाइ। अंतर दुरग बहुत बिलपाइ॥ २०॥
रह्यो इकाकी भ्रात बिहीन। कटे पंख जुग जिम खग दीन।
भुजा गई कटि निरबल रह्यो। भ्रात बिना को नाथ न लह्यो॥ २१॥
जीवत रहि क्या मुख दिखरावौं। अंतहपुर क्या जाइ बतावौं।
महां सुभट नहिं अपर समाना। लरति बहुत सों, डर नहिं माना॥ २२॥
घालति घने घरन को घोर[3]। जिस आश्रै डर नहीं चतौर।
इत्यादिक बिरलाप करंता। रजपूतन को गन बरजंता॥ २३॥
सुभटन की गति ऐसी अहै। मरे सुरग, जस जीवति लहैं।
तुमहि न उचित करन बिललावन। अन्न सूरन को मन थिरकावन॥ २४॥

1. तोड़ने के लिये खोदते हैं। 2. मुर्दा लाशों से भूमि भर गई है। 3. बहुत से घरों को भयभीत करता था।

होति प्राति रण मंडहु भारी। हतहु मोरचे जे ढिग द्वारी।
करहु कटा खडगन के साथ। शाह निकटि दिखरावहु हाथ ॥ २५ ॥
इम सहि शोक बिताइ निसा को। भई प्राति मंड्यो रन बांको।
निकस परे रजपूत बिसाले। दुह दिश सुभटन शसत्र संभाले ॥ २६ ॥
धूखे पलीते छुटी तुफंगें। जोधा गिरे फुटे बहु अंगै।
बरछे तिरछे बहुत भ्रमाए। सनमुख शत्रुन देहि धसाए ॥ २७ ॥
गहे कमान बान गन छोरें। रहहिं खरे नहिं मुख को मोरें।
कहिं लौं बरनौं जुद्ध उदारा। लख्यो जैमल सुरग सिधारा ॥ २८ ॥
समुख सैन लरि कै मरि गिरी। काइर भाजे धीर न धरी।
अंतर सुनि रणवासु महाना। जैमल फते को तन हाना ॥ २९ ॥
ले जमधर निज मार मरी हैं। तुरक त्रास ते रिदे डरी हैं।
बची न कोऊ धरम संभारे। हति हति निज को प्रान बिदारे ॥ ३० ॥
फते[1] जानि कै अकबर शाहू। भयो प्रसन्न बिलंद उमाहू।
गढ चतौर को तोरन करि कै। कयो बिलोकन अंतर बरिकै ॥ ३१ ॥
हरख्यो उर उत्साहु बधावा। बड मवास इहु मारि गिरावा।
त्रास बधै रजपूतन मांही। दिल्ली सों बिगरहिं अबि नांही ॥ ३२ ॥
बखशश करिकै निज उमराऊ। बहुत मोल को दै सिरुपाऊ।
सरब रीति पुन अपनी करि कै। सकले दुरग बसी नहिं धरि कै ॥ ३३ ॥
चढ्यो शाहु दिल्ली दिश हरखा। करति जाति मग धन की बरखा।
इतने महिं जे गोइंदवाल। पढ्यो हुतो जिसके सिख नाल ॥ ३४ ॥
आनि मिल्यो अकबर के तीर। जहिं उमरावन की बड भीर।
सलीमात करी बहु बारी। श्री गुर की सभि कथा उचारी ॥ ३५ ॥
मास तिथि अरु वार सु जाम। घटिका लिखि कागद पर नाम।
कड़ टूटे को हम लिखि ल्याए। और बड़ो अचरज पिखि आए ॥ ३६ ॥
मूरति शुभ खुदाइ की अहै। जिनकी समता कोइ न लहै।
अनिक देश ते संगत आइ। अरप उपाइन पूजहि पाइ ॥ ३७ ॥
सिख्यन की पूरहिं अभिलाखे। निस बासुर प्रभु कीरति भाखे।
सौ बरखनि लग बय महिं होए। तहां देश मानहिं सभि कोए ॥ ३८ ॥
श्री नानक की जोति उदारा। अबहि प्रकाशति तिनहिं मझारा।
सुनि अकबर सभि महिं कहि बाती। कागद करहु सुनावन प्राती ॥ ३९ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'चतौर गढ टूटन प्रसंग' बरननं नाम अष्टमो अंशु ॥ ८ ॥

---

1. विजय।

अंशु ६

बापिका प्रसंग

दोहरा

भई भोर अकबर कह्यो सभि उमराउ बुलाइ।
इलम पठन बारे[1] जिते अरु जो पीर कहाइ ॥ १ ॥

चौपई

सरब भांति के नर बुलवाइ। सभा बीच बैठ्यो हरखाइ।
नवीसिंद को बाक बखाना। अबहि सुनावो लिखि जो आना ॥ २ ॥
सभिनि बिखै तबि पठ्यो सुनायो। जबहि शाहु दिल्ली ते धायो।
तबि को तिन संकलप उठायो। सभि त्यारी करि चहति खनायो ॥ ३ ॥
जबहि शाहु पहुँच्यो तिस ठौर। तोपन गोरे लगे चतौर।
तबि ही टक छित खनिबे केरा। लाइ मजूर दए बिन देरा ॥ ४ ॥
इहु चतौर सर करते रहे। अनिक जतन करि शत्रु दहे।
तिनहूं खनाइ महिल चिनवायो। सने सने नीचे उतरायो ॥ ५ ॥
अर्यो आनि रोरन कर जबिहूं। इत ते हम ढिग पहुँचे तबहूं।
कह्यो बाक इसको कर टूटै। तबहि शाहु ते सो गड तूटै ॥ ६ ॥
सुनि हम लिखि भेज्यो इहां। तहां रहिन को हुकम सु कहा।
तबि ते हम डेरा तहि कीनसि। अचरज अधिक बिलोकन कीनसि ॥ ७ ॥
अर्यो रोर कर जबहि महांना। करे जतन मिलकै बिधि नाना।
किसहूं ते न सर्रा सो कारा। तबि श्री गुर ने बाक उचारा ॥ ८ ॥
इक सेवक नहिं माणक नामू। वैरोवाल बिखै तिह धामू।
कह्यो मानका होवहु त्यार। कर रोरन तोरन की कार ॥ ९ ॥
तुझ ते सरै, अपर नहिं करै। अंतर प्रविशहु अबि नहिं अरै।
तीखन लोह काठ के साथ। करहु जोर इस गहि कै हाथ ॥ १० ॥

मान बचन तैसे तिन कर्यो। निज बल बाहुन ते दिढ़ धर्यो।
अंतर बर्यो नमो कहु करिकै। श्री गुर चरन सप्रेम निहुरिकै॥ ११ ॥
कहिन लग्यो-क्या अहौं बिचारा। सतिगुर बाक करहि इहु कारा।
चरन ध्यान को धरि कै अंतर। कर बल बाहुनि ओज निरंतर॥ १२ ॥
कर्यो प्रहार गयो तर सारो[1]। फस्यो हाथ रहि गयो बिचारो।
कर टूट्यो कागद की न्याई। निसरी नीर बंब बरिआई॥ १३ ॥

जल अगाधि होयो इक बारी। रहि गयो माणक आपि मझारी।
जतन निकासन को नहिं होवा। पहुंच तरै तहिं किनहुं न जोवा[2]॥ १४ ॥
श्री गुर अपने महिल सिधारे। वापी कारज सकल सुधारे।
अति उतसाह सभिनि महिं होवा। बहु दिन को श्रम सिक्खन खोवा॥ १५ ॥
अमकी तिथि दिन जान चढ़े ते। ऊपर घटिका दोइ बढे ते।
टूट्यो कर तहिं बापी केरा। अनिक नरन थित सभि नै हेरा॥ १६ ॥
सुनि कै उमरावन जुति शाहू। गढ़ चितौर तबि कीन बिनाहू।
सभिनि कह्यो मा एकहु काल। कर टूटन गढि छूट बिसाल॥ १७ ॥
बिसमति भयो शाहु सुनि बात। 'श्री गुर अमरदासु बख्यात।
पूरन बचन भयो जिन केरा। काट्यो कशट अनिशट जु मेरा॥ १८ ॥
नवी सिंद ! रहि कै तिस ठौर। कहां पिख्यो तैं अचरज और।
सो भी सकल बतावहु मोही। लगति बापिका जिस बिधि होही॥ १९ ॥
सुनि कै नवी सिंद सिख साथ। कहति शाह सों बंदे हाथ।
हज़रत सुनहूं, बूड जो गयो। नहि ऊपर को आवति भयो॥ २० ॥
तिस नर की इक ब्रिधा मात। सुनी कान—बूड्यो तव तात।
शोकाकुल रोदन को कीना। महां दुखिति होई मन दीना॥ २१ ॥
दुतीए दिवसु तहां चलि आई। जहां बापिका गुरू लगाई।
पिख्यो न सुत बिरलाप करंती। हाइ पुत्र-मुख हाइ करंती॥ २२ ॥
हे सुत माणक बय महि ज्वान। कहा गयो मुझ को दुख दान।
मो बिरधा के अपर न कोई। हुतो एक तूं अस गति होई॥ २३ ॥
महां रुदन करि गमनी तहां। अंतर महिल गुरू थित जहां।
[illegible]र रुदन करि उच पुकारी। हे माणक सुत मिलि इक वारी॥ २४ ॥
[illegible]रु मुझ को ले चलि साथ। इम कूकति करि ऊचे हाथ।
[illegible] महिं जवि धुनि परी। बूझ्यो अहै कौन दुख भरी॥ २५ ॥

[illegible]रा नीचे चला गया। 2. देखा।

क्यों रोवति, क्यों ऊच पुकारति । वहिर लेहु सुधि इहु क्यों आरति ।
दौर्यो नर सुनि कै तिस पास । जाइ गुरू ढिग किय अरदास ।। २६ ।।

भए क्रिपाल बिधा को हेरि । ढिग बुलाइ करि बोले फेर ।
सुनहुं भोलीए माणक जोइ । सो जल महिं किम बूडन होइ ।। २७ ।।

होति भोर मिलि हैं सुत साथ । कर तोर्यो जिसने निज हाथ ।
हम ने करि प्रतग्या भारी । सुत न मरहि पित मात अगारी ।। २८ ।।

निफली नही करैं हम सोइ । मिलहिं पुत्र सों हरखति होइ ।
गुर बाकन पर शरधा धरि कै । बसी निसा तहिं गुरू सिमर कै ।। २९ ।।

प्राति भई सतिगुर तबि चाले । जिह ठां बापी लगी बिसाले ।
अपर नरन की संगै भीर । थिरे जाइ सभि ही तिस तीर ।। ३० ।।

श्री मुख ते सतिगुर सुख धामू । कर्यो पुकारन माणिक नामू ।
निकसहु जल ते बाहर आवहु । सभि संगति को दरस दिखावहु ।। ३१ ।।

जिन को माणिक नाम कहंते । सो न देहिं दुख निज सुखवंते ।
तोहि मात इहु खरी दुखारी । मिलहु आनि इसु बड हितकारी ।। ३२ ।।

इमि कहिबे ते बापी बीच । हम तहिं पिखति ऊच अरु नीच ।
निकस्यो जल पर तरने लागा । तीन दिवसि पाछे बड भागा ।। ३३ ।।

लोकन देखि निकासन कीनसि । बिसमाए सभि अचरज चीनसि[1] ।
श्री गुर के पाइन पर पर्यो । शरधालू सेवक सुख भर्यो ।। ३४ ।।

लख्यो—बचन हमरे थित रह्यो । भए प्रसन्न बाक शुभ कह्यो ।
गुरता की मंजी अबि लेहु । बहु नर को उपदेश करेहु ।। ३५ ।।

नर अनेक ही पूजहिं पाइ । देहिं उपाइन फल को पाइ ।
इमि कहि मंजी पर बैठावा । सकल नरन महिं मान बधावा ।। ३६ ।।

सभि सिद्धां बखशी बर कह्यो । भोग मोख तिन अस पद लह्यो ।
गुर घर महिं बरध्यो सभि भांती । नाम 'जीवडा' भा बख्याती ।। ३७ ।।

तिस के घर संतति जबि होई । नाम जीवडे कहिं सभि कोई ।
जो तिह संतति के समुदाइ । अबलौ नामु अहै तिसु भाइ ।। ३८ ।।

नवीं सिंद भाखहि तिस ठौर । सुनहु शाहजी अचरज और ।
बैठ बापिका के तबि तीर । श्री गुर अमरदास गंभीर ।। ३९ ।।

कह्यो सभिनि महिं-बापी श्रोत । इहु गंगा ते कीनि उदोत ।
इहां जु करहि आइ इशनान । फल पावहि सुरसरी समान ।। ४० ।।

---

1. देखकर ।

इस महिं एक अधिकता अहै। जैसे फल बिसाल को लहै।
रचे चुरासी रुचिर सु पानि[1]। इस जल महिं करि करि इशनान ॥ ४१ ॥
जपु जी पडै चुरासी वार। सो न चुरासी लहै संसार।
जनम मरन ते मुकता होइ। सतिगुर चरन प्रेम मन भोइ ॥ ४२ ॥
नवी सिंद ने सकल सुनावा। अकबर शाहु महां बिसमावा।
शरधा बधी प्रेम गुर केरा। मिलन लालसा वधी वधेरा ॥ ४३ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' 'बापिका' प्रसंग बरननं नामु नवमो अंशु ॥ ८ ॥

---

1. सीढियां।

अंशु १०

अकबर को आवन

दोहरा

सुनि कै अकबर कथा को रह्यो रिदै बिसमाइ।
नवी सिंद सों कहित भा गुर पूरन सुखदाइ ॥ १ ॥

चौपई

केतिक दिन महिं लवपुरि चलि हैं। तहां जाइ सतिगुर को मिलि हैं।
मग महिं आवहि जबि असथान। तहिं मुझ को करि देहु बखान ॥ २ ॥
इम कहि अकबर रहि दिन कोई। लवपुरि दिस गमन्यो सुख जोइ।
सने सने डेरे करि कूच। तीर बिपासा आनि पहूच ॥ ३ ॥
उलंघि पार जबि सिवर करायो। शाहु आइ बैठ्यो हुलसायो।
नवीसिंद सभि कथा सिमरिकै। करी जनावनि सकल उचरिकै ॥ ४ ॥
सुनति शाहु हरख्यो उर मांही। चलन त्यार भा सतिगुर पाही।
लई उपाइन हीरा मोती। वसतु बिभूखन जोति उदोती ॥ ५ ॥
निज डेरे ते पाइन चल्यो। सतिगुर की महिमा मन मिल्यो।
संग पठान मुग़ल समुदाया। बसत्र बिभूखन ब्रिंद सुहाया ॥ ६ ॥
गोइंदवाल बर्यो जबि आइ। तजे उपानय नंगे पाइ।
शरधा को बधाइ उर मांही। जिस ते गुर मो पर हरखाहीं। ७ ॥
दिपत राज लच्छन सभि अंगु। राज समाज बिराजति संग।
मुकता बज्र जवाहर जरे। पहिरे दिपहिं विभूखन खरे ॥ ८ ॥
श्रीमुख जबहि शाहु ने जोवा। हाथ जोरि नंम्री सिर होवा।
बाबा जी पाइन मैं परा। इन भाखति चरनन सिर धरा ॥ ९ ॥
आग्या करि बैठावनि कीनसि। शाहु कह्यो बच शरधा भीनस[1]।
तुमरे सम नहिं दूसर कोई। जिम खुदाइ सम अपर न होई ॥ १० ॥

---

1. श्रद्धा-युक्त।

सत्ति होति है वाक तुमारा। सुनी तरीफ कहति जग सारा।
श्री नानक की कीरति सारे। हिंदू तुरक समान उचारे ॥ ११ ॥
कहैं तुरक—हम पीर महांना। हिंदुनि सभिन गुरू करि माना।
जिन की अज़मति जगत मझारे। अबि लौ थान अनेक निहारे ॥१२ ॥
सोई रूप आप तुम भए। अधिक सभिनि ते अज़मति थिए।
बडो लाभ मुझ दरस तुमारा। कारज मेरो सगल सुधारा ॥ १३ ॥
करिहु उपाइंन अंगीकार। गुर घर को मुझ दास निहारि।
ब्रिंद ग्राम लिहु जहां बतावहु। नाम तहां को पटा लिखावहु ॥ १४ ॥
मुझ लगि काज परहि जो आई। मनुज पठहु सुधि देहु जनाई।
सुनि कै श्री गुर अमर वखाना। धरी उपाइन जो तुम नाना ॥ १५ ॥
ग्राम आदि इहु तुम को बनैं। हैं सभि हरख शोक के सनै।
हम साधू ब्रिति करनि समान। कौन सँभारै काज महान ॥ १६ ॥
जितो अहार एक दिनु होइ। धरहि आन पूजा जे कोइ।
तितो लेति नहिं वाधो लेहिं। संगति भोजन सरब अचेहि ॥ १७ ॥
सुनि पुनि शाहु अपर नर सारे। हाथ बंदि करि बिनै उचारे।
तुम को नहिं परवाहि किसू की। पुरहु काम मति दास जिसु की ॥ १८ ॥
सभि जगि जाचक तुम इक दाता। करे बाक हुइ सो बख्याता।
तऊ जोगता ऐसी अहै। अंगीकार करहु सभि कहैं ॥ १९ ॥
यांते होइ शाहु सनमानू। धरि शरधा हरखाइ महांनू।
जो नहिं लेहु होइ मन भंग। सभि रिद की जानहुं सभि संग ॥ २० ॥
सति संगति बरतहि जो आवै। तुमरो इह उपकार रहावै।
आप करहु फ़ुरमावन तहां। लेनि ग्राम को उचितै जहां ॥ २१ ॥
दरशन परसे इहु फल होइ। पाइ अनंद जाइ सभि कोइ।
रावरि सों मिलि हरखहि शाहू। हरख सभिनि कै हुइ मन माहू ॥ २२ ॥
बहुतो बोलनि आप अगारी। नहिं नीकी इहु रीत बिचारी।
इम सुनि कै सभिहिनि की बानी। श्री गुर बात भविक्खत जानी ॥ २३ ॥
तीरथ उत्तम उदै सु करिना। जिह शनान कलि कलमल हरना।
...दार सभि करी बिचारन। श्री मुख ते किय बाक उचारन ॥ २४ ॥
...गावनी तथा करी जहि। सति संगति को मान रखी जहि।
...रि हरि सुख सों बसहिं। भोजन अचहिं प्रेम प्रभु रचहिं ॥ २५ ॥

सुनति शाहु उमरावन सहत। हरख्यो पुन शरधा धरि महत।
पटा परगने को लिखि दीन। रहैं ग्राम सभि गुरू अधीन ॥ २६ ॥
आदि झबाल बीड जहिं कर्यो। बहुते ग्राम अरपि मुद भर्यो।
अपनो जनम सकारथ जाना। गुर घर की भी सेव महांना ॥ २७ ॥
अपने पर करुना गुर जानी। भलो होइ मेरो—चितु ठानी।
जिम उर चह्यो मान सो लीनि। सफल कर्यो निज दरशन दीनि ॥ २८ ॥
गुर की खुशी लीनि इस रीति। शरधा अधिक बधाइव चीत।
पुन करि बिनै हाथ को बंदि। करी बंदना पद अरबिंद ॥ २९ ॥
आइसु पाइ गुरू मुख केरी। उठ्यो शाहु करि खुशी घनेरी।
ले करि गुर घर को सिरु पाउ। धर्यो सीस पर अनंद उपाउ ॥ ३० ॥
निकस्यो पुरि ते आयहु डेरे। लोकनि सों गुन भनति बडेरे।
पूरन पुरख बाक जिन पूरन। दरसे लहैं कामना तूरन ॥ ३१ ॥
बैस बिसाल महां ब्रिध होए। भली भई हम दरशन जोए।
बदन अदीन सु दीरघ आशै। बैठे शुभ गुन मनहुं प्रकाशै ॥ ३२ ॥
लोभ आदि जे महिद बिकारा। लेश नहीं नीके निरधारा।
इम कहि रैनि बिखै परि सोवा। भोर भए लवपुरि मग जोवा ॥ ३३ ॥
स्री अंम्रितसर के चहुं पासे। सुनि ग्रामन के लोक हुलासे।
ले ले भेट आइ समुदाए। सतिगुर के ग्रिह होति बधाए ॥ ३४ ॥
श्री गुर सगरी सभा लगाए। रामदास निज पास बुलाए।
इन को सभि ही भेट दिवाई। नर ग्रामन को बांहु गहाई ॥ ३५ ॥
सुनति सभिनि के बाक बखाना। मालक तुमरो इही महांना।
कै इस की संतति शुभ होइ। कै इस के सिख तुम पति जोइ ॥ ३६ ॥
इम कहि सभि को दे दसतार। बिदा करे नर ग्राम उदार।
भाई बुड्ढा सभि परि छोरा। करहि मामला ग्राम बटोरा ॥ ३७ ॥
देग गुरू की चलहि अपारा। रैनि दिना नर अर्चहिं हज़ारा।
अन्न. फसल दर फसल महांनै। लंगर परहि सेव नर ठानैं ॥ ३८ ॥
सिख्य सैंकरे कार संभारें। श्री गुर रामदासु अनुसारै।
इन की आइसु लेति समाजा। आप आपने सारहिं काजा ॥ ३९ ॥
सिक्ख अनेक दास सभि ग्राम। करहिं मामले को सभि काम।
जिमि भाई बुड्ढा कहि देहि। तिसी प्रकार सरब ही लेहिं ॥ ४० ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'अकबर को आवन' ग्रामन को अरपनं' नाम बरननं दाम दशमो अंशु ॥ १० ॥

अंशु ११

श्री अमरदास प्रसंग

दोहरा

अधिक आमदनि मामला सभि ग्रामन की जानि ।
अमरदास श्री सतिगुरू रिदै बिचारन ठानि ॥ १ ॥

चौपई

भई बापिका पूरन अबै । पर उपकार चितवते तबै ।
तीरथ प्रगटै पावन कोई । सभि संगति जहिं मज्जन होई ॥ २ ॥
अहै बापिका गोइंदवाल । रामदास हित करति संभाल ।
श्री गुर नानक जथा बनायो । आप अछत सभि बिधि समुझायो ॥ ३ ॥
गादी दे करि पुरि करतार । दीन बसाइ खडूर मझार ।
संतति करै बिरोध न कोई । बैठे प्रिथक प्रकाशै सोई ॥ ४ ॥
तिम श्री अंगद कारज कीना । गोइंदवाल बसाइ सु दीना ।
निज संतति ते करि कै न्यारे । श्री गुर अमरदास बैठारे ॥ ५ ॥
तिम श्री अमर मनोरथ करि कै । सभि बिधि नीके रिदे बिचरिकै ।
सतिजुग को तीरथ दुर रह्यो । चिरंकाल भा किनहुं न लह्यो ॥ ६ ॥
सरब प्रजा बिधि पास पुकारी । बिन राजे हय को दुख भारी ।
तां ते निज बिचार करि मन मैं । दीजै राजा होइ सभिनि मैं ॥ ७ ॥
सुनि ब्रह्मा उर उचित विचारा । म्रितु मंडल बिनु न्रिप दुखिआरा ।
अहै जोग इन बनहिं नरेश । बसहि सुखी तबि प्रजा अशेष ॥ ८ ॥
आठहुं लोकपाल के तन ते । अंस निकासन कीनसि तिन ते ।
आठहुं गुन जुति राजा कीनि । तिस न्रिप नाम सु 'छुप' धरि दीनि ॥ ९ ॥
होन प्रसन्न इंद्र को गुन है । जम को दंड, धनद[1] दे धन है ।
इत्यादिक सभि लीजहि जानि । होति भयो 'छुप' भूप महांन ॥ १० ॥

1. कुवेर ।

अविनी राज कीनि चिरकाल। प्रजा बसाई सभि सुख नाल।
तिस ते पीछे औरु सु भयो। नाम इखवाक[1] जाहिं धरि दयो॥ ११॥

छुप म्रितु ते बैठ्यो सो राज। करे सरब परजा के काज।
न्रिप सति संधि महां बलवान। भगति प्रमेशर को बुधिवान॥ १२॥

सिंध मेखला अवनी सारी। पुत्र समान सदा प्रतिपारी।
न्रिप इखवाक बली इक काल। चह्यो जग्ग को करन बिसाल॥ १३॥

सकल प्रिथी ते संग्रह कीने। जग्य समाजनि संख्या हीने[2]।
आवाहन सगरे सुर करे। बेद मंत्र पढि करि मुनिबरे॥ १४॥

आयहु ब्रह्मा जुति ब्रह्मानी। शंकर गन के सहत भवानी[3]।
तीन लोक पति प्रभू बुलाए। संग इंदरा अधिक सुहाए॥ १५॥

अगनि पुरोगमु[4] मधवा[5] आदि। सरब देवता युति अहिलाद।
धनद प्रभंजन[6] के गन आए। रुद्र इकादश सुर समुदाए॥ १६॥

बिस्वादेव महां रिखि घने। गंध्रब किंनर जाहिं न गने।
विद्याधरि ससि सूरज आए। जे पताल बासी अहिराए[7]॥ १७॥

तीन लोक महिं मुखि सभि आए। लेनि आपनो भाग बनाए।
म्रितु मंडल के दिज रिखि सारे। करे इकत्र महीप हकारे॥ १८॥

महां जग्य तिन रच्यो बनाए। सभि को जथा जोग त्रिपताए।
हव्य[8] कव्य[9] दे करि बिधि आछे। दियो दान जेतिक जो बाछे॥ १९॥

रंक न रह्यो प्रिथीतल कोई। ले करि दान त्रिपति सो होई।
हमन कुंड के चारिहुं पासे। मुख्य देवता बैठि प्रकाशे॥ २०॥

जथा जोग सभि को दे भाग। पदमापति के रसु अनुराग।
करि करि भगति सकल हरखाए। जस इखवाक जगत रहि छाए॥ २१॥

बिधि हरि, हर, आदिक सुर सारे। भए प्रसन्न भूप सतिकारे।
'बरंब्रूह[10]' सभिहूं मिलि कह्यो। हाथ जोरि न्रिप ठांढो रह्यो॥ २२॥

कहति भयो 'हे प्रभू! सुनीजै। सभि प्रसन्न तौ इहु वर दीजै।
जहां निवास आप तुम कीने। धारि अनंद मुझ दरशन दीने॥ २३॥

---

1. इक्ष्वाकु। 2. असंख्य यज्ञ सामग्री। 3. पार्वती। 4. आगे चलने वाली। 5. इंद्र। 6. वायु। 7. शेषनाग। 8. देवताओं के निमित्त आहुतियाँ। 9. पित्रों के निमित्त आहुतियां। 10. वर मांगो।

अगनि कुंड इहु तीरथ होइ। कलुख हतहि मज्जै नर जोइ[1]।
होहि जगत महिं महां प्रकाश। इस के सम दुतियो नहिं भासु ॥ २४ ॥
अगनि कुंड के जिस जिस दिशु हो। तिस तिस दिश सदीव तुम बसिहो।
इहां आइ जो करहि शनान। चहुं दिश फिरि करि बंदन ठानि ॥ २५ ॥
तिस को सकल करहु कल्यान। जनम जनम के किलविख हान'।
सुन्यो भूप ते सभि नै कह्यो। पुरशोतम की दिश तबि लह्यो ॥ २६ ॥
श्री नाराइन सभि दिशि हेरि। करी क्रिपा बोले तिस बेरी।
हे भूपति! तूं भगत महांना। कारन पर उपकार बखाना ॥ २७ ॥
जिम जीवन को हुइ कल्यान। हम ते जाच्यो अस तैं दान।
मम प्रसन्नता ते सभि होइ। तीरथ महां लखै सभि कोइ ॥ २८ ॥
लाखहुं बरस बिदति अबि रहै। पुन छप जाइ न कोऊ लहै।
पंच हज़ार बितहि कलि काल। तबि मम हुइ अवतार बिसाल ॥ २९ ॥
श्री नानक निज नाम धरावौं। भगति पंथ जग महिं बिदतावौं।
जोग, जग्य तप त्रै जुग धरमु। इन महुं करै लहै बड शरमु ॥ ३० ॥
कलियुग महिं नर शकति बिहीन। बुधि बिति बल ते जिन तन छीन।
तिन के हिते शुभ मारग पावनि। तन धरि फिरौं सरब ही थावनि ॥ ३१ ॥
चहुं दिश महिं सिक्खी प्रगटावौं। भगति रीति महिं ग्यान बतावौं।
जबि मैं तीन देहि को धरौं। चतुरथ तन अपनो पुन करौं ॥ ३२ ॥
तबि इहु तीरथ को बिदतावौं। पंचम तन के पक्व बनावौं।
सर अंदर सिर जौं हरि मंदर। जिसि मनिंद कित होइ न सुंदर ॥ ३३ ॥
सतिनाम की अधिक बडाई। करौं सथापति रहै सदाई।
खशटम देहि धरौं मैं जबै। जिह सथान हौं बैठ्यो अबै ॥ ३४ ॥
रचि अकाल बुंगा धरि नामू। सिरजौं तखत महां अभिरामू।
बैठौं बीच दिवान लगावौं। सरब जगत को गुरू कहावौं ॥ ३५ ॥
पुन मैं सदा बसौं इस थान। बंदहि अचरज होहि जहान।
जोति आपनी नीति[2] बसावौं। महां तेज सभि यहिं बिदतावौं ॥ ३६ ॥
इम पुरशोतम न्रिप सों कह्यो। पुन ब्रह्मा की दिश को चह्यो।
रुद्र सरोद्र[3] आदि सभ जेई। हुइ प्रसन्न बर भाखति सेई ॥ ३७ ॥

---

1. जो भी मनुष्य स्नान करेगा। 2. नित्य। 3. शिव।

निज निज थल हम सभि ही रहैं। तीन लोकपति संगी अहैं।
इस प्रकार न्रिप को बर दीने। पुनहु बिसरजन सगरे कीने ॥ ३८ ॥
न्रिप इखवाक प्रतापु बिसाला। छत्री बंस जगत महिं चाला।
रामचंद आदिक सिरमौर। भए अनेक सु राजा और ॥ ३९ ॥
सोई बंसु चल्यो जग आवा। वेदी कुल सोढी प्रगटावा।
सभि प्रसंग प्रथमै जो भयो। श्री गुर अमर बिचारन कियो ॥ ४० ॥
श्री गुर रामदास के हेत। चित चाह्यो बनवाइं निकेत।
कुल हमरी रहि गोइंदवाल। फूलहि फलहि अनंद बिसाल ॥ ४१ ॥
इन ते प्रथक रहैं किति और। रामदास सोढी सिरमौर।
अरु तहिं तीरथ सो बिदतावैं। सने सने सभि कार करावैं ॥ ४२ ॥
न्रिप को बर पूरब जो दयो। उर श्री अमर सु सिमरन कयो।
जान्यो समां पहूच्यो आइ। तीरथ सरबोतम बिदताइ ॥ ४३ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' 'पूरब बर सिमरन श्री अमरदासु' प्रसंग बरननं नाम इकादशमो अंशु ॥ ११ ॥

अंशु १२

श्री संतोखसर कार प्रसंग

दोहरा

अमरदास श्री सतिगुरू जानि सकल गति लीनि।
सोढी कुल भूखन तबै निकटि बुलावनि कीनि ॥ १ ॥

चौपई

सुन हे सौमु बसन हित थान। ग्राम बसावहु पिखि करि आन।
सने सने निज पाइं टिकावहु। वहुर करहु पुरि महां बसावहु ॥ २ ॥
जिमि खडूर गुर सेवा करिकै। पाछे आन बसे हम टरिकै।
इम नीकी निज रिदै बिचारहु। बसन हेतु थल जाइ निहारहु ॥ ३ ॥
अहै परगना तुमरे पास। थल आछो पिखि करहु अवास।
सुनि श्री रामदासु कर जोरे। 'हुकम आपको मोर अमोरे ॥ ४ ॥
रावर की रजाइ महिं राज़ी। इही प्रतग्या मैं उर साजी।
जो तुम करहु सु आछी होइ। आछी होइ करहु तुम जोइ ॥ ५ ॥
हम प्रानी क्या सकैं बिचारे। सभि गुन सागर महिद अपारे।
थल को परखन हेतु निकेत। मैं तुम आगे कहां अचेत ॥ ६ ॥
अरज़ी सिख की रावरि मरज़ी। मैं गुर जी इक सेवा गरज़ी[1]।
जिमि रजाइ जिसु थल को कहो। सकल रीति नीके जिस लहो ॥ ७ ॥
जहां बतावहु करुना धारि। सेवक जाइ करहि तहिं कार।
नहिं सुतंत्र कछु मो ते होइ। सो सभि करि हौं प्रेरहु जोइ ॥ ८ ॥
सुनि श्री अमर दास करि करुना। सरब प्रसंग भले करि वरना।
ग्राम तुंग ते अहैं उरेरे। गिलवाली ते लखहु परेरे[2] ॥ ९ ॥
है सुलतान पिंड जिस नामू। तिस ते पशचम दिश अभिरामू।
तहां जाइ करि ग्राम बसावहु। सुंदर अपुने सदन बनावहु ॥ १० ॥

---

1. इच्छा वाला। 2. परे, दूसरी ओर।

जितिक दरब लागहि तिस थान। सो सभि लेहु ब्रिध ते पान।
जबहि सदन तहिं लेहु चिनाइ। तिस ते पूरब दिश पुन जाइ॥ ११॥
तहां बैठि तीरथ खनवावउ। चारहुं दिश ते भलो बनावउ।
बहुर तुमारी संतति जेती। तिस कउ करहि बनावन तेती॥ १२॥
दिन प्रति पुरि बिसाल बन जैहै। चहुं दिश के नर आन बसे हैं।
इमु सगरी बिधि कहि समुझाई। अपर सरब त्यारी करिवाई॥ १३॥
पारो की शुभ बडवा जोइ। हेतु अरूढन दीनी सोई।
कह्यो तुरंगन अचरज ऐही। अपर नहीं किसि चढिबे देही॥ १४॥
हम कै तुम होवहिं अस वारो। चढ्यो प्रथम कै भाई पारो।
नीके राखहु सेव करावहु। ब्रिध सुमति को संग मिलावहु॥ १५॥
इमि कहि करे बिसरजन सोइ। केतिक संग करे सिख जोइ।
सने सने तहिं चलि करि आए। जो थल श्री गुर अमर बताए॥ १६॥
सभि ग्रामन की सीमन[1] छोर। फिर तहिं कार करी चहुं ओर।
जिम जिम बुड्ढा ब्योंत बतावहि। तिमि श्री रामदासु करिवावहिं॥ १७॥
प्रथम मंगायहु बहु मिशटान। गुर आगे अरदास बखानि।
भीर सैंकडे लोकनि होइ। कर्यो ब्रतावन सभि महिं सोई॥ १८॥
गाढो मोड़ा गाड खर्यो है। नाम 'गुरू को चक्क धर्यो है।
ईंटैं केतिक तहां पकाइ। सदन चिनावन कीनि बनाइ॥ १९॥
पुन श्री अमरदास जिम कह्यो। सो सिमरति सर सिरजन चह्यो।
ले ब्रिध संग आप चलि गए। पूरब दिशा ग्राम ते अए॥ २०॥
इत उत बिचरति थल को हेरे। श्री गुर अमर बाक के प्रेरे।
जिस प्रकार के पते बताए। खोजति फिरति सरब ही थाएं॥ २१॥
पुन उत्तर दिश मुख करि चले। बदरी आदि ब्रिद तरु खले।
सने सने थल देखति जावहिं। अभिलाखति सो पते जि पावहिं॥ २२॥
ब्रिछ सिंसपा[2] जबहि निहारा। लख्यो पता जो गुरू उचारा।
तिस के तरे बिराजे जाइ। तिस आगै सर को पिख थाइ॥ २३॥
ब्रिध के संमत हुइ थल जोवा। पावन परम प्रिथम जो होवा।
चहूं ओर ते फिर करि हेरा। सरब प्रकार लखी तिस बेरा॥ २४॥

---

1. सीमा। 2. शीशम का वृक्ष।

कलपति करे तहां चहु कोना। ब्रिध को दिखराइसि थल तौना।
तिस दिन निसचै करि बिधि नीके। परखे पते कहे गुर हीके॥ २५॥
निस महिं जाइ कर्यो बिसरामा। बसने हेतु बने जहिं धामा।
जाम जामनी जाग्रति भए। सौच शनान आदि सभि कए॥ २६॥
भए प्रकाश मिट्यो अंधकारा। सर कारज को तबहि बिचारा।
बहु मिशटान अनावन कीना। सिख्यन ते उचवाइ सु लीना॥ २७॥
ब्रिद मजूर जु हुते अगारे। तिन जुति अपर समूह हकारे।
महां टोल करि संग सिधारे। मंगल कीनसि अनिक प्रकारे॥ २८॥
गए सिसपा तरु के तरे। तहां जाइ सगरी बिधि करे।
नाम लीन तीनहुं गुर केरा। करि अरदास खरे तिस बेरा॥ २९॥
टल लाइअहु सिरजन कहु ताल। चितव्यो उर उपकार बिसाल।
लगे मजूर खननि समुदाए। सिर धरि म्रितका बहिर गिराए॥ ३०॥
इक खोदैं इक म्रितका भरैं। इक उठाइ करि बाहर करैं।
इक आवहिं इक लै लै जाहिं। खनहिं मजूर सिख्य बहु माहिं॥ ३१॥
इस बिधि कर्यो अरंभन ताल। बैठहिं आप, खनहिं नर जाल।
जहां ग्राम सिरज्यो घर पाए। तहां कार करते समुदाए॥ ३२॥
निति प्रति सकल लोक तिस थान। कार सुधारति सफल सुजान।
कितिक दिवस महिं केतिक कर्यो। दरशन को पुन मन हित धर्यो॥ ३३॥
गोइंदवाल कीन प्रसथाना। जहिं श्री अमर दास थिति थाना।
केतिक लोक बसाए ग्राम। बसन लगे रचि अपुने धाम॥ ३४॥
तबि श्री रामदास चलि गए। चरन कमल गुर बंदति भए।
सगरी कार करी सु बताई। सदन ग्राम सिरजे समुदाई॥ ३५॥
ताल कुछक खनवावनि कीना। जथा हुकम रावर ने दीना।
सुनि श्री अमरदास धरि ध्याना। भूत भविख्यत सभि ही जाना॥ ३६॥
रहे कितिक दिन गोइंदवाल। सभि आमद की करति संभाल।
निज अनुसार काज जे और। करति भए सोढी सिरमौर॥ ३७॥
जथा हुकम सतिगुर जबि करैं। तथा शीघ्र ही बच अनुसरैं।
निस दिन इक सेवा के ततपर। अपर नहीं किमि बांछा उरि धरि॥ ३८॥
लोक कान को मानहिं नांही। मान बडाई नहिं चित चाहीं।
रहैं निरालस धीरज धारी। देग आदि की करति संभारी॥ ३९॥

सभि गुर घर को खरच चलावैं। जो चहियति सो सकल पुचावैं।
सरब प्रकार कार वधि गई। नित सवधान संभारि सु लई ॥ ४० ॥

सतिगुर मन अनुसारी होइ। निरहंकार कार करि सोइ।
तिमि सेवा बहु पित की ठानी। मन, बच, कर्म ते निस दिन भानी ॥ ४१ ॥

पिखि दोनहुं की दिशि गुर साचो। लेश बिकार न जिन मन राचो।
होति प्रसन्न चहिस अधिकाई। दीजहि अब गादी गुरिआई ॥ ४२ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' 'श्री संतोखसर कार प्रसंग' बरननं नाम दुआदशमो अंशु ॥ १२ ॥

अंशु १३

श्री अंम्रितसर प्रसंग

दोहरा

कितिक दिवस जबि ढिग रहे सोढी कुल सिरमौर।
कर्यो हुकम श्री गुर अमर 'करो कार अबि और ॥ १ ॥

चौपई

गमनहु लिहु सुधि ग्राम बसायो। जो निज बसिबे सदन चिनायो।
जहिं पूरब तुम सर खनवायो। चार कोन कों ब्योंत बनायो ॥ २ ॥
सर संतोख नाम तिस राखो। अबि तिस करिबे नहिं अभिलाखो।
तिस ते उरे नंम्रि थल जहां। दूसर ताल खनावो तहां ॥ ३ ॥
श्री अंम्रितसर नाम धरीजै। जाइ कितिक खनवावन कीजै।
समों पाइ पाको हुइ सारो। प्रथम जाइ उद्दम तुम धारो ॥ ४ ॥
सुनि श्री रामदास तहिं गए। सदन चिन्यो सुधि लेवति भए।
जिमि जिम कहिं तिमि नर कर्यो। बसिबे हेत मनोरथ धर्यो ॥ ५ ॥
एक निसा बसकरि उठि भोर। करि शनान गे पूरब ओर।
ब्रिध को संग लए चलि आए। सतिगुर जिसु दिश पते बताए ॥ ६ ॥
बहु बदरी थल ब्यापत हेरा। अहै नंम्रि जल थिरै घनेरा।
इत उत फिर करि निशचे कीना। पता दीन सो नीके चीना ॥ ७ ॥
ब्रिध के संमत होइ सु टोरा। सो थल पिखति फिरे चहुं ओरा।
बार बार निशचे करि आछे। गुर बर ते सिरजन सर बांछे ॥ ८ ॥
करी ठीकि तिसु दिन फिरि सारे। धरे चिन्ह कछु ग्राम पधारे।
पठे सिख्य लैवे मिशटान। अर मजूर गन लेनि महांन ॥ ९ ॥
भई प्रभाति क्रिया करि भले। ले नर टोल तिसी दिश चले।
श्री नानक आदिक ले नाइ। करि अरदास सीस निहुराइ ॥ १० ॥

ब्रिध बच ते ले खननी[1] हाथ। टक लाइस चितवति गुरनाथ।
सभि मैं बांटि दयो मिशटान। लगे खनन सगरे तिसु थान ॥ ११ ॥
केतिक सिर धरि वहिर गिरावैं। केतिक खनि खनि तिनहुं उचावैं।
सिख्य अनेक मिहनती घने। करति कार गुर शरधा सने ॥ १२ ॥
जहिं दुख भंजनि बदरी खरी। तहिं ते खनहिं सु आइसु करी।
आपि निकट बैठे बचु कहैं। म्रितका वहिर गिरावति लहैं ॥ १३ ॥
इसी प्रकार खनति दिन सारे। भी संध्या दिश ग्राम पधारे।
होति प्राति सभि को संगि लैकै। कार करावति तहां थिरैकै ॥ १४ ॥
कितिक मासु इम कीनि खनावनि। म्रितका अधिक करहिं निकसावन।
गुरता देनि समो तबि आवा। श्री गुर अमर इनहुं बुलिवावा ॥ १५ ॥
दुख भंजनि बदरी तरु तीर। टोवा भयो कुछक गंभीर।
सुनि करि हुकम तथा तजि गए। गोइंदवाल पहुंचते भए ॥ १६ ॥
करि बंदन जुग पद अरबिंदु। बैठे सनमुख द्वै कर बंदु।
चक की गाथा बूझन कीनि। कैसे कर्यो जाइ थल चीन ॥ १७ ॥
सुनि सोढी कुल भूखन कह्यो। चक ते पूरब की दिश लह्यो।
नंम्र सथान नीर सिमटावै। बदरी तरु समुदाइ दिसावैं ॥ १८ ॥
तहां जाइ अबि ताल खनायो। निज कर ते टक प्रथम लगायो।
श्री नानक श्री अंगद नाथ। भुकति आपके टेक्यो माथ ॥ १९ ॥
सिमर्यो नामु बिघन गन हरता। सदा सुखद बहु मंगल करता।
बहु मिशटान तहां अनवायो। सतिगुर हेतु सकल बरतायो ॥ २० ॥
ब्रिध आदिक सिख सहत बिबेक। हेतु सु गुरुमुख साथ अनेक।
सभि दिन बैठि करावति कार। लगे मजूर उठावति भार ॥ २१ ॥
तिम सिख्यन मिलि कार कमाई। केतिक दिन म्रितका खनिवई।
बहुत दिवस को काज बिसाला। हुइ नर ब्रिंद करहिं चिरकाला ॥ २२ ॥
यांते अलप काज ही भयो। लघु सथान कछु खोद्यो गयो।
सुनि मोहनि पित खरो सराह्यो। नीको थल सोई हम चाह्यो ॥ २३ ॥
लीलावती पुरी शुभ थान। इस सरु पर बर बसहि महांन।
चिरंकाल भा उजरी परी। अबि इहु बासहिगी बड पुरी ॥ २४ ॥

---

1. कसी।

श्री गुर अंगद होइ क्रिपाल। हमहिं बसाइअहु गोइंदवाल।
ऊजरि पुरी बसावन करी। हम जुति बसी नीक इहु पुरी।॥ २५ ॥

नाम तुमारे पर पुरि होइ। जग बहु बिदतहि तीरथ सोइ।
इम कहि महां अनंद को दीन। हरखे रामदास सुख भीन॥ २६ ॥

निज समीप ही राखन करे। काज हजूर तिनहुं ते सरे।
तां दिन ते थोरो थल नीवां। भयो रह्यो नहिं पूरनि थीवा॥ २७ ॥

श्री गुर परम ब्रिध तन अहै। तऊ महां तप तपते रहैं।
घर महिं ठांढे रहैं इकाकी। कंध मेख पकरहिं जबि थाकी॥ २८ ॥

निस बासुर महिं बैसहिं थोरा। खरे रहैं सतिगुर तप घोरा।
नरन अनेकन दै उपदेश। निज दासन के कटहिं कलेश॥ २९ ॥

हेरहिं सेवा सेवक केरी। बखशहिं पदवी ऊच बडेरी।
देश बिदेशन संगत आवहि। दरशन परसहि नर हरखावहिं॥ ३० ॥

सेवा हित अनेक ढिग रहैं। मन बच करम उपासति अहैं।
रिदा सुद्ध होवहि तिन केरि। ग्यान पाइ भे मुकति घनेरि॥ ३१ ॥

दिल्ली पति प्रसन्न जिम होइ। किय उमराव बीस अरु दोइ।
इस जग के नस्वर सुख दीने। वडिआई पद महिं थित कीने॥ ३२ ॥

तिमि श्री अमरदास निज दास। जिस पर भए प्रसन्न हुलास।
दोनों लोकन को सुख दीन। मंजी पर बैठावनि कीनि॥ ३३ ॥

देशनि भेजे गुरू बनाइ। इहां ग्रसति महिं सभि सुख पाइं।
गन देशनि पर हुकम करंते। नर अनेक मिलि सेव करंते॥ ३४ ॥

मुकति भए सुख भा परलोक। ऐसे अपने सिक्ख अशोक।
द्वै बिसत मंजी अधिकार। बैठारे गुर निज दरबार॥ ३५ ॥

पातिशाहु द्वै लोकनि केरे। इम पतिशाहित कीन घनेरे।
बाइस मंजिनि के उमराव। करि श्री गुर निज महिद प्रभाव॥ ३६ ॥

श्री हरिदास नंद कहु देखा। उचित तखत के बुद्धि बिशेखा।
सभि गुन संजुति धरम महाना। अपर न हेर्यो इनहुं समाना॥ ३७ ॥

भगत आपनो जानि बिसाला। गुर भाणे महिं हरखनि वाला।
परखन करि कै नीकी रीति। रहि इकसार सुद्ध दिढ चीति॥ ३८ ॥

आरबला पूरन तिन भई। श्री गुर अमर जानि सभि लई।
निज पुत्री भानी सों कह्यो। सोढीकुल टिका जो अह्यो॥ ३९ ॥

बय पूरन प्रापति तन काल। बिधवा होइ, रहहु किस ढाल।
नहि उपाइ को, करनो क्या है। पित की गिरा सुनी विधि या है ॥ ४० ॥

निज सुहाग को तबहि उतारे। चरन कमल पर धर्यो सुधारे।
कहति भई 'सच बाक तुमारा। होहि म्रितु तउ आपि उचारा ॥ ४१ ॥

पुत्री को निशचै निज बच परि। लखि प्रसन्न भे श्री गुर अमरि।
कहिन लगे 'हम भाख्यो जैसे। निशचै होति बरतबो तैसे ॥ ४२ ॥

संमत शत द्वादश बय सारी। खशट बरस अबि रही हमारी।
सो हम देहिं तिनहुं के ताईं। लिहु सुहाग अपनो सुख पाई ॥ ४३ ॥

इमि कहि आरबला निज शेष। उत्तम गुरता जगत अशेष।
सोढी कुल भूखनि को दीनसि। सकल अधीन तिनहुं के कीनसि ॥ ४४ ॥

तखत बिठाए सुत हरिदास। कहि करि सभि महिं कीन प्रकाश।
चलनि बिकुंठ आपको चह्यो। पुत्री निकट देखि कै कह्यो ॥ ४५ ॥

'सभि ते शरधा उर अधिकाई। जाचि लेहु हम ते मन भाई।
सुनि कै हरखति पित की बानी। अधिक भाउ करि भाख्यो भानी ॥ ४६ ॥

सभि बिधि मुझको कीन निहाल। मैं हौं सभि ते भाग बिसाल।
जिसके पित तुम पुनहिं प्रसंन। दई बडाई मैं वड धंन ॥ ४७ ॥

जे अबि बर देवन को भाखा। यां ते मैं जाचति चित कांखा[1]।
इक चिंता अतिशै बिर धाइ। सो अबि रावर देहु मिटाइ ॥ ४८ ॥

श्री नानक ते श्री गुर अंगद। पुन तुम लीनसि गुरता संपद।
अबि दीनसि मुझ घर बडिआई। सो कबि पर के घर नहिं जाई ॥ ४९ ॥

सोढी बंस बिखै सु प्रकाशहि। सुनहुं पिता जी इहु मम आशहि।
सुनि शरधालु सुता के बैन। करुना रस ते पूरन नैन ॥ ५० ॥

श्री मुख ते बर बाक बखाना। 'तव सुत, पौत्रन, पति, मतिवाना।
जगत बिखै बिदतहिं गुर पूरे। तोहि मनोरथ होहिं जरूरे ॥ ५१ ॥

इम कहि आप बिकुंठ सिधारे। रामदास गुर भे जग सारे।
बहु सिख्यन को दे उपदेश। करे मुकति हति बंध कलेश ॥ ५२ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' 'श्री अंम्रितसर प्रसंग वरननं नाम त्रयोदशमो अंशु ॥ १३ ॥

---

1. आकांक्षा।

अंशु १४

श्री चंद मिलाप प्रसंग

दोहरा

रमत राम जवि गुरू भे तारन सिख्य अपार ।
ऐसे पूरन ब्रह्म कउ बंदल बारं बार ॥ १ ॥

चौपई

बैठि इकागर गुरू दिआरा । मन मैं ऐसे करति विचारा ।
जिन सिउं हमरी प्रीति सु पूती[1] । सो तो गए बिकुंठ पहूती ॥ २ ॥
गुर देखे बिन नींद न आवै । जिउ अंबुज रवि बिन कुमलावै ।
करि विवेक मन को ठहिरायो । सत्तिनाम सिमरनि चित लायो ॥ ३ ॥
बहुरो मन महिं कीन बिचारा । सो करीए जो गुरू उचारा ।
बिलम खोइ करि करीए सोई । जैसे कारज शीघ्र सु होई ॥ ४ ॥
ताल बनावन चाहिसि भले । कह्यो सभिनि सों 'माझै चलें' ।
मोहिन मुहरी संग सु कहैं । 'हम कउ गुर की आग्या अहै ॥ ५ ॥
सुधा सरोवर को बनिवावनि । तुम भी आइसु करहु अलावनि ।
अपन मनोरथ सभिनि सुनावा । प्रेम महां परिवार वधावा ॥ ६ ॥
मिलि करि गवन कीन ततकालहि । सिक्ख संगतां संग बिसालहि ।
भए तुरंगन पर असवार । जो पारो ने दीनि उदार ॥ ७ ॥
चंचल महां चलति गुन रूरी । उछरति बड़े बेग ते पूरी ।
मनहुं अवनि पर पाइ न लावहि । दिखियति उडी गगन जनु जावहि ॥ ८ ॥
मन की गति को लखिबे करै । जिम इच्छा तिम ही अनुसरै ।
अलप काल महिं चलहि बिसाला । अवलोकहिं बिसमहिं नर जाला ॥ ९ ॥
चक्क गुरू के पहुंचे जाइ । संग संगतां हैं समुदाइ ।
कार ताल की कछु करिवाई । सिक्ख निकासहिं बहु फल पाई ॥ १० ॥

---

1. पवित्र ।

महां महातम सतिगुर कहैं। कार कढति मन बांछति लहैं।
कितिक मास जबि रहति बिताए। कीरति पसरी छिति अधिकाए ॥ ११ ॥
अनिक प्रकार मनोरथ मन के। करति संपूरन सिक्खन गन के।
जहिं कहिं सुजस करहिं नर नारी। आवनि लागसि निति धन भारी ॥ १२ ॥
सोढी बंस लहौर जु रहै। कीरति सुनति सकल सुख लहै।
अमर गुरू नै गुरता दई। संगत संग अधिक तिनि भई ॥ १३ ॥
लोक हजारहुं बंदै खरे। दैबो जन मनु बांछति करे।
इत्यादिक सुनि सोढी सारे। दरशन को आए हित धारे ॥ १४ ॥
चक्क गुरू के आनि मिले हैं। सनमाने सतिगुरू भले हैं।
इक दिन बसि गुर के संग कह्यो। लवपुरि मैं तुमरो घर लह्यो ॥ १५ ॥
पिता तुमारे सुरग सिधाए। तबि के तुम इति दिशि चलि आए।
अबि होए लाइक सभि रीति। निवहि जगत करि कै बड प्रीति ॥ १६ ॥
उचित अबहि गमनहु तिसि थान। सरब संभारहु सदन महांन।
अपने बंस बिखै अबि चलीअहि। लघु दीरघ सभिहिनि सों मिलिअहि ॥ १७ ॥
कितिक द्योस[1] मिलि बसीअहि तहां। पुन आवहु इच्छा हुइ जहां।
इत्यादिक बहु बाक बखाने। रामदास गुरु सुनि करि माने ॥ १८ ॥
सरब सोढीअनि लै करि संगि। संगति ब्रिंद लगे हरि रंगि।
लवपुरि कहु तबि कीनि पयाना[2]। निसि बसि इक पहुंचे तिस थाना ॥ १९ ॥
अपने सदन कर्यो तबि डेरा। होति देग लगि अन्न घनेरा[3]।
अंम्रित समै जाग करि सारे। गाइ सुनहिं सभि आसा वारे ॥ २० ॥
हेरि हेरि नर शुभ मगु रीति। होवन लगे सिक्ख करि प्रीति।
गुरमुख पंथ परे हरिखाए। मन बांछति सतिगुर ते पाए ॥ २१ ॥
लवपुरि महिं सिक्खी बहु होई। सत्तिनाम सिमरहिं दुखु खोई।
तबि सतिगुर निज घर के थान। धरमसाल रचिवाइ महांन ॥ २२ ॥
बीच कूप को बड करवाए। सुंदर मंदर रचि समुदाए।
संगति मेल होहि जहिं भारी। सकल कहैं 'गुर पर 'उपकारी ॥ २३ ॥
सिख्य होन आवहि सभि जाती। पग पाहुल ते ले सुख थाती।
धंन धंन गुर नाम उचारैं। भवजल ते ततकाल उधारैं ॥ २४ ॥
करहिं परसपर गोशट ग्यान। रिदै धरहिं श्री प्रभु को ध्यान।
गुर सिक्खी पुरि बहुत वधाई। अरप उपाइन को समुदाई ॥ २५ ॥

---

1. कुछ दिन। 2. प्रस्थान। 3. बहुत अधिक।

सतिसंगति की रीति चलाइ। अम्रित काल शबद को गाइ।
कितिक मास बसि करि लवपुरी। गमन करन को इच्छा करी ॥ २६ ॥

धरम साल महिं कितिक टिकाए। अपर सिक्ख लै करि समुदाए।
गोइंदवाल पुरी कउ चले। भा चिरकाल सभिनि सों मिले ॥ २७ ॥

सनै सनै मग उलंघ्यो सारे। आन प्रवेशे पुरी मझारे।
मोहन अपर[1] मोहरी मिले। और सभिनि पुछ कुशली भले ॥ २८ ॥

महांदेव श्री अरजन आए। पित के पग पंकज लिपटाए।
अपर मिल्यो सगरो परवार। जानति भए प्रताप उदार ॥ २९ ॥

देश बिदेशन संगति आवै। बसत्र दरब को भेट चढावै।
पूजा होइ सदीव क्रिपाला। दिवस परब के आइं बिसाला ॥ ३० ॥

लगहिं अंबार उपाइन केरे। दूर दूर ते ल्याइं अछेरे।
अरपहिं बिनती करहिं अगारी। गुर प्रसन्नता चहति उदारी ॥ ३१ ॥

सतिगुर दें सभिहिनि उपदेश। सिमरहु सत्यनाम जगतेशु।
नित प्रति गुर को इम बिवहारु। जाम जामनी निंद्रा टारि ॥ ३२ ॥

करि नित क्रिया सौच को धरें। सीतल जल महिं मज्जन करें।
पुन समाधि को लेति लगाइ। राखहिं अंतरि ब्रिति टिकाइ ॥ ३३ ॥

निर बिकलप निज पद सुख लीन। आसन थिरहिं अडोल प्रवीन।
प्राति होति लोचन अरबिंद। बिकसति भरे सु प्रेम बिलंद ॥ ३४ ॥

केसर तिलक लगावहिं माथे। पहिर बसत्र पुन शोभा साथे।
सूरज चढ़े सिहासन बहैं। आनि दरसु प्रेमी सिख लहैं ॥ ३५ ॥

किरतनि गाइं रबाबी आगे। धुनि रबाब की बाजनि लागे।
सुनहि सिक्ख बैठे गुर तीर। पुन उपदेशहिं गुनी गहीर ॥ ३६ ॥

पुनहिं देग जबि होवहि त्यारी। सभि रस के अहार तिस बारी।
सूपकार सुधि देहि जि आई। उठि करि पहुँचहिं गुर गोसाईं ॥ ३७ ॥

सभि संगति के बीच सथाना। अभ्यागति चलि आइं महांना।
इक समान सभि देति अहारा। धनी रंक कौ आइ उदारा ॥ ३८ ॥

संगति बीच अचहिं त्रिपतावहिं। बहुर चुरा[2] करि निज थल आवहिं।
पुन इकंत रहिं केतिक काल। पौढें सिहजा[3] पर सुख नाल ॥ ३९ ॥

---

1. तथा। 2. चुला। 3. सेज पर लेटते हैं।

जाम दिवस ते सौचाचार। बैठति हैं पुन सभा मझार।
कथा समागम को तिसि काल। गुर जुति संगति सुनहिं रसाल ॥ ४० ॥
भगति, बिराग, ग्यान गुन सानी। होहि कथा आतम सुख दानी।
चार घटी बासुर जबि रहै। शबद कीरतन को सुख लहैं॥ ४१ ॥

अनिक प्रकारन के हुइं राग। राग द्वैख जिन सुनि अघ भाग।
भाग जगे जिन के हुइ लाग। लाग स्वाद जिन प्रेम सु पाग ॥ ४२ ॥
ब्रिति इकंत सतिगुर नित रहैं। सुनहिं न काहू ते नहिं कहैं।
बहु प्रेमी सिख को जबि आवै। तिस को शुभ उपदेश बतावैं॥ ४३ ॥
नातुर सदा तूशनी धरैं। हित बिवहार न बोलन करैं।
संध्या ते इकंत पुन होइ। प्रेम मगन रहिं निकट न कोइ ॥ ४४ ॥

लोचन महिं जल झलकति सदा। प्रेम प्रवाहि न मिटि है कदा।
जाम निसा लग सिख समुदाए। गावहिं सुनहिं प्रेम बिरधाए ॥ ४५ ॥
पौढहिं जबि सिहजा पर धीर। सैन हेत निस गुरू गंभीर।
सुनहिं सिक्ख जबि, सुपत क्रिपाल । निज निज थल गमनहिं तिस काल ॥ ४६ ॥

इम सतिगुर निस बासुर सारो। करहिं बितीत नाम हरि प्यारो।
जाम निसा ते सतिगुर जागहिं : सिख्यन के उधार हित लागहिं ॥ ४७ ॥
अबगति[1] लीला सतिगुर केरी। बरनौं सकल, शकति क्या मेरी।
जितिक बुझावहिं सतिगुर आप। बरनन करवि तितिक परताप ॥ ४८ ॥
एक सिक्ख जिस नाम हिंदाल। सतिगुर सेवा करति बिसाल।
सत्तिनाम 'करतार' अपारा। आठहुं जाम जाप जिन धारा ॥ ४९ ॥
मिलहि न किह सों, राग न द्वैश। बोलहि सुनहि न, शांति हमैश।
देग बिखहि सभि चून सु छानहि। इक अंगी, बिन गुरू न जानहि ॥ ५० ॥
मगन प्रेम के रंग्यो रंग। अंतर ब्रिती सदा सुख संग।
काम न क्रोध न लोभ हंकार। सत्य नाम सों लागी तार ॥ ५१ ॥
हरख न, शोक न, बैरी मीत न। ततपर रहै एक मन जीतन।
निशकामी, नित सहिन सुशील। सदा एक रस महिं ब्रिति मील[2] ॥ ५२ ॥
अंतरयामी सतिगुर द्याल। लखी सिक्ख की दीरघ घाल।
इक दिन सलिता को गुर गए। मंद मंद पद की गति लए ॥ ५३ ॥

---

1. आश्चर्यपूर्ण। 2. मिली हुई।

मज्जन करि पुरि को पुन आए। देग सदन मों गुर प्रविशाए।
जेतिक सिक्ख करति तहिं सेवा। सने सने सभि पिखि गुरदेवा॥ ५४॥
गुंधति चून तबहिं हिंदाल। लग्यो रह्यो जुग हाथन नाल।
म्रितका लगहि न-इमि उर धारी। तबि दोनहुं करि हाथ पिछारी॥ ५५॥
गुर पद पंकज मसतक धर्यो। देखि प्रेम को बाक उचर्यो।
तेरो प्रेम मोहि मन भायो। नई रीति को पंथ चलायो॥ ५६॥
मेरी क्रिपा तोहि पर भई। हति बंधन मुकती शुभ लई।
पूरन सेवा अबि तब होई। वांछति पाइ, न संसै कोई॥ ५७॥
सिद्ध अवसथा गुर के कहे। प्रापति भई भरम गुर दहे।
जैसे महां रंक हुइ कोइ। पद कुबेर के बैठहि सोई॥ ५८॥
निज कर सों तिह माथ उठाइ। दीन सूचना बखशिश भाइ।
ले करि धर्यो सीस पर जबै। हुतो जीव, ईशुवर भा तबै॥ ५९॥
तीन लोक गामी हुइ गयो। श्री सतिगुर ऊँचो पद दयो।
सभि सिद्धां प्रापति भी आइ। अदभुत ही कुछ बन्यो बनाइ॥ ६०॥
हाथ जोरि करि खरो हिंदाल। करि सतिगुर को सुजसु बिसाल।
कही न जाइ गुरू गति न्यारी। छिन महिं बखशि तिलोकी सारी॥ ६१॥
करहिं निहाल दासु ततकाला। तुम समान नहिं आन क्रिपाला।
धंन धंन गुर परम उदारे। कहे न जाइं चरित्र तुमारे॥ ६२॥
तब श्री मुख ते बाक बखाने। अबि अपने घर गमनहुं स्याने।
सत्तिनाम को मंत्र जपावहु। बहु लोकन उपदेश द्रिड़ावहु॥ ६३॥
इमि कहि विदा कीनि हिंदाल। गमन्यो ले करि बखश बिसाल।
बस्यो जाइ अपने ग्रिह मांही। कबि कबि आइ दरस को पाही॥ ६४॥
कह्यो हिंदाल केर बिरतांत। जिमि बखशिश होई वख्यात।
टहिल[1] करी शरधा के साथ। महिल लह्यो अरु भयो सनाथ॥ ६५॥
श्री गुर द्रिशटि करी जिस ओर। भयो निहाल बंध निज तोरि।
अपरन की ठानै कल्याण। इहु साखी या मै परमान॥ ६६॥

दोहरा

राई हुतो सुमेरु सो भयो जगत वख्यात।
नहिं अचरज कोई करो, सतिगुर सफली दात॥ ६७॥

---

1. सेवा।

चौपई

इक दिन बैठे सतिगुर द्यालू। अयो गुरदास सु प्रेम बिसालू।
हाथ जोडि कै बिनै बखानी। मो कउ सिक्खी देहु महांनी॥ ६८॥
देखी शरधा तिन की पूरी। सतिगुर बोले वाक गरूरी[1]।
सिमरहु वाहिगुरू सतिनामू। जांते पावहु सुख बिसरामू॥ ६९॥
अबि तुम आग्रै माहिं सिधावहु। तहिं की संगति प्रेर लयावहु[2]।
समे पाइ बाणी तुम करनी। गुर सिक्खन के मन कउ हरनी॥ ७०॥

दोहरा

सुनि करि बचन दयाल के चरन निवायो सीस।
आग्रै को पयाना कर्यो जानि गुरू जगदीश॥ ७१॥

चौपई

गुइंदवाल ते चले गुसाईं। मोहन मुहरी बिदा कराई।
अपन पुरी महिं आनि बसाए। जिन सिक्खन को नाम द्रिडाए॥ ७२॥

दोहरा

एक दिना श्रीचंद जी मन महिं करति बिचार।
रामदासु अबि गुर भए हम सों कैसे प्यार॥ ७३॥

चौपई

ऐसे मन महिं करति बिचारी। चले गुदडीए[3] करि असवारी।
सुनि कै रामदास गुर पूरे। तूरन चले प्रेम भरपूरे॥ ७४॥
हाथ जोरि करि करी प्रनामू। आने घर महिं बिनै बखानू।
एक सु हय पंजशत्त[4] रुपय्या। दीनि भेट बहु सेव कमय्या॥ ७५॥
एक जाम दिन जबै रहाइओ। आइ रबाबी किरतन गाइओ।
उच सथान श्रीचंद बिठाए। आप निंम्रि करि[5] तरे तकाए॥ ७६॥
सिरीचंद बोले ततकालू। करति परखणा प्रेम दिआलू।
इतना दाड़ा कैस बधायो। सुनि कै सतिगुर भे निंम्रायो॥ ७७॥

---

1. गौरवपूर्ण। 2. ले आओ। 3. एक सेवक का नाम। 4. पान्च सौ। 5. विनय पूर्वक

दोहरा

चरन गहे करि प्रेम सों पौंछहिं बारंबार।
इस ही हेतु वधाति भे, सुनीए गुर सुत दयार ॥ ७८ ॥

देखि निम्रता गुरू की श्रीचंद भए प्रसंन।
अंगद लीनी सेव करि तुमरो प्रेम अनंन ॥ ७९ ॥

तुमरी महिमा अधिक है कहीए काहि बनाइ।
तुमरे सर मैं जो मजहि[1] पापी भी गति पाइ ॥ ८० ॥

ऐसे वर दै चलति भे जहिं पुरि श्री करतार।
अपन थान श्री प्रभु अए पतित उधारन हार ॥ ८१ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतीय रासे 'श्रीचंद मिलाप' प्रसंग बरननं नाम चतुरदसमो अंसू ॥ १४ ॥

---

1. स्नान करेगा।

अंशु १५

संहारी प्रसंग

दोहरा

सतिगुर सरब अतीत निति करमन ते निरलेप।
माया के दुख सुख जिते करि नहिं सकहिं विखेप ॥ १ ॥

चौपई

पुन सतिगुर बैठे दिन एक। सिख चहुं दिश जो चहति बिबेक।
सुनिबे के अभिलाखावान। गुर के बाक देति कल्यान ॥ २ ॥
सुनहुं सिक्ख तुम मोकहु प्यारे। मानुख जनम दुलभ को धारे।
हरि सिमरन बिन ब्रिथा न खोवहु। नरक सुरग नहिं पुन पुन जोवहु ॥ ३ ॥
हरट रिंड ज्यों आवन जाना। ऊच नीच थल करन पयाना।
सत्तिनाम तुम रदै बसावहु। मन के सकल बिकार नसावहु ॥ ४ ॥
हमहु प्रेम धरि गुर उपदेश। काटहु बिकट कपाट कलेश।
हित रहिनी के सिख्यन लोक। सतिगुर उचर्यो रुचिर शलोक ॥ ५ ॥

म: ४ ॥

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरि नामु धिआवै।
उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रितसरि नावै।
उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहि जावै।
फिरि चडै दिवसु गुर बाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरि नामु धिआवै।
जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुर सिखु गुरू मनि भावै।
जिसनो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुर सिख गुरू उपदेशु सुणावै।
जनु नानकु धूडि मंगै तिसु गुर सिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥ २ ॥

चौपई

श्री गुर मुख ते सुनि उपदेश। धरति भए जिनि भाग विशेष।
संगति के मनु चामीकर[1] हैं। गुर उपदेशु रतन समसर हैं ॥ ६ ॥

---

1. सोना।

अस भूखन जुग लोक सुहावति। जहां कहां आदर को पावति।
सिक्खन के उर सर समसर है। गुर उपदेशु बिमल जल भरि है ॥ ७ ॥
तिसु अनुसार क्रित जो करनी। अरबिंदन की बनी सु बरनी[1]।
मन सिक्खन के धातु समान। पारसु गुर उपदेश महांन ॥ ८ ॥
कंचन होइ महां छबि धारी। सहै कसौटी सभि मल हारी।
बावन चंदन गुर उपदेशु। जन मन तरु बन गंधि विशेष ॥ ९ ॥
गुर घन ते बच बूंदन पाए। चात्रिक सिख सुन पी त्रिपताए।
किनहूं सिद्धां लई अठारहिं। को आतम को रूप बिचारहिं ॥ १० ॥
को प्रभु सिमरन के अनुरागी। को दरशन हरि चहिं बडभागी।
बिशय विराग किनहूं के होवा। किनहूं सुख निज अंतर जोवा ॥ ११ ॥
भरम मोह संसै त्रै तापू। सभि संगत के खापि कलापू।
करहिं सभिनि पर क्रिपा क्रिपाल। बंधन काटि दए ततकाल ॥ १२ ॥
इक दिन बैठे सतिगुर सभा। जनु मुनि गन सों शिव की प्रभा।
लवपुरि बिखै नाम संहारी। कुल सोढी शुभ करति अचारी ॥ १३ ॥
रामदास सतिगुर को ताया। तिस को सुत गुन सहत सुहाया।
सकट अरूढ होइ करि आयहु। चतुर दास अपुने संग ल्यायहु ॥ १४ ॥
गोइंदवाल सु उतर्यो आई। गयो गुरू ढिग ले मिठिआई।
हाथ जोरि वंदन चहिं कर्यो। रामदासु सतिगुरू निहर्यो ॥ १५ ॥
इक तो लख्यो बडो इह भ्राता। करमु करति शुभ, दुतीए जाता।
त्रितीए ताए को सुत आहि। हम ढिग आयहु चाह उमाह[2] ॥ १६ ॥
यांते तिह के कर निरवारे[3]। आप चरन पर वंदन धारे।
इमि बिलोक कै नंम्रि अगारी। बिसमै होइ कहति संहारी ॥ १७ ॥
असमंजसु नहिं करहु गुराई। अबि तुम को हम लखहिं न भाई।
सतिगुर अमरदासु करि संग। जग गुर बनि पर लह्यो उतंग ॥ १८ ॥
माननीय भे नगन हज़ारनि। सरब शकति युति करति उधारन।
हम संसारी पचा कुटंब। कबहुं न लें हरि नाम अलंब ॥ १९ ॥
पुन श्री रामदास जी कहैं। 'बडे भ्रात को पद तुम अहै।
अरु पित बड़े भ्रात को नंदन। यां ते उचित हमहुं को बंदन ॥ २० ॥
इम दुइ दिश ते कति तिह समो। करी सप्रीति परसपर नमो।
बैठे कुशल प्रशन करि आछे। देखि मिठाई दिश गुर पाछे ॥ २१ ॥

1. वर्णन किया है। 2. उत्साह से। 3. हाथ परे किये (हटाए)।

कारन कवन आप आगवनू[1]। तजि कै क्रिति सकल निज भवनू।
तबि कर जोरि कहति संहारी। तुम सोढी कल महिं उजिआरी ॥ २२ ॥
जग महिं प्रगट भई बडिआई। सो मैं कहिं लग करौं सुनाई।
अबि तुमरे भतीजे को ब्याहू। करन अछेरो मैं चित चाहूं ॥ २३ ॥
सो आछो तुम बिन नहिं बनै। इम आयहु मैं ठरि करि मन[2]।
सभि महिं आप होइ सिर मौर। करहु ब्याहु चलिकै तिस ठौर ॥ २४ ॥
सुनि श्री रामदासु मनमाना। डेरो दियो कराइ शुभ थाना।
खान पान की सुधि सभि लीनसि। निस सुपतन हित सिहजा दीनसि ॥ २५ ॥
सतिगुर रिदै ब्रितंतु बिचारा। तिह ठां जानि न बनै हमारा।
अनगन संगति निति प्रति आवै। अचहि देग रहि बहुर सिधावै ॥ २६ ॥
इमि चितवति सतिगुर निश सोए। जागे बहुर प्राति जबि होए।
आदि शनान क्रिआ करि सारी। बैठ्यो गुर ढिग आनि संहारी ॥ २७ ॥
हाथ जोर करि कीनसि बिनती। हूजो त्यार आप तजि गिनती।
इस हित करि नहिं अपर पठावा। बहु कारज तजि करि मैं आवा ॥ २८ ॥
यां ते मेरी प्रेम बिचारो। करहु भतीजे को इहु प्यारो।
तुमरे चरन परहिं घर मेरे। बडिआई जग होइ वडेरे ॥ २९ ॥
सभि बिधि कारज सरहि हमारो। दरशन मंगल रूप तुमारो।
होहि न बिघन, बअहुं रखवारो। मम सुत निज सुत सम निरधारो ॥ ३० ॥
सुने भ्रात के बाक क्रिपाला। भरे सनेह अछेह बिसाला।
तिह सनमान राखि वे हेता। म्रिदुक कह्यो सोंठी कुलकेता ॥ ३१ ॥
'जथा जोग तुम भाखति भ्राता। तऊ सुनहुं हमरो बिरतांता।
देश बिदेशनि संगति आवहि। नित प्रति नई दरस करि जावहि ॥ ३२ ॥
गुर सिख्यन को हुइ अपमाना। इती न मो महिं शकति महानां।
सतिगुर पग पंकज के प्रेमी। जिन को दरशन नित सुख छेमी ॥ ३३ ॥
बर अरु स्राप सफल जिन केरे। तिनहुं प्रसंन करन इछ मेरे।
भल्यन कुल भूखन के दास। तिन ऐबो कबि हुइ न निरासु ॥ ३४ ॥
गए सौंप गुर संगति सारी। गमनहिं अबि, अनबनी बिचारी।
भीर हजारहुं नर की रहै। सभि को खरच कहां निरबहैं ॥ ३५ ॥
जबि बरात पहुंचे तहिं जाइ। संगति मेल होहि समुदाइ।
किमि समधी सभि करहिं संभारी। इत्यादिक लिहु हेत बिचारी ॥ ३६ ॥

---

1. आगमन। 2. मन में विचार कर।

जथा जोग सुनि बच संहारी। बिनै सनी पुन गिरा उचारी।
उचित आप सभि मोहि सुनाई। अबि भी संगति है समुदाई ॥ ३७ ॥
अनगन आइ भीर बड होई। पुन ग्रामनि के सिख सभि कोई।
तहां गए समधी हठि धरैं। भोजन सभि को निज घर करैं ॥ ३८ ॥
शकति न ऐती, हुहि करजाई। है अनबन मैं भी लखि पाई।
दऊ आप मम आवन जानहु। करहु सफल बिनती इम मानहु ॥ ३९ ॥
अपने पुत्र पठहु मम संगा। होवहि शुभ कारज सरबंगा।
मम अरज़ी तुम मरज़ी अंतर। रावरि गरज़ी रहौं निरंतर ॥ ४० ॥
सुनि श्री रामदास सुखरासी। प्रिथीआ पुत्र बुलाइव पासी।
निज बंधुनि की रीति सुनाई। 'शादी बिखै मिलहिं समुदाई ॥ ४१ ॥
हमरे ताऊ को इहु नंदन। बडो सथान उचित है बंदन।
सुत को व्याहु रच्यो, चलि आइव। तुझ को उचित संग इहु जाइव ॥ ४२ ॥
सोढी कुल सभि बंधु हमारे। मिलहु तहां जो जो हितु धारे।
केतिक दिवस रहो लवपुरि मैं। आवहु पुन इच्छा जबि उर मैं ॥ ४३ ॥
अपनी धरससाल सुधि लेहु। जथा जोग सभिहिनि कहु देहु।
पित ते सुनि प्रथीए मन जानी। बिछुरनि इन ते नीक न मानी ॥ ४४ ॥
रहे समीप प्रेम बिरधावै। दूर बसौं कबि हूं चित आवै।
रहै सहोदर पित के पास। संगति के नित नए हुलास ॥ ४५ ॥
दरब संभारनि मैं सभि करि हौं। कितिक प्रिथक करि निज घर धरिहौं।
अबि लगि मैं मालक सभि भेटनि। आवहिं नित सों करहुं समेटनि ॥ ४६ ॥
बडे थान सुनि सीस निवायहु। 'चिर जीवहु' 'आशिख' को पायहु।
कितिक काल हुइ मौन बिचारै। मम पाछै सभि भ्रांत संभारै ॥ ४७ ॥
सरब कार की सुधि को पावहि। संचहि दरब पिता मन भावहि।
बहुरो मैं पर जाउं पिछारी। लघु भ्राता हुइ जाहिं अगारी ॥ ४८ ॥
धन गुरता आदिक महिं सारे। है संसय को लिय न संभारे।
गुर घर महिं निशचै नहिं कोई। लेति अपर अधिकार न जोई ॥ ४९ ॥
सेवा हेरति होहिं प्रसन्न। निज असथान बिठावहिं अन्न—।
इत्यादिक उर तरक बिचरि कै। सगरी जुगता जुगति निहरि कै ॥ ५० ॥
ग्रीव नीव करि हर्यो बिचारति। पुन श्री गुर पित संगि उचरति।
'आप बिलोकति हो सभि समै। रहति काज जिस बिधि के हमै ॥ ५१ ॥

देनि लेनि निति होति हज़ारनि। इक ग्रावति इक करति पधारन।
खरच देग को सदा संभारति। ले करि अन्न रास को डारति॥ ५२॥
किस छिन मम अवकाशु न जानो। कैसे बनहिं तहां मम जानो।
सतिगुर कह्यो 'संभारहि और। तुम को उचित गमन तिस ठौर॥ ५३॥
'पितु जी! तुम हो वेपरवाहु। हान न लाभ लखहु मन मांहु।
मुझ ते जायो जाइ न तहां। निति मग तामस होवति महां॥ ५४॥
महां कुलाहल बीच बरात। सोहि सुहाइ न रहि चित शांति'।
प्रिथक सु प्रिथीआ प्रिथम सुनाई। नहिं मान्यो पित बाक टलाई॥ ५५॥
सुत चित की सभि जानि खुटाई। होए तूशनि गुरु गोसाईं।
पुन लघु नंदन तीर हकारे। पररवतिः को आइसु अनुसारे॥ ५६॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'संहारी' प्रसंग बर्ननं नाम पंचदशमो अंशु॥ १५॥

———

अंशु १६

श्री अरजन लहौर गमन प्रसंग

दोहरा

दोनहुं पुत्र समीप पित आनि बंदना कीनि ।
संहारी को नमो किय तिन पिखि आशिख दीन ॥ १ ॥

चौपई

महांदेव के संग उचारा । जाहु ब्याहु पिखि भ्रात तुमारा ।
लवपुरि महिं इसके संग जाई । मिलो तहां बंधू समुदाइ ॥ २ ॥
सुनि करि बोल्यो मसत सुभाऊ । को बंधू किस को क्रित जाऊं ।
नहिं मेरी किस साथ चिनारी । नहिं चाहौं मैं करन अगारी ॥ ३ ॥
क्या सनबंधुनि की गति अहै । अपनो हित सभि हेरति रहैं ।
दरब हीन पिखि होहिं न नेरे । धनी पुरष के बनहिं घनेरे ॥ ४ ॥
मो ते नहिं तहिं जायहु जाइ । आवन जावन श्रम को पाइ ।
इम कहि मौन रह्यो तिस काल । जुगम पुत्र इम हेरि क्रिपाल ॥ ५ ॥
नहिं आग्या को मानहिं मेरी । जानति अपुनि सुमति बडेरी ।
तबि श्री अरजन की दिश देखा । जिन को म्रिदुल सुशील विशेखा ॥ ६ ॥
पित के सनमुख पिखहिं न सोई । प्रति उत्तर कहिबो किमि होइ ।
कर जोरे थिर नंम्रि अगारी । सुत अरजन ! बनि आइसु कारी ॥ ७ ॥
निज ताऊ के संग सिधावहु । भ्रात ब्याहु महिं मिलि हरखावहु ।
बंधुनि की पंकति महिं जाइ । उतसव पिखहु होहि जिस भाइ ॥ ८ ॥
एक मासु तौ इन संग रहो । पुन ध्रमसाल आपनी बहो[2] ।
सभि बिवहार बिलोकि चलावहु । सभि संगति सतिनामु जपावहु ॥ ९ ॥
जबि हम तुम कहु बोलि पठावहिं । लिखहिं पत्रिका प्रेम बढावहिं ।
तबि हमरी दिशा आवनि करो । नांहि त तावद तिस पुरि थिरो ॥ १० ॥
पिता गुरू ते सुनि करिमाने । हाथ जोर करि बाक बखाने ।
'इह तो सुगम काज महिं मोहि । पठहु आप जहिं आनंद होहि ॥ ११ ॥

---

1. आज्ञाकारी 2. बैठना, रहना ।

जाहि जावन महिं जीवन संसै। तहिं आइसु मुझ देहु, निसंसै।
देर न करों पिता जी उहां। प्रान देउं मैं तूरन तहां॥ १२।

कहि श्री अरजन सरल सुभाऊ। भए त्यार चलिबे संम ताऊ।
जननी भानी ढिग तबि गए। चलन ब्रितांत सगल कहि दए॥ १३॥

कर्यो सनेह अंक बैठारे। मसतक सूंघति भाग उदारे।
सुनहु पुत्र पितु आइसु करो। इस महिं निज हित निति अनुसरो॥ १४
नांहि त गुरता घर ते जावहि। सेवा करहि दास को पावहि।
प्रिथीए को सुभाऊ अहंकारी। नहीं रहति पित के अनुसारी॥ १५॥

महांदेव को मसत सुभाऊ। हान लाभ को लखै न काऊ।
इक तेरे पर मोहि भरोसा। गुरता लें, गुन जुकति अदोशा॥ १६॥

हे सुत! श्री नानक जी आदि। दई दास कहु किय अहिलाद।
तिम श्री अंगद अरु पित मेरे। देति भए पिखि सेव घनेरे॥ १७॥

तिन के संग तुम घालहु घाल। आइसु अनुसारी सभि काल।
नहीं गुरनि कै मोह कदाई। रीझहिं सेवक दें वडिआई॥ १८॥

इस चिंता महिं चित निति मेरो। तो पर एक भरोसा हेरों।
रही सु प्रिथीए को समुझाइ। नहिं मानहि अहंकार कराइ॥ १९॥

हाथनि को मींडत रहि जैहै। गुरता अपर सेव करि लै है।
मैं तुम आशिख करबि उचारी। रहो सदा पित के अनुसारी॥ २०॥

इम समुझाइ नैन जल भरे। 'जाहु पुत्र' आइसु अस करे।
सादर सीख मात की मानी। सीस नंम्रि करि बंदन ठानी॥ २१॥

बिदा होइ जननी ते निकसे। कमल पत्र से लोचन बिकसे।
बहुर पिता को करि कै नमो। ताऊ संग चले तिह समो॥ २२॥

दोनहुं भ्रातनि को करि बंदन। चले सकट आरूढि सुछंदन।
सभि मग सनै सनै करि छोरा। जाइ प्रवेशे पुरी लहौरा॥ २३॥

रच्यो ब्याहु सुत को संहारी। श्री अरजन मिलि नर कुल सारी।
जथा जोग सभि को हरखायहु। गए बरात संग सुख पायहु॥ २४॥

जबि लग तिन के कारज भयो। तबि लग बास तिनहुं के कयो।
पुन अपुनि ध्रमसाल थिरे। सभि संगति सिख आनंद भरे॥ २५॥
करति प्रतीखन खत्री पित की। पग पंकज महिं प्रीति चित की।
निस बासुरि सिम्रत ही बीते। सुजस उचारित संगति थीते॥ २६॥

प्रेम प्रवाह वरधतो जाइ। दरशन करिबे को अकुलाई।
खान पान सुख सोवन करिबो। सने सने इनको परहरिबो[1] ॥ २७ ॥

सतिगुर पिता सुशील बिसाल। करहिं सराहन सभि ही काल।
बीत गए इमु कितिक महीने। करति प्रतीखन प्रेम प्रबीने ॥ २८ ॥

रामदास श्री सतिगुर पिता। इनहुं न सिमर्यो परखन हिता।
प्रिथीय रहै पास निस दिन मैं। जानहि बजे आप को मन मैं ॥ २९ ॥

पित पाछै मै लै गुरगादी। करौं सदा मन भावति शादी।
हमरे घर महिं सभि बडिआई। लोक हजारहुं परते पाई ॥ ३० ॥

दरब छुपावति नित प्रति न्यारे। सरब रीति ते उर हंकारे।
को को मानहिं पित की बात। नांहि त उत्तर देति रिसाति ॥ ३१ ॥

होइ सुतंत्र करहि बिवहार। बहुत लोक जिस करति जुहार[2]।
जिते मसंद गुरू अगुवाई। सभि प्रिथीए अनुसार रहाई ॥ ३२ ॥

किते मसंद आपही करैं। संगति ते आनहिं धन धरैं।
सतिगुरु सुशील जन ओटा। प्रिथीए को सुभाउ लखि खोटा ॥ ३३ ॥

नहीं हटावहिं तूशानि रहैं। श्री सुख ते शुभ नहि तिस कहैं।
गुरता उचित पछानहिं नांही। जल सम टिकहि नम्रि थल मांही ॥ ३४ ॥

इस के उर हंकार वडेरा। जिमु टिब्बा किति होति उचेरा।
यांते तिसु ते रहैं उदासि। गुर महिमा न लखै रहि पास ॥ ३५ ॥

जिमु तीरथ के निकटि रहंता। हम ते महिमा कहि गरबंता।
तिमि प्रिथीए मनु मान घनेरा। नहीं नंम्रता को करि नेरा ॥ ३६ ॥

महांदेव को मसत सुभाऊ। रहै मौन धरि कहै न काऊ।
कबि कबि गुरु समीप चलि आवहिं। अपर थान ही दिवसु बतावै ॥ ३७ ॥

रामदास सतिगुरू प्रबीने। परखन कीन सु नंदन तीने।
श्री अरजन लवपुरि मैं रहैं। कबि न संदेशो लिखि पठ कहैं ॥ ३८ ॥

तिन के उर नित प्रेम प्रवाहू। वधति जथा नदि पावस मांहू।
सिमरहिं सासि सासि पित गुर को। कबि दरशन दे करि सुख उर को ॥ ३९ ॥

गगन विखै शबद को गावैं। महां प्रीति ते चित उमगावैं।
लोचन भरे नीर झलकावैं। होति रुमंच महां अकुलावैं ॥ ४० ॥

---

1. छूट गया। 2. नमस्कार।

बिरहि पीर ते पीरो रंगु। दुरबल होए सगरै अंगु।
मोहि बिसार्यो सतिगुर स्वामी। याद न कीनसि अंतरजामी ॥ ४१ ॥
जाउं आप ते शकति न ऐसे। पित के बाक न उलंघव कैसे।
हमरे कहै आवनो इते। तिसी बचन को पुन पुन चितें ॥ ४२ ॥
जथा पिंजरे पंखी पायो। तिम आइसु महिं फस नहिं आयो।
दीरघ स्वास लेति बहु बारे। मोकहु कर्यो सदन ते न्यारे ॥ ४३ ॥
कबि गावति गद गद सुर होवति। पिता परम प्रिय निकट न जोवति।
कबि संगति महिं गुर गुन कहैं। कमल बिलोचन ते जल बहैं ॥ ४४ ॥
इस प्रकार थित रहे लहौर। नित सिमरति सोढी सिरमौर।
बिरहि बहुत ते ब्याकुल बनै। पाइं कहां सुख, मिलिबे बिनै ॥ ४५ ॥
इत सतिगुरु कबि गोइंदवाल। बसहिं संगतां संग बिसाल।
सुधा सरोवर कबहूं रहैं। बहु सिख्यन की दुरमति दहैं ॥ ४६ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्री अरजन लहौर गमन प्रसंग बरननं नाम खोडसमो अंशु। १६ ॥

———

अंशु १७

सिक्खन प्रसंग

दोहरा

सभरवाल सिख तीरथा आइ गुरू के पास ।
नमसकार करि बैठिगा धरहि श्रेय की आस ॥ २ ॥

चौपई

श्री गुर मैं आयो तुव शरनीं । श्रेय दे जु उपदेशहु करनी ।
रावरि मुख ते सुनहिं जु बैन । बिनसहिं पाप होति चित चैन ॥ २ ॥
तबि श्री रामदास उपदेशा । सचु सम अपर न पुंन विशेषा ।
सचु सरूप परमेशुर केरा । सचु ते पायहि साचु बसेरा ॥ ३ ॥
दुहि लोकन महिं सुख लहि साचो । सुर सनमानहि जो सचु राचो ।
साचु पुरख के सतिगुर संगी । बडि पुंननि ते साचु प्रसंगी ॥ ४ ॥
सुमति विचारु साचु ही कहैं । सूखम भेद एक इमु लहैं ।
साचु कहे किस को हुइ बुरो । तहां कूर कहि, सचु परहरो ॥ ५ ॥
इस पर इक प्रसंग सुनि लेहू । निरनै करि पुन कहनि करेहू ।
थिर्यो साध इक न्रिप के द्वारे । बैठे केतिक मास गुजारे ॥ ६ ॥
सो न्रिप पुत्र ब्याहु करि आयो । सरब प्रकार उछाहु वधायो ।
राज कुअर इक नंदर मांहू । ले करि बधू सुपति भा तांहू ॥ ७ ॥
कितिक राति बीते सुख पाई । ताहि बधू को नींद न आई ।
जमधर हुती सिराने धरी । ले त्रिय ने सो देखनि करी ॥ ८ ॥
अति तीछन हेरी ले हाथ । पर्यो सुपत साथै तिस नाथ ।
छुटि अचानक कर ते जबै । गिरी उदर पर धसिगी तबै ॥ ९ ॥
न्रिप सुत म्रितक भयो ततकाल । चितातुर त्रिय रिदै बिसाल ।
भई प्राति पिखि के न्रिप जान्यो । सभिनि साथ तबि बधू बखान्यो ॥ १० ॥
इहु जो साध रूप करि थिर्यो । आइ इहां पति को हति कर्यो ।
सुन भूपति रोदति बिरलापत । गह्यो साधु को बहु संतापत ॥ ११ ॥

पुनि सभि मिलि न्रिप रिदै बिचारा। इस मारे सुत जिय न हमारा।
एक हाथ को काटि निकारा। चल्यो साध लहि कशट उदारा ॥ १२ ॥
चितवति– प्रभु के घर है न्याइ। नहि अब मैं किय मिली सज़ाइ।
मोहि साथ अंन्याइ कियो हरि। इस बिचार चिंता बडि उर धरि॥ १३ ॥

सुन्यो—बसै दिज कांशी मांहि। प्रिथम जनम की सुधि को प्राहि।
करम बिपाक सु ग्रंथ बिचारै। दुख सुख को सभि हेत उचारै॥ १४ ॥
गयो साध बूझति घर नामु। दिजन हुतो बैठी तिसु बाम।
पूछति भयो बिप्र कित गयो। सुन त्रिय रिदै रोस बहु कयो॥ १५ ॥
कुछ नित पति को गारी उचारी। निठुर साध को कहि कलहारी।
बिसमति रह्यो—कहां दिज नारि। सो पंडित मैं सुन्यो उदार॥ १६ ॥
थिर्यो द्वार बाहर, दिज आयो। सभि अपनो परसंग सुनायो।
फेर कही तिसु त्रिय की बात। बूझे, गारि निकारति जात॥ १७ ॥
पंडित बैठि बिचार सुनायो। कारन सुनहु आप जिस आयो।
प्रिथम जनम महिं तुम दिज हुतो। जल तट मज्जन कितो॥ १८ ॥
एक हाथ गोमुखी मझारी। फेरति माला ऊच उसारी।
तबि इक धेनु त्रास को पाइ। तुझ आगै को गई पलाइ॥ १९ ॥
पीछे आयो दुशट कसाई। तिन बूझी—इत दिश गो आई।
मोन धरी मुख ते न अलाई। गई इतहि—कर साथ बताई॥ २० ॥
जाइ गही सो धेनु बिचारी। ले निज सदन बिखै तिन मारी।
पूरबले पुनन को पाइ। भयो कसाइ सुत नर राइ॥ २१ ॥
न्रिप की सुता धेनु तन पायो। हित बदले संजोग बनायो।
तिस त्रिय ने सो न्रिप सुत मार्यो। करे त्रास तुव नाम उचार्यो॥ २२ ॥
हाथ साथ तैं धेनु बताई। तिस को फल भा दीन कटाई।
प्रभु अंन्याइ करहि नहिं कैसे। करे करम ते दे फल तैसे॥ २३ ॥
मम त्रिय को सुनि लेहु प्रसंग। नहिं संसै करी अहि चित संग।
पूरब जनम काग को मेरा। गधी त्रिया पिठ घाव घनेरा॥ २४ ॥
मैं आयो पिखि चोंच चलाई। फसी असथि महिं नहिं निकसाई।
श्री गंगा जल बिख प्रवेशी। आगे गमनति पीर विशेषी॥ २५ ॥
ज्यों ज्यों मैं निज चोंच निकारी। त्यों त्यों दुखते प्रविशहि बारी।
जहि गंभीर धार तहिं गई। फसी चुंच बिच नहिं निकसाई॥ २६ ॥
अधिक प्रवाह बहाए दोऊ। बूड सरीर त्याग करि सोऊ।
श्री गंगा जल को फल भयो। दुहनि बिप्र घर जनम सु लयो॥ २७ ॥

पुन संबध या इहु संग मेरा। प्रिथम जनम दुख दीन बडेरा।
यांते कहि कठोर दुख देति। पूरब जनम तांहि फल लेति॥ २८॥
सुनति साध तब निशचै आयो। बिनां काम दुख सुख नहिं पायो।
श्री गुर 'भने साचु दिज कह्यो। धेनु बताइ इतो दुख लह्यो॥ २९॥
शारत[1] करि जिस हाथ बताई। सो कटवाइ पीर को पाई।
पूरब करम फल मिटते नांहि। सीता दुख पाए बन मांहि॥ ३०॥
गुर, दिज, संत, धेनु दुख पावै। जिस के साचु कहे हुइ जावै।
सो अस साचु नरक महिं डारै। सुमतिवंत नहिं कबहुँ उचारै॥ ३१॥
जिसु सचु ते दुख पावहिं प्रानी। सो नहिं कहै बिचार सुजानी।
अपर सरब बिवहार मझारे। सुख हित पावन साच उचारे॥ ३२॥
झूठ समान पाप नहिं कोई। कहै न कबहूं गुर सिख जोई।
जहिं प्रानी मरबे ते छूटे। किधों पर्यो किह संकट मिटे॥ ३३॥
तहां झूठ है साचु समान। पर हित होते करहि बखान।
गुर के बचन तीरथे सुने। करे कमावन तिम मन मने॥ ३४॥
बोलति साच परम गति पाई। पर्यो रह्यो सतिगुर शरणाई।
बिशनदास माणक चंद पूरो। तीनहुं आए गुरू हजूरो॥ ३५॥
चरन कमल पर कर्यो प्रणाम। बैठि कर्यो दरशन अभिराम।
हाथ जोर करि अरज़ गुजारी। जनम मरन ते लेहु उबारी॥ ३६॥
सहत कुटंब होइ कल्याने। अस कीजहि उपदेश महाने।
कर्यो वाक तबि श्री गुरदेवा। करहु आप गुर सिख्यनि सेवा॥ ३७॥
बनिता, सुत, तनुजा, सिखरावहु। कहि तिन ते सेवा करिवावहु।
लखहु—वाहिगुरु के हम दास। तिम सुत सुता दास गुर पास॥ ३८॥
जथा खसम के दर पर घोरा। चाकर चढ़ि आवहि दे छोरा।
तबि सभि चिंत खसम को होइ। खान पान दे पोखहि[2] सोइ॥ ३९॥
तिम अपनो सगरो परवार। सौंपहि सतिगुर के दरबार।
तजहि अपनपौ[3] तिन ते घनो। जानहिं तरी मेल गन मनो[4]॥ ४०॥
तबि सतिगुर को परि है लाज। करहि निबाहन सकल समाज।
भोजन बसत्र भले पहुंचावै। श्रेय करहि गन कशट मिटावै॥ ४१॥
बिशन दास माणक चंद पूरो। सुनि गुर को उपदेशनि रूरो[5]।
कर्यो कमावनि नीके मानि। अंतकाल प्रापति कल्यान॥ ४२॥

---

1. संकेत। 2. पोषण करना। 3. अपनापन। 4. मानो नौका के मेल के समान है। 5. सुन्दर।

सिकव पदारथ, तारू, भारू। तीनो चलि आए गुरद्वारू।
आगै लाग्यो बडि दीवान। कथा कीरतन होति महांन ॥ ४३ ॥
सुनि गुर बचन भयो उर त्रासु। हाथ जोरि कीनी अरदासु।
हम कुटंब महिं अधिक लपेटे। पढन सुनन गुर शबद न भेटे ॥ ४४ ॥
सति संगति हो नहिं किस बार। गुर जी ! किम हुइ हमहुं उधार।
आइ परे अबि शरनि तुमारी। करहु आप कल्यान हमारी ॥ ४५ ॥
रामदास गुर गिरा बखानी। बाहिगुरू सिरजे जे प्रानी।
पूरब सभि हित कर्यो अहार। यांते तुम बैठे गुर द्वार ॥ ४६ ॥
धरहु सिदक उर डोलहु नांही। सिमरो वाहिगुरू मन मांही।
तुमरे सनबंधी समुदाई। सभि को रिजक[1] तहाँ पहुंचाइ ॥ ४७ ॥
तुमरो रिजक इहां गुर देहि। जनम सुधारो परखहु एहु।
सुनि तीनो निज पुत्र बलाए। कह्यो तरुनता तुम अबि पाए ॥ ४८ ॥
भए किरत लाइक निरधारहु। अबि घर को सभि कार संभारहु।
उद्दम करो लाभ हुइ जेता। गुर को दसवंध काढहु तेता ॥ ४९ ॥
आवहि सिख करहु तिह सेवा। हम अबि रहैं द्वार गुरदेवा।
पानी पक्खा सेव कमावहिं। सति संगति करि सेव रिझावहिं ॥ ५० ॥
कथा कीरतन सुनहिं अनंदे। हुई प्रापति कल्यान बिलंदे।
हम तुमरी भी हुइ कल्यान। इम सिख्या दे कुटंब महान ॥ ५१ ॥
करन लगे गुर सेव घनेरी। प्रापत मुकति अंत की बेरी।
सतिगुर के तन बिखै समाए। जकम मरन को बंध मिटाए ॥ ५२ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे सिक्खन प्रसंग बरननं नामु सपतदशमो अंशु ॥ १७ ॥

———

1. अन्न वस्त्र आदि।

अंशु १८

सिक्खन प्रसंग

दोहरा

महाँनंद के संग मिलि बिधीचंद हुइ दौन।
दरशन देख्यो गुर को बंदन कीनसि औन ॥ १ ॥

चौपई

हाथ जोरि करि थिरे अगारी। सुख गरजी निज अरज़ गुज़ारी।
जनम मरन को त्रास हमारे। भ्रमण मिटावह जे दुखवारे ॥ २ ॥
जनम अनेक धरे पुन हमरे। राग द्वेश बसि जूननि परे।
अबि चलि आए शरनि तुमारी। करहु क्रिपा करि सुगति हमारी ॥ ३ ॥
सुनि श्री रामदास करि करुना। शुभ उपदेश तिनहु प्रति बरना।
अपनो जबै सरूप पछानहुं। जनम मरन तबि बंधन हानहु ॥ ४ ॥
हाथ जोरि सुनि दौनि बखानहिं। हम तौ इहु सरूस निज जानहिं।
जनमो हुइ नंदन खत्रीन। खत्री हैं नर तन मन चीन ॥ ५ ॥
पूरब बालक बय को धरे। तरुन भए अबि बहु बल भरे।
बिन तन अपर कछू नहिं जानहिं। अपनो रूप इही हम मानहिं ॥ ६ ॥
तबि, श्री सतिगुर बाक उचारा। मात पिता ने इहु तन धारा।
जाति रु नाम तिनहुं कल पाए। निज मति कहि बिवहार बताए ॥ ७ ॥
तुम तो इस तन पूरब हुते। करे करम फल तिस के लिते।
भला बुरा जिम पूरब कीन। तिस ते दुख सुख भोगनि कीन ॥ ८ ॥
इह तन तजि पुन धारहु और। करहु करम भोगहु तिस ठौर।
तन उपजन ते हुते अगेरे। तन बिनसे पुन रहहु पिछेरे ॥ ९ ॥
आदि अंत तन के जबि रहे। तन निज रूप कुतो तुम लहे।
तन कूरा सम बसत्र लखै हो। जीरन भए अपर धरि लै हो ॥ १० ॥
तांते तन पट पहिरहि जोइ। अपन सरूप जानीयहि सोइ।
कबहूं मरहि न मार्यो जाइ। जल डूबै नहिं अगनि जलाइ ॥ ११ ॥

तन झूठो, सति रूप तुमारा। तन दुख, तुम हो अनंद उदारा।
तन जड़ है, चेतन निज रूप। अस निशचै उर धरहु अनूप ॥ १२ ॥
सुनि दोनहु कीनसि अरदास। किम हम को अस रूप प्रकाश।
तन हंता तजि तिस महिं धरैं। सही सरूप आपनो करैं ॥ १३ ॥
तबि साहिब ने कह्यो सुनाई। सति संगति कीजहि चित लाई।
कथा नेम ते सुनीअहि कान। सिक्खन सेवहु हित ठानि ॥ १४ ॥
करहु बिचारन सतिगुर बानी। अरथ लखहु करि प्रीत महानी।
तिस के साथ रिदा निज तोलहु। दुख सुख बिखै न कबहूं डोलहु ॥ १५ ॥
तुमरी प्रीति जानि बच कहे। इम जे करहु रूप निज लहे।
इम सतिगुर को सुनि उपदेश। करन लगे तिम कार हमेश ॥ १६ ॥
समा पाइ होयहु निज ग्यान। कीने करम बंध गन हानि।
गुर सिक्खन की पदवी पाई। अंत काल गुर लीन मिलाई ॥ १७ ॥
हुतो खोसला धरमंदास। इक तकिआरा डूगर दास।
दीपा अरु जेठा संसारू। बूला अपर तीरथा चारू ॥ १८ ॥
मिलि करि सपत सिक्ख इह आए। श्री गुर रामदास जिस थाए।
नमो करी बहु बिनै प्रकाश। हाथ जोरि करि बैठे पास ॥ १९ ॥
'शरनि परे रावरि दरबार। करहु उधारन किसै प्रकार।
रामदास सतिगुरू उचारा। प्रथम पजहु मन को हंकारा ॥ २० ॥
गहो नंम्रता त्यागहु मतसर। करहु न निंदा, अवगुन परहरि।
जे घर आयो सिक्ख निहरियहि। निज निज घर ते सेवा करियहि ॥ २१ ॥
भोजन बसत्र भाउ धरि कीजहि। मानहु बाक न फेरनि कीजहि।
जे सिख को हुइ काज बडेरा। बिन धन सरहि न जौ असु हेरा ॥ २२ ॥
सभि मिलि करि उचरहु अरदास। सभि ते इक थल कर निज पासि।
सिख को कारज दीजै सार। तबि प्रापति तुम को सुख सार ॥ २३ ॥
जहिं सति संगति को समुदाए। कथा कीरतन करहिं बनाइ।
तहां जाइ संध्या अरु प्राती। धरहु प्रीत करि मति को राती ॥ २४ ॥
जिस महिं यथा शकति हुइ आवहि। धरमसाल आपे बनवावहि।
तिस मैं राखहि सिक्ख टिकाइ। पंथी को भोजन मिलि जाइ ॥ २५ ॥
इक सिख देहि कि सभि मिल देवैं। सिमरहिं नाम सुजन को सेवैं।
कहां महातम इस को कहियहि। पुंन पदारथ सम नहिं लहियहि ॥ २६ ॥
इस जग महिं सुख पाइ घनेरा। अंत गुरू ढिग लहै बसेरा।
पाछल [illegible] करहु इशनान। गुर बानी पढ़ीअहि हित ठानि ॥ २७ ॥

सुनि उपदेश कमावन लागे। गुरू प्रेम पागे बडि भागे।
अंत समैं सतिगुर के पास। प्रापति भए अनंद प्रकाश ॥ २८ ॥
धरि शरधा जापा अरु मईआ। खुल्लर जात नामु जिस नईआ।
तुलसा, बहुरा मिलि सिख चारे। सतिगुर रामदास के द्वारे ॥ २९ ॥
आइ प्रवेशे दरशन पायो। कीन बंदना सीस निवायो।
जुग कर जोरति अरज़ बखानी। दिहु उपदेश अपन जन जानी ॥ ३० ॥
रहैं ग्रिहसत महिं कह्यो कमावैं। जिस ते हम सिक्खी पद पावैं।
बसहिं अवास उदासी पाइ। दिन प्रति उर ते मोह मिटाइ ॥ ३१ ॥
श्री गुर रामदास उपकारी। बानी करुना ठानि उचारी।
जिमु निस दिन घर काज सुधारे। त्यागहु कबहुं न लागहिं प्यारे ॥ ३२ ॥
तथा प्यार धारहु गुरबानी। पठनि सुननि कीजहि रुचि ठानी।
धर्यो अरथ जो शबद मझारा। बार बार उर करहु बिचारा ॥ ३३ ॥
क्या गुर कहैं, करैं हम कहां। सनै सनै मोरहु मन महां।
मम सरीर को धारहु ध्यान। अंम्रित वेला पुंन महांन ॥ ३४ ॥
मम बानी को करहु उचारनि। मिलि सिक्खनि ते अरथ बिचारन।
जिम तुरंग को देहिं मसाला। बहुर करहिं काजै चिरकाला ॥ ३५ ॥
तबि हय रोगी होइ निरोवा। सभि सरीर की ब्याधी खोवा।
तिम सतिगुर को करिबे ध्यान। हिरदे धारन प्रेम महान ॥ ३६ ॥
सिमरहिं वाहिगुरू सतिनामू। तबि नासहि हउमै बड आमू।
मन तुरंग बड सुधता पावै। गुर अनुसारी हुइ थिरतावै ॥ ३७ ॥
पाइन बिचरति सिमरहु नामू। हाथन करिहु काज सभि धामू।
उठति बैठति जागति सोवति। सुनि ते श्रवण, बिलोचन जोवति ॥ ३८ ॥
रिदा धरहु सतिगुर के संग। अपर क्रिया करियहि सभि अंग।
जिम सिरघट[1] बहु बात बनावति। हाथ हलावति, मारग जावति ॥ ३९ ॥
तउ घटे सों मन है जुरिओ। गिरहि न डोलहि रहै सु धरिओ।
इम ब्रिति निशचल करि सुख पावो। अंतकाल कैवल हुइ जावो ॥ ४० ॥
श्री गुर रामदास उपदेश। चारहुं सिक्ख कमाइं हमेश।
सेवति रहे सु जावद जीवति। अंत समीपी गुर के थीवति ॥ ४१ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'सिक्खन' प्रसंग बरननं नाम अशटदसमों अंशु ॥ १८ ॥

———

1. सिर पर घड़ा रखे हुए।

अंशु १६

पत्रिका पठन श्री अरजन प्रसंग

दोहरा

जिस प्रकार सतिगुर पिता करति दिवस प्रति कार।
श्री अरजन संगति बिखै करते तथा अचार[1] ।। १ ।।

चौपई

बीत गयो लवपुरि चिर काल। करी न सतिगुर पुत्र समाल।
जितिक निकट वरती गुर केरे। सभि प्रिथीए ते डरहि घनेरे ।। २ ।।
तिम जिस को रुख देखन कर्रांहि। तिम बरतहिं अरु बदन उचर्रांहि।
बोलति को सनमानति घने। तिस ते लेति काज जो बने ।। ३ ।।
श्री अरजन को सिमरहिं नांहिन। कबि प्रसंग ते करहिं सराहिन।
सभि प्रिथीए ते करि कै त्रासु। इसे सराहैं सुगुन प्रकाश ।। ४ ।।
पुत्र परखबे हित किह काल। नहिं कहि भेज्यो कबहिं ि पालु।
हम ने आग्या दीनसि तांहि। तिस महिं निशचल रहै कि नांहि ।। ५ ।।
बिना कहे चलि आइ अवासे। तौ आइसु को करहि बिनासे।
जबि लौ हम कहि पठहिं न ताँहूं। तौ लग इसथित रहि पुरि माहूं ।। ६ ।।
तौ आइसु महिं रहिबे वारो। होवहि गुरता केर अधारो।
इम बिचार करि सिमर्यो नांही। चिरंकाल भा लवपुरि मांही ।। ७ ।।
सो दरशन को चाहति ऐसे। चात्रिक चितवति घन को जैसे।
कल नहिं परहि[2] रिदे महिं कबै। प्रेम प्रवाह ब्रधहि उर तबै ।। ८ ।।
बहुत बिचारति गुर गति भारी। सिमरति पउडी शबद सुधारी।
को कागत पर लिखी बनाइ। निज मन दशा जथा अकुलाइ ।। ९ ।।

श्री मुखवाक :—

मेरा मन लोचै गुर दरसन ताई। बिलप करे चात्रिक की निआई।
त्रिखा न उतरै सांति न आवै बिनु दरसन संत पिआरे जीउ ।। १ ।।
हउ घोली जिउ घोलि घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ ।। १ ।। रहाउ ।।

---

1. आचरण। 2. चैन नहीं पड़ती।

चौपई

इक सिख हाथ सौंप करि दीनसि । तिस के साथ बचन इम कीनसि ।
इहु अरदास लेहु कर धारी । दीजै सतिगुर केर अगारी ।। १० ।।
क्रिपा करहिं जबि बाचहिं एहि । बहुर तोहि जिम उत्तर देहिं ।
सुनि करि श्री सतिगुर ते बैन । पुन आवहु लवपुरि निज ऐन ।। ११ ।।
सुनि कै श्री अरजन ते तबै । लई पत्रिका मिलि सिख सबै ।
करि बंदन को त्यागि लहोर । गवन्यो पंथ सुधासर ओर ।। १२ ।।
इक निस मग महिं बसि करि आयो । निज मंदर महिं गुरू सुहायो ।
गयो तहां को ले अरदासु । जिस के उर दरशन की आस ।। १३ ।।
बैस्यो प्रिथीआ ऊपर पौर । पिख्यो ओपरा[1] सिख इह और ।
बूझ्यो कह्यो 'कहां ते आयो । पतीआ[2] कर तुव किनहुं पठायो ।। १४ ।।
सुनि कै सिख ने सकल बताइव । मैं लवपुरि ते चलि करि आइव ।
पत्री भेजी अनुज तुमारे । धरौं जाइ सतिगुरू अगारे ।। १५ ।।
जो उत्तर दें सो ले जाऊं । गुर सुत लघु को जाइ सुनाऊं ।
प्रिथीआ चमक्यो 'मोहि दिखाइ । मैं गुर निकट सु देउं पुचाइ[3] ।। १६ ।।
तोहि जान को अब नहिं समो । डेरे जाहु, इहां करि नमो ।
खोलि पत्रका प्रिथीए हेरि । पठी तुकां सुठ लिखी बडेरी ।। १७ ।।
इह तौ बाणी करी बनाइ । चहूं पतिशाहुन की जिसु भाइ ।
जिन महिं प्रेम जनावन कीनसि । मिलिबे की लालस मन भीनसि ।। १८ ।।
पठहिं पिता जन, तिसै हकारहिं । हुइ प्रसंन निज थान बिठावहिं ।
इस कारन ते नहिं दिखरावौं । अपने खीसे बिकै रखावौं ।। १९ ।।
नहिं सतिगुर के ढिग पहुंचाई । राखि आपने पास छुपाई ।
निसा गुजारी करि सिख डेरा । आयहु गुर दर होति सवेरा ।। २० ।।
प्रिथीए ने अवलोकन कीना । निकट हकारसि उत्तर दीना ।
पठी पत्रिका सतिगुर सोइ । हरखति भए कुशल जुति जोई ।। २१ ।।
सुख आनंद इत को सभि दीजै । श्री अरजन के संग कहीजै ।
लवपुरि महिं संगति मिलि रहियहि । सिख्यन ते सेवा को लहियहि ।। २२ ।।
अबि तुम गमनहु काज न आना[4] । सुनि सिख ने तबि कीन पयाना ।
छल करि गुर सों मिलन न दयो । भोर होति ही पठिबे कियो ।। २३ ।।
मग उलंघ्यो प्रविश्यो लाहौर । श्री अरजन सों मिलि कर जोरि ।
बदनं करिकै कहि सु प्रसंगा । मिल्यो पौर पर प्रिथीए संगा ।। २४ ।।

1. अजनबी । 2. पत्र । 3. पहुंचा दूंगा । 4. अन्य ।

लई पत्रिका गुर ढिग गयो। भोर भई मुझ सों कहि दयो।
कुशल अनंद देहु सुधि जाइ। पढि लीनसि जो तैं इत ल्याइ॥ २५ ॥
सुनि श्री अरजन चित उपाई। मोहि बिसार्यो पित सुखदाई।
दूर रहे नित होहि न प्यारू। ढिग वरती संग प्रेम उदारू॥ २६ ॥
पठी पत्रिका, उत्तर न लिख्यो। मुझ सों प्रेम न, यांते पिख्यो।
अंतरयामी गुरू उदारे। जान्यो किम नहिं प्रेम हमारे॥ २७ ॥
दरशन को चाहति दिन रैन। जल जुति रहे तरसते नैन।
दीन जान मुझ कबहि बुलावहिं। सिर पर कर फेरहिं हरिखावहिं॥ २८ ॥
से बडि भागे रहे सु पासि। मुख पिखि बच सुनि पुरवहिं आस।
हौं निरभाग बियोगी होवा। चिर बीत्यो नहिं दरशन जोवा॥ २९ ॥
इम चितवति चिति चिंत बिसाला। बीत गयो पुन केतिक काला।
दुतिय शबद को पद रचि लीन। लिख कागद पर पढिबो कीन॥ ३० ॥
तिसी सिक्ख को बहुर पठावा। जाहु अबहि सतिगुर जिस थावा।
सो पद शबद कहौं लिखि अवै। दरशन प्यास भनी बिच तवै॥ ३१ ॥

इक घड़ी न मिलते ता कलिजुग होता॥
हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता॥
मोहि रैणि न विहावै नींद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ।
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चौपई

कागद को सकेल करि दीना। सिख ने ले करि प्याना कीना।
सुधा सरोवर को चलि आइव। तरनि दुरे गुर दर दरसाइव॥ ३२ ॥
तिस छिन होति सदन के मांहि। वाहर न हुते मिलहिं किस पाहि।
घिर्यो पौर पुर घटिका जबै। प्रिथीआ निकस्यो घर ते तबै॥ ३३ ॥
बैठ्यो सिक्ख पछान्यो सोइ। लख्यो-अनुज कछु भेज्यो होइ।
निकट हकार्यो पूछन कीन। सिख न काढ पत्रिका दीन॥ ३४ ॥
खोलि पढ्यो संकट मा ऐसे। लग्यो सेल करकति उर जैसे।
रचन लग्यो अबि निति प्रति बानी। गुर की कीरति बीच बखानी॥ ३५ ॥
जिम पित रचहिं तथा सो करिही। रीझहिं सतिगुर जबहि निहरिहीं।
तबि सिख को डेरा करिवाइ। कहति भ्यो 'मैं दिउं पहुंचाइ॥ ३६ ॥

खीसे पाइ सदन निज गयो। निसा बिताइ बुलावन कयो।
'श्री अरजन पाती जु पठाए। गुरू पिता पठि करि हरखाए ॥ ३७ ॥

कुशल छेम सभि जानी गई। है अनंद इत ते सुध दई।
लवपुरि कौ अबि करो पयाना। इम तिन सों सतिगुरू बखाना ॥ ३८ ॥

धरमसाल की सेव करावहु। सभि संगति को मेल बनावहु।
सति संगत है दास हमारा। मिलहु करहु सिक्खन निसतारा ॥ ३९ ॥

सुनि कै तिह कीनसि प्रसथाना। प्रिथीए तबै बिचारन ठाना।
खशट बरख कछु ऊपर मास। पित की बच तबि लग है सास ॥ ४० ॥

समां समीप आइ सो गइऊ। गुरता तिलक तबहि मैं लइऊं।
तावद अरजन मिलहि न आइ। भ्रात शरीक संस उपजाइ ॥ ४१ ॥

निरसंदेह मैं पिता पिछारी। बहुर न बोलहि मोहि अगारी।
गादी पर मेरो अधिकारू। दुर्यो न, जानहिं सभि संसारू ॥ ४२ ॥

पिता जियत लौ संसै होई। रहिं प्रतिकूल सदा दिश मोही।
जे अरजन ढिग आइ न तावत। नीकी बात मानहौं जावत ॥ ४३ ॥

इत्यादिक बहु रिदै बिचारै। होति न गुर आइसु अनुसारै।
धन, बुधि, बल ते चहि गुरिआई। सरबग्यन ढिग ते किम पाई ॥ ४४ ॥

गयो सिक्ख लवपुरी मझारी। श्री अरजन ढिग सकल उचारी।
बिना कहे प्रिथीए ने लीनी। गुर ढिग दई किधौं नहिं दीनी ॥ ४५ ॥

झूठो सो बोलति लखि पाइव। कीनसि मोहि बिदा उतलाइव[1]।
नहिं पूरब मैं तिह छल जाना। अबि के मसतर सहत पछाना ॥ ४६ ॥

गुर सों मिलन नहीं मुझ दयो। तूरन करिकै भेजन कयो।
तबि मैं जान्यो कपट करंता। चल्यो न बस, मैं आइ तुरंता ॥ ४७ ॥

सभि संगति जुगि सुन्यो ब्रितंत। जान्यो प्रिथीआ छली छलंत।
निशचै श्री अरजन उर जाना। करहि शरीकपनो छलसाना ॥ ४८ ॥

बहुर त्रितीपद शबद बनाइव। मिलिनि प्यास को अधिक जनाइव।
लिखि कागद पर इकठौ कीन। लिखौं इहां सो पाठ प्रवीन ॥ ४९ ॥

---

1. शीघ्रता से।

श्री मुखवाक :—

इक घडी न मिलते ता कलिजुगु होता।
हुणि कदि मिलीए प्रिअ तुधु भगवंता।
मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै देखे गुर दरबारे जीउ ॥ ३ ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥

चौपई

कहि सिक्ख को नीके समझायो। अबि के जाहु गुरू जिस थायो।
मिलहु न प्रिथीए को तहिं जाइ। जबि गुर संगति बैठहिं आइ ॥ ५० ॥
तबहि अचानक जावहु पास। करहु समरपन इहु अरदास।
हम दिश ते बंदन को करीअहि। कर जोरहु चरनन सिर धरीअहि ॥ ५१ ॥

'इति श्री गुर प्रताप ग्रंथे' दुतिय रासे 'पत्रिका पठन श्री अरजन प्रसंग वरननं नाम एक अनिबिंसती अंशू ॥ १९ ॥

———

अंशु २०

श्री अरजन आगवन सुधासर

दोहरा

मिलहु न प्रिथीए को प्रिथम समुझायो बहु बार ।
दई पत्रिका सिक्ख कर, गुर को बंदन धारि ॥ १ ॥

चौपई

ध्यान पिता गुर को उर धरिओ । मन करि पग प्रणाम को करिओ ।
रिदे प्रेम की खैंच बिसाले । किउं नहिं जानहुं मोर हवाले ॥ २ ॥
दोन बंधु प्रभु अंतरजामी । क्रिपा सिंधु सुख दाइक स्वामी ।
दिन महिं खान पान नहिं भावति । निस महिं परे नींद नहिं आवति ॥ ३ ॥
लख्यो निलाइक मोहिं भुलाइव । दरशन को नित चित अकुलाइव ।
इत्यादिक अनेक मन गिनती । अंतर गती करति चित बिनती ॥ ४ ॥
सतिगुर जानहिं उर को प्रेम । प्रेम बसी हुइं जिन को नेम ।
परखहिं सुति आइसु अनुसारी । देनि हेत जग गुरता भारी ॥ ५ ॥
लवपुरि ते ले करि अरदास । गमन्यो सिख्य धरे गुर आस ।
मग उलंघि सगरो क्रम कारिकै । मिलौं हजूर समो सु बिचरिकै ॥ ६ ॥
जब दिन जाम रह्यो तबि आइव । पिखहि न प्रिथीआ-आप बचाइव ।
सतिगुर जहां दिवान लगाइव । प्रविश्यो तहां अचानक जाइव ॥ ७ ॥
हाथ जोरि बंदन को ठानी । पुन संगति की नमो बखानी ।
कर पर धरि अरदास अगारी । श्री अरजन की अरज[1] उचारी ॥ ८ ॥
सुनि श्री रामदास ने लीनसि । खेलि पत्रका देखि[illegible] कीनसि ।
गद्गद प्रेम ते दरशन चाहू । नहीं शांति निस बासुर मांहू ॥ ९ ॥
प्रेम महां ते ब्याकुल होवा । हमरे बिरहातुर सुत जोवा ।
जानि दशा लोचन भरि आए । रुक्यो कंठ नहिं बोल्यो जाए ॥ १० ॥

---

1. बिनती, प्रार्थना ।

पुत्रन बिखै टेक इन राखी। रहि आइसु महिं दरशन कांखी[1]।
सरब सहारहि गुरता भार। अजर जरहि गो नहिं हंकारि॥ ११॥
राखी सोढी वंस बडिआई। नहीं जान दीनसि किस थाई।
तुकैं शबद की रुचिर बनाई। बानी रचहि नरन गति दाई॥ १२॥
हमरी आग्या बंधन मांही। रह्यो सथित मेरी जिस नांही।
प्रेम बिखै बिह्वल हुइ रहे। अति प्रसन्न मन बच तबि कहे॥ १३॥
देखहु भाई ब्रिध ! सुत अरजन। प्रेम बिखै लिखि अपनी अरजनि।
पठी इहां सो पठी बनाइ। तुकां शबद की सुंदर भाइ॥ १४॥
चिर होयो लबपुरि पठायो। लई न हम सुध, चित अकुलायो।
अबि तहिं तुमरो पहुंचन बनै। आन हुं तिनहिं प्रेम मन सनै॥ १५॥
सुनि सतिगुर ते तबि बिध भाई। श्री अरजन की बहु बडि आई।
लग्यो सराहनि शील बिसाला। लेश हंकार नहीं किस काला॥ १६॥
रावर की आइसु को पाए। होति प्रात के लविपुरि जाए।
मैं आवहुं गो अंम्रितसर मैं। जिनके अति लालसा उर मैं॥ १७॥
इम कहि सुनि कै निसा बिताई। चलति भयो मग बुड्ढा भाई।
एक निसा बसि कै पुरि गयो। धरम साल महिं प्रापति भयो॥ १८॥
देखि इसे सिख जे समुदाई। श्री अरजन जुति उठि अगुवाई।
बंदन करी परसपर मिले। बैठार्यो करि आदर भले॥ १९॥
गुर दिश के सुनि करि संदेश। भयो सभिनि के हरख विशेष।
आयहु तुमहु लेनि सुनि ऐसे। करन पुटन पी अंम्रत जैसे॥ २०॥
भयो अनंद सु बरनै कौन। लह्यो कलप तरु मानहुं भौन।
सुख सों बस करि निसा बिताई। पुना संहारी मिले सु जाई॥ २१॥
अपर बंधु गन सभि सों मिले। गुर मुख सिख्य प्रेम करि भले।
गुर सुत सों मिलि मिलि करि नमो। बिछुरन ते संकट तिह समों॥ २२॥
श्री अरजन पिखि संगत सारी। धीर दई कीजहि सुख भारी।
सुधा सरोवर मेले आवहु। मिलहु गुरू दरसहु हरखावहु॥ २३॥
झर सकट आरूढ तुरंते। जुते ब्रिखभ भारी बलवंते।
ग्रीव बिभूखन बाजहिं चालति। मग महिं उतलावति पग डालति॥ २४॥
भाई बुड्ढा संग चढायो। करे शीघ्रता सकट चलायो।
ब्रिखभ प्रेरक को धन दीना। गमने मारग को सुख कीना॥ २५॥

1. आकांक्षा रखते हुए भी।

त्रिपताए दै त्रिखभ अहारा। चले जाहिं नहिं लगे अवारा[1]।
तीन जाम महिं पहुंचे जाई। देखि सुधासर ग्रीव निवाई ॥ २६ ॥
पित मिलिबे को अनंद बिचारहिं। लोचन ते जल बूंदन डारहिं।
वहुत दिवस को बिरहि बिदारहिं। घटी आज की धंन उचारहिं ॥ २७ ॥
सतिगुर जिस थल सभा लगाई। उतरे आनि संग त्रिध भाई।
पिखे दूर ते सतिगुर भानु। कमल प्रफुल्लत बदन महांन ॥ २८ ॥
पूरन चंद पिता की ओरा। लोचन कीन चकोरन जोरा।
नीठ नीठ पहुंचे ढिग जाइ। परे चरन पकंज उतलाइ ॥ २९ ॥
द्रिग जल ते पग मनो परवारे। प्रेम निमगन सपुत निहारे।
पकरि भुजा ततकाल उठाए। भरे अंक देखति हरि खाए ॥ ३० ॥
अधिक प्रीत सों लाइव छाती। मसतक सूंघ लई जनु थाती।
सोढी कुल की राखि बडाई। हे सपुत्र करि हैं अधिकाई ॥ ३१ ॥
गुरता भार धारिबे बली। महां धीर होयहु विधि भली।
तबि मंगवाइव पठी जु पाती। पठी आप करि सीतल छाती ॥ ३२ ॥
सुनहु पुत्र जबि के तुम गवने। एक पत्रिका भेजी भवने।
लवपुरि बिखै रहे चिरकाल। मिले रहे सति संगति जाल ॥ ३३ ॥
अपर पत्रिका क्यों न पठाई। लिखनि बिखै मति अति चतुराई।
पठी एक तद्यपि क्या कीना। अंक तीसरो किम लिखि दीना ॥ ३४ ॥
बन्यो शब्द पद एको जैसे। लिख्यो इकांग चाहीये तैसे।
इस महिं कहो हेतु है कौन। सभिनि बिखै बूझ्यो भौन ॥ ३५ ॥
श्री अरजन कर जोरि उचारि। कहिनो बनहिन आप अगारी।
सभि घटि घटि के अंतर जामी। दुर्यो न कुछ तुम ते जग स्वामी ॥ ३६ ॥
तउ आप की आइसु पाइ। कहिबो बनै होइ जिस भाइ।
दोइ पत्रिका पठी अगारी। भए शब्द पद गिरा उचारी ॥ ३७ ॥
त्रिती पठी इहु रावरि पास। बन्यो शब्द पद विच अरदास।
अंक तीन को यांते लिख्यो। जो बूझ्यो रावर ने पिख्यो ॥ ३८ ॥
सुनि गुर कह्यो न मुहि ढिग आई। लिखि तुम ने किस हाथ पठाई।
ले किह ने कहिं धरी छपाई। कै मारग गिर परी न पाई ॥ ३९ ॥
जो सिख ल्यायो बैठ्यो पासि। कह्यो सु 'मैं आनी अरदास।
पुत्र आप को जेशट ले करि। मुझ तजि वहिर प्रवेशति भा घर ॥ ४० ॥

1. शीघ्रता से।

बहुर आइ करि तिन कहि दीन। श्री सतिगुर ने बाचन कौन।
सुख अनंद की सुधि कहि दीजहि। तूं लवपुरि पयानो कीजहि ॥ ४१ ॥
तुमरो दरशन होनि न दयो। बिना मिले मुझ रुखसद कयो।
अपर न सुधि मोकहु किम भई। दई आप ढिग, कै नहिं दई ॥ ४२ ॥
प्रिथीए की इस सुनी खुटाई। कूरो कर्यो चहति गोसाईं।
सभा बिखै बोले सो कहां। जाइ हकारो गो सिक्ख तहां ॥ ४३ ॥
किनहूं कह्यो घाम ते अंग। कहति शनान रूप जल संग।
जाउ तहां ते ल्याउ हकारे। श्री गुर कह्यो बिलंब न धारे ॥ ४४ ॥
आइसु पाइ सिक्ख तबि गयो। मज्जन करति निहारति भयो।
सेवक कितिक संग हरखाए। सेवा करति नीर बहु पाए ॥ ४५ ॥
को शरीर को मरदन करै। को ढिग खरो बसत्र कर धरै।
पनही पौंछ धरति को आगे। को बोलति बाकनि अनुरागे ॥ ४६ ॥
सनमानति चहुं दिशि नर खरे। जल सो केल अनिक बिधि करे।
गरमी लागति अधिक चुमासे। यांते मज्जति नीर बिलासे ॥ ४७ ॥
हेरि सिक्ख कर जोरि उचारा। 'श्री सतिगुर जी तुमहि हकारा।
बिना बिलंब आप चलि जावहु। सभा बिखै सभि को दरसावहु ॥ ४८ ॥
सुनि तबि बसत्र पहिर करि लीन। चल्यो चौंप करि कपटि प्रबीन।
आवति दास संग समुदाया। बिगसति बोलति उर हरखाया ॥ ४९ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे श्री अरजन आगवन सुधासर' बरननं नाम बिसती अंशू ॥ २० ॥

————

अंशु २१

प्रिथीए ते पत्रिका ले ब्रिध संग प्रसंग

दोहरा

श्री अरजन सनमान जुति अति समीपता पाइ ।
बैठे शोभति पिता सों ग्यान अनंद के भाइ ॥ १ ॥

चौपई

प्रिथीआ देखि दूर ते जरियो । इतो निकट थित ह्वै करि थिरियो ।
पिता गुरु को अदब न राख्यो । बैठ्यो जनु समता अभिलाख्यो ॥ २ ॥
इम ढिग ह्वै लोकनि दिखरावै । सिक्खन मैं निज मान वधावै ।
जरति आइ पित को करि नमो । बैठ्यो कितिक दूर तिह समो ॥ ३ ॥
श्री अरजन लखि करि बड भ्राता । बैठे रहे निकट गुर तात ।
हाथ जोरि बंदन को ठानी । आशिष दे प्रिथीए ने मानी ॥ ४ ॥
श्री गुर देख्यो पुत्र बिलंद । कह्यो प्रिथीचंद सुनि मतिवंत ।
दोइ पत्रिका पूरब आई । श्री अरजन तुक शबद बनाई ॥ ५ ॥
सिख ने दई सौंप करि तोही । सो अबि तेरे ही ढिग होहि ।
हमरे तीन न आनि दिखाई । कौन हेतु ते राखि छुपाई ॥ ३ ॥
आनहुं अबि तिन को जहिं धरी । अवलोकहिं कैसी बिधि करी ।
सुनि बोल्यो बच जो छलसाने । कवि इन पठी, कहां को जाने ॥ ७ ॥
मोहि रिदै सुधि अहै न कोई । करे दुराव काज क्या होई ।
चतुरंगल कागद के संग । मैं नहिं ताहि चढाइव चंग[1] ॥ ८ ॥
सुनि श्री रामदास पुन कही । लेहु सिमरि जे सुधि नहिं रही ।
धरी होइगी किस ही थाइं । खोजि आनअहि देहु दिखाइ ॥ ९ ॥
अपर सरब ही कार सुधारहिं । सो कैसे करि नहिं बिसारहिं ।
कूर न कहु नहिं राखि दुराई । त्याग देहि छल की चतुराई ॥ १० ॥
सुनि कै खुनस्यो ऊंचे कहे । कछु हुंडी तो नाहिन अहै ।
जिह छिपाइ धन को ले आवौं । कौन अरथ ते तांहि छिपावौं ॥ ११ ॥

1. पतंग ।

कुछ लेखा नहिं तिस के माहूं। रिन की वही न, राखौं पाहू।
सिख ते गिरि होहि मग ल्यावती। डरति रिदै मुझ पास बतावति ॥ १२ ॥
जे करि पद इन शब्द बनाइव। तिस देखन हित ललचाइव।
तौ किछु तोट नहिं ढिग बैसे। कहि, बनवाइ लेहु तुम तैसे ॥ १३ ॥
अपर काज तो नहिं तिन मांहू। जिस ते कार अटक कुछ जाहू।
देखि कुटिलता प्रिथीए केरी। तनक सरलता नहिं तबि हेरी ॥ १४ ॥
दास निकटि के श्रवण मझारा। अंतरजामी वाक उचारा।
शीघ्र सदन इस के उठि जावहु। तहां पहुंचि इह बाक सुनावहु ॥ १५ ॥
प्रिथीए ने कीनस इशनाना। चाहति सतिगुर पास पयाना।
जामा पहिरन हित मंगवावति। पठ्यो मोहि आइव उतलावति ॥ १६ ॥
सुनि सिख गयो गुरू पुन कह्यो। तिस कागद महिं काज न लह्यो।
हमहुं दिखावति क्यों नहिं सोऊ। इस महिं साहस मति[1] किम होऊ ॥ १७ ॥
सिमरन करहु जहां सो धरी। अरी न धरहु देहु परहरी।
भावी न प्रेर्यो नहिं माना। तीन बार गुर बच उलटाना ॥ १८ ॥
रिस करि बोल्यो 'मेरी कह्यो। रावर ने सभि झूठो लह्यो।
सपत मोहि तुम चरनन केरी। जे करि पत्री मैं किती हेरी ॥ १९ ॥
पित गुर सरबग्य न जाना। बडि महिमा ते रहि अनुजाना।
महां अभाग जाहि के होइं। किम ऊचो पद प्रापति सोइ ॥ २० ॥
दासु गयो तिह कै ग्रहि कह्यो। तिस की त्रिय कुछ भेद न लह्यो।
करमो ने तबि मेरी दासी। ल्यावति भी जामा तिसु पासी ॥ २१ ॥
सिख ने इकठौ करि सो ल्याइव। अपने बसत्र लपेट छुपाइव।
को नहिं जानि सकहि इस भांती। आनि दियो गुर को जुति पाती ॥ २२ ॥
महांदेव को तबहि हकारा। अपर दिवान लगाइव सारा।
स्याने सिक्ख अनेक सुहाए। सम चित जिनहुं बिकार बिहाए ॥ २३ ॥
को सतिगुर के मुख को देखति। को प्रिथीए की क्रांति परेखति।
पुन गुर सभिनि सुनाइ उचारो। अजहु समझ तूं कह्यो हमारो ॥ २४ ॥
देहु पत्रिका जहां दुराई। तेरो काज न बिगरै राई।
जे न देहिं सुधरे कुछ नांही। नाहक पर्यो महां हम मांही ॥ २५ ॥
अलप बसतु ते महिर बिगारे। क्यों तूं करतो बिना बिचारे।
सगरी सभा सुनति तिस थान। कहे न समझ्यो महद अजान ॥ २६ ॥

---

1. बुद्धि।

कहति भयो बिप्रै ही फेरे[1]। पत्री ते क्या बनव बडेरे।
कै ढिग राखि राज कहि लेवौं। दुलभ वसतु क्या तिस ते सेवौं ॥ २७ ॥
सुनि श्री रामदास बच कहैं। बडिआई तुव भाग न अहै।
कहां निलाइक[2] राज कमावहिं। दुलभ वसतु बिनु भाग न पावहिं ॥ २८ ॥
बुड्ढो आदिक सिक्ख सभि हेरैं। तबि सो जामा धर्यो अगेरै।
कह्यो गुरू: 'जामा पिखि लेहू। है कि नहीं तुव गर को ऐहू ॥ २९ ॥
देख्यो, धर्यौं, कह्यो 'इहु मेरा। घर ते किन आन्यो इस बेरा।
गुरू कह्यो 'इस जेब मझारी। निज कर सों अबि लेहु निकारी ॥ ३० ॥
कहन लग्यो 'मैं तो नहि पाई। इस महिं पाती कहि ते आई।
श्री मुख भन्यो न देर करीजै। निज कर ते कागद निकसीजै ॥ ३१ ॥
चप्यो लाज ते सभा मझारा। जेब बिखै अपनो कर डारा।
गन कागद से सकल निकासे। सभि ले करि सतिगुर निज पासे ॥ ३२ ॥
पत्री दोनहु तुरत निकारी। बिसमति भे, सभि सभा निहारी।
कर पर धरि करि गुरू उचारी। क्या गुरमुखि इहु करहु बिचारी ॥ ३३ ॥
बडो गरीब कपद ते हीणा। नहीं कुटिलता दीरघ मीणा[3]।
ओरक लौ हठ को निरबहीआ। भयो निलाइक गुर कुल महीआ ॥ ३४ ॥
संतति सहत तोहि कउ त्यागा। नही ऊचपद इसके भागा।
लह्यो अचल अपजस जग मांही। क्या इन कीन मिट्यो पुन नांही ॥ ३५ ॥
इस की संतति उपजै जोइ। गुर सिक्खन के सिख सु होइं।
तौ संगति को मेल बने है। नातुर वहिर मुखी इहु रहि है ॥ ३६ ॥
जथा पुत्र सों कह्यो जुजाती। जदु ने नहि मानी मन बाती।
राज भाग ते कह्यो सु बाहर। तथा करी गुर, सुत सों जाहर ॥ ३७ ॥
सुनि बुड्ढा बोल्यो शुभ मति की। देखहु कहां करी ब्रित चित की।
पित गुर को सरबग्य न जान्यो। कर्यो छुपाव महिद छल ठान्यो ॥ ३८ ॥
अलप ग्यान संग[4] कपट पुजैहै। होति अपर अपरैं करि जै है।
तुमरे बिखै न निशचा धर्यो। निज समान ही लखिबो कर्यो ॥ ३९ ॥
सुनि सभि सभा बिसम हुइ गई। क्या इन किय अंगुरी मुख दई।
निज छल प्रगट भयो मन जान्यो। लज्जिति ह्वै कै कछु न बखान्यो ॥ ४० ॥
नीच ग्रीव करि बैठ्यो रह्यो। कटक बाक सभिहिनि को सह्यो।
जथा प्रधान काच को हीरा। बंचकता करि है मति धीरा ॥ ४१ ॥

1. फिर भी उलटा ही बोलता रहा। 2. नालायक, अयोग्य। 3. मेमना।
4. अल्प-ज्ञानी के साथ।

जबहि तीर हीरा हुइ साचो। परख्यो जाइ तजहि सभि काचो।
जबि श्री ग्ररजन परखे साचे। कूरो तबि कूरो कच पाचे ॥ ४२ ॥
तबि श्री रामदास द्वै पाती। धरि कर बाची हित करि थाती।
प्रेम बिसाल दास को कारन। बनी तुकां बडही शुभ चारुन ॥ ४३ ॥
अति प्रसन्न उर पठि करि भए। पुन भाई ब्रिध के कर दए।
ग्राइसु दई 'पठहु किम अहै। सभि गुर को आशै तुम लहै ॥ ४४ ॥
तबि बुड्ढे पड़ सभिनि सुनाए। सुंदर शबद नबों जु बनाए।
सभा सुनति सभि ही मुद लहे। धंन धंन श्री अरजुन कहे ॥ ४५ ॥
अनुज बडाई सुनि दुःख पावति। जरति रिदा कुछ बस न बसावति।
छल बल करि चाहति गुरि आई। पुन पित की नहिं सेव कमाई ॥ ४६ ॥
करि हंकार न कबि बच माना। धन को सांभति रह्यो महाना।
जग बिवहारन महिं चतुराई। इक भी गुन नहिं कहुते गुरिआई ॥ ४७ ॥
इम प्रिथीआ बैठ्यो मुरझाई। पुन बुड्ढे संग गुरू अलाई।
श्री नानक के तुम बहु प्यारे। गुर अंगद श्री अमर निहारे ॥ ४८ ॥
गुरता अजर जरन उर मांही। श्री अरजन अबि भयो कि नांही।
जे करि तुमहु सुहावति आछे। इसहि बिठावहिं हम निज पाछे ॥ ४९ ॥
गुरता उचित सु और न कोई। इन सम गुन कहु किस महिं होई।
तुम संमत हुइ चाहति कर्यो। कहो साचु जिम उर महिं धर्यो ॥ ५० ॥
सुनि बुड्ढे कर जोरि उचारा। इहु सेवक की वसतु उदारा।
अजर जरन ग्रादिक गुन होइ। इस की लाइक जानहुं सोइ ॥ ५१ ॥
श्री अरजन महिं परखे सारे। तुम ते अपर सुमति को धारे।
इन सम सेवक अपर बीयो। जिम आइसु महिं वासा कीयो ॥ ५२ ॥

दोहरा

प्रेमातुर अति दुख लह्यो संमत दोइ बिताइ।
आइसु पाइ सु आप को अबि दरशन को आइ ॥ ५३ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'प्रिथीए ते पत्रिका ले ब्रिउ संग प्रसंग' बरननं नाम एक बिसती अंशु ॥ २१ ॥

———

अंशु २२

श्री अरजन को गुरिआई देनि

दोहरा

सुनि कै ब्रिध के बचन को सतिगुर रिदै अनंद।
इनहुं सराह्यो तबि भयो श्री अरजन कुल चंद॥ १॥

चौपई

बरती इनहु बहुत गुरिआई। सार असार परखना पाई।
मुख्य जौहरी जबहि जवाहर। परखहि, तबि होवै जग ज़ाहर॥ २॥
श्री फल पैसे पंच मंगाए। जहिं कहिं ते सिख सरब बुलाए।
सभि संगति को मेला भयो। चहुं दिश परवारति हुइ गयो॥ ३॥
सरब निहारत कहां करहिंगे। बडि सुत सों उर क्रोध धरहिंगे।
तबि श्री रामदास उठि करि कै। श्रीफल अर पैसे कर धरिकै॥ ४॥
तीन प्रदच्छन को तबि दीन। श्री अरजन सुत लाइक चीन।
तिन आगे धरि मसतक टेका। अति अनंद भा जलधि बिबेका॥ ५॥
पुन सतिगुर की आइसु पाइ। बुड्ढा उठ्यो रिदे हरखाइ।
भयों भाग सों भाल जु नीका। जिन कर ते सुठ कीनसि टीका॥ ३॥
सभि सों सतिगुर बाक उचारे। सुनहु सिक्ख सभि तुम गुर प्यारे।
श्री अरजन मम रूप निहारहु। जिम मुझ लखहु तथा उर धराहु॥ ७॥
गुरता गादी पर इह थिर्यो। हलत पलत भार जु सभि धर्यो।
संगत को दुख पार उतारहि। कारज अनिक जगत महिं सारहि॥ ८॥
उठहु सकल बंदन इस कीजहि। नाना भांति उपाइन दीजहि।
सुनि सतिगुर के बचन अनंदे। बोलति जै जै कार बिलंदे॥ ९॥
जथा शकति धरि निकट अकोर। नमसकार कीनसि कर जोरि।
उतसव सभि सिक्खन महिं होवा। श्री अरजन रवि उद्यति जोवा॥ १०॥
दास तामरस[1] बिकसे ब्रिंद। जग्यासी गन मुदित मलिंद।
महां देव प्रिथीए उर आसा। भ्रम तम जुत इह निसा बिनासा॥ ११॥

---

1. कमल।

इन के पक्खी उडगन दुरे। निंदक पेचक मुख द्रिग जूरे।
प्रिथीचंद दुतिचंद मनिंद। फीको पर्यो तिसी छिन मंद ॥ १२ ॥
जर बर गयो अधिक दुख पावति। नीव ग्रीव करि बस न बसावति।
महां देव तूशनि थिर थियो। हरख न शोक रिदै कुछ कियो ॥ १३ ॥
सुनि जननी बड भागा भानी। गुर अरजन भा-मुदित महांनी।
सिमरति पिता बाक सुख पाइव। नहीं बंस ते गुरता जाइव ॥ १४ ॥
पिता गुरू को कह्यो अटल है। चलहि सुमेरु नही सो चलि है।
सभा बिखै श्री सतिगुर तबै। बैठे चहुं दिश संगत सबै ॥ १५ ॥
श्री अरजन सुत की दिश देखि। कह्यो बाक मन मुदिति बिशेख।
होति शबद के चतुरथ पद सभि। करे लीन इक चही अति है अबि ॥ १६ ॥
रचहु सुपद शुभ निकट हमारे। पावहु शबद भोग मति धारे।
जिस को जग महिं सिख्य घनेरे। पठसिं मुद पाइं बडेरे ॥ १७ ॥
मुदिति ब्रिध हुइ करि तबि कहै। सतिगुर बाक उचित ही अहै।
श्री अरजन सुनि कै तिह समो। रच्यो सु पद पित को करि नमो ॥ १८ ॥

श्री मुखवाक

भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ।
प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ।
सेव करी पलु चसा न बिछडा जन नानक दास तुमारे जीउ ॥ ४ ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई जन नानक दास तुमारे जीउ। रहाउ ।१॥ ८ ॥

चौपई

श्री गुर रामदास सुनि हरखे। बाणी बहुत करहिंगे-परखे।
आछी साफ बनावट हेरी। रची तुरत नहिं लागसु देरी ॥ १९ ॥
श्री मुख ते सुत सों फुरमाइव। 'सहत नम्रंता शबद बनाइव।
जिस को पठि सुनि करे बिचारन। हरे हंकार समेत बिकारन ॥ २० ॥
हाथ जोरि पित ते सुनि बानी। अति अधीन हुइ बंदन ठानी।
करन करावन तुमही अहो। अनुसारि सदा जिम कहो ॥ २१ ॥
सभा उठी जबि निज निज थान। पहुंचे सभि 'शुभ' करति बखान।
भाई ब्रिधसों प्रिथीआ मिल्यो। जर बर रह्यो न बस कुछ चल्यो ॥ २२ ॥
सुनि बुड्ढे ! हम तुझ को जानहिं। गुर नानक सम महिमा मानहिं।
इस बिधि आज तीक मति मेरी। रही न अब शरधा क्रित हेरी ॥ २३ ॥
रह्यो संग सभि ही सतिगुर के। देखति रह्यो ब्रितांत सु धुरके।
मैं जेशट अरु लाइक आछे। उचित हुती गुरता पिछ पाछे ॥ २४ ॥

सो तुम ने कछु नहीं बिचार्यो। भयो ब्रिध कै बुधि बल हार्यो।
पित तौ गुरू नाम् इक बने। मैं बिवहार चलावति घने ॥ २५ ॥
सभि बिधि की बुधि तूं मम जानति। सभि संगति गुर मुहि अनुमानति।
क्रिति अचानक इह क्या कीन। तैं उठि तुरत तिलक करि दीन ॥ २६ ॥
मैं निज बल ते द्यों उलटाइ। तौ तुमरी क्या पति रहि जाइ।
आगै जिकर न कबिहूं भयो। तुरत अनुचित कहां करि दयो ॥ २७ ॥
जे पित रिस करि कै इम ठानी। रीति अनुचित करन को मानी।
तऊ तुमहु को लाइक हुती। समझावन कहि कै शुभ मती ॥ २८ ॥
बड सुत को है इहु अधिकारा। पुन सभि बिधि लाइक निरधारा।
पित के होवति सभि बिवहारा। करे संभारन सुमति उदारा ॥ २९ ॥
इत्यादिक कहि करि समझावति। गुरता लघु सुत ते बरजावति।
तुम को उचित हुती इहु रीति। तौ स्थानो समझति सभि चीत ॥ ३० ॥
सो तौ बात न कीनसि नीका। तैं उठि दीन तुरत ही टीका।
तुव क्रित को क्या निंदहि नांही। जे सिख स्याने संगति मांही ॥ ३१ ॥
देखि लई तुमरी करतूत। कहति सुमति जुति कीन कसूत[1]।
अबि मैं करि हौं नित उसमाहू। छीन लेहुं गादी तिस पाहू ॥ ३२ ॥
दरब ब्रिंद खरचन करि लैहौं। सभि की करी उलट अबि दै हौं।
ब्रिध कह्यो रिस, क्यों उर करैं। पित सेवा महि नहिं हित धरैं ॥ ३३ ॥
रीझहिं, बिना कहे तुझ दै हैं। जे करि लाइक को पिखि लैहैं।
करैं वखीली हाथ न आवैं। गहहि नंम्रता बांछत पावैं ॥ ३४ ॥
पित को कह्यो न मान्यो नीका। यांते नही भयो तुव टीका।
गुरू पुत्र तुम वडी बडाई। माननीय, क्या हाथ न आई ॥ ३५ ॥
क्रोध बिखाद छोड सुख पावहु। पिता करे तिम उर हरखावहु।
दीन दुनी के मालिक अहैं। तिन सनमुख कौ उत्तर कहै ॥ ३६ ॥
इम कहि ब्रिध मुख धारी मौन। प्रिथीआ जाइ प्रवेश्यो भौन।
गिरा कठोर कहति रिस धारे। पित के निकट गयो दुख भारे ॥ ३७ ॥
मुख ते कहिन लागि कटु वानी। क्या बिपरीत आपने ठानी।
मेरी वसतु अलप को दई। को इमु करहि, न आगे भई ॥ ३८ ॥
मो मंग खोट जानि कै कर्यो। कौन दोष लखि कै परहर्यो।
जिस प्रकार तुम मुझ सों ठानी। इस को फल देखो अगवानी ॥ ३९ ॥

1. बुरी बात।

दरब ब्रिंद अबि मोहि समीपि । मिलि हो बली जु होहि महीपि ।
दे करि धनु को किसु अपनावहुं । पित सुत तुम को कशट दिखावहुं ॥ ४० ॥

जबि तुमरो बस चलहि न कोई । बिना करे गुरता मुझ होइ ।
इत्यादिक झगरा बहु ठान्यो । तिस पर श्री गुर सबद बखान्यो ॥ ४१ ॥

सारंग महला ४ घरु ३ दुपदा १ ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

श्री मुखवाक—

काहे पूत झगरत हउ संगि बाप ।
जिन के जणे बडीरे तुम हउ तिन सिउ झगरत पाप ॥ १ ॥ रहाउ ॥

जिस धन का तुम गरबु करत हउ सो धनु किसहि न आप ।
खिन महि छोडि जाई बिरिखआ रसु तउ लागे पछुताप ॥ १ ॥

जो तुमरे प्रभ होते सुआमी हरि तिन के जापहु जाप ।
उपदेसु करत नानक जन तुम कउ जउ सुनहु तउ जाइ संताप ॥ २ । १ ।७ ॥

चौपई

प्रिथीए सुनहु गरब क्या धन को । जिस को त्यागति टिकहि न खिन को ।
पछुतावन पीछे रहि जैहै । पित सों झगरति लाज न पैहै ॥ ४२ ॥

यांते हरि हरि सिमरन करहु । नीको इहु उपदेश जि धरहु ।
तन मन के सभि हर्ताहि संताप । बहुर न ब्यापहि लोभ सुपाप ॥ ४३ ॥

सुनि प्रिथीआ तुन खिझ्यो बिसाला । सिमरहु हरि नाम गुपाला ।
गुरिआई लघु सुत को दै कै । मोहि अनादरि सभि महिं कै कै ॥ ४४ ॥

उपदेशन को लखि अधिकारी । भलो समें अब गिरा उचारी ।
गुरता की धरि करि उर आसा । हरि को तजो होइ करि दासा ॥ ४५ ॥

इहु धरि हों उपदेश तुमारा । भले करहुगे भवजल पारा ।
करति अजोग न कछू विचारे । सिमरहु हरि हरि अबहि उचारे ॥ ४६ ॥

सुनि श्री रामदास, बच खोटे । हरति नहीं, को किस बिधि होटे ।
एक प्रीति जिस करन खुटाई । पुन इक शब्द बनाइ सुनाई ॥ ४७ ॥

॥ सूही महला ४ ॥

श्री मुखवाक

तिनी अंतरि हरि आराधिया जिन कउ धुरि लिखिआ लिखतु लिलारा।
तिनकी बखीली कोई किआ करे जिनका अंगु करे मेरा हरि करतारा ॥ १ ॥
हरि हरि धिआइ मन मेरे मन धिआइ हरि जनम जनम के सभि
दूख निवारण हारा ॥ २ ॥ रहाउ ॥
धुरि भगति जना कउ बखसिआ हरि अंम्रित भगति भंडारा ॥
मूरखु होवै सु उनकी रीसि करे तिसु हलति पलति मुहु कारा ॥ २ ॥
से भगत से सेव का जिना हरि-नामु पिआरा ॥
तिनकी सेवा ते हरि पाईऐ सिरी निंदक के पवै छारा ॥ ३ ॥
जिसु घरि फिरती सोई जाणै जगत गुर-नानक पूजि करहु बीचारा ॥
चहु पीड़ी आदि जुगादि-बखीली किनै न पाइओ हरि सेवक भाइ
निसतारा ॥ ४ ॥ २ ॥ ९ ॥

चौपई

तिस के अंतर हरि लिव लागे। जिस के लिख्यो धुरहुं बडभागे।
श्री अरजन को सदा सहाइक। हरि करतार जु सभि जगु नाइक ॥ ४८ ॥
तिस की तूं क्या करहिं बखीली। जिस के हरि लिवलगी रसीली।
लख्यो भगत बखशश भी धुर ते। अंम्रित भगति भंडार सु बरते ॥ ४९ ॥
रीस करे, मूरख है सोइ। हलति पलति मुख कारो होइ।
प्रिय हरिनाम भगति सो दास। तिन ते पाई अहि प्रभू प्रकाश ॥ ५० ॥
निंदक के कुछ हाथ न आवै। छार परै सिर फिर पछतावै।
जिस के उर बरतहि लिव हरि की। सो जानहि महिमा सतिगुर की ॥ ५१ ॥
श्री नानक गुर अंगद चंद। श्री गुर अमरदास सुखकंद।
चतुरथ पीडी गुरता केरी। हम लग होई सभि जगु हेरी ॥ ५२ ॥
करे बखीली कर नहिं आई। लह्यो परम पद करि सिवकाई।
सो तेरे कवि तीर न हाई। भरे गरब सों मत छल भोई ॥ ५३ ॥
हम को तैं अलपग्य पछाना। आप करे छल मानि महांना।
मतसर धरि करि लेकरि पाती। करी छुपावन मनहुं अराती[1] ॥ ५४ ॥
हम तुझ बूझ रहे नहिं मानी। निडर कुमति धरि सपत बखानी।
कूर सपत को दोष न माना। हम को जानति रह्यो अजाना ॥ ५५ ॥

---

1. शत्रु।

बिनां नंम्रता होइ न सेवा। सेवा कहां महां अहंमेवा।
शरधा सभि की मूल महांनी। अंकुरु प्रेम होति सुख दानी ॥ ५६ ॥

तुच सेवा जिस को दिढि करता। कांड बडे वैराग प्रविरता।
हरि का नाम सुमन ते फूला। सति संगति महिं शोभति झूला ॥ ५७ ॥
दैवि संपदा गुणा जि अनेका। गुण दल कलित सु बलित बिबेका।
आतम ग्यान लग्यो फल सुंदर। अति अनंद रस जिस के अंदर ॥ ५८ ॥
कोटि कलपतरु ह्वै न पटंतर[1]। प्रभू क्रिपा ते लहै सु अंतर।
क्यों तरफति अबि दुख को पाइ। बिनां भाग ते हाथ न आइ ॥ ५९ ॥
अबि भी रहु अनुसारि सदींवा। हरि हंकार होहु मन नीवां।
इत्यादिक प्रिथीआ समुझाइव। बाद करन ते बहु बरजाइव[2] ॥ ६० ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्री अरजन को गुरिआई देनि प्रसंग बरननं नाम दुइ बिसती अंशु ॥ २२ ॥

---

1. समान। 2. जाते थे।

अंशु २३

गोइंदवाल श्री गुर रामदास आगवन प्रसंग

दोहरा

सुनति पिता के बचन को प्रिथीआ अति हंकार ।
महाँ क्रोध को धारि कै सन मुख कीन उचार ।। १ ।।

चौपई

सेवा भली करति हो परखन । बैठ्यो लवपुरि महिं द्वै बरखनि ।
तुमरी सुधि अरु नहीं सदन की । आवति जाति नहीं सुध धन की ।। २ ।।
बैठ्यो रह्यो निचिंत सुखारो । कौन काज तहिं रहति सुवारो ।
मैं सगरे घर की बड कार । संगति आवति जानि हज़ार ।। ३ ।।
किस को देनि किसु ते लेन । राखन सभि को सदा सुखेन ।
नितप्रति करति रह्यो मैं आछे । सभि प्रसन्न हुइ मुझ ते गाछे ।। ४ ।।
अखिल मसंदन ते सभि कार । रह्यो संभारति सरब प्रकार ।
देग करन की कार चलाई । इत्यादिक मैं सेव कमाई ।। ५ ।।
तुम ते आदि सरब परवारे । कारि किनहुं नहिं कोइ संभारे ।
सुधि भी कबहुं न लीनसि कोई । मो ते होति सरब विधि सोई ।। ३ ।।
इम कहि कटक बाक पुन भाखे । जिन महिं बचन अनादर राखे ।
लिखे न जाइं मोहि ते सोइ । महां कठोर अनुचितै जोइ ।। ७ ।।
छिमा निधान बिरद लखि आपनि । रिस ते कर्यो न सुत को स्रापनि ।
कहति भए उठ थिरहु न आगो । अबि ते नहिं हमरे मुख लागो ।। ८ ।।
बड दुरभागि लालसा धन की । दुरमति ब्रिखै ब्रिति अति मन की ।
सुनि प्रिथीआ कहि 'जे मुझ त्यागो । तुम भी नहि कबहूं मुख लागो ।। ९ ।।

दोहरा

मैं त्यागन तुमरो कर्यो तुम ने त्याग्यो मोहि ।
पलटो मैं जबि लेइ हौं शांलि रिदे तबि होहि ।। १० ।।

चौपई

पित सुत छुग को दुख दिखलावौं। तौ मैं प्रिथीआ नाम धरावौं।
त्रिसकारति कहि एव कठोर। उठ्यो, निकसि गमन्यो घर ओर ॥ ११ ॥

चलति जात कटु वाक उचारति। ऊंची धुनि सभि के श्रुत डारति।
अपने सदन प्रवेश्यो जाई। महां दुखिति रिस बस न बसाई ॥ १२ ॥

निसा बिखै श्री गुरू बिचारा। रार करन मैं इहु छलवारा।
अनिक बिघन को ठानि उपाए। महिं इहु टरै कुमति को पाए ॥ १३ ॥

तन त्यागन को समा सु आइव। जिम श्री अमर वाक फुरमाइव।
हम को उचित करन, सो कीना। जथा हुकम परमेशुर दीना ॥ १४ ॥

निकटि न रहि है प्रिथीआ तबै। हम तन त्यागन करि हैं जबै।
करता इहु उतपात बिसाला। श्री अरजन ते रहै निराला ॥ १५ ॥

इह ठां बनै न नीकी बाती। गोइंदवाल चलहिं उठि प्राती।
श्री गुरू अमरदास के नंद। मोहन सुमति मोहरी चंद ॥ १६ ॥
श्री अरजन की बाहिं गहाइ। तीर बिपासा चलहिं समाइ।
निकट हकारन कीनसि भानी। सरब भेद समझाइ महांनी ॥ १७ ॥
गोइंदवाल प्राति को चलीअहि। नैहर बिखै अखिल संग मिलीअहि।
पुन भाई बुड्ढा समझायहु। भोर होति त्यारी करिवायहु ॥ १८ ॥
कहि करि खान पान को करि कै। सुपत जथा सुख सिहजा परिकै।
जाम जामनी ते उठि जागे। नित की क्रिआ करन को लागे ॥ १९ ॥
करि मज्जन नित ब्रिती टिकाई। अनंदातम बिखै समाई।
द्वै घाटिका जबि जामनि रही। छुटी समाधि देहि सुधि लही ॥ २० ॥
कहि करि सभि त्यारी करिवाइ। श्री अरजन भानी संग जाइ।
प्रिथम पंथ इन गमन करायहु। केतिक सिक्ख दास संग लायहु। २१ ॥
गुरू आरूढ होइ प्रसथाने। लए सिक्ख संग प्रेम महांने।
प्रिथीआ सुपति तज्यो घर मांही। गुर रुख लखि किन सुधि दिय नांही ॥ २२ ॥
भाद्रों सुदी प्रतिपदा दिन को। गुरता तिलक दीनि अरजन को।
चढे दूज के द्योस क्रिपाल। आन पहूंचे गोइंदवाल ॥ २३ ॥
कुछक रहे दिन प्रविशे पुरि मैं। देखति हरख भरे गुर उर मैं।
जाइ चुबारे बंदन ठानी। तबहि मोहरी ने सुधि जानी ॥ २४ ॥
करे उताइल मिलिबे आयहु। आपस महिं बंदति हरखायहु.
ले [illegible]

पुन भानी सभि सों मिल रोई। बडी चिंता महिं व्याकुल होई।
इक तो जग गुरू केर चलानो। बहुर सुतनि महिं झगर महांनो ॥ २६ ॥
उठहि उपाधि—बिचारति रोवति। पिता बाक साचो हुई जोवति।
अपरनि कुल महिं जात गुराई। मैं बर ले निज सदन टिकाई ॥ २७ ॥
गुरता रुके कलेश बिसाल। पित ने कह्यो बाक इस ढाल।
यांते मैं जानो उतपात। होवहिं गे बिगरहि सभि बात ॥ २८ ॥
इम समुझाइ संग भरजाई। गलमिलि रुदति भई चिर ताईं।
पुन सभि त्रोयन दीन दिलासा। पौंछि बदन को बैठति पासा ॥ २९ ॥
पुन गुर ढिग मोहन चलि आइयो। 'नमो' परसपर करि सुख पाइओ।
अपर लोक स्याने सभि आए। करि करि नमो थिरे तिस थाएं ॥ ३० ॥
बुड्ढे आदिक संग जि गए। मिले परसपर बैठति भए।
तबि प्रिथीए की बात सुनाई। बिगर पर्यो बहु करि लराई ॥ ३१ ॥
अपमानति दुरबैन बखाने। इहां अए चलि खोटो जाने।
श्री अरजन थिर करि निज थाने। गुर चाहसि तन त्याग सिधाने ॥ ३२ ॥
सुनति दुऊ भ्रातन दुख माना। कीन अजोग, न बन्यो सिधाना।
हमने प्रिथम तांही को हेरा। करहि कुकाज लोभ को प्रेरा ॥ ३३ ॥
पित के जीवत रही सु लाजा। अबि न मिटै गो करहि कुकाजा।
इम कहि सभि ठानति अफसोस। प्रिथीए मैं हंकार को दोष ॥ ३४ ॥
लोक सकल ही चिंता लहैं। गुरता महिं बिगर पर रहै।
अपर बारता भई अनेक। कौन कहै तिन सरब बिबेक ॥ ३५ ॥
त्यार अहार खाइ करि सोए। निज निज थल महिं नर सभि कोए।
भानी के मन चित महांनी। गिनती गिनहि अनेक बिधानी ॥ ३६ ॥
श्री अरजन बिछुये चिर रहे। सभि सों मिलि करि आनंद लहे।
मातुल अरु मातुल की दारा। सिर पर कर फेरति दे प्यारा ॥ ३७ ॥
बुड्ढे आदिक सिख गुर पासि। जाग्रत करते बचन बिलास।
निसा बिखे सुपते नहि कोऊ। सतिगुर त्यारी को लखि सोऊ ॥ ३८ ॥
जाम जामनी तीन बिताई। उठे गुरू सभि सौच बनाई।
भानी को हकारि निज साथ। प्रेमी सिक्ख संग ले नाथ ॥ ३९ ॥
मोहन और मोहरी आए। जाइ बापिका जल सों न्हाए।
गावनि लगे रबाबी वारि। भांति भांति के शबद उचारि ॥ ४० ॥

सुनिवे लगे प्रेम करि सारे। बैंठे सतिगुर सभिनि मझारे।
निजानंद महिं लगी समाधि। सदा एक रस परम अगाधि ॥ ४१ ॥

पुरि के नर सुनि सुनि सभि आए। मौनि ठानि बैठे समुदाए।
भई आनि जबिहूं भुन सारि। पर्यो भोग तबि आसा वारि ॥ ४२ ॥

हाथ जोरि करि मसतक टेका। बहुरो बोले जलधि बिबेका।
सुनहु सिख्य तुम सतिगुर प्यारे। सिमरो हरि हरि जनम सुधारे ॥ ४३ ॥

अंत समां अभि भयो हमारै। तन त्यागैं परलोक पधारैं।
श्री नानक गुर अंगद ओरा। श्री गुर अमर चौथ तन मोरा ॥ ४४ ॥

चारहुं गुर को दरस विशेखहु। पंचम श्री अरजन बपु देखहु।
एक रूप पंचहु को जानो। भेद रती कु नहीं मन ठानो ॥ ४५ ॥

हलत पलत गन सिक्ख सहाइक। इह सभि भार धारिबे लाइक।
दे गुरता गादी को शोभा। रतनाकर गंभीर अछोभा ॥ ४६ ॥

इस के संग जु रवै खुटाई। पुजहि न, दीन दुनी दुख पाई।
मोहन अपर मोहरी साथ। कह्यो बाक सोढी कुल नाथ ॥ ४७ ॥

तुम गंभीर धीर मतिवंते। पित आइसु नित चित बरतंते।
छिमा वंत, गुन बैस महाने। अन सूयक, शुभ मन, नहिं माने ॥ ४८ ॥

श्री अरजन मन परम पुनीत। तुम अनुसारी बरतै नीति।
शुभ गुन जुगत सु नंम्रि गंभीर। इस कहु जानहुं मोर सरीर ॥ ४९ ॥

गहहु भुजा निरबाहो सदा। राखहु चित न बिसारहु कदा।
सुनति मोहरी ने तिह समों। गही बांहु करि कै गुर नमो ॥ ५० ॥

निज सिर पर सो धारन करी। बानी कहति म्रिदुल रस भरी।
जबि ते पित की आइसु भई। मैं शरधा तमि ते धरि लई ॥ ५१ ॥

सतिगुर रूप प्रिथम तुम भए। बंदनीय सभि ते बड थए।
अबि तुम जिसहि बिठावहु आप। जग गुरता बडिआई थाप ॥ ५२ ॥

तुम सम पूजनीय सभि केरे। इस प्रकार दिढ शरधा मेरे।
धंन मोहरी 'सतिगुर कह्यो। पुन श्री अरजन की दिश लह्यो ॥ ५३ ॥

सुधा सरोवर मोर सरीर। तिस की टहिल करहु बडधीर।
जग महिं बडो होइ बख्याता। मुकति भुगति संगति को दाता ॥ ५४ ॥

श्री गुर अमरदास की आइसु। रहे खनति हम सभि सुखदाइसु।
चहुंदिश ते सौपानि बनावहु। हरि मंदर सुंदर उसरावहु ॥ ५५ ॥

ताल बिखै शोभा हुइ ऐसे। हरि बिमान थित नभ महिं जैसे।
किधौं फरश बैंडूरज[1] मनि को। बीच बन्यो घर महां बिशनु को ।। ५६ ।।
मम आग्या इहु धारहु मन मैं। नित प्रति रही अहि रचन जतन मैं।
सुनि करि श्री अरजन कर जोरि। करन करावन मैं तुम जोग ।। ५७ ।।
नमित मात्र मैं रहि हौं मांहि। प्रान होति लग सेवों तांहि।
रहौं रचन परसादि तुमारो। होहु सहाइक आपि संभारो ।। ५८ ।।
इम सुनि करि सतिगुरू प्रसंन। कह्यो होहु सभि लाइक धंन।
कहि सुनि कै तबि कीनस त्यारी। हित प्रलोक जगु गुर उपकारी ।। ५९ ।।

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे गोइंदवाल श्री गुर रामदास प्रसंग बरननं नाम तीन बिसती अंशु ।। २३ ।।

———

1. एक प्रकार का रत्न।

अंशु २४

श्री रामदास बैकुंठ गमन प्रसंग

दोहरा

लखि त्यारी सतिगुरू को तबि भानी बडिभाग ।
हाथ बंदि बंदन करी उर उमगा अनुराग ॥ १ ॥

चौपई

सरब रीति समरथ सुख दाते । जिन बडिभाग तिनहु तुम जाते ।
हलत पलत नहिं होहु सहाई । जिम चाहो तिम ठरहु गुसाईं ॥ २ ॥
मैं रावर के संग सिधारौं । तुम बिन नहीं जीवबो धारौं ।
राग द्वैख बड हरख रु शोक । इन जुति बसिबो है इस लोक ॥ ३ ॥
सुत प्रिथीआ उतपात उठै है । देखति दुख, मेरो मन पैहै ।
अति अनंद महिं बास तुमारो । बसौं संग मैं चित निवारो ॥ ४ ॥
सुनि भानी ते कोमल बानी । रामदास सतिगुरू बखानी ।
महांजसे सुनि भाग महांनी । अपर न त्रिय को तोहि समानी ॥ ५ ॥
श्री गुर अमरदास पित जिस के । कौन पटंतर कही अहि तिसके ;
पुन तुव पर प्रसन्न हम रहे । मांनहिं तथा जथा बच कहें ॥ ६ ॥
श्री अरजन भा पुत्र प्रबीना । सोढी कुल जिन उज्जल कीना ।
राखी गुरता केरि जिठाई । अपर बंस ते राखि हटाई ॥ ७ ॥
तेरो सफल जनम जग भइऊ । करिबे उचित सकल करि लइऊ ।
कितिक दिना तव स्वास सरीर । परारबध भोगो धरि धीर ॥ ८ ॥
पुन सुखेन ही तन को त्याग । आइ मिलहिं हम सों, बडभाग ।
हरख शोक अरु राग जु द्वैष । अबि ते तोहि न होहि अशेष ॥ ९ ॥
इम धीरज दे करि सुख रास । देख्यो दिश बुड्ढे गुरदास ।
श्री अरजन हित कहि सभि ही को । बहुर गुरू सोढ़ी कुल टीको ॥ १० ॥
रच्यो कुशासन पर थित ह्वै कै । पौढे मुख को छादन कै कै ।
ज्यों गज फूलमाल को डारे । त्यों तन तजि बैकुंठ पधारे ॥ ११ ॥

अग्र पुरोगम सुर सभि आए। ब्रह्मा, नारद, शंभु सुहाए।
भयो प्रकाश अकाश बिसाला। बहु बिमान दीपति मणि माला ॥ १२ ॥
धनद, बरुण, सभि लोकनि पालक। देव अनिक आए ततकालक।
जै जै शबद सुरन महिं होवा। करति कुलाहल मंगल जोवा ॥ १३ ॥
उतसव करहिं अनेक प्रकारे। भरि भरि फूलन अंजुल डारे।
जहिं कहिं बहु सुगंधि बिसतारी। बिसमै भए हेरि नर नारी ॥ १४ ॥
बापी पास नरन समुदाइ। संगति सुनि आई उमडाइ।
धंन गुरू गति जाइ न जानी। तन सुछंद त्याग्यो गुन खानी ॥ १५ ॥
हाहाकार सभिनि महिं होवा। प्रेमी सिख्यन को गन रोवा।
सिमरि सिमरि गुर के उपदेश। मम पाछे हुइ शोक न लेश ॥ १६ ॥
पठन कीरतन श्री सतिनामु। करहु भजन मिलि कै नर ग्राम।
स्याने सिख बरजें कहि बानी। गिरा गुरू की करैं बखानी ॥ १७ ॥
धरी धीर भानी नहिं रोई। बैठी पती सओपी होई।
निकट हुते इक दिश जुग भ्राता। दिस दूसर श्री अरजन ताता ॥ १८ ॥
तूशनि ठानि रिदे बिसमाए। उठि वूड्ढे इम बाक अलाए।
बैठन क्यों बनि है इस काला। होइ उचित क्रित करहु बिसाला ॥ १९ ॥
हुतो दरस गुर पाछल समो। पिखे सुने करि लीनसि नमो।
अबि इन के तन को ससकार। करहिं होहिं श्री अरजन त्यार ॥ २० ॥
सकल वसतु को करहु सकेला। सगरे सिख संगति करि मेला।
बहु कंचन के कुसम घरावहु। जव, तिल, चंदन, घ्रित अनावहु ॥ २१ ॥
बहु धन संग बिमान बनावहु। शमंवार बहु मोल लिआवहु।
काशट संचै नर लै जावहु। तीर विपासा पास पुचावहु ॥ २२ ॥
जहिं श्री अमरदास को मंदर। सभि को रुचहि सु थल है सुंदर।
सुनि ब्रिध ते उठि करि ततकाला। तुरत मोहरी ले नर जाला ॥ २३ ॥
इक इक सेवा पर नर गन को। करे खरे कहि कहि सभिहिनि को।
आपु आइ ब्रिध के संग मिलि कै। श्री अरजन के संग सु रलि कै ॥ २४ ॥
दधि सों शमस सु केस पखारे। बिमल नीर मज्जे अंग सारे।
सुंदर नसत्र ववीन वनाए. सरन अंग महिं ले पहिराए ॥ २५ ॥
तवि लग आइव रुचिर बिमाना। रच्यो रुचिर शुभ अंबर ताना।
फूलन माल विसाल बनाई। चहुं दिश महिं जिस के लटकाई ॥ २६ ॥

महां सुगंधि उलीचन करे[1]। ल्याइ उतार्यो तिस थल तरे।
तबि उठाइ सतिगुर पौढाए। पशमंबर को ऊपर पाए॥ २७॥
सिख संगति मिलिकै समुदाए। अंजुल फूलनि के बरखाए।
जै जैकार ऊच धुनि होवा। मनहुं बिमान सुरग को जोवा॥ २८॥
श्री अरजन को आगै करे। लीन उठाइ कंध पर धरे।
करैं अपनपौ सफल बिशाला। लगे बिमाड साथ सिख ज़ाला॥ २९॥
चामीकर[2] के कुसम बनाए। लाजा महिं मिलाइ बरखाए।
अपर दरब ऊपर बहु डारति। श्री सतिगुर जी धंन्य उचारति॥ ३०॥
बहु बिराग पठिबे जिन आवति। सो तबि शबद रबाबी गावति।
खरे होइ पौरी जबि लावति। देति दरब तिन आगे जावति॥ ३१॥
संगति संग हज़ारहुं चालति। लाजा, फूल, दरब को डालति।
चमर चारु ढीरति दिश दोइ। ऊजल मनहुं हंस ही होइं॥ ३२॥
श्री गुर अमर देहुरा जहां। इम करते पहुंचति भे तहां।
प्रेम अधिक श्री सतिगुर केरा। सभिनि बिलोचन ते जल गेरा॥ ३३॥
तीर बिपासा पास उतारे। चहुं दिश महिं नर गन पधारे।
ब्रिद संख बाजति बहु बारी। सभि मिलि करि तहिं चिखा[3]-सुधारी॥ ३४॥
बहु चंदन ते ऊची करिकै। सतिगुर को सरीर बिच धरिकै।
श्री अरजन लै अगनी हाथ। लाइ तबै रोदन के साथ॥ ३५॥
जबि ऊचे सतिगुर सुत होवा। मानी आदि सभिनि ने जोवा।
प्रेमा तुर हुइ आंसू छोरे। शोक बिखै सभि के मन तोरे॥ ३६॥
वसत्रनि साथ पौंछबो करैं। मुख परिपुलत द्रिगुन जल ढरैं।
ब्रिध ने भन्यो देखि करि नैना। 'सिमरहु कियों नहिं सतिगुर बैना॥ ३७॥
इन के पाछै करहु अनंदा। कथा कीरतन भजन मुकंदा।
जिस ते हुइ सभिहिनि कल्यानु। करन उचित इम जो हित मान॥ ३८॥
सभिहिनि सों कहि धीरज दीन। दीन मने बहु शोक अधीन।
श्री अरजन मन मानि प्रबीना। उठ्यो कपालक्रिआ तबि कीना॥ ६९॥
गुर सरीर नीके ससकारा। हेरि बिबासा रुचिर किनारा।
श्री अरजन को करे अगारी। आइ शनाने निरमल बारी॥ ४०॥
ब्रिध के संग तिलांजुलि दीनी। पितु को नाम सिमरि बिधि कीनी।
सनै सनै सभि ही पुरि आए। बैठे तीर बापिका जाए॥ ४१॥

1. छिड़कवाई। 2. सोने के। 3. खीलें आदि। 4. चिता।

मानव को समुदाइ महांना। सिमरि सिमरि गूर के गुन नाना।
सुजस करहिं बहु आपस महीआ। 'परउपकार हेत तन लहीआ ॥ ४२ ॥
जिम लोकन के भागन कारन। नभ घन बिदतहि तजि जल धारन।
सभि को हित करि बहुर समावहिं। तिम सतिगुर तन धरि जगु आवहिं ॥ ४३ ॥
सिक्खयन को करिकै कल्याना। गमनहिं बहुर बिकुंठ सथाना।
इत्यादिक सिक्ख स्याने कहि कहि। श्री अरजन की दिश सभि लहि लहि ॥ ४४ ॥
भानी भरजाई अनि संग मिलि मिलि। अपर अनिक तिय आवनि चलि चलि।
रुदन करति हैं सगरी पुन पुन। बार बार सतिगुर के गुन गुनि ॥ ४५ ॥
उर धीरज को भानी धरि धरि। गुर मूरति को चितवन करि करि।
शांति मती करि कै थिर सोई। पति के ध्यान पराइण होई ॥ ४६ ॥
इसत्री पुरख आइं बहु तेरे। श्री अरजन डिग बैठि घनेरे।
बंदन करि निज सदन सिधावहिं। इस प्रकार आवहिं इक जावहिं ॥ ४७ ॥
ग्राम नगर जहिं जहिं सुधि होई। सिख संगत पहुंचहिं सभि कोई।
मिलि मिलि सगरे सदन सिधाए। गोइंदवाल भीर समुदाए ॥ ४८ ॥
द्यौस तीन इस रीति बिताए। शबद कीरतन ह्वै अधिकाए।
बीच मोहरी ब्रिध आदिक गन। बैठति हैं लै करि श्री अरजन ॥ ४९ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे **'श्री रामदास बैकुंठ गमन'** प्रसंग बरननं नाम चतुर बिंसती अंशु ॥ २४ ॥

अंशु २५

प्रिथीआ सुलही मेल को प्रसंग

दोहरा

सोरह सत अठतीस महिं पावसु भाद्रों मास ।
तीज द्योस पख चांदनो तज्यो देहि गुनरास ॥ १ ॥

चौपई

तिसते चउथे दिन मिलि सारे । गमने जहिं सतिगुर ससकारे ।
तिस थल भसम रास का हेरे । श्री अरजन लोचन जल गेरे ॥ २ ॥
श्री गुर पिता आसरा मोरा । द्रिशटि न परति अबहि कित ओरा ।
रह्यो इकाकी बिन अविलंबा । भ्राता चितवति खोट कदंबा ॥ ३ ॥
अपर नरन सम करति ब्रिलापा । दिख्यो मोहरी करति संतापा ।
धीरज दियो बाक म्रिदु कहे । सतिगुर पूरन जहिं कहिं अहे ॥ ४ ।
धरि शरधा चितवहि जहिं कोई । आनि सहाइक तिहं ठां होई ।
अपर नरन को करि दिखरावो । सो सरूप तुम आप कहावो ॥ ५ ॥
सरब भाँति की शकति धरंते । सिक्खन सदा सहाइ करंते ।
इत्यादिक कहि धीरज दीने । पुन मिलि गुरू फूल सभि चीने[1] ॥ ६ ॥
सरब क्रिआ करि आछी भांति । आए पुरि, कहि जसु अवदाति ।
श्री अंम्रितसर को नर गयो । प्रिथीए सभि ब्रितांत सुनि लयो ॥ ७ ॥
इक निस बसि कै गोइंदवाल । तनु तजि, गए बिकुंठ क्रिपाल ।
श्री अरजन कर निज ससकारे । अपर क्रिया कीनस हित धारे ॥ ८ ॥
चित चटपटी सुनति हुइ आई । चढ़्यो तुरंग पंथ पग पाई ।
करमो आदिक की करि त्यारी । गमनी मारग सकल पिछारी ॥ ९ ॥
गोइंदवाल पहूच्यो आई । देखे लोक मिले समुदाई ।
महांदेव है संग सु आयो । उतरे बहिर, नीर द्रिग छायो ॥ १० ॥
छल ते रोदति क्रोध बधायो । सभिनि सुनावति ऊच अलायो ।
गुरता तिलक भलो इन पायो । दुई दिन बिते न बिसु को ख्वायो[2] ॥ ११ ॥

---

1. चुने । 2. विष खिला दिया है ।

पुजवावन को लालच करि कै। मार्यो पिता कपट को धरि कै।
इस बिधि ते नहिं गुर बन जै है। घोर पाप को फलु इहु पैहै॥ १२॥
वसतु पाइ जो हुइ अधिकारी। इही रीति है सकल मझारी।
पित अरोग बलवान अछेरे। अति प्रसन्न मनु तनु तिस बेरे॥ १३॥
आवति इक दिन महिं क्या होयो। बिख बिन म्रितु कारन नहिं कोयो।
ब्रिध आदिक पक्खी इस भए। किस को त्रास नहीं मन कए॥ १४॥
तबै मोहरी ने तिह कह्यो। कारन बिना क्रोध किम लह्यो।
मिलहु सभिनि महिं म्रिदुल उचारि। होहि इकाकी करि लिहु रार॥ १५॥
मधुर बाक ते बरजन कर्यो। द्रिग जल ढर्यो कपट को भर्यो।
महांदेव ने पुन समझायो। उचित बोलिबो तुझ बनि आयो॥ १६॥
दूर दूर के नर सुनि करिकै। क्या कहि हैं तुव बाक सिमरि कै।
श्री अरजन सुनि तूशनि ठानी। उर सीतल तिन आतम ग्यानी॥ १७॥
बहु लोकन तिह को समुझावा। रह्यो तहां बड चिंत उपावा।
लै हों पाग सभिनि ते इहां। यांते रहति भयो दुखि महां॥ १८॥
इस बिधि बसिकै गोइंदवाल। द्वादश दिवसन को तहिं टालि।
त्रौदसमों महिं क्रित सभि कीनि। जथा जोग जैसे कहि दीनि॥ १९॥
तबै मोहरी मिलि सभि संग। कह्यो बंधावन पाग प्रसंग।
श्री गुर रामदास जिम भाखा। हम तो करहिं तथा अभिलाखा॥ २०॥
ब्रिध ने भन्यो 'गुरू जिस आइसु। तुमहि उचित पित थान बिठाइसु।
श्री गुर अमर अंसु तुम अहो। जथा जोग कीजै जिम लहो॥ २१॥
बहुर मोहरी सुनि कै कह्यो। नीके तथा, जथा तुम लह्यो।
तऊ सु प्रिथीआ बड हंकारी। दरब अधिक ते गरबति भारी॥ २२॥
बुरो परहि सभिहिनि के संग। कहिन कठोर सुभाइ कुढंग।
द्वैश रचहिगो संग हमारे। इही लहैगो इनहिं बिगारे॥ २३॥
यांते बैठो सभा लगाइ। पूरब लखीअहि तांहि सुभाइ।
किम बोलहि पारुख करि लीजहि। बहुरो पाग बंधाइ थपीजहि॥ २४॥
द्वैशी महां न म्रिदुल सुभाऊ। परजस ते अतिशै तपताऊ।
इम बिचारि बापी दरबार। बैठे लघु बड सभा मझार॥ २५॥
श्री अरजन प्रिथीआ तबि आइव। महांदेव तहिं आन थिराइव।
ब्रिध आदिक सिख जे समुदाए। सकल हकारे तहिं चलि आए॥ २६॥

---

1. कठोर, प्रिथीआ। 2. क्रुद्ध होकर, रुष्ट होकर।

कह्यो मोहरी 'बड बच लीका। चहीअहि सभिनि लखहिं तिह नीका।
अबि जिम मति होवहि सभि ही का। उचित जान करी अहि शुभ टीका ॥ २७ ॥
सिख सेवक सनबंधी सारे। जिम आछो तिम करहु उचारे।
सुनि प्रिथीआ नहिं सक्यो सहारा। खुनस्यो मुख ते करति उचारा। २८ ।
सुमतिवंत[1] तुम क्यों न बिचारो। अधिकारी को हेरि उचारो।
करे क्रोध जे पित कहि दीनो। बडो अलप किम ह्वै चित चीनो ॥ २९ ॥
जे करि तुम मिरजाद बिगारो। अपनी संतति ओर निहारो।
सभि कै बिगर जाइ कुल रीति। होहि सुछंद चलहि बिप्रीत ॥ ३० ॥
पुन ब्रिध अपर मोहरी भन्यो। श्री गुर वाक भलो तुम सुन्यो।
हम तो नहि उलंघ तिह सकि हैं। अपर करन तकि कै सभि जक[2] हैं ॥ ३१ ॥
इम कहि पाग हाथ महिं लीनि। श्री अरजन को दोनहुं दीन।
म्रिदुल सुभाउ पिता अनुकूला। हरख शोक को नास्यो मूला ॥ ३२ ॥
कर्यो बिचार-पाग महिं क्या है। मिटत न किमु जो पिता किया है।
तिन की बखशिश सदा सथिर है। छीनी जाइ, न लगि तसकर है ॥ ३३ ॥
कोटि उपाइ करे नहिं जाइ। जो करते दीनसि रंग लाइ।
नाहक कलह उठावहिं काहि। इम बिचार करि कै चित मांहि ॥ ३४ ॥
पाग गहे बंदे जुग हाथ। सम चित नित श्री अरजन नाथ।
कहति भए 'बड भ्रात हमारे। हम अलंब रहिं सदा तुमारे ॥ ३५ ॥
छिमहु क्रोध अरु बैर तिआगहु। हितू जानि अपने, अनुरागहु।
पित संमत सभि ने इहु पाग। मोकहु अबहि बंधावन लाग ॥ ३६ ॥
जेकरि[3] अपनो रोस निवारहु। लेहु पाग सिर ऊपर धारहु।
बैर न कीजहि बहुर कदाई। प्रतिपारहु लखि कै लघु भाई ॥ ३७ ॥
इम सुनि सभि को देखति लै कै। सिर पर पाग बंधी हरखै कै।
मान्यो मन महिं—मैं गुर भइऊ। निज अधिकार बिचारति लइऊ ॥ ३८ ॥
तूशनि रहे देखि क्रित तांही। अरजन गुरू-लखहिं मन मांही।
पुन अपने अपने सभि थान। करहिं सराहन गुननि महांन ॥ ३९ ॥
निरहंकार शांति चित धीर। हरख शोक नहिं लेश, गंभीर।
सकल गुनन ते जान्यो नीका। पित ने परख कीन तबि टीका ॥ ४० ॥
अगले दिवस संगतां आई। रीति अनेक उपाइन ल्याई।
सभि ब्रितंत सुनि निरने कीनि। श्री अरजन कउ सतिगुर चीनि ॥ ४१ ॥

1. बुद्धिमान्। 2. डरते हैं। 3. यदि।

ब्रिंद अकोरन अरपि अगारी। सभि संगति ने बंदन धारी।
मनो कामना पावन करिहीं। रामदास गुर इही-निहरिहीं ॥ ४२ ॥
हेरि हज़ारन धन को आइव। जर्यो न प्रिथिआ जर्यो रिसाइव[1]।
रह्यो उपाइ करति बहुतरे। को सिख सेवक गयो न नेरे ॥ ४३ ॥
दिवस आगले पुन सिख आए। देखि प्रिथम जिउं तिन अरपाए।
दूर दूर की संगति आवहि। श्री अरजन को सीस निवावहि ॥ ४४ ॥
कितिक दिवस देखति दुख होवति। अपनो महां अनादर जोवति।
दोष मोहरी आदिक केरा। ब्रिध आदिक सिख केर घनेरा ॥ ४५ ॥
जरति रिदै नहिं चलति उपाई। मो ढिग भेट एक नहिं आई।
सिक्ख संगति को इहु भरमावैं। श्री अरजन को कहि पुजवावैं ॥ ४६ ॥
मुझ आछो नहिं इहां बसावौं। जाउं सुधासर बिखै पुजावौं।
इम बिचारि दुख पाइ घनेरा। श्री अंम्रितसर गमन्यो फेरा ॥ ४७ ॥

जहांगीर पतिशाह भयो है। सुलही तिह उमराव कियो है।
सो माझे महिं चलि करि आयो। लशकर महां संग महिं ल्यायो ॥ ४८ ॥
प्रिथीआ बिन पूजन दुचिताई। सुलही आवन की सुधि पाई।
बड समाज करि मिल्यो सु तांहि। वसतु अमोलक दै करि वाहि ॥ ४९ ॥
श्री नानक गादी पर हम हैं। सकल मुलख के मालिक तुम हैं।
मुलाकात कीनसि चित चहिकै। बनहि सहाइक कवि इम लहि कै ॥ ५० ॥
सुनि सुलही ने बहु सनमाना। श्री नानक जग पीर महांना।
निज मुराद हम तुम ते पावहिं। करहिं बंदगी सेव रिझावहिं ॥ ५१ ॥
इमि कहि तिन तुरंग इक दीना। रजत शिंगारति सुंदर ज़ीना।
अपर दरब अरप्यो कुछ आगे। हित करि मिले अंग संग लागे ॥ ५२ ॥
पुन प्रिथीए ने कहि म्रिदु बोला। सिरेपाउ दीनस बहु मोला।
कहि करि कीन सथापन दोऊ। देन लेन करि हित मैं सोऊ ॥ ५३ ॥
सुलही संग तुरक जे और। जिन सों परच रहति सभि ठौर।
हितू हुते, तिन को तिस काला। सिरेपाउ अरु दरब बिसाला ॥ ५४ ॥
देकरि प्रिथीए ने अपनाए। लेकरि सरब रिदे हरखाए।
करहिं सिफत सुलही के तीर। प्रिथी चंद आछो गुर पीर ॥ ५५ ॥
तीन दिवस लग मिलि ते रहे। तबि सुलही आदर करि चहे।
जो तुव कारज होइ सु करहूं। सुधि जबि देउ सदा अनुसरि हूँ ॥ ५६ ॥

1. रोष से जल गया।

म्रितु काज मै अपनो जानौं। जहांगीर ते तुव सनमानौं।
कहि प्रिथीआ 'बखशे गुर पीर। तुम पर मम बिसवास गहीर ॥ ५७ ॥
सभि कारज के लाइक आप। अपर नहिं मुझ को संताप।
अरजन अनुज लीन अधिकारा। अरपहि धन संगति तिस सारा ॥ ५८ ॥
तिह के संग बाद है मेरा। होइ परहि कबहूं बड झेरा।
तबि मैं तुमरी चहहुं सहाइ। अपर नहीं को मुझ दुखदाइ ॥ ५९ ॥
सुलही कह्यो 'नचिंत रही जहि। जिम तुम चहो तथा कहि दीजहि।
परहि काज कुछ तेरो आइ। सरब सवारौं मैं बल लाइ ॥ ६० ॥
इमि आपस महिं कहि सुनि करिकै। सुलही बिदा भयो तबि चरिकै।
बहु धन खरच तुरक अपनायो। नहिं मो समु को उर गरबायो ॥ ६१ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'प्रिथीआ सुलही मेल को' प्रसंग बरननं नाम पंच बिंसती अंशु ॥ २५ ॥

————

अंशु २६

भाई गुरदास प्रसंग

दोहरा

श्री अरजन गुरता लए होई शकति बिसाल।
नौ निधि, रिधि, सिधि अशट दस आगै थिति सभि काल ॥ १ ॥

चौपई

तीन लोक महिं अस नहिं कोई। चहैं जु करैं हटावैं जोइ।
इंद्र समेत देवता सारे। रहहिं सदा आइसु अनुसारे ॥ २ ॥
जिस को चहहिं नरक महि पावहिं। नरक बिखै ते सुरग पुचावहिं।
महाराज पद बखशहिं रंक। रंक करहिं राजा भूबंक ॥ ३ ॥
कहहिं बचन जीवति को मारहिं। मरते कौ ततकाल उबारहिं।
रिस प्रसन्नता सफल बिसाला। नाशनि बखशनि है ततकाला ॥ ४ ॥
इम समरथता कहां छुपाई। अनिक हेत ते ह्वै बिदताई।
सिख सेवक परखहिं बहु भांती। सभि घट घट की जानहिं बाती ॥ ५ ॥
अजमत जुति सिख केतिक अहैं। गुरू सरूप रिदै सभि लहैं।
करहिं बंदना सेवहिं पास। खरे होइ बोलैं अरदास ॥ ६ ॥
रामदास गुरु सुनहिं चलाना। संगति आइ भेट ले नाना।
दरशन करहिं भावना पावहिं। गुन गन गावति सदन सिधावहिं ॥ ७ ॥
देश विदेशन भे बख्यात। गादी पर बैठे लघु तात[1]।
श्री नानक की जोति बिलंद। महिद बिराजति अरजन चंद ॥ ८ ॥
श्री अम्रितसर प्रिथीआ रह्यो। मैं गुर बन्यो बहुत ही कह्यो।
तऊ न पूजा कोइ चढावहि। नहीं जाइ करि सीस निवावहि ॥ ९ ॥
बहुत बिसूरति[2] करति उपाइ। संगत पर कुछ बस न बसाइ।
श्री अरजन जी गोइंदवाल। केतिक मास बसे सुख नाल ॥ १० ॥

---

1. छोटे पुत्र। 2. दुखी होना।

श्री गुर रामदास गुरदास। पठ्यो आगरे संगति पास।
सो भी त्यार होइ चलि पर्यो। सुनि परलोक पआना[1] करियो ॥ ११ ॥
गुर दे दिजन दान बहुतेरा। जाचक त्रिपत करे तिस वेरा।
कलप तरु अनुमानति कोई। कैं चिंतामनि कै बपु होई ॥ १२ ॥
गोइंदवाल निकट जे ग्राम। सुनि जाचक आए तजि धाम।
मन वांछत सभि ले करि गमने। सरब करति जसु निज निज भवने ॥ १३ ॥
हेत पिता बहु दीनसि दान। कीरति पसरी बिदत जहान।
पुन श्री अरजन रिदे बिचारा। पिता नगर बसिबे हित धारा ॥ १४ ॥
नाने को इस थल परवार। बसहु सुखी नित बधहु उदार।
बसिबो इहां अजोग हमारो। संगति दिन प्रति आइ हज़ारों ॥ १५ ॥
खेद होति सभि ही बिधि जान्यो। चलन सुधासर को हित ठान्यो।
मोहन अपर मोहरी साथ। नमो ठानि श्री अरजन नाथ ॥ १६ ॥
कह्यो पिता की आइसु मोहि। कार सुधासर करिबे जोहि।
तहां पहुंचि हम चहति कराई। इम कहि मातुलु आग्या पाई ॥ १७ ॥
त्यारी करी सगल संग मिले। चढि वाहनि पर मारग चले।
निस इक बसिकै पंथ मझारा। पहुंचति भे सतिगुरू उदारा ॥ १८ ॥
पिता सथान माथ को टेका। निज ग्रिह प्रविशे जलधि बिबेका।
बसन लगे श्री अंम्रतसर मैं। सिमरहिं सतिगुर आग्या उर मैं ॥ १९ ॥
संगति सकल आइ करि पास। अरपहि भेट करहि अरदास।
नगर आगरे ते करि बास। संगति ब्रिंद संग गुरदास ॥ २० ।
गुर दरशन के कारन आवति। प्रेम सहत शबदनि को गावति।
संगत मिलहि कीरतन करे। श्रमत होइ टिक हैं निस परै ॥ २१ ॥
प्रिथम जाम अरु पाछल जामू। गावति संगति कीरति नामू।
पंथ चलति मिलि किरतन करैं। सतिगुर प्रेम महां उर धरैं ॥ २२ ॥
इम दिन प्रति संगत चलि आवति। मुखि गुरदास सभिनि हरखावति।
तीर बिपासा के तबि आए। जल गंभीर थाह नहिं पाए ॥ २३ ॥
निकट तरी नहिं उतरहिं पार। ठांडे हेरहिं नदी किनार।
बसहिं जामनी जे इस थान। आवहि नौका प्राती जान ॥ २४ ॥
सकल वसतु ते रहि औखाई[2]। संगति सगरी श्रम को पाई।
एव बिचारति उर गुरदास। इक सिख पठति हुतो थित पास ॥ २५ ॥

श्री मुखवाक :—

गुर का बचनु बसै जीअ नाले।
जलि नही डूबै तसकरु नही लेवै भाहि न साकै जाले ॥ १ ॥ रहाउ ॥

1. गुरु रामदास के परलोक गमन का समाचार सुन कर। 2. कठिनाई।

चौपई

सुनि गुरदास बिचारति रिदै । गुर समुझाइ न डूबहि कदै ।
शबद आसरे होवहु पार । इम निशचा सतिगुर को धारि ॥ २६ ॥
सभि संगति को कहा बुझाई । 'हम हैं, मुगध बूझ नहिं पाई ।
भव जल गुर को शबद उधारै । इह बपुरी क्या नदी न तारै ॥ २७ ॥
धरि शरधा गुर को बचु मानो । उतरहु पार बिलमु नहिं ठानो ।
'सत्तिनाम' गुरदास उचारा । प्रथम प्रवेश्यो नदी मझारा ॥ २८ ॥
जानू लग जल भा सलिता को । संगति सगल देखि करि तांको ।
सत्तिनाम को उचर्यो आछे । गमन कीन गुरदासहिं पाछे ॥ २९ ॥
कट लग जल किस के नहिं आयो । संगति सकल पार उतरायो ।
गुर को शबद कर्यो बड बेरा[1] । भए पार सगरे बिन बेरा[2] ॥ ३० ॥
सभि के अति निशचा उर भयो । शबद आसरा द्रिड मन कयो ।
गोइंदवाल पुरी महिं आए । सिस श्री अमर अंस समुदाए ॥ ३१ ॥
खेलति मिले परसपर सोऊ । बालिक खेल होति है जोऊ ।
किसी बात पर बाक अलावें । हुई है इम जे सतिगुर भावैं ॥ ३२ ॥
सुनि कै मन गुरदास बिचारा । गुर भाणा उर इन ने धारा ।
यांते इह बालक गुर रूप । बोलति निशचै बाक अनूप ॥ ३३ ॥
द्वै कर बंदि बंदना ठानी । धंन धंन इन गुरमति जानी ।
कीनसि निस बिस्राम सु नगरी । सिमरि सतिगुरू संगति सगरी ॥ ३४ ॥
प्राति उठे वापी इशनाने । अमर अंस को वंदन ठाने ।
सुनी कुमति प्रिथीए की कान । कीनि सुधासर को प्रसथान ॥ ३५ ॥
इक निस बसि पहुंचे तहिं जाई । तबि गुरदासु रिदै ठहिराई ।
निशचै श्री अरजन गुर भयो । तऊ मनोरथ ऐसे कयो ॥ ३६ ॥
गुर भाना जान्यो जिन बालिक । मैं तिन को वंद्यो ततकालक ।
बिना भने इहु सकल प्रसंग । जे करि बूझहिंगे मुझ संग ॥ ३७ ॥
तौ जानहुं मैं गुर इहु भए । श्री नानक पंचमु तन लए ।
एव मनोरथ करि उर मांही । डेरा कीन सुधासर पाही ॥ ३८ ॥
निस बिताइ कीनसि इशनाना । सभि संगति ले वसतू नाना ।
श्री अरजन सोहति जिस थाइं । जाइ सभिनि बंदे तिन पाइ ॥ ३९ ॥
अरपी पुंज अकोर अगारी । दरशन ते प्रापति सुख भारी ।
प्रेमानंद रिदे भरि आए । गुर रवि पिखि द्रिग कंज खिराए ॥ ४० ॥

1. बेड़ा, 2. बिना देर के, शीघ्र ।

गुरमुख ससि, चकोर चख करे। इक टक अवलोकति सभि खरे।
गुर क्रिपाल लखि प्रेमु बिसाला। खुशी करी सभि पर तिस काला ॥ ४१ ॥
आइसु दे करि सभि बैठाए। मन बांछत संगति बरु पाए।
सहिज सुभाइक बाक बिलास। बूझ्यो गुर 'सच कहु गुरदास ॥ ४२ ॥
बालिक ब्रिंद खेलते' जहां। तैं आवति देखे जबि तहां।
सभि को तबि प्रनाम जो कर्यो। कौन ग्यान मन मैं शुभ धर्यो ॥ ४३ ॥
सुनति प्रसन्न भयो गुरदास। बहुत भांति की सतुति प्रकाश।
गुर चारन महिं जोति बिसाल। सो अबि रावरि बिखै क्रिपाल ॥ ४४ ॥
स्वामी सरब घटन के मालक। क्या मैं कहों ब्रितांत सु बालिक।
आपस महिं बोलति इस भाइ। गुर भावै तौ इमु हुइ जाइ ॥ ४५ ॥
सुनि तिन ते मैं रिदै बिचारा। गुर भाणा इन मन महुं धारा।
इही संत गुर मुख गुर रूप। पर्यो चरन महिं जानि अनूप ॥ ४६ ॥
पुन श्री अरजन भए प्रसंन। धंन गुरदास सिक्ख तूं धंन।
गुरमति गुर करुना ते प्रापति। प्रेम सहत मेरो जपु जापति ॥ ४७ ॥
करि निशचै गुर शबद घनेरा। नदी पार प्रापति बिन बेरा।
करन करावन जानहि मोहि। तिसको बिघन कहो किम होहि ॥ ४८ ॥
तुम अभेद करि मो कहु जान्यो। शरधा ते निशचा दिढ ठान्यो।
रहु हम पास सदा मम प्यारे। बडे भाग अबि उदे तिहारे ॥ ४९ ॥
पठन लिखनि की कार संभारहु। गुर घर की सेवा हित धारहु।
संगत महिं मसंद हुइं और। तुम नित रहहु हमारी ठौर ॥ ५० ॥
सुनि गुरदास बंदना कीनि। जिउं आग्या तिउं करौं प्रबीन।
अबि तुम मोकहु आग्या दीजै। गोइंदवाल होइ आवीजै ॥ ५१ ॥
सुनि कै सतिगुर भए दयालू। जावउ फिर आवउ ततकालू।
ऐसे सुनति गयो ततकाल। रह्यो समा तिह ठां कुछ काल ॥ ५२ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' 'भाई गुरदास' प्रसंग बरननं नाम खशट बिंसती अंशु ॥ २६ ॥

———

अंशु २७

भाई गुरदास आवन प्रसंग

दोहरा

इक दिन गोइंदवाल ते भल्ले कुल गुरदास ।
चल्यो हेत दरशन गुरू उर महिं धरे हुलास ॥ १ ॥

चौपई

श्री गुर रामदास के नंदु । अहैं तीन, बड प्रिथीआचंद ।
महांदेव मद्धम सुत वहै । दुहन अनुज श्री अरजन अहैं ॥ २ ॥
किस बिधि बरतैं आपस मांही । प्रिथम द्वैष सम, कै अबि नांही ।
जबि के बैठे गुरता गादी । नहिं मैं कीनहुं कुछ संबादी[1] ॥ ३ ॥
कैसे अबि निबहे बिवहार । भई नवीन जिनहु की कार ।
प्रिथम इकत्र हुतो परवारू । अबि भे प्रिथक भ्रात रिस धारू ॥ ४ ॥
इत्यादिक गिनती करि चलियो । रामदास पुरि आइ सु मिलियो ।
पूरब श्री अरजन ढिगु आयो । जानि गुरू पद सीस निवायो ॥ ५ ॥
बैठ्यो निकट कुशल शुभ पूछा । कह्यो दुहन दिशा ते हित सूछा ।
श्री गुर अमरदास परवारू । कुशल सहत सभि 'कीन उचारू ॥ ६ ॥
मोहन दुतिय मोहरी चंद । संसराम तिन पुत्र अनंद ।
पतनी सहित रहति हरखाए । कुशल तुमारी चहिं समुदाए ॥ ७ ॥
बैठ्यो कितिक काल जबि बीता । करति बारता[2] को इस रीता ।
तिसही थल भोजन लै आए । जहिं श्री अरजन नर समुदाए ॥ ८ ॥
दुइ दुइ चनक रोटिका[3] दीननि । बरतति गुरू दास सो लीनसि ।
अपर न कुछ भा खैबे कारन[4] । खाइ सु कीनस बाक उचारन ॥ ९ ॥

दोहरा

संसारी सनबंध को जे करि करो बिचार ।
बडे थान तुम ते अहीं मातुल करहु उचार ॥ १० ॥

---

1. बात-चीत । 2. बात, वार्तालाप । 3. चने की रोटी । 4. खाने के लिये ।

दुतिय सबंध सुनी जीए जबि की गादी लीन।
भए प्रमेशुर रूप तुम सभि जगु गुरू प्रबीन ।। ११ ।।

चौपई

इसु बिध मैं हों सिख्य तुमारो। बंदनीय सभि के हित धारो।
चिरंकाल बीते मैं अयो। पूरब ही मिलिबो इहु भयो ।। १२ ।।
भगनी सुत अरु गुरू उदारा। मैं मातुल अरु सिख्य तुमारा।
कारन इते हुते मन चीनो। तऊ न सादर भोजन दीनो ।। १३ ।।
श्री अरजन सुनि कै मुसकाए। कह्यो कि परारबध जसु खाए।
तोर हदूर सभिनि इह लयो। किसू न छपि कै भोजन कयो ।। १४ ।।
जे करि चहति अधिक पहुनाई। अंतर सथित पठावति माई।
निज कर देग सकल वरतावहि। पाहुन हित सो असन पुचावहि ।। १५ ।।
हमरी माता भगनि तुमारी। मिलहु जाइ करि करहु उचारी।
इम सुनि श्री अरजन के पास। हाथ पखारे[1] तबि गुरदास ।। १६ ।।
चुरा कर्यो उठि अंतर गयो। देखी सुसा[2] प्रणाम सु कयो।
बैठी भानी देग सथाना। 'आवहु भ्राता थिरहु' बखाना ।। १७ ।।
मोहन अपर मोहरी जोई। सहत कुटंब कुशल हैं दोई।
तुम चिर महिं चलि करि इत आए। सुधि नहिं लई न अपनि सुनाए ।। १८ ।।
श्री अरजन पित बैकुंठ बासे। तबि के हम इस पुरी निवासे।
निता प्रति मिलिबो जिन केरा। होति अनंद सदीव बडेरा ।। १९ ।।
अबि कबि कबि तिनकी सुध होइ। ईशुर रची होति है सोइ।
सुनि कै 'कुशल' कही गुरदास। सभि अनंद जुति अपन अवास ।। २० ।।
मोहि मिले को भा चिरकाल। श्री गुर पीछे जिम अहिवाल।
हेरन हेत आवनो भयो। मिल्यो आइ करि उर बिसमयो ।। २१ ।।
भल्यन की कुल महिं उपजाई। यांते हमरी भगन लगाई।
श्री गुर रामदास संगि नाता। ब्याही ते होई जग माता ।। २२ ।।
माननीय हम को सभि भांती। बडि भागन जग महिं बख्याती।
पाहुन चारी मैं चलि आयो। चणिक रोटिका भोजन खवायो ।। २३ ।।
तुमरे घरि महिं बडि बडिआई। गादी मिली जगत गुरिआई।
तऊ न बनहि अहार चंगेरा[3]। कहां हाल होयहु घर केरा ।। २४ ।।
जहिं भोजन की चिंता रहै। धनु संग्रहि को किस बिधि लहै।
क्या कारन इस बिखै बतावहु। दारिद महिद कशट को पावहु ।। २५ ।।

1. धोए। 2. बहन। 3. अच्छा।

आवति संगति जगत मझारी। चारहुं दिश महिं बडी तुमारी।
तिह की आमदनी कित जात। संग्रहि करो किनहिं तुम खात॥ २६॥
तऊ पराहुन चारी आइ। तिस को तौ दिहु नीके खवाइ।
कै मम सम सभि के संग करो। असु अहार को आगै धरो॥ २७॥
श्री गुर अमरदास की तनीया। सुनि करि भानी बानी भनीया।
सुनहु भ्रात ! भोजन अस खावति। कहूं समै इहु भी नहिं पावति॥ २८॥
सदन पिता के पूजा आइ। जो इक दिन महिं लीजहि खाइ।
संजम भूखन बसत्रन केरा। जिउं तबि होति सरब तै हेरा॥ २९॥
तऊ देग महिं घाटो नांहि। आवहि तितो जितिक सभि खांहि।
बच्यो रहति सो पसुन खुवावैं। तिस ते बचहि सु नदी वहावें॥ ३०॥
पुन श्री अरजन के पित होए। पूजति चहुं दिश तें सभि कोए।
हुतो इकत्र सकल परवारू। चल्यो जात आछो बिवहारू॥ ३१॥
तिन पाछे इहु भ्राता तीन। भए बिरोधी मन रिसि लीन।
श्री अरजन को लघु इहु जानें। बिघन अनेक भांति के ठानें॥ ३२॥
सोढी कुल महिं गुरता राखी। नहिं जानें इम धन अभिलाखी।
आग्या महिं दोनो नहिं रहैं। पिता जान उचिता को चहैं॥ ३३॥
तिन के सम श्री अरजन करता। ले करि जात अपर को गुरता।
सेवक की इहु बसतु सदीवा। करि दावा को गुरू न थीवा॥ ३४॥
यांते श्री अरजन हित साजा[1]। राखि लई सोढी कुल लाजा।
मोर मनोरथ पूरन कीनि। मम पित बचन साच करि दीन॥ ३५॥
यांते धंन धंन लघु सुत को। कियो प्रसन्न सेव करि पित को।
जानि न दई कहूं गुरिआई। राखी अपने सदन टिकाई॥ ३६॥
अबि चित शांति बैठि इह रहैं। उद्दम करहिं न, सुनहिं न कहैं।
सो मम सुत दोनहुं बहु फिरि कै। संगति ते लेवहिं धन हिर कै॥ ३७॥
निज नर पठहि संगतां घेरहिं। करहिं जतन जबि आवति हेरहिं।
बडे पुत्र हम, गुर अबि भए। इम कहि सरब दरब निति लए॥ ३८॥
पहुंचन देति नहीं ढिग अरजन। लेति वहिर ते हित कै तरजन।
सदन रहैं बैठ्यो हरि भजैं। को इक सिख आन करि जजै॥ ३९॥
क्योंहू देति न दोनहुं भाई। वल छल ते रोकहिं चहुं घाई।
अपने सम भी नहिं इस जानहिं। नहीं बांट धन दें हित खानहि॥ ४०॥

---

1. प्रेम किया।

यांते असन बसन की चाहू। रहति सदा हमरे घर मांहू।
तुझ ते प्यारो हम को कौन। बहु दिन ते चलि आयहु भौन।। ४१ ।।
घर महिं होइ त तबहि अहारा। अहै खरच बहु भांति उदारा।
भ्राता हितु जान करि तोही। बात सुनाइ कही जिम होही।। ३२ ।।

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' 'भाई गुरदास आवन' प्रसंग बरननं नाम सपत बिंसती अंशु ।। २७ ।।

————

अंशु २८

संगति को गुर निसचे करनि प्रसंग

दोहरा

भानी भगनी ते सुनी सरब बारता जोइ।
चित महिं तरकति बहुतही—अति अजोग इहु होइ ॥ १ ॥

चौपई

शांति रूप श्री अरजन अहैं। काहू संग न कैस कहैं।
सो बल छल ते दरब हिरति हैं। गुर बन संगति अपनि करति हैं ॥ २ ॥
जबि गुरता को कारज होइ। सिख्यन की सहाइता जोइ।
पूरब तौ इस लोक मझारी। संकट परहिं आन कित भारी ॥ ३ ॥
सुत बित को बांछति है कोई। तबि इन ते बन सकहि न सोई।
सिक्खन बिखै अशरधा होइ। पूजनि ते हटि है सभि कोई ॥ ४ ॥
इम गुरता सिक्खी महिं घाटा। निबहि नइहु प्रपंच जो ठाटा।
गुरू गुपत रहिं, लखहि न कोइ। बिना मिले ते क्यों सुधि होइ ॥ ५ ॥
एव चितारति चित गुरदास। गुर के चक्क रह्यो गुर पास।
दोनहुं भ्रातन की खुटिआई। देखति भयो—करति अधिकाई ॥ ६ ॥
जरी न जाइ रिदै महिं सोई। दरब गिरहिं संगति ते दोई।
श्री अरजन सों इक दिन कह्यो। गुरिग्राई पद तुम नै लह्यो ॥ ७ ॥
पूजा सो करिवावति रहैं। निबहै किम तुम, कछु नहिं कहैं।
जागति जोति गुरू जिम पाछे। तुम भी बिदतहु तिन समु आछे ॥ ८ ॥
छपनि उचित इहु पदवी नांही। सिक्खी बिसतारहु जग मांही।
अजमति के बल लेहु अकोरु। गुर संगति अनगन चहुं ओर ॥ ९ ॥
मुझ मन महिं संसा इक और। रहैं भ्रात त्रै इम इस ठौर।
नहीं दरब ढिग आइ तुमारे। दारिद बरतहि सदन मझारे ॥ १० ॥
श्री गुर रामदास भगवंत। तुमको कह्यो समैं जबि अंत।
श्री अंम्रितसर कार करावहु। खनि को पौडी पक्व बनावहु ॥ ११ ॥
इम जे ब्रित्ति आपनी राखो। ताल बनावन किम अभिलाखो।
दरब हज़ारों लागहि जहां। कैसे होइ सकहि गो महां ॥ १२ ॥

उद्दम करि बिदतहु जग मांही। जिस ते सम भ्राता हुइं नांही।
श्री अरजन सुनि बोले बानी। त्रिशना अधिक दुहन मन ठानी॥ १३॥
दौरि दौरि रोकति धन जाइ। किम संतोख तिनहुं के आइ।
भनहिं कूर छल बल को ठानैं। निस बासुर द्वैशनि लपटानैं॥ १४॥
गुरता कछु धन हित नहि लीनी। त्रिशना करी चहिय मनु हीनी।
सरब बिकारन केरि बिनाश। क्यों हम करहिं दरब की आस॥ १५॥
सिक्खन के बिकार उर हरने। हुइ बिप्रीत जु हम सों धरने।
ताल आदि जे कारज सारे। श्री नानक सो निसु दिनु सारे॥ १६॥
जे तूं चहति करनि उपकार। सर लगबे ते नरन उधार।
तौ उद्दम करि हुइ सवधान। बनहिं सहाइक गुरु भगवान॥ १७॥
सुनि सगरी गुरुदास बिचारी। गिरा जथारथ इनहुं उचारी।
तिन के सभ क्रित इनहु न बनहि। सिक्खन के बिकार गन हननहिं॥ १८॥
त्रिशनक जिम[1] इहु कैसे पावहिं। सिक्खन को गुर हित बनि आवहि।
यांते मैं उद्दमु अबि धरौं। इह उपकार जगत पर करौं॥ १९॥
सभिहिनि कहु उपदेश बतावौं। नीकी रीति गुरू बिदतावौं।
चितवति इम चित महिं गुरदास। कर्यो बास श्री अरजनु पास॥ २०॥
केतिक दिवस बितीते जबै। पिखत लेति दोनहुं धन सबै।
इक दिन सुन्यो सिक्ख ते कान। संगति आवति चली महान॥ २१॥
रिदै बिचार कीन इम सोई। बैठे बनै न आवैं कोई।
द्वै तीनक ले करि गुर दास। तूशन ही गमन्यो गुरदास॥ २२॥
रामदास चक ते चलि गयो। पंच कोस पर इसथित भयो।
तहां चौतरा कीनि बनाइ। सेत बसत्र को भले बिछाइ॥ २३॥
पूजन थान बनायहु ऐसा। तिस के तीर तरे हुइ बैसा।
मोर पंख को मुठ्ठा धर्यो। गुरुता चिन्ह अपर कुछ कर्यो॥ २४॥
इतने महिं संगति गन आई। बूझत लगे 'कहां इस थाईं।
सुनि के तिनि ते तबि गुरु दास। सादर करे बिठावनि पास॥ २५॥
बिसरामहु संगमि इस थाई। जबि इकठि होईं समुदाई।
सभि सों मधुर गिरा के साथ। कहति भयो आइसु गुरु नाथ॥ २६॥
जो गुरू होति उपाइन ल्यायो। उर शरधा धरि दरशनि आयो।
सो इस थल अरपहु समुदाइ। पुन गुर ढिग चलीए हरखाइ॥ २७॥

1. तृष्णा वाले की तरह।

इस महिं कारण सो सुन लीजहि । पुन मन बांछति पूरन कीजहि ।
श्री गुर रामदास सुत तीन । गुरता गादी लघू असीन ॥ २८ ॥
शांति रूपि सो बैठे रहैं । नहिं किह सों कैसे बच कहैं ।
बडे भ्रात द्वै बल छल करैं । संगति ते सगरो धन हरैं ॥ २९ ॥
तहां पहुंचि जे तिन नहिं देवहु । गारी बकैं स्राप को लेवहु ।
कै तुम ते सो लै हैं छीन । करहिं रार लोभी दुख भीन ॥ ३० ॥
गुर के निकट न पहुंचन दै हैं । घात अनेकनि बात बने हैं ।
या ते मैं तुम को शुभ कहौं । पर उपकार हेत मैं चहौं ॥ ३१ ॥
सुनि संगति के निशचै भयो । बाक जथारथ इन कहि दयो ।
सभिहिनि मिलिकै आछो माना । दयो दरब जेतिक जिन आना ॥ ३२ ॥
सगरी संगति दई उपाइन । पुन देख्यो चहिं सतिगुरु पाइन ।
सभि को धीरज दे गुरदास । दरब बटोर लीन निज पास ॥ ३३ ॥
सभि ते आगू हुइ चलि परियो । संगति संग लीन हित धरियो ।
सनै सनै चलि कै पुरि आयो । श्री अरजनि ढिग दरशन पायो ॥ ३४ ॥
धर्यो पंच सै दरब अगारी । इहु लीजहि सभि आपनि कारी ।
संगति हेरि प्रिथीमल दास । भजे 'घेरि आनीअहि पास ॥ ३५ ॥
सिख अनजान मोर सभि लीजै । गुरु सुत बड को चलि दरसीजै ।
उत ते महांदेव न पठे । मुझ ढिग आनहुं करि एकठे ॥ ३६ ॥
संगति घेरि खरी करि लीनि । नहिं आगे को चलनिनि दीन ।
दुह दिश के दासंनि ते सूनि कै । गन सिक्खन समुझाए भनि कै ॥ ३७ ॥
जितिक कार गुर की हम पास । ले सभि गयो अबहि गुरदास ।
दरशन मात्र करन अबि रह्यो । सो हम करहिं गुरू जिमु लह्यो ॥ ३८ ॥
सुनि संगति को ताडति भए । गुरू की कार कुतो तिस दए ।
गुर गादी पर पुत्र बडेहो । पूजनीय सो संगति केरो ॥ ३९ ॥
नहिं परहै गुरू के परवान । तजि करि बडो दई लघु थान ।
अबि जो भई बीत सो गई । नहिं आगे करीअहि मति नई ॥ ४० ॥
प्रिथीचंद के थर चलि आईए । कह्यो किसू को मन नहि ल्याईए ।
इत्यादिक समुझाइ घनेरे । अपनी उसतति करति बडेरे ॥ ४१ ॥
छूछे सिख्य जानि जबि लए । घेरो कर्यो छोरि सभि दए ।
श्री अरजन के ढिग पुन आए । करि दरशन मन आनंद पाए ॥ ४२ ॥
भई कामना पूरन उर की । महिमा जानी श्री सतिगुर की ।
निरविकार मन शांति सरूप । दीपति मसतक जोति अनूप ॥ ४३ ॥

बदन अदीन[1] दीन गन दानी। सुंदर मधुर सुधा सम बानी।
त्रिशना आदि न लेश कलेशु। श्रेय देति जिन को उपदेशु॥ ४४॥
निशचै कर्यो—गुरू इहु अहैं। लोभी अपर दरब को चहैं।
सतिगुर रामदास निज थान। इही बिठाए क्रिपा निधान॥ ४५॥
भोले सिक्खन सो बिरमावैं। धन हित लै लै निज घर जावैं।
कोइ न गुन, किम करि हैं श्रेय। ज्यों क्यों सिक्खन ते धन लेय॥ ४६॥
इन महिं तिन सम नही बिकार। मूरति श्री सतिगुरु उदार।
जथा जोग श्री अरजन तबै। सादर कीन मिले सिख सबै॥ ४७॥
मोल न अन्न समुदाइ अनाइ। करि लंगर दीनसि बरताइ।
करी सकल गुरता की रीति। सिरोपाउ ले सिख सहि प्रीत॥ ४८॥
दरशन करि गमने निज देश। कीरति करति सुनाइ अशेष।
सिख संगति जहिं कहिं मिल जाइं। गुर श्री अरजन कहैं सुनाइ॥ ४९॥
कितिक देश पुरि ग्रामनि ब्रिंद। बिदति भए इम गुर जसु चंद।
सभि संगति आवति गुर पास। हाथ जोडि ठानति अरदास॥ ५०॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे संगति को गुर निसचे करनि प्रसंग' बरननं नाम अशट बिंसती अंशु॥ २८॥

———

1. उदार मुख।

अंशु २६

मिहरबान जनम प्रसंग

दोहरा

इम आन्यो धन को जबै करि उद्दमु गुरदास।
असन बसन सभि खरच जुति भयो अनंद प्रकाश ॥ १ ॥

चौपई

बहुरो देग चलन नित लागी। सिख ढिग रहिन लगे अनुरागी।
तिस ही विधि भाई गुरदास। रहति भयो श्री अरजन पास ॥ २ ॥
जबि संगति कितहूं ते आवहि। किसहूं सिख ते इह सुनि पावहि।
जाइ वहिर समझावहु करैं। 'गुर अरजन' इहु निशचै धरैं ॥ ३ ॥
लेवहि दरब सरब ही बाहर। कहि कहि करहि गुरू कउ ज़ाहर।
ले ले आइं अरपना करिहि। सरब रीति के ब्योंत सवरही ॥ ४ ॥
जहिं कहिं की संगति समुझाई। सगरी श्री अरजन ढिगु आई।
आवन लगी सकल गुर कार। लगन लग्यो सतिगुर दरबार ॥ ५ ॥
दोनहुं भ्राता ह्वै करि हीन। पछुतावहिं 'सिख दरब न दीन'।
गारी स्राप देत्ति गुरदास। 'गुर मार्यो इहु होइ बिनाश ॥ ६ ॥
श्री अरजन को मातुल जैसे। हमरो भी इहु लागहि तैसे।
जे करि गुर को सिक्ख कहावै। सेवक ह्वै करि सेव कमावै ॥ ७ ॥
हम तीनहुं सतिगुर के नंद। दोनहुं ते मैं अहौं बिलंद।
जे करि बडो न जानहि मोही। सभि सों समु बरतहि शुभ होही ॥ ८ ॥
गुर का मार्यो हम ते छीन। लघु भ्राता को सभि दे दीन'।
गारी देहि सुनावहि कान। 'कहां मंद इहु पसर्यो आन' ॥ ९ ॥
सुनि कै कोपु सहत गुरदास। हाथ जोरि कहि तिन के पास।
'जे अजोग मैं करम कमावौं। तुमरे कहे कशट को पावौं ॥ १० ॥
पुन अपने हित लोभ जि करौं। तौ भी मैं बिपदा मैं परौं।
जथा जोग जे करि मैं कीन। तौ तुमरो कहिबो सभि हीन ॥ ११ ॥

जिसकी वसतु जिति सु को देइ। करहि हटावन अपर जु लेय।
तौ अतोट तिस को हुइ पुन्न। रहैं सदा सतिगुरू प्रसन्न ॥ १२ ॥
तुमरो कह्यो निफल सभि होइ। मोहि बिखै अवगुन नहिं कोइ।
इक दिन इस बिधि दुहन सुनायो। पुनहिं नहीं तिन साथ अलायो ॥ १३ ॥
चहुं दिश ते गुर कार सु रोकी। दुहूं बिसूरति एव बिलोकी।
—भे धनु हीन आमदन बिना। नहिं पावति करि जतनै घना ॥ १४ ॥
संगति भेत जान सभि गई। नहिं उपाइन क्योहूं दई।
श्री अरजन के पाइन पूजहिं। कहि बहु रहे न जानहिं दूजहि ॥ १५ ॥
भए निफल जद करे उपाइ। धन बिन सोचति हैं पछुताइ।
पुनह जतन मन और बिचारा। —इस थल चलहि नहिं हमु चारा ॥ १६ ॥
जाइं बिलाइत को बिनु कहे। तहिं की संगति जेतिक अहे।
सभि अपनाइ लेहिं धनकार। संमत बिखै पिखहिं इक बार ॥ १७ ॥
अहैं दूर सो भेत न जानहिं। गुर सुत लखि हम को गुर मानहिं।
इम बिचार करि कीनसि त्यारी। नहिं पुरि महिं किस पास बिथारी ॥ १८ ॥
मौन करे बाहर चढि चाले। होयहु धन को लोभ बिसाले।
कितिक दिवस महिं लखि गुरदास। गए वलाइत संगति पास ॥ १९ ॥
लिखे हुकमु नामे इन सारे। दास दूरगामी सु हकारे।
पठे वलाइत संगति पास। पाछे आप चढ्यो गुरदास ॥ २० ॥
'गुर की कार न देवहि कोई। गुरता ते खारज हैं दोई।
जो सतिगुर को सिक्ख कहावै। श्री अरजन के निकट पुचावै ॥ २१ ॥
कुछक कार दोइन उगराही। दरब बटोरति हैं निज पाही।
तबि लै गए हुकम परवाने। पठि संगति ने सभि पहिचाने ॥ २२ ॥
इक बिराटिका किनहुं न दीनि। भए सभिनि ते आशा हीनि।
बहुर जाइ भाई गुरदास। गुर की कार लई सभि पासि ॥ २३ ॥
अरु संगति को लै करि साथ। आनि पहुच्यो ढिग गुर नाथ।
प्रिथीआ महांदेव भी आए। अनिक बात कहि रार उठाए ॥ २४ ॥
झगरा कर्यो मिले दुइ भ्रात। 'हम गुजरान हेत कित जात।
गुर को मार्यो इहु गुरदास। लेनि न देति कितहुं धन पास ॥ २५ ॥
बिखै आगरे निकसति प्रान। इहु नही चहीए गुर असथान।
तबि हम धन के सद ही पावति। लेति देति खरचति निति खावति ॥ २६ ॥

क्यों करि हम करिहैं गुजरान। तुम ही को धन दीति जहान।
हम भी पुत्र पिता के अहैं। तिय तुम करहु गुजारो लहैं॥ २७॥
नातुर भली बात इहु नांही। जाइं पुकारू छितपति पाहीं।
श्री अरजन ढिग नर बहु आए। कह्यो दुहनि को सकल सुनाए॥ २८॥
तबि गुरदास आदि हैं जोइ। 'कछु इन दिहु' समझावहिं तेई।
दुइ दिश महिं फिर करि बहु बार। चाहति भए मिटावन रार॥ २९॥
कछुक दुकानन को तहिं भारा। अरु जगात जो आइ बजारा।
सो सभि प्रिथीए को तबि दीन। चौंक पासीआ को जहिं चीन॥ ३०॥
महांदेव को सो थल दयो। धन जगात को तिस ने लयो।
इम दोनहु की हित गुजरान। ले करि करहिं निबाहन खान॥ ३१॥
पूजा संगति की सभि जोइ। श्री सतिगुर-अरजन की सोइ।
चलन लग्यो ऐसे बिवहार। तीनहुं भ्रात मेल को धारि॥ ३२॥
रामदास पुरिबास करंते। दुर्यो शरीका करि बरतंते।
श्री गुर अरजन सरल सधीर। समचित बिना बिकार सरीर॥ ३३॥
प्रिथीआ कुटिलपनो नित करै। तऊ न कुछ कैसे उर धरै।
सभि सौं बरतति हूँ मन नीके। नहिं जानहि कुछ धरन शरीके॥ ३४॥
केतिक सभा बितीत्यो जबै। प्रिथीए के सुत उपज्यो तबै।
मिहरवान तिह नाम बखाना। भई बधाई अनंद महांना॥ ३५॥
कितिक मास को पिखि सुख पावहि। श्री गुर अरजन ढिग ले आवहि।
करहिं प्रेम इव लेवहिं गोद। अधिक दुलारहिं वधहि प्रमोद॥ ३६॥
सरल सुभाउ जानि करि आछे। सभि को भलो होनि उर बांछे।
अधिक सनेह सने सिस साथा। आनहि निति प्रति ढिग गुर नाथा॥ ३७॥
सम्मत बीत्यो वध्यो सरीर। खेलहि आनि गुरू के तीर।
नित सनेह करि बहुत दुलारहिं। गहैं भुजा निज अंक बिठरहिं॥ ३८॥
निज ढिग ते भूखन घरिवाए। सुंदर कंचन के पहिराए।
तथा बसत्र आछे पहिराए। गोटा ऊपर तिनहुं लगाए॥ ३९॥
जिम निज सुत को जानहिं तैसे। प्रिथीआ करहिं बिलोकन ऐसे।
निज त्रिय साथ बखानहि कवै। 'हम ही मालिक-वसतू सबै॥ ४०॥
श्री अरजन के हुइ सुत नांही। लखियति गुरता ह्वै हम पाही।
हमरे सुत को लाड लडावहिं। बसन बिभूखन सभि पहिरावहिं॥ ४१॥
इन को देहिं अंत जबि होइ। हम को ही पूजहि सभि कोइ।
गुरता गई बहुर कर पावै। बंस हमारो जग बिरधावैं॥ ४२॥
धरहि कुटिलता इसते आदि। निज नंदन ते हुइ अहिलादि।
प्रभु की गति को जानति नांही। रछहिं अपर अपरै बन जाही॥ ४३॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे मिहरवान जनम प्रसंग बरननं नाम एक ऊन त्रिसती अंशु॥ २९॥

अंशु ३०

त्रिप को प्रसंग

दोहरा

रामदास गुर पिता को सिमरति बाक हमेश।
श्री अंम्रितसर बनहि जिम होहि जि दरब विशेष ।। १ ।।

चौपई

इक दिन बैठे सभा मझारी। सभिनि सुनावति गिरा उचारी।
सरब सिक्ख हुइं पर उपकारी। इस सम अपर न पुंन उदारी ।। २ ।।
जे उपकार करति नित रहैं। तिनहुं निरंतर आनंद लहैं।
अनिक रीति के पर उपकार। पुंनी करते जगति मझार ।। ३ ।।
सभि ते उत्तम कूप लगावनि। प्रानी अनिक करहिं सुख पावनि।
इस ते उत्तम सिरजन ताला। नर पसु पंछी सुख लहिं जाला ।। ४ ।।
इस ते उत्तम तीरथ हेत। चहुं दिश ते सुपान करि देति।
करहिं शनान दान तहिं आइ। तिस को फल बड आनंद पाइ ।। ५ ।।
तीरथ महिं तीरथ गुर केरा। महां महातम सभिनि उचेरा।
गुरुनि बिखै श्री नानक गुरू। बचन सिंह अग्यानहि रुरू[1] ।। ६ ।।
तिन गादी पर पिता हमारे। सुनहु बाक तिन जथा उचारे।
चिरंकाल को तीरथ ऐही। श्री पति आनि बास को लेही ।। ७ ।।
सरब देवता को हुइ बास। जहिं सति संगति करहि बिलास।
महां महातम इस थल केरा। अपर न जिसके सम कित हेरा ।। ८ ।।
रच्यो चहैं तीरथ अबि सोई। सरै कार जे धन गन होई।
सो धन भूपनि के हुइ पास. यांते सुनहु सिक्ख तुम रास ।। ९ ।।
न्रिप हिंदू हैं परबत बासी; अपर नहीं को हमरे पासी।
ऐसो सिख्य होहि तुम मांही। गमनै कित अचलेसुर पाही ।। १० ।।
तहिं ते दरब जाइ करि ल्यावै। पुन गुरू बच ते सर बनिवावै।
सुनि सिक्खन कर जोर उचारा। गुर सिक्खी मग तिनहुं न धारा ।। ११ ।।

---

1. जिन के वचन अज्ञान रूपी हिरण के लिये सिंह समान हैं।

कैसे देहिं दरब को सोई। अजमति जिनहुं न देखी कोई।
होहि नंम्रि किम पूजा करें। जावत[1] गुरू जस रिदे न धरें॥ १२॥
पाहन की पूजा महिं लागे। कहे दिजन के तिह अनुरागे।
श्री अरजन पुन भन्यो सभिनि मैं। उद्दम करहिं जुताल लगन मैं॥ १३॥
तिन के गुरू हुइं सदा सहाई। दुहिं लोकन महिं दें बडिआई।
जहां कार परि है अस आइ। गुरु हित धरि करि दे पुरवाइ॥ १४॥
सभा बीच इम वाक बखाना। हाथ जोरि करि सिख कल्याना।
प्रभु जी रावरि आइसु होइ। गमनहि दास करहि क्रित सोइ॥ १५॥
रहहु सहाइक तुम सभि काला। पुरहु आप हूँ काज बिसाला।
बनौं बहाना मैं चलि जाऊं। तुमहि भरोसे करि क्रित आऊं॥ १६॥
इम कहि करि भाई कल्याना। उद्दम करन भयो सवधाना।
श्री अरजन की आग्या लैकै। गमन कीन पग बंदन कै कै॥ १७॥
उत्तर दिश को सनमुख करि कै। जाति भयो सतिगुरू सिमरि कै।
सने सने मंडी चलि आयो। पुरी प्रवेश हेरि मन भायो॥ १८॥
निज सुख पिखि थल डेरा कीन। निस महिं करि बिसरामु प्रबीन।
चितवहि चित महिं अनिक उपाइ। किम गुरु को मानहि नरराइ॥ १९॥
जिस ते अरपहि दरब बिसाल। सुंदर बनहिं संपूरन ताल।
कारज महां होइ उपकारू। मम आवनि हुइ सफल उदारू॥ २०॥
कितिक दिवस तहिं बसति बिताए। मिलिन भूप को घाति न पाए।
जनम अशटमी को दिन आवा। नगर सगर नर बरत रखावा॥ २१॥
न्रिप की आग्या पुरि महिं होई। ठाकर बरत रखहि सभि कोई।
प्रात भई ते सभि चलि जावहु। सालगराम दरस को पावहु॥ २२॥
चरणांम्रित ते बरत उपारहु। क्रिशन क्रिशन-मुख नाम संभारहु।
पुरि नर सभिनि करी क्रित सोई। भोजन करति भयो नहिं कोई॥ २३॥
जाग्रन कीनि जामनी सारी। उतसव होयसि पुरी मझारी।
प्राति भई सभि ठाकुर द्वारे। चरणांम्रित ले मुख महुं धारे॥ २४॥
जथा जोग कीनसि नर सभिहूँ। गुरु के सिक्ख न मानी तबिहूं।
नहिं ब्रत कीन न मंदर गयो। नहिं चरणांम्रित धारन कयो॥ २५॥
जाम जामनी करहि शनान। पठहि गुरू के सबद महान।
भोजन अलप अचहि इक कालु। सतिगुर सिमरहि शरधा नालु॥ २६॥
निकट जि नर पिखि करि तिस चाली। बूझ्यो 'बरत न कीनसि काली।
आज न गमन्यो ठाकुर द्वारे। नहिं चरणांम्रित लीन सकारे॥ २७॥

---

1. जब तक।

सुनि सभि ते भाई कल्याना। मधुर बाक दिन संग बखाना।
पुरख जागतो ठाकुर मेरो। जो बोले सुख देति घनेरो ॥ २८ ॥
पाहन जड़ की सेवा बादि[1]। खाइ न बोलहि नहिं अहिलादि।
तुम कबि कबि ब्रत धारन करो। महां बिकारन को परहरो ॥ २९ ॥
हमरे गुरु के सिख हैं जेई। अलप अहार बरति नित सेई।
काम क्रोध को संजमु सदा। प्रभु सिमरन मैं लाग्यो रिदा ॥ ३० ॥
इत्यादिक सुनि कै नर सारे। हसहिं परसपर तरक उचारें।
इह मूरख कछु जानै नांही। सालगराम निंद को प्राही[2] ॥ ३१ ॥
पाहन केर समान बखानहि। नहिं महिमा को मन महिं मानहि।
बिदत बात पुरि मैं भई सारे। महिपालक ढिग जाइ उचारे ॥ ३२ ॥
एक बिदेशी नर पुरि आयो। हिंदू जनम उर धरम न भायो।
सालगरामहिं तरक करंता। कहि पाथर ब्रत नहीं धरंता ॥ ३३ ॥
गुरु गुरु जपहि, न मानहिं आन। तुमरी आग्या धरी न कानि।
निरभै बोलति सभि के साथ। मनहुं मुकति पाई इन हाथ ॥ ३४ ॥
इत्यादिक न्रिप सुनि कै क्रोधा। कह्यो 'बुलावहु क्या तिस बोधा।
किम दुरमति को धरि करि कहै। बिन ठाकुर तिहिं को गुरु अहै ॥ ३५ ॥
इक नर आइ हकार्यो तांही। ले करि संग गयो न्रिप पाही।
करि बंदन बैठ्यो ढिग जाइ। जिस थल सभा लोक समुदाइ ॥ ३६ ॥
पिखि महिपालक रिस करि कहै। 'भो नर! कौन देश तूं रहैं।
किस गुरु न तो कहु उपदेशा। कौन धरम को धार्यो वेसा[3] ॥ ३७ ॥
सुनि कै तबि कल्याना भाई। कही गाथ न्रिप के अगुवाई।
'श्री नानक जग बिदति बिसाला। तिन गादी ऊपर इस काला ॥ ३८ ॥
श्री गुर अरजन पूरन अहैं। तिन के सिख हमु बांछति लहैं।
दुहि लोकन सुख दें उपदेश। तिन की बानी पठहिं हमेश ॥ ३९ ॥
यांते हम पाहन नहिं मानहिं। देखहि, सुनहि न खाइ, बखानहि।
क्या प्रसन्न हुइ तिस ने देना। तांकी सेब करे क्या लेना ॥ ४० ॥
जो सभि जीवन को है जीव। जिस अलंब चेतनता थीव।
सगरे जग को जो निज दाता। सो तुमने पाहन करि जाता ॥ ४१ ॥
जिम अवनी सभि को सुलतान। तिस को मूढ करहि सनमान।
घास डसाइ बसावनि कीआ। आवहु इहां बैठीअहि मीआं ॥ ४२ ॥

1. व्यर्थ। 2. निंदा करता है। 3. वेश, कौन सा धर्म धारण किया है।

तिम तुमरो मति, करहु बिचारन। प्रभु को पाहन करहु उचारन।
रह्यो जु रम जल थल महिं राम। इत उत दुहि लोकन बिस्राम ॥ ४३ ॥
सरब चराचर महिं रहि ब्यापे। तीनहुं काल बिखे थिर आपे।
तीन लोक पति महिद महांना। अपर न पय्यति जासु समाना ॥ ४४ ॥
लघु पाहन महिं कलपहु सोई। प्रभु प्रसन्न तुम पहि किम होई।
जागति पुरखु सु गुरू हमारो। सदा सहाइक तांहि बिचारो ॥ ४५ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'न्रिप को' प्रसंग बरननं नाम त्रिसती अंशु ॥ ३० ॥

————

अंशु ३१

भाई कल्याना

दोहरा

कही जथारथ बारता सुनि कै न्रिप अग्यानि।
रिस्यो, कहिन लाग्यो तबै उचित सजाइ महांन ।। १ ।।

चौपई

करहु कैद इस ते मनवावहु। ठाकुर आगै सीस निवावहु।
नांहि ते होवहिगी जबि भोर। इसे सजाइ देय हैं घोर ।। २ ।।
बंदीखाने मंहि पहुंचायो। तहिं गुरु सिमरति समा बितायो।
भई भोर राजा उठि चला। जहिं ठाकर को मंदिर भला ।। ३ ।।
करि पूजा चंदन चरचायो। चरणांम्रिति ले सीस निवायो।
कह्यो बिदेशी को ले आवहु। मम हदूर करि तिसहि डरावहु ।। ४ ।।
सुनि चाकर ले करि तिह आए। बोल्यो न्रिप 'तैं हिंदु कहाए।
ठाकुर को पाहिन कहि जैसे। अबहि सजाइ लीजी अहि तैसे ।। ५ ।।
नांहि त कहु-मैं भूल्यो भारी। अबि हूजै सभि कै अनुसारी।
सुनि करि सिख बोल्यो कल्याना। श्री गुर अरजन मोर महांना ।। ६ ।।
तिन को दियो सीस है मेरा। नंम्रि न कहि आगै किस बेरा।
तिनहूं के मैं नित अनुसारी। किम पाहन को प्रभू उचारी ।। ७ ।।
रिस्यो भूप 'इहु डरति न थोरा; दिहु सजाइ मम निकटे सु घोरा।
ज़ंघ एक इस की टुक दीजहि। अपन राज ते बाहर कीजहि ।। ८ ।।
इम सुनि कै आए चंडाला। मन कल्याने गुरू संभाला।
'अबि सहाइ को समों तुमारा। चलति समै मुखवाक उचारा ।। ९ ।।
गुरू सहाइ होहिं चलि जावहु। आप हाथ दै नाथ बचावहु।
जंघ काटिबे लगि जंदाल[1]। ततछिन बिहबल भयो न्रिपाल ।। १० ।।
खरो हुतो मूरछ गिर पर्यो। मुख बिबरन कंपत तरफर्यो।
गहि अंगनि को नरन उठावा। नहिं सरीर की सुधि बिकुलावा ।। ११ ।।

1. चंडाल।

इम देखति त्याग्यो कल्याना। न्रिप उपचार करहिं मिलि नाना।
सीतल जल सुगंधि बहु ल्याए। मंद मंद करि पौन झुलाए॥ १२॥
तऊ न सुधि न्रिप के तन आई। बिहबल हुइ परिओ तिस थाईं।
सुमतिवंत जे मानव तहां। करहिं बिचारन 'होयहु कहां[1]'॥ १३॥
हुकम बिदेशी नर पर कीन। एक जंघ को कीजहि हीन।
जबि जंदाल गयो तिस तीर। गिर्यो न्रिपत सुधि नहीं सरीर॥ १४॥
यांते तिस को करहु प्रसंन। जिम सो कहै लीजीअहि मंनि।
सुनि कै सभि ने निशचै धरियो। इम ही भई तांहि कुछ कर्यो॥ १५॥
तबि मंत्री जोरे जुग पाना। गयो तुरत जहिं थिति[2] कल्याना।
तुम हो संत रूप नहिं जाने। करी अवग्या ते पछुताने॥ १६॥
अबि बखशहु करि छिमा घनेरी। महिमा तुंमरी लखी वडेरी।
क्रिपा करहु न्रिप निकट सिधारहु। बिहबल होवति मरति जिवारहु॥ १७॥
नांहि त म्रितक न्रिपत हुइ जाई। उठहु आप रच्छहु सुखदाई।
इम कहि न्रिप के ढिग ले गए। पर्यो बीच मिलि नर गन भए॥ १८॥
अवलोकति कल्यान बखाना। श्री अरजन सतिगुरू महांना।
तिन की सिक्खी धारन करीअहि। गुर शरधा को उर महिं धरीअहि॥ १९॥
कारन करन त्रिलोकी नाथ। तिन ढिग चलहु धरहु पग माथ।
सभि इकत्र हुई लिहु सतिनाम। तिस दिश को कीजहि परनाम॥ २०॥
दरशन करहिं तुमारो आइ। अबि न्रिप को दिहु कुशल बिठाइ।
इम भाइ कल्यानु सिखाए। हाथ जोरि सभि बिनै अलाए॥ २१॥
श्री अरजन को लेकरि नाम। हाथ जोर सभि कीनि प्रनाम।
परसे चरन सिक्ख कल्याना। तुम भी बिनती करहु बखाना॥ २२॥
लेकरि जल कर चरन पखारे। खरो भयो अरदास उचारे।
श्री गुरु न्रिप की इच्छा धारो। दुख ते अपनो जानि उधारो॥ २३॥
अबि होयो इह शरनि तिहारी। छिनहु अवग्या करुना धारी।
करि अरदास निवायो सीस। कुछ चेतनता भई महीश॥ २४॥
खुले बिलोचन गहि बैठार्यो। चलहु सदन ले बाक उचार्यो।
नर परदेसी आदर करो। असन बसन तिसु आगे धरो॥ २५॥
सुनि मंत्री जुति घर ले गए। सने सने उपचारन कए।
चिरंकाल को रोगी जथा। खान पान दीनसि न्रिप तथा॥ २६॥

---

1. यह क्या हो गया है। 2. था। 3. कार्य पूर्ण करना।

केतिक दिन महिं कुशल समेत। होति भयो महीपाल सुचेत।
सादर तबि कल्यान बुलायो। बिनै भनी बहु उर हरखायो ॥ २७ ॥
अबि किस थान सतिगुरू रहैं। तिन के दरस करन चित चहैं।
ले करि हम को अपने साथ। करहु मिलावन श्री गुर नाथ ॥ २८ ॥
सुनि भाई कल्यान बखाना। मद्र देश गुरू को चक थाना।
श्री गुर अमरदास ढिग ऐकै। अकबर शाहु दियो हित कै कै ॥ २९ ॥
चहुं दिश के नर पूजहिं जाइ। सरब कामना गुरू ते पाइं।
भुगति मुकति के दाता गुरू। धरहिं भावना कारज पुरू ॥ ३० ॥
बड़े भाग जागे अबि तेरे। जिस ते चहति दरस गुर हेरे।
दोनहुं लोकन के सुख पावहु। चलहु बनहु सिख सीस निवावहु ॥ ३१ ॥
इम सुनि महिपालक बडभागा। गुरू बिलोकन को अनुरागा।
सहत सैन के होयहु त्यार। चलति भयो मग महिं पग डारि ॥ ३२ ॥
सनै सनै संग ले कल्याना। आवति भे श्री सतिगुर थाना।
वहिर पुरी ते कीनस डेरा। गज बाजी नर ब्रिंद बडेरा ॥ ३३ ॥
आछी बसतू हेत उपाइन। अरपन को सतिगुर के पाइन।
दासी दास संग रणवास। सभि समेत उतर्यो पुरि पास ॥ ३४ ॥
इम नीके डेरा करिवाइ। मधुर बाक ते न्रिपत टिकाइ।
पुरि महिं गमन्यो तब कल्याना। श्री अरजन बैठे जिस थाना ॥ ३५ ॥
दोनहुं हाथ जोरि पग पर्यो। दरशन कर्यो मोद उर भर्यो।
श्री गुरू कह्यो आउ कल्याना। कर्यो कि नहिं उपकार महांना ॥ ३६ ॥
कर जोरे तिन सकल सुनाई। महांराज ! ल्यायो नर राई।
आप सहाइक होए जबै। उतकंठति ह्वै आयहु तबै ॥ ३७ ॥
बनहि सिख्य रावर को एही। सर की कार संभारि सु लेही।
क्रिपा कटाछ आप गो पाइ। लखमी बास करहि सति भाइ[1] ॥ ३८ ॥
अपरनि[2] को इक करहु बहाना। सर हित चाहहु दरब महाना।
तीनहुं लोकन के तुम दानी। सार समारहु चारहु खानी[3] ॥ ३९ ॥
जिम रावर को उर महिं भावहि। तिम तुम करहु, न को उलटावहि।
सति संकलप चहो तिम होइ। आइसु महिं सुर नर सभि कोइ ॥ ४० ॥

दोहरा

अबि डेरो भूपति कर्यो, सगरी निसा बिताइ।
मिलहि होति भुनसार[4] के पग पंकज सिर लाइ ॥ ४१ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रथे दुतिय रासे 'भाई कल्याना' निरप को ल्यावन' प्रसंग बरननं नाम एकत्रिसती अंशु ॥ ३१ ॥

---

1. सच्चे प्रेम के साथ। 2. दूसरों को। 3. चारों दिशाओं की सुध लेते हो।
4. प्रातःकाल।

अंशु ३२

भूपत को प्रसंग

दोहरा

भई भोर श्री गुरु उठे करि शनान ते आदि।
गुरुता गादी पर थिरे दरसहिं सिख अहिलाद ॥ १ ॥

चौपई

गमन्यो न्रिप ढिग तब कल्याना। मिलनि हेत बिरतंत बखाना।
ततछिन कीनसि सगरी त्यारी। लेकरि साथ उपाइन सारी ॥ २ ॥
कंजन रजति दंड नर गहैं। महिपालक के आगे रहैं।
सचिव सुभट को ले समुदाए। बसन बिभूखन जिनहुं सुहाए ॥ ३ ॥
पाइन ते चलि करि महीपाला। गमन्यो शरधा धरे बिसाला।
पहुंच्यो सतिगुर के ढिग जाइ। पग पंकज पर सीस निवाइ ॥ ४ ॥
हाथ जोरि बहु बिनै बखानी। सुनि करि महिमा मैं गुन खानी।
रावरि शरनि पर्यो अबि आई। इम कहि बैठि गयो समुहाई ॥ ५ ॥
तिस छिन महिं श्री अरजन नाथ। पोथी पठति हुते गहि हाथ।
ओअंकार की तुक मुख इही। लिखिआ मेट न सकीअहि कही[1] ॥ ६ ॥
जिउं भावी तिउं सार सदीवा[2]। प्रभु की नदर करे सुख थीवा।
सुनि महिपालक रिदे बिचारी। इही रीति जे साच उचारी ॥ ७ ॥
इन संगि मिलनि निफल भा ऐसे। लिखीआ मेट न सकीए कैसे।
जिस पर नहिं उपाइ किम होइ। तिस हित उद्दम करि है कोइ ॥ ८ ॥
हाथ जोरि गुरु के संग कह्यो। आशै सकल आप को लह्यो।
क्यों अबि सिक्ख बनौं गुर धारों। लिख्यो भाग भोगौं निरधारों ॥ ९ ॥
सतिगुर भन्यो 'मिटै जे नांही। तऊ करति गुरु आछो तांही।
संकट काटहिं सुख को देय। अपनो जानि बचाइ सु लेय ॥ १० ॥
लिख्यो प्रभू को सो भी रहै। भोगति ही कल्यान सु लहै।
गुरु करुना ते प्रापत छेम। दोनहुं बिधि को है इहु नेम ॥ ११ ॥

---

1. किसी तरह। 2. सदा संभाल लेता है।

सुनि नरिंद के मन नहिं आई। कहति कि दोनहु किम बनि आई।
लिख्यो भाग जे भोगहि प्रानी। कहां करैं तबि श्री गुरू ग्यानी॥ १२॥
जे करि गुरु सहाइता कीनि। लिख्यो भाग मिटि करि हुइ छीन[1]।
यांते मम मन महि नहिं आवै। दोनहुं बिधि कैसे बनि आवै॥ १३॥
श्री गुर कह्यो रहहु दिन तीन। जिम हुइं दोनहु तिम लिहु चीन[2]।
बहुर सिक्ख गुरु घर के बनहु। संसै जितिक सकल ही हनहु॥ १४॥
मानि बचन सतिगुर को लीन। ल्यायो भेट सु अरपन कीन।
मसतक टेकि आइ गो डेरे। खान पान करि कै हित केरे॥ १५॥
देग प्रसादि अच्यो सुख पायो। थिर्यो तहां सो दिवस बितायो।
भई जामनी जबिहूं आइ। सिहजा परथिर ह्वै नर राइ॥ १६॥
सुख सों सुपर्यो न्रिप बुधिवान। चौकीदार खरे सावधान।
सोवति जबि जुग जाम ब्रिताए। अद्भुत सुपनो तिह छिन आए॥ १७॥
अपनो राज भोगि ब्रिध होवा। बध्यो कुटंब सगल ही जोवा।
पुन म्रितु होइ गयो इस काल। रजधानी भा शोक बिसाल॥ १८॥
सभि को रुदति त्याग करि गयो। घर चंडाल जनम पुन लयो।
कर्राहि दुलारन सुत कहि सोइ। खान पान करि ब्रिध[3] तहिं होइ॥ १९॥
जबि संभत दस को हुइ गयो। उतसव ते बिआहि तहिं भयो।
बंधप संग ब्रिंद चंडाल। गाइन बादत कीन बिसाल॥ २०॥
बहु प्रसंनता तिन महिं होई। करि कै ब्याहु मेलि सभि कोई।
आइ सदन महिं बसने लाग्यो। निज परवार संग अनुराग्यो॥ २१॥
इसी रीति बीत्यो चिर काल। भयो तरुन बलवानु बिसाल।
पुत्र सुता उतपत गन करे। तिन को ब्याह्यो उतसव धरे॥ २२॥
को बिसाल को लघु है नंद। केतिक तनीया[4] भई बिलंद।
सभि को ब्याह बध्यो परवारा। पुत्र पौत्र हेरति हित भारा॥ २३॥
हरख शोक धारति तिन मांही। दुख सुख देखति औध निबाही[5]।
जनम चंडाल पाइ करि भोगा। भयो म्रितक तहि ते वधि सोगा[6]॥ २४॥
रुदति सुनति बिरलापति दारा। हे पति तोर अधिक परवारा।
गन शूकर तैं पारन[7] कीने। कूकर[8] खरे[9] अहैं तन पीने[10]॥ २५॥
सभि प्रतीखना[11] तेरी धरैं। कित चलि गयो द्रिशटि नहिं परै।
इम कुटंब रोदति दुखि छाडो। ले करि वहिर गए घर गडो॥ २६॥

---

1. क्षीण, नष्ट होना। 2. देख लो। 3. बड़ा होना। 4. गाना-बजाना। 5. पुत्रियां 6. आयु व्यतीत की। 7. शोक। 8. सुअर पाले। 9. कुत्ते। 10. गधे। 11. मोटे। 12. प्रतीक्षा।

इहु सभि सुपनो पाइ नरिंद। जाग उठ्यो बिसमाइ बिलंद।
कितिक काल सोचति ही रह्यो। इहु दुर सुपन कहां मैं लह्यो॥ २७॥
भई प्रभाति सिक्ख इक गयो। गुर को हुकम सुनावति भयो।
हेत अखेर खेलिबे चह्यो। चलहिं संग गुर ऐसे कह्यो॥ २८॥
सुनि कै करि शनान न्रिप तबै। तुरंग अरूढ्यो ले दल सबै।
चढि कै पुरि अंतर को आए। तहिं ते सतिगुरु संग मिलाए॥ २९॥
चितवति चित दुर सुपन बिसाला। कहि न सकहि मुख ते तिस काला।
बदन मलीन हुकम को माना। ले सतिगुरु को संग पयाना॥ ३०॥
खेलन करौं अखेर घनेरा। गुरु जी हतौं म्रिगन करि घेरा।
असु धवाइ करि करौं संहारि। बाजन ते पंछी लिउं मार॥ ३१॥
मग महिं गमनति जाति सुनावति। देखहु आज जथा मैं धावति।
गए दूर केतिक उदिआना। निकस्यो हरन न्रिपत अगुवाना॥ ३२॥
सभि को बरजि आप ही धायो। बड़े बेग ते तुरंग उठायो।
लग्यो गैल[1], दौरहिं जुग ऐसे। पौन गौन पीछे किय जैसे॥ ३३॥
पुरि ते कोस दस कु लौ गयो। म्रिग दौरति को हति करि लयो।
भयो त्रिखातुर[2] मुख कुमलावा। पाछे ते भट कोइ न आवा॥ ३४॥
इत उत फिरि कै हेरन कर्यो। दूर जाइ इक ग्राम निहर्यो।
तिस के निकट ब्रिछ को देखा। उत्तर पर्यो भा श्रमत बिशेखा॥ ३५॥
तरु के संग बांधि करि घोरा। तहिं ते निकट नीर को टोरा[3]।
पिखि जल को कर चरन पखारे। पुन पी करि निज त्रिखा निवारे[4]॥ ३६॥
तरु के तरे संघनी छाया। श्रमति न्रिपत को मन बिरमाया[5]।
बसत्र बिछाइ बैठि करि तहां। श्रमत धाम ते सुख लहि महां॥ ३७॥
जबहि तपत थोरी हुइ जाइ। पुन चढिहौं-अस मन ठहिराइ।
संगी आइ मिलहिंगे मोही। तबि लौ छाया महिं सुख होही॥ ३८॥
पीछे श्री अरजन भट संग। जाति अरूढे सकल तुरंग।
न्रिप को खोज पारखा धरि ते। सनै सनै सभि गमन्यो करि ते॥ ३९॥

दोहरा

धाम तेज अतिशै भयो खजति न्रिप को जाति।
सेवक सेवा हेत को इत उत फिर उतलाति॥ ४०॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रिथे दुतिय रासे 'भूपत को प्रसंग' बरननं नाम दोइ त्रिसती अंशु॥ ३२॥

---

1. पीछे। 2. प्यास से व्याकुल। 3. खोजा। 4. प्यास मिटाई। 5. ललचाया।

अंशु ३३
न्रिपनि प्रसंग

दोहरा

कितिक काल महिपाल को बैठ्यो बित्यो सु थान ।
तिस चंडाल कौ पुत्र इक न्रिप को देख्यो आनि ॥ १ ॥

चौपई

दूर खरो हेरति ललचावै । करति त्रास, पर निकट न आवैं ।
इह तो पिता हमारो अहै । जो मरि गयो सु छल ही लहै ॥ २ ॥
दौर्यो सदन बतायो जाइ । क्यों रोबहु पित बैठ्यो आइ ।
कर्यो सु छल पित मर्यो न जानो । चलि देखहु जे कह्यो न मानो ॥ ३ ॥
सुनति भारजा चलि करि आई । अपर कुटंब संग ही ल्याई ।
हब्बडाइ[1] पहुंची दुखिआरी । देखति ऊंची कूक पुकारी ॥ ४ ॥
इह क्या कीन कुटंब को छोरा । हम सभि को दीनसि दुख घोरा ।
रुदति भई ब्याकुल निस मांही । आइ समीप लीनि सुधि नांही ॥ ५ ॥
इम भाखति सगरे चलि आए । देखि न्रिपत ने सकल हटाए ।
सुपने बिखै पिखे थे जैसे । देखति भयो कुटंबी तैसे ॥ ६ ॥
सो इसत्री सुत तनीया सोई । सुपने जनम बने थे जोई ।
सनै सनै जबि देख्यो थान । निस महिं बस्यो सु परति पछान ॥ ७ ॥
सुपना अरु तिन पिरखि बिचारति । कहां भई, अचरज कौ धारति ।
सो नेरे हुई हुइ, न्रिपत हटावै । बचहि आप जिन[2] छुहन न पावै ॥ ८ ॥
कहि चंडालनी तूं पति मेरो । भोगति भोग रह्यो बहुतेरो ।
पुत्र सुता इहु सभि उपजाए । अबि क्या तोहि रिदे महिं आए ॥ ९ ॥
बसत्र शसत्र धरि करि तन् आछे । हम सों मिलिनि बिचार्यो पाछे ।
मरिबे को छल करि तजि गयो । कहिं ते जाइ पदारथ लयो ॥ १० ॥
क्यों न लेति सुत को निज गोद । क्यों न लेति अबि सदन बिनोद[3] ।
क्यों न मिलति सगरे परवार । जिन सों करति सदा तूं प्यार ॥ ११ ॥

---

1. (घबराहट में) जल्दी जल्दी । 2. कहीं छू न दें । 3. घर का सुख ।

सुनि सुनि सभि चंडाल चलि आए। न्रिप को घेरि खरे समुदाए।
जे जामनि को सुपन बिचारै। तौ जानति अपनो परवारै ॥ १२ ॥
जबि जाग्रत अपुनी[1] पहिचानै। करति हटावन बाक बखानै।
मैं सनबंधी नहीं तुमारो। अमुक गिरनि को ईश उदारो ॥ १३ ॥
ढांढे रहो दूर हटि करिकै। छुवहुं न तुमको नीच विचरिकै।
अपने को तुम क्यों न पछानो। अपन सबंधी मोहि बखानो ॥ १४ ॥
इम झगरति बीत्यो चिरकाल। इतने महिं सतिगुरू बिसाल।
चमूं संगि आए तिस बेरा[2]। गन चंडालन न्रिप जहिं घेरा ॥ १५ ॥
सगरे कहि कै दूर हटाए। बूझ्यो तिन सों तहां बिठाए।
श्री अरजन अरु मानव सारे। बैठि गए सुनिबे हित धारे ॥ १६ ॥
हमरो बंधू बैठ्यो ऐहु। सगल कुटंब इसी को लेहु।
बसत्र शसत्र अरु भूखन घोरा। करि छल मरिबे ल्याइसु औरा ॥ १७ ॥
सरब सरीर अहै इहु सोई। वसति हुतो हमरे महिं जोई।
नीके सभि ने कीनि चिनारी। लख्यो नु बरतहि संग हमारी ॥ १८ ॥
अबि हम इस को जान न देईं। जाइजि, निज कुटंब सग लेई।
सकल बैस जिन संग बिताई। अबि ए कित जै हैं दुख पाई ॥ १९ ॥
श्री अरजन सरवग्य सुजाना। तिन बरजन को वाक बखाना।
जो मरि गयो सु बंधु तिहारो। जहिं गाड्यो सो कबर निहारो ॥ २० ॥
तिस महिं मुरदा होइ जि आनो। तौ तुमरो इहु नहीं, पछानो।
जे नहिं तहां निहारो सोइ। तौ कहिबो तुमरो सच होइ ॥ २१ ॥
सुनि कै वाक सभिनि ही माने। इहु तुम आछी रीति बखाने।
गन चंडाल खोद तिस बेरा। दफन्यो[3] मुरदा तहां सु हेरा ॥ २२ ॥
तबि चंडाल सकल बिसमाए। बहुर कहनि किछु निकटि न आए।
भूपति कौ चढाइ करि चाले। अपन पुरी को पंथ समाले ॥ २३ ॥
संध्या लौ चलि करि तहिं आए। महिपालक सोचति बिसमाए।
कहि न सकै अचरज ही गाथा। क्या ए भयो आज मम साथा ॥ २४ ॥
चितवति के चित महिं इम आई। सकल बतावहिं गुरु गोसाईं।
मम मत महिं इहु कछू न आवै। सुपन बात जाग्रत द्रिशटावै ॥ २५ ॥
निज थलु खान पान को करिकै। सुपते सभि श्रम को परिहरि कै।
भई प्राति करि तन इशनान। सोचति चित महिं न्रिपति महांन ॥ २६ ॥

1. अपने को। 2. तब। 3. दबाया।

बूझनि करि हौं गुर के साथि। इस बिधि दीन होति नर नाथ।
बसत्र शसत्र तन पहिरे सारे। सचिव सुभट अपुने संग धारे॥ २७॥
सनै सनै पाइन सों गयो। जाइ दरस श्री गुर को कयो।
पद अरबिंद बंदना धारी। बैठ्यो नम्र सु होइ अगारी॥ २८॥
सादर श्री अरजन कहि करि कै। बूझ्यो हे न्रिप! चिंता धरि कै।
क्यों मन भंग होइ करि रह्यो। को कारण ऐसो कित लह्यो॥ २९॥
सुनि न्रिप शरधा करि अधिकाई। बूझ्यो गुरू जु पो मन भाई।
हाथ जोरि बिरतांत बखाना। तुम समरथ, सरबग्य महाना॥ ३०॥
गुपत बिदत बिरतंत पछानहु। तीन काल महिं होइ सु जानहुं।
भयो मोहि मन अधिक सदेहू। तुम बिन अपर मिटाइ न केहू॥ ३१॥
भयो जामनी महिं इम सुपना। तज्यो सरीर म्रितक हुइ अपुना।
सभि रणवास राज के लोक। रुदति पीटते धरि उर शोक॥ ३२॥
मैं तबि जनम्यो घर चंडाल। तहिं होयो परवार बिसाल।
भोगु आरबल तन की तहां। भयो म्रितक मैं संकट महां॥ ३३॥
भोर होति जबि गए अखेर। तहिं चंडालनि लीन सु घेर।
जो सुपने महिं भा परवारे। तैसे रूप समूह निहारे॥ ३४॥
दारा, सुत, पुत्री, जे भई। करि चिनार मैं देखि सु लई।
तिनहुं पछान मोहि को लीना। देख्यो तुम झगरा जो कीना॥ ३५॥
इह सगरो बिरतंत जु होवा। अहै साच कै झूठो जोवा।
मम मन निशचै आइ न कोई। यांते चिंता चित बड होई॥ ३६॥
क्रिपा करहु इहु सरब बतावहु। क्या अचरज होयो? समुझावहु।
इम न्रिप ते सुनि कै सभि गाथ। कहति भए श्री अरजन नाथ॥ ३७॥
लिखिआ प्रभू को को नहिं खोवति। तऊ सहाइक सतिगुर होवति।
इह गति बीति है तुव संग। करहु नहीं अपनो मन भंग॥ ३८॥
सतिगुर भए सहाइक तेरी। रिदै बिचारति बात जु हेरी।
जनम पावनो घर चंडाल। तोहि भाग महिं लिख्यो अटाल[1]॥ ३९॥
सदनु त्याग कै तूं चलि आयो। सतिगुर आगै सीस निवायो।
धरे पदारथ आन उपाइन। करि शरधा परसे कर पाइन॥ ४०॥
यांते सतिगुर भए सहाइ। सुपने महिं सो दीन बताइ।
जनम चंडाल जु धरनो हुतो। सो इक जामनि महिं धरि बितो॥ ४१॥

1. अटल।

भरम हुतो तेरो मन मांही। लिख्या मेट सकहि को नांही।
तौ सहाइता गुर क्या करै। निफलहि, इम संसो[1] तूं धरैं॥ ४२॥
सो बिधि तुझ को करि दिखएई। इम श्री सतिगुर होइं सहाई।
महां कशट ते लेति बचाइ। जो सिख बनि है शरधा ल्याइ॥ ४३॥
सुनि कै न्रिप गदि गदि हुइ गयो। बैठे महिद[2] प्रेम उपजयो।
बह्यो नचन ते अश्रु प्रवाहू। धर्यो सीस पग पंकज मांहू॥ ४४॥
धंनु धंनु श्री सतिगुर अरजन। सिख्यन रक्खक सुनि जिन अरजनि[3]।
मैं अति दीन पर्यो दरबार। गहो बांहु कीजहि भव पार॥ ४५॥
तुम सम गुरू पाइ हौं कहां। जनम मरन काटो दुख महां।
निज चरणांम्रित मुझ को देहु। सुद्ध आपनो सिख करि लेहू॥ ४६॥
शरधा अचल देखि श्री अरजन। संसे मिटे भयो अबि सुध मन।
तबि जल को मंगवाइ सु लीनि। पदु अरबिंद परवारन कीन॥ ४७॥
सहत भारजा भूपति पीवा। सतिगुर को सिख मन ते थीवा।
तबि भाई कल्यान बुलायो। इह उपकारी तुझ को ल्यायो॥ ४८॥
इस को पूजन करहु विशेशु। सुनि श्री गुर के बाक नरेश।
कहति भयो 'इह मेरो ईश'। उर सिमरौं मैं धरि पद सीस॥ ४९॥
इसको मैं अपुने संग करिकै। गमनों सदन जबहि हित धरि कै।
ले जावौं, उपहार पठावौं। भाउ बिसाल करौं हरखावौं॥ ५०॥
केतिक दिन सतिगुर के तीर। रहति भयो भूपति मति धीर।
बहुत भांति के सुनि उपदेशु। प्रभु का सिमरनि करहि हमेशु॥ ५१॥
अम्रितसर करबे अभिलाखा। नित प्रति धरहिं पिता जिम भाखा।
बहु दिन रहि न्रिप रुखसद चहैं। हाथ जोरि सतिगुर सों कहै॥ ५२॥
मोहि दरब ले करि निज हाथ। करहु सकारथ श्री गुर नाथ।
को सुंदर थल को अवलोक। रचहु ताल निरमल जल रोक॥ ५३॥
मोहि भावनी ऐसे अहै। रावरि की मरज़ी हम चहै।
सुनि श्री अरजन कहि तिसु बेरा। इम श्री नानक तुव मन फेरा॥ ५४॥
श्री अंम्रितसर तीरथ भारी। तिस करिबे को इच्छु हमारी।
जेतिक दरब पठहि गो इहां। तिह सर पर हम लावहिं यहां॥ ५५॥
दरब सकारथ होहि तुमारा। लोकनि पर अतिशै उपकारा।
उर अनंद भा सुनि करि बैन। ब्रिहु ते भर्यो नीर बहु नैन॥ ५६॥

1. संशय। 2. बहुत, अत्यधिक। 3. प्रार्थना।

मसतक टेकि बिदा हुइ गयो। अपने संग कल्यान सु लयो।
निज रजधानी प्रापति होवा। राज श्रेय जुति सगरो जोवा ॥ ५७ ॥
को दिन ढिग राख्यो कल्याना। पुन थाती दे दरब महांना।
निज नर संग मिलाइ पुचायो। श्री अरजन के ढिग चलि आयो ॥ ५८ ॥
आयो दरब देखि निज पास। चाहति सर को कर्यो प्रकाश।
बूझ ब्रिध भाई गुरदास। पिखहु सथान करहु निरजास[1] ॥ ५९ ॥
उद्दम तीरथ रचिबे करिओ। जिस ते सिक्खन को गन तरिओ।
सुनहु कथा आगलि जिम भई। कवि संतोखसिंह शुभ निरभई ॥ ६० ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रिथे दुतिय रास त्रिपनि प्रसंग बरननं नाम तीन त्रिसती अंशु ॥ ३३ ॥

---

1. निर्णय।

अंशु ३४

जोगी निकसनि प्रसंग

दोहरा

श्री अरजन जी गुर भए पर उपकारी पीन।
करहिं उधारन अनिक ही दे उपदेश प्रवीन ।। १ ।।

चौपई

बचन पिता के सिमरन करे। तीरथ सिरजन इच्छा धरे।
कर्यो प्रिथम[1] बीत्यो चिर काल। पुन इकत्र हुइ नीर बिसाल ।। २ ।।
म्रितका संग सू पूर्यो गयो[2]। खनन चिन्ह सभि मिटतो भयो।
टोवा हुतो अलप ही करियो। सनै सनै जल सगलो भरियो ।। ३ ।।
चहुं दिश ते ढरि म्रितका परी। जिस ते नांहि चिनारी[3] करी।
इति उति फिरे ब्रिंद तरु खरे। बदरी आदि न जानिय परे ।। ४ ।।
ब्रिच्छ सिंसपा जाइ सु हेरा। खरे भए सतिगुर तिस बेरा।
तीन काल सरबग्य महांना। खोजति जिम अल्पग्य अजाना ।। ५ ।।
मिट गयो चिह्न रह्यो कुछ टोवा। निशचै भयो न फिर फिर जोवा।
झार करीर बेलु बिसतारा। नहिं निरनै किय सकल निहारा ।। ६ ।।
फल दिखाइ चाहति बिदतावा। यांते नहिं तिह छिन बिदतावा।
ब्रिछ सिंसपा ते थल जाना। तहां जाइ करि उद्दमु ठाना ।। ७ ।।
निशचै तिस तीरथ को करियो। सभिनि संग सतिगुरू उचरियो।
गुर आग्या ते पिता हमारे। आइ सु सर करिवाइसु कारे ।। ८ ।।
इह तौ बिदत चिन्ह लखि पय्यति। खन्यो कितकि अरु तरु दिशट्यति।
इम सुनि सभि नै कीनसि निरनै। आप जथारथ करि हो बरने ।। ९ ।।
टोवा खन्यो सो परहि दिसाई[5]। तुमु ते कौन लखहि अधिकाई।
इम निशचै करि लगे खनावनि। गन मजूर, सिख करे लगावनि ।। १० ।।

---

1. अर्थात् गुरु रामदास जी द्वारा खुदवाया हुआ। 2. भर गया। 3. पहचान।
4. दिखाई पड़ता है। 5. दिखाई।

ब्रिंद खर्नाहि सिर म्रितका धार्राहि। लै करि वहिर जाइ तट डार्राहि।
अनगन मानव आवनि लागे। किते मजूर सिख्य बडि भागे ॥ ११ ॥
इम दिन प्रति श्री अरजन नाथु। लै करि सिख संगति को साथ।
जहिं कहिं ते बहु करे बुलावनि। गन मजूर जुति करति खनावनि ॥ १२ ॥
बैठहिं जाइ तांहि के तीर। खोर्दाहि बहु मानव की भीर।
इक खननी गहि खर्नाहि सबल थल। एक निकासहिं, भार्खाहि 'चलि चलि ॥ १३ ॥
धर्राहि भावना केतिक आवहिं। तीरथ खर्नाहि तथा फल पार्वाहि।
केतिक सिख्य आप चलि आए। केतिक श्री अरजन बुलवाए ॥ १४ ॥
भई जहां कहिं पसरी गाथा। सुनि सुनि आइ, नाइं पद माथा[1]।
महां चौंप ते[2] कार[3] निकार्राहि। सिमर्राहि नाम विछन को टार्राहि ॥ १५ ॥
को आवति को जाति अनेक। को सेवा करि लहहि बिबेक।
को जग सुख को बांछति आवहि। सुत बित आदिक सो तहिं पावहि ॥ १६ ॥
प्राति होति ले संग सभिनि को। सगरे दिन महिं कर्राहि खनन को।
संध्या होति जाति बिच ग्राम। बनहि देग बड गुर के धाम ॥ १७ ॥
सगरी संगति पाइ अहारे। तहां जामनी बसहहिं सारे।
होति भोर सभि क्रिया सुधारि। कर्राहि जाइ तीरथ की कार ॥ १८ ॥
इस प्रकार केतिक दिन करे। खर्नाहि म्रितका वाहरि गिरे।
बहु गंभीर कयों बर ताल। कहि करिवावै गुरू बिसाल ॥ १९ ॥
बहु सिख्यन की होइ भीर। सुनि सुनि महिमा आर्वाहि तीर।
केतिक अंनु पुंज को आनहिं। पाइ देग महिं शरधा ठार्नाहि ॥ २० ॥
केतिक धनु को आनि चढावहिं। देति मजूरनि ताल खनावहिं।
केतिक आप आइ तहिं रहैं। कर्राहि कार सतिगुर जिमु चहैं ॥ २१ ॥
केतिक घर ते अंन सु आनहिं। अपनो खाइ कार सो ठार्नाहि।
कितिक देग ते भोजनु खाइं। सभि दिन सर की कार कमाइं ॥ २२ ॥
को निशकामु रहहिं गुर पास। को सकाम ठार्नाहि अरदास।
महिद काज सर करिबे केरा। श्री अरजन मन लखहिं बडेरा ॥ २३ ॥
किते बरख महिं होवन हारा। पार्काहि ईटां चलि है कारा।
अनिक पजावे लागहिं जबै। तबि कारज बनि सक है सबै ॥ २४ ॥
ब्रिंद कुलाल[4] बसहि जबि आई। लाइं पजावे लेहिं पकाई।
सरब प्रकार चितहिं चितु मांही। जिम तडाग तूरन हुइ जाही ॥ २५ ॥

1. पाँवों में मस्तक टेकना। 2. उत्साह से। 3. गारा। 4. कुम्हार—ईंटें बनाने वाले।

श्री गुर अमरदास की आइसु। पिता हमारे को फुरमाइस।
ताल करहु चहु कौन बिसाल। हुइ पाको ईटन लग जाल ॥ २ ॥
तथा पिता ने मोकहु कहियो। टहिल ताल की महिं चित चहियो।
सरब प्रकार जि इहु बन जाइ। गुर दोनहुं की पुरहि रजाइ ॥ २७ ॥
सिमरि सिमरि बच पूरब गुर के। सभि कारज करिवावहिं सर के।
बैठे तट पर कहहिं खनावहिं। सिक्खन को उपदेश द्रिडावहिं ॥ २८ ॥
सभि गुर करहिं कामना पूरी। बिच परलोक लहहु गति रूरी।
बीते केतिक मास खनावति। सर सेवा को अधिक जनावति ॥ २९ ॥
नित प्रति कार अधिक ही होइ। करि चित चौंप खनहिं सभि कोइ।
बड गंभीर भयो तबि खनते[1]। ब्रिंद गिरावहिं म्रितका अनते[2] ॥ ३० ॥
जबि खनि के नंम्री बहु करियो। ब्रतलाक्रित[3] मठ जान्यो पर्यो।
दौरि दौरि गुर पास उचारें। इक मठ निकस्यो लोक निहारें ॥ ३२ ॥
सुनि करि उठे आपि जग स्वामी। गए निकट तिस अंतरजामी।
सभि लोकन को तहां लगाइ। कर्यो निरालम चहुं दिश थाइं ॥ ३२ ॥
दर पर सिला लगी खुल्हवाई। देख्यो मुनी समाधि लगाई।
कसतूरी श्री गुर मंगवाई। ले नवनीतहि साथ मिलाई ॥ ३३ ॥
चरण साथ द्वै सिक्ख लगाए। सनै सनै नित ते मलवाए।
दसम द्वार को पुनहिं घसावा। जिसु ते तन महिं उशन उपावा ॥ ३४ ॥
रोक पौनु लग रही समाधि। सरब भांति के साधन सधि।
चेतनतां तन हुइ आई। बैठे बरख बिते समुदाई ॥ ३५ ॥
राख्यो रोक जु दसमैं द्वारा। सनै सनै सो पौन उतारा।
तूल आदि ते अनिक उपाइ। तिह सरीर को भले बचाइ ॥ ३६ ॥
हुतो जोगता सभि ही करि कै। सनै सनै तन की सुधि धरि कै।
दोनहुं लोचन जबै उधारे[4]। श्री गुर अरजन समुख निहारे ॥ ३७ ॥
सनै सनै मुख जीह्व चलाइव। शुद्ध आतमा म्रिदुल अलाइव।
कौन नाम इन देहु सुनाई। किह ते प्रापति भई बडाई ॥ ३८ ॥
किस के इहु नदंन सभि कहो। समां कौन अबि जग मैं अहो।
जबि बुड्ढे कर जोर बखाना। सोढी बंस शुभ सिंधु समाना ॥ ३९ ॥
श्री गुर रामदास सुख रासि। उपजे चंद सुजसु परकाश ॥ ४० ॥
तिन के सुत बुध सम बुधिवान। धरम आतमा गुन गन खानि।
पाप समुंद्र बिखै जगु सारा। सम जहाज भा डूबणि हारा ॥ ४१ ॥

1. खोदते। 2. अन्यत्र। 3. गोलाकार 4. खोले। 5. कोमल वाणी से बोला।

भए दीप सम नर तनु धरियो। भव सगरे जिन चांदन करियो।
श्री गुर नानक नाम अनूपा। सरब जोति की ज्योति सरूपा॥ ४२॥
सतिनाम सिक्खन उपदेशा। लाखहुं मोख्र-दीन अकलेशा।
सरब जगत महिं जसु बिसतारा। प्रिथी डुलति को भार निवारा॥ ४३॥
तिन ते लई गरूव बडिआई। गुर अंगद बैठे गुरि आई।
अजर जरन जिन के न समाना। सिख्य उधारे बिदत जहाना॥ ४४॥
श्री गुर अमरदास तिन पाछे। बैठे गुर गादी पर आछे।
सकल जगत महिं भगति द्रिडाई। अनिक नरनि कहु दई बडाई॥ ४५॥
श्री गुर नानक महां मसाल। कली काल हति तिमर बिसाल।
लाखों दीपक जिन ते जागे। नर बड भाग पगन जो लागे॥ ४६॥
तिस मसाल ते जगी मसाल। श्री अंगद जी भए क्रिपाल।
इन ते दीपक जगे अनेक। होए ग्यानी सहत बिबेक॥ ४७॥
तिनहुं तीसरी दिपी मसाल। कर्यो चांदना तम गन टालि।
अनगन दीपक जागे जग मैं। परे आनि शरनी जे पग मैं॥ ४८॥
तिस मसाल ते जगी मसाल। श्री गुरू रामदास तम टालि।
तिन के सुत श्री अरजन ऐहु। तिसी जोति की पंचम देहि॥ ४९॥
अबि कलजुग को काल करारा। बरख पंचमो लखहु हजारा।
बिना काल ते जोर कलो सो। तिह मिटाने भांति भली सो॥ ५०॥
इह तीरथ को थानु खनावा। जिस ते तुमरो दरशनु पावा।
अपन प्रसंग सुनावहु अबै। बिसमे चाहति सुनिबो सबै॥ ५१॥
जोगी भयो अनंद बिलंद। सुनि कै पते सिमरि सुख कंद।
कहिन लग्यो 'मैं जोग कमायो। आजु सफल भा दरशन पायो॥ ५२॥
भूत भविख्यत को बड ग्याता। मम गुर हुतो ग्यान को दाता।
तिस की शरनि पर्यो मैं जाई। नाना भांतिनि सेव कमाई॥ ५३॥
मुकति करनि हित मोकहु भाखा। अधिक बिलंब पूरहिं अभिलाखा।
अबि ते तुझ मेरा बर होवा। मोख्र पाइ अग्यानहि खोवा॥ ५४॥
चिरंजीव तव होइ सरीर। बैठहु लाइ समाधि सु धीर।
मठ को साजि इसी थल रहौ। तबिही समां ग्यान को लहौ॥ ५५॥
श्री गुरु अरजन हुइं अवितार। तीरथ बिदतावहिं शुभ बारि।
जबि खनि हैं इस थल को आइ। तोहि निकासहिं निज दरसाइ॥ ५६॥
अपनो प्रशन ठानि तिन पाही। सुनि हो बाक ग्यान जिन मांही।
तबि तेते [illegible] है [illegible]। इम भाख्यो गुरु करुणा ठानि॥ ५७॥

तबि को मैं इहु मठ चिनवाइ। निशच रह्यो समाधि लगाइ।
त्रितका ऊपर परी न लहियो। निज गुरु बर ते जीवति रहियो ॥ ५८ ॥
मुकति होनि को अबि भा काल। इमु कहि जोगी शुद्ध बिसाल।
श्री अरजन के चरनन परियो। बिनै करति भा शांति ढरियो ॥ ५९ ॥
तुमरे बचनन ते कल्यान। करहु सुनावन क्रिपा निधान।
जे करि जगति झूठि इहु होइ। भासति क्यों आछे सभि कोइ ॥ ६० ॥
जे करि साच कहो जग अहै। ग्यानवान किउं झूठो लहै।
आतम को सरूप जिमु लहीए। इक ही, बहुत भांति किम कहीए ॥ ६१ ॥
चलहिं जीव जंगम इहु सारे। किम कूटस्सथ रहैं निरधारे।
जगत रूप इहु आपे बनि कै। किम निरलेप रहति सभि जन कै[1] ॥ ६२ ॥
ब्रह्म आतमा नाम जिसी को। किम सरूप मैं लखौं तिसी को।
जुग अनेक गन सुनी बिताए। भनत्यो थके पार नहिं पाए ॥ ६३ ॥
जिस के ब्रह्म होवै सख्याति। चित शांती तिस के बख्यात।
परे अपर पद जिस के नांहि। सत्य अनंद अनादि आहि ॥ ६४ ॥
ब्रह्म सरूप रिदै बिदतावउ। मुर[2] गुर के बर तुम सफलावउ।
दीरघ महिद बैस जिस तनु की। जतन साथ रोकी गति मन की ॥ ६५ ॥
श्री अरजन को पाइ बहाना। चाहति चित अतिशै कल्याना।
सभिहिनि महिं जोगी अस कहे। देखति नर गन बिसमै रहे ॥ ६६ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रिथे दुतिय रासे 'जोगी निकसनि' प्रसंग बरननं नाम चतर त्रिसती अंशु ॥ ३४ ॥

---

1. सब जीवों को। 2. मेरे। 3. अकथनीय। 4. वीर्य पात होना।

अंशु ३५

जोगी प्रसंग

दोहरा

श्री गुर क्रिपा निधान सुनि लखि कै सुधि अधिकार।
निरनै कीनसि ब्रह्म को तिस प्रति बाक उचार ।। १ ।।

चौपई

भो जोगेश्वर ! अचरज अहै। अकहि[3] ब्रह्म को किमु को कहै।
नाम अगोचर भाखति तांहि। किसी रिखीक बिशै कबि नांहि ।। २ ।।
तऊ जनावन सिक्खनि कारन। करुना करि गुरु करहि उचारन।
रचहि समिग्री जो मन अपने। सत्य प्रतीति होति सभि सुपने ।। ३ ।।
भै को पाइ उठे बरडाइ। त्रिय संगम ते रेत मुचाइ ।।
हसहि कहूं, कबि रुदन पुकारै। कबहुं बिखाद अधिक उर धारै ।। ४ ।।
जो सुपने महिं जाने साचे। सोग हरख तौ तिह छिन राचे।
जेकरि कूर लखहि इहु तबै। सुपन क्रिया इहं होइ न सबै ।। ५ ।।
जिम बाजीगर अपनी माया। मिथ्या लखि सोग न हरखाया।
जबि सुपना इसको मिटि जावै। झूठो लखहि न पुन बिरमावै ।। ६ ।।
पिख्यो केहरी सुपने मांही। जागे ते भागै कित नाही।
सुपन समिग्री सकली लखि इम। हरख शोक को करहि न उर किम ।। ७ ।।
तिसी रीति जावद अग्याना। जगत साच जनियति बिधि नाना।
प्रापति इशट हरख उर भारै। होति अनिशट शोक करि भारै ।। ८ ।।
राग द्वैश भै आदिक जेई। इन को धरति अनिक दुख सेई[1]।
बडे भाग ते सतिगुर पाइ। मिटहि कलेश सु लेति बचाइ ।। ९ ।।
जिम सुपने महि शेर कराल। देखति उपज्यो त्रास बिसाल।
भाग्यो जाइ न, गिर गिर जावै। होति अशक्य डरे, बरडावै ।। १० ।।
इतने महिं जाग्रत नर आयो। दुखति जानि कै पकरि जगायो।
त्रसति जानि, तिम सतिगुर देखहिं। उपदेशहिं सुख देत बिशेखहिं ।। ११ ।।
जनम मरण द्वै तुझ महिं नांही। भूख न त्रिखा न ह्वै तुहि मांही।
हरख शोक को लेश न तो मैं। इन ते परे रूप लखि सो मैं ।। १२ ।।

1. सहता है।

इत्यादिक जबि दै उपदेश। रिदै ह्यान अग्यान अशेश।
तबि इहु जगत झूठि इम मानै। तिस पर श्री गुरु शबद बखानै ॥ १६ ॥

सूही महला ५ घरु १

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि

बाजीगर जैसे बाजी पाई। नाना रूप भेख दिखलाई ॥
सांग उतारि थंमिओ पासारा। तब एको एकं कारा ॥ १ ॥
कवन रूप दिसटिओ बिन साइओ। कतहि गइओ उहु कतते आइओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥
जल ते ऊठहि अनिक तरंगा। कनिक भूखन कीने बहुरंगा ॥
बीजु बीजि देखिओ बहु परकारा। फल पाके ते एकंकारा ॥ २ ॥
सहस घटा महि एकु आकासु। घट फूटे ते ओही प्रगासु ॥
भरम लोभ मोह माइआ विकार। भ्रम छूटे ते एकंकार ॥ ३ ॥
ओहु अबिनासी बिनसत नाही। ना को आवै ना को जाही ॥
गुरि पूरे हउमै मलु धोई। कहु नानक मेरी परम गति होई ॥ ४ ॥ १ ॥

चौपई

बाजीगर जिम बाजी पावहि। अनिक रूप करि स्वांग दिखावहि।
क्रिया करावति अनिक प्रकारा। फिरहि, लरहि बड बांधि अखारा ॥ १४ ॥
इक बाजीगर तिन महिं साचा। बाजी सभि मिथ्या कच पाचा।
सगरी पुतरी पुरख अधीनु[1]। नार्चाहि जथा नचावन कीनु ॥ १५ ॥
किसहि पलावहि, किसे जितावहि। को सोगी को हरख उपावहि।
जबहि संकोचहि सकल पसारा। रहै इकाकी करनै हारा ॥ १६ ॥
तिम जानहुं परमेशुर रूप। निज इच्छा ते करहि अनूप।
अखिल चराचर को उपजायो। अपन शकति ते मधि प्रविशायो ॥ १७ ॥
चेतनता जीवनु कहु होई। क्रिआ करति जिस ते सभि कोई।
दुख सुख ते ह्वै बिखम महाने। इस महिं करम हेतता जाने ॥ १८ ॥
जबि चाहति इन लै कहु करिबे। अखिल बिनासहि एकहु थिरबे[2]।
उतपति कौन रूप इहु होइ। कहो बिनाशमान है कोई ॥ १९ ॥
इस पर सुनहुं अपर द्रिशटांत। जिसु बिधि होइ सुनहुं सभि भांति।
जल ते अधिक तरंग उठंते। लघु दीरघ ह्वै पुन बिनसंते ॥ २० ॥
भए तरंग अह जल सोई। नाम मात्र इक तिन कहु होई।
जे नहिं जानति सो इमु कहि। भयो तरंग सु जल ह्वै नही ॥ २१ ॥

1. पुतलियाँ (बाजीगर) के अधीन हैं। 2. एक ही रहता है।

जो जल जानहिं अखिल तरंगु। सिद्ध करहिं कारज सरबंगु।
पान शनान करहि सभि रीति। त्रिखा मलिनता बिन ह्वै नीत ॥ २२ ॥
अपर तीसरो जोगी सुनो। शुभ द्रिशटांत रिदै इमु गुनो।
कंचन एक बन्यो बहु भांति। कुंडल, कटिक आदि दरसात ॥ २३ ॥
कंचन नाम छोरि करि कहैं। इही कटिक, इह कुंडल अहै।
जे सराफ परखन तिह करैं। कंचन बिना न कुछ मनु धरैं ॥ २४ ॥
नाम अकार गिनहि नहिं कोई। कनक वासतव परखहि सोइ।
तिम ग्यानी को नाना नांहि। सभि महिं ब्रह्म रूप दरसाहि ॥ २५ ॥
भूखन ते पूरब शुभ कंचन। भूखन बने भेद तऊ रंचन।
बिनसे ते बिन कनक न आनु[1]। इम जाननि हैं जे बुधिवान ॥ २६ ॥
प्रिथम जगत ते ब्रह्म सरूप। बन्यो अनिक आतमा अनूप।
नशट होहि नाना बिधि जोइ। बिनां ब्रह्म ते दुती न होइ ॥ २७ ॥
आदि नहीं जो अंत न रहै। मध्य कुतो साचो तिह कहैं।
यांते ब्रह्म रूप सभि जान। अपर अकार भरम ही मान ॥ २८ ॥
अपर रीति हेरहु तिस करनी। जबि ही बीज बीजियो धरनी।
अंकुर होइ पात दरसावहि। शाखा अनिक फूल बिगसावहिं ॥ २९ ॥
सो इक बीज बहुत बिधि भयो। नाना रंग रूप निरमयो।
फल लग कै पुनि पाकन होवा। बीज इकाकी बाकी जोवा ॥ ३० ॥
प्रिथम पिछारी बीजहि रह्यो। मध्यकाल जग के सम लह्यो।
एक ब्रह्म बहु बिधि लखि जाति। जोगी सुनहु और द्रिशटांत ॥ ३१ ॥
लाखहुं घट महिं एक गगन लहि। रहहि अलेप लेप जिस को नहिं।
जबि ही फूट जाहिं घट सारे। सो नभ इक ही परहि निहारे ॥ ३२ ॥
घट ले गमनहिं इत उत मांहि। नभ रस एक न आवहि जाहि।
जो होवहि पूरन सभि थान। तिस को बनहि न आवनि जानु ॥ ३३ ॥
तथा ब्रह्म इक रस सभि मांहि। सभिहि प्रकाशहि लेपहि नाहि।
सत चेतन आनंद सरूप। जीव जीव प्रति अहै अनूप ॥ ३४ ॥
भूत भविख्य सदा ही रहै। सभि जीवन महिं सति इहु अहै।
क्रिया करति चेतनता जानि। इहु भी ब्रह्म रूप पहिचान ॥ ३५ ॥
बिशियन महिं आनंद अग्यानी। निजानंद प्रापति है ग्यानी।
सभि को भूल देहि धरि हंता। पुनहि पदारथ ममतावंता ॥ ३६ ॥

---

1. अन्य।

ए सभि माया केरि विकार। जो भासति हैं नानाकार।
नहीं वासतव जान्यो जाइ। इह माया को रूप कहाइ।। ३७ ।।
मैं नहि जानौं करन बखान। इसै नाम माया—अग्यान।
उभै शकति के धारनि हारी। इक आवरन विखेप उचारी ।। ३८ ।।
करहि सरूप अछादनि जोइ। ग्यानी भनहि आवरण सोइ।
जिह नानत्व प्रतीत कराई। सो विखेप, जहि कहि द्रिशटाई ।। ३९ ।।
उपादान इह सभि जग केरी। है अघटन घटना सु घनेरी।
जथा रजू हुइ बक्र परी है। किह नर निशचै सो न करी है ।। ४० ।।
बिन जाने रजू तिस काल। लख्यो—सरप इह पर्यो कराल।
रजु घिशटान पाइ अग्यान। कारज कीनो सरपु महान ।। ४१ ।।
तिमि माया धिशटान धरंति। ब्रह्म आसरे बिशै करंति।
जथा तिमर हुइ कोशठ अंतर। कोठा आश्रै तांहि निरंतर ।। ४२ ।
बिन कोशठ अंधकार नही है। यांते आश्रै तांहि उही है।
पुन सो तिमर फैल तहि ही को। बिशै करति तिस कोशठ ही को ।। ४३ ।।
छादि लेति चहूं ओरन मांहि। जिस ते द्रिशठि परति है नांहि।
तथा ब्रह्म को माया जानि। आश्रै बिशै करति बुधिवान ।। ४४ ।।
जबि अग्यान सकारज सारे। भ्रम छुट जाइ सरूप निहारे।
परमतत्र को मति करि जाना। एकंकार महत महीयाना ।। ४५ ।।
एक आतमा ब्रह्म अनश्व है। सदा अनादी जो इक रसु है।
आइ न जाइ कितहुं ते कोई। व्यापक सरब गगन सम सोई ।। ४६ ।।
अद्वै अनंदातम सभि थान। निहकल, अक्रै अजै[1] महांन।
गुर पूरन सों मिलि है जबै। हउमै मल निखारहि सबै ।। ४७ ।।
सभिहिनि ते उतक्रिशट जु गति है। सो प्रापति हुइ आनंद सति है।
पुनरावरति[2] नहीं जित होइ। अंम्रित रूप एक रसु सोइ ।। ४८ ।।

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'जोगी' प्रसंग बरननं नाम पंच त्रिसती अंशु ।। ३५ ।।

1. कल्पना रहित, क्रिया रहित तथा अजन्मा। 2. पुन: आगमन नहीं होता।

अंशु ३६

जोगी को प्रसंग

दोहरा

सुनि जोगी बिसमै भयो बानी सुधा समान।
पुनहि प्रशन कीनसि भले निरनै करन महांन ॥ १ ॥

चौपई

कौन बाद करि ब्रह्म सिद्ध किय। जिस ते सरब प्रपंच द्रिशटि थिय।
कंचन भूखन को द्रिशटंति। वाद प्रणाम[1] भयो वख्यात ॥ २ ॥
हेम[2] प्रणाम्यो[3] निज आकार। कंकन कुंडलादि लंकार[4]।
ब्रह्म प्रणंम होति भा तैसे। जगत चराचर उपज्यो ऐसे ॥ ३ ॥
जिस माया को आप बतावौ। सो झूठी कै साच जनावौ।
ब्रह्म सरूप बिलोक्यो कैसे। सूखम ते सूखम कहि ऐसे ॥ ४ ॥
महां पुरख जोगी ते सुनि कै। उत्तर दीनसि सतिगुरु गुनि कै।
विवरतवादि इहु हम न कह्यो। द्रिश्य प्रपंच ब्रहमु ते लह्यो ॥ ५ ॥
जथा रजू ते स्रप उपजंता। भै आदिक ते कंप उठंता।
तैसे ब्रह्म ते जग इहु दीखा। हरख शोक दे तिसे सरीखा ॥ ६ ॥
बिना ग्यान ते मिटे जु नांही। सदा सशंकति दुख सुख मांही।
जनम अनेकन महिं बिरमावति। ऊचै नीचै बहुत भ्रमावति ॥ ७ ॥
वाद प्रणाम अपर बिधि मानो। रूप दूध ते दधि हुइ जानो।
दधि ते बहुर दुगध हुइ नांहि। पूरब रूप नाश भा तांहि ॥ ८ ॥
हाटक होइ न ऐसी भांति। भूखन महिं सरूप दरसात।
बिनसे अलंकार आकार। पूरब रूप हेम ले धारि ॥ ९ ॥
माया करि ब्रह्म ते जग भासा। जिम बाजीगर करे तमाशा।
होहि बिनाश जबै अग्यान। नहिं पुन रहै ब्रह्म बिनु आन ॥ १० ॥
नहिं असत्य नहिं सत्य सु माया। सत्या सत्य भी नहिं बनि आया।
लखहु अनरबचनी[5] इहु यांते। किह बिधि कहिबे जाहि न का ते ॥ ११ ॥

---

1. प्रणामवाद। 2. स्वर्ण। 3. रूप बदलना। 4. अलंकार, आभूषण। 5. अकथनीय।

है अनादि जिसु आदि न मान। अंत पाइ उपजे जबि ग्यान।
सतिगुर के सुनिबे उपदेशु। हतहि अविद्या सहत कलेश ॥ १२ ॥
ब्रह्म आतमा पूरन जोइ। बिशै न किसु इंद्रै कबि होइ[1]।
दिखिय न आंखनि, सुनिय न कानी। रिदै लखहि प्रग्या ते[2] ग्यानी ॥ १३ ॥
इंद्रै बिशै न करि जिन मन को। बिशै करति मन इन सभिहिनि को।
तिम मनु बिशै ब्रह्म नहिं होइ। सभिहिनि को सता दे सोइ ॥ १४ ॥
सभिनि अधार भूत इक अहै। नाना नसहि नीक जे लहै।
सूखम ते अति सूखम ज्ञान। कहियति महां महिद महीआन ॥ १५ ॥
सूरज आदि प्रकाशति जेई[3]। तिस की जोति प्रकाशहि एई[4]।
कारण भूत सकल को एक। हुइ प्रापति उर करति बिबेक ॥ १६ ॥
गगन रूप पसर्यो सभि मांहि। नित कूटसथ[5] न आवहि जाहि।
तिस महिं थिरता मन की पावै। सो जनु अम्रितमय हुइ जावै ॥ १७ ॥
जिनहु ब्रह्म मय जगत पछाता। तजि नानत्व अनंद इक माता।
कहीअति जीवन मुकत सु प्रानी। मूल कलेश अविद्या हानी ॥ १८ ॥
जहां होहि तहिं देह बिनासा। थल अपवित्र कि तीरथि पासा।
तहां अनंद मैं लयता पाइ। जनमु मरन नहिं आइ न जाइ ॥ १९ ॥
रहहु देह कैधों बिनसाइ। नहिं सोचहि उर इकरसु भाइ।
अगनि सिंधु के तट पर होइ। सगली द्वैत जिनहुं ने खोइ ॥ २० ॥
इमु कहि क्रिया द्रिशटि गुर हेरी। करी बिनाश मोहु की बेरी।
सुद्ध ग्यान जोगी उर जागा। जन मादिक मद पीवति त्यागा ॥ २१ ॥
गुरू वाक को लख्यो प्रतापा। जिस के सुनति मोह सभि खापा[6]।
नंम्र भयो चरनन सिर धर्यो। अपनो ग्यान निवेदन कर्यो ॥ २२ ॥
अबि मोकहु निशचा द्रिड भयो। हुतो जानिबो जानि सु लयो।
तुम करुना ते संसै नाशे। प्रापति चेतन आनंद रासे ॥ २३ ॥
अबि शरीर मैं त्यागन करि हौं। जियति रहौं नहिं काज बिचरि हौं।
जो करतब्ब सु मैं करि लीनसि। तुम ने पूर कामना कीनसि ॥ २४ ॥
सुनि श्री गुर ने बहु सनमाना। धंन धंन तुम बड बुधिवाना।
दरशन देहु रहहु हित करीए नाना जग महिं एक निहरीए ॥ २५ ॥
लोकन पर उपकार तुमारा। देखति पापनि हर्रहि बिकारा।
पर्रहि सुमग प्रापति कल्याना। जीव मलीन पूत हुइ नाना ॥ २६ ॥

---

1. कभी किसी इंद्रिय का विषय नहीं होता। 2. प्रज्ञा (बुद्धि) से। 3. जो। 4. वह। 5. नित्य स्थिर एक रूप। 6. नष्ट हो गया।

सुनि सतिगुर ते म्रिदुल सुहाए। पुनु जोगी ने बाक सुणाए।
नरनि उधारन तुमरे हत्थ। अपर किसू नहिं नहिं समरत्थ[1] ॥ २७ ॥
इस हित रावर ने तन धार्यो। सत्य नाम सिमरन बिसतार्यो।
इमु सभि जग को भारजि धरनो। तुम बिन अपर कौन इमु करनो ॥ २८ ॥
मुझ को आइसु देहु समावौं। रहिबे को न संकलप उठावौं।
अबहिं क्रिपा इस बिधि की करो। जिसु ते आपनि तन परहरों ॥ २९ ॥
दिढ निशचा जोगी को जाना। श्री अरजनु बिगसति बखाना।
करो जथा अभिलाख तुमारी। जिमहु उचरहु तिम हम अनुसारी ॥ ३० ॥
पुन बुड्ढे सों गुरू बखानी। जिम इहु जोगी भाखै बानी।
तिम तुम संग होइ करि करीए। पुरशोतम आइसु अनुसरीए ॥ ३१ ॥
हुकम पाइ सतिगुर को खले अवलोकहिं लखि पावन भले।
हुते जि लोक फिरति चहुं पासे। गमनति भए मिले नर रासे ॥ ३२ ॥
निकस्यो जोगी सुनि सुनि धाए। कर्यो बिलोकन मन बिसमाए।
चिरंकाल की आरबला जिह। अचरज इस जुग महिं देखहिं तिह ॥ ३३ ॥
धाइ धाइ हरखहिं बिसमावहिं। अपर अपर सो करहिं बुझावहिं।
पूरबले जुगु को तनु इहु है। दीरघता सभि अंगनि लहि है। ३४ ॥
परम ब्रिध मुख बरन दिपावति। सेत समश्रू[2] केस सुहावति।
निकस वहिर सभि मैं थिर होवा। देख्यो जोगी सभिनि खरोवा ॥ ३५ ॥
कहि इहु थान पुनीत महांना। जो सेवैं नर आन सुजाना।
शरधा धरैं बंदना ठानि। सत्य नाम सिमरहिं गुन गान ॥ ३६ ॥
इस थल कीजहि ताल बिसाला। मज्जति[3] त्यागहिं पाप कराला।
नासति हैं सभि मन के दोश। प्रापत होवै तिह संतोश ॥ ३७ ॥
नंम्र थान पुन कहि खनवायो। बैठि बीच सभि पौन चढायो।
दसमे द्वार जोर को पायो। ब्रह्म रंधर को फोरि करावा ॥ ३८ ॥
तबि सभि लोकन फूल बसाए। जै जै मुख ते बाक सुनाए।
सरब प्रकार बंदना करें। हेरि हेरि अचरज को धरें ॥ ३९ ॥
बहुरो सभिनि म्रितका पाई। जोगी कर्यो अलोप तिथाई।
बिसमति होइ सकल हरि आए। मिलहिं परसपर कहति सुनाए ॥ ४० ॥
चिरंकाल आरबला जांही। मुख पर दिपति जोति बहु तांही।
धंन पुरख ऐसे जग मांही। मनु बिकार जिन परस्यो नांहीं ॥ ४१ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'जोगी को प्रसंग' बरननं नाम खशट त्रिसती अंशु। ३६।

---

1. अन्य किसी में सामर्थ्य नहीं है। 2. सफ़ेद दाढी। 3. स्नान करके। 4. फूलों की वर्षा की।

अंशु ३७

पिंगल प्रसंग

दोहरा

इम जोगी तपसी महद भयो ब्रितंत बिसाल।
सुनि पिखि नर नारी तहां अचरज भे तिसु काल ॥ १ ॥

चौपई

इतने बिखै झगरते तहां। दंपति चलि आए गुर जहां।
सोइ प्रसंग छोरते बरनौं। जथा सुधासर बिद तै करनो ॥ २ ॥
माझे देश पुरी इक अहै। पट्टी नाम जिसी को कहैं।
तहिं को न्रिप लघु राज करता। तुरकन के अनुसारि रहंता ॥ ३ ॥
तिस ग्रिह सुता पंच जनमाई। बधति आरबल रूप सुहाई।
सुंदर अंगु रंग तनु गोरा। कमल लोचनी उरज कठोरा ॥ ४ ॥
तिनि महिं एक हुती सति संगति। अलप आरबल कोमल अंगनि।
प्रभु के गुन संतन ते सुने। बैठहि निकट जबहिं मिलि भनें ॥ ५ ॥
जीव जीव प्रति तीनहुं लोक। निति पालत सभि, प्रभू अरोक।
जो जिस जूनि. जहां हुइ प्रानी। तहां देति भोजन गुन खानी ॥ ६ ॥
श्री गुर नानक कर्यो शलोक। पठति बिचारति सो प्रभु लोक।
तिसु ते सुनि कंन्या दिढ कीनो। सो अबि इस थल लिखि करि दीनो ॥ ७ ॥

श्री मुखवाक ॥

सलोक म० ॥ २ ॥

पुरखां बिरखां तीरथां तटां मेघां खेतांह ॥
दीपां लोआं मंडला खंडा वर भंडांह ॥
अंडज जेरज उतभुजां खाणी सेत जांह ॥
सो मिति जाणै नानका सरां मेरां जंताह ॥
नानक जंत उपाइकै संभाले सभनाह ॥
जिनि करतै करणा कीआ चिंता भी करणी ताह ॥

दोहरा

सुनि स अरथ गुर शबद को कंन्या निशचै कीनु ।
तीन लोक पति परम गुर रिजक सभिनि कहु दीन ।। ८ ।।

चौपई

इक दिन सभि कंन्या मिल करि कै । कथा अनेक सुनाइं बिचंरिकैं ।
निज पित की भाखति बडिआई । हमहिं पदारथ अधिक भुगाई ।। ९ ।।
खान पान पहिरन को दाता । बसत्र बिभूखन दे बख्याता ।
सभि ते सुनि तिस कंन्या कह्यो । पालति प्रभू सभिनि को लह्यो ।। १० ।।
दातनि को दाता इक राम । करहि जगत के पूरण काम ।
सभि दिनु सभि को भोग भुगावै । करि अहार को जीवति पावै ।। ११ ।।
सो न देय सभि लहैं बिनास । तिस बिन कहां जियन की आस ।
राउ, रंक, गज, चीटी जोई । सभि को दाता त्राता सोई ।। १२ ।।
अपर बिखै समरथ है कहां । जीवनि जो पालहि जहिं कहां ।
इम सुनि कन्या सभि ही कहैं । इम आपित प्रति पालति रहैं ।। १३ ।।
नहि देख्यो देतो कित राम । दियो जाइ किसु के कबि धाम ।
अन्न बसत्र सभि करिके त्यार । किस को कौन देति किस बारि ।। १४ ।।
इम सुनि कै कंन्या लर परी । जाइ पिता के ढिगि सुधि करी ।
हम सभि कहहिं-पिता ते खावति । इह कुछ बात अपर बिदतावति ।। १५ ।।
जो प्रतिपारहि देति हमेश । लघु तन ते जिन कीन बिशेशु ।
सुख सों शुभ अहार हम करिहीं । किसू बात की चित न धरिहीं ।। १६ ।।
इह नहि मानै मत किय न्यारो । हम सभि कहि कीनसि निरधारो ।
सुननि त्रिपत पित मूरख रोसा । नहि ईशुर को लख्यो भरोसा ।। १७ ।।
अपने राज मान महि फूला । प्रभु प्रतिकूल भए ते भूला ।
सभि कंन्या निज निकट हकारी । आशै समझन इच्छा धारी ।। १८ ।।
प्रथक प्रथक तिन बूझन लागा । कहु तूं किस कौ भुगतहिं भागा ।
सभि ने कह्यो पिता हम तेरा । खावहिं पहिरहिं दरब घनेरा ।। १९ ।।
प्रति पारति नित देति अहारा । हम सभि भुगतहि भाग तुहारा ।
निज भगनी सभि ते पसचाती । राज कुइर बोली इस भाती ।। २० ।।
हे पित भाग एक को दूवा । भुगतहि, एक नहीं कबि हूआ ।
निज निज भाग अधिक अरू घाट । भोगति जग महि रंक सु राट[1] ।। २१ ।।
सुनि पित क्रोध कर्यो उर भारी । सभि के सुनि ते गिरा उचारी ।
अमुक रंक हम जाति मझारी । तिस के पुत्र कशट तन भारी ।। २२ ।।

1. राजा ।

हाथ पाव अंगुरी झरि गई। अस को मैं जबि तुहि दे दई।
अपन भाग तबि भुंचनि करीअहि। नरक समान कशट को भरीअहि ॥ २३ ॥
सुनि कंन्या ने पित की बानी। सोइ सीस धरी मन मानी।
तिस की मात सु बरजति रही। तऊ पिता ने रिस करि कही ॥ २४ ॥
कर्यो कंत सो निशचै ठाना। अपर थान को ब्याहु न माना।
कह्यो प्रथम सोई पति मेरा। तथा भाग मैं अपनो हेरा ॥ २५ ॥
रहे हटाइ लोक मिलि घने। कुशटी संग कशट बहु भने।
रहे फेर, सो फिरी न फेरे। फेरे फिरी साथ तिसु केरे ॥ २६ ॥
नहिं दाइज को न्रिप नै दीना। मन मूरख ने हठ दिढ कीना।
कंन्या मन प्रभु भावी मानि सम ईशुर के सो पति जानि ॥ २७ ॥
सदन सासुरे दारिद महां। पहिरनि खान न प्रापति जहां।
केतिक दिन दुख भूख को सह्यो। बहुर अनत कित चलिबे चह्यो ॥ २८ ॥
तिस पुरि रही न बहु दुखिआरी। पतिव्रत धरम महां द्रिढ धारी।
पति कुशटी को धरि बिच खारी। अपर ग्राम ते मांगि अहारी ॥ २९ ॥
पित के पुरि न जाचना करि हौं। अपर पुरनि ते उदर सु भरि हौं।
जाचति अन्न आनती ततो। पति अरु आप खाइ ले जेतो ॥ ३० ॥
महां सुधरमा धारति धरमु। निज पति ते नहिं धार्यो भरमु।
सीस उठायो फिरै सु जहिं कहि। जाचहि अन्न पोखिबे[1] हित तहिं ॥ ३१ ॥
निकट ग्राम के देति उतारा। फिरहि सदन ते ल्याइ अहारा।
बिचरति ग्रामनि इसी प्रकारी। आई गुर के चक इक बारी ॥ ३२ ॥
देग गुरु की लीनि अहारा। पति जुति खाइ रिदै सुख धारा।
पुन अगले दिन बदरी बन मैं। खारी जाइ धरी तबि तिन मैं ॥ ३३ ॥
ग्राम बिखै नर हरति जोई। करति गिलान तरक ते सोई।
इस हित ते पति दूर बिठायो। खारी सहत सु छाइ टिकायो ॥ ३४ ॥
ग्राम तुंग[2] को आपि सिधारी। भिख्या हित लैबे इछ धारी।
जो श्री रामदास खनिवायो। दुख भंजनि बदरी तर भायो ॥ ३५ ॥
तहिं कुछ टोवा बिनां चिनारी। रह्यो हुतो नहिं किसु निरधारी।
तिस महिं पर्यो नीर कुछ थिरियो। बदरी तरु के तर सो ढरियो ॥ ३६ ॥
हुती मेख की तबि संक्रांति। समो पुरब को तबि बिरतांति।
सहिज सुभाइक बाइसु आयो। बैठि तरु पर जल द्रिशटायो ॥ ३७ ॥
हुतो त्रिखातुर उतर्यो तरे। पंच बेर चूंचन को भरे।
जबि अंतर जल प्रविश्यो जाइ। रिदा शुद्ध हुइ बुधि बिदुताइ ॥ ३८ ॥

1. पोषण करने के लिए। 2. एक गाँव का नाम।

कर्यो शनान पुरब के काल। भयो स्वेत तन रुचिर मराल।
सो पिंगल देखति सभि रह्यो। जथा काक ने शुभ फल लह्यो ॥ ३९ ॥
उदै भाग ते उर फुरि आई। इसु जल की महिमां अधिकाई।
मनहुं पुंन मम बाइस आयो। नीर महातम को दरसायो ॥ ४० ॥
बिनां बिलम ते इत उत हाला। जो निज बल ते सकहि न चाला।
खारी ते निकस्यो गिर पर्यो। रिड़त रिड़त पहुंचन तहिं कर्यो ॥ ४१ ॥
तूरन तीर नीर को छुह्यो। कर्यो शनान अधिक फल लह्यो।
पंक समेत सु मरदन करि करि। मज्जति महां चौंप को धरि धरि ॥ ४२ ॥
कर पग जुग गर गर गिर परे। ततछिन भए अरुज समसरे।
सकल अंग ते रोग नसायो। कंचन बरन रंगु मन भायो ॥ ४३ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'पिंगल प्रसंग' बरननं सपत त्रिसती अंशु ॥ ३७ ॥

अंशु ३८

पिंगल प्रसंग

दोहरा

पिंगल मज्जन जबि कर्यो भयो सरीर अरोग।
बिसमत बुधि महिं देखि फल करि अनंदु हरि सोग ॥ १ ॥

चौपई

मनहुं पान अंम्रित को कर्यो। जरा आदि रुज सभि परहर्यो।
जनु समरथ सुर होइ प्रसंन। कर्यो शकति निज ते तन अंन[1] ॥ २ ॥
सुंदरता मंदिर तनु होवा। अखिल बिकारन को तबि खोवा।
प्रभू क्रिपा असु काइआं धारी। जिस ते हुइ न सकहि चिनारी[2] ॥ ३ ॥
नख शिख ते बोर्यो निज गात। बार बार मज्जति हरखाति।
जथा अचानक नरकी[3] जीव। सुरगी बनहिं महां सुखि थीव ॥ ४ ॥
जनमु रंक चिंतामणि पाई। हरख्यो जिमु नव निधि घर आई।
बसत्र बिभूखन सुंदर जोग। इमु सुंदर बन गयो अरोग ॥ ५ ॥
तिस बदरी तरु के तर थिर्यो। खारी उलट सु आसनु कर्यो।
बैठि रह्यो मनु मोद बढाइ। प्रिया प्रतीखति द्रिग तित लाइ ॥ ६ ॥
भिख्या तुंगु ग्राम ते लीन। राजु कुइर पतिब्रता प्रबीन।
अपुने धरमु बिखै सवधाना। निज पति बिनु कबि चहे न आना ॥ ७ ॥
खेद बिसाल सहै सभि तनु मैं। तऊ न डोलति है कबि मन मैं।
न्रिप दुहिता अपदा अस झाली। तऊ धरम ते भई न खाली ॥ ८ ॥
जबि तिस थानु आन करि देखा। बैठ्यो सुंदर पुरख विशेखा।
इहु क्या भयो न जान्यो जाइ। मम पति नहिं दीसति इस थाइं ॥ ९ ॥
इहु को बैठ्यो अघ गन करता। लखी अति मम भरता को हरता।
सुकचि दूर ते ऊच उचारी। को तूं अहैं ? इहां दुरचारी ॥ १० ॥
मत पति कहां ? इहां तजि गई। तुंग ग्राम ते तूरन अई।
अबि मैं करौं पुकार उदारा। गहि लैहौं जे कीन संहारा ॥ ११ ॥

---

1. अन्य। 2. पहचान। 3. नरक सा।

नांहि त मोहि बतावहु पति को। रह्यो जियति जे किय इत उत को।
तूरन करि नहिं बिलम लगावहु। मम भरता को आंख दिखावहु ॥ १२ ॥
सुनति पीआ ने कीनु बखानु। मैं तेरो पति लेहु पछानु।
हे धरमग्ग ! भरमु न कीजहि। हे पतिब्रते ! ब्रितंत सुनीजहि ॥ १३ ॥
पूरब भागु जगे अबि मेरे। फल प्रापति औचक इसु बेरे।
करति शनान काक मैं हेरा। भयो हंस सित बरनु बडेरा ॥ १४ ॥
इसु जलु को फलु मैं तबि जाना। नीठि नीठ द्रुत आनि शनाना।
भयो अरोग अंग तन सुंदर। मैं पति सो, न भरम उर अंदर ॥ १५ ॥
मिलहु आन मोकहु अब प्यारी। तुव प्रताप मुझ भा सुख भारी।
सुनति रिसी बच ऊच उचारा। मुझ हित तैं मेरो पति मारा ॥ १६ ॥
कैसे कुशट युकति अस होवति। कर पग बिन के कर पग जोवति।
नहिं निशचे चित आवति मोही। अघ की शंका ह्वै बिच तोही ॥ १७ ॥
जे करि मेरो पति मरि गइऊ। नहिं जीवौं निज 'प्रानन हइऊ'[1]।
तोहि गहाइ आप मरि जाऊं। नहिं पर पुरख अंग संग लाऊं ॥ १८ ॥
इत्यादिक ऊचे बच टेरति। सुनि गन लोक मिले तिन हेरति।
दीनहुं निज निज ब्रिथा सुनाई। सुनि करि किह न समझ नर आई ॥ १९ ॥
तबि सभिहिनि तिन को समुझावा। क्यों तुम झगरहु बाद उठावा।
अपर न करि हैं न्याउं तुमारा। श्री गुर अरजन इहां उदारा ॥ २० ॥
अंतरजामी सो सभि जानहि। करि निरनै सचु बाक बखानहिं।
तिन को कह्यो साच ही जनीअहि। निहसंसहि दोनहु बच मनीअहि ॥ २१ ॥
इम सुनि कै त्रिय उर हुलसाई। सतिगुर ते मम संसै जाई।
तबि दोनहुं कुछ नर लै साथ। गए जहां गुरु अरजन नाथ ॥ २२ ॥
जोगी को ब्रितंत ह्वै रह्यो। महां अचंभा सभि उर लह्यो।
दुतिय अचंभा इहु लै गई। हाथ जोरि पद बंदति भई ॥ २३ ॥
तिस के पति ने मसतक टेका। बैठे सर तट जलधि बिबेका।
निकट भीर ह्वै नर समुदाइ। करहिं कार को थिर ढिग थाइं ॥ २४ ॥
खरे भए दोनहु कर जोरि। श्री अरजन पिखि करि इन ओर।
बूझ्यो 'कारज कौन तुमारा। किम घिर रहे 'करहु बिसथारा' ॥ २५ ॥

दोहरा

कहति भई कर जोरि कै 'श्री गुर अरजुन नाथ।
सुजस आपको बिदिति है करामात अति साथ ॥ २६ ॥

---

1. प्राणों को नष्ट कर दूंगी।

चौपई

श्री नानक सुनियति जग भए। सिद्ध पीर आदिक जै कए।
महां पुरख गंभीर उदारा। जिन को जस गावति जग सारा ॥ २७ ॥
दासन को दे ग्यान बडाई। सो अबि लग जग महिं दिप ताई।
दुरे ब्रिद दंभी जहिं कहां। तेज प्रकाश दसहुं दिश महां ॥ २८ ॥
तिन सथान रावरि अबि अहो। रिदे बिखै सभि ग्याता लहो।
संसै करदम[1] धसि मन मोरा। धरम छिदन ते डर उर घोरा ॥ २९ ॥
बाक तुमारो होइ सहाई। इसी हेत मैं चलि करि आई।
पांच सुता हम पित के हुती। इक समान ही तन मैं दुती ॥ ३० ॥
पित रिस करि कुशटी पति दीना। धरम आपनो मैं द्रिढ कीना।
तिस को खारी महिं धरि लीना। निकसी बहिर फिरन शुभ चीना ॥ ३१ ॥
जाचति फिरी सु भरता लैकै। भोजन आनि जाचना कै कै।
पति को देय पिछारी खावों। निस बासुर मैं सेव कमावों ॥ ३२ ॥
मम पति को पिखि करैं गिलान। ऐंठहि नाक सु 'दूर'—बखान।
तुमरे चक्क ते है दिश पुरा[2]। तहिं बदरी तरु है इक खरा ॥ ३३ ॥
कुछक निम्र थल नीर खर्यो है। सिर ते तहां उतार धर्यो है।
पति समेत खारी लि टिकाई। जाचना आन ग्राम महिं धाई ॥ ३४ ॥
उत्तर दिशा बसहि है तुग। तहां जाइ मैं अंन सु मंगि।
बिते जाम जुग चलि करि आई। पति पिंगल नहिं पिख्यो तिथाई[3]। ३५ ॥
बिनां कुशट कर पग जुति सार्यो। आइ तहां इहु पुरख निहार्यो।
मुझ मन महिं नहिं निशचै होवा। किस प्रकार भा नवा निरोवा ॥ ३६ ॥
सकल बात सुनि कै तिय केरी। मानव साथ भन्यो तिसु बेरी।
पिंगल देहि बिखै बडि रोग। तूं कहु कैसे भयो अरोग ॥ ३७ ॥
सकल जथारथ बात सुनावहु। नांहि त बड सजाइ को पावहु।
कपट जि कर्यो भारजा हेति। बसहि नहीं इहु तोहि निकेत ॥ ३८ ॥
सुनि गुर ते तिह मानव कह्यो। सरब ब्रितांत-सुनहुं जिमि लह्यो।
बदरी सों धरि करि मम खारी। जबि इह मांगन हेत सिधारी ॥ ३९ ॥
तबि इक बाइस चलि ढिग आवा। करे पान अरु पंख भिगावा।
भयो सुपेद रंग तिस केरा। धरी मराल प्रभा तिस बेरा ॥ ४० ॥
श्याम वरन सगरो मिट गयो। जन सबूण[4] संग उज्जल भयो।
तबि हूँ मैं जान्यो निज आतम। इस जल को है महां महातम ॥ ४१ ॥

1. संशय रूपी कीचड़ में धंसना। 2. पूर्व दिशा में। 3. उस जगह। 4. सबुना।

हाल चाल मैं तजि करि खारी। जाइ सपरश्यो सुंदर बारी।
जबि पूरबि मैं हाथ भिगोए। तात काल अंगुरी जुति होए ॥ ४२ ॥
सारो पर्यो बीच मैं जाई। असु काइआं[1] अपनी द्रिशटाई।
निज तिय को कहि रह्यो बथेरा[2]। मान्यो बाक नहीं को मेरा ॥ ४३ ॥
कहिन लगी श्री गुर इस काल। सभि ग्याता तिन रिदै बिसाल।
अंतरजामी सभि की जानहिं। बाक बखानहि सो हम मानहिं ॥ ४४ ॥
मोहि भारजा झगरति आई। यांको दीजहि साच जनाई।
बहु नर मिले सकल न कह्यो। रावर को सरबग सभि लह्यो ॥ ४५ ॥
सतिगुर सभा बिसम भई ऐसी। सुनति मौन धरियो सभि बैसी।
श्री अरजन जी बाक बखाना। बैठहु शबद सुनहु निज काना ॥ ४६ ॥
हम कहि हैं को घटी पिछारी। साच झूठ करि देहिं निरारी।
इम कहि नैन मूंद किय ध्याना। मन ठहिरायो गुरू सजाना ॥ ४७ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'पिंगल' प्रसंग बरननं नाम अशट त्रिसती अंशु ॥ ३८ ॥

1. काया। 2. बहुत।

अंशु ३६

श्री अंम्रितसर बिदतनि प्रसंग

दोहरा

श्री अरजन सरबग्य गुर नेत्र मूंदि किय ध्यानु ।
तिस छिन श्री गुर अमर जी दई दिखाई आन ।। १ ।।

चौपई

ध्यान थिरे उर महिं गुर आए । सकल बात को भेव जनाए ।
'इह नर साची भाखति बात । जबि सु न्हात तहिं, तबि संक्राँत ।। २ ।।
हम ने पिता तुमारो प्रेरा । जाइ तडाग लगाइ बडेरा ।
तबि इक ताल तहां खुनवायो । जहिं इह कुशटी नीर नहायो ।। ३ ।।
तुम को उचित इहै इस काल । करहु लगावन तालु बिसाल ।
बहुत काल भा लघु खुनवायो । चहुं दिश ते जल ढरि तहिं आयो ।। ४ ।।
म्रितका परी गयो भरि सोइ । चिन्ह पछान मात्र तहिं होइ ।
हेत महातम के बिदतावन । नहिं कीनस सभि बिखै जनावन ।। ५ ।।
अबि महिमा के सहत बिसाला । बिदतावहु सिरजहु शुभ ताला ।
श्री अंम्रितसर धरी अहि नामू । चहुं दिश महिं सुपान अभिरामू ।। ६ ।।
रामदासु पुरि रामदासु सरू । इहु भी नाम कहहिं नारी नर ।
जननी पित गुर को उर हेरा । नमो करति भे हरख बडेरा ।। ७ ।।
श्री अरजन गुरु अंतरजामी । मिस करि बिदतावति थल स्वामी ।
बहिर मुखी ब्रिति नयन उधारे । मनहुं कमल दल भे भुनसारे ।। ८ ।।
परम प्रसीद बखान्यो तिय सों । 'सरद संदेह दूर करि हिय सों ।
निशचै इही तोर भरतारा । तैं कीनस हम पर उपकारा ।। ९ ।।
चिरंकाल के चाहति एसे । तीरथ परखनि होवहि कैसे ।
श्री गुर रामदास बच कहिओ । कऊआ नाइ हंस जहिं लहिओ ।। १० ।।
सो श्री अंम्रितसर जी जानहुं । इम परखन तिस थल को मानहुं ।
तुम ब्रितांत ते निशचै भइऊ । जगत नरन को संसै गइऊ ।। ११ ।।

श्री मुखवाक ॥

महला ४ ॥

अंम्रितसरु सतिगुरु सतिवादी जितु नातै कऊआ हंसु होहै ।
अबि तुम निसा ग्रास महिं चलो । भोर भए हम संग ले चलो ।
पावनि थान जनावनि करीअहि । तरुवरु बदरी तर वर तरीअहि ॥ १२ ॥
सिमरहु सत्तिनामु लिव लाइ । जनम मरन दुख ते छुटि जाइ ।
ले करि गए जामनी बसे । जिन दरशन ते बड अघ नसे ॥ १३ ॥

दोहरा

प्राति भइ उठिकै गुरु क्रिपा सौच की कीन ।
पिखि प्रकाश चितवति रिदै-सर सिरजन हित दीन ॥ १४ ॥

चौपई

सिख्य पठ्यो दंपति बुलवाए । तिन को अपने करि अगुवाए ।
ले करि संग नरनि की भीर । गमन कीनि श्री अरजन धीर ॥ १५ ॥
कहति परसपर नर समुदाइ । 'भा अदभुत दोनहुं द्रिशटाइ ।
लाखहुं बरखन को जु प्रबीन । उत्तमु जोगी दरशनु कीन ॥ १६ ॥
अवनी अंतर मठ महिं बैसा । अचल थिर्यो हुइ काशट जैसा ।
लगी समाधि चढ़ाए पौन । समों न जानहि बरतै कौन ॥ १७ ॥
ऐसे पुरख पिखे निशपाप । इह सभि श्री सतिगुरु प्रताप ।
अबि दूसर अदभुत को देखो । जिस के तन महिं कुशट बिशेखो ॥ १८ ॥
कर शाखा जिस की झर परी । जल शनान ते तैसी करी ।
तिस थल को चलि कै पिखि लेहु । जिह को महां महातम एहु ॥ १९ ॥
इम कहि चित महिं चौप धरंते । अदभुत अवलोकति बिसमंते ।
दंपति सभि ते चलति अगारी । श्री अरजन गमने उपकारी ॥ २० ॥
संग भीर नर की सभि आवै । सनै सनै सगरे चलि जावैं ।
अधिक अनंदति उतपल लोचन । महिद प्रफुल्लित संकट मोचन ॥ २१ ॥
नर नारी परख्यो तबि थानि । दुख भंजन बदरी तरु आनि ।
खरे होइ करि सो दिखराई । श्री गुर ! जल जुति इह शुभ थाई ॥ २२ ।
इहां गई धरी, मज्यो जल मैं । फल बिसाल प्रापति इस थल मैं ।
श्री गुर भन्यो 'इही दुख भंजनि । जिस ते तुम होए मन रंजनु ॥ २३ ॥
इह अंम्रित महिं मज्जनु कीना । जिस ते भई देहु रुज हीना[1] ।
दंपति भनति जोइ कर दोऊ । श्री सतिगुर जी है इह सोऊ ॥ २४ ॥

---

1. निरोग।

तिन ते सुनति सथान प्रताप। नमो कीन कर जोरे आपि।
इमु निसचे करि तीरथ नीके। पूरन भए मनोरथ जी के॥ २५॥
नर प्राक्रित सम भए प्रसंन। सदा स्नबग्ग गुरू धंनु धंनु।
नर समुदाइन महिं तबि भन्यो। धरे चौप चित महिं सभि सुन्यो॥ २६॥
सतिगुर अमरदास की आइसु। ले पित हमरे इहठां आइ सु।
पावन तीरथ को बिदतावनि। लाइ ब्रिंद नर कीनि खनावनि॥ २७॥
नहीं सपूरन कारजि होवा। गोइंदवाल जाइ गुर जोवा।
पुन जल सों बहि म्रितका परी। खनी थाइ सो पूरन करी॥ २८॥
चिन्ह मात्र इहु जान्यो जाइ। रहे चाहि इहु थल नहिं पाइ।
अबि सतिगुर सभि काज सवारे। उद्‌दम करिहु सिक्ख अनुसारे॥ २९॥
धन ते तन ते मन ते बच ते। तीरथ कार करहिं लहिं सचु ते।
जहिं कहिं ते मजूर चलि आवैं। करहिं कार मिझ्नत नित पावैं॥ ३०॥
पंचाम्रित करिवाइ सु घनो। करि अरदास नाम गुर भनो।
नर समुदाइन महिं बरतायो। कर्यो महुरति बिघन नसायो॥ ३१॥
तीखन खननी लै करि हाथ। म्रितका खनी प्रिथम गुर नाथ।
सगरे सिख आग्या को पाए। लगे सेव को चौंप उपाए॥ ३२॥
किनहुं गही खननी कर मांही। खनहिं करहिं बल प्रेम उमाही।
किनहुं टोकरी सिर पर धरी। बहुत भारि हाथनि सों भरी॥ ३३॥
केतिक लै करि वहिर गिरावहिं। को कहि करि उतसाहु वधावहिं।
अति अनदंता उर मैं होई। कार तलाव लगे सभि कोई॥ ३४॥
आप खरे हुइ सभिनि मझारी। कार करावहिं गुर उपकारी।
देखति कार चौगुनी होइ। उद्‌दम करहिं अधिक सभि कोई॥ ३५॥
सगरे दिन महिं कार करावहिं। संध्या ग्राम बिखै चलि जावहिं।
देग होइ गुर के दरबारा। छुधिति सरब तहिं खाइं अहारा॥ ३६॥
इक दिन गुर संतोखसर गए। सिख गन संग पिखति बिगसए।
तट पर खरे होइ कहि बानी। इसकी महिमा होइ मंहानी॥ ३७॥
हुइ संतोख सर सारथ नामू। समां पाइ बनि है अभिरामू।
हुइ चहुं दिश पाको चहुं कौन। इस महिं मज्जहिंगे नर जौन॥ ३८॥
सत्तिनामू सिमरहिं गुरु बानी। कितिक समों सेवहिं जे प्रानी।
तिन के उर उपजहि संतोख। सगरे तजहिं कलेश रु दोख॥ ३९॥
जथा लाभ संतोख बिसाला। अहै मुक्ख जे सद गुन जाला।
पाइं सिक्ख सुख लहैं सदीवा। महां महांतम तीरथ थीवा॥ ४०॥

अबि श्री अंम्रितसर की कार। गुरु आग्या को सिर पर धारि।
करिवावहिं पूरब खनवाइ। पाक इंटका सों चिनवाइ ॥ ४१ ॥
हरिमंदर सुंदर सिरजै हैं। गुरु दरबार सदा जहिं ह्वै है।
इम कहि श्री गुरु क्रिपा निधान। चित महिं चहहिं बनहिं सौपान ॥ ४२ ॥
निति प्रति बैठहिं तट पर जाइ। संगत सगरी सेव कमाइ।
खनि खनि म्रितका वहिर निकारहिं। धरि शरधा 'गुर धंन' उचारहिं ॥ ४३ ॥

कवियोवाच ॥

चौपई

केतिक सिख साखी इहु कहैं। श्री गुर रामदासु ते लहैं।
निकस्यो जोगी तिनहुं हदूरि। पिंगल की दुख होयहु दूर ॥ ४४ ॥
प्रशनोतर इस के हित करनों। सो मैं नहीं ग्रंथ महिं बरनों।
बिना खने जल कैसे तहां। इत्यादिक तरकन गन महां ॥ ४५ ॥
जे गुर रामदास ते होवा। तौ भी इशटापति हम जोवा।
महिमा सतिगुर की इस भांति। पठति सुनति चित उपजति शांति ॥ ४६ ॥
गुर जसु करनि हमारो आशै। सूरज सम जग महां प्रकाशै।
संसै उडगन भ्रम तम नासी। बिगसावति सिख पंकज रासी ॥ ४७ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे श्री अंम्रितसर बिदतनि प्रसंग बरननं नाम एक ऊन चत्वारिंसती अंशु ॥ ३८ ॥

अंशु ४०

श्री अंम्रितसर प्रसंग

दोहरा

श्री अंम्रितसर कार को लगे मनुख समुदाइ।
सदाबरत श्री गुर कर्यो, करहिं कामना पाइ ॥ १ ॥

चौपई

को निज ढिग ते करहि अहारा। निस दिन करहि ताल की कारा।
जित दिशु अधिक खुनावनि चाहैं। तित श्री अरजन पद करि जाहैं ॥ २ ॥
फरश हीहि बैठहिं गुर गादी। करहिं दास क्रित हीन प्रमादी।
गुर दरशन दरसहिं दिनु सारे। धरहिं अनंद हुइ दुगनी कारे ॥ ३ ॥
दुख भंजनि ढिग थरा करावहिं। तहि गुर बैठहिं कार करावहिं।
जबि इस दिश ते खन्यो महांना। अपर थान बैठन को ठाना ॥ ४ ॥
द्वार दरशनी जिस थल कर्यो। दक्खन दिश बदरी तरु खर्यो।
तहा जाइ बैठहिं गुर पूरन। म्रितका खनहिं निकासहिं तूरनि ॥ ५ ॥
जिनहुं नरहुं के वर बडि भागे। रहि हजूर सर सेवा लागे।
सत्तिनाम को सिमरनि करैं। खनहिं टोकरी सिर पर धरैं ॥ ६ ॥
उत्तर दिश तलाव को तीर। भाई साहिब बुड्ढा धीर।
करहि करावहिं कार बिसाला। खनहिं निकासहिं फिरहिं उताला ॥ ७ ॥
देश बिदेशन कितिक मसंद। जहि धरमसाल मिलहि सिख ब्रिंद।
दूर देश कै नेरे होइ। तीरथ कार करहि सभि कोइ ॥ ८ ॥
सतिगुर की प्रसन्नता अति ह्वै। चार पदारथि तिसु कर गति ह्वै।
गुरु शरधा उर धारहि जोइ। सो सभि आइ प्रापती होइ ॥ ९ ॥
इम सुनि कै सतिगुर की बानी। लिखे हुकम नामे सभि थानी।
जहि कहिं सिक्ख शीघ्र ही धाए। श्री गुर को फरमान सुनाए ॥ १० ॥
अधिक खुशी गुरु ह्वै सुनि बात। सिख्य भए सभि हरखति गात।
बसत्र दरब ले ले उपहारो। आए जित कित ते सु हजारों ॥ ११ ॥
होइ विहावल सभि को देति। भाउ भूर करि सिख गन लेति।
संगति को दरशन सभि काल। देति रहैं बहु करें निहाल ॥ १२ ॥

किह सुति देहि दरबु किसि दीत। किस के ह्वै गन पसू निकीत।
किह को दुख काटहि तन रोग। दें किस को सभि जग के भोग ।। १३ ।।
किह वैराग, नाम किस देई। किसि के उर बिकार हरि लेईं।
शांति दाति, किसि धीरज खिमा[1]। दया, संतोश दयो किस जमां[2] ।। १४ ।।
भाउ भगति सिमरनि सतिनामू। न्हान, दान, सुचि, संजम सामू।
ब्रह्म ग्यान किसि के उर देति। किस हंता ममता हरि लेति ।। १५ ।।
दोनहुं लोकन को सुख काहूं। प्रेमा भगति देति मन माहूं।
महां प्रीति जागी सिख गन मैं। करहिं कार लाहा लखि मन मैं ।। १६ ।।

दोहरा

इम उदार तर आतमा नर गन कीनि निहाल।
फूली कीरति मालती घरि घरि बिखै बिसाल ।। १७ ।।

चौपई

जिस के होइ कामना आवै। तीरथ कार करहि चित लावै।
केतिक सिख्यन के इह नामू। बरनन करौं सुनहुं अभिरामू ।। १८ ।।
भाई बुड्ढा जुति पखारू। सुत पौत्रादि सहत करि कार।
सिख भाई भगतू गन धामू। करहि कार सिमरहिं सतिनामू ।। १९ ।।
मंझ पिराणा सिक्खी पोता। करहि कार उर अनंद उदोता।
भाउ भगति को भौन हुलास। करहि कार भाई गुरदास ।। २० ।।

दोहरा

पुरीआ, चूहड चौधरी, पैडा किशना नामु।
बाला, सुघड, त्रिलोक है, सामुंदा गुन धाम ।। २१ ।।
बूला, चंडी, तुलसीआ, भागीरथ, कल्यानु।
लालू, बालू, हरीजन, गक्खू, टोड महांन ।। २२ ।।
झंझू, किदारा, गोइंदा, मोहण, कुक्का जानु।
बाला मरवाहा अपर जोधा धुट्टा आन ।। २३ ।।
इत्यादिक केते गिनहिं सिख्य लगे सभि कार।
गन मसंद सभि देश ते संगति ल्याइं हजार ।। २४ ।।

चौपई

दिन प्रति गन मसंद हरिखावें। नई नई संगत नित आवै।
परब बिसाखी आदिक जेय। मेला महां उपाइन देय ।। २५ ।।

1. क्षमा। 2. यम (योग का एक अंग)।

सो सगरे सर की करि कार। बहुर जाइ निज ग्रेह मझार।
को इक दिन को द्वै दिन करैं। को त्रै दिन रहि कैं हित धरैं ॥ २६ ॥

को दस दिन, को पख्य रहति है। कार करहि बड लाभ लहति है।
को इक मास, मास दुइ रहैं। को त्रैं मास, खशट फल लहैं ॥ २७ ॥

जिस को होहि कामना आवै। तीरथ कार करै चित लावै।
सो अपनी पूरन कर लेति। सदा बरत कीनसि, गुर देति ॥ २८ ॥

खनहिं म्रित्तका बहिर गिरंते। करामात ते आदि लहंते।
निधि सिधि जे, समूह रिधि जेती। प्रापति होति कामना तेती ॥ २९ ॥

केतिक सिक्ख आप ते आए। किनहूं ढिग नर पठे बुलाए।
पूरन होति जाचना ज्यों ज्यों। सुनि सुनि जसु आवति नर त्यों त्यों ॥ ३० ॥

होति हजारनि को कल्यान। सतिगुर बड उदार दे दान।
पाइ कामना इक नर जावै। जहि कहिं कीरति करति सुनावै ॥ ३१ ॥

सुनि कैं अपर चौंप बड धरैं। पहुंचि गुरु ढिग सेवा करैं।
अपनी आइ पुरहिं अभिलाखा। सिमरन करैं प्रेम उर राखा ॥ ३२ ॥

श्रोता सुनि करि शुभ इतिहासु। चित महिं चौंप बिसाल प्रकाशु।
सिख्यन गन के सुनि करि नामु। जिन कउ प्रापति उत्तम धामु ॥ ३३ ॥

ग्यानवान पूरन पदु पायो। जिन सिक्खन सतिगुरु रिझायो।
तिन की करहु बारता सारी। जे जे भए परम उपकारी ॥ ३४ ॥

जे जे नामी सिख्य सुजाने। तिन के कहो प्रसंग महांने।
जिस प्रकार सेवा गुर कीनसि। मिलि करि जथा परम पदु लीनसि ॥ ३५ ॥

सो सभि कहौ कथा रमणीका। सुनति प्रीत ते जिम हुइ नीका।
श्रोतनि को सुनि कैं सभि बैन। वकता[1] भयो प्रफुल्यति नैन ॥ ३६ ॥

निशचै प्रेम लख्यो तुम साचो। चित राचो हित सुनिन उवाचो।
यांते मैं बरनौं सभि कथा। सिख्यन गन प्रसंग है जथा ॥ ३७ ॥

जिस के सुनति पाप बिनसावैं। श्रोता महा पुंन को पावैं।
सो सभि सुनहुं रुचिर बडि भागो। जिस ते गुरु पग सों अनुरागो ॥ ३८ ॥

करि करि प्रेम सेव जिन कीनी। महिमा सतिगुरु की बडि चीनी[2]।
ब्रह्म ग्यान को पाइ बिसाला। जनम मरन हति कशट कराला ॥ ३९ ॥

ब्रिध मिल्यो श्री नानक साथ। पूरब कहि आए इहु गाथ।
अबि भगतू जिमि घाली घालि। भयो जनम जिम गुर बच नाल ॥ ४० ॥

सो मैं कहौं सुनो बिरतंत। जिस महि महिमा गुर भगवंत।
पुना अपर सिक्खन की कहौं। जिस प्रकार सुनि करि उर लहौं ॥ ४१ ॥

॥ इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे श्री अंम्रितसर प्रसंग बरननं नाम चत्वारिंसती अंशु ॥ ४० ॥

1. वक्ता। 2. देखी।

अंशु ४१
भाई भगतू प्रसंग

दोहरा

सिद्धू कुल महिं जाट इक भुल्लरीए शुभ गोति ।
आदम जिस को नाम है घर संतति नहिं होति ॥ १ ॥

सवैया

आदम नाम भयो तिसि बंस मैं कार करै क्रिशि भाग बिलंदा ।
नंदन होवनि को चितवै बहु, काल बितावति चिंत अमंदा ।
बीत गए बहु संमत या बिधि संतति नांहि भई सुखकंदा ।
पीर बिसाल फकीरन जाल रह्यो सभि सेवति भाव सु ब्रिंदा ॥ २ ॥

चौपई

सेवा करति रह्यो चिरकाला । संतति की अभिलाख बिसाला ।
किह ते प्रापति भई सु नांही । चिंता चितवति बहु चित मांही ॥ ३ ॥
को इक मिल्यो सिक्ख जबि गुरु को । तिह सों कह्यो मनोरथ उर को ।
नीके कीने अनिक उपाइ । प्रापति पुत्र न मुझ किस थाइं ॥ ४ ॥
सुनि कै सिक्ख कीनि उपदेश । मानहुं मेरो कह्यो अशेश ।
श्री नानक भे जग अवतार । निरंकार के बने अकार ॥ ५ ॥
तिनि पीछै गुरु अंगद भयो । अमरदास पुन तिसि थल थियो ।
तीनो पातिशाहु ते पाछे । चतुरथ गुरु भए अबि आछे ॥ ६ ॥
सतिगुरु रामदास जिन नाम । पूरन करहिं संपूरन काम ।
करि सेवा तिन की अबि जाइ । पुत्र कामना तहिं ते पाइं ॥ ७ ॥
आदम जाट बात सिख सुनि कै । ब्रिध अवसथा अपनी गुनि कै ॥
शुशक ब्रिख के फलु हुइ कैसे । संसै होति बिचारति ऐसे ॥ ८ ॥
चितवति चिंत पुनहि चित ठानी । जे करि हौं गुर सेव महांनी ।
होइ जि नहीं पुत अबि मेरे । पावौं गति परलोक अछेरे ॥ ९ ॥
इमि मन ठानि संग लै दारा । गुर की सेवा हेत पधारा ।
करी दूरी ते बंदन जाइ । संगति बिखै रह्यो करि थाइं ॥ १० ॥

काशट शुशक भार दुइ आनें। इक तो राखै अपनि ठिकानै।
देग गुरु की होवनि जहिंवा। दूसरि भार देति भा तहिंवा ॥ ११ ॥
अपनि पास ते करति अहारु। इस प्रकार गुरु की करि कार।
खशट मास तहिं रहति बिताए। सेवहि सतिगुर हित चित लाए ॥ १२ ॥
एक समैं गुरु बहिर सिधाए। कितिक द्योस बीते पुनि आए।
तबिही हुतो सीत को काल। अरु बरखा भई तहां बिसाल ॥ १३ ॥

दोहरा

संगति गुरु के संगि तबि हुती बहुत तहिं आइ।
भयो सीत सभिहूंन को सिक्ख मिले समुदाइ ॥ १४ ॥

चौपई

आदम जाट तबहि कट कसि कै। ईंधन अधिक हुतो ढिग जिस कै।
इक इक भार सकेल्यो जोइ। संगति बिखै देति भा सोइ ॥ १५ ॥
लगे अंगीठे सभि के डेरे। मिट्यो सीत भा अनंद घनेरे।
ऊचे थल ह्वै करि तिस बारी। गुर ने संगति सकल निहारी ॥ १६ ॥
डेरे सभिनि अंगीठे लागे। बडो प्रकाश हुतासन जागे।
रिदे बिचार करति गुरु ऐसे। ईंधन इतो मिल्यो इन कैसे ॥ १७ ॥
नहीं समीप इहां किस थान। किसि ने दीनस इन को आनि।
भई प्रभाति सभा जबि होई। देखनि दरस आइ सभि कोई ॥ १८ ॥
श्री गुरु रामदास सभि संग। बूझ्यो ईंधन केरि प्रसंग।
सभि ने कह्यो 'सिक्ख है कोइ। देति फिर्यो डेरन महिं सोइ ॥ १९ ॥
हुतो रसोईआ गुरु के पास। तिन भी करी तबहि अरदास।
देग बिखै इक भार बिसाल। देति रह्यो नित केतिक काल ॥ २० ॥
अंतरजामी सभि कुछ जानी। तऊ कहे पर घाल पछानी।
श्री गुरु अमरदास सुखदानी। सभि सिख्यनं महिं तबहि बखानी ॥ २१ ॥
खोजहु सिख्य सु ल्यावहु जाइ। जिस ने घाली घालि सु थाइं।
कौन मनोरथ है तिस केरा। सो पूरन करिहैं बिन बेरा ॥ २२ ॥

दोहरा

सुनति सिख्य तिस थान को खोज्यो जहां रहंति।
ले गमने ततकाल ही संग चल्यो हुलसंति ॥ २३ ॥

चौपई

जाइ करी बंदन कर जोरि। ठांढो भयो बदन की ओर।
देखि गुरु ने बाक उचारा। 'कौन मनोरथ तैं उर धारा ॥ २४ ॥

तेरी घालि परी सभि थाइं। मांग लेहु बर सो अबि पाइ।
आदम जाट बाक सुनि गुर को। कहि नहिं सकहि मनोरथ उर को ॥ २५ ॥
मैं बहु ब्रिध कहां सुत होइ। यांते मांगति मा नहिं सोइ।
बिरधा बहुरु भारया मेरी। उचित न कहनि बात सुत केरी ॥ २६ ॥
इम बिचारि कै बाक बखाना। हे गुर! निज दरशनु दिहु दाना।
अपर नहीं मोकहु अभिलाखा। ऐसो जबि आदम ने भाखा ॥ २७ ॥
मन की रीति लखि अंतरजामी। बोले रामदास प्रभु स्वामी।
क्यों नहिं लेति मनोरथ उर को। गुरु प्रसंन लखि दाता बर को ॥ २८ ॥
सुकचति पुनहि, न जाइ बखाना। कहति भयो 'दिहु दरशन दाना'।
तिस के मन की गति को जानि। कह्यो गुरू 'जावहु निज थान ॥ २९ ॥

दोहरा

जाच्यो जाइ न तोहि ते पुन आवहु भुनसार।
सेवा तेरी सफल हुइ बांछति दे करतार ॥ ३० ॥

चौपई

आदम जाट गयो निज डेरे। सोचति चित महिं चित घनेरे।
बूझ्यो तबहि भारजा आनि। ले भी आयव गुर ते दान ॥ ३१ ॥
कहति भयो 'सुत की अभिलाखा'। सुकचित गुरु ढिग जाइ न भाखा।
आरबला मेरी अरु तेरी। संतति समै न बिती बडेरी ॥ ३२ ॥
भए ब्रिध, सुत होहि न कैसे। दिहु दरशन अपनो बर ऐसे।
चलत्यो पुन मुझ सों गुर भाखा। भोर आइ जाचहु जो कांखा ॥ ३३ ॥
सुनति भारजा भई उदास। पति सों कहि, पूरे गुरु पासि।
सुति की करहु जाइ अरदासि। हमरी पूरन करि हैं आस ॥ ३४ ॥
शुशक ब्रिछ को हरे करंता। शुशक ताल को सुभर भरंता।
समरथ हैं, अनहोनी करैं। श्री मुख वाक न कबहूं फिरै ॥ ३५ ॥
पति को समुझावति तिस भांती। करी बितीतन दंपति रानी।
भई भोर गुर ने सिख भेजा। 'फल सेवा को शुभ बर लेजा ॥ ३६ ॥
तबि दंपति गमने गुर पासि। करी बंदना धरे हुलास।
श्री गुर रामदास जी कहा। 'जाचहु बर बांछति जो अहा ॥ ३७ ॥
हाथ जोरि दंपति ने भाखा। 'श्री सतिगुर! हम अस अभिलाखा।
देहु बचन ते पुत्र हमारे। सरब बंस ह्वै सिख्य तुमारे ॥ ३८ ॥
सुनति सतिगुरु ध्यान लगाइव। देखि रहे कुछ नहिं दरसाइव।
[illegible] तोहि भाग महिं संतति नांही ॥ ३९ ॥

इम कहि नैन मूंद पुन लीने। नीकी रीति खोजिबो कीने।
देखि रहे सभि ही बिधि तांहि। आदम भाग बिखे सुत नांहि ॥ ४० ॥
बहुत काल लग गुरु बिचारा। पुनहिं सिख्य सो बाक उचारा।
भली भांति हम खोजन कीना। तोहि भाग मैं संतति हीना ॥ ४१ ॥
गुर की सेवा कीनि महांना। जिस ते हम ने बाक बखाना।
इह कारन ते मैं निज अंशु। जनमों तव ग्रिह, बिरधहि वंसु ॥ ४२ ॥
भगति सरूप होहि लखि लीजहि। यांते भगतू नाम रखीजहि।
मेरे अंश होन ते सोइ। देश अनेकन को गुर होइ ॥ ४३ ॥
तिस को पसरहि बंस बिसाला। बिदतहि नाम लखहिं नर जाला।
सुनि बांछति दानी बच गुरु के। दंपति बंदहि सिर धर धरि के ॥ ४४ ॥
आग्या लै गुर की बर पाइ। बसे जाइ करि अपने थाइं।
ब्रिध बैस तनु जर सों ग्रासे। दंपति बासे आनि अवासे ॥ ४५ ॥
एक बरख जबि बीत्यो काल। जनम लीनि बडिभाग सु बाल।
दंपति भए प्रसंन बिसाल। गुर को सिमरहिं शरधा नाल ॥ ४६ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रथे दुतिय रासे 'भाई भगतू' प्रसंग बरननं नाम एक चत्वारिंसती अंशु ॥ ४१ ॥

अंशु ४२

भाई भगतू को प्रसंग

दोहरा

जनम्यो पुत्र अनंद भा सभि ग्यातनि[1] के मांहि ।
बधी बधाई बिविध बिधि गाइ करति उतसाहि ॥ १ ॥

चौपई

सभि ग्याती मिलि कै तबि आए । भांति भांति के भनति बधाए ।
घर महिं अंन सेर इक नांही । म्रिति कहां होवहि तिन पाही ॥ २ ॥
सभि ग्याती लखि कै तिसु हाले । जिस के नहीं मोल किछु पाले ।
निज निज घर ते करि उगराही । म्रिति अनाज आनते पाही ॥ ३ ॥
बहु दिन खाइ अधिक ही आयो । बालक जनमु सभिनि मन भायो ।
माता पिता अधिक हुलसाए । जनमति साथ पदारथ आए ॥ ४ ॥
ग्याती अखिल मिले इक थाइं । हुतो ब्रिध इक बाक अलाइ ।
शुभ लच्छन बालक जनमयो । भागन भूर भले लखि लयो ॥ ५ ॥
जिसने जनमति सभि उगराहे । मनहुं भेट आनी इस पाहे ।
इस को बंस जु होहि अगारे । करि है ऊपर हुकमु हमारे ॥ ६ ॥
हुते सुजान सु जान्यो तबै । भगतू नाम कहति भे सबै ।
कुछक बडेरी बैस भई जबि । आदमु पित परलोक भयो तबि ॥ ७ ॥
करामात को पुंज बिसाला । ज़ाहर करी नहीं किसि काला ।
अंतर महां निरंतर गोई । लखि नहिं सकहि समीपी कोई ॥ ८ ॥
एक समें जननी ले साथ । आइव गुरु पग टेकन माथ ।
मिलि दरशन परस्यो सुख दानी । सेवक सदा करम मनु बानी ॥ ९ ॥
श्री सतिगुर अरजुन तिस काल । पिखि भगतू पर खुशी बिसाल ।
केतिक दिवसु रहित भा पास । सिमरहि सतिनाम सुख रास ॥ १० ॥
लैकरि खुशी गुरु पग हेरि । आवन लग्यो अपनि घरि फेरि ।
गमनहि मंद मंद मग मांही । ब्रिधा मात साथ है जांही ॥ ११ ॥

1. सम्बन्धी ।

जेशट मासु तपत को पाइ। जंगल देश दिशा को जाइ।
दिन बहु चढ्यो त्रिखा अति जागी। सुत सों मात कहनि तबि लागी॥ १२॥
सुनि हे पुत्र! श्रमत मैं भारी। अबि नहिं गमन्यो जाहि अगारी।
ब्याकुल करी त्रिखा ने मोही। जल बिहीन बड संकट होही॥ १३॥
सुनि भगतू ने वाक बखाना। हे जननी! जल नहिं इस थाना।
तीन कि चार कोस है गाउं। तहां पहुंचि मैं नीर पिआउं॥ १४॥
कह्यो मात सामरथ न मेरी। अरध कोस भी चलिब केरी।
मिलहि त जल बच हैं अबि प्राना। नांहि त म्रितू भई इस थाना॥ १५॥
सुनि भगतू ने कीनसि तासा। होइ न जाइ मात को नासा।
कह्यो तबहि 'बैठहु तरु तरे। मैं अबि जाउं उताइल करे॥ १६॥
ग्राम बिखै ते आनव नीर। तावत टिकहु धारि उर धीर।
जे मम पीछे त्रिखा महांना। लखहिं, कि होति प्रान की हान॥ १७॥
तौ इस थल महिं सूकौ ताल। लोशट का उठाइ ततकाल।
तहिं ते जल को पीवन कीजै। प्रान बचाइ आपने लीजै॥ १८॥
पुन सो लोशट तहां टिकावहु। नहिं दूसर के निकट जनावहु।
अपनि मात को इम समुझाइ। चल्यो ग्राम को जल हित धाइ॥ १९॥
जबि भगतू करि बेग पधारा। भई त्रिखातुर खेद मझारा।
रह्यो गयो नहिं, चलि तिस थान। एक उखार्यो लुशट महांन॥ २०॥

सवैया

ढीम उखार कै बार पिख्यो बिन मैल के सीतल है समुदाई।
होइ गई सु प्रसन्न तबै निज हाथ मिलाइ पियो जल माई।
मारग के श्रम को निखारनि यों जबि कीनि मिटी तपताई।
चीर पखारति नादि उठाइ, निचोर कै, होइ रही सितलाई॥ २१॥
भेड अजान[1] चरावति ब्रिंदनि आइ गयो तहिं एक अयाली[2]।
नीर अछादन कीन नहीं निज तात की बात न चीत समाली।
भूल गई तहिं बैठि रही नहिं रीति लही बिदतावन वाली।
पादप छाइ मैं पूत उडीकति पूतमती गुन ग्यान के नाली॥ २२॥
ब्रिंद अजा जल को पहिचानु कै पीवनि हेतु तबै उतलाई।
देखि अयालि बिसाल रिदै बिसमाद भयो-कुछ जानी न जाई।
दूरि लगे न इहां किस ग्राम उजार महां जिस के चहुं घाई।
आवति नीति बिलोकति मैं सभी सूक्यो पर्यो जलु ना किसु थाईं॥ २३॥

---

1. भेड़ बकरियों को। 2. गडरिया।

जेठ है मास महां रुत ग्रीखम सूक गए जलु के थल सारे।
मेघ नहीं बरख्यो इत देश, कहूं बिन कूप ते नांहि निहारै।
कारन कौन ते सुंदर नीर इहां प्रगट्यो मलु हीन बिधारे।
ज्यों सलिता चलिता सु प्रवाह तथा इसु थाइं पिख्यो सुखकारे ॥ २४ ॥

सूकति चीर निहारन कीन पिखी बिरधा इक पास है माई।
जाइ समीप अयालि तबै तिह पूछति भा मति मो बिसमाई।
नीर कहूं नहिं तीर हुतो इस रीत इहां इतनो बिदताई।
कीन शनानु तें पान कर्यो कुछ जानति है मुझ देहु बताई ॥ २५ ॥

कवित्त

आपने ब्रितांत को बताइ दीनो तिसी पास,
मेरो पुत्र भगतू है आए पंथ चालिते।
भई मैं त्रिखातुर बिठाइ करि गयो ग्रामु,
ऐसे कह्यो मो को प्रान हानि ह्वै बिहालते।
लोशट उठाइ जल लीजै निज पानि करि,
पीछे ते पिपासा बहु तपत बिसाल ते।
होइ कै अधीर मैं निकास लीनो नीर अबि,
पान करि सीर भई देख्यो समु ताल ते ॥ २६ ॥

चौपई

इस प्रकार सुनि गिरा अयाली। जानी अजमति रिदै बिसाली।
पीयहु अजा नीर तहिं सबै। पान शनान कीन तिन सबै ॥ २७ ॥
भगतू आइ गयो तिस काला। जल की रचना पिखी बिसाला।
माता साथ कह्यो क्या कीना। पी करि क्यों न अछाद सु दीना ॥ २८ ॥
कहनि लगी 'मुझ अधिक पिपासा। हे सुत ! तउ मैं नीर निकासा।
करति शनान अजा बहु आई। पानी पान कियो त्रितपाई ॥ २९ ॥
नहीं याद मेरे पुन रह्यो। नीर छपावन जो तें कह्यो।
तबि ही आयो निकट अयाली। कीन बंदना बिनै बिसाली ॥ ३० ॥
सत्यनाम तिह दै उपदेशा। आइ आपने सदन प्रवेशा।
जाहर भयो जगत महिं तबै। करहिं भगति भगतू की सबै ॥ ३१ ॥

१. आमंत्रण।

जंगल के जु ग्राम हैं सारे। आवहिं चरन कमल सिर धारे।
देहिं अमंतु[1], अचाइं अहारा। पूजा करहिं अनेक प्रकारा ॥ ३२ ॥
श्री गुर अरजन जी जिसि काल। रचन लगे श्री अंम्रित ताल।
करति भयो तन मन ते कार। सत्तिनाम महिं लिव इक तार ॥ ३३ ॥
म्रितका खनहिं सु सीस उठावहि। वहिर ताल ते दूर गिरावहि।
बडी प्रीति ते लागहि करिबे। संध्या लौ ठानहि हित धरिबे ॥ ३४ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रिंथे दुतिय रासे 'भाई भगतू' को प्रसंग बरननं नाम दोइ चत्वारिंसती अंशु ॥ ४२ ॥

अंशु ४३

भाई मंझ को प्रसंग

दोहरा

रजपूत मंझ इक चौधरी प्रथम जनम के मांहि।
संसकार उर भगति के सुनहुं कथा अवि तांहि ॥ १ ॥

चौपई

माल सरब घर दरब बिसाला। सरवर पीर सेव सभि काला।
सा महिमा सतिगुर की सुनि कै। शवद सुने अरथनि को गुनि कै ॥ २ ॥
उदै भगति पूरब की भई। गुर दरशन की रुचि उपजई।
जनम सफल करिबे कहु बांछे। कितिक दिवस इच्छा चित आछे ॥ ३ ॥
हेरि हेरि सिक्खन कहु नीके। सिक्खी गहों—मनोरथ जी के।
दिन प्रति प्रेम वध्यो अधिकाई। आयहु गुर दरशन हित लाई ॥ ४ ॥
सदन त्याग कै सभि परवार। पुत्रादिक को प्रेम बिसारि।
पूरबले जागे शुभ भाग। करिकै द्रिड उर महि वैराग ॥ ५ ॥
श्री अरजनु की शरनी आए। बंदे पद अरबिंद सुहाए।
सुंदर, म्रिदुल, विमल, दुतिवंते। रज पराग जिन की सुखवंते ॥ ६ ॥
बिनती कीन 'हरहु त्रै ताप। गुर सिक्खी को बखशहु आप।
जनम मरन को संकट भारी। दीन जान करि लेहु उबारि ॥ ७ ॥
सुनि कै श्री अरजन फुरमायहु। अपन पीर तैं तुरक बनायहु।
सरवर के मुरीद तुम रहे। इत गुर सिक्खी दुरलभ अहे ॥ ८ ॥
खंडेधार चलहि नहि गिरे। सूखम अधिक केस ते परे।
नहीं कमाइ सकहुगे तांही। प्रानन को पलटो जिसु मांही ॥ ९ ॥
आपा जहाँ जनावहु नांही। देहि सीस पर सी न कराही।
अरु जबि सिक्ख हमारो होवहि। अपजस लहैं—सकल धन खोवहि ॥ १० ॥
कुल के लोक करहि उपहास। नहीं बैठिबे देहि निज पास।
ऐती बात सहो मन लाइ। तौ हमरो सिख हूजहि आइ ॥ ११ ॥
नांहि त सेवहु पीर मुकामू। सिक्खी को लीजहि नहि नामू।
राखहु धनु कुल की बडिआई। सिक्खी परि क्यों ले दुख पाई ॥ १२ ॥

सुनि कै इम बाकनि गुर पास। अंजुल बांधि कीनि अरदास।
जबि को रावरि दरशन जोवा। सुनिबो श्रुत वाकन को होवा ॥ १३ ॥
तबि को मन हमरो हटि गइऊ। रिदै बिचारति लज्जित भइऊ।
सरवर तुरक. न अज़मत जांही। देखा देखी नर जग मांही ॥ १४ ॥
सीस निवावहिं तुरक अगारी। खोइ धरमु नर तन दें हारी।
हम हिंदू उत्तम तन पाए। नीच मलेछहिं सीस निवाए ॥ १५ ॥
इस ते परे अधरम न औरु। लहैं सजाइ नरक की ठौरु।
दोखी गऊ अनिक नित जोइ। देवी देव न मानहिं कोई ॥ १६ ॥
महां कुचील, न सुचि को लेश। आदि चंडाल जि लरहिं अशेश।
एक मेक हुइ सभि मिल खावहिं। पुन अपुने को अधिक करावहिं ॥ १७ ॥
नहिं नपाकते करहिं गिलाने। हिंदू धरम क्या इन जो माने।
इम बिचारि कै हम मन मांही। मानति रहे सु अबि पछुताही ॥ १८ ॥
दिए दरूद शीरनी खाए। इक हिंदू सो नाम कहाए।
होति दोशु जिन बसत्र छुहाए। तिनहु मूढ नर सीसु निवाए ॥ १९ ॥
नंम्रि होइ इव बिनै सुनाइव। प्रेम अधिक लोचन जल छाइव।
प्रभु जी आए शरणि तुमारी। दिहु सिक्खी हम लखि अधिकारी ॥ २० ॥
बोले श्री अरजन सुख धामू। पूरब सरवर ढाहु मुकामू।
पुन आवहु सतिगुर शरणाई। करे गुनाहु लेहु बखशाई ॥ २१ ॥
ह्वै करि सिक्खी के अधिकारी। सतिगुर सेव करहु सुखकारी।
सुनि करि बाक मंझ घर गयो। तुरक मुकाम सु ढाहति भयो ॥ २२ ॥
सरल होइ सतिगुर शरणाई। आए आस एक मन भाई।
तबि सतिगुर दीनसि उपदेश। सत्तिनाम भजि हरहु कलेश ॥ २३ ॥
सतिगुर सों सन मुख नित रहो। सेवहु सिक्खन को सुख लहो
अंतहकरण शुद्ध हुइ जाइ। आतम ग्यान रिते महुं पाइ ॥ २४ ॥
अंत समें महिं बंध निकंद। मुकति होइ करि मिलहु अनंद।
सिमरन करन लगे सतिनामू। कितिक दिवस महिं पहूंचे धामू ॥ २५ ॥
गुर को कह्यो होनि पुन लाग्यो। सरब समाज नाश ह्वै भाग्यो।
तुरंग, महिरव, धन भयो बिनाश। लगे शरीक करन उपहास ॥ २६ ॥
ग्राम नार नर सभि तबि कह्यो। पीर मार ते सभि किछ दह्यो।
गुर की सिक्खी जबि ते लीन। तबि ते होयहु सभि किछु हीन ॥ २७ ॥
सभि ने मिलि सु मंझ समझायो। पीर कोप करि सकल गवायो।
गुर सिक्खी तजि, पुन कर जोरि। बखशहि तुझ को पीर निहोर ॥ २८ ॥

सुनति मंझ ने बाक उचारे। मैं सिख भा अबि सतिगुर दुआरे।
कूर पदारथ काम न मेरे। लेउं मुकति हुइ आद घनेरे ॥ २९ ॥
गुर ते ही अबि सभि किछ होई। पीर मीर सों काम न कोई।
पंच ग्राम के सुनि सभि जानी। मंझ महां मूरख अग्यानी ॥ ३० ॥
छीन लीन ग्रिह, धन, सिरदारी। सरब शरीकनि दीन निकारी।
ले करि निज पतिब्रता सु दारा। रह्यो जाइ किसि पुरी मझारा ॥ ३१ ॥
घास खोदि तहिं बेचन लाग्यो। निसु दिनु रहै प्रेम गुरु पाग्यो।
चार भाग करि ल्याइ निकेत। इक सो देति नीति गुरु हेत ॥ ३२ ॥
तीन भाग ते करहि गुज़ारा। खोद घासु को बेचि बजारा।
कर्यो बितीतन केतिक काल। सिमर्यो तबि श्री गुरु क्रिपाल ॥ ३३ ॥
एक मेवडा[1] गुरु बुलायहु। हुकमनाम दे तिह समझायहु।
इक सिख मंझ सु अमके पुरि मैं। बिपदा परी नहीं कछु घर मैं ॥ ३४ ॥
बेचति घास जीवका करै। गमनहुं तिसु ढिगु जे मिलि परै।
लेहु रजतपण इक बिसत तहिं। देहु हुकमनामा पुन कर महिं ॥ ३५ ॥
हुकम मेवडा ले करि गयो। बेचति घास बिलोकति भयो।
पैरी पवना' मंझ सुनायहु। तुझ पर हुकम गुरु को आयहु ॥ ३६ ॥
सुनति प्रेम ते गद गद होवा। भयो प्रसन्न गुरु सिक्ख जोवा[2]।
बार बार करि नमो उचारे। धंन धंन बड भाग हमारे ॥ ३७ ॥
जिस ते सतिगुर सिमर्यो मोहि। हुकमु दिखावहु मम सुख होहि।
हेरि हेरि द्रिग सीतल करौं। पुन जिम लिख्यो सीस तिसु धरौं ॥ ३८ ॥
सुनति मेवडे कीन बखान। देहु रजतपण इकीसु आनि।
लेहु हुकमनामा पुन पाछे। गुर आग्या इम है सुख बांछे ॥ ३९ ॥
सुनति मंझ अति उतसव ठाटे। सतिगुर मिलिति सीस के साटे[3]।
इहु तौ अलप बात है कहां। सौदा समित, मोल लघु अहा[4] ॥ ४० ॥
सदन मेवडे को ले गयो। निज दारा संग भाखति भयो।
हम पर गुरु को हुकम सु आयो। दरब बिनां सो हाथ न पायो ॥ ४१ ॥
कहु अबि कौन जतन को कीजहि। दे करि धन तिह हेरि सु लीजहि।
सुनि सिखनी तिह धीरज दीनि। सुगम बात, क्यों चिंता कीनि ॥ ४२ ॥
हमरे कन्या अहै कुमारी। तिह चाहति, जिह घर सरदारी।
जितिक मेवडा जाचति दरब। राखहु सिक्खी ले दिहु सरब ॥ ४३ ॥

1. सन्देशवाहक। 2. देखकर। 3. बदले। 4. थोड़ा है।

इह कन्या बड भाग सुहाई। गुरु अरथ जे होहि सगाई।
इम कहि तिनि के ग्रिह चलि आई। कियो सबंध खुशी बड भई॥ ४४॥
दैबो जितिक तितिक धन ल्याई। पति आगे धरि चित मिटाई।
हेरि दरब को ले करि हाथ। दिए मेवडे को टिक माथ॥ ४५॥
लीन हुकम नामा आनंद्यो। धरि करि मसतक पुन पुन बंद्यो।
अति प्रसन्नता चित उपजाई। जनु गुर मिले प्रेम अधिकाई॥ ४६॥
बहुरो घास बेच करि आयहु। अनिक प्रकार अहार खवायहु।
निस महिं मेवा कीनि बनाइ। गुरु बारता बूझ रहाइ[1]॥ ४७॥
भई प्राति गुर सिमरति जागे। मन महुं प्रेम रंग करि पागे।
कर्यो मेवडा बिदा उचारी। नमहु करहु गुर केर अगारी॥ ४८॥
बहुर घास को आप सिधारा। सिमरति सतिगुर नाम सुखारा।
बेचहि घास जीवका करिही। मन बिकार सगरे परिहरही॥ ४९॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'भाई मंझ को प्रसंग' बरननं नाम तीन चत्वारिंसती अंशु॥ ४३॥

1. पूछता रहा।

अंशु ४४
भाई मंझ प्रसंग

दोहरा

घास खोद बेचन करहि उदर पूरिबे हेत।
दिढ सिखी जिस के रिदे गुरू कसौटी देति ॥ १ ॥

चौपई

पुनि केतिक जबि काल बितावा। मन अडोल जिसि को द्रिशटावा।
सतिगुर बहुर मेवडा भेजा। कह्यो 'हुकमनामा इह ले जा ॥ २ ॥
प्रथम रजतपण इकीसु लेहु। बहुर हुकमनामा तिस देहु।
सतिगुर आइसु ते मग चल्यो। आइ पुरी महिं मंझ सु मिल्यो ॥ ३ ॥
देखति होयहु हरख बिसाल। सतिगुर मोकहु कीनि निहाल।
चलहु सदन मैं पद निज पावहु। गुरू हुकम पुन मोहि दिखावहु ॥ ४ ॥
सनमानति ग्रिह मैं ले गयो। मंच डसाइ बिठावन कयो।
कह्यो मेवडे 'इमि सुनि लेहु'। प्रथम इकीसु रजतपण देहु ॥ ५ ॥
पीछे हुकम गुरू को देखि। कीजहि अपने हरख विशेख।
सुनति मंझ ने आनंद ठान्यो। मुझ को गुरु अपनो करि जान्यो ॥ ६ ॥
निज दारा को सकल सुनावा। गुर को बहुर मेवडा आवा।
भेट इकीस रुपय्यन कहै। बहुर हुकम को दैवो चहै ॥ ७ ॥
सुनति सिक्खनी भई प्रसन्न। कहति भई 'मानहु निज धंन।
सिमरति हैं सतिगुर तझ ताईं। जान आपनो दया कराई ॥ ८ ॥
सुगम बात तुझ सों इक भाखौं। अबि गिरवी मुझ को कित राखो।
टहिल करिहुं तिसकी चित लाइ। चहियति धनु तहिं ते लै आई ॥ ९ ॥
मंझ सुनति सोई बिधि कीनि। गिखी राख दरब सो लीनि।
दीन मेवडे को हरखाइ। लयो हुकम नामा सुख पाइ ॥ १० ॥
पढ्यो सु 'गुर ने निकटि हकारा'। सरब सुनाइ आपनी दारा।
मैं गुर की सेवा हित जावौं। पास रहौं सभि रीत रिझावौं ॥ ११ ॥
होंहि क्रिपाल निहाल करै हैं। तबि मैं तुझ सों मेल बनै है।
यहि मसलत करि बेच्यो घासु। भोजन आन्यो अपन अवास ॥ १२ ॥

कर्यो मेवडे तबहि अहारा। अच्यो, सुपोस भा निसा मझारा।
उठि प्रभाति तिस के संग चाला। जहां बिराजहिं प्रभू क्रिपाला॥ १३॥
जाइ गुरू को दरसु बिलोक्यो। उमग्यो प्रेम कंठ जिन रोक्यो।
सतिगुर निज रुख नहीं जनाइव। और साथ कहि सेवा लाइव॥ १४॥
देग हेतु समधा[1] निति ल्यावै। भयो प्रसन्न गुरू जिम भावै।
वहिर जाइ नित ईंधन आनै। शुशक भार भारी तिस थानै॥ १५॥
गुर लंगर महिं देवहि आनि। भोजन खाइ करहि गुजरान।
प्रेम लगन महिं रहै निमगन। रिदै बिकार करे सभि भगन॥ १६॥
केतिक द्योस वितीते जबे। अंतरयामी बूझ्यो तबै।
मंझ सिक्ख इस थल जो आवा। क्या सो करहि, कहां सो थावा॥ १७॥
इक सिख ने बिरतंतु सुनायो। जबि को इहां सिक्ख सो आयो।
ईंधन को सकेल बहु ल्यावहि। लंगर ते भोजन को खावहि॥ १८॥
भयो हुकम सेवा महिं खामी[2]। करति बिगारन अपनो कामी[3]।
अचहि अहार मजूरी सम हुइ। तुरत रिदै की मल को नहिं खुइ॥ १९॥
कहूं अपर ते जोजन खाइ। गुर लंगर की सेव कमाई।
जितो अहार कहूं ते पावहि। देहि अपर को लघु निज खावहि॥ २०॥
सिक्ख ने तिसे हटायहु तैसे। करन लग्यो तिमि, कहि गुर जैसे।
सिख्यन ते जाचहि अरु खाइ। सभि दिन लंगर सेव कमाइ॥ २१॥
अलप अहार खाइ, दे आन। मन अपने दिढ निशचै ठानि।
भयो सरीर सु दुरबल छीन। गुर को प्रेम रिदै दिढ पीन॥ २२॥
इक दिन सतिगुर निकटि बुलावा। बहु प्रकार ते तिह समझावा।
तैं अपुनी सभि वसतु गवाई। महिखी धेनु लुटी समुदाई॥ २३॥
सरब शरीकनि निंद उचारी। इन सरवर की मनत[4] बिसारी।
ढाहु मुकाम काम किय बुरो। सो अबि इस के गर महिं परो॥ २४॥
खीन पदारथ घर के होए। दुख पायो घर ऊजर जोए।
जाइ उपाइ करो अबि कोई। कै निज पीर मानीए सोई॥ २५॥
सुनि कै हाथ जोरि तबि कह्यो। सत्यनाम धन मैं शुभि लह्यो।
हाकम लेइ न चोर्यो जाइ। जल महिं गलै न अगनि जलाइ॥ २६॥
बंटे बहुत निखूटहि नांही। करहि सहाइ मरणि दुख मांही।
सो मैं निस दिन रिदै संभार्यो। पछुतावहुं, वय बहुत बिसार्यो॥ २७॥

1. ईंधन की लकड़ियाँ। 2. कमी, दोष। 3. काम। 4. मन्नत, पूजा।

इमु कहि बंदन करि तबि गयो। सेवा बिखै जाइ मन दयो।
काशट शुशक भार को ल्यावै। सभि लंगर की कार चलावै ॥ २८ ॥
इक दिन वहिर गयो हित दार[1]। बीनि बीनि करि[2] बंध्यो भार।
नहिं पहुंच्यो उठवावन वारो। घटी चार वधि लगी अवारो[3] ॥ २९ ॥
धरि सिर पर जबि पुरि को गमना। उठी अंधेरी भीखन पवना।
कंकर सिकता खैंचति बह्यो। अंधकार कुछ जाइ न लह्यो ॥ ३० ॥
सनमुख पौन हटाइ पिछारी। भार सम्हारति गमहि अगारी।
उठी धूर आंखन महिं छाई। चलत्यो नहिं कछु परहि दिसाई ॥ ३१ ॥
पाइ पंथ पावहि थिवि जाहि[4]। चल्यो आइ बड संकट मांहि।
हुतो कूप थोरो जहिं पानी। भयो तिमर कुछि परहि न जानी ॥ ३२ ॥
गिर्यो मंझ तिस के बिचु जाइ। सिर पर शुशक काठ समुदाइ।
भार संभार्यो सिर पर रख्यो। भीज न जाइ नीर ते लख्यो ॥ ३३ ॥
अरकहि लंगर ईंधन बिनां। मोकहु दोश होइ है घना।
खरो कूप महिं बारि मझार। सिमरहि—इम हुइ गुरुनि अहार ॥ ३४ ॥
प्रेम रंग इक घूमति गुर कै। लोक लाज कुल कान निवरि कै।
धनु त्रिय तनुजा सुत को त्याग। राख्यो द्रिड करि गुर अनुराग ॥ ३५ ॥
भोजन अलप, अंग दुरबल हैं। गुर पग प्रेम धर्यो बड बल है।
करी प्रेम ने खैंच बिसाल। रह्यो न गयो गुरु ततकाल ॥ ३६ ॥
संकट जानि सिक्ख कहु होवा। कूप बार सिर भार खरोवा।
बीतहि इसहि जामनी सारी। खरो रहै नहि भार उतारी ॥ ३७ ॥
उठे क्रिपा निधि गमने ऐसे। कुंचर के मोचन हित जैसे।
नंगे पाइ उताइल डालति। हरभराइ नहिं वसत्र संभालति ॥ ३८ ॥
दास उपानै लै, करि धाए। केतिक धाइ मिले संग आए।
दामनि आनहु[5] हुकम करंते। तहिं सतिगुर पहुंचे उतलंते ॥ ३९ ॥
हुतो समीप पहुंचे जाइ। धाइ धाइ सिख आनि मिलाइ।
कूप तीर थित होइ उचारा। कौन अहैं तूं कशट मझारा ॥ ४०[6] ॥
काशट भारु सीस पर धर्यो। क्यों नहीं गेरति जल महिं खर्यो।
कह्यो मंझ है मेरो नामु। सेवक श्री सतिगुर के धाम ॥ ४१ ॥
इतने महि रज्जू नर ल्याए। गुर हित असुवारी लै आए।
जीन तुरंग पाइ करि तूरन। सिवका ल्याए जहिं गुर पूरन ॥ ४२ ॥

---

1. लकड़ियों के लिये। 2. चुन चुन कर। 3. देर। 4. थिरकता जाता है। 5. रस्से लाओ। 6. ऊपर को।

दामनि कूप बिखै लटकाई। कह्यो कि गहि आवहु उपराई।
पूरब भार निकासन करो। रहैं शुशक नहिं जे अबि धरौं ॥ ४३ ॥
पुन पीछे मुझ लेहु निकासि। ले ईंधन चलिहौं गुर पास।
रज्जू संगि बंधि करि भारा। खैंच बहिर को नरनि निकारा ॥ ४४ ॥
पीछे ते दामनि गहि हाथ। निकस्यो त्याग कूप, बल साथ।
श्री अरजन ठांढे ढिग देखि। पाइन पर्यो सु प्रेम विशेख ॥ ४५ ॥
इहु कुछ नई न रावरि बात। सिक्खन के सहाइ दिन राति।
गज को कशट भयो जब भारी। कुसम अरप करि करी गुहारी ॥ ४६ ॥
लछमी चरन पादका छोरि। तजि खग पति धाए गज ओर।
लीन बचाइ डूबते जल ते। बिरद संभारि सहाइक बल ते ॥ ४७ ॥
नहिं सेवक दुख सकहु सहारी। शकति हीन ह्वै शरनि तुमारी।
लाज द्रोपती की रखि लीनसि। अंबरीक की निरमै कीनसि ॥ ४८ ॥
गुन रावर के कौन गिनावै। जिन को शेश सारदा गावैं।
मांग मांग भो मंझ! सुजाना। हम प्रसन्न लिहु वांछति दाना ॥ ४९ ॥
घाल परी सभि तेरी थाइं। जगत कलेश घुटे समुदाइ।
बोल्यो मंझ करी अरदास। इही मांग हौं रावरि पासि ॥ ५० ॥
सभि ते रहौं अजाची जैसे। सत्यनाम बिनु चहौं न कैसे।
तुमरे पद अरबिंद मनिंद। मम मानस महिं दिपहु मुकंद ॥ ५१ ॥
श्री अरजन सुनि पुनहि बखाना। अपर मांगि भो सिक्ख महांना।
गुर जी दासन पर अस भीर। सभि न सकहिं सहि होइं अधीर ॥ ५२ ॥
सुनहुं मंझ खंचन मल मिलियो। घटहि सु ज्यों ज्यों अगनी ढलियो।
ताउ कसौटी ते सुधि होइ। कोश बिखै ले पय्यति सोइ ॥ ५३ ॥
जो सतिगुर के सिक्ख उदारे। मोख कोश के उचित सुधारे।
करियति हैं सो अपन सरूप। जिस में पय्यति अनंद अनूप ॥ ५४ ॥
इहु भी दयो और लिहु जाचे। सुनति मंझ कहि 'श्री गुर साचे।
अपनो सिदक दान दिहु सोइ। सदा अजाची त्रिति अबि होइ ॥ ५५ ॥
इमु कहि चरन बंदना ठानी। प्रेम बिखै मति बहु मसतानी।
सुनि श्री अरजनु जी तिस काला। सिख की महिमा कीन बिसाला ॥ ५६ ॥

श्री मुखवाक ॥

मंझ पिआरा गुरु नूं गुग मंझ पिआरा।
मंझ गुरू का बोहिथा जग लंघणहारा ॥ १ ॥

चौपई

अंग संगि करि प्रेम लगायहु। आतम ग्यान तुरत ही पायहु।
कह्यो मंझ तूं अबि ग्रिह जाइ। हेत गुरू के देग चलाइ ॥ ५७ ॥
नौ निधि सिद्धि अठारहि पाई। करहु समाज जितिक मन भाई।
किमु कहि चढि डेरन कहु आए। सभि महिं सुजसु भयो बिदताए ॥ ५८ ॥
मंझ गयो ग्रिह सभि कुछ पायो। इसत्री पुत्र सुता गुन गायो।
मण अनेक ही अन्न पकावै। गुरू अरथ अरथीन अचावै[1] ॥ ५९ ॥
सरब प्रवार संग सुख पाइ। भयो मुकति गुर के गुन गाइ।
सह्यो कसौटी उतर्यो पूरा। अंति पाइ उत्तमु पद रूरा ॥ ६० ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'भाई मंझ' प्रसंग बरननं नाम चत्वारिसती अंशु ॥ ४४ ॥

---

1. याचकों को खिलाता है।

अंशु ४५

बहोड़े को प्रसंग

दोहरा

श्री अंम्रितसर को रचित गमने गोइंदवाल।
खासे पर श्री प्रभु चढे संगति संग बिसाल ॥ १ ॥

चौपई

देश बिदेशनि संगति आवै। दरशन करि मन बांछत पावै।
आनहि अनिक प्रकार अकोर। धरि करि बंदति है कर जोर ॥ २ ॥
जाम जामनी ते गुर जागें। सौचाचार करनि अनुरागें।
सीतल जल ते करहिं शनान। लाइ समाधि धरहिं उर ध्यान ॥ ३ ॥
निज सरूप महिं थिरता गहैं। पुंन पाप जहिं लिपत न अहैं।
चेतन सुद्ध अखंड अनंद। इक रस आतम सदा मुकंद ॥ ४ ॥
आसा वार रबाबी गावहिं। संगति सुनहि कलुख नसावहि।
अनिक भांत के सुंदर राग। मिलि बैठति सिख जिन बडभाग ॥ ५ ॥
प्रभु सों राग, विशय वैराग। उपजहि चित महिं भगती लाग।
अंम्रित के सम अंम्रितकाल। सुनि सुनि गुर के शबद निहाल ॥ ६ ॥
भोर होति श्री अरजन नाथ। कुंकम चंदन तिलक सु माथ।
सूखम सेत वसत्र तनु धरें। वैठि वहिर सिक्खनि अघ हरें ॥ ७ ॥
जथा उदै हुइ रवि भगवान। करहि पुनीत सबोध जहान।
तथा गुरू अरजन हुइ जाहरि। दरशन शांति दिखावहिं बाहरि ॥ ८ ॥
ग्यान शबद को महिद प्रकाशें। पिखि पंकज गन दास बिगासैं।
कपट पाप तम दूर बिलाइ। संत मधुप अतिशै हरखाइ ॥ ९ ॥
जाम दिवसु लग दे उपदेशु। निज सेवक के कटहिं कलेश।
बहुरो देग त्यार हुइ जावहि। सूपकार तबि आनि जनावहि ॥ १० ॥
ले संगति सगरी को संग। वैठहिं पंगति लाइ अभंग।
अंम्रित भोजन सभिनि भुगावें। उठहिं प्रभू, जबि सभि त्रिपतावें ॥ ११ ॥

लेटहिं पुन प्रयंक पर जाइ। कितिक समै सुपतहिं सुख पाइ।
ढरे दिवसु जबि उठिबो करैं। सनै सनै पुन सुचिता धरैं॥ १२ ॥
कितिक घटी तबि कथा सुनंते। भगति सु ब्रह्म ग्यान निरणंते।
पुन किरतन कौ वेला होइ। धरे प्रेम सुनिते सभि कोई॥ १३ ॥
सति संगति करिते बहुकाल। मेटहिं दासन के जमु जाल।
जाम जामनी उठि उपदेशहिं। सिक्खन बखशशि होति विशेशहिं॥ १४ ॥
रिद्धि सिद्धि नौ निद्धि खरी हैं। देति सु जिस पर क्रिपा करी है।
भगति प्रेम कै आतम ग्यान। पावहिं अपुने बंधन हान॥ १५ ॥
नाम बहोडा जाति सुनार। आनि पहुंच्यो गुरु दरबार।
प्रेम साथि दरशन को कीना। मसतक पग पंकज धरि दीना॥ १६ ॥
खरो रह्यो देखति चिरकाल। क्रिपा धारि बूझ्यो सु क्रिपाल।
अहो बोहडा साची कहीअहि। नहीं दुरावन को चित चहीअहि॥ १७ ॥
काल बितावहु कौन प्रकार। कौन क्रित करि करहु अहार।
जबि श्री अरजनु बूझी बात। सुकचति भाखति कंपत गात॥ १८ ॥
हाथ जोरि अरदास बखानी। श्री सतिगुर सभि घट के जानी।
किरति सुनारे की मैं करि हौं। काल बितावौं उदर सु भरि हौं॥ १९ ॥
सुनि गुर कह्यो 'किरति करि कोई। धरम समेति निबाहहि सोई।
कपट बिहीन जीवका करै। पर की वसतु छपाइ न धरै॥ २० ॥
तिस महिं बांट प्रभू हित, खावै। तिसि को उर निरमल हुइ जावै।
बिनती जुगति बहोडे कह्यो। कंपति लोचन ते जल बह्यो॥ २१ ॥
हे सतिगुर मैं महां अधरमी। पाप किरति नित करौं कुकरमी।
मात पितादि घरावहिं घाट। चौथो भाग लेउ मैं काटि॥ २२ ॥
अवर नरनि की गिनती कोहै। जो बन जाइ सु लेउं तितौ हैं।
धरम अधरमन जानउं कोईं। पिता पितामा की क्रिति सोई॥ २३ ॥
महां पतित मैं आयहु शरनी। रह्यो न गयो क्रिति निज बरनी।
कूर हजूर नहीं मैं कह्यो। इहु प्रताप रावर को लह्यो॥ २४ ॥
नामु गरीब निवाज तुमारा। पतित उधारण बिरद उदारा।
जबहु बहोडे साची कही। श्री अरजन जी सभि उर लही॥ २५ ॥
क्रिपा करी उपदेश बतावा। कहां कूर महि तू लपटावा।
करि करि अघ को संचहि ब्रिंद। अंत काल जमु फासि बिलंद॥ २६ ॥
कोटि जनमु दुख सहैं घनेरे। कौन सहाइ होइ तिस बेरे।
अपर त्याग करि जावहिं भोरे। करे करम होवहिं संगि तेरे॥ २७ ॥

सो फल दए बिनां न बिनांसहिं । करे कुकरम तोहि को ग्रासहिं ।
रहैं इकांकी संकट पावैं । पछुतावहिं सिर धुन बिलपावहिं ॥ २८ ॥
यांते सत्यनाम करतारू । सिमरहु निस दिन होइ उधारु ।
त्यागहु जग जंजार जु ग्रस्यो । जिमु झख तोरहिजारजु फसयो ॥ २९ ॥
सुखकारी हरिनाम संभारहु । करनि कुकरम ब्रिती हटकारहु ।
सति संगति महिं बैस गुज़ारहु । धरम जीव का महिं चित धारहुं ॥ ३० ॥
सुनि सतिगुर के बाक रसीले । ब्रिंद बिकारन परम कटीले ।
भाग बडे मसतक जिस जागे । तीखन तीर समान सु लागे ॥ ३१ ॥
गदगद भा सुधि सरब बिसारी । प्रेम महां अश्रनिको डारी ।
प्रथम कुकरमन को पछुतावति । गुर की बचन रिदै पुन भावति ॥ ३२ ॥
लग्यो सेब करिबे सतिगुर की । बध्यो प्रेम श्रधा धरि उर की ।
कितिक दिवस महिं तिस को हेरा । कर्यो निकंदन मोह बडेरा ॥ ३३ ॥
क्रिपा द्रिशटि करि बखश्यो नामु । जिम ते भए संपूरण कामु ।
सतिगुरु शबद प्रेम मैं पागा । जनम जनम की सीयो जागा ॥ ३४ ॥
भयो बहोड़ा बहुत निहाल । निकटि बुलायो गुरू क्रिपाल ।
कह्यो 'अबहि तूं ग्रिह को जावहु । उर अनद करि हरि गुन गावहु ॥ ३५ ॥
काल बितावहु मिलि सतिसंग । 'प्रेमाभगति बिखै मन रंग' ।
करी बहोड़े पुन अरदास । 'श्री सतिगुर मैं रावरि दास ॥ ३६ ॥
कौन जोवका को मैं करौर । जिस ते भव जल दुशतर तरौं ।
जिस महिं दोश न लागै कोई । अब रावर आग्या दिहु सोई ॥ ३७ ॥
श्री अरजन सुनि गिरा उचारी । 'त्यागहु कुल की किरति कुकारि ।
मम हित ग्रिह महिं लंगर की जै । आइ छुधित नर तिनको दीजै ॥ ३८ ॥
मम सिक्खी को सदा कमालहु । तन ते हंता बुद्धि उठावहु ।
सुख दुख महिं मानहुं प्रभु प्रभु भाणा । रहहु हरख जुति सदा निवावा ॥ ३९ ॥
सुनि सतिगुर की सीख सुखारी । ग्रिह गमन्या की नसि उर धारी ।
सदा अनंद बिलंद निमगन । गुर चरननि की लागी लगन ॥ ४० ॥

दोहरा

इस बिधि जित को जाति हैं मिलहि सु होति निहाल ।
आनि बिराजे सुधासर चहति चिनावन ताल ॥ ४१ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे द्वुतिय रासे 'बहोड़े को' प्रसंग बरननं नाम पंच चत्वारिं अंशु ॥ ४५ ॥

अंशु ४६

भाई बहिलो प्रसंग

दोहरा

श्री अरजन इस भाँति सिख करे दयो उपदेश।
सिमरति है सतिनाम की मेटति सकल कलेश ॥ १ ॥

चौपई

सुनि सुनि श्री अरजन की कीरति। निति प्रति होति अधिक बिसतीरति।
श्री गुर अमररास के आगे। भए जु सिख्य महां बडभागे ॥ २ ॥
अरु श्री रामदास ते कोई। पाइ सुमति होए सिख जोई।
श्री अंम्रितसर की सुनि कार। जिह सेवे फल पाइ उदार ॥ ३ ॥
सो सभि आवति घर को त्यागे। खनहिं म्रितका सेवा लागे।
केतिक करहि पजावनि कार। माटी चीकनि लेहिं सुधार ॥ ४ ॥
संचे मांहि ईंटका ढारें। शुशक करन को इत उत धारें।
केतिक सिर धरि ढोवन करिहीं। जहां पजावे तहिं ले धरिहीं ॥ ५ ॥
केतिक गहि करि निज मति संग। चिनहिं सु ईंधन करहिं उतंग।
केतिक कूरा करैं सकेलन। ईंट पकावन हित करि मेलनि ॥ ६ ॥
को भोजन निज घर ते खाइ। सभि दिन गुरु की सेव कमाइं।
केतिक दरब अरप हैं आइ। ब्रिंद मिहनती देति लगाइ ॥ ७ ॥
केतिक देग अहार करंते। सर की सेवा लगे रहंते।
केतिक अजमति के जुति भारी। जाइं निसा निज सदन मझारी ॥ ८ ॥
होति भोर की आवति सोई। सर की सेव लगे सभि कोई।
सफल जनम अपने को जानहिं। सगरे दिवस टहिल को ठानहिं।
सतिगुर अरजन अंतरजामी। जो सेवहिं सो जानहिं स्वामी ॥ ९ ॥
महां महातम चहति बिथारा। जो सिख होइ कामना वारा ॥ १० ॥
इस जग के सुख सभि बिधि दीनि। पुन प्रलोक महिं सुभ गति कीनि।
इस प्रकार सर की निति कार। हुयो जाति खनि वहिर निकार ॥ ११ ॥

जे सिख लंमे देश मझार। धन्नी, घेप की पोठोहार।
तखत हज़ारा, छच्छ हजारा। काबल नगरि, पिशौर, कंधारा ॥ १२ ॥
बलख बुखारा अरु मुल तान। इत्यादिक पशचम दिशि जान।
छठे मास कै सम्मत मांही। दरशन करन आइं गुर पांही ॥ १३ ॥
रहैं, कितिक दिन सेवा सरि की। करहि, प्रेम धरि शरधा उर की।
बहुरो सतिगुर के ढिग आइ। जाचहिं बिदा सदन की जाइं ॥ १४ ॥
श्री अरजन तिन सों तबि कहैं। 'हे सिख ! तुव नंदन कै अहैं ?।
कै भ्राता मिलि बनज करंते ?। कबि के सिक्खी आप धरंते ? ॥ १५ ॥
हाथ जोरि सो बाक भने हैं। पिता पितामा सिख्य बने हैं।
पुत्र चार हैं रावरि करुना। बैठि दुकान बनज को करना ॥ १६ ॥
सुनि सतिगुर तिह सों फुरमाइं। द्वै सुति दिहु हम को इस थाइं।
गुरपुरि महिं बस करहिं दुकान। लाभहिं लाभ बनज को ठानि। १७ ॥
बाक मान सो अनि बसावें। जिस के जुग सुत इक तहिं आवें।
इक दिशि अपनो सदन चिनाए। दिसि दूसरी सर सुधा बताए ॥ १८ ॥
दोनहुं बीच बजार पवायो। गन हाटन को ब्योंत बनायो।
दिन प्रति गुर की खुशी बिलोकि। आवहिं सिक्ख करहिं निज ओक[1] ॥ १९ ॥
आपन[2] बीज बजार बनावें। बसन हेत निज सदन चिनावें।
नर गन पुरि महिं होवन लागे। आनि आनि बासहिं बडि भागे ॥ २० ॥
करनि लगे बिवहार बडेरे। जहिं कहिं अपने सिक्ख जु हेरे।
तहिं ते आप बुलावें नाथ। लागहिं सेव जु शरधा साथ ॥ २१ ॥
केतिक सिख्य आप ते आए। किनहूं ढिग नर पढ़े बुलाए।
पूरन होति जाचना ज्यों ज्यों। सुनि-सुनि जसु आवें सभि त्यों-त्यों ॥ २२ ॥

दोहरा

फफरे ग्राम बिखै बसै बहिलो श्रेशट जाट।
खूंडी कर महिं धारि कै करहि शेख को ठाट ॥ २३ ॥

चौपाई

बहुते मानुख संग लगाइ। परसहि जाइ निगाहे थाइं।
सवरर को मुरीद नित रहै। सुलतानी तिस को सभि कहैं ॥ २४ ॥

---

1. घर। 2. दुकानें।

गुरू हुकमनामा सु पठायो। गयो सिक्ख ने सकल सुनायो।
गुरू हुकम को सुनि करि तदा। कह्यो न मेलि तिनहुं सो कदा ॥ २५ ॥
हम कबि मिले, नहीं कबि गए। लिखिनि पढ़नि को प्रथमु न भए।
तिनि समीपि किम जावन बनै। देखहु करि बिचार निज मनै ॥ २६ ॥
भेख भिराई को तन करौं। खूंडी खलरा[1] गल महिं धरों।
इसी देश के नर गन सारे। मुझ सनमानहिं चलहिं पिछारे ॥ २७ ॥
मुक्ख सभिनि महिं मुर बडिआई। रहैं सेंकरे नर चहुँ धाई।
मैं आगे थित हुइ सुलतान। जारति[2] को करिवाइ महांन ॥ २८ ॥
इस प्रकार मेरी अबि बात। तिह तजि चलनि बनै किस भांत।
बिनां लाभ देखे किस थान। मूरख भी न प्रविरतहि जान ॥ २९ ॥
इमु सुनि कै सिख चल्यो सु गयो। गुरु सों सरब जनावति भयो।
सतिगुर घर को नांहिन मेली। भेद न जानहि, आइसु पेली[3]। ३० ॥
सुनि सिख ते सगरी तिसि बाति। श्री अरजन बोले मुसकाति।
बहुर जाइ कहु हुकम हमारा। सुधि न रही तुव रिदे मझारा ॥ ३१ ॥
यांते जात तुरक की गोर[4]। मानहिं बिन बुधि ते कर जोर।
भेड चाल नर मंदन केरी। होति प्रविरती अपर को हेरी[5] ॥ ३२ ॥
बुरी भली नहिं करनि बिचारि। मानहिं तुरक जनम को हारि।
दुहि लोकन महिं नहिन सहाई। पूजहिं गोर, नरक पुन पाई ॥ ३३ ॥
तूं गुरु घर को दास सदीवा। सेवा करति महां मन नीवा।
जहिं जहिं भा अवतार हमारा। तहां तहां तैं साथ संभारा ॥ ३४ ॥
जनम मरन को कशट मिटाइ। समां भयो प्रापति अबि आइ।
अनिक जनम महिं घाली घाल। तिस को फलि अबि मिलहि बिसाल ॥ ३५ ॥
जिसि अंम्रित को जाचति जबै। समां जान प्रापति सो अबै।
इमि सुनि कै सिख पुनह सिधायो। श्री गुर को फुरमान बतायो ॥ ३६ ॥
अनिक जनम को मेली अहै। मुकति होन को जाचति रहै।
सो अबि समां पहूँच्यो आइ। गुर ढिग चलहु लेहु सो पाइ ॥ ३७ ॥
सुनि बहिलो चक्रित हुइ रह्यो। किती बार सोचति पुन कह्यो ॥
'मैं अग्यानी जानति नांही। हुतो जनम किति जाचति आही ॥ ३८ ॥

---

1. खाल की झोली। 2. यात्रा। 3. आदेश दिया। 4. कब्र पर।
5. दूसरों को देखकर प्रवृत्त होना। 6. बंद करके।

सतिगुरु पता कोइ दिखरावैं। निज शकती करि मोहि बुलावैं।
इमि कहि सिख की सेवा ठानी। निम्यो गुरू दिश मन क्रम बानी ॥ ३९ ॥
भोरि भयो सिक्ख कर्यो बिसरजन। हाथ बंदि कै बहु बिनती भनि।
सतिगुर पता देहिं जबि मोही। तबि आवन निशचै तित होही ॥ ४० ॥
यौं सुनि गयो सिख्य गुर धामि। सरब भांति कीनसि अरदासि।
पता चहति कहि-मैं अग्यानी। मा अधीन कहि बिनती बानी ॥ ४१ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'भाई बहिलो प्रसंग' बरननं नाम खशट चत्वारिंसती अंशु ॥ ४६ ॥

अंशु ४७

भाई बहिलो प्रसंग

दोहरा

तिस के पूरब जनम को पता लिख्यो गुर राइ ।
कागद करि कै खाम को दीनहु सिख्य पठाइ ॥ १ ॥

चौपई

बहिलो निकटि सिख्य पुन आयो । गुरू हुकमनामो दिखरायो ।
लेकरि सिख ते सिर पर रख्यो । खोल्यो कागद पठि सभि लख्यो ॥ २ ॥
प्रथम जनम के इक दुइ पते । पठि करि अचरज चित महिं अते ।
करि बिचार उर इम ठहिराई । जानों बनहिं गुरु शरणाई ॥ ३ ॥
जे अबि भाग जगे कुछ मोरे । मिटहि जगत बंधन दुख घोरे ।
जिस हित मुनि जन करहिं उपाइ । राज बिभूति तजहिं समुदाइ ॥ ४ ॥
अनिक भांति के तप कहु तापति । करहिं जोग जिसहित दुह प्रापति ।
सुति बनिता को त्यागहिं मोह । बिचरहि सदा इकाकी होहि ॥ ५ ॥
नितप्रति मैं पूजक सरवर । अनुसारी मेरे है बहु नर ।
अबि मैं गमनौं सतिगुरु पासि । परौं शरनि करि कै अरदास ॥ ६ ॥
तहिं गमने मम श्रेय जु अहै । तौ सरवर मुझ कछु नहिं कहै ।
पूरब करमनि को शुभ फले । अस ग्यानद[1] सतिगुरु जे मिले ॥ ७ ॥
तहां गए जे नहिं कल्यान । तौ मुझ को निज सेवक जानि ।
गमनति करैं बिघन समुदाइ । कै सुपने महिं कछू जनाइ ॥ ८ ॥
कह्यो बहुत गुर सिख ने तांहि । निशचै तुरक कहां तजि नांहि ।
चिरंकाल को सेवक तां को । जानो पूरब सम हित तां को ॥ ९ ॥
इमि मन ठानि चल्यो घर त्यागि । जिस के भाल जेग बडि भारि ।
बाम दाहिने सनमुख सारे । सुंदर भए शगुन सुख वारे ॥ १० ॥

---

1. ज्ञान दाता ।

श्री परमेश्वर सभि जग दानी। अपने पर करुना तिस जानी।
तऊ भिराई भेस धर्यो है। उर बिचार इमि प्रनहि कर्यो है॥ ११ ॥
सतद्रव सलिता लग अस भेस। निज सरीर महिं धरों अशेश।
तहिं लौ सरवर मोहि हटाइ। तौ हटि आउं न गुरू ढिग जाइ॥ १२ ॥
रहौं अबिघन असुपन जि चलता। तौ निज भेस अरपहौं सलिता।
इमि मन धारि चल्यो मग माहिं। उर दुचिता मन को थिति नांहि॥ १३ ॥
सनै सनै सतद्रव तट आयो। करि इशनान असन कुछ खायो।
तरी तीर थिति पिखि करि त्यार। चढि बैठ्यो उलंघन हित पार॥ १४ ॥
जबि प्रवाह मैं नौका आई। खूंडी खलरा दीनि बहाई।
संसै छोरि एक दिश होवा। कूर तुरक को माननि जोवा॥ १५ ॥
बडे प्रवाह बीच सो गेरा। द्वैकर बंदि निम्यो तिसि बेरा।
चित महिं निशचै करि धरि आस। इक मन हुइ गमन्यो गुरु पास॥ १६ ॥
क्रम क्रम पंथ उलंघ्यो सारा। आइ पहूच्यो गुर दरबारा।
बैठे जिह ठां पुरख क्रिपाल। करहिं खनावनि अंम्रित ताला॥ १७ ॥
दोनहुँ हाथ जोरि हुइ दीन। परम प्रेम ते बंदन कीनि।
निज सेवक लखि, लीनि बुलाई। मैं अग्यानी लखौं न काई॥ १८ ॥
बिरद गरीब निवाज तुमारे। शरणागति के नित रखवारे।
रावरि केरि आसरे आए। कोट जनमु नित संकट पाए॥ १९ ॥
लाज नाम अपने की राखहु। लखि सेवक मुझ सेवा भाखहु।
महिमा हम नहिं लखहिं तुमारी। रावरि रूप नरनि उपकारी॥ २० ॥
बिनै सुनति श्री अरजन गुरू। हुइ शरधा ते कारज पुरू।
देवी देवनि ते फल पावनि। ब्रह्मा बिशनु महेशुर ध्यावनि॥ २१ ॥
शरधा धरि सभि ते फल पाइ। बिन शरधा कुछ हाथ न आइ।
शरधा मूल, भगति उच सारे। ग्यान तरोवर उदै उदारे॥ २२ ॥
फल कैवल को प्रापति होइ। जिस ते संकट होइ न कोइ।
शरधा बिन सभि निशफल करम। सुधरहि रिदा न प्रापति धरमु॥ २३ ॥
शरधा सभि ते पूरब चहीअहि। जिस ते मन बांछति फल लही अहि।
इम कहि सतिगुर कीन दिहारी। लिहु गुरु घर ते करहु अहारी॥ २४ ॥
अबि तीरथ की कार करीजै। सभि संगति के संग मिलीजै।
जहां ईंट के लागे पजावे। बहु ईंधन के संग पकावे॥ २५ ॥

तहां सिख सेवा बहु करिही। करदम ते ईंटन को घरिहीं।
शुशक होइ तबि लेहिं उठाइ। आवे बिखै धरहिं समुदाइ॥ २६॥
जिम नीके पाकहिं गन आवे। तिम ईंधन बिधि सों दिहु पावे।
तहिं थिति रहो सभिनि सों कहो। इहु तीरथ की सेवा लहो॥ २७॥
इम सुनि कै बहिलो हरखायो। करि बंदन सिक्खन महिं आयो।
करिबे लग्यो टहिल तिमि संगि। सकल दिवस जेतो बल अंग॥ २८॥
निसा भए जबि फिरहि अंधेरे। जाच लेति सिक्खन के डेरे।
अलप अहार तबहि करि रहै। गुरपग प्रेम रैन दिन लहै॥ २९॥
दिवस बिखै नित सेव कमावै। सिमरन करते निसा बितावै।
बूझै लोक ईटका आवैं। किस ते इह नीके पक जावैं॥ ३०॥
तबहि किसू ने कह्यो सुनाइ। बिशटा जे करि इन महिं पाइ।
तौ आछी पाकहिं हुइं लाल। घसैं न फूटहिं सो ततकाल॥ ३१॥
इम सुनि प्रेरे सुपच बतेरे। भरै सूप लद राशभ प्रेरे।
ईंटन के चहुं फेरे पाइ। अपर बहुर कूरा ले आइ॥ ३२॥
बिधि सों करहि प्रेम उपजावे। गन ईंटन के लाई पजावे।
पाकी बहु सुंदर भई लाल। बहिलो हरखयो रिदे बिसाल॥ ३३॥
श्री अरजन लखि अंतरजामी। सेवा सिख्यन की पिखि स्वामी।
कुछक ईंटका निकटि मंगाई। कीन बिलोकन नीठ बनाई॥ ३४॥
परम प्रसीदे बाक सुनायो। इहु आवा अबि भलो पकायो।
अति सेवा बहिलो की देखि। क्रिपा द्रिशटि गुरु करति विशेख॥ ३५॥
अंतहकरण भयो निरमलीआ। बिशै बाशनादिक सभि दलीआ।
इमि सेवा महिं लग्यो घनेरा। करहि पजावन काज बडेरा॥ ३६॥
इक दिन श्री अरजन गुरु बैसे। कह्यो लांगरी आइ सु ऐसे।
चून आज नहिं भयो तयारी। अटकी देग सु भई लचारी॥ ३७॥
श्री गुरु सिख्यन साथ अलाइ। आज देग को और चलाइ।
सुनि बहिलो हुइ खरे उचारी। रावर करी जु मोहि दिहारी॥ ३८॥
सरब इकत्र अहै सो धरी। मैं निज गुजर अपर बिधि करी।
सो सभि रसत देग दिहु पाइ। श्री प्रभु दान तिहारो खाइ॥ ३९॥
श्री अरजन सुनि बोले सिख्य। अबि न फिरो घर घर हित भिख्य।
मांग मांग टुकरे बहु थांवन। सो सभि हम को करो खुवावन॥ ४०॥

अबि लंगर ते करहु अहारा। नहिं जाचहु तुहि भाउ उदारा।
हमरी करि प्रसंनता ऐसे। जाचे टुकरे देहु न कैसे ॥ ४१ ॥
वाहिगुरू --कहि अरपति हमैं। टुकरे देति जु खैबो समै।
हम को प्रापत होवति आइ। ले गुर नाम अपर दे ख्वाइ ॥ ४२ ॥
आधो भोजन आप अचै हैं। अरध गुरू हित तू अरपैं हैं।
तजहु सु अचवहु देग अहारा। करहु प्रेम सों तीरथ कारा ॥ ४३ ॥
सुनि बहिलो मानी गुरबानी। करन लग्यो तिम जथा बखानी।
बहु नर खनहिं उठावहिं भार। करहिं ब्रिंद म्रितका की कार ॥ ४४ ॥
बहलो धरहि टोकरा आगै। खनहिं सिक्ख इक भरिबे लागै।
बहुत म्रितका पावहि तांहि। इहु तिन को किम बरजति नांहि ॥ ४५ ॥
भरहिं जु म्रितका तिनहुं अगारी। धरहि टोकरा करहिं सु भारी।
आप गुरू दिश टक चख लावै। इत उत द्रिशटि न कबहूं चलावै ॥ ४६ ॥
सतिगुर मुख को देखति रहै। चुकहु सीस पर जबि नर कहैं।
दुइ वै नर उठवावन करैं। गिनहि न कछू सु सिर पर धरैं ॥ ४७ ॥
वहिर गेर पुन आवहि दौर। गुरु मुख पिखहि थिरै तिस ठौर।
हसन हेतु नर भरैं बिसाल। केतिक मण म्रितका के नाल ॥ ४८ ॥
सभि मिलि करहिं हास तिस केरे। कुछ नहिं गनहि गुरू दिश हेरे।
भार उठावहि जेतिक पावहिं। वहिर गेरि दौरति पुन आवहि ॥ ४९ ॥
मुख ते मौन, कहहि नहिं काहू। पिखहि प्रेम राता रंग मांहू।
जबि लग गुर बैठहिं खनवावहिं। तबि लग तिहठां कार कमावहि ॥ ५० ॥
जबि श्री गुरु राजहि थल और। करिहै कार पजावन ठौर।
सुपतहि अलप जामनी जानि। सेवहि सरब्र समैं हित ठानि ॥ ५१ ॥
छुधा पिपासा नींद न जावहि। आलस बिन सेवा सवधानहि।
जबि गुर मिलैं लाइ टक रहै। जथा चकोर चंद को चहै ॥ ५२ ॥
कार ईंटका करहि पचावै। भली रीति करि प्रेम पकावै।
पुन भाई भगतू चलि आयो। तीरथ कार करनि चित लायो ॥ ५३ ॥
श्री गुरु रामदास बच कह्यो। जिसने जनम जगत महिं लह्यो।
म्रितका वहिर निकासे जाइ। खनहि कबहुं कबि सीस उठाइ ॥ ५४ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'भाई बहिलो' प्रसंग बरननं नाम सपत चत्वारिंसती अंशु ॥ ५७ ॥

अंशु ४८

बुड्ढू प्रसंग

दोहरा

बुड्ढू नाम कुलाल इक सतिगुर को सिख धीर।
लवपुरि महिं तिस को सदन जाति गुरू के तीर॥ १ ॥

चौपई

सिख्यनि की वहु सेवा करिई। धरम किरत की जीवा धरिई।
गुरू भरोसे कार करंता। अपने सभि कारज निबहंता॥ २ ॥
लाइ ईंटका केर पजावै। बेचहि पुरि महिं गुज़र चलावै।
गुरु सिख्यन को करहि अहारा। पुरहि भावना रिदे मझारा॥ ३ ॥
एक वार तिन कीन पजावा। कई हजार दरब को लावा।
ब्रिंद मजूर कार को करिते। ईंधन अधिक ईंटका धरिते॥ ४ ॥
गिर सम ऊचो चिनि कै कीना। रहे सकेलति बहुत महीना।
लागति लग्यो अधिक ही दरबा। लीनि बणक ते रिठा करि सरबा॥ ५ ॥
बिकहिं ईंटका दैबो तोहि। कितिक मास महिं इहु सिध होहि।
दरब उधारो ले करि सोई। देति मजूर मजूरी ओई॥ ६ ॥
नर सहस्रई कार कमावैं। संध्या होइ दिहाडा पावैं।
कितिक मास महिं कीन महांना। अगनि लाइबे को मन जाना॥ ७ ॥
बुड्ढू करि-विचार उर नीके। प्रथम पूजीऐ पद गुर जी के।
हुइ निरबिघन सु काज समापति। इहु महिमा सति संगति भाखति॥ ८ ॥
इमि मन ठानि कीन प्रसथाना। रामदास पुरि दिशि गुर जाना।
मग महिं निस बसि पहुंच्यो आइ। नीर कूप सों प्रथम नहाइ॥ ९ ॥
अंम्रितसर महिं कीन शनाना। जपु जी पाठ सप्रेम स-बखाना।
निज मंदिर महिं सतिगुर बैसे। सदन बिकुंठ बिशन प्रभु जैसे॥ १० ॥

गाइं रबाबी रागनि चारू। जिन सुनिबे फल पाइ उदारू।
धन को ढेर अगारी पर्यो। होति प्राति ते जेतिक चर्यो॥ ११ ॥
दास चमर लै सीस ढुरावै। आसन पर थिति गुर दुति पावैं।
सिख संगति चारहुँ दिश दरसैं। मुनि गन मनहुं संभु बिच परसैं॥ १२ ॥
बुढ्ढू जाइ उपाइन धरी। तबि अरदास मेवरे करी।
'श्री गुर जी इहु सिख्य तुमारा। जाचति रावरि सिदक उदारा॥ १३ ॥
बहु धन संग पजावा लाइव। तिहं सिधि हेत अबै चलि आइव।
—पाकहि-नीको-बाक तुमारा। चहति कहायो, ह्वैन बिगारा॥ १४ ॥
करुना भरे रसीले नैना। सुनि इस को पिखि करि कहि बैना।
'कारज तोरि सिद्ध हुइ जाइ। सेवहु सिख्यन को मन लाइ॥ १५ ॥
पाक ईंट का होवहिं नीके। करहु मनोरथ पूरन जी के।
इमि सुनि कै तबि बंदन ठानी। पुन आयहु लवपुरी महानी॥ १६ ॥
गुरू-वाकपर करि बिसवास। दई पजावै अगनि प्रकाश।
कितिक द्योस महिं मूहरी खोली। पाकी ईंट भई बहु मोली॥ १७ ॥
—सिख्यन को अहार-अचवावौं। सदन आनि आछे त्रिपतावौं।
पुन वेचौं सभि ईंट पजावौ। धन दैनो जिसु ते नित ल्यावौं॥ १८ ॥
सदन जाइ कै कीनसि त्यारी। भोजन स्वादल अनिक प्रकारी।
सिख संगति बहुते बुलवाए। पातिह पांति बनाइ बिठाए॥ १९ ॥
प्रथम कीरतन को करिवायहु। गाइ रबाबी शबद सुनायहु।
करि अरदास ब्रताइ अहारा। अचवनि कीनि अनेक प्रकारा॥ २० ॥
त्रिपति भई सभि संगति आछै। एक सिक्ख चलि आयहु पाछै।
करी जाचना 'देहु अहारे। गुर हित ते कीनसि तैं त्यारे॥ २१ ॥
कहति भयो अबि बरत्यो सारो। पूरब आवति करति अहारो।
सभि संगति ने हाथ पखारे। खरो होइ अरदास उचारे॥ २२ ॥
श्री सतिगुरु बुढ्ढू सिख तेरो। भोजन सिक्ख अचाइ घनेरो।
रास पचावा आइ इसी को। तुम करुना ते पाकहि नीको॥ २३ ॥
सुनि सिख लखु ऊच उबाचा। बुढ्ढू रह्यो पचावा काचा।
हेरि छुधातुर दिय न अहारा। नहिं पाकहि भा दोष उदारा॥ २४ ॥
सुनि बुढ्ढू लक्खू संग कहै। 'बडा नवीन सिख्य' तूं अहैं।
मम कारज हित गुरू उबाचा। —पकहि पजावा रहै न काचा॥ २५ ॥

ऐसो कौन जु बाक मिटावै। गुर को कह्यो सदा सफलावै।
भोजन समै न पहुँच्यो आप। क्रोध करे हम देतो स्राप' ॥ २६ ॥
'हम भी हैं गुर सिख्य महांने। नहिं भोजन दे करि-त्रिपताने।
रहै पचावा काचा जानि। इम कहि सिख्य कीनि प्रसथान ॥ २७ ॥
दिवस आगले बुढ्ढू गयो। जाइ-इंटका देखति भयो।
जितिक निकाली पीली आवति। पाकी लाल नहीं द्रिशटावति ॥ २८ ॥
चक्रित चित तूशनि करि खर्यो। मूल नफ़ा सभि घाटा पर्यो।
ब्रिंद रुपय्या लागति भई। माटी सों माटी मिल गई ॥ २९ ॥
बहुत बिसूरत रिण ते त्रासा। -क्या करि हौं, मैं गर महिं फासा।
करी धीर गुरु बचन बिचारा। तबि लवपुरि ते तुरत पधारा ॥ ३० ॥
आइ सुधासर बंदन ठानी। बहुर बारता अपनि बखानी।
'रावरि बाक भरोसा धारि। गुर संगति को दयो अहार ॥ ३१ ॥
तऊ पचावा काचा रह्यो। मूल नफ़ा कुछ हाथ न लह्यो।
नहिं अलंब तुमरे बिन मेरा। मरौं देति मैं करज घनेरा ॥ ३२ ॥
सतिगुर कह्यो जु संगति भोजन। बिरथा गयो तहां ते को जन।
भयो दोष कछु लेहु बिचारी। सुनि बुढ्ढू कर जोरि उचारी ॥ ३३ ॥
'सभि प्रसन्न होए जबि खाइ। एक सिक्ख तबि जाच्यो आइ।
तिस को नहिं अहार मैं दीना। —काचो रहै-तांहि बचकीना ॥ ३४ ॥
मैं भाख्यो-ऐसो नहिं कोइ। सतिगुर-वाक मिटावै जोइ—।
तुमरो वाक निफल करि दयो। तिस को कह्यो साच सभि भयो ॥ ३५ ॥
इक होइ मुझ ते यहि-भूल। जिस ते वाक कह्यो प्रतिकूल।
जे आवति सो सभि के साथ। देति अहार-त्रिपति हे नाथ ॥ ३६ ॥
देति स्राप तत छिन उठि गयो। पुन खोज्यो सो मिलति न भयो।
सुनि सतिगुर ने तूशन ठानी। बूढ्ढू के चित चिंत महानी ॥ ३७ ॥
नीची ग्रीव, बिसूरति भारी। किहते देउं दरब बिवहारी।
भयो अधीरज पीर घनेरी। कहां होइ है गति अबि मेरी ॥ ३८ ॥
कितिक काल जबि बैठ्यो रह्यो। करुना करी गुरू पुन लह्यो।
कहति भए तैं नीक न ठान्यो। सिक्ख अतिथि को छुधित न जान्यो ॥ ३९ ॥
गुर सिक्ख्यन के बाक अचल हैं। करौं हटावनि नहिं मम बल है।
मोहि कहे को सिख्य हटावै। तिन को कहिबो कौन मिटावै ॥ ४० ॥

जो संगति हित करहि अहारे। छुधित न जानि देहि निज द्वारे।
तौ पूरन गुर पुरब पछानो। नांहित ऊनो रहि चित ठानो॥ ४१॥
इहु मेरी सिख मानहिं जेई। कारज लहैं सपूरन तेई।
गुर सिक्खन ते भै नित करनो। कबहुं अनादर नहिं मन धरनो॥ ४२॥
सिक्ख बचन को जानहिं मीठे। सनमुख मिलहिं, लहहिं चित ईठे।
अबि न चिंत करि रिदे मझार। कारज देरी देहिं सवार॥ ४३॥
बहुरि न करहु कबहु अस बाति। सिक्ख अनादर है दुखदाति।
काची ईंट पचावे जोइ। बिकहिं मोल पाकी के सोइ॥ ४४॥
रिण उतरहि अर नफा सु पावैं। सिक्खन सेवहु सुखी रहावैं।
बच कहाइ बंदन करि गयो। ईंटहि जाइ निकासति भयो॥ ४५॥
सभि पिलरी हेरति पछुतावति। गुर बच सिमरति धीरज पावति।
लगी झरी बरखा बहु होई। अपर पचावा भयो न कोई॥ ४६॥
नीव दुरग की भरनी तबै। नर पतिशाही खोजति सबै।
नहीं ईंट का प्रापति तिन को। कारज बन्यो ज़रूरी जिन को॥ ४७॥
सुधि को सुनि बुद्धू बुलवाइव। मोल ईंटका केर बनाइव।
'जिम पाकी तिम काची देवौं। बाढ़ घाट अपरन कुछु लेवौं॥ ४८॥
दुरग नीव बिगरहि नहिं कैसे। दियो दरब बुद्धू कर जैसे।
मूल नफ़ा सभि पर्यो सु पाले। गुर महिमा को लख्यो बिसाले॥ ४९॥
सिख को बाकन गुरू मिटायो। अपनो कह्यो प्रथम निफलायो।
पाकी के मुल काच बिकाई। सुनि कै गुर सिख्यनि समुदाई॥ ५०॥
बासदेव निज बच निफलायो। भीषम को साचो दिखलायो।
—गहों न ससत्र जुद्ध मै—कह्यो। मैं गहिवाउं-भगति ने चह्यो॥ ५१॥
अपनि प्रतग्या तजि रण मांही। गहे शसत्र मारण हित तांही।
धुर की बाण इही प्रभु केरी। सिक्खन सभि विचारी करि हेरी॥ ५२॥

इतिश्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे चतुर्थ रासे बुद्धू' प्रसंग वरननं नाम अशट चत्वारिसंती अंशु॥ ४८॥

अंशु ४६

दिज गंगाराम प्रसंग

दोहरा

नगर बठिंडे महिं बसहि इक दिज गंगा राम।
लादि अन्न बहु बारजा आइ बनज के काम ॥ १ ॥

चौपई

चल्यो चल्यो सत द्रव उलंघाइव। पार बिपासा तें उतराइव।
माझे महिं बूझ्यो तबि जाइ। अन्न बाजरा कहां बिकाइ ॥ २ ॥
जिस थल छिद्र लेहि को मोल। दे करि हटौं सकल ही तोलि।
तबि लोकन तिह कह्यो सुनाइ। 'श्री गुर अरजन ताल लवांइ ॥ ३ ॥
तहां अन्न को खरच घनेरो। सिख संगति के ब्रिंद बडेरो।
अनिक मजूर कार को करैं। निस बासुर तिस ही थल थिरैं ॥ ४ ॥
तहां पहूंचैं गो जिस बारि। हुइ है सकल तोर बिवहारि।
ले करि दरब तुरत घर जै हैं। अपर थान इम नहीं बिकै है ॥ ५ ॥
सुनि लोकन ते चौप बिसाला। लादि अन्न सभि गुर दिश चाला।
सने सने पहुंच्यो तहिं जाइ। नाभ जु गुर को चक्क कहाइ ॥ ६ ॥
अपन अंन सभि जाइ उतारा। डेरा करि हरख्यो उर भारा।
जहिं मानव समुदाइ दिसंते। देश बिदेशन के बिचरंते ॥ ७ ॥
होति ताल की कार बिसाला। करहिं ईंटका को नर जाला।
केतिक चूने की वडि कार। मिल करि करहिं अनेक प्रकार ॥ ८ ॥
केतिक ईंधन अधिक सकेलैं। सीस उठाइ पजावनि मेलैं।
केतिक रोर बहोरन करैं। भले सुधारि एक थल धरैं ॥ ९ ॥
केतिक आनहिं ताल नजीके। को घर-घरि लावति हैं नीके।
करे ईंटका के बडि ढेर। केतिक करदम करि करि गेर ॥ १० ॥
केतिक चुनो पीस बनाइ। को कारीगर निकट पुचाइ।
सिर पर धरहिं टोकरी ढोवैं। सगरे दिन गुर दरशन जोवैं ॥ ११ ॥

तिन महुं केतिक सिख शरधालू। करहिं प्रेम ते कार बिसालू।
केतिक तहिं मजूर करि कारी। भई संझ ते लेति दिहारी ॥ १२ ॥
केतिक कारीगर हैं लागे। सरब बसतु आनहिं तिन आगे।
सिख्यन को पिखि दिज बिसमायो। घाल बडी घालनि चित लायो ॥ १३ ॥
गंगाराम ब्रिध चित फिर्यो। गुर प्रताप नीके उर धर्यों।
मसतक टेकि दूर ते गयो। अपनि अन्न के ढिग थिर थियो ॥ १४ ॥
तिस दिन गुर के देग न होइ। अन्न गयो थुर ल्याइ न कोई।
बहु ग्रामन को जेतिक आयो। सो समि लंगर बिखै लगायो ॥ १५ ॥
नरनि हज़ारन होइ अहारा। बरतति रहै संझ लग सारा।
नहीं अन्न पहुंच्यो कित ही ते। बिन भोजन सो दिवस बितीते ॥ १६ ॥
बहुर आगलो दिन जबि भयो। कित ते अन्न न आवनि थयो।
सुनि कै गंगाराम बिचारा। इन को अरपहिं दरब हज़ारा ॥ १७ ॥
अपनि भलो करिबे के कारन। रैन दिवस लागे सर कारन।
सकल कामना गुर ते चाहैं। दरब देति अरु सेव उमाहैं ॥ १८ ॥
या ते मैं भी सेवा करौं। शरधा सतिगुर की उर धरौं।
होइ सुफल कुछ सुख मैं पाऊं। तबि मैं सिक्खी भले कमाऊं ॥ १९ ॥
दिवस दूसरे देग न होई। इह अवसर मुझ अपर न कोई।
इत्यादिक उर चितवति भयो। जहिं लंगर थल तहिं को गयो ॥ २० ॥
बूझनि कर्यो 'देग किम चलै। किह ते अन्न रास निति मिलै।
सिक्खन कह्यो 'ग्राम ते आवै। मानव आनि हज़ारों थावैं ॥ २१ ॥
सिख सेवक गुर के बहु आनहिं। हाथ जोरि अरपन गन ठानहिं।
नित अतोट सतिगुरू भंडार। चल्यो जाइ सद इसी प्रकार ॥ २२ ॥
सुनि करि गंगाराम बखाना। बेचन हेत अन्न मैं आना।
नगर बठिंडे वास हमारा। लेनि लाभ को इत पग धारा ॥ २३ ॥
आज देग ले मुझ ते कीजहि। गन संगति को भोजन दीजहि।
छुधित रहे सभि सोला जाम। इस ते लाभ न को अभिराम ॥ २४ ॥
सिख न भन्यो 'बूझि गुर लेऊं'। तोहि अन्न पुन देग करेऊं।
इम कहि मन ते गिनत्यो गिनती। जाइ कीन प्रभु आगे बिनती ॥ २५ ॥
जंगल ते इक इत निज आयो। बेचन हेतु बाजरा ल्यायो।
सो अबि देग करावन चहै। करहि सु हुकम जि रावर कहैं ॥ २६ ॥

सतिगुर श्री मुख ते फुरमायो। लेहु तोल जेतिक मन भायो।
मेला जबहि बिसाखी होइ। आइ जि दरब देहिं तिह सोई ॥ २७ ॥
सुनि करि लीनि बाजरा सौ मन। करि कै देग अचाई ततछिन।
दिवस दूसरे तैसे भयो। कित ते अन्न न आवन थयो ॥ २८ ॥
धरि शरधा उर गंगाराम। करति भयो तैसे तबि काम।
सौ मन तोल दियो तिस ताईं। भई देग संगति त्रिपताई ॥ २९ ॥
दिवस तीसरे देख्यो तैसे। सौ मन दीन प्रथम ही जैसे।
देग बनहिं संगति त्रिपतावहि। सर की सभि ही कार कमावहिं ३० ॥
पंच दिवस लगि तैसे कीनो। अन्न पंच सै मन तिह दीनो।
रह्यो पिखति पुन सभि बिवहारु। दिन प्रति होति ताल की कारु ॥ ३१ ॥
अन्न हजारहुं मन अरपावहिं। आन सिक्ख पुन कार कमावहिं।
धनी पुरख धन देति चढाइ। पुन निज कर सो सेव कमाइं ॥ ३२ ॥
हेरि हेरि सिक्खन की रीति। दिजबर कै उपजति चित प्रीत।
मिल सभिहिनि मैं करिबे लग्यो। सेवा सर की प्रेमै पग्यो ॥ ३३ ॥
दिन प्रति शरधा अधिक बधावै। भाग जगे कहु कौन सिखावै।
घर की चिंता दिन प्रति त्यागे। करहि प्रेम अरु सेवा लागे ॥ ३४ ॥
केतिक दिन गुर निकट गुज़ारे। करहि कार उर शरधा धारे।
पुन बैसाखी को बड मेला। चहुं दिश के नर भए सकेला[1] ॥ ३५ ॥
अधिक भीर सतिगुर ढिग होइ। धरहिं भेट बंदति सभि कोई।
सुंदर वसतु अनक प्रकारा। को आनहिं धन की उपहारा ॥ ३६ ॥
जेतिक नर मेले पुर आए। धरहिं भाउ सर सेव कमाएं।
अनिक कामना पूरन होइ। नई करति है मन महिं कोइ ॥ ३७ ॥
करहि मेवरो सभि अरदास। सकल निवेदहि सिख्यन आस।
सुनि सतिगुर दे खुशी बिसाल। दरशन पिखि पिखि होहिं निहाल ॥ ३८ ॥
मेला बिछुर गयो पुन तहां। गंगाराम प्रेम उर महां।
सदन जान नहिं चितवनि करता। निज कल्यान आस उर धरता ॥ ३९ ॥
बैसाखी केतिक दिन पाछे। श्री अरजन सिमरनि करि आछे।
अन्न प्रथम दीनसि दिज जाही। आनहुं तिह बुलाइ हम पाही ॥ ४० ॥

---

1. एकत्र।

मेले महिं आयहु धन जोइ। तिस महिं ते दीजहि पिखि सोइ।
हुकम मसंदन पर इम होवा। सिख ने जाइ सु दिज को जोवा[1] ॥ ४१ ॥
कह्यो बिप्र तुम उठि चलि साथ। सिमरति हैं अबि श्री गुरुनाथ।
क्या मुझ कहहिं-बिचारति मन मैं। सिख के संग आइ तिस-छिन मैं ॥ ४२ ॥
बंदन करि बैठ्यो अगुवाई। जिस के प्रेम वध्यो अधिकाई।
सेवा महिं निस दिन अनुरागा। अपर मनोरथ सगरो त्यागा ॥ ४३ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' दिज गंगाराम प्रसंग बरननं नाम ऊनि पंचासमो अंशु ॥ ४९ ॥

1. देखा।

अंशु ५०

गंगाराम प्रसंग

दोहरा

बैठ्यो बंदन करि निकट पिखि श्री अरजन नाथ।
क्रिपा बिलोचन भरि रहे कह्यो बिप्र के साथ ॥ १ ॥

चौपई

दिज जू मोल अन्न को लीजै। पुरहु कामना सदन सिधीजै।
थुर्यो हुतो जबि तुम ने दयो। सति संगति सभि अचवन कयो[1] ॥ २ ॥

लेहु मोल ते दरब सवायो। जिस ते दूर देश ल्यायो।
पुन उधार पर बाछत काला। दयो अन्न तैं आनि बिसाला ॥ ३ ॥

सुनि दिज हाथ जोरि कै बोला। प्रभु जी ! मैं न लेउं कछु मोला।
रावरि की सेवा मैं करि हौं। जनम सुफल की आसा धरि हौं ॥ ४ ॥

सदन जान की नांहिन चाहू। बैस बितावौं संगति मांहू।
तुम ते परे अपर को नीका। जहिं कल्यान होइ है जी का ॥ ५ ॥

नहिं तुमरो दर छोरन करों। रावरि नाम ध्यान ही धरौं।
सुनि बोले श्री सतिगुर तबै। दरब सरब लिहु दिजबर अबै ॥ ६ ॥

सो ग्रिह अपने देहु पुचाइ। कै अबि आप सु लेहु सिधाइ।
बहुरो आइ करहु सर सेवा। बांछति पाइ, देहिं गुरदेवा ॥ ७ ॥

दिज को दरब लेति सो नांही। हमरे सिक्ख देति हम पाही।
सतिगुर के घर तोट न कोई। आमद खरच सदा इमि होई ॥ ८ ॥

गंगाराम नंम्रि हुइ भन्यो। मैं मन ते रावरि सिख बन्यो।
अरपन कर्यो अन्न मैं आनि। करिहौं रावरि सेव महांन ॥ ९ ॥

सदन जानि की चाहि न मोरे। नहीं मनोरथ मन महिं औरे।
अपनो सिख्य बनावन करीअहि। उर ते भरम मोह परहरीअहि ॥ १० ॥

---

1. खाया।

दीन जानि लिहु अपनि बनाई। पर्यो आन करि मैं शरनाई।
दीन दयाल शुभ नाम सुन्यो है। सिक्खन वतसल बिरद गुन्यो है ॥ ११ ॥
छोरैं नहीं आसरो रावरि। तजहि जि अपर गिनय को बावर।
करि निशचै मैं गह्यो अलंब। बैठ्यो तजि कै सरब कुटंब ॥ १२ ॥
नहीं प्रीत अबि किस के साथ। कर्यो खोज मैं तुमको नाथ।
अस निशचा द्रिड़ दिज को देखि। श्री अरजन करि क्रिपा विशेख ॥ १३ ॥
निरमल जल ते चरन पखारे। पाहुल[1] दई संदेह निवारे।
अपनी सेवा बिखै लगायहु। मोख करन को सिक्ख बनायहु ॥ १४ ॥
उर अनंद लहि सेवा लाग्यो। पूरब भाग भाल पर जाग्यो।
दिन प्रतिकार कति है ज्यों ज्यों। उर निरमल दिज होवहि त्यों त्यों ॥ १५ ॥
केतिक काल रह्यो जबि पास। श्री अरजन करि क्रिपा प्रकाश।
इक दिन शुभ उपदेश बतायो। सत्तिनाम सिमरन लिव लायो ॥ १६ ॥
सिद्धां आनि खरी कर जोरि। भयो सिद्ध सतिगुरू के जोर।
श्री अंम्रितसर कार करंता। भयो बिसालै शकति धरंता ॥ १७ ॥
पुन श्री गुरु ने रुखसद कर्यो। मानि हुकम पद पर सिर धर्यो।
नगर बठिंडे को चलि आयो। भयो मसत मन भरम मिटायो ॥ १८ ॥
उतर्यो रंग हुतो जग काचो। सत्यनाम राच्यो रंग साचो।
हेरि लोक मन बिसमति होए। करति अदाब अधिक सभि कोए। १९ ॥
वहिर नगर ते बैठ्यो रहै। फुरहि[2] बचन जैसो किसी कहै।
प्रोहत धरम छोर लिखि दीनो। अपर बिप्र को तिसु में कीन ॥ २० ॥
निज पुत्रन ते दयो छुटाई। केवल सत्तिनाम लिव लाई।
तहां रहति खत्री जुग भ्राता। धनी अधिक जग महिं बख्याता ॥ २१ ॥
जेशट बिधीचंद है नामू। बिधीचंद छोटे तिह धामू।
लघु ने सेवा तिस की ठानी। खान पान दे आइसु मानी ॥ २२ ॥
कर जोरहि, बैठहि नित पास। जबि कुछ बचन सु करहि प्रकाश।
तातकाल मानहि मिम करै। बिन आलस सेवा ततपरै ॥ २३ ॥
बसत्र रुचिर अरपहि ढिग ल्याइ। स्वादल भोजन दे त्रिपताइ।
निज कर ते सुंदर जल आनहि। करन प्रसन्न करावति पानहि ॥ २४ ॥

---

1. चरणामृत। 2. पूरा होना।

सिधीचंद सेवा इम करै। उर शरधा निस बासुर धरै।
बीत गयो जबि केतिक काल। सभि तजि, घाली घाल बिसाल ॥ २५ ॥
पिखि करि दिजबर गंगाराम। भयो प्रसन्न क्रिपा अभिराम।
सिधीचंद तूं सेवा करै। कौन मनोरथ मन में धरैं॥ २६ ॥
सो अबि हमरे तीर कहीजै। बांछति होहि निसंसै लीजै।
शरधा सेव हेरि करि तोही। अनुकंपा उपजति है मोही ॥ २७ ॥
इम सुनि सिधीचंद दिज बैन। भयो अनंद प्रफुल्यत नैन।
हाथ जोरि करि कह्यो अगारी। जे अबि रावर करुना धारी ॥ २८ ॥
पुत्र नहीं उपजति घर मेरे। हारे करि उपचार घनेरे।
सिद्ध सपूत दीजिए मोही। बचन आप के ते सभि होही ॥ २९ ॥
सुनि कै दिजबर गंगाराम। गुर को सिक्ख उर ब्रिति अभिराम।
पुत्र दास के लख्यो न धामु। शरधा सहत रहति नित शाम[1] ॥ ३० ॥
सुत उपजहि बुधि जुति बड सिद्ध। होवहि जगति बिसाल प्रसिद्ध।
जिन मति ही अचरज दिखरावहि। बंदहि चरन जु हेरन आवहि ॥ ३१ ॥

दोहरा

सवा गिलशत प्रमान की चोटी के सिर केस।
अति सुपैद जुति जनम है अस हुइ सिद्ध विशेश ॥ ३२ ॥
बंस बिभूखन, संत शुभ दीरघ पर उपकारि।
श्री अरजन की क्रिपा ते उपजहि पुत्र तुमार ॥ ३३ ॥
जिस को मानै देश बहु रहै दास के भाइ।
महां शकति धरि उपज है लिहु सेवा फल पाइ ॥ ३४ ॥
सिधीचंद सुनि बाक को सुधा समान बिलंद।
बंदति पद अरबिंद तिह धारति रिदै अनंद ॥ ३५ ॥
पूरब सम सेवति अधिक जबि बीत्यो कुछ काल।
गरम धर्यो तिह भारजा उपजी खुशी बिसाल ॥ ३६ ॥
दसमे मास प्रसूत भा महां सिद्ध वपु जोइ।
जिन जिन देख्यो जाइ तबि सभि के अचरज होइ ॥ ३७ ॥
चोटी सवा गिलशत की सेत केस इक सार।
अभिवंदन सभि ही करति सुनि सुनि जाइं निहार ॥ ३८ ॥

---

1. शरण।

सिधीचंद तबि आइ कै बंदति गंगाराम ।
हरखति हुइ तवि ही धर्यो मूलचंद तिस नाम ॥ ३९ ॥

अपर कथा कहिं लग कथों भयो सिद्ध जग मांहि ।
अजमत धरि जो जगत बहु आन मानते तांहि ॥ ४० ॥

कार सुधासर की करी दिजबर गंगाराम ।
भयो शकति धरि अस बली सिमरति श्री सतिनाम ॥ ४१ ॥

अबि लग जग महिं बिदत बहु नगर सुनाम बिसाल ।
तिस ढिग पूजा होति है मूलचंद की जाल ॥ ४२ ॥

संतति गंगाराम की पूजा धन सो लेति ।
सेवति जो करि कामना सो पूरन करि देति ॥ ४३ ॥

इत्यादिक केतिक गिनौं करति सुधासर कार ।
दुइ लोकन के सुख लहे शकती पाइ उदार ॥ ४४ ॥

"इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'गंगाराम प्रसंग बरननं नाम पचासमो अंशु ॥ ५० ॥

अंशु ५१

मसंदन स्त्राप प्रसंग

दोहरा

सिख अनगन समुदाइ ह्वै करति सुधासर कार।
पके पजावे ईंटका आन ताल पर डार॥ १॥

चौपई

पाकी चिनिबे लगे सुपान। सौंपी कार मसंदन मान।
जो धन देश बिदेशन आवै। आदि बिसाखी जितिक चढावैं॥ २॥
सरब मसंद संभारन करैं। खरचहिं जहां काजबन परै।
सभि संगति के सदन सिधारैं। ले गुर कार आनि बो धारैं॥ ३॥
कारीगरि आदिक समुदाइ। जहां खरच देनो बनि जाइ।
सरब थान सो दैबो करैं। देग आदि महिं खरच बिचरैं॥ ४॥
आमद खरच संभारति सारो। आइ उपाइन अनिक प्रकारो।
ब्रिंद चिनहिं घर ईंट सुधारहिं। चहति जु संगति तिन ढि डारहिं॥ ५॥
बहिलो आदिक सिख समुदाइ। लगे पजावन ईंट पकाइ।
जो जो हित करि कार करंता। सो सो निरमल रिदा बनंता॥ ६॥
करहि कामना जस जस मन महिं। पुरहि सेव सर केतिक दिन महिं।
जो सकाम हुइ, बांछति पाइ। जो निशकाम रिदा बिमलाइ॥ ७॥
लोक प्रलोकन सुख समुदायो। सदा ब्रत गुरू समिनि लगायो।
कार सुधासर केर बहाना। दासन देति कामना दाना॥ ८॥
श्री अंम्रितसर महिमा भारी। श्री अरजन बहु भांति उचारी।
मज्जन करे कलूख न रहैं। बांछति पाइ लाउ जो गहैं॥ ९॥
महां महातम संगति जाने। शरधा धरि धरि सेवा ठानै।
केतिक जबि चिन लीन सुपाना। मिलि सिख्यनि गुर संग बखाना॥ १०॥
सर को महां महातम अहो। थिरहि हजारन संमत कहो।
चिनने महिं काचो हुइ काम। ऊपर ते बनाइं अभिराम॥ ११॥

एक ईंट चूने की जरैं। पुन करदम सों भरती भरैं।
उखरे थिरहि नही लघु काल। एव मसंद दंभ के नाल ॥ १२ ॥
थोरो लागहि सरफा चूने। इहु करते लोभी मत ऊने।
जिम दिढता के शबद बनावो। थिरहि सदा श्री मुख ते गावो ॥ १३ ॥
तिम करिवावहु तुम समरत्थ[1]। तीन लोक धन रावरि हत्थ।
सुनि सिक्खन ले सतिगुर पावन। करे समीप मसंद अवाहनि ॥ १४ ॥
सभि सों कह्यो 'कार इहु काची। क्यों तुम करहु लोभ मति राची।
चूने को सरफा किम धरो। दरब अपर दिहु संचै करो[2] ॥ १५ ॥
जेतिक कारीगर मंगवावति। दिहु पुचाइ लागहि मन भावति।
सुनति मसंदन बचन बखाना। श्री गुर जी धन लगै महानां ॥ १६ ॥
अपर सरब घर के बिवहार। दिन प्रति लंगर बनहि उदार।
दरब बिना निरबाह न होइ। ग्रामनि अन्न अनिक पन जोइ ॥ १७ ॥
सो सभि लगहि खरीदहिं और। इम धन चहियति है बहु ठौर।
सिख्यन को दैबो सिरुपाउ। निति प्रति खरच इही समुदाउ। १८।
नीठ नीठ करि सभि निरबाहैं। देति जहां कहिं ते जबि चाहैं।
चही अहि दरब हज़ारहुं नीति। ताल करन भाखहु जिस रीति ॥ १९ ॥
बडे जतन ते चूनो होइ। बहुर मसाले भाखहिं जोइ।
दरब खरच सो बीच मिलावैं। बहु नर मिलहिं तवै बनि आवै ॥ २० ॥
रिदा मसंदन को लघु जान्यो। श्री मुख ते तबि बाक बखान्यो।
पूरन खीमा नित सतिगुर को। करहु उदार आपने उर को ॥ २१ ॥
हाथ तुमारे खरचहु नीति। शरधा धरहु करहु थिर चीति।
तोट नहीं कबि इस को होइ। शंका मन महिं करहु न कोइ ॥ २२ ॥
सतिगुर इम कहि बहु समझाए। तऊ मसंदन शरधा ल्याए।
कहिन लगे ज्यों ज्यों धन आवहि। त्यों त्यों सर की कार करावहिं ॥ २३ ॥
इक दुइ दिन चूना बहु लाग्यो। बहुर बरज दीनस लब जाग्यो।
एक ईंट ही बहुरि लगावैं। पीछे करदम सगरो पावैं ॥ २४ ॥
खरे मसंद कार करिवावैं। धन लघु लगहि तथा समुझावैं।
निकट तिनहुं के थित नित रहैं। करहिं कार सरसो जिम कहैं ॥ २५ ॥

---

1. समर्थ। 2. धन इकट्ठा करो।

देन लेन सगरो बिवहार। करहिं मसंद सदा अस कार।
सिक्ख करहिं सेदा ढिग हेरें। मन अनखाइ सु कुपहिं घनेरें ॥ २६ ॥
कह्यो न मानैं किस को सोई। करहिं आपने चित हुइ जोई।
पुन सतिगुरु ढिग सिक्ख कहंते। अबि मसंद निज मति बरतंते ॥ २७ ॥
बनहिं सुपान पंक लगवाइ। एक ईंटको चूना लाइ।
मुहरी को दिखरावनि कारन। कहि कारीगर करहिं सुधारन ॥ २८ ॥
अंतर बनहि निरंतर काचा। नहिं न मसंदन को मन साचा।
सुनि सिख्यन ते पुन बुलवाए। निकट देखि करि गुर फुरमाए ॥ २९ ॥
ताल रचन महिं दंभ न करीअहि। इह सतिगुर को सदन बिचरी अहि[1]।
क्यों सरफा[2] तुम डर करि धरो। चूनो सरब लगावनि करो ॥ ३० ॥
धन की कमीन कोऊ रहै। शरधा धरहि सेब जो गहै।
सुनि मसंद गन बाक बखान्यो। सिक्खन कछू भेव नहिं जान्यो ॥ ३१ ॥
इक रावरि ढिग आन बतावें। दरब मसंद नहीं सर लावें।
धन को आवन जावन जोई। तिस गति को नहिं जानै कोई ॥ ३२ ॥
खरच हज़ारहुं को नित होवै। तिस को कहो कौन सिख जोवै।
हम रावर की आग्या पाइ। कहि करि गाढी कार कराइं ॥ ३३ ॥
इम कहि गए मसंद महांने। इक दुइ दिन आछी गति ठाने।
चूना अधिक लगावन कीना। कुछक त्रास गुर दिश को चीना[3] ॥ ३४ ॥
केतिक दिन चिनवावति रहे। पुनह आमदन लघु धन लहे।
करन लगे तैसी विधि कारु। लगि चूना इक ईंट मझारू ॥ ३५ ॥
देखि सिक्ख नहिं सकहिं सहारे। सतिगुर बड बुनियाद उचारे।
कार मसंद बनावहिं दंभा। दिश दोनहुं ते होति अचंभा ॥ ३६ ॥
रहि न सकहिं मिलि गुर ढिग आइ। जहिं बैठे गुर सहिज सुभाइ।
कर जोरति कहि सिक्ख समुदाइ। सर सौपाननि पंक लगाइ ॥ ३७ ॥
कहे आपके लावै कवै। चूने संग ईंटका सत्रै।
नांहि त करदम सों चिनवावति। मुहरी महिं चूना लगवावति ॥ ३८ ॥
त्रिती बार सुनि करि खुटिआई। कुछ रिस करि गुर गिरा अलाई।
श्री अंम्रितसर की बुनियाद। भई सथिर कबि होइ न बाद[4] ॥ ३९ ॥

1. बिचारो, समझो। 2. कंजूसी। 3. देखा। 4. व्यर्थ।

एक बार इह जाइ बिदारा। बनहिं नवीन फेर सर सारा।
इनहि जि पोल बनावन कीन। पोली जर[1] अपनी कर लीन॥ ४० ॥
जबि मसंद बिनसहिं नहिं रहैं। संगति बिखैं न ढोई लहैं।
तबि मेरे सिख होइं बिसाला। कार समालहिंगे इस ताला[2]॥ ४१ ॥
ईंट सु चूना अधिक लगावहिं। पवरी पाकी परम बनावहिं।
सरकी जरां सथिर जो करैं। अपन सथिरता को सो भरैं॥ ४२ ॥
दंभ मसंदन कीन जु ताला। जड़ न रहै इमि की चिरकाला।
पूरब इन को ब्रिंद बिनासैं। पुन सर ढहि करि बनहि प्रकाशैं॥ ४३ ॥
होनहार इन ते करिवावहिं। फल को पावहिं तबि पछुतावहिं।
देहि भावनी को फलु ताल। अब क्या कहिन बनै इन नाल॥ ४४ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'मसंदन स्राप' प्रसंग बरननं नाम: इक पंचासमा अंशु॥ ५१।

---

1. जड़। 2. सरोवर।

अंशु ५२

श्री प्रभु सर की कार करन प्रसंग

दोहरा

मंद मसंदन ब्रिंद को स्राप भयो इस भाइ।
तन धरि श्री गुर दसमु बर सगरे दऐ खपाइ ॥ १ ॥
बली तुरकपति कावली इस थल दल चलि आइ।
सर सौपान उखेर करि पूर दियो सभि थाइं ॥ २ ॥
सिंध ब्रिद महिपति भरु हते जमन समुदाइ।
नीव पुरातन ताल की देखि भले सो थाइं ॥ ३ ॥
करी सुपान चिनाइ पुन चूनो सरब लगाइ।
तिम श्री हरिमंदर कर्यो कंचन रतन खचाइ ॥ ४ ॥
सुनो कथा सर बनन की श्री अरजन उपकार।
कार करावति तीर थित श्री मुख वाक उचारि ॥ ५ ॥
अनगन नर की भीर, ह्वै चारहुं दिश महिं लाग।
चिनहिं खनहिं 'गुर-गुर' भनहिं भजन भगति बडभाग ॥ ६ ॥

चौपई

श्री लछमीपति एकंकार। जग सिरजन पालन संहार।
तीन लोक स्वामी बडि चीन। दीन दयाल निज भगति अधीन ॥ ७ ॥
सच्च खंड महिं सभि बिधि जानी। अपनि समीपनि साथ बखानी।
श्री नानक तन को मैं धार्यो। नरक परन ते नरन उबार्यो ॥ ८ ॥
अबि सरूप पंचम तिन केरा। श्री अरजन हित जगत बडेरा।
भगतु बेस महिं छपहि बिसाले। चाहति भगति पंथ कहु पाले ॥ ९ ॥
इस उपाइ महिं लगहिं महाना। थिरहिं सदीव नरन कल्याना।
सुधा सरोवर को सिरजावति। महां महातम को दिप तावति ॥ १० ॥
कर्यो चहति विच श्री हरि मंदर। अवनी तल महिं अदभुत सुदर।
जिस महिं भजन प्रविरतहि महां। चहुं दिश के नर नंम्रहिं तहां ॥ ११ ॥

भगति निरंतर अंतर होइ। मोकहु सिम रहिंगे सभि कोइ।
दंभ विहीने प्रेम प्रवीन। होहिं कीरतन मैं लिव लीन ॥ १२ ॥
मोकहु सदा भगति है प्यारी। रहौं बन्यो जन के अनुसारी।
भगति भेख धरि बिदत्यो जैसे। भगति बसी दिख रावौं तैसे ॥ १३ ॥
अबि मैं सर की कार कमावों। छपन हेत बपु को पलटावों।
इम कहि करि मधसूदन माधो। बन मजूर तन कट पटबाधो ॥ १४ ॥
कही कंध खनिबे हित धारी। गही टोकरी हाथ मझारी।
महिमा भगतनि की बडकारन। बसी प्रेम अपन पौ दिखारन ॥ १५ ॥
जगत कंत जग गुर पुरि आए। मिले मजूरनि कार कमाए।
ब्रह्मादिक शिव को सुधि होई। कौतक पिखन देव सभि कोई ॥ १६ ॥
'जै जै' भनति गगन महिं आए। अदभुत गति देखति सुर छाए।
बिसमति चित निज बिखै बखाने। इन के चलित इही प्रभु जानें ॥ १७ ॥
निज प्रीतम के नित हितकारी। बिदतावति इमि जगत मझारी।
भगत सरूप एक भव धारा। दुतीए सो बसि रहिन दिखारा ॥ १८ ॥
भगति कबीरनि केत सिधाए। बनि बनजारा खेप चलाए।
नाम देव को छापर छायो। भगतनि वतसल बिरद दिखायो ॥ १९ ॥
फेरि देहुरा गऊ जिवाई। मुगल रूप धरि मिले गुसाईं।
गए सैन के तन धरि नाई। प्रीतमु हित न्रिप सेव कमाई ॥ २० ॥
कौन कौन इन करम गिनीजै। बसि भगतन के सदा लखी जै—।
कही गही कर प्रभु समरत्थ। धरी टोकरी दूसर हत्थ ॥ २१ ॥
हरि मंदर जिस थल चिनवाइ। खनन लगे म्रितका तहिं जाइ।
कार निकासहिं बहिर गिराई। देखति भए देव समुदाई ॥ २२ ॥
पलटि पलटि अपनो तन सारे। आइ लगे सगरे सर कारे।
तिन की प्रेरति कार करावहिं। कहि सभि सों उतसाह बधावहिं ॥ २३ ॥
छिनिक मात्र महिं माटी पाटी। सभि निकास करिबाहर साटी।
श्री अरजन कर निरनै हेरैं। आज कार को करहि घनेरे ॥ २४ ॥
संगति नहीं कहूं ते आई। जित कित दीखति जन समुदाई।
बेस अनूपम अदभुत क्रांति। करति कार को शोभति गाति ॥ २५ ॥

सवैया

श्री गुरएव बिचारि निहारति—है सभि महिं इक सुंदर डीला।
चारु बिलोचन सोच बिमोचति, प्रेरति है सभिहूनि छबीला।

ब्रिद अदाइब राखति है, अभिलाखति भाखति हैं गुनशील ।
और नहीं जग मौर इही इसु ठौर बिखै दिखरावति लीला ॥ २६ ॥

लघु काल मैं कार बिसाल करी थल जांहि बिखै चिनिबो हरि-मंदिर ।
म्रितका तहिं ते करि तूरनता निकसाइ लई सगरी सर अंदर ।
जसु भाखि महातम आनन ते करवावति हैं कर ते तन सुंदर ।
इक आवति हैं, इक जाति निकासति श्री गुर देखति भे करिनंदर ॥ २७ ॥

—चित चौंप धरी सुर गोप अहैं पलटे तन—जानिगुरु—चलिआए ।
जिमि सूरज बाल बिलोकति ही अरबिंद बिलोचन है बिकसाए ।
बर डीठ मिली जुग मूरत की इक जोति स्रवोतम ही उमहाए ।
अवलोकति कीरति को बरनें भुनसार समैं बिच राग सुहाए ॥ २२ ॥

दोहरा

सूही राग सु छंत करि जुकति बिलावलु गाइ ।
अपन अनंद बिलंद को दियो जनाइ सुनाइ ॥ २६ ॥

श्री मुख वाक—

सूही महला ॥ ५ ॥

संता के कारजि आपि खलोइआ हरि कंमु करावणि आइआ राम ॥
धरति सुहावी तालु सुहावा विचि अंम्रित जलु छाइआ राम ॥
अंम्रित जलु छाइआ पूरन साजु कराइआ सगल मनोरथ पूरे ॥
जै जै कारु भइया जग अंतरि लाथे सगल विसूरे ॥
पूरन पुरख अचुत अबिनासी जासु वेद पुराणी गाइआ ॥
अपना बिरदु रखिआ परमेसरि नानक नामु धिआइया ॥ १ ॥

नवनिधि सिधि रिधि दीने करते तोटि न आवै काई राम ॥
खात खरचत बिलछत सुखु पाइआ करते की दाति सवाई राम ॥
दाति सवाई निखुटि न जाई अंतरजामी पाइआ ॥
कोटि बिघन सगले उठि नाठे दूखु न नेड़ै आइआ ॥
सांति सहज आनंद घनेरे बिनसी भूख सबाई ॥
नानक गुण गावहि-सुआमी के अचरजु जिसु वडिआई राम ॥ २ ॥

जिसका कारजु तिनही कीआ माणसु किआ वेचारा राम ॥
भगत सोहनि हरि के गुण गावहि सदा करहि-जैकारा राम ॥
गुण गाइ गोबिंद अनद उपजे साध संगति संगि बनी ॥

जिनि उदमु कीआ ताल केरा तिसकी उपमा किआ गनी ॥
अठसठि तीरथ पुन्न किरिआ महा निरमल चारा ॥
पतित पावनु बिरदु सुआमी नानक सबद अधारा ॥ ३ ॥
गुण निधान मेरा प्रभु करता उसतति कउनु करीजै राम ॥
संता की बेनंती सुआमी नामु महांरसु दीजै राम ॥
नामु दीजै दानु कीजै विसरु नाही इक खिनो ॥
गुण गोपाल उचरु रसना सदा गाइए अनदिनो ॥
जिसु प्रीति लागी नाम सेती मनु तनु अंम्रित भीजै ॥
बिनवंति नानक इछ पुन्नी पेखि दरसनु जीजै ॥ ४ ॥ ७ ॥ १० ॥

दोहरा

इम सनमुख हुइ करि खरे गाई सिफति सुनाइ ।
बध्यो प्रेम दोऊ दिशन जल अन्नद चख आइ ॥ ३० ॥

चौपई

श्री अरजन अरजनि करि नीके । अरजन कीरति गुन प्रभु ही के ।
निकटि होइ करि दोनहुं हाथ । परसे पद अरबिंदनि साथ ॥ ३१ ॥
गहि त्रिलोक पति अंक भरे हैं । परम प्रेम ने बिसुध करे हैं ।
शोभति बदन चंद मानिंद । बाक सुधा बोले मुख कंद ॥ ३२ ॥
'जगत भगति मग शुभ बिसतारा । सर को रच्यो परम उपकारा ।
जिस ते सिक्खी थिरहि सदीवा । गाइ कीरतनु करिमन नीवां ॥ ३३ ॥
सर अंदर अबि श्री हरि मंदर । सिरजहु जिसकी रचना सुंदर ।
जरहिं जवाहर जोब बिलंद । शोभहि बहु जिस पूरन चंद ॥ ३४ ॥
चहुं दिश को चहुं दर सिरजावहु । रुचिर बंगला उरध करावहु ।
पशचमु दिश को सेतु रचावहु । तीरथ तीर पौर बनिवावहु ॥ ३५ ॥
श्री अरजन की पकरे बाहू । ब्योंत बतावति सभि जग नाहू ।
इहु मेरो मंदर वरु होइ । जिसकी समता करहि न कोइ ॥ ३६ ॥
तीन लोक महिं होहि न जैसो । भजन प्रताप बनहि निति ऐसो ।
नरक निवारण कारण मोख । मेरो सिमरन हुइ निरदोख ॥ ३७ ॥
जे नर-शरधा धारि उर-परमु । गाइं कीरतन हुइ निशभरम ।
मुहि को मिलहिं आइ निरसंसै । जनम मरन के बंध-विध्वंसै ॥ ३८ ॥
इत्यादिक सभि ब्योंत बताए । भगति प्रताप अधिक- बिरधाए ।
ज्यों क्यों करि-सिक्खी बिसतारहु । नरक परन ते नरनि उवारहु ॥ ३९ ॥

फेर जुद्ध तुरकन सों करिअहि। अपर पंच तन जोति संचरी अहि।
पंथ खालसा रचहु बिसाला। रख्यक सर को हुइ सभि काला ॥ ४० ॥
करहि निरंतरि कीरति मोरी। पर बिरतहु शुभ रीति घनेरी।
पुन मम तन मैं लैता पावहु। जिस हित तन धारहु सुबनावहु ॥ ४१ ॥
इम कहि सुनि मिलि अंतर ध्याने। पुन सुर गन अति प्रीती ठाने।
श्री अरजन को बंदन की नसि। नाम निवेदन करि हित भीनस ॥ ४२ ॥
बिनती भनि भनि गे सुरपुरि को। करति परसपर जस सतिगुर को।
संगति कार-करति सर केरी। हेरि हेरि मति बिसम बडेरी ॥ ४३ ॥
'श्री गुर-अरजन धरि अहिलादा। इहु थे कौन कीन संवादा।
नए अनूठे वेस बिसाले। कित ते आइ कहाँ इहु चाले ? ॥ ४४ ॥
सर की कार कमावति गए। इन को भेत न किनहूं लए।
पुन श्री अरजन थरे बिराजे। कहति करावति सर को काजे ॥ ४५ ॥
ब्रिंद सिक्ख अरु लगे मजूर। होइ कार बहु थिरे हजूर।
संगति अनिक आइ इक जाइ। रहैं जितिक सर कार-कमाइं ॥ ४६ ॥

दोहरा

सुधा सरोवर की शुभति चहुं दिश बनहिं सपान।
महां महातम को भनति श्री अरजन सुखदान ॥ ४७ ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्री प्रभु सरथी कार करन' प्रसंग बरननं नाम दोइ पंचासमो अंशु ॥ ५२ ॥

अंशु ५३

श्री अंम्रितसर प्रसंग

दोहरा

पुन सतिगुरू बिचारि कै संमत ब्रिध ते आदि।
चहति रह्यो निज सदन को जिस की थिर बुनियाद ॥ १ ॥

चौपई

सुनि कै सिख आदिक गुरुदास। भगतू बहिलो धरे हुलास।
सर अंदर हरिमंदर सुंदर। सिरजहिं समता लहि न पुरंदर ॥ २ ॥
सुनि सिक्खन उतसाहु बडेरा। पंचाम्रित करिवाइ घनेरा।
गमने गुरू ताल के मांही। संगति ब्रिंद संग मैं जाहीं ॥ ३ ॥
कारीगरनि बुलावन ठानी। श्री मुख ते सभि ब्योंत बखानी।
हरि मंदर इस रीति बनावहु। चार द्वार चहुं दिशन रखावहु ॥ ४ ॥
नगर दिशा सर सेत रचीजहि[1]। द्वार दरशनी सर तट कीजहि।
हरिमंदर की कुरसी सारहु। ताल नीर ते उरध उठारहु ॥ ५ ॥
स्वरग दारीआं[2] तरे बनावहु। पूरब दिशि हरि पौड चिनावहु।
चहुं दिशि कों परकरमा करीअहि। गाढी नीव तरे ते धरी अहि ॥ ६ ॥
दरि मंदर के चारों जोइ। दुइ दुइ छात चउगिरदे होइ।
मद्ध जाइ ऊची इक छात। ऊपर मिलि समुहाइ, सभि भांति ॥ ७ ॥
तिस पर रुचिर बंगला थपहि[3]। कंचन ते चहुं दिश महिं दिपहि।
इम बताइ श्री मुख बिधि सारी। पुन ब्रिध सों गुर गिरा उचारी ॥ ८ ॥
सिमरहु सभि सतिगुर सुखरास। खरे होइ कीजहि अरदास।
अविचल नीव धरी गुर नानक। मंदर सुभहि लगहिं मणि माणिक ॥ ९ ॥
हुकम सुन्यो ब्रिध बंदे हाथ। सिमरनि करि चारहुं गुरु नाथ।
श्री सतिगुर हरिमंदर होइ। जिस ते सुख प्रापति सभि कोइ ॥ १० ॥

---

1. बनवाओ। 2. महिराबें। 3. बीच का बडा गुंबद स्थापित करना।

कलिजुग महिं निहचल इस नीव। बुरा जि चितहि बिनासी थीव।
अंग संग सतिगुरू सहाइ। सिर शत्रुनि के इह दिपताइ॥ ११॥
मानहि, परहि, मनोरथ सोइ। सीस निवाइ बिघन गन खोइ।
दिन प्रति दिपहि दुगुन चगूनो। जिम प्रतिपद ते हुई ससि पूनो[1]॥ १२॥
बीच बिराजहिं गुरू सभि समैं। आइ चतुर दिश के नरमिमैं।
इमि अरदास करी ब्रिध जबै। श्री अरजन कर पंकज तबै॥ १३॥
गही ईंट तहिं करी टिकावन। मंदर अविचल नींव रखावन।
तबि कारीगर निकटि सु हेरि। हेत जनावन मती बडेर॥ १४॥
निज कर ते उठाइ सो लीनि। फेर घेर धरि करि धरि दीन।
श्री अरजन अवलोकन कर्यो। 'कहां कीन तैं बाक उचर्यो॥ १५॥
हम गुर सिमरि समै शुभ जाना। धरी ईंट हित अचल सथाना।
चिनिब हार आज ते पाछे। ईंट अपर जो धरि हैं आछे॥ १६॥
तिस उखेर पुन आप थरैं हैं। कारीगरन बिखै अस ह्वै हैं।
इम दे स्राप कह्यो गुरफेर। अस क्रिति ते हम लीन सुहेर॥ १७॥
जथा मसंदन लायहु गारा। बहुर बनहि सर-स्राप उचारा।
तिम तव क्रित ते जानी जाइ। मंदर हुइ करि भगत गिराइ॥ १८॥
बहुर उसारहिं सिक्ख हमारे। चहुं दिश को धन लाइ उदारे।
सर जुति हरिमंदर पुन होइ। अविचल नीव सदा इस जोइ॥ १९॥
पुन पंचाम्रित द्रिशाटि लगाइव। कहि ब्रिध सों सभि महिं बरताइव।
जै जै नाद करहिं सिख सारे। लगे कार सर प्रेमी भारे॥ २०॥
चूनो सूखम पीसन करैं। संचि संचि बहु इक थल थरैं।
बहुत मोल के डालि मसाले। करहिं मिलावनि मसल बिसाले॥ २१॥
धरे प्रीति सिख कार करंते। को निस मैं भी लगे रहंते।
बहुत मिले करि कार पचावनि। अधिक ईंट को खरच लगावनि॥ २२॥
को सिर धरहिं उठाइ सु ल्यावैं। कारीगर के निकट पुचावैं।
को चूने को ल्याइ उठाई। हरि मंदर पर देति लगाई॥ २३॥
सभि की सेवा अलप बिसाला। जो निशकाम कामना वाला।
लघु अरु महिद प्रेम उर जैसे। श्री सतिगुर उर जानहिं तैसे॥ २४॥
जोग छेम सिक्खन की करता। जनम मरन के कलमल हरता।
क्रिपा करहिं दासन को हेरहिं। जो घालति हैं घाल घनेरहिं॥ २५॥

1. पूर्णिमा।

सुंदर सर की बनी सुपान। बाही चारहुं कोन समान।
हरिमंदर की कुरसी भई। परब्रिति बरखा रुत जग भई॥ २६॥

श्री सतिगुर ने ताल बनावा। मनहुं भरनि को घन उमडावा।
घटा घुमड करि नभ महिं आई। कबहुं श्याम, सित कबि बिदताई॥ २७॥

निरमल जल को छोरन करै। गुर को रुख लखि सर को भरै।
झुकहिं मेघ जनु लागहिं अविनी। धोखति मधुर मधुर रुत खनी[1]॥ २८॥

सुंदर जल सों पूरन कर्यो। ऊनव घन गन शोभति धर्यो।
श्री सतिगुर परमारथ रूप। कर्यो बिलोकन ताल अनूप॥ २९॥

संगति संग सिख समुदाए। हेरि हेरि करि सभि हरखाए।
अति शोभा चारहुं दिश मांही। करदम[2] बिन ठहिर्यो जलु तांही॥ ३०॥

आइ संगतां सुनि सुनि ब्रिंद। मज्जत मितप्रति लहति अनंद।
जनम जनम के संचति पापू। सर शनान ते कीनसि खापू॥ ३१॥

करहिं परकरमा फिरि चहुँ फेरे। शबद पठहिं फल पाइं घनेरे।
करहिं कामना ततछिन पावहिं। कहति शलाघा धामनि जावहिं[3]॥ ३२॥

जहिं सिख संगति को हुइ मेला। सतुति सुनाइं सु ताल सुहेला।
अति रमणीक बनी जिह शोभा। देखति जिसहि न किहि मन लोभा॥ ३३॥

आप सतिगुरु कार करावैं। मज्जन को फल घनो सुनावैं।
पसर्यो सुजस देश परदेश। सुनि सुनि आवहिं सिक्ख विशेश॥ ३४॥

इक दरशन की कांखा घनी। दुतीए सर की उसतति सुनी।
चित महिं चौंप अधिक करि आवैं। सर शनान करि उर हरखावैं॥ ३५॥

दरसहिं सतिगुर को सुख पाइ। अनिक भांति को सुजसु सुनाइ।
जग सागर दुशतर बड दारुन। तिस ते अपने दास उबारन॥ ३६॥

कर्यो सभिनि पर बड उपकारा। धंनु धंनु गुर सिक्ख दतारा।
इत्यादिक जस जग महिं भयो। दून चगूना हुइ नित नयो॥ ३७॥

कितिक काल सर महिं जल रह्यो। बहुरो सोख सरब ने लह्यो।
श्री अरजन के ढिग सिख सारे। संभ्रम युत कर जोरि उचारे॥ ३८॥

इहु तालन महिं दोश महांना। महां नीर सोखहि जिस थाना।
बन्यो बनायो निशफल होइ। बीच न ठहिर सकहि जल जोइ॥ ३९॥

---

1. सुन्दर ऋतु। 2. कीचड़। 3. प्रंशसा करके अपने घरों को जाते हैं।

केतिक ताल रहे इस भांति। बिन जल ते सूके गिर जाति।
महां बिघन इहु तालन केरा। जो राविर के सर महिं हेरा ॥ ४० ॥

नहिं उपाइ इस दोश मिटावनि। जिस ते होइ नीर ठहिरावन।
रावर सरब रीति समरत्थ। जग सिरजन भन्नण[1] तुम हत्थ ॥ ४१ ॥

सुनि सिक्खन ते सतिगुर पूरे। श्री मुख ते भाखे वच रूरे।
इस तलाव को त्रिपति न होई। रीत छुधातुर समसर जोई ॥ ४२ ॥

सर संतोख थान जिस पावनि। तहिं की करहु कार इत ल्यावनि।
तिस म्रितका ते हुइ संतोश। सकल बिनासहि त्रिशना दोश ॥ ४३ ॥

ब्रिध आदिक सिख सगेर जावहिं। एक बार जेतिक धर ल्यावहिं।
श्री अंम्रितसर महिं सभि पावहु। दिहु संतोश जल को ठहिरावहु ॥ ४४ ॥

सुनि सतिगुर के वाक सुहाए। सिक्ख इकत्र भए समुदाए।
मिलि संतोख सर पर सभि गए। तहिं की म्रितका ल्यावति भए ॥ ४५ ॥

जितिक ताल अंतर बिसतारा। तर हरिमंदर चहुँ दिश मारा।
म्रितका सगल थान पसराई। सतिगुर कहि करि सभि बिथराई ॥ ४६ ॥

बहुर नीर शुशक्यो नहिं कबै। पूरन रह्यो भर्यो जलि सबै।
सिख संगति समुदाइ अनंद। मज्जति कलमल हतहि बिलंद ॥ ४७ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्री अंम्रितसर प्रसंग बरननं' नाम भै पंचासमो अंशु ॥ ५२ ॥

---

1. संहार।

अंशु ५४

रामदास नगर बसावन प्रसंग

दोहरा

श्री हरि मंदर को बहुर कारीगरन लगाइ।
करति उसारन कउ भले चहुं दिश दर रखवाइ॥ १।

चौपई

सिख प्रेमी बहु कार कमाइं। चूनो पीसहिं प्रेम लगाइ।
बहु सूखम बहु डाल सभाले। सिर उठाइ करिल्याइं उताले॥ २॥
ब्रिंद ईंटका सीस उठावैं। कारीगरनि निकट पहुंचावैं।
नीके घर घर धरहिं सुधार। करहिं निता प्रति मंदर कार॥ ३॥
श्री सतिगुर की आइसु पाइ। नहिं काशट किस थाइं लगाइं।
चूने संग ईंटका जरैं। भित ठांढी गाढी अति करैं॥ ४॥
चहुं दिश खरी करी बहु खरी। करदम संग न ईंटै धरी।
कालबूत संग करि करि जोर। चारहुँ दर मेले दुहुं ओर॥ ५॥
चिन चिन ऊपर कीन उतंग। मेली छात सु चूने संग।
महिमा के गुर शबद बनावैं। हरखहि संगति जबहि सुनावैं॥ ६॥
सुधा सरोवर अरु गुरु धामू। दोनहुं बिखै जु थल अभिरामू।
तहिं बज़ार की चिनती हुई। निज निज हाटि सुधारहि कोइ॥ ७॥
ज्यों वर दें त्यों शबद बनावैं। सतिगुर ते सभि सिख सुन पावैं।
होवै वसदी सघन अपार। रामदास पुरि बनहि बज़ार॥ ८॥
इस के सम हुइ नगर न कोई। आइ प्रवेशहि लछमी जोई।
चहुं दिश ते इहु बधहि बिसाल। बसैं लोक सभि जातनि जाल॥ ९॥
देश बिदेशनि बनज महाना। चलहि जहां कहिं, नर धनवाना।
सुनि सतिगुर के बाक सुहाए। बसन हेत केतिक सिख आए॥ १०॥

सदन चिनाइ, बनाइ दुकान। करन लगे बिवहार सुजान।
लवपुरि आदिक जे नित बासे। गुरपुरि को थल करि उपहासे ॥ ११ ॥
मूरख गुर प्रताप नहिं जानहिं। मिलहिं परसुपर एव बखानहिं।
नगर बसहि कैसे तिस थान। चहुँ दिश को जलु आइ महांन ॥ १२ ॥
थिरहि चुमासे महिं बहु पानी। किम घर रहहिं, होहिंगे हानी।
जो जो बसहिं जाहिं पिखि हाला। उजर जाहिंगे थोरिय काला ॥ १३ ॥
इम सुनि सुनि सिक्खन दुख पावा। निशचा मूढन कहे डुलावा।
श्री अरजन के ढिग जबि आए। हाथ जोरि मिलि सभिनि सुनाए ॥ १४ ॥
सुनीअहि गुरु गरीब निवाजू। आप करति बड नगर समाजू।
श्री मुखवाक—महां इहु बासै। लछमी थिरहि अनूप प्रकाशै ॥ १५ ॥
अपर पुरन के नर बिवहारी। सहत हास इव करति उचारी।
चहुँ दिश कौ जल जहिं थिर होइ। कैसे तहां बसहिगो कोई ॥ १६ ॥
सदन गिरें तबि ऊजर जै हैं। बसनहार इत उत दुख पैहैं।
सुनि सिक्खन ते सतिगुर कह्यो। जिम चहुँ दिश जल आवति लह्यो ॥ १७ ॥
तिम चहुँ दिश के नर उमडावें। बसिबे हेत नगर इस आवें।
बडे जतन ते सदन सथान। ले करि बसि हैं गन धनवान ॥ १८ ॥
ब्रिंद नरन को रिज़क महाना। आन धरहिंगे हम इस थाना।
खैबे हेत आइ सभि कोई। आन थान ते पाइ न जोई ॥ १९ ॥
गुरपुरि दिन प्रति वधहि बिसाला। करहिं वास नर सदा सुखाला।
जीवति सिमरहिं रिदे गुबिंद। हरि मंदर महिं हुइ करि ब्रिंद ॥ २० ॥
करहिं जीवका बसि गुर पुरि मैं। सतिगुर सबद धारि करि उर मैं।
अंत समैं गति पाइं सुखारे। दुइ लोकन के कारज सारे ॥ २१ ॥
निंदक दुशट बिलोक न सक्कई। दुखी होति पर सुख को तक्कई।
सो पचि पचि जबि जावें हार। शरन परें सतिगुर दरबार ॥ २२ ॥
नहीं बसहिं पछुतावहिं पाछै। सुखआछो पिखि बसिबो बांछे।
सुनि सुनि सेवक भए प्रसंन। कहति बाक 'श्री गुर धंन धंन ॥ २३ ॥
दिन प्रति बसहिं आन करि नए। नर कुटंब जुति घर गन भए।
खुल्यो बज़ार हेत बिवहारा। सतिगुर सभि की करहिं संभारा ॥ २४ ॥
केतिक मास बितीते जबै। बैठे सौदा ले करि सबै।
आइ न कोइ खरीदन हारा। होति अलपही कुछ बिवहारा ॥ २५ ॥

ब्रिंद बतक इक दिन मिलि आए। श्री गुरु अरजन जहां सुहाए।
हाथ जोरि सभि बिनै बखानी। सुनहु ब्रितंत आप सभि दानी ॥ २६ ॥
बनक अनेक बसे पुरि आई। बैठे करि दुकान समुदाई।
सरब भांति को सौदा लै कै। हेत जीवका इच्छा कै कै ॥ २७ ॥
सकल कुटंबदार हम अहैं। सभिहिनि केर गुजारो चहैं।
जबि ते खोली आनि दुकान। बैठे रहैं प्रतीखन वान ॥ २८ ॥
नहीं खरीद करन को आवै। सौदा अलप कबहूं बिक जावै।
यांते नहिं परवार गुज़ारा। जिस ते सभि को बनहि आहारा ॥ २९ ॥
पट पहिरन को खरच महांना। ब्याहि आदि उतसव जे नाना।
कयों चहैं हम बस करि जबै। एंतो बजन होति नहिं अबै ॥ ३० ॥
नहीं जीवका अपर बिधाना। बनहि न अपर कार जे नाना।
तुम अंतरजामी सभि जानो। करे बसावन पालन ठानो ॥ ३१ ॥
अपर न कोऊ मालक हमरो। बसे आसरा ले करि तुमरो।
प्रतिपालक सभि जग को अहो। फुरहि आप को बच, जिम कहो ॥ ३२ ॥
श्री अरजन सुनि करि सभि बिनती। बिकसति भन्यो, तजहु अस गिनती।
करहु आज ते ऐसी कार। जिस ते वधहि अधिक बिवहार ॥ ३३ ॥
उठहु भोर करि सौच सनान। गुरु बानी सों कीजै ध्यान।
पुन श्री हरिमंदरि मैं जावहु। जथा शकति तहिं भेट चढावहु ॥ ३४ ॥
हाथ जोरि करि सीस निवावहु। प्रभु समान शरधा उपजावहु।
बहुरो आइ बनज को कीजै। दिन सगरे महिं लाहा लीजै ॥ ३५ ।
पुन संध्या जबि होवहि आइ। तबि उठि तजहु बनजु समुदाइ।
श्री हरिमंदर दरशन करो। बिनती भनहु कामना धरो ॥ ३६ ॥
सभि पूरनि हुइ तुमरी जाइं। करहु बनज बडि लाहा पाइ।
नहीं तोट हुइ किसू पदारथ। निति प्रति पुखहु अपने स्वारथ ॥ ३७ ॥
धन की गिनती है कहु कौन। लछमी बसहि आइ करि भौन।
श्री हरिमंदर महां महातमु। सभि की पुरहिं कामना आतम ॥ ३८ ॥
श्री हरिमंदर दासी माया। इह ठां वास करहि मन भाया।
नौ निधि सिद्धि रिद्धि जे नाना। आइ शरन परि हैं इस थाना ॥ ३९ ॥
जो सेवहि सिख लेवहि सोइ। अंत काल आछी गति होइ।
कौन—कभी प्रभु के दरबार। जहिं त्रिलोकपति बसहिं उदार ॥ ४० ॥

सुनि करि सभि सिक्खन मन मानी । करन लगे जिम गुरु बखानी ।
दोइ समै दरसहिं हरि मंदर । रिकत पाण को जाइ न अंदर ।। ४१ ।।

सरब पदारथ सभि के होए । सरब रीति ते सभि सुख जोए ।
अबि लग जानी जाइ सु चाल । करति सदीव जि सिक्खन बिसाल ।। ४२ ।।

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे रामदास नगर वसावन' प्रसंग वरननं नाम चतर पंचासमो अंशु ।। ५४ ।।

अंशु ५५

श्री अंम्रितसर अरु सिक्खुनि प्रसंग

दोहरा

पट्टी के दुइ चौधरी ढिल्लों लाल लंगाह ।
करी आनि करि बंदना श्री गुर अरजन पाहि ।। १ ।।

चौपई

श्री अंम्रितसर महिमा सुनी । श्री मुख ते सभि महिं इम भनी ।
कार निकारहि होइ उबार । धन लाए दुइ बंस उधारि ।। २ ।।
करहि सुपान चिनावनि जोइ । अवचलि नीव तांहि की होइ ।
मान सरोवर जथा बिराजा । हरि मंदर बिच बनहि जहाजा ।। ३ ।।
शरधा सहत करहि इशनान । पाप मिटहिं प्रापत कल्यान ।
हरि मंदिर महिं शबद जु सुनिहै । जनम जनम के पापनि हनि है ।। ४ ।।
उपजै भगति ग्यान को पावै । आवन जानो जगत मिटावै ।
सुनि करि लगे कार को करने । खनहिं पोट सिर पर करि धरनें ।। ५ ।।
धन को दीन मजूर लगाए । दिन प्रति शरधा उर अधिकाए ।
सुनि सुनि महिमा देश विदेश । संगति सहत मसंद विशेश ।। ६ ।।
महिमा सिक्खन गुरु सुनावै । सुनि सुनि दामन के मन भावैं ।
सबदन बिखै महातम कहैं । करहिं कार सिख सुधता लहैं ।। ७ ।।

श्री मुखवाक

उदमु करत मनु निरमल होआ ।
हरि मारगि चलत भ्रमु सगला खोइआ ।
नामु निधानु सतिगुरू सुणाइआ मिटि गए सगले रोग जीउ ।। २ ।। माझ म.—५

चौपई

इत्यार्दिक बहु गुरू बनावें । सुनि पठि कार करनि उर भावें ।
दोनहु रहैं पास गुरदेव । मुकति रूप होए करि सेव ।। ८ ।।

अजब अजाइब उमग शाहू। संघे इहु मसंद गुर पाहू।
कार सुधासर की भी करैं। संगति ते गुरु कार संभरैं॥ ९॥
आनि गुरु के पासि पुचावैं। निज हित जो सिक्खन ते पावैं।
तिस के संग करहिं गुज़राने। इक दिन साहिब बूझनि ठाने॥ १०॥
गुर धन को तुम किस बिधि जानो। जो संगति ते ल्यावन ठानो।
कह्यो तिनहुँ 'हमु बिखु सम जानैं। शिव निरमाइल[1] केरि समाने॥ ११॥
सुनि श्री मुख ते बाक उचारा। करहु जि इमु तुम होइ उधारा।
पैंडा सिख छज्जल तिसु जाती। कंदू संघर जाति उपाती॥ १२॥
श्री अरजन को बंदन कीनि। पुन अरदास करी हुइ दीन।
किमु हमरो होवहि कल्यान। श्री गुर दिहु उपदेश बखान॥ १३॥
सतिगुरु कह्यो 'सुधासर न्हावो। शबद बिचारहु गुरमति पावो।
गुर सिक्खन की सेवा करीअहि। तजि हंकार नम्रता धरीअहि॥ १४॥
जे सतिगुरु तीसर पतिशाहू। हमरे पिता हकारे पाहू।
कह्यो बचन-कलिजुग के जीव। सगरी शकति बिहीने थीव॥ १५॥
इक तौ भई आरजा छोटी। हीन पदारथ वुद्धि मोटी।
कर न सकहिं सभि तीरथ मज्जन। बिधि सो दानु देहिं नहिं स्वजन॥ १६॥
इस कारन ते तीरथ महां। मद्र देश महिं रचीअहि इहां।
तीन लोक के तीरथ जोइ। सभि को फल सनान ते होइ॥ १७॥
इस थल थेहु बतायहु जबै। हमरे पिता खनायहु तबै।
श्री अंम्रितसर राख्यो नामू। चतुर पदारथ को नित धामू॥ १८॥
काशी आदिक तीरथ सबै। इस की शरन रहैं परि अबै।
बरतहि काल कली को घोरै। किस की हत्या को नहिं छोरै॥ १९॥
बरत दान तप तीरथ जेते। करहिं निवास इसी महिं तेते।
जगत नाथु इह होइ बिसाला। गंगा लोप होइ जिस काला॥ २०॥
कोसन लौ इस के चौफेरे। संत रिखिनि के थिर ह्वैं डेरे।
यांते करहु ताल इसनान। तुमरी होवहिगी कल्यान॥ २१॥
गुर पूरे के सुंदर बैनि। सिक्खनि सुनि मन उपज्यो चैनि।
महिमा सुनी सुधासर केरी। जो सतिगुर निज मुख ते टेरी॥ २२॥

---

1. शिव पर चढ़ने वाला पदार्थ, जो न ग्रहण करने योग्य होता है।

कहति भए 'सतिगुर धंन धंन। कीनो हमरा सफल जनम।
केतिक दिन रहि सतिगुर पास। करी टहिल[1] सर चित्त हुलासि ॥ २३ ॥

गुर बाणी सिउं प्रेम लगाई। करी सेव सिक्खन अधिकाई
अपनो जनम सफल करि जानै। पूरन भाग आपने मानै ॥ २४ ॥

पुन सतिगुर की आग्या धारौ। गए आपने देश मझारो।
जाइ तहां अपने ग्रिह अंतर। 'गुर गुर' जाप जपैं सु निरंतर ॥ २५ ॥

अपने मीत सबंधी जेते। जथा जोग उपदेशे तेते।
गुर सर महिमा अधिक बताई। सतिगुरु सिक्ख भए अधिकाई ॥ २६ ॥

प्रातै उठ सनान पुन करैं। गुर ध्यान धरि जप मुख ररैं।
किरत धरम की बहुर संभारैं। सिख्य संत की सेवा धारैं ॥ २७ ॥

जहिं कहिं सिक्खी मारग तोरा। गुरू ध्यान जिव चंद चकोरा।
इस बिधि अपनी आयु बिताई। पैंडा कंदू गुर सिख भाई ॥ २८ ॥

अंतर शुध सरूप हुइ गए। गुर चरनन मन निशचा ठए।
जो जो तिन को संगी होयहु। भोग मोख तिन सगरो जोयहु ॥ २९ ॥

जो गुरु अरजन शरण सिधारा। जगत जलध ते पार उतारा।
गुर नानक के मांहि समाई। जनम मरन की त्रास मिटाई ॥ ३० ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे' 'श्री अंम्रितसर अरु सिक्खुनि' प्रसंग वरननं नाम पंच पंचासमो अंशु ॥ ५५ ॥

---

1. सेवा।

अंशु ५६

श्री अंम्रितसर महातम प्रसंग

दोहरा

नित कारीगर चिनति हैं श्री हरिमंदर चारु।
श्री अरजन सिक्खन सहत अनंद बिलंद निहारि ॥ १ ॥

चौपई

चहुँ दिश बनी सुपान चकोर। सुंदर बन्यो दरशनी पौर।
सर अंदर पुल रच्यो बिसाल। जहिं को आइ जाइं नर जाल ॥ २ ॥

चहुं दिश ते मिनती[1] करि सारी। कुरसी सर ते उरध उसारी।
चार कोन जुत भले बनाइ। पूरब दिश हरि पौडि रखाइ ॥ ३ ॥

परदछना दैबे के कारन। कुरसी पर थल राख सुधारन।
मिन चहुँ दिश ते एक समान। हरि मंदरि रचि लीन महांन ॥ ४ ॥

चहुं दर परि करि करि इक छात। करि हरि पैड छात तिसु भाँति।
दुती छात लग जबहि उसारा। बिच हरि मंदर को थल सारा ॥ ५ ॥

भई चुगिरदे दुइ दुइ छात। करी बीच ते एक सुहात।
ऊपर ते पुन सम करि दयो। एक छात दो छात मिलयो ॥ ६ ॥

तिमि हरि पौड दुछात जु होई। ऊपर मिल्यो कियो सम सोई।
तिहि समान थल जबहि बनायहु। करन बंगला उरध उठायहु ॥ ७ ॥

डाल मसाले मोल बिसाले। चूनो सूखम पीस खराले[2]।
सिर पर धरि धरि लेकरि जावहिं। हरि मंदर के शिखर पुचावहिं ॥ ८ ॥
धरहिं ईंटका धरहिं बनाई। पावे चारहुँ उरध उठाई।
कालबूत ऊपर पुन करे। चारहुं दर चूने युति जरे ॥ ९ ॥
पुन ऊपर को मंडप होए। चहुं खूटनि चहुं कलस परोए।
लघु लघु कलस चुगिरदे[1] करे। चामीकर के दीपति खरे ॥ १० ॥

1. मेहनत, श्रम। 2. खरल में।

ऊचो कलस बीच को होवा। चहुं दिश दूर दूर लग जोवा।
भयो सपूरन श्री हरि मंदर। जिह समसर न अपर जग अंदर ॥ ११ ॥
मद्ध छात चहुं दिश महिं तहां। रची दरीची सुंदर महां।
खशट रुतन महिं सभि सुखदाई। लगहि पवन पशचम पुरवाई ॥ १२ ॥
जहिं ग्रीखम महिं स्वेद न जोवैं। हिम रुत महिं पालो नहिं होवै।
बरखा महि बड होति बहार। बिन करदम ते सुंदर बारि ॥ १३ ॥
चहुं दिश द्रिशटि नीर पर परै। मेघ धार बिन मल ते भरै।
जगत मझार न ऐसो कोई। मंदिर दिखति अनंद न होई ॥ १४ ॥
चिमति चांमीकर ते चार। चार ओर महिं चमक निहार।
चार पदारथ को दातार[2]। चार बरन का जहां उचार ॥ १५ ॥
चार बरन जहिं वंदन धारि। चारु बरन दिपतहिं दुतिवार।
चार चक्र महिं बिदत उदारि। चार मोख ठांढी दरबार ॥ १६ ॥
दरशनीय जो आश्रम चार। चार बेद जहिं सार उचार।
चार दिशा महिं चारहुं द्वार। श्रवणादिक साधन जहिं टार ॥ १७ ॥
श्री अरजन ठांढे बिच होइ। कीन अनंद बिलंदहि जोइ।
श्री करतार सिफत को करैं। सर को बीच महातम धरैं ॥ १८ ॥
हरि मदर की महिमा गावैं। सुंदर शबद बिलोकि बनावैं।
सुनि सुनि संगति शरधा धरै। सर मज्जहि अभिवंदन ररै ॥ १९ ॥
सर करिबे महिं घाली घाल। हरि मंदर की सेव बिसाल।
क्रिपा द्रिशटि तिन पर पुन करि के। निकट अवाहन करे सिमरि के ॥ २० ॥
बखशिश बखशनि करनि निहाल। लिये बुलाइ सिख्य ततकाल।
भगतू आदिक जे निशकाम। आठ जाम सिमरति जे नाम ॥ २१ ॥
बरंब्रूह सभिहिनि सों कह्यो। लिहु गुर घर ते जो उर चह्यो।
सवाधान हुइ सेव कमाई। तिस की अबि लीजहि वडिआई ॥ २२ ॥
सभिहिनि हाथ जोरि करि भाखा। गुर जी रही नहीं अभिलाखा।
चरन तुमारे उर महिं बासैं। सत चित आनंद चित प्रकाशैं ॥ २३ ॥
इस ते उत्तम अपर न कोई। रावर ते हम जाचहिं सोई।
अति प्रसन्न सुनि कै गुर भए। सभिहिनि को ऊचै पद दए ॥ २४ ॥
जीवन मुकति अवसथा कई। साहिब बुड्ढा संगत लई।
हुतो प्रथम भी सभि ही लाइक। तऊ वडाई अधिक सुभाइक ॥ २५ ॥

1. चारों ओर। 2. दाता।

पुन भाई भगतू को दीन। जीवन मुकति अवसथा लीन।
रहै बिराड देश को जंगल। तिन कुलि को दैवे हित मंगल ॥ २६ ॥
संगति दई हुती जु अशेश। नित प्रति मानहि सो सभि देश।
पुत्र पौत्र की मनता तैसे। करति रहे श्री गुरु कहिं जैसे ॥ २७ ॥
पुन भाई बहिलो संग कह्यो। पुरहु कामना जिमि चिति चह्यो।
भयो ग्यान ततछिन उर मांही। ब्रहम बिनां कुछ लखियति नांही ॥ २८ ॥
अपनी कमरी देहु बिधाइ। बंध पोट को लिहु अपनाइ।
भूत, पिशाच, प्रेत, बैताल। गुपत रहति जिन शकति बिसाल ॥ २९ ॥
सभि तेरे होवहिं अनुसारी। चित जिमि चहहु करावहु कारी।
श्री गुर अमर क्रिपा रस ढरे। प्रथम बखश इहु लालो करे ॥ ३० ॥
देश बिदेशन मैं जो अहै। सागर के टापू महिं रहैं।
गिर सुमेरु लग परबत बासी। चहैं सु करैं शकति बलरासी ॥ ३१ ॥
पोट बिखै बंधहु इस बारी। पुत्र पौत्र लग रहिं अनुसारी।
अपन सरुप दसम जब धरौं। तबि इन की मुकतावनि करौं ॥ ३२ ॥
मान बचन सतिगुर को ऐसे। कमरी करी बिछावनि तैसे।
बंधन लग्यो पोट को जबि ही। उत्तर दिश के जो गन सभि ही ॥ ३३ ॥
निज दिश ते छुटाइ करि पालो। गुर के चरन परे ततकालो।
बखशहु महांराज! हम दास। इस दिश के नितु रावरि पास ॥ ३४ ॥
तीनों दिश के सभि दे दीजै। हम को अपनी शरनि रखीजै।
पुन चौथो दिश पकरन चह्यो। तबि सतिगुरु बहिलो संग कह्यो ॥ ३५ ॥
लिहु तीनहु दिशुही की पोट। सेव करहिं तेरी सभि कोटि।
मान बाक तीनहुं दिश केरे। करि लीने अनुसारि घनेरे ॥ ३६ ॥
बहुर गुरु पिखि सेव बडेरी। करी पजावन ईंटन केरी।
बिशटा को ढोवति धरि धीर। चाम उचरगा कितिक सरीर ॥ ३७ ॥
निस बासुर खोदी सर कारा। घनो भार सिर वहिर निकारा।
बर दीनस 'जिमि गुरु कराहु। करति सिक्ख पूरे चित चाहु ॥ ३८ ॥
तिम संगति महिं टिकरी तोरी। कतरि रहैंगे निज हित हेरी।
भाई उगरू अरु कल्याना। इन को पदवी दई महांना ॥ ३९ ॥
जथा जथा शरधा उर सेवा। तथा तथा पद ग्यान अ:भेवा।
दसमे पातिशाह भे जबै। भयो दिवान नंद चंद तबै ॥ ४० ॥

गुर ढिग इस को हुतो पितामा। उभरा शाहु जिसी को नामा।
ग्राम डरोली को इहु बासी। किय मसंद दे संगति रासी ॥ ४१ ॥
भाई जेठा, सिख पिराणा। पैडा, अपर लंगाह महाणा।
इत्यादिक सिख को को गनीअहि। घाली घाल कितिक को भनीअहि ॥ ४२ ॥
अज़मत युति सगरे हुइ गए। ब्रहम ग्यान उर महिं निपजए।
सिद्धां सकल अगारी खरी। जिमि चाहहिं ले तूरन करी ॥ ४३ ॥
चढन अकाश उठावन सैल। कोस हज़ारन को बड गैल।
निमख ब्रिखै पहुंचैं जबि चाहैं। छिति कंपावति, सिधु उमाहैं ॥ ४४ ॥
दिल्ली आदिक अपर लहौर। पकरि उठाइ भिरावहिं दौर[1]।
बडो सरीर बधावहिं ऐसे। बीच अकाशु न मेवहि[1] जैसे ॥ ४५ ॥
अणु बण जाण[3] न देहिं दिखाई। उडनि शकति पहुंचहि सभि थाईं।
पलटि शरीर चहैं चित जैसे। ततछिन अपर लेति धरि तैसे ॥ ४६ ॥
जिती समरथा है जग मांही। अस को नहीं जु तिन ढिग नांही।
तऊ गुरु को घर बहु नीवा। अजरु जरन सभिहिनि मति थीवा ॥ ४७ ॥
जे करि गुर हित किनहु दिखाई। कैं निज हित कर शकति लगाई।
सो सतिगुर के उर नहिं भाई। छीन लीनि, दीनसि समुझाई ॥ ४८ ॥
जिनहुं सधासर सेवा कीनसि। इम सभि को गुर बखशिश दीनसि।
सिक्ख अनेक निहाल करे हैं। जथा राम कपि शकति धरे हैं ॥ ४९ ॥

दोहरा

इमि श्री अंम्रितसर कथा भाखी सकल बनाइ।
भए क्रितारथ सिख्य जिमु सो सभि दए सुनाइ ॥ ५० ॥

चौपई

भाई साल्हो आदि मसंद। गुर घर की करि कार बिलदं।
लैबो दैबो आवन जाना। दरब संभार खरच करि नाना ॥ ५१ ॥
उमरा शाहु अपर क्ल्याणा। जेठा गुरमुख सिक्ख पिराणा।
केतिक रहैं संग गुरु सदा। को थल अपर सु दरसहिं कदा ॥ ५२ ॥
जहां कहां सिक्खी बिसतारैं। सत्य नाम जप भ्रम निरवारैं।
बैठहिं श्री अरजन हरि मंदरु। कथहिं सुधासर महिमा सुंदर ॥ ५३ ॥
सोरठि राग मझार बनावैं। महां महातम को बिदतावैं।
सूही राग छंद के मांही। तीरथ महिमा को शुभ प्राहिं ॥ ५४ ॥

---

1. समाना। 3. अणु के समान बन जाना। 4. विनम्र।

हरि मंदर को कहैं महातम। दरशन परशन निरमल आतम।
अंम्रित सरि जिन मज्जन कीना। कोटि जनम के अघ करि छीना[1] ॥ ५५ ॥
श्री हरि मंदर बंदन करि कै। बैठहि सादर शरधा धरि कै।
सतिगुर सबद श्रवन को करैं। सरब ओरि ते मन को थिरैं ॥ ५६ ॥
अथवा करहि सुनावनि कोई। फल अतोट को पावै सोई।
जे नर बसहि दूरि किस थाने। आवहिं दीपमाला हित ठाने ॥ ५७ ॥
बहुर मेख की जबि संक्राति। तबि इत आइ शनानहिं गाति।
जथा बरख दिन मज्जति रहैं। दुइनि परब फल तैसो लहैं ॥ ५८ ॥
दोनहु परब बिखै इस थाने। अठिसठि तीरथ आइ शनाने।
कलि के नर कलमल समुदाइ। मति मलीनि नहिं पुन उपाइ ॥ ५९ ॥
सो सभि तीरथ देश मझारे। करि शनान को ताहिं उतारे।
तिन पापनि के भार दुवाए। सहि नहिं सकहिं अधिक अकुलाए ॥ ६० ॥
गंगा आदिक तीरथ जेई। अंम्रितसर महिं आवहिं तेई।
नामु महातम जहिं अधिकाई। करि शनान तजि अघ अमुदाई ॥ ६१ ॥
दीपमाल बैसाखी दोइ। घटे मास तीरथ सभि कोइ।
रहैं सुधासर मैं तबि आइ। जो नर तिस छिन इहां नहाइ ॥ ६२ ॥
सभि तीरथ को मज्जन होइ। यां ते अधिक महांतम जोइ।
करहि शनान सकल फल पावै। सुत बित लाभ कलूख नसावै ॥ ६३ ॥
इत्यादिक महिमा कहि भारी। हरि मंदर के बैठि मझारी।
इक दिन बैठे सभा लगाइ। केतिक सिख्य रहे गरवाइ ॥ ६४ ॥
हमहु सेव बहु सर की कीनि। निस दिन बीतति को नहिं चीन[2]।
तिन के मन की सतिगुर जानी। श्री मुख ते ब्रिध सों कहि बानी ॥ ६५ ॥
श्री नानक सिख परखे जबै। को साबत सिख निबह्यो तबै।
श्री अंगद को गुरता दई। तब सिक्खी परखन किम कई ॥ ६६ ॥
सो प्रसंग सभि देहु सुनाई। तब समेत जिम सिख समुदाई।
इमि सुनि कै बानी गुर केरी। भाई ब्रिध कह्यो तिस वेरी ॥ ६७ ॥
तुम अंतरजामी सभि जानो। अपर सुनावन की इछ ठानो।
आशै जानि आप को कहौं। सुनहु सकल मैं जिस बिधि लहौं ॥ ६८ ॥

'इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्री अंम्रितसर—महातम' प्रसंग बरननं नाम खशट पंचासमो अंशु ॥ ५६ ॥

1. क्षीण, नष्ट करना। 2. देखा।

अंशु ५७

श्री गुरु नानक

दोहरा

श्री नानक की बारता अदभुत सुनी महान।
परखन करि सभि रीति सों अंगदि परम सुजान ।। १ ।।

चौपई

इक दिन हम तीनहु संग गए। नदी प्रवेश गुरु जी भए।
इक श्री अंगद दुतिय भगीरथ। मैं जुति सेवति भे गुर तीरथि ।। २ ।।
ओरनि की बरखा तबि भई। सीतलता हम को चढि गई।
तबि दीनहु ग्रहि को चलि आए। सीत बिदार्यो अगनि उपाए ।। ३ ।।
श्री अंगद को मुरछा भई। बैठ्यो रह्यो न तन सुधि लई।
निकसे श्री नानक तिस जानि। सभि गति हेरि प्रसन्न महान ।। ४ ।।
पुन धानक को धार्यो वेस। जिस ते भागे सिख्य अशेश।
जीरन वसत्रनि वाण पुराना। सिर पर बाँध्यो जटा समाना ।। ५ ।।
छीट छाछ की तन छिटकाई। मखिका अनिक भ्रमति चहुँ धाई।
मुझ मेखला करि कट मोटी। गही हाथ महिं टेढी सोटी ।। ६ ।।
ले करि तीछन नांगा छुरा। साथ मेखला बांधन करा।
पहिरी हाडनि माल बिसाला। जथा रुद्र की मुंडनि माला ।। ७ ।।
कूकर शरमा लेकरि साथ। शिव को रूप धर्यो गुर नाथ।
हेरि हेरि सगरे नर डरे। क्या इहु कियो? शंक उर धरे ।। ८ ।।
श्री अंगदि बिन सभि भरमाए। रहे समीप न, दूर पलाए।
पुनि इक कौतक गुरू दिखायो। 'खावो शव को हुकम अलायो ।। ९ ।।
इहु गाथा जिम भई सुनावौं। अचरज कौतक कर्यो बतावौं।
वहु सिक्खन कोले निज साथि। नदी किनार चले गुरनाथ ।। १० ।।
केतिक दूर गए अगवाए। पैसे भू पर परे दिखाए।
कह्यो चाहु चित जिस लै जाहों। सुनि कंचित बच, गहि करि माहो ।। ११ ।।

भारि उठायो जैतिक जाइ। ले करि मुरे ग्राम को आइ।
पुन आगे कुछ गमने जबै। परे रजतपण देखति सबै ॥ १२ ॥

हुकम कर्यो 'चाहो ले जाइ'। सुनि करि भार प्रमाण उठाइ।
बड प्रेमी ने धन नहिं गह्यो। पुन आगे सतिगुरु मग लह्यो ॥ १३ ॥

कितिक दूरि दीनार परी हैं। देखति आग्या प्रभू करी हैं।
'ले जावहु अभिलाखहु जेहि। तमरे हित मैं कीनस एही' ॥ १४ ॥

धरि उर लोभ सु लई उठाइ। ले गमने ग्रिह को समुदाई।
अति प्रेमी गुर के तबि रहे। इक मैं दुती सधारण अहे ॥ १५ ॥

त्रिती भगीरथ अरु श्री अंगद। चले संग तजि कै सभि संपदि।
कितिक दूरि जबि पहुंचे जाइ। भूतल इक सम रुचिर सुहाइ ॥ १६ ॥

संचै काशट चिता करी है। इक शव की तहिं देहि परी है।
तिस ढिगु खरे होइ करि भाखी। 'हटे हुते जो धन अभिलाखी ॥ १७ ॥

अति प्रेमी तुम मम संग आए। मिलि इस मुरदे को लिहु खाए'।
हम अचरज भे, शव किन आना। हाथ जोरि करिवाक बखाना ॥ १८ ॥

'नर म्रितु को नर खाइ न कोई। दारुन क्रिती त्रास पिखि होई'।
इत उत टरि करि ले तरु ओटा। भे हम ठांढे सभि को होता ॥ १९ ॥

श्री अंगदि जी संग न छोरा। कह्यो कठोर हेरि इस ओरा।
'क्यों तूं खरो शिताब पलावहु। नांहि त इस शव को तन खावहु' ॥ २० ॥

मान बाक जबि बसत्र उघारा। भयो तिहावल सकल निहारा।
तत छिन लोप भयो सभि खेला। श्री अंगद को गहि गर मेला ॥ २१ ॥

एक रूप अपने सों कर्यो। गुरता भाव तिनहुं महिं धर्यो।
सभि जब की दे करि गुरिआई। तिन महुं अपनी जोति मिलाई ॥ २२ ॥

अपर रीति सों बहु पति आए। सो प्रसंग मैं नहीं सुनाए।
गुरता गादी दे समुझायो। 'इहां न रहिबो तुमरो भायो ॥ २३ ॥

ग्राम खजूर सदन करि रही अहि। जहिं जहिं अपन सबंधी लहीअहि।
सकल सकेलहु अपने पास। थिरहु तहां लिहु आनंद रास' ॥ २४ ॥

इम आग्या सुनि करि सतिगुर की। चहति न बिछुर्यो प्रीती उर की।
तऊ बिबस हुइ करि पग नमो। ब्रिहु ते ब्याकुल बहु तिह समो ॥ २५ ॥

'मोहि सिंहासन सदन भिराई। तहां बिराजहु करहु गुराई'।
सुनि प्रभु ते मारग चलि परे। भगति भंडार भाउ उर धरे ॥ २६ ॥

सत्यनाम धन लीनि ऊतोट। खरचहिं वधहि तरे गन कोटि।
सने सने चलि पहुंचे ग्राम। मात भिराई को जहिं धाम॥ २७॥
हित करि मिली भाउ को धारा। सिंहासन पर सुत बैठारा।
श्री नानक श्री अंगदि मांही; भेद भिराई जान्यो नांही॥ २८॥
खीवी अपनि सनूखा होई। करी हकारनि पहुंची सोई।
पति की सेव करन महिं लागी। पतिव्रत धरम द्रिड़हा अनुरागी॥ २९।
खान पान पहिरन सुधि सारी। निसुप्रेही पति करति संभारी।
कर जोरहि आइसु को मानहिं। अधिक प्रीत ते सेवा ठानहि॥ ३०॥
निति प्रति चहति असन पहुंचावहि। आइसु पाइ दरस को आवहिं।
पार ब्रह्म करि पति को जानै। मूरति ध्यान रिदै सद ठानै॥ ३१॥
बिछरन समै भन्यो श्री नानक। 'इत तुम आइन, जाहु अचानक।
बसहु खडूर तहां हम आवैं। मिलहिं तोहि जबि उरमहिं भावैं॥ ३२॥
केतिक दिवस बिती ते जवहूं। दुइ दिश चित अकुलाने तबहूं।
अभिलाखति भे मिलन जरूर। श्री नानक जी छए खडूर॥ ३३॥
श्री अंगद लखि गुर आगवनू। गवने लेनि अगारी भवनू
रवि गुर पिखि किय चख अरबिंद। पग पंकज मन बन्यो मलिंद॥ ३४॥
भरि कौरी प्रभु भए असीन। वहर ग्राम ते थल शुभ चीन।
सुनि खीवी दरशनि की आई। श्री गुर देखे ग्रीव निवाई॥ ३५॥
कह्यो गुरु पुरखा तूं धन्न। सदा बसी मुझ कर्यो प्रसन्न।
तुम सम जग महिं अपर न कोई। मो मन मैं प्रिय औरु न होई॥ ३६॥
सरब प्रकार धीर कहि दयो। मिलि बोलनि सीतल हियो।
अति अनंद को पाइ रहे है। परम प्रेम के बाक कहे हैं॥ ३७॥
पुरि करतार गुरु पुन चले। सनमुख श्री अंगद जी खले।
जुग मूरति इक जोति प्रकाशे। होति अनंद विलंद हुलासे॥ ३८॥
कहि श्री अंगदि 'सुनीअहि नाथ। राखहु निकट, चलों मैं साथ।
सह्यो न जावै ब्रिहा तुमारो। दरशन परसति रहों सुखारो॥ ३९॥
कह्यो गुरु तुम मम मन मांही। भेद भाव कुछ लखीअहि नांही।
गमन करतार पुरे मम जानि। तुम निशचलि बैठहु इस थान'॥ ४०॥
इम कहि बावा जी चलि गए। श्री अंगद तहिं बैठति भए।
द्रिड़ आसन करि आसन आनि। बीते किंतिक द्योस तिस थान॥ ४१॥

मुंदे बिलोचन सुधि न शरीर। त्रिण जामे चहुं गिरदे तीर।
कितिक अंग छादन हुइ गए। नर तहिं आवति देखति भए ॥ ४२ ॥
—आपे कह्यो आप ही मानै। लीला गुपति न कोऊ जानै—।
श्री नानक जी सभि बिधि जानी। —आसन लाइ समाधी ठानी ॥ ४३ ॥

तप बड कीन खेद को पाए। —अंतरजामी तत छिन आए।
पकर जगायो, दिखि किय नमो। बसत्र मंगाए प्रभु तिहु समो ॥ ४४ ॥
सभि पुशाक सुंदर पहिराई। ले करि गए ग्राम गोसाई।
जहिं तप श्री अंगद जी कर्यो। तपि आना तहिं नाम सु धर्यो ॥ ४५ ॥
कह्यो बाक तुम क्यों तप धारा ?। बैठनि सहज सुभाव उचारा।
बहिर बैठि तुम दयोस बिताए। देखि दशा हम आनि जगाए ॥ ४६ ॥
तुव दुख ते हम ने दुख लह्यो। एक भयो कछु भेद न रह्यो।
मैं तुमरे हित तप्यो बिसाला। निजा नंद मैं रहो सुखाला ॥ ४७ ॥
मैं अपनो बडि दीन सिंहासन। बैठहु बहु अनंद ले आसन।
मिरजादा सु पंथ की करो। सिक्खी रीति जगत बिसतरो ॥ ४८ ॥
सुनि कै हाथ जोरि-कहि सोइ। 'इहु सभि कारज तुम ते होइ।
आपि सकल बिधि हो समरत्थ। चहो सु करो तुमारे हत्थ ॥ ४९ ॥
अंक लगायो, भए प्रसन्न। भो अंगद तुम को धंनु धन्नु।
तुम महिं हुइ हम कारज करैं। जग उधार सिक्खी बिसतरैं ॥ ५० ॥

दोहरा

इम श्री नानक की कथा ब्रिध ने सभिनि सुनाइ।
संमै करे निविरत उरि गुर महिमा अधिकाइ ॥ ५१ ॥

चौपई

सेव कमाइ जनावहि नांही। कुछ हंकार न धरि उर मांही।
फल की नहीं बाशना धरै। तौ गुरु आगै लेखे परै ॥ ५२ ॥
नांहि त सेवा करन मझारी। रहै नूनता लखै बिचारी।
गुरु गोर-महिं मुरदा होइ। पावहि-भले परमपद सोइ ॥ ५३ ॥
अंग हिलाइ न आपि जनावैं। गुर भाणे महिं निति हरखावैं।
जे गुर जहर देइ सिख ही को। पान करै निहसंसे ही को ॥ ५४ ॥
मन जानहि-मम भला करंते—। गुरु दिश दोश नहीं चितवंते।
सिर-धरि तली गली गुर बरै। म्रितु सम रहै तरक नहिं करै ॥ ५५ ॥

महां कठिन सतिगुर की सेवा। जिनहुं करी सो जानहिं भेवा।
लहै एकता गुर महिं सोई। आवनि जान नहीं पुन होई ॥ ५६ ॥
कोटि जनम को भ्रमणो रह्यो। दुलभ देहु को फल जुति लह्यो।
महां कशट ते गुरु बचावै। नहीं अपर ते अस फल पावै ॥ ५७ ॥
बडे भाग ते लहि गुर सेवा। धन्न पुरख जो जानै भेवा।
परमेशुर-जबि होइ प्रसन्न। गुरु मिलाइ बनावहिं धन्न ॥ ५८ ॥
गुर प्रसन्न हुइ सेव करंते। प्रभू-मिलाइ करहिं भगवंते।
इस बिधि सिक्खन बिखै प्रसंग। महिमा जान रहे गुरु संग ॥ ५९ ॥
आपा नहिं जनाइं गुर आगे। निस दिन रहैं सेव महिं लागे।
इम श्री अंम्रतसरि कर पूरन। महिमा बरनैं पापन चूरनि ॥ ६० ॥

इति श्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथे दुतिय रासे 'श्री गुरु नानक प्रसंग, श्री अंम्रितसर बनावनि पूरन प्रसंग' बरननं नाम कवि संतोख सिंह बिरचतायां भाखायां नाम सपत पंचासमो अंशु ॥ ५७ ॥

संज्ञा-कोश

अ

अंगद—सिक्खों के दूसरे गुरु। इनका जन्म ५ बैसाख संवत् १५६१ को फेरुमल खत्री के घर 'मते दी सराय' (जिला फिरोजपुर) में हुआ। इनकी माता का नाम दयाकौर था। इनका पहला नाम लहिणा था। इनका विवाह संवत् १५७६ में वेदी चन्द खत्री की पुत्री खवी से हुआ। इनके दासू एवं दातू दो पुत्र तथा अमरो एवं अणोखी दो पुत्रियाँ थीं।

आरम्भ में वे देवी-उपासक थे। बाद में गुरु नानक के सिक्ख बने और अपनी सेवा से उन्हें इतना प्रसन्न किया कि गुरु नानक ने संवत् १५८६ में इन्हें गुरु-गद्दी प्रदान की। इनका निधन ३ बैसाख संवत् १६०९ में खडूर में हुआ।

अंबरीक (अंबरीष) ×

(१) विष्णु का एक नाम।

(२) शिव तथा सूर्य का एक नाम।

(३) यहां, अयोध्या का एक सूर्य-वंशी राजा, जो इक्ष्वाकु से ७८वीं पीढ़ी में हुआ था।

अकबर—भारतवर्ष का तीसरा मुगल शासक। हुमायूँ का पुत्र। यह सब से शक्तिशाली मुगल शासक था। शासन काल १५५६—१६०५ ई०।

× **अगस्त्य**—एक प्रभावशाली ऋषि। इनके पिता का नाम मित्रवरुण था। इनकी उत्पत्ति एक घडे से भी मानी जाती है, इसलिये इन्हें 'घटोद्भव', 'कुम्भज' भी कहा जाता है। तारक तथा अन्य असुरों द्वारा पीड़ित संसार को दु:खी देखकर इन्होंने समुद्र को चुल्लू में भर कर पी लिया था।

पुराणों में इन्हें पुलस्त्य का पुत्र भी कहा गया है।

× **अग्नि**—पंच महाभूतों में से एक। पुराणों में अग्नि के अनेक रूप मिलते हैं। यहाँ यह शब्द एक देवता के रूप में आया है।

× **अजमेर**—राजस्थान का एक प्रमुख नगर।

अजीतो—गुरु गोविंद सिंह की पत्नी।

अजीत सिंह—गोबिंद सिंह के पुत्र, जिन की उत्पत्ति माता सुन्दरी जी के उदर से हुई थी।

अटलराइ—गुरु हरगोविंद के चौथे पुत्र।

× **अदिति**—दक्ष प्रजापति की पुत्री, एवं ऋषि कश्यप की पत्नी, इनके गर्भ से सूर्य आदि ३३ देवता उत्पन्न हुए थे।

अनंद—मोहरी का दूसरा पुत्र तथा गुरु अमरदास के पौत्र। कथा के अनुसार वे पूर्व जन्म में योगी थे।

अनीराइ—गुरु हरगोविंद के तीसरे पुत्र।

अनोखी—गुरु हरिराइ की पत्नी।

अमरदास—सिक्खों के तीसरे गुरु। इनका जन्म बैसाख सुदी १४ संवत् १५३६ को 'बासर के' ग्राम में हुआ था। पिता का नाम तेजभान (तेजो) भल्ला था तथा माता का सुलखणी। पत्नी—मनसा देवी। उनसे दो पुत्र मोहन एवं मोहरी तथा दो पुत्रियाँ दानी एवं भानी का जन्म हुआ।

इनकी निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर गुरु अंगद ने इन्हें संवत् १६०९ में गुरुता प्रदान की।

सिक्खमत के प्रचार एवं प्रसार में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने लंगर-प्रथा का प्रारम्भ किया तथा कई स्थानों पर धर्मशालायें एवं सरोवर बनवाये।

भादों सुदी १५ संवत् १६३१ को इनका परलोक गमन हुआ।

अमरू—गुरु अमरदास का उल्ला निवासी एक सिक्ख।

अमरो बीबी—गुरु अंगद की पुत्री, जिसका विवाह गुरु अमरदास के भतीजे के साथ हुआ था।

× **अंम्रितसर**—(अमृतसर) पंजाब का एक प्रमुख नगर एवं वहाँ का अमृत सरोवर।

अरजनदेव (अर्जुनदेव)—सिक्खों के पाँचवें गुरु। गुरु रामदास के तीसरे पुत्र। इनका जन्म बैसाख बदी ५, संवत् १६२० को गोइंदवाल में हुआ था। संवत् १६३६ में कृष्णचन्द की सुपुत्री गंगादेवी से इन का विवाह हुआ, जिससे श्री हरगोविंद का जन्म हुआ।

संवत् १६३८ में वे गुरु-गद्दी पर आसीन हुए। सिक्ख-मत को दृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अनेक रचनात्मक एवं निर्माण-कार्य किये। संतोखसर, तरनतारन ताल, अमृतसर-सरोवर, हरिमंदिर (स्वर्णमंदिर) बनवाये। इन की वाणी-रचना भी परिमाण एवं गुण की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। 'गुर ग्रंथ साहब' के सम्पादन का श्रेय भी इन्हें ही है।

अरजानी—मोहरी का तीसरा पुत्र। गुरु अमरदास का पौत्र।

अरथमल—मोहरी का पुत्र तथा अमरदास का पौत्र।

× **अर्जुन**—महाभारत का प्रसिद्ध योद्धा, पाँच पांडवों में से एक। कुंती के गर्भ से उत्पन्न इन्द्र का पुत्र। अपनी धनुर्विद्या के कारण विख्यात। चक्रव्यूह तोड़ने में कुशल। महाभारत के युद्ध में कृष्ण इनके रथ के सारथि बने थे और इनके युद्ध से विमुख होने पर 'गीता' का उपदेश दिया था।

इनका प्रसिद्ध रथ 'कपिध्वज' तथा प्रसिद्ध धनुष गाण्डीव था। अभिमन्यु

इनका पुत्र था। ये कौन्तेय, धनञ्जय, पार्थ, सव्यसाची, गाण्डीवी, गुडाकेश, श्वेत वाहन, पाण्डुनन्दन आदि कई नामों से प्रसिद्ध हैं।

अलमसत—एक प्रधान उदासी साधु, बाबा गुरदित्ता के शिष्य।

अवचल नगर—दक्षिण हैदराबाद में नादेड़ के निकट गोदावरी के तट पर गुरु गोविन्दसिंह का एक पवित्र स्थान, जहाँ उन्होंने देह त्यागी थी।

× **अश्विनी कुमार**—सूर्य के दो पुत्र। विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से सूर्य का विवाह हुआ था। सूर्य के तेज को न सहने के कारण वह अपने स्थान पर अपनी 'छाया' को छोड़कर स्वयं घोड़ी बनकर वन में चली गई। सूर्य को जब इसका ज्ञान हुआ, तो वह भी घोड़ा बन कर वहां जा पहुंचा। इसी संयोग से उनके जो पुत्र उत्पन्न हुए, उन्हें अश्विनी-कुमार कहा जाता है। ये देवताओं के वैद्य माने जाते हैं।

आ

आगरा—उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख नगर। आगरा ताजमहल के लिये विश्व-प्रसिद्ध है। औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को आगरे के किले में ही कैद किया था। यह दिल्ली से लगभग 120 मील दूर है।

आदम—सिद्धु कुल का, भुल्लरीए गोत्र का एक जाट-कृषक।

इ

× **इखवाक** (ईक्ष्वाकु)—सूर्यवंश का एक प्रधान राजा। इन्हें मनु का पुत्र माना जाता है। इन्हीं के वंशज अयोध्या के राजा थे जिनमें श्री रामचन्द्र का जन्म हुआ था।

× **इन्द्र**—देवताओं का राजा। इन्हें मेघों का अधिपति माना जाता है। इनका वाहन ऐरावत हाथी तथा अस्त्र वज्र है। इन्द्र धनुष इनका धनुष है। इनकी पुरी 'इन्द्रपुरी' है, जिसमें गंधर्व, देव, यक्ष और अप्सरायें रहती हैं।

इनकी राजधानी अमरावती में एक नंदन वन है, जिसमें सभी मनोकामनाओं को पूरा करने वाला कल्पवृक्ष है।

ई

ईशुरनाथ—एक प्रसिद्ध नाथ।

उ

उग्रसैन—गुरु अमरदास का डल्ला निवासी एक सिक्ख।

उमर शाहु—डरौली ग्राम का निवासी गुरु अरजन देव का एक सिक्ख।

ए

ऐरावती (रावी)—पंजाब की पांच प्रमुख नदियों में एक जो लाहौर के निकट से बहती है।

क

कंदू—गुरु अरजनदेव का एक सिक्ख।

कंधार (गांधार)—अफगानिस्तान का एक प्रदेश तथा एक प्रमुख नगर। यह चमन के निकट है।

कटारा—गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

× **कद्रू**—ऋषि कश्यप की एक पत्नी। दक्ष प्रजापति की पुत्री। इसके गर्भ से एक हजार नाग उत्पन्न हुए थे।

× **कनखल**—हरिद्वार के निकट एक तीर्थ-स्थान, जहां स्नान करने से रुद्रलोक प्राप्त होता है। यहां दक्ष महाराज का प्राचीन मंदिर है।

कबीर—१५ वीं शती के एक प्रमुख संत कवि। काशी में एक विधवा ब्राह्मणी ने इन्हें संवत् १४५६ में जन्म दिया, नीरू नीमा जुलाहे ने पालन-पोषण किया। रामानन्द इनके गुरु थे। ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक, बहु देववाद, मिथ्याचार, जाति-पाति आदि के कट्टर विरोधी थे। इनकी मृत्यु संवत् १५७५ में मगहर में हुई।

करतार पुरा—(1) जिला गुरदास पुर में एक स्थान, जिसे गुरु नानक ने बसाया था।

(२) एक अन्य नगर, जिसे गुरु अरजनदेव ने बसाया था।

✓ **कल्पतरु**—देवराज इन्द्र के नन्दन वन का एक वृक्ष जो देवताओं को समुद्र-मंथन से प्राप्त हुआ था। स्वर्ग में कल्पवृक्ष सदैव याचकों की मनोकामनाओं को पूरा करता है।

कल्याणा—गुरु रामदास जी का एक सिक्ख-सेवक जिसे उन्होंने सरोवर के लिये धन लाने के लिये मंडी के राजा के पास भेजा था।

कल्यानु—अमृत सरोवर की खुदाई में सेवा करने वाला एक सिक्ख।

× **कश्यप**—एक प्रसिद्ध ऋषि। एक प्रजापति का नाम जो ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि के मानस-पुत्र थे। अदिति, दिति आदि इनकी सात पत्नियाँ थीं, जिनसे दैत्य, देवता, सूर्य, दानव, पक्षी एवं नाग आदि उत्पन्न हुए थे।

कालिंद्री (कालिंदी)– यमुना का एक नाम। दोनों जमुना-यमुना।

काणादेव—बठिंडे में रहने वाला एक देव।

काबुल अफगानिस्तान की राजधानी।

कालू—गुरु नानक के पिता। वे पटवारी का काम करते थे।

किदारा—अमृत सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

किदारी—गुरु अंगद का एक सिक्ख-सेवक, जिसे उन्होंने सत्संगति, सेवा आदि का उपदेश दिया था।

× **किन्नर**—एक प्रकार के देवता, जिनका मुख घोड़े के मुख के समान होता है। इन्हें पुलह ऋषि के वंशज तथा संगीत के विशेषज्ञ माना जाता है। ये कैलाश पर्वत पर कुबेर के साथ रहते हैं।

किशनकौर—गुरु हरिराई की प्रथम पत्नी।

किशना—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

कुक्का—अमृत सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

कृष्ण—इन्हें भगवान् विष्णु का अवतार माना जाता है। ये वासुदेव के पुत्र थे। देवकी के गर्भ से कंस के कारावास में इनका जन्म हुआ था। उनके पिता वासुदेव इन्हें रात्रि में गोकुल में छोड़ आए थे, जहां नन्द-यशोदा ने इनका पालन-पोषण किया। वहां ग्वाल-बालों तथा गोपियों से अनेक लीलाएं कीं। अनेक असुरों का वध करने के पश्चात् कंस का वध किया। जरासंध से भी उनके अनेक युद्ध हुए। बाद में द्वारिका में जाकर यादवों का राज्य स्थापित किया।

महाभारत युद्ध में इन्होंने पांडवों की सहायता की। उनके राजदूत भी बने और अर्जुन के सारथि भी। युद्ध से विमुख अर्जुन को गीता का उपदेश देकर इन्होंने युद्ध के लिए तत्पर किया।

ये एक योग्य राजनीतिज्ञ, परम-योगी, कुशल योद्धा एवं महान् व्यक्ति थे। गीता की गणना संसार के श्रेष्ठतम दार्शनिक ग्रंथों में की जाती है।

भगवत् पुराण एवं महाभारत इनकी चरित्र गाथा से परिपूर्ण है। भक्तों में इनका लीलामय रूप ही लोकप्रिय है।

केशो गोपाल—गुरु अमरदास जी की सेवा में कथा कहने वाला एक ब्राह्मण।

कैथल—करनाल जिले में एक नगर। पहले यह एक रियासत थी जिसके राजा उदयसिंह के आश्रय में रह कर भाई संतोखसिंह ने 'गुरु प्रताप सूरज', 'वाल्मीकि रामायण' भाषा तथा 'गरब गंजनी' आदि की रचना की।

कोट कल्यानी—गुरु हरिराइ की एक पत्नी।

ख

खगपति (गरुड़)—ऋषि कश्यप तथा विनता के पुत्र। भगवान विष्णु के वाहन।

खडूर—गुरु अंगद इसी स्थान पर गुरुता करते थे।

खान छुरा—गुरु अमरदास का डल्ला-निवासी एक सिक्ख।

खीऊ भला—भैरोपुर का निवासी एक सिक्ख।

खेडा सोइरी (खेडा सुइरी)—एक देवी-भक्त ब्राह्मण, जो बाद में गुरु अमरदास जी का सिक्ख बन गया था।

खेमकुइर (खेमकौर)—लवपुरि निवासी हरिदास भल्ले की पत्नी तथा गुरु रामदास की माता।

ग

× **गणपति**—ये शंकर के पुत्र माने जाते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार वे पार्वती के शरीर की मैल तथा उबटन से उत्पन्न हुए थे। ये अपने पिता महादेव के गणों के अधिपति हैं। इनका सारा शरीर मनुष्य का है, किन्तु सिर हाथी का सा है। हिन्दुओं के सभी शुभ-कार्यों में सभी देवताओं से पूर्व इनका पूजन होता है। यह विनायक हैं और विघ्नों का नाश करते हैं, गणेश।

हिन्दुओं के पाँच प्रधान देवताओं में इनका स्थान है।

गंगा—(1) गुरु अरजनदेव की पत्नी तथा गुरु हरिगोविंद की माता।

(2) हिन्दुओं द्वारा वन्दनीय प्रसिद्ध नदी।

गंगाराम—बठिंडे का एक ब्राह्मण व्यापारी जो बाद में गुरु जी का भक्त हो गया था।

गंगू—गुरु अमरदास का डल्ला-निवासी एक सिक्ख।

गंगो—वस्ती खत्री जाति का एक व्यापारी, जो गुरु अमरदास जी का भक्त था। वह डल्ले का रहने वाला था।

गंधर्व—एक प्रकार के देवता, जो स्वर्ग में रहते हैं और गायन आदि का कार्य करते हैं।

गिलवाली—अमृतसर के निकट का एक ग्राम।

गुजरी—गुरु तेगबहादुर की पत्नी एवं गुरु गोविंद सिंह जी की माता।

गुज्जर—गुरु अंगद का एक सिक्ख जो लुहार का काम करता था।

गुरुदास (भाई)—एक प्रसिद्ध गुरु सिक्ख। वे बीबी भानी के सम्बन्धी थे। वे चौथे गुरु रामदास जी तथा पाँचवें गुरु अरजनदेव जी के पास रहे। सिक्ख-मत के प्रचार में इन्होंने बड़ा योगदान दिया। 'गुरु ग्रंथ साहब' को इन्होंने ही लिखा था। उन्होंने स्वयं भी सुन्दर 'वारों' एवं कवित्त—सवैयों की रचना की है। संवत् १६९४ में गोइंदवाल में इनकी मृत्यु हुई।

सिक्खों में इन्हें व्यास के समान विद्वान् माना जाता है।

गुरदित्ता (बाबा)—गुरु हरिगोविंद के बड़े पुत्र, जिनका जन्म संवत् १६७० में डरौली (जिला फिरोज़पुर) में हुआ था।

उनका विवाह संवत् १६८१ में अनंती जी से हुआ था, जिसके उदर से बाबा धीरमल तथा श्री हरिराइ जी का जन्म हुआ।

वे बाबा श्रीचन्द जी के शिष्य बन गये थे और स्वयं एक प्रसिद्ध उदासी साधु थे।

संवत् १६९५ में कीरत पुर में इन का देहान्त हुआ।

गुरु बखशसिंह—देखो रामकुइर।

गुरु का चक्क—रामदास पुर, गुरु रामदास ने अमृतसर के निकट जो

बस्ती बसाई थी, पहले उसका नाम 'गुरु का चक्क' था।

गोंदा—(१) गुरु अंगद का सेवक एक खत्री जिसके साथ जाकर गुरु अमरदास ने गोइंदवाल बसाया था।

(२) उदासी सम्प्रदाय में बाबा गुरदित्ता के एक शिष्य।

गोइंदवाल—एक ऐसा स्थान, जहाँ भूत-प्रेतों का निवास था। गुरु अंगद के आदेश से गुरु अमरदास ने उन्हें वहाँ से निकाल कर इसे बसाया था।

गोइंदा—अमृतसरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

गोखू—अमृतसर की खुदाई में सेवा कार्य करने वाला एक सिक्ख।

गोदड़िया—बाबा श्रीचन्द जी का एक सेवक।

× **गोपाल**—कृष्ण का एक नाम, देखें—कृष्ण।

गोपी—गुरु अमरदास का डल्ला-निवासी एक सिक्ख।

× **गोपीचंद**—एक प्रसिद्ध नाथ।

× **गोरख**—नौ नाथों में एक प्रमुख नाथ। नाथमत के संस्थापक। इनके समय के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। विद्वान् इनका समय १०वीं शती से १५वीं शती तक मानते हैं। वे बड़े ही सिद्ध-पुरुष थे।

गोविंद भंडारी—गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

गोविंदसिंह (गुरु)—संत-योद्धा गुरु गोविंदसिंह सिक्खों के दसवें एवं अन्तिम गुरु हैं। आपका जन्म गुरु तेग बहादुर के घर पटने नगर में माता गुजरी जी के उदर से पौष सुदी ७ संवत १७२३ को हुआ। पिता के शहीद होने पर १२ मगहर संवत् १७३२ को आनंदपुर में गुरु-गद्दी पर आसीन हुए।

गुरु गोविंदसिंह ने गुरु हरिगोविंद की परम्परा को आगे बढ़ाया। अपने देश धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए इन्होंने जहाँ एक ओर सांस्कृतिक अभ्युदय का कार्य किया, वहाँ सैनिक संगठन भी करना पड़ा। पहाड़ी राजाओं, पठानों एवं मुगलों से उनका आजीवन संघर्ष होता रहा। आनंदपुर एवं चमकौर आदि स्थानों पर घमासान युद्ध हुए। यवन-शक्ति से लोहा लेने के लिए इन्होंने खालसा पंथ की स्थापना की, जिसका आदर्श था—हरि भक्ति एवं अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना। वे स्वयं एक यशस्वी योद्धा थे और योद्धाओं के प्रेरणा स्रोत थे। वे स्वयं एक सिद्धहस्त कवि थे और अनेक कवियों के आश्रयदाता थे। जापु, अकाल उस्तुति विचित्र नाटक आदि उनकी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ जो भक्ति एवं वीर रस से ओत-प्रोत हैं, दशम् ग्रंथ में संकलित हैं।

वे क्रांतिकारी समाज सुधारक थे। जाति-पांति, वर्ग-वर्ण, भेद-पाखण्डों, आडम्बरों एवं मिथ्याचारों के विरोधी एवं मानवीय एकता व समता में विश्वास रखते थे और हरिनाम स्मरण,

सत्संगति एवं सेवा आदि पर बल देते थे।

आपकी पत्नी जीतो जी तथा सुन्दरी जी से अजीतसिंह, जुझारसिंह, जोरावरसिंह, फतेसिंह चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने देश और धर्म की रक्षा में अपना बलिदान दिया।

कार्तिक सुदी ५ संवत् १७६५ को गोदावरी के तट पर नादेड के स्थान पर एक शत्रु द्वारा किए गए शस्त्र-प्रहार से घायल होकर आपने अपना शरीर त्याग दिया।

शरीर-त्याग से पूर्व ही आपने 'गुरु-ग्रंथ-साहब' तथा 'पंथ' को गुरुता प्रदान की और इस तरह उनके पश्चात् गुरु-परम्परा का अन्त हुआ।

घ

घनश्याम—'श्री कृष्ण', का एक नाम। देखिए—कृष्ण।

च

चंद (चंद्र)—चंद्रदेव, समुद्र मंथन के समय इन्होंने ही राहु के छिपकर देवताओं के साथ अमृत-पान करने की चोरी को पकड़ कर विष्णु को बताया था।

(२) चन्द्रमा ग्रह, जो सब जीव-धारियों का प्राण है।

वनस्पति, यज्ञ, व्रत तथा तप का अधिपति।

चंदकुइर—गुरु हरिराई की एक पत्नी।

चरपट—एक प्रसिद्ध नाथ।

चित्तौड़—राजस्थान का एक इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग।

चहड़ चौधरी अमृतसरोवर की खुदाई में सेवा करने वाला एक सिक्ख।

छ

छच्छ हजारा—पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) में सिंधु नदी के तट पर एक प्रदेश।

छाया—सूर्य की पत्नी संज्ञा उन के तेज को न सहने के कारण अपने स्थान पर अपनी 'छाया' को छोड़ कर चली गई थी। यह छाया सूर्य की पत्नी बनकर रही।

छुप—सूर्यवंश के एक राजा, ईक्ष्वाक के पूर्वज।

ज

जग्गा—गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

जनक—(१) मिथिला के प्राचीन राजाओं की एक उपाधि।

(२) रामायण में वर्णित राजा जनक, जो ब्रह्म ज्ञानी एवं विरक्त थे। सीता उन्हीं की पुत्री थी। इन्हें विदेह भी कहा जाता है।

जपुजी—'जपु' नामक गुरुवाणी, जो सिक्खों के नित्य-नियम का मूल है। यह 'गुरु-ग्रंथ साहब' के आरम्भ में है और इसमें ३९ पद हैं।

जम (यम)—सूर्य का एक पुत्र, जिस का जन्म संज्ञा के उदर से हुआ था। इन्हें धर्मराज भी कहा जाता है।

जमना (यमुना)—(१) सूर्य की पुत्री एवं यम की बहिन्, जिसका जन्म विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा के गर्भ से हुआ था।

(२) एक प्रसिद्ध एवं पवित्र नदी।

जलाल—बाबा बुड्ढे के पौत्र एवं भाना भाई के पुत्र। (१६१५-१७०१)।

जहांगीर—भारत वर्ष का चौथा मुगल-शासक, अकबर का पुत्र। नूरजहाँ इसकी पत्नी थी, यह कला प्रेमी एवं विलासी था।

शासनकाल—१६०५ ई० से १६२१ ई०।

जापा—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

जीवंधा—गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

जीवड़ा—देखो माणक चन्द।

जीवा—गुरु अंगद का एक सिक्ख-सेवक।

जेठा संसारू—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

जैमल—चित्तौड़ का एक राजपूत राजा। 'गुरु प्रताप सूरज' के अनुसार इसकी सुन्दर कन्या को प्राप्त करने के लिये ही अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी।

जोतीसर (ज्योतिसर)—कुरुक्षेत्र का एक पवित्र तीर्थ-स्थान कहते हैं, इसी स्थान पर श्री कृष्ण ने अर्जुन को 'गीता' का उपदेश दिया था।

जोध रसोईया—गुरु अमरदास का डल्ला निवासी एक सिक्ख।

जोधा धुट्टा—अमृतसर के सरोवर की खुदाई में सेवा—कार्य करने वाला एक सिक्ख।

झ

झंडा—(१) गुरु अमरदास का डल्ला निवासी एक सिक्ख।

(२) बाबा बुड्ढे का वंशज।

भाई कान्हसिंह के अनुसार सरवण भाई का पुत्र; किन्तु संतोखसिंह के अनुसार जलाल का पुत्र। जन्म संवत् १६३७; मृत्यु-संवत् १७१८।

झंझु (झाझू) अमृतसर के सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

ट

टोड—अमृतसर के सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

ड

डल्ला—एक गाँव का नाम। इस स्थान से अनेक व्यक्ति गुरु जी के सिक्ख थे और अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा कार्य करते थे।

डूगरदास—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

त

तकिआरा—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

तखत हजारा—पाकिस्तान में केसर गढ़ के निकट का प्रदेश। यह स्थान 'हीर' के प्रेमी रांझे का निवास स्थान था।

तपती सूर्य की पुत्री, जिस का जन्म 'छाया' के गर्भ से हुआ था। इसका विवाह सम्वरण से हुआ था।

तलवंडी—गुरु नानक का जन्म-स्थान, यह अब पाकिस्तान में है और इसे 'ननकाना साहब' कहा जाता है।

तारू—गुरु अमरदास का एक सिक्ख। डल्ला-निवासी।

तारुका (ताडका)—एक राक्षसी, जिसका वध श्रीरामचंद्र ने किया था।

त्रिलोक सुघड—अमृत सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

तीरथा सब्बखाल—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

तुंग—'गुरु के चक्क' अमृतसर के निकट का एक ग्राम।

तुलसा—गुरु रामदास का डल्ला निवासी एक सिक्ख।

तुलसीआ—अमृतसर सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

तेगबहादुर—सिक्खों के नवें गुरु। इनका जन्म ५ वैशाख, संवत् १६७८ को गुरु हरगोविंद के घर माता नानकी के गर्भ से अमृतसर में हुआ था। संवत् १६८९ में गुजरी जी से आपका विवाह हुआ। जिनसे गुरु गोविन्द सिंह ने जन्म लिया।

संवत् १७२२ में गुरु तेग बहादुर ने गुरुता प्राप्त की।

आनन्दपुर नगर आपने ही बसाया था। हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु आपने अपना बलिदान दिया। संवत् १७३२ में दिल्ली में आप शहीद हुए। जहां आपका सिर काटा गया था, वहां अब 'गुरुद्वारा शीश गंज' (चांदनी चौक) है।

आपकी वाणी रचना ईश्वरीय प्रेम एवं विराग से भरपूर है।

तेजोमल—'बासर के' ग्राम के निवासी, गुरु अमरदास के पिता।

तोखी—गुरु हरिराइ की एक पत्नी।

त्रिपता (तृप्ता)—गुरु नानक की माता।

थ

थानेसर—करनाल जिले में, कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत, हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ-स्थान। इसे महादेव जी का स्थान भी माना जाता है। यह हर्षवर्धन की राजधानी भी थी।

थीवी—गुरु अंगद की पत्नी।

द

दनु—दक्ष प्रजापति की पुत्री तथा ऋषि कश्यप की पत्नी। इनसे बलशाली दानव-पुत्रों का जन्म हुआ था।

दामोदरी—गुरु हरगोविन्द की पत्नी।

दयाकौर—फेरू की पत्नी, गुरु अंगद जी की माता।

दशरथ—ईक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न, अयोध्या के एक राजा। इनके पिता का नाम अज तथा माता का नाम इन्दुमती था। इनकी तीन पत्नियाँ थीं। कौशल्या, कैकई एवं सुमित्रा, जिनसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। श्री रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न।

रामचन्द्र सबसे बड़े थे, वे उन्हें राज्य देना चाहते थे, किन्तु कैकई के वर माँगने पर उन्हें १४ वर्षों के लिये वनवास देना पड़ा। उन्हीं के शोक में इन्होंने प्राण त्याग दिए थे।

दातू—गुरु अंगद के पुत्र।

दानव—ऋषि कश्यप के दनु से उत्पन्न पुत्र। इनका निवास स्थान रसातल तथा श्वेत-पर्वत है।

दासू—गुरु अंगद के पुत्र।

दिती (दिति)—दक्ष प्रजापति की पुत्री एवं ऋषि कश्यप की पत्नी। यह हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष आदि दैत्यों की माता थी।

दीपा—(१) गुरु अंगद का एक सिक्ख जिसे उन्होंने भक्ति, योग, ज्ञान, विराग आदि का उपदेश दिया था।

(२) गुरु अमरदास का डल्ला-निवासी एक सिक्ख।

दुरगा (दुरगादास)—गिहड़ा ग्राम का एक सारस्वत ब्राह्मण ज्योतिषी जिसने गुरु अमरदास की पद-रेखाओं को देखकर भविष्यवाणी की थी।

(२) गुरु अमर दास का एक सिक्ख।

द्रौपदी—राजा द्रुपद की पुत्री, पांडवों की पत्नी। श्री कृष्ण ने कौरवों की भरी सभा में इनकी लाज बचाई थी।

ध

धनद (कुबेर)—धन के देवता, जिन्हें इन्द्र की नौ निधियों का भंडारी माना जाता है। इनका वाहन मनुष्य है।

द्वारका (द्वारावती)—बंबई के निकट समुद्र तट पर स्थित एक नगरी, जो हिन्दुओं की सात पवित्र पुरियों में से एक है। यह यादवों की राजधानी थी।

धरम चंद—गुरु नानक के पौत्र। लखमी दास के पुत्र।

धरमदास खोसला—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

धीर मल—बाबा गुरदित्ता का पुत्र। इनकी माता का नाम नेती था।

न

नंद चंद—डरौली निवासी उमरा शाहु का पौत्र। इसे गुरु गोविंदसिंह ने अपना मसंद बनाया था। भंगाणी-युद्ध में इसने बड़ी शूर-वीरता का प्रदर्शन किया था।

नंदु सुदना—गुरु अमर दास का डल्ला निवासी एक सिक्ख।

नईआ खुल्लर—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

नरसिंह—हिरण्यकशिपु का वध करने के लिये भगवान विष्णु ने जो अवतार धारण किया था, वह उनका नर सिंह रूप था। अपने नखों और दांतों से उसका वध करके इन्होंने अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी।

नराइण दास—गुरु अंगद का एक प्रेमी सिक्ख-सेवक, जिसे गुरु जी ने भक्ति, ज्ञान, विराग आदि का उपदेश दिया था।

नाई धिङा—गुरु अंगद का एक सिक्ख-सेवक।

गुरु नानक—सिक्खमत के संस्थापक गुरु नानक का जन्म संवत् १५२६ (ई० १४६९) में बेदीकुल में तलवंडी (ननकाना साहब) में हुआ था। उनके पिता का नाम कालू तथा माता का तृप्ता था। संवत् १५४४ में बटाला निवासी मूलचंद की पुत्री सुलखणी से इनका विवाह हुआ, जिनसे इनके दो पुत्र उत्पन्न हुए—बाबा श्रीचंद तथा लखमीदास।

गुरु जी का मन आरम्भ से ही हरि-भक्ति की ओर था। पिता ने व्यापार के लिये भेजा तो धन साधुओं में बाँट दिया और गायें-भैंसें चराने भेजा, तो खेत भैंसों को चरवा दिया। कुछ समय इन्होंने सुलतानपुर में 'मोदी' का काम भी किया। बाद में उदासी वेश धारण किया और धर्म का प्रचार करते हुए देशाटन किया।

संवत् १५७९ में इन्होंने करतार पुर बसाया और वहीं गुरु अंगद को गुरुता प्रदान कर संवत् १५०६ (ई० १५३९) में इनका देहावसान हुआ।

गुरु नानक परम संत, सशक्त लोक-नायक, समर्थ मानववादी धर्म-प्रचारक एवं क्रान्तिकारी समाज-सुधारक थे। उन्होंने जाति-पाति बाह्याचारों एवं मिथ्याडम्बरों का विरोध किया तथा अहंकार-त्याग, सेवा, संतोष, सत्संगति एवं हरि-स्मरण का उपदेश दिया। वे सामाजिक समता एवं एकता के समर्थक थे।

नानकी—गुरु हरिगोविंद की पत्नी एवं गुरु तेग बहादुर की माता।

नामदेव-एक प्रसिद्ध संत। इन का जन्म महाराष्ट्र में सितारा के निकट नरसी वामनी ग्राम में संवत् १३८८ में हुआ था। ये निर्गुण-ब्रह्म के उपासक थे। इनके बहुत से पद एवं अभंग हैं। कुछ 'गुरु ग्रंथ साहब' में भी हैं। एक बार वे पंजाब भी आये थे।

नाम लडीकी—गुरु हरिराइ की एक पत्नी।

नारद—पुराणों के एक विशिष्ट पात्र। देवर्षि नारद को ब्रह्मा का मानस-पुत्र माना जाता है। वे परम भगवद्भक्त थे। राक्षस, दानव आदि जो अत्याचार

करते थे, उनकी सूचना भगवान तक पहुंचा कर उन्हें पृथ्वी को उनके अत्याचारों से मुक्त करने का अनुरोध करते थे। वे सभी रहस्यों को जानने वाले थे। ब्रह्मज्ञानी थे। तीनों लोकों में उनका गमन था। देवर्षि नारद वेदान्त, योग, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत-शास्त्र, एवं भक्ति के आचार्य हैं। वीणा उनका प्रिय वाद्य है।

नाराइण (नारायण)—ईश्वर, परमात्मा। जल जिस का प्रथम अयन या अधिष्ठान है, उस परमात्मा का नाम नारायण है। यह सर्वत्र व्याप्त है और सब की उत्पत्ति के कारण हैं।

नुरंग (औरंगज़ेब)—मुगल बादशाह शाहजहां का पुत्र था। जन्म १६१८ ई० में दोहरा (बम्बई) में हुआ। १६५८ में पिता को आगरे के किले में कैद किया और स्वयं तख्त पर बैठा।

वह बड़ा ही कट्टर मुसलमान था। हिन्दु उसकी असहिष्णु नीति से बड़े ही दु:खी थे। शिवाजी तथा गुरु गोविंद सिंह उसके प्रमुख प्रतिद्वन्दी थे।

अहमदनगर (दक्षिण) में १७०७ में उसकी मृत्यु हुई।

नेती—बाबा गुरदित्ता की पत्नी।

प

पटना—बिहार-प्रान्त का एक प्रमुख नगर। गुरु गोविंदसिंह का जन्म-स्थान।

पट्टी—माझे का एक छोटा सा कस्बा।

पदारथ—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

पन्नग—ऋषि कश्यप के कद्रू के गर्भ से उत्पन्न पुत्र।

छियासी श्रुतर्षियों में से एक का नाम।

परसराम (परशुराम)—जमदग्नि ऋषि के पुत्र, जिनकी माता का नाम रेणुका था। इन्होंने अपने परशु से २१ बार पृथ्वी पर क्षत्रियों का नाश किया था, इन्हें विष्णु का सोलहवां अवतार माना जाता है।

पहोए (पेहवा)—जिला करनाल में हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ स्थान।

प

पारो जुलका—गुरु अंगद का एक प्रेमी सिक्ख। वह डल्ले ग्राम का रहने वाला था, ईश्वर-भक्त था और श्री रामदास जी की सेवा में भी उपस्थित रहा।

पिराणा—अमृतसर सरोवर की खुदाई में सेवा करने वाला एक सिक्ख सेवक।

पिशौर (पेशावर)—भारत के उत्तर-पश्चिम में, पाकिस्तान का एक प्राचीन—प्रमुख नगर। पहले यह गांधार देश की राजधानी थी। कनिष्क का भी इस पर अधिकार रहा। महाराजा रणजीत सिंह ने भी इसे अपने अधिकार में लिया था।

पुरंदर—(इन्द्र का एक नाम) देखें—इन्द्र।

पुरहूत—(इन्द्र का एक नाम) देखें —इन्द्र ।

पुरीआ—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा करने वाला एक सिक्ख ।

पूरो—गुरु अमरदास तथा गुरु रामदास का डल्ला-निवासी का एक सिक्ख ।

पैडा—अमृतसर—सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख ।

प्रभंजन—वायुदेव का एक नाम । वायु ४९ प्रकार की मानी जाती है ।

प्रयाग—हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ स्थान, जहां गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम होता है ।

प्रह्लाद—हिरण्यकशिपु और कयाधु दानवी का पुत्र । बाल्यावस्था से ही वह भगवद्भक्त था, इसलिये अपने दैत्यराज पिता का कोप-भाजन बना । ईश्वर-भक्ति से विमुख करने के लिये इसे अनेक यातनायें दी गईं, किन्तु वह अपने विश्वास में दृढ़ रहा । अन्त में उस की रक्षा के लिये भगवान् विष्णु ने नरसिंह अवतार धारण किया और हिरण्यकशिपु का वध किया । ईश्वर-भक्ति के कारण वह दैत्यों एवं दानों का अधिपति बना ।

प्रिथीआ—गुरु रामदास का ज्येष्ठ पुत्र । गुरुता न मिलने के कारण गुरु अर्जुनदेव के प्रति द्वेष रखता था । यही विद्वेष गुरु जी की शहीदी का एक कारण बना ।

प्रिथी मल—गुरु अमरदास का डल्ला निवासी एक सिक्ख ।

प्रेम कुमारी—गुरु हरिराइ की एक पत्नी ।

प्रेमा एक अनाथ कुष्ठि । गुरु अमरदास ने उसके अनुराग से प्रसन्न हो कर उसका कष्ट दूर किया और उसका नाम मुरारी रख दिया था ।

फ

फत्ता—चित्तौड़ का राजपूत योद्धा, जैमल का भाई ।

फफरे—एक ग्राम का नाम ।

फिरया—गुरु अमरदास का एक सिक्ख ।

फूल—उदासी सम्प्रदाय में बाबा गुरदित्ता का एक प्रमुख शिष्य ।

फेरू—तेहण कुल में उत्पन्न, गुरु अंगद के पिता ।

ब

बकाले—एक ग्राम, जहां गुरु तेगबहादुर गुरु रूप में प्रकट हुए थे ।

बठिंडा—पंजाब का एक प्रमुख नगर ।

बडाला—एक गाँव, जहाँ गुरु हरिगोविंद का जन्म हुआ था ।

बलख-खुरासन—अफगानी तुर्किस्तान का एक प्राचीन नगर ।

बल्लू—गुरु अंगद का एक प्रेमी सिक्ख ।

बहिलोभाई—फफरे ग्राम का एक जाट, जो गुरु अरजन देव का सिक्ख था ।

बहोडा भाई—सुनार जाति का गुरु अरजनदेव का एक सिक्ख।

बाबर—भारतवर्ष का प्रथम मुगल शासक। फरगना (मध्य एशिया) के शासक। उमर शेख मिर्जा का एक पुत्र।

शासन काल—१५२६ ई०—१५३० ई०।

बाला—तलवंडी का एक जाट, जिसने गुरु नानक के साथ अनेक स्थानों की यात्रा की। इसकी 'जन्म साखी' भी प्रसिद्ध है।

बाला मरवाहा—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

बालू—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

बालू हसना—बाबा गुरदित्ता का शिष्य एक उदासी साधु।

बासरके—एक गाँव, जहाँ गुरु अमरदास का जन्म हुआ था।

बिधीचंद—(१) गुरु रामदास का एक सिक्ख।

(२) बठिंडे का एक धनवान खत्री।

बिनती (विनता)—दक्ष प्रजापति की पुत्री, तथा ऋषि कश्यप की एक पत्नी, इसे पक्षियों की माता कहा जाता है। गरुड इसी के पुत्र थे।

बिपासा (व्यास नदी)—पंजाब की एक प्रमुख नदी।

बिराड देश—वह जंगली प्रदेश जहां बाद में बाबा बुड्ढा रहा करते थे।

बिसनदास—गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

बिसुकरमा (विश्वकर्मा)—एक देवता, जिन्हें सभी प्रकार के शिल्प का आविष्कर्त्ता माना जाता है। यह प्रभास वसु के पुत्र तथा रचना के पति हैं।

बीरबल—मुगल बादशाह अकबर का एक मंत्री, जो अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं विनोद प्रियता के लिये विख्यात हैं।

बुखारा—मध्य एशिया का एक राज्य एवं उसका प्रधान नगर। यह समरकंद के पश्चिम में है।

बुड्ढा (बाबा बुढ्ढा)—बाबा बुड्ढे का जन्म संवत् १५६३ में कत्थू नंगल जिला अमृतसर में सूधे रंधावे के घर में हुआ था। माता का नाम था गोरां।

गुरु नानक जिस समय इनके गाँव के निकट पहुँचे, तो ये बालक ही थे, इन्होंने गुरु जी की बड़ी सेवा की। इनकी बुद्धिमत्ता एवं सेवा-भावना को देखकर गुरु जी ने कहा था कि भले ही तुम्हारी आयु कम है, तुम्हारी समझ बुड्ढों जैसी है। तभी से वे इस नाम से पुकारे जाने लगे।

बाबा बुड्ढा गुरु-घर के प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित सिक्ख हैं। गुरु अंगद से लेकर गुरु हरगोविंद तक उन्हें गुरु-गद्दी का तिलक इन्होंने ही किया। श्री

हरिगोविंद को शिक्षा भी दी। संवत १६८८ में रमदास गाँव (अमृतसर) में इनका देहावसान हुआ।

बुद्धू कलाल—लवपुरि का निवासी गुरु अरजनदेव का एक सिक्ख, जो ईंटों का भट्टा लगाने का काम करता था।

बुध—नवग्रहों में से एक। चन्द्रमा के पुत्र, जो देवगुरु वृहस्पति की पत्नी तारा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

बूल—(१) गुरू अंगद का एक सिक्ख।

(२) गुरु रामदास का एक सिक्ख।

बूला चंडी—गुरु अरजनदेव का एक सिक्ख जो अमृतसर-सरोवर की सेवा में प्रवृत्त था।

बूला बांधा—गुरु अमरदास का एक डल्ला-निवासी-सिक्ख।

बेनी पंडित—न्याय शास्त्र आदि का एक विद्वान्-पंडित, जिसका गुरु अमर दास ने उद्धार किया।

बेगा पासी—गुरु अमरदास का एक डल्ला-निवासी सिक्ख।

ब्रह्मा—हिन्दू त्रिमूर्ति के प्रथम देवता। इन्हें ही सृष्टि रचना करने वाला देवता माना जाता है। पुराणों में इनके प्रादुर्भाव एवं इनके द्वारा सृष्टि-रचना की अनेक कथायें हैं। कहते हैं, इनके ५ सिर थे, पर शंकर ने इनका एक सिर नष्ट कर दिया था और यह 'चतुर्भुज' हो गये। ब्रह्माणी इनकी पत्नी है और हंस वाहन कहा जाता है।

ब्रह्माणी—ब्रह्मा की शक्ति जो चार मुख एवं चार भुजाओं वाली है और हंस उसका वाहन है।

भ

भगतू—(१) आदम नाम के जाट का पुत्र, जो गुरु रामदास के वरदान से उत्पन्न हुआ था।

(२) अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

भरथरि—एक प्रसिद्ध नाथ।

भवानी—दुर्गा देवी का एक नाम। ये शिव की पत्नी हैं।

भागीरथ—यहाँ अमृत-सरोवर की खुदाई में सेवा करने वाला एक सिक्ख।

भागीरथी—गंगा का एक नाम। क्योंकि राजा भागीरथ उसे पृथ्वी पर लाये थे, इसलिये उसे भागीरथी भी कहा जाता है।

भाणा (भाणा भाई)—बाबा बुड्ढे का पुत्र। जन्म संवत् १५८६, मृत्यु—संवत् १७०१।

भानी—गुरु अमरदास की पुत्री। गुरु रामदास की पत्नी तथा गुरु अरजन-देव की माता।

भारू—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

भीषम—महाभारत के विख्यात योद्धा।

भैरोपुर—खड़ूर के निकट का एक ग्राम।

भ्रिगु (भृगु)—एक प्रसिद्ध मुनि। ब्रह्मा, विष्णु, महेश में बड़ा देवता कौन है, यह परखने के लिये इन्होंने विष्णु पर पद-प्रहार किया था और विष्णु को ही श्रेष्ठ घोषित किया था।

म

मंकन मुनि (मंकणक)—एक मुनि का नाम, जो वायु द्वारा सुकन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

मंगला—गुरु रामदास का एक सम्बन्धी।

मंझ—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

मंडी—हिमाचल प्रदेश का एक प्रमुख पहाड़ी नगर।

मईआ—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

मथोमुरारी—एक सिक्ख, देखो प्रेमा।

मथो—शीहां उप्पल की पुत्री, जिस का विवाह गुरु जी ने अमरदास के सेवक मुरारी से हुआ था।

मक्का—मुसलमानों का सब से पवित्र धर्म स्थान, जो अब अरब देश में है। यह मुहम्मद साहब का जन्म स्थान है।

मघवा—इन्द्र का एक नाम। देखें इन्द्र।

मद्रदेश—एक प्राचीन प्रदेश का नाम। विद्वानों ने इस प्रदेश की स्थिति अलग अलग मानी है। गुरु गोविंदसिंह ने पंजाब के लिये इस शब्द का प्रयोग किया है।

मधु-कैटभ—सृष्टि रचना के समय नारायण की मैल से उत्पन्न दो बलशाली दैत्य। इन्हें विष्णु ने मारा था।

मनीसिंह (भाई)—गुरु गोविंद सिंह के निष्ठावान सिक्ख। सुनाम के निकट कैबोवाल नाम के गाँव में चौधरी काले जाट के घर इनका जन्म हुआ था। वे आजीवन गुरु-घर की सेवा करते रहे।

इन्होंने 'गुरु ग्रंथ साहब' की बीड़ भी तैयार की। अमृतसर हरिमंदर के ग्रंथी भी रहे।

संवत् १७९४ में लाहौर में शहीद हुए।

मनु—मनु अनेक हुए हैं, यहां सूर्य का एक पुत्र।

मरवाही—गुरु हरिगोविंद की दूसरी पत्नी।

मल्लण—गुरु अमरदास का डल्ला-निवासी एक सिक्ख।

मल्यार—गुरु अमरदास का एक डल्ला-निवासी सिक्ख।

मल्लूशाह—गुरु अंगद का एक सिक्ख-सेवक, जिसे गुरु जी ने ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया।

मसूरपुर—पटियाला के निकट का एक गाँव।

महांदेव – गुरु रामदास का मंझला पुत्र। विरक्त स्वभाव का व्यक्ति।

महानंद – गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

महेश – गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

मांडव – एक तपस्वी मुनि, अथवा मांडुक नाम का ऋषि।

माईआ – गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

माईदास—एक वैष्णव जो श्री कृष्ण का भक्त था और बाद में गुरु अमरदास का सिक्ख बन गया था।

माझा – दो नदियों के मध्य का प्रदेश। व्यास तथा रावी के मध्यवर्ती भूभाग को माझा कहा जाता है।

माणक चंद – डल्ले निवासी, जाति,— पथरीआ। अमृतसर—सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख। बाद में गुरु जी ने इसका नाम 'जीवडा' रख दिया था।

मानस—मान सरोवर।

मालू—गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

मिहडा—एक गाँव, जहां दुरगा-दास नाम का ज्योतिषी रहता था, जिस ने गुरु अमरदास जी के लिये भविष्यवाणी की थी।

मिहरवान—प्रिथीए का पुत्र।

मुटटो – देखो पेमा।

मुलतान—पश्चिमी पंजाब, (पाकिस्तान) का एक प्राचीन नगर। हिरण्यकशिपु इसी स्थान पर रहता था और यहीं भगवान् ने नरसिंह का अवतार धारण किया था। यहां सूर्य का भी एक प्राचीन मंदिर है। सूफियों का भी यह प्रमुख केन्द्र था।

मूल चंद – बठिंडे निवासी सिधी-चंद खत्री का पुत्र, वह सुनाम के निकट रहता था।

मूला—(मूलचंद) गुरु नानक का ससुर। बटाला निवासी।

मोहन— गुरु अमरदास का पुत्र। मस्त स्वभाव का था।

मोहन—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

मोहनमल – गुरु अमरदास का डल्ला-निवासी एक सिक्ख।

मोहरी—गुरु अमरदास का पुत्र।

य

युधिष्ठिर – इन्हें कुंती के गर्भ से उत्पन्न धर्म का पुत्र कहा जाता है। पांच पांडवों में वे सब से बड़े थे। वे सत्यवादी एवं धर्मात्मा थे। कौरवों के साथ जुए में सारा राज्य एवं द्रौपदी को हार गये थे। बाद में राज्य वापिस मांगने पर महाभारत का युद्ध हुआ। उसमें पांडवों की विजय हुई और ये हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे थे।

अपनी धर्म परायणता के कारण वे सदेह स्वर्ग गये थे।

र

राजकुइर—पट्टी के राजा की पुत्री, जिसका विवाह रुष्ट होकर एक पिंगले (कुष्ठि) से किया गया था।

राजशिरी (राजश्री)—शची, इन्द्र की पत्नी का एक नाम।

रामकुइर (राम कौर)—गुरु हरिराइ की दूसरी पत्नी।

रामकुइर—बाबा बुड्ढे जी के वंश में उत्पन्न। जन्म संवत् १७२९ एवं मृत्यु संवत् १८१८ में। पिता—गुरदित्ता भाई। गुरु गोविंदसिंह ने इन्हें अमृतपान करवा कर, इनका नाम गुरबख्शसिंह रख दिया था। उनकी सेवा में रह कर इन्होंने गुरुओं के इतिहास एवं गुरु-मत की जानकारी प्राप्त की।

गुरु गोविंदसिंह के परलोक-गमन के पश्चात् इन्होंने सभी गुरुओं का इतिहास सिक्खों को सुनाया, जिसे साहब सिंह ने लिखा।

रामचन्द्र—इन्हें भगवान विष्णु के मुख्य अवतार माना जाता है। अयोध्या के राजा दशरथ के बड़े पुत्र। माता—कौशल्या। इनका विवाह जनक की पुत्री सीता से हुआ था। कैकई के वर माँगने पर इन्हें १४ वर्षों का वनवास मिला था। वहाँ रावण ने सीता का हरण किया, परिणाम स्वरूप उन्होंने रावण आदि सभी राक्षसों का संहार किया।

लव-कुश इनके दो पुत्र थे। श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। 'रामायण' इन्हीं के चरित्र पर आधारित है।

रामदास—सिक्खों के चौथे गुरु। इनका जन्म लाहौर में हरिदास सोढी के घर संवत् १५९१ में हुआ। माता का नाम दया कौर था।

घर त्याग कर वे गुरु अमरदास की सेवा में रहने लगे थे। वहीं उनकी पुत्री भानी से संवत १६१० में इनका विवाह हुआ। आपने गुरु अमरदास की आज्ञा से 'गुरु का चक्क' बसाया। यही बाद में अमृतसर बना।

गुरु अमरदास ने इन्हें संवत् १६३१ में गुरुता प्रदान की। संवत् १६३६ में गोइंदवाल में इनका देहावसान हुआ।

इनके तीन पुत्र थे, प्रिथिआ, महादेव एवं अरजन देव।

रामराइ—गुरु हरिराइ के पुत्र। जन्म कीरतपुर में।

रामू गुरु अमरदास का एक डल्ला निवासी सिक्ख।

रामो—गुरु अमरदास की पत्नी।

रुद्र इकादश—सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा की भौहों से उत्पन्न एक देवता। ये ग्यारह रुद्र हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—अज, एकपाद, अहिर्बुध्य, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषा कपि, शंभु, हरण, ईश्वर।

रूपकौर—तेजोमल की पत्नी, गुरु अमरदास की माता।

ल

लंगाह-ढिल्लो—पट्टी का चौधरी, गुरु अरजनदेव का सिक्ख।

लंमेदेश—जिला लुधियाना में जगराओं के निकट एक ग्राम।

लऊ (लव)—श्री रामचन्द्र के पुत्र, जिनका जन्म सीता के गर्भ से ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में हुआ था। लाहौर इन्हीं ने बसाया था।

लक्खू—गुरु अरजनदेव का एक लवपुरी निवासी सिक्ख।

लछमन (लक्ष्मण)—अयोध्या के राजा दशरथ का पुत्र, श्री रामचन्द्र के साथ वह भी १४ वर्ष वन में रहा। इनका जन्म सुमित्रा के गर्भ से हुआ था।

लछमी (लक्ष्मी)—विष्णु की पत्नी, जो समुद्र मंथन से प्राप्त हुई थी। इन्हें धन की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है।

लखमीदास—गुरु नानक के दूसरे पुत्र।

लछमीपति (लक्ष्मीपति)—विष्णु, देखें विष्णु।

लवपुरि (लाहौर)—लाहौर का पुराना नाम, जिसे श्रीराम चन्द्र के पुत्र लव ने बसाया था। रावी नदी के तट पर स्थित यह नगर अब पाकिस्तान का प्रमुख नगर है।

लहिणा—गुरु अंगद का पहला नाम। देखें अंगद।

लालू—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

लालू ढिल्लों—पट्टी का चौधरी, गुरु अरजनदेव का सिक्ख।

लाल-भाई—(१) सैदपुर निवासी एक बढई, जो गुरु नानक का अनन्य भक्त था। गुरु नानक कई दिन इसके घर रहे थे और उसकी सूखी रोटियों में से दूध निकाला था।

(२) डल्ला निवासी एक सिक्ख जो गुरु अमरदास का सेवक था।

लीलावती—वह स्थान जहाँ संतोखसर खुदवाया गया था।

व

वसिष्ठ—एक तेजस्वी ऋषि। वेदों से लेकर पुराणों तक में इनका उल्लेख मिलता है। वेदों में इन्हें मित्र और वरुण के पुत्र कहा गया है। पुराणों के अनुसार सृष्टि के प्रथम कल्प में ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र ठहरते हैं।

ये सूर्यवंश के पुरोहित थे। बाद में इक्ष्वाकु वंश के पुरोहित रहे।

विश्वामित्र से इनका द्वन्द्व प्रसिद्ध है। इन्हीं के कारण विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिये तपस्या की थी।

बहुरा—गुरु रामदास का एक सिक्ख।

वामन—विष्णु का पाँचवाँ अवतार, जो उन्होंने बलि को छलने के लिये अदिति के गर्भ से धारण किया था।

वाल्मीकि—भृगुवंश में उत्पन्न एक मुनि जो विश्व विख्यात 'रामायण' के रचयिता हैं और जिन्हें 'आदिकवि' कहा जाता है।

तमसा नदी के तट पर इनका आश्रम था। एक व्याध के बाण से घायल क्रौंच पक्षी को देखकर शोकाकुल हो उठे थे और तब अनायास इनकी वाणी से जो 'श्लोक' मुखरित हुआ था, उसी श्लोक में इन्होंने श्री राम का चरित्र अंकित किया।

श्रीराम ने जब सीता को वनवास दिया, तो वे इन्हीं के आश्रम में रहीं और वहीं उन्होंने लव और कुश को जन्म दिया।

वासदेव—कृष्ण का एक नाम। देखें कृष्ण।

विद्याधर—एक प्रकार के देवता, जो स्वर्ग में रहते हैं और इन्द्र के सहचर हैं।

विश्वादेव—एक देवता। इन्हें दक्ष की पुत्री विश्वा तथा धर्म के पुत्र माना जाता है। ये संख्या में दस हैं—वसु, क्रतु, सत्य, दक्ष, काम, धृति आदि।

विष्णु—हिन्दुओं की त्रिमूर्ति (प्रधान तीन देवता) में से एक, जिन्हें सृष्टि के पोषक माना जाता है। वैदिक काल में इन्हें धन, वीर्य और बल दाता माना जाता था। पुराणों की मान्यता है कि वे सृष्टि के कल्याण के लिये युग-युग में अवतार धारण करते हैं। पुराणों में इनके दस अवतारों का वर्णन मिलता है। इनका वर्ण श्याम है तथा ये चतुर्भुज हैं। इनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी है और गरुड़ इनका वाहन है।

वैंरोवाल—जिला अमृतसर में खडूर एवं गोइंदवाल के निकट एक पुराना कस्बा।

व्यास—पराशर ऋषि के पुत्र। इनका जन्म सत्यवती नाम की धीवर कन्या से हुआ था।

इन्होंने वेदों का संग्रह, सम्पादन एवं विभाग किया।

अठारह पुराणों, भगवत्, महाभारत आदि की रचना भी इन्होंने ही की।

वस्तुत:, व्यास एक व्यक्ति का नाम नहीं है। यह एक उपाधि है। प्रत्येक कल्प में वेदों का संग्रह-सम्पादन आदि करने वाले को व्यास कहते थे। वे वेदों, पुराणों आदि के पूर्ण-ज्ञाता तथा भगवान के परम-भक्त थे।

श

शंभु (शिव) – देखें शिव।

शाह हुसैन—एक मुसलमान जो गुरु अमरदास का सिक्ख था।

शाहाँ उप्पल—गुरु अमरदास का एक सिक्ख, जिसकी पुत्री से गुरु जी ने प्रेमा (मुरारी) का विवाह सम्पन्न किया था।

शाही—गुरु अमरदास का एक सिक्ख।

शिव—हिन्दुओं के प्रधान तीन देवताओं में (त्रिमूर्ति) से एक, जिन पर सृष्टि के संहार का भार है। वैदिक काल में इन्हें रुद्र कहा जाता था और पौराणिक काल में शंकर, महादेव आदि नामों से प्रसिद्ध थे। इनका निवास कैलाश पर्वत पर माना जाता है। पुराणों के अनुसार उनके सिर पर गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा, तीसरा नेत्र, गले में साँपों एवं नर-मुंडों की माला, शरीर पर भस्म व्याघ्रचर्म होता है। पार्वती इनकी पत्नी है। गणेश तथा कार्तिकेय पुत्र, त्रिशल इनका प्रधान अस्त्र है और 'नन्दी' नामक बैल वाहन।

शेरशाह-सूरी—दिल्ली का पठान शासक, जिसने हुमायूं को पराजित करके राज्य प्राप्त किया था। उसके पिता का नाम हसन सहसराम था और इसका शासन काल—१५४० ई० से १५४५ ई० तक था।

श्रीचंद—गुरु नानक के प्रथम पुत्र, बाबा श्रीचंद को उदासी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक माना जाता है।

स

संगरूर—पंजाब की एक प्राचीन रियास्त जींद की राजधानी। पटियाला के निकट एक शहर।

संत सधारन—गुरु अमरदास का एक सेवक जो लुहार का काम करता था।

संतोखसर—अमृतसर का एक सरोवर।

संतोखसिंह—'गुरु प्रताप सूरज' ग्रंथ के रचयिता कवि। देखो भूमिका।

संसराम—मोहन का पुत्र तथा गुरु अमरदास का पौत्र।

संहारी—गुरु अमरदास के ताये का पुत्र।

सचनि सच—गुरु अमरदास का डल्ला निवासी एक सिक्ख सेवक जिसका विवाह उन्होंने हरीपुर के राजा की उस रानी से करवाया था जो पागल हो गई थी।

सतुद्रव (सतलुज)—पंजाब की एक प्रसिद्ध नदी जो रोपड़ और फिरोज-पुर के पास से बहती है।

सनीचर (शनि)—सूर्य का पुत्र, जो 'छाया' के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। यह अशुभ फल देने वाला ग्रह माना जाता है।

सरौद्र (शिव)—देखें शिव।

सलेम शाह—शूरशाह सूरी का भाई।

सहारू छींवा - गुरु अमरदास का डल्ला-निवासी एक सिक्ख।

सामुंदा—अमृतसर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

सारद (शारदा, सरस्वती)—विद्या एवं वाणी की अधिष्ठात्री देवी। इनका वाहन हंस है। वीणा इनका वाद्य है।

साल्हो—गुरु अरजनदेव का एक सिक्ख।

सावणमल— गुरु अमरदास का एक सिक्ख, जिसे उन्होंने इमारती लकड़ी लाने के लिये हरीपुर भेजा था।

साहब देवी – गुरु गोविंद सिंह की तीसरी पत्नी। 'खालसा' को इनका पुत्र माना जाता है।

साहब सिंह— गुरु गोविंद सिंह के पांच प्यारों में से एक। इनका जन्म नंगल शहीदां (होशियार पुर) में तुलसी नाई के घर संवत् १७२२ में हुआ था। १७३८ वि० में वह दशम गुरु की शरण में आया। वि० १७५६ में सिक्खी धारण की। संवत् १७६१ में चमकौर-युद्ध में शहीद हुआ।

(२) जिन सिक्खों के अनुरोध पर रामकुइर ने गुरुओं की कथा सुनाई, उनमें से एक। उस कथा को इसी ने लिखा।

सिधीचंद— बठिंडे का एक धनी खत्री व्यापारी। विधीचंद का छोटा भाई।

सुंदरी—गुरु गोविंद सिंह की दूसरी पत्नी अजीत सिंह की माता।

सुनाम—पटियाला के निकट एक कस्बा।

सुब्रचला (सुवर्चला) – विश्वकर्मा की पुत्री, जिसका विवाह सूर्य के साथ हुआ था।

सुरगुरु (बृहस्पति) – एक प्रजापति और अंगिरा के पुत्र। एक प्रसिद्ध ब्रह्मिष्ठ। सप्तर्षियों में से एक। इन्हें बुद्धि और वक्तृत्व के देवता तथा देवताओं के गुरु माना जाना है।

सुरपति (इन्द्र)—देखें इन्द्र।

सुलतान पिंड – इस नाम के कई ग्राम हैं। यहाँ अमृतसर के निकट का एक ग्राम जहाँ संतोखसर बनवाया गया था।

सुलही – मुगल बादशाह जहांगीर का एक उमराव।

सूपनखा (शूर्पनखा) – 'रामायण' की एक नारी-पात्र। रावण की बहिन। उसकी कामुक चेष्टाओं के कारण, लक्ष्मण ने उसकी नाक काट दी थी।

सूरज (सूर्य) – सूर्यदेव।

प्रजापति कश्यप के पुत्र, जिनका जन्म अदिति के गर्भ से हुआ था। विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा इनकी पत्नी थी। इसी से यम (पुत्र) एवं यमुना (पुत्री) का जन्म हुआ था। छाया इनकी दूसरी पत्नी है, जिसे संज्ञा अपने स्थान पर इनके तेज को न सह पाने के कारण छोड़ गई थी। इससे शनि (पुत्र) एवं तपती (पुत्री) का जन्म हुआ था।

इनके रथ में सात घोड़े हैं और अरुण इनके सारथि हैं।

सूर्य ग्रह प्रकाश-पुञ्ज है तथा प्राणियों का प्राण है।

सूरजमल—गुरु हरिगोविंद का दूसरा पुत्र।

स्रवण (सरवण) बाबा बुड्ढे का पौत्र एवं भागा भाई का पुत्र।

ह

हनुमान—राम के परम भक्त हनुमान जी को वायु या मारुत देवता का पुत्र माना जाता है। इनका जन्म अंजनी के गर्भ से हुआ था। देवताओं से इन्हें अजर-अमर होने का वर प्राप्त था।

रामकथा में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सीता-हरण के पश्चात् राम की सुग्रीव से मित्रता करवाने में इन्हीं का हाथ था। सीता की लंका में खोज भी इन्होंने ही की थी। लंका का दहन किया था। लक्ष्मण के मूर्छित होने पर रातों रात संजीवन बूटी लेकर आये थे।

राम-भक्तों में इन्हें सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। ये महाबली हैं। सारे भारत में इनकी पूजा होती है। इन्हें शिव का अवतार भी माना जाता है।

हरिकृष्ण—सिक्खों के आठवें गुरु। इनका जन्म कीरत पुर में संवत् १७१३ में गुरु हरिराइ के घर हुआ था। माता का नाम था कृष्णकौर संवत १७१८ में इन्हें गुरु-गद्दी प्राप्त हुई। औरंगजेब के बुलाने पर दिल्ली गये, वहां चेचक से संवत् १७२१ में इनकी मृत्यु हो गई।

हरिगोविंद—सिक्खमत में वीर भावना का संचार करने वाले सिक्खों के छठे गुरु। हरिगोविंद का जन्म गुरु अरजनदेव के घर माता गंगा के उदर से संवत् १६५२ में बडाली में हुआ था। इनके तीन विवाह हुए, जिनसे इनके पांच पुत्र (बाबा गुरदित्ता, सूरजमल, अणीराइ, अटलराइ, एवं तेग बहादुर) तथा एक पुत्री वीरो उत्पन्न हुए। इनके ताये प्रिथिये ने इन्हें बाल्यकाल में मरवाने की अनेक कुचेष्टायें कीं किन्तु वह सफल नहीं हुआ।

संवत् १६६३ में आप गुरु-गद्दी पर बैठे। आप मीरी और पीरी की दो तलवारें धारण करते थे। स्वयं अद्भुत वीर थे और देश और धर्म की रक्षा के लिये सिक्खों में ईश्वर-भक्ति एवं ज्ञान के साथ-साथ वीरता का संचार किया। इन्होंने हरिमंदिर के सामने तख्त अकाल बुंगा, लाहौर में गुरु अरजनदेव का देहरा तथा अमृतसर में कौलसर बनवाया। अपने पिता जी तथा सिक्खों के प्रति मुगलों के क्रूर व्यवहार की प्रतिक्रिया स्वरूप इन्होंने सिक्खों को शस्त्र धारण करने का उपदेश दिया। मुगलों से इनकी कई बार मुठभेड़ हुई। जहांगीर ने कुछ समय के लिये इन्हें ग्वालियर किले में क़ैद भी रखा।

इन्होंने अनेक स्थानों पर जाकर सिक्खमत का प्रचार किया। हरिराइ जी को गुरु-गद्दी प्रदान कर संवत् १७०१ में में परलोक सिधारे।

हरिदास—लवपुरि का भल्ला—खत्री। गुरु रामदास के पिता।

हरिमंदिर अमृतसर का प्रसिद्ध गुरुद्वारा, जिसे स्वर्ण-मंदिर भी कहा जाता है।

हरिराइ—सिक्खों के सातवें गुरु। इनका जन्म संवत् १६८६ में बाबा गुरदित्ता के घर माता निहालकौर के गर्भ

से कीरतपुर में हुआ था। इनका विवाह अनूप शहर निवासी दयाराम की पुत्रियों कोटकल्याणी तथा कृष्ण कौर से हुआ था। प्रथम से रामराइ तथा दूसरी से श्री हरिकृष्ण का जन्म हुआ। गुरु हरिराइ ने सवत् १७०१ में गुरु-गद्दी प्राप्त की।

औरंगज़ेब ने इनपर दाराशिकोह की सहायता करने का आरोप लगाकर इन्हें दिल्ली बुलवाया। इन्होंने अपने बड़े पुत्र रामराइ को दिल्ली भेजा था।

संवत् १७१८ में गुरु हरिकृष्ण को गुरु-गद्दी पर बिठा कर कीरतपुर में इनका देहावसान हुआ।

हरी के—मुक्तसर के निकट एक ग्राम।

गुरु अंगद का जन्म-स्थान।

हरीजन—अमृतसर-सरोवर की खुदाई में सेवा-कार्य करने वाला एक सिक्ख।

हरीपुर—पहाड़ी-प्रदेश का एक नगर, जहां से इमारती लकड़ी लाने के लिये गुरु अमरदास ने सावणमल को भेजा था। वहां का राजा गुरु जी का भक्त बन गया था।

हिंदाल—गुरु अमरदास का एक सिक्ख-सेवक।

हुमायूँ—बाबर का पुत्र। दिल्ली का दूसरा मुगल शासक। शासनकाल—१५३० ई० से १५४० ई०, तथा १५५५ ई० से १५५६ ई०।